3२/33

22

भाषा भागवत
अर्थात्
सरल सुखसागर

आम्नाय-ग्रन्थालय,
नरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आम्नाय-ग्रन्थालय,
नरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

32133

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

श्री

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

* * *

अनुवादक

पं० कमलाप्रसाद शर्मा

* * *

प्रकाशक

पण्डित-पुस्तकालय

राजादरवाजा, काशी।

* * *

१९४८] मूल्य छ रुपये [प्रथमावृत्ति

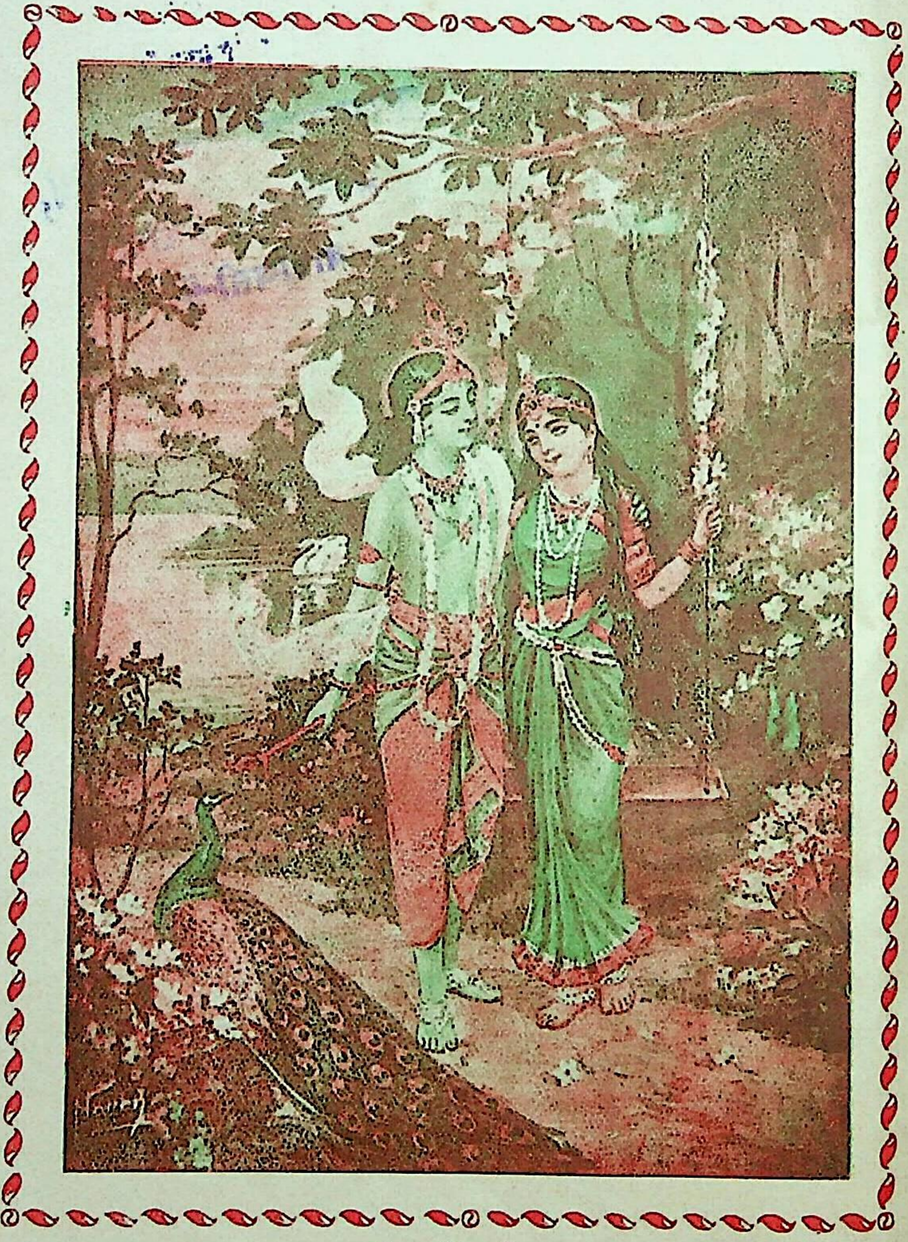

कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण

आम्नाय-ग्रन्थालय,
बरसानिधि, करौंदी
वाराणसी-5

श्रीः ।

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

अनुवादक

पं० कमलाप्रसाद शर्मा

सम्पादक

पं० राधेमोहन पाण्डेय

प्रकाशक

पंडित-पुस्तकालय, काशी

१९४८ ई०

मूल्य ९ रुपये

इस ग्रन्थका सर्वाधिकार पंडित-पुस्तकालयके लिए सुरक्षित है ।

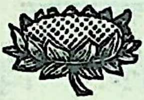

प्रकाशक
पं० रामतेज शास्त्री
पंडित-पुस्तकालय
राजादरवाजा, काशी

मुद्रक
हरि माधव सप्रे,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस
जतनबर, काशी

भूमिका

पाठकों ! यह सर्वविदित है कि कलिकालमें हरि-कथामृतसे बढ़कर शाश्वत सुखपिपासा मिटानेका अन्य सरल उपाय नहीं है। इस विकराल युगकी यही विशेषता है और भागवतशास्त्र ही भवताप दूर करनेका सुलभ साधन है। भक्तजनोंकी यह हृदयमणि है। इसके प्रत्येक शब्दसे हरिमहिमा निरूपित होती है। यह कथा सुखोंका आगार है। अतएव यह सुखसागर भी है। सनातनधर्मका गम्भीर तत्त्व समझनेका सरल पथ इसीके अवलम्बनसे दृष्टिगोचर हो सकता है। इन्हीं बातोंको लक्ष्यमें रखकर सर्वसाधारणके उपकारार्थ इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ संक्षिप्तरूपसे इस 'सुख सागर' में यथासम्भव सरल और सबके समझने योग्य भाषामें प्रकट की गयी हैं। पाण्डित्य, समय और धनाभावके कारण जो धर्मप्रेमी सज्जन हरि-कथा-श्रवणसे वञ्चित रह जाते हैं वे इसके अवलम्बसे अपनी अभिलाषाकी पूर्ति अनायास ही कर सकेंगे, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है। हाँ, यह सत्य है कि जिन स्थलोंकी कथाएँ गूढ़ हैं वे तो गूढ़ ही रहेंगी। उनकी गूढ़ता मिटानेकी शक्ति किसी मनुष्यमें नहीं है। किन्तु यह परम सत्य है कि श्रीमद्भागवतकी कथाका रसास्वादन करते ही भगवानकी कृपासे अचला भक्ति हृदयमें प्रवेश करेगी। फिर तो सारी गूढ़ताएँ आप ही आप मिट जायँगी।

पाठकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे इस ग्रन्थकी भाषा बोधगम्य करनेकी चेष्टामें कोई त्रुटि नहीं की गयी है। किन्तु धार्मिक पुस्तकोंकी भाषामें देववाणी संस्कृत शब्दोंकी अधिकता अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी

है। भक्तजनोंका हितसाधन और हरिकथाका घर-घर प्रचार करना इस ग्रन्थके प्रणयनका मुख्य उद्देश्य है। साथ ही यह स्मरणीय है कि हिन्दूधर्म और संस्कृतिकी रक्षाके इस प्रयत्नमें स्वयं करुणानिधान हरिकी प्रेरणासे ही यह ग्रन्थ आप सज्जनोंकी सेवामें उपस्थित करना सम्भव हो सका है। इस पुण्यमयी भारतभूमिके कोने-कोनेमें, कुमारिका अन्तरीपसे लेकर हिमालयके पदप्रान्ततक और द्वारकापुरीसे लेकर सुदूर आसामप्रान्तके परशुराम कुण्डतक इस ग्रन्थ द्वारा विमल हरिगुण-गाथा प्रचारित होती रहेगी तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

पाठकोंको यह स्मरण दिलाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि श्रीमद्भागवतमें भगवानके वचनोंके अतिरिक्त स्वयं भगवान ही निहित हैं। अतः इस धर्म-ग्रन्थमें कहींपर किञ्चिन्मात्र भी क्षेपक कथाका अंश नहीं रखा गया है। मूलकथा ही सारांश रूपमें उपस्थित की गई है। धर्म-मर्यादाकी अक्षरशः रक्षा की गयी है।

अन्तमें मैं भगवानसे और हरिभक्तोंसे अपनी अज्ञात त्रुटियोंके लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ और यह उक्ति स्मरणार्थ उद्धृत करके अपना कथन समाप्त करता हूँ—

कलियुग केवल हरिगुण गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा॥

—अनुवादक

-ग्रन्थालय,
वाराणसी-5

श्री हरिः

सरल सुखसागरकी विषय-सूची

माहात्म्य

अध्याय पृष्ठसंख्या
१ नारद-भक्ति--संवाद ... ३
२ नारदजी द्वारा ज्ञान वैराग्यको जगानेकी चेष्टा करना ६
३ भक्तिका दुःखमोचन ... ८
४ गोकर्ण और धुन्धुकारीकी कथा ... १३
५ धुन्धुकारीकी प्रेतयोनिसे मुक्ति ... १८
६ सप्ताह-कथा सुननेकी विधि ... २३

प्रथम स्कन्ध

१ नैमिषीय उपाख्यान ... १
२ ऋषियोंके प्रश्नोंका उत्तर और भगवद्भक्ति वर्णन ... ३
३ अवतारकथा और भगवानका चरित्र वर्णन ... ५
४ वेदव्यासका भागवत आरम्भ ... ८
५ वेदव्यासके मनकी तृप्तिके लिए नारदका हरिगुण-संकीर्तन ९
६ भगवद्भजनका विशेष फल और वेदव्यासको विश्वास करानेके लिए नारद द्वारा अपने सौभाग्यका वर्णन ... ११
७ अश्वत्थामाको दण्ड ... १३
८ श्रीकृष्ण द्वारा अश्वत्थामाके अस्त्रसे परीक्षितकी रक्षा, कुन्तीकी स्तुति और राजा युधिष्ठिरका शोकवर्णन ... १७
९ युधिष्ठिरके प्रति भीष्मका सर्वधर्मवर्णन श्रीकृष्णकी स्तुति और मुक्तिकी कथा ... १९

अध्याय पृष्ठसंख्या

१० श्रीकृष्णकी द्वारकायात्रा और महिलाओंकी स्तुति २१
११ श्रीकृष्णका द्वारकापुरी-प्रवेश ... २२
१२ परीक्षितकी जन्मकथा ... २४
१३ विदुरके कहनेसे धृतराष्ट्रका महापथयात्राके लिए निकलना और पौत्रको राज्य देकर युधिष्ठिरका महाप्रस्थान करना २५
१४ राजा युधिष्ठिरका अशकुन देखकर भयग्रस्त होना और अर्जुनके मुँहसे श्रीकृष्णके तिरोधानका समाचार सुनना ... २८
१५ कलिका प्रवेश देख परीक्षितको राज्य देकर युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण ... २९
१६ कलिसे कष्ट पाकर धर्मका राजा परीक्षितके पास पहुँचना ३१
१७ परीक्षित द्वारा कलिको दण्ड ... ३४
१८ परीक्षितको ब्रह्मशाप और वैराग्यप्राप्ति ... ३६
१९ शरीरत्यागके लिए परीक्षितका गंगातटपर जाना और शुकदेवका आगमन ... ३८

द्वितीय स्कन्ध

१ श्रवण और संकीर्तनके द्वारा भगवानमें मनकी धारणा और महापुरुषकी कथा ... ४०
२ श्रीविष्णुभगवानमें चित्त धारण करनेकी युक्ति ... ४३
३ विष्णुभक्तिकी कथा ... ४७
४ हरिकथाविषयक परीक्षितका प्रश्न और ब्रह्मा-नारदसंवाद ४९
५ नारदसे ब्रह्मा द्वारा सृष्टि आदि हरिलीला और विराट् सृष्टिका वर्णन ... ५०
६ सृष्टिसम्बन्धी वर्णन ... ५४
७ भगवानकी लीलाका वर्णन ... ५६
८ राजा परीक्षितका पुराणोंके सम्बन्धमें प्रश्न ... ६२
९ शुकदेवजीके द्वारा भागवतकथन ... ६३
१० भागवतकी व्याख्या ... ६७

आम्नाय-ग्रन्थालय, सन्निधि, करौंदी वाराणसी-5

तृतीय स्कन्ध

अध्याय पृष्ठसंख्या

१ विदुर-उद्धव-संवाद ... ७०

२ उद्धव द्वारा भगवानका बाल-चरित वर्णन ... ७२

३ श्रीकृष्णका मथुरागमन और कंसवध ... ७४

४ स्वजनोंका विनाश सुनकर आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए विदुरका मैत्रेयके पास जाना ... ७६

५ मैत्रेय मुनि द्वारा भगवल्लीला और सृष्टिका वर्णन ७८

६ विराटमूर्तिकी सृष्टि ... ८०

७ मैत्रेय मुनिके वचनसे विदुरको आत्मग्लानि ... ८१

८ ब्रह्माका जन्म और उनका भगवानकी स्तुति करना ८२

९ लोकसृष्टिकी कामनासे ब्रह्मा द्वारा भगवानकी स्तुति करना ८४

१० दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन ८६

११ परमाणु, काल, युग और मन्वन्तरादिका वर्णन ८९

१२ ब्रह्माकी सृष्टिका वर्णन ... ९२

१३ भगवानका वराहरूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार करना ९६

१४ दितिके निवेदनसे सन्ध्या समय कश्यप द्वारा गर्भाधान ९८

१५ ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंका वैकुण्ठमें विष्णुके दो भृत्योंको शाप देना ... ९९

१६ मुनियोंके शापसे भगवानके दोनों भृत्योंका वैकुण्ठसे गिरना १०१

१७ भगवानके दोनों भृत्योंका आसुर जन्म पाना और हिरण्याक्षका प्रभाव ... १०२

१८ वराह-अवतारी भगवानके साथ हिरण्याक्षका युद्ध १०४

१९ वराहभगवान द्वारा हिरण्याक्षके वधकी कथा ... १०५

२० मनुवंशका वर्णन और सृष्टिकी कथा ... १०७

२१ कर्दम ऋषिके साथ मनुकी कन्याके विवाहका समय ११०

२२ कर्दमके साथ मनुकी कन्याका विवाह ... ११२

अध्याय … पृष्ठसंख्या
२३ कर्दम और देवहूतिका विहार … ११४
२४ देवहूतिके गर्भसे कपिलका जन्म और कर्दम मुनिका प्रवास ११७
२५ मातासे कपिलदेवजीका भक्तिलक्षण वर्णन … १२०
२६ तत्त्वज्ञानकी बातें … १२३
२७ मोक्षप्राप्तिकी रीतिका वर्णन … १२७
२८ अष्टाङ्गयोग … १२९
२९ भक्ति योग और वैराग्य … १३१
३० तामसी गति … १३२
३१ राजसी गति … १३४
३२ सात्त्विकी गति … १३७
३३ देवहूतिकी जीवन्मुक्ति … १३८

चतुर्थ स्कन्ध

१ मनुकन्याओंका पृथक् पृथक् वंश वर्णन … १४०
२ दक्षयज्ञके उपलक्ष्यमें शिव और दक्षका वैर … १४४
३ सतीजीकी अपने पिता दक्षके यज्ञमें जानेकी प्रार्थना और शिवजीका मना करना … १४६
४ शिवकी बात न मानकर भवानीका पितृयज्ञमें जाना और पिताके अपमानसे शरीर त्याग करना … १४८
५ सतीका देहत्याग सुनकर शंकरके रोषसे वीरभद्रका जन्म और दक्षका वध … १४९
६ ब्रह्मा द्वारा भगवान शंकरको सान्त्वना-प्रदान … १५१
७ दक्ष शिव आदिकी स्तुतिसे भगवान विष्णुका आविर्भाव और विष्णु द्वारा पुनः दक्षयज्ञका अनुष्ठान … १५४
८ ध्रुवकी तपस्या … १५६
९ भगवानका आराधनासे ध्रुवको वरलाभ और पितृराज्य-पालन १६०
१० ध्रुवके पराक्रमका वर्णन … १६३

अध्याय पृष्ठसंख्या

११ स्वायम्भुव मनुका आगमन और तत्त्वज्ञानके उपदेश देकर ध्रुवको युद्धसे निवृत्त करना ... १६५
१२ ध्रुवका यज्ञानुष्ठान और हरिधाम-यात्रा ... १६७
१३ ध्रुवके वंशमें पृथुका जन्म और वेणके पिता राजा अङ्गकी कथा १७०
१४ वेणका राज्याभिषेक और ब्राह्मणोंके शापसे प्राणनाश १७३
१५ राजा पृथुकी उत्पत्ति और राज्याभिषेक ... १७५
१६ बन्दीजनों द्वारा पृथुकी स्तुति ... १७७
१७ पृथ्वीको मारनेके लिए पृथुका उद्योग और पृथ्वी द्वारा पृथुकी स्तुति ... १७८
१८ पृथ्वीका दोहन ... १८०
१९ अश्वमेध यज्ञका घोड़ा चुरानेपर इन्द्रको मारनेके लिए पृथुका जाना और ब्रह्माजीका आकर रोकना ... १८३
२० भगवानसे पृथुकी भेंट ... १८६
२१ पृथुका प्रजागणको उपदेश ... १८८
२२ भगवानके आदेशसे महर्षि सनत्कुमारका राजा पृथुको ज्ञानोपदेश ... १९१
२३ भार्याके साथ महाराज पृथुका वैकुण्ठ-गमन ... १९४
२४ प्रचेतागणोंकी उत्पत्ति और भगवान रुद्रसे मिलन १९७
२५ प्रचेताओंके तपस्यारत होनेपर नारदका प्राचीनबर्हिके पास जाना और पुरंजनका उपाख्यान सुनकर विविध सांसारिक विषय बताना ... २००
२६ पुरंजनकी आखेटयात्राके रूपकवर्णनमें संसारकी कथा २०४
२७ संसारिक आसक्तिके कारण पुरंजनकी आत्मविस्मृति और कालकन्याका उपाख्यान ... २०७
२८ स्त्रीमें आसक्तिके कारण पुरंजनको स्त्रीका शरीर मिलना और ज्ञान होनेपर मुक्ति पाना ... २१०
२९ पुरंजनोपाख्यानकी व्याख्या ... २१४

अध्याय पृष्ठ संख्या
३० बर प्राप्त करके प्रचेताओंका राज्य करना ... २१६
३१ दक्षको राज्यभार देकर प्रचेतागणका वनमें जाकर मुक्ति प्राप्त करना ... २२२

पञ्चम स्कन्ध

१ प्रियव्रतका राज्य-भोग और ज्ञानमार्गमें निष्ठा ... २२५
२ आग्नीध्रके चरित्रका वर्णन ... २२९
३ नाभिके यज्ञसे सन्तुष्ट होकर भगवान द्वारा पुत्रत्व स्वीकार २३०
४ ऋषभदेवजीका राज्य-शासन ... २३१
५ ऋषभदेवका पुत्रोंको मोक्षधर्मका उपदेश और परमहंस-ज्ञानकी कथा ... २३३
६ वनाग्निमें जलकर ऋषभदेवका देहत्याग ... २३८
७ राज्य करते हुए भरतकी भगवदाराधना ... २४०
८ भरतको मृगशरीर मिलना ... २४१
९ जड़भरतका विप्रके रूपमें जन्म लेना ... २४३
१० जड़भरत और राजा रहूगणका संवाद ... २४६
११ राजा रहूगणको जड़भरतका ज्ञानोपदेश ... २४६
१२ जड़भरत द्वारा रहूगणका सन्देह दूर होना ... २५०
१३ रहूगणका वैराग्य दृढ़ करनेके लिये भरत द्वारा भवाटवीका वर्णन २५२
१४ भवाटवीकी व्याख्या ... २५४
१५ भरतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वृत्तान्त ... २५७
१६ थ्वीका वर्णन ... २५८
१७ गङ्गाजीकी कथा ... २६२
१८ उपर्युक्त वर्षोंके धर्म-कर्मका विवरण ... २६५
१६ किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्षके धर्म-कर्मका विवरण २६६
२० प्लक्षद्वीप आदि छः द्वीपों और लोकालोक पर्वतका विवरण २६८
२१ राशिसंचार और उसके द्वारा लोकयात्राका निरूपण २७४

अध्याय पृष्ठसंख्या
२२ सोम-शुक्र आदिके स्थान और उनकी गतिके अनुसार मनुष्योंके इष्ट और अनिष्टका वर्णन ... २७७
२३ ध्रुवस्थान और शिशुमाररूपसे भगवानकी उपस्थिति २७९
२४ राहु और अतल आदि अधोभुवनका वर्णन ... २८०
२५ अनन्तकी कथा ... २८१
२६ नरकोंका वर्णन ... २८१

षष्ठ स्कन्ध

१ अजामिलकी कथा ... २९०
२ विष्णुदूतोंका यमदूतोंको हरिनामका माहात्म्य सुनाना और अजामिलको विष्णुलोक ले जाना ... २९५
३ यम द्वारा वैष्णव धर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन और अपने दूतोंको सान्त्वनाप्रदान ... २९८
४ प्रजासृष्टिके निमित्त दक्ष द्वारा तपस्या और श्रीहरिकी आराधना ३००
५ नारदको दक्षका शाप ... ३०३
६ दक्षकी साठ कन्याओंका वंशवर्णन ... ३०७
७ विश्वरूपसे पुरोहित बननेके लिए देवगणकी प्रार्थना ३११
८ दानवोंपर देवराजकी विजय ... ३१४
९ विश्वरूपकी हत्या, वृत्रासुरकी उत्पत्ति और देवगण द्वारा भगवानकी स्तुति ... ३१६
१० इन्द्रके साथ वृत्रासुरका युद्ध ... ३१९
११ वृत्रासुरकी विचित्र कथा ... ३२१
१२ वृत्रासुरका वध ... ३२४
१३ ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका भागना और ब्रह्मा द्वारा उनकी रक्षा ३२६
१४ चित्रकेतुके शोककी कथा ... ३२९
१५ तत्त्वज्ञानके उपदेश द्वारा चित्रकेतुका शोक निवारण ३३२
१६ नारद द्वारा चित्रकेतुको महाविद्याका उपदेश ... ३३४

अध्याय पृष्ठसंख्या
१७ उमाके शापसे चित्रकेतुको असुरयोनि मिलना ... ३३७
१८ त्वष्टा आदित्य और देवगणके वंशका वर्णन ... ३४०
१९ हरितोषण व्रतकी कथा ... ३४६

सप्तम स्कन्ध

१ नारद-युधिष्ठिर संवाद और सनकादिके शापसे जयविजयका दैत्ययोनि पाना ... ३४९
२ साधुजनोंका दमन करनेके लिए दानवोंको हिरण्यकशिपुका उपदेश ... ३५२
३ हिरण्यकशिपुका उग्र तप देखकर ब्रह्माका आगमन और वरप्रदान ... ३५६
४ वर पाकर हिरण्यकशिपु द्वारा लोकपालोंपर अत्याचार ३५८
५ गुरुका उपदेश अमान्य करके प्रह्लाद द्वारा भगवानकी स्तुति और प्रह्लादके प्राण लेनेके लिए हिरण्यकशिपुका विफल उद्योग ३५९
६ प्रह्लादका दैत्यबालकोंको धर्मोपदेश ... ३६२
७ गर्भमें रहनेके समय नारदका उपदेश सुननेको कथा सुनाकर प्रह्लाद द्वारा दैत्यबालकोंका संशय निवारण ... ३६५
८ भगवान नृसिंहजीके हाथों हिरण्यकशिपुका वध ... ३६९
९ नृसिंहके कोपनिवारणार्थ प्रह्लादजी द्वारा स्तुति ... ३७३
१० भगवान नृसिंहका अन्तर्धान होना ... ३७४
११ मनुष्यधर्म वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका विवेचन ... ३७८
१२ आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन ... ३८१
१३ पतिधर्म और अवधूतधर्मका वर्णन ... ३८४
१४ गृहस्थधर्मका वर्णन ... ३८८
१५ मोक्षके लक्षणोंका वर्णन ... ३९१

अष्टम स्कन्ध

१ मन्वन्तरोंका वर्णन ... ३९६
२ गजेन्द्रकी कथा ... ४००

अध्याय पृष्ठसंख्या
३ गजेन्द्रमोक्षकी कथा ... ४०१
४ ग्राहकी मुक्ति ... ४०२
५ पाँचवें और छठें मनुका विवरण और विप्रशापसे श्रीभ्रष्ट देवताओंके साथ ब्रह्मा द्वारा श्रीहरिकी स्तुति ... ४०३
६ क्षीरसागरसे अमृत निकालनेका उद्योग ... ४०५
७ समुद्रमन्थनसे कालकूटकी उत्पत्ति ... ४०७
८ भगवान विष्णुका मोहिनीरूप धारण करना ... ४०९
९ दानवोंका अमृतसे वञ्चित होना ... ४१२
१० देवासुरसंग्राम ... ४१४
११ दैत्यगणोंका पुनर्जीवन ... ४१५
१२ मोहिनीरूप देखकर महेशका मोहित होना ... ४१७
१३ सप्तम आदि चतुर्दश मनुओंका वर्णन ... ४१९
१४ मनु आदिके कर्मोंका भिन्न-भिन्न विवरण ... ४२२
१५ राजा बलिका स्वर्गविजय ... ४२३
१६ देवमाता अदितिको पयोव्रतका उपदेश ... ४२५
१७ भगवानका अदितिके गर्भसे जन्मग्रहण ... ४२६
१८ वामन अवतारकी कथा ... ४२७
१९ वामनजीका बलिसे तीन पग भूमि माँगना ... ४२९
२० वामनजीके शरीरकी अद्भुत वृद्धि ... ४३१
२१ दैत्यराज बलिका बन्धन ... ४३३
२२ पातालमें भगवान द्वारा बलिका द्वारपाल होना स्वीकार ४३५
२३ बलिका सुतललोकको जाना ... ४३७
२४ मत्स्य-अवतारका वर्णन ... ४३८

नवम स्कन्ध

१ मनुवंशकी कथा ... ४४३
२ करूष आदि मनुके पुत्रोंका वंश-वर्णन ... ४४६

अध्याय पृष्ठसंख्या

३ मनुके पुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन ... ४४६
४ अम्बरीषकी कथा ... ४५३
५ अम्बरीष द्वारा दुर्वासाकी रक्षा ... ४५७
६ सौभरिकी कथा ... ४५८
७ राजा हरिश्चन्द्रकी कथा ... ४६३
८ राजा सगरके वंशका वर्णन ... ४६५
९ राजा भगीरथका तप करके पृथ्वीपर गङ्गाको लाना और सौदास राजाकी कथा ... ४६८
१० श्रीरामका जन्म और रावणवध करके अयोध्यामें आगमन ४७२
११ श्रीरामचन्द्रका अश्वमेध-यज्ञानुष्ठान ... ४७५
१२ कुश और इक्ष्वाकुवंशका विवरण ... ४७७
१३ निमिवंशका वर्णन ... ४७८
१४ सोमवंशका विवरण ... ४७९
१५ परशुराम द्वारा कार्तवीर्यवध ... ४८४
१६ परशुराम द्वारा बार-बार क्षत्रियोंका वध ... ४८७
१७ धन्वन्तरिकी कथा ... ४९१
१८ ययातिके वंशका वर्णन ... ४९२
१९ राजा ययातिका वैराग्योदय ... ४९५
२० शकुन्तलाकी कथा ... ४९८
२१ राजा रन्तिदेवकी कथा ... ५०१
२२ जरासन्ध युधिष्ठिर और दुर्योधन आदिका विवरण ५०५
२३ यदुवंशका विवरण ... ५०६
२४ विदर्भके पुत्रोंके वंशका वर्णन ... ५१२

दशम स्कन्ध पूर्वार्ध

१ कंस द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध ... ५१६
२ देवकीके गर्भसे भगवान श्रीहरिका जन्म ... ५२४

अध्याय पृष्ठसंख्या
३ श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म ... ५२५
४ असुरोंकी कुमन्त्रणा ... ५२९
५ नन्द और वसुदेवकी मथुरामें भेंट ... ५३२
६ पूतना-वध ... ५३४
७ शकट-भंजन और तृणावर्तवध ... ५३७
८ श्रीकृष्णकी बाललीला ... ५४०
९ श्रीकृष्णका ऊखलमें बाँधा जाना ... ५४४
१० यमलार्जुन वृक्षोंका भञ्जन ... ५४७
११ वत्सासुर और बकासुरका वध ... ५४९
१२ अघासुरवध ... ५५३
१३ ब्रह्माका मोह और उसका नाश ... ५५५
१४ ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति ... ५५९
१५ धेनुकासुरवध ... ५६१
१६ कालीयदमन ... ५६३
१७ दावानलसे व्रजवासियोंका बचाना ... ५६६
१८ प्रलम्बासुर वध ... ५६८
१९ पशुओं और गोपोंकी दावानलसे रक्षा ... ५७०
२० वर्षा और शरद्ऋतुमें भगवानकी केलि ... ५७१
२१ गोपीगीत ... ५७२
२२ चीरहरणलीला ... ५७३
२३ गोपोंका ब्राह्मणोंके यज्ञमें जाकर खानेके लिए अन्न माँगना ५७६
२४ इन्द्रयज्ञ-भंग ... ५७९
२५ गोवर्धन-धारण ... ५८२
२६ श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका वर्णन ... ५८५
२७ श्रीकृष्णका अभिषेक महोत्सव ... ५८६
२८ वरुणलोकसे नन्दको छुड़ा लाना ... ५८८
२९ रासविहारके आरम्भमें श्रीकृष्णका अन्तर्धान होना ५८९

अध्याय पृष्ठसंख्या

३० विरहके सन्तापसे गोपियोंका श्रीकृष्णकी खोजमें इधर-उधर घूमना ... ५९२
३१ श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा ... ५९३
३२ श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको समझाना ... ५९४
३३ श्रीकृष्णकी रासलीला ... ५९७
३४ सुदर्शनमोचन और शंखचूड़-वध ... ५९८
३५ श्रीकृष्णविरहमें गोपियोंका सन्ताप ... ६०१
३६ अरिष्टासुरका वध ... ६०२
३७ केशी और व्योमासुरका वध ... ६०५
३८ अक्रूरकी व्रजयात्रा ... ६०७
३९ अक्रूरके साथ श्रीकृष्णकी मथुरायात्रा ... ६०९
४० अक्रूर द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति ... ६१३
४१ श्रीकृष्णका मथुरापुरीमें प्रवेश ... ६१३
४२ कुब्जाका सीधा होना और बुरे स्वप्नसे कंसकी घबड़ाहट ६१७
४३ कुवलयापीडवध और मल्लभूमिमें भगवानका प्रवेश ६२०
४४ कंसवध ... ६२२
४५ कृष्ण-बलदेवका विद्याध्ययन ... ६२४

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध

४६ उद्धवकी व्रजयात्रा ... ६२९
४७ उद्धव द्वारा गोपियोंको तत्त्वज्ञानका उपदेश ... ६३२
४८ कुब्जाके साथ श्रीकृष्णका विहार और अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना ... ६३४
४९ अक्रूरका हस्तिनापुर जाना ... ६३७
५० द्वारकामें दुर्गनिर्माण ... ६३९
५१ कालयवनवध ... ६४३
५२ रुक्मिणीका श्रीकृष्णके पास दूत भेजना ... ६४७

अध्याय पृष्ठसंख्या

५३ रुक्मिणीहरण ... ६५१
५४ श्रीकृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह ... ६५५
५५ प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरवध ... ६५७
५६ स्यमन्तकमणि-हरण ... ६६१
५७ स्यमन्तकोपाख्यान ... ६६५
५८ कालिन्दी-मित्रविन्दा आदिसे श्रीकृष्णका विवाह ६६८
५९ भौमासुरवध और कन्याओंका हरण ... ६७२
६० श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका वार्तालाप ... ६७५
६१ रुक्मीका वध ... ६७७
६२ बाणासुरके घरमें अनिरुद्धका बन्धन ... ६७९
६३ श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध ... ६८२
६४ श्रीकृष्ण द्वारा राजा नृगका शापमोचन ... ६८६
६५ बलरामका रासविलास और यमुनाका आकर्षण ६८९
६६ मिथ्या वासुदेव और काशिराजका वध ... ६९१
६७ बलराम द्वारा द्विविद वानरका वध ... ६९५
६८ बलदेव-विजय ... ६९६
६९ मायाकी विभूतिका वर्णन ... ६९९
७० श्रीकृष्णके पास जरासन्धसे पीड़ित राजाओंके दूतका आना ७०१
७१ श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थको प्रस्थान ... ७०४
७२ जरासन्धका वध ... ७०५
७३ राजाओंका कैदसे छूटना ... ७०९
७४ शिशुपालवध ... ७१०
७५ दुर्योधनका मानभङ्ग ... ७१३
७६ यादवोंके साथ राजा शाल्वका युद्ध ... ७१५
७७ श्रीकृष्णके द्वारा शाल्वका वध ... ७१७
७८ बलदेवके हाथसे तीर्थयात्रामें सूतका वध ... ७१९
७९ बलदेवकी तीर्थयात्रा ... ७२२

अध्याय पृष्ठसंख्या
८० सुदामा-चरित्र ... ७२३
८१ सुदामाको ऐश्वर्यप्राप्ति ... ७२७
८२ श्रीकृष्णकी कुरुक्षेत्रयात्रा ... ७२९
८३ श्रीकृष्णकी रानियोंका द्रौपदीसे अपने विवाहका वृत्तान्त कहना ... ७३२
८४ वसुदेवका यज्ञ-महोत्सव ... ७३४
८५ श्रीकृष्ण और बलदेवकी कृपासे वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीको मरे हुए छः पुत्र मिलनेकी कथा ... ७३६
८६ अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण और बलरामकी मिथिलायात्रा ७३९
८७ नारद-नारायण-संवाद ... ७४१
८८ शम्भुमोचन ... ७४३
८९ त्रिदेवपरीक्षा और ब्राह्मणपुत्रोंको पुनर्जीवनदान ७४७
९० कृष्णलीलाका संक्षिप्त वर्णन ... ७५२

एकादश स्कन्ध

१ ब्राह्मणशापकी कथा ... ७५५
२ वसुदेव और नारदका संवाद ... ७५७
३ राजाके अन्य प्रश्नोंका मुनियों द्वारा उत्तर ... ७६१
४ नारायणके अवतारोंका वर्णन ... ७६६
५ भक्तिहीन लोगोंकी गति और पूजाविधिका वर्णन ७६९
६ उद्धव और भगवानकी वार्ता आरम्भ ... ७७३
७ यदु और अवधूतका संवाद ... ७७५
८ पिङ्गला वेश्याका उपाख्यान ... ७७६
९ अवधूत-संवादकी समाप्ति ... ७८२
१० उद्धवका आत्मतत्त्वज्ञान ... ७८५
११ बद्ध और मुक्तके लक्षण ... ७८७
१२ साधुसंगकी महिमा ... ७८८

अध्याय पृष्ठसंख्या

१३ हंसरूपी भगवानका इतिहास ... ७८९

१४ ध्यानयोगका वर्णन ... ७९१

१५ अणिमादि अष्टसिद्धियोंका वर्णन ... ७९४

१६ भगवानकी महाविभूतिका वर्णन ... ७९७

१७ वर्णाश्रमधर्मका वर्णन ... ७९९

१८ सन्यासधर्म-निरूपण ... ८०२

१९ श्रेयभेद-वर्णन ... ८०४

२० भक्तियोग ज्ञानयोग और क्रियायोग ... ८०७

२१ सकाम व्यक्तियोंके लिए द्रव्य आदिके गुणदोषोंका वर्णन ८०८

२२ तत्त्वके सम्बन्धमें विभिन्न मतोंका विरोधभञ्जन ८१०

२३ तिरस्कार सहनेका उपाय ... ८१३

२४ सांख्ययोग ... ८१७

२५ सत्त्वादि गुणोंका वृत्तिनिरूपण ... ८१९

२६ ऐलगीत-वर्णन ... ८२२

२७ ~~कर्मयोग~~-वर्णन क्रियायोग ... ८२४

२८ परमार्थ-निर्णय ... ८२५

२९ उद्धवका बदरिकाश्रम-गमन ... ८२७

३० यदुवंशका विनाश ... ८३०

३१ श्रीकृष्णभगवानका परमधाम-गमन ... ८३४

द्वादश स्कन्ध

१ भविष्यके राजवंशका वर्णन ... ८३७

२ कलियुगकी कथा ... ८४०

३ युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेके उपायोंका वर्णन ८४२

४ परमार्थनिर्णय ... ८४५

५ संक्षेपमें परब्रह्मका उपदेश ... ८४८

६ राजा परीक्षितका देहत्याग ... ८४९

अध्याय पृष्ठसंख्या

७ पुराण-लक्षण वर्णन ... ८५५
८ मार्कण्डेय मुनि द्वारा नारायणस्तुति ... ८५७
९ मार्कण्डेयको भगवानकी माया दिखाई देना ... ८६०
१० शिवका आगमन और मार्कण्डेयको वरदान ... ८६३
११ अङ्ग-उपाङ्गयुक्त तत्त्वमय महापुरुषका वर्णन ... ८६६
१२ बारह स्कन्धोंकी कथाओंका संक्षिप्त विवरण ... ८७२
१३ पुराणोंकी श्लोकसंख्या ... ८७६

आम्नाय—ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

मंगलाचरण

मेरे उरदेशमें समाया घोर अन्धकार,
मायाकी मरीचिका भी व्याप गयी तनमें ।
मोह, मद, मत्सर, सचेत प्रहरीसे यहाँ
जाग रहे देखो, इस विजन भवनमें ॥

आपके मनोनुकूल योगोंका सँयोग मंजु,
सहज दिखायी पड़ता है मेरे मनमें ।
भाता अवतीर्ण होना बंदीगृहमें ही नाथ !
लेते अवतार क्यों न मानस-सदनमें ॥ १ ॥

बोलते नहीं हो, मौन कैसे हो रहे हो नाथ !
कबसे पुकारता हमारा कण्ठ-कीर है ।
जाने कबसे हैं प्राण व्याकुल तुम्हारे लिये
अब तो हमारा धीर भी हुआ अधीर है ॥

चरण-सरोजके पखारनेको एक बार
झर झर बहता सदैव नैन-नीर है।
कैसे समझाऊँ तुम्हें, कैसे समझोगे तुम,
कैसी पीर मनके मरोरकी गभीर है॥ २॥

आओ ब्रजराज! आज स्वागत तुम्हारा करें
अश्रु-मोतियोंकी मृदुमाला पहिनायें हम।
जैसे जैसे सहते सदा ही रहे दुख द्वन्द
तिनकी कहानी नेक तुमको सुनायें हम॥
मायाके प्रपंचमें फँसाया हमको जो यहाँ,
खोल उर-द्वार निज हृदय दिखायें हम।
देखें हम भी तो तुम कैसे हो निठुर नाथ!
क्यों न मन प्राण दे, तुम्हारे बन जायें हम॥ ३॥

पातक अपारका हमारे पारावार नहीं
तो भी क्या तुम्हारे होके हम दुख पायेंगे।
क्या न तुम्हें आयेगी कहो तो ब्रजराज! लाज
कातर हो नैन जब नीर झर लायेंगे॥
तुम अपनाओ हमें, चाहे भूल जाओ देव!
हम तो तुम्हारे सब भाँति कहलायेंगे।
क्यों न नाथ! लेते फिर तार या उबार हमें,
हम भी तुम्हारा गुणगान सदा गायेंगे॥ ४॥

स्वागत तुम्हारा हो, हमारे मनोमन्दिरमें
कोमल कलेजेमें निवास छबिधाम हो।
अङ्ग अङ्गमें हो सुघराई छटा छाई हुई,
ललित लुनाई लोल लोचनाभिराम हो॥
प्राणोंमें सदा ही पहुनाई हो तुम्हारी मंजु,
साँसोंमें समायी नाथ! सुरभि ललाम हो।
रोम-रोममें हों पगे भक्तिभावनाके भाव,
रसना रसीली पै तुम्हारा शुभ नाम हो॥ ५॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथम अध्याय

नारद-भक्ति-संवाद

एक दिन शौनक मुनिने नैमिषारण्यमें व्यासासनपर सुशोभित महामति सूतजीसे प्रश्न किया—हे सूत ! भक्ति ज्ञान और वैराग्यसे जिस विवेककी प्राप्ति होती है, उसे बढ़ानेका उपाय क्या है ? विष्णुभक्त मायामोहसे मुक्ति कैसे पा सकते हैं ? घोर कलिकालमें रजोगुण और तमोगुणकी अत्यधिक वृद्धि होनेसे जनता कष्टमें पड़ी रहती है। उनको पवित्र करनेका साधन क्या है ? मुझे वह उपाय बताइये कि जिससे सदाके लिए कृष्ण भगवानकी प्राप्ति हो सके। यह सुनकर सूतजीने कहा—हे शौनक ! कलियुगके लिए श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत शास्त्र कहा है। मनको शुद्ध करनेवाला इससे बढ़कर अन्य पुराण नहीं है। जन्म-जन्मान्तरका पुण्य उदय होनेपर यह शास्त्र सुननेका सौभाग्य प्राप्त होता है। राजा परीक्षितको शुकदेवजीने यह शास्त्र सुनाया था। यह कथा देवताओंको भी दुर्लभ है। भागवत श्रवणसे ही राजा परीक्षित मुक्त हुए थे। आश्चर्यमें पड़कर ब्रह्माजीने सत्यलोकमें तुलाके एक पलड़ेपर सम्पूर्ण तप, दान, व्रत आदि रखे और दूसरे पलड़ेपर श्रीमद्भागवत रखा। तौलनेपर श्रीमद्भागवतका पलड़ा ही भारी निकला। इसका महत्त्व और गौरव देखकर ऋषियोंको आश्चर्य हुआ। उनकी समझमें यह बात निश्चितरूपसे आ गयी कि यह भागवतशास्त्र भूमण्डलमें साक्षात् भगवानका रूप है। इसके पाठ और श्रवणसे वैकुण्ठलोक मिलता है। इसका सप्ताह पारायण करने या कथा सुननेसे मुक्ति प्राप्त

होती है । सनकादिक ऋषियोंने नारदको सप्ताह कथा सर्वप्रथम सुनायी थी । शौनकजीने पूछा—हे सूत ! नारदजी तो कभी एक स्थानपर स्थिर चित्त नहीं रहते तो उन्होंने विधिपूर्वक कथा कैसे सुनी ? यह इतिहास मुझे बताइये । सूतजी बोले—इस विषयका भक्तिवर्धक इतिहास मैं सुनाता हूँ । बद्रीनारायण क्षेत्रमें एक समय नारदजीकी सनकादिक महर्षियोंसे भेंट हुई । उस समय नारदजी चिन्तित और उदास थे । महर्षियोंने पूछा—हे नारद ! तुम उदास क्यों हो ? नारदजीने उत्तर दिया—मैं समझता था कि कर्मभूमि होनेके कारण मनुष्यलोक उत्तमलोक है । इस विचारसे मैं यहाँ आया । काशी-प्रयाग आदि सब तीर्थोंमें भ्रमण कर चुका । किन्तु मनको संतोष देनेवाला परम कल्याणकारी धर्म मुझे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ा । मैंने देखा कि सर्वत्र कलियुगके प्रभावसे पाप फैला हुआ है । सत्य, तप, शौच, दया, दान आदि धर्म लुप्तप्राय है । साधु सन्त पाखण्डी हो गये हैं । ब्रह्मचर्य आदि आश्रम दूषित हो रहे हैं । तीर्थ मन्दिर आदिमें दुराचार फैल रहे हैं । सर्वत्र दुर्भिक्ष पड़ रहा है । स्त्रियाँ प्रायः कुलटा हो रही हैं । यह सब दृश्य देखता हुआ जब एक दिन मैं श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाभूमि यमुना तटपर पहुँचा तो वहाँ एक युवती स्त्री उदास भावसे बिलखती हुई दिखाई पड़ी । उसके पास ही दो वृद्ध पुरुष अचेत पड़े किसी तरह कराह रहे थे । उन्हें वह स्त्री बार-बार जगाती हुई रो रही थी । उसको घेरकर बहुतसी स्त्रियाँ उसे समझा रही थीं । मैं उसके समीप जा पहुँचा । मुझे देखते ही वह उठ खड़ी हुई और कातर स्वरसे

बोली—आप कोई परोपकारी सज्जन प्रतीत हो रहे हैं। आप मेरा दुःख दूर कर सकेंगे, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है। परिचय पूछनेपर उसने कहा—मेरा नाम भक्ति है। ये दोनों मेरे ज्ञान वैराग्यनामक पुत्र हैं। ये स्त्रियाँ गंगा आदि नदियाँ हैं। द्रविड़ देशमें मेरा जन्म हुआ। कर्णाटक देशमें मैं बड़ी हुई। महाराष्ट्रमें क्षीण हुई। गुर्जरमें जाकर अत्यन्त जीर्ण हो गयी। वहाँ दुष्टोंने मुझे कष्ट दिया। यहाँ तक कि मेरा अंग भंग कर दिया गया। तब मैं अपने पुत्रोंको साथ लिये वृन्दावन चली आयी। इस भूमिमें आते ही मैं युवती बन गयी। किन्तु मेरे दोनों पुत्र वृद्ध और अचेत हो गये हैं। यह कैसी बात है कि माता तो युवती हो जाय और पुत्र वृद्धावस्थाको प्राप्त हों? मैं इस दुःखसे व्याकुल हूँ। इस अवस्थाका कारण समझमें नहीं आता। आप कृपापूर्वक बताइये। क्षणभर विचार करके नारदजीने उससे कहा—इन दिनों घोर कलियुगका प्रभाव व्याप्त है। असुरोंकी संख्या बढ़ गयी है। सभी प्राणी विषयमें लिप्त हैं। तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रोंका इसी कारण कहीं आदर नहीं है। यह वृन्दावन-धाम धन्य है। यहाँ आते ही तुमको युवावस्था प्राप्त हुई। यहाँकी भूमिमें भक्ति नाचती फिरती है। किन्तु ज्ञान वैराग्यके ग्राहक तो यहाँ हैं ही नहीं। यही कारण है कि तुम्हारे दोनों पुत्र वृद्ध हो गये हैं। यह सुनकर भक्तिने नारदजीसे पूछा—हे मुनिवर! राजा परीक्षितने तो कलियुगको पकड़ लिया था। उसको उन्होंने नष्ट क्यों नहीं कर दिया? करुणानिधान भगवान भी चुपचाप कलियुगका उपद्रव क्यों देख रहे हैं? नारदजीने

उत्तर दिया—हे भद्रे ! मुकुन्द भगवान जब पृथ्वी छोड़कर अपने धामको चले गये, तभीसे कलियुगने पृथ्वीपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। दिग्विजयके समय राजा परीक्षितने उसे पकड़ लिया था। किन्तु वह उनकी शरणमें दीनभावसे आ गया। राजाने विचार किया कि जो फल अन्य युगोंमें तप, जप, योग, संयम आदिसे भी नहीं मिलता, वह फल कलियुगमें केवल हरिकीर्तनसे मिल जाता है। इसमें अनेक गुण हैं। अतः इसको छोड़ देना ही उचित है। इस विचारसे राजाने कलियुगको मुक्त कर दिया। इस समय जो घटनाएँ हो रही हैं, वे सभी इस युगधर्मके ही अन्तर्गत हैं। किसीको दोष देना निरर्थक है। पुरुषोत्तम श्रीहरि भी इसी कारण सब देखते हुए भी चुपचाप सह रहे हैं।

द्वितीय अध्याय

नारदजी द्वारा ज्ञान वैराग्यको जगानेकी चेष्टा करना

नारदजीने कहा—हे बाले ! व्यर्थ ही खेद मत करो। श्रीकृष्णके चरण कमलोंका स्मरण करो। तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायँगे। इस कलियुगमें केवल भक्तिसे ही मुक्ति मिलती है। कलियुगके समान कोई भी युग नहीं है। जो लोग इस युगमें तुम्हारा आदर करेंगे, वे पापी होनेपर भी सरलतासे कृष्णलोकको चले जायँगे। तुम जिसके हृदयमें बसोगी, उसे यमराजका कुछ भी भय न रहेगा। भक्त पुरुषके समीप प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर आदि नहीं जा सकते। सूतजीने कहा—नारदके मुखसे अपना

माहात्म्य सुनकर भक्तिके सब अंग पुष्ट हो गये। उसने प्रसन्न होकर नारदसे कहा—मेरा मोह तो दूर हो गया। अब मेरे पुत्रोंको सचेत कीजिये। सूतजीने कहा—हे शौनक! कृपालु नारदजी भक्तिके वचन सुनकर अपने हाथों ज्ञान-वैराग्यको हिलाकर जगाने लगे। तब भी जब वे नहीं जागे, तब उनके कानमें मुख लगाकर कहने लगे—हे ज्ञान! शीघ्र जागो, हे वैराग्य शीघ्र उठो। फिर भी वे नहीं जागे तो नारदजीने वेद पाठ, वेदान्त पाठ और गीता पाठ करते हुए उनको बारबार जगाने लगे। इतनी चेष्टाके बाद उनको कुछ चेतना आयी। किन्तु उनके नेत्र नहीं खुले। जम्हाई लेकर दोनों फिर गिर पड़े। तब नारदजी अत्यन्त चिन्तित हो गये और गोविन्दका स्मरण करने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि हे मुनिवर! तुम खेद मत करो। तुम्हारा उद्योग सफल होगा। किन्तु इसकी सफलताके लिए तुम्हें सत्कर्म करना पड़ेगा। संसारके साधुजन तुमको सत्कर्म बतायेंगे। सत्कर्मके साथ ही इन दोनोंको चैतन्य हो जायगा। इनका बुढ़ापा भी दूर हो जायगा। नारदजीके अतिरिक्त उपस्थित अन्य लोगोंने भी वह आकाशवाणी सुनी। नारदजी यह बात नहीं समझ सके कि वह कौन सा सत्कर्म है, जिससे ये दोनों होशमें आ जाएँगे और इनका बुढ़ापा भी दूर हो जायगा। सत्कर्म बतानेवाले साधुजन मुझे कहाँ मिलेंगे? सूतजीने कहा—इस प्रकार चिन्तित होकर नारदजी सत्कर्म बतानेवाले साधुकी खोजमें निकल पड़े और अनेकानेक तीर्थोंमें वे घूमने लगे। किन्तु कोई भी कुछ न बता सका। सभी ऋषियोंने अपनी असमर्थता

प्रकट की। उन लोगोंने कहा कि यह तो असम्भव कार्य है। तब नारदजी बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ उन्होंने परम तेजस्वी सनकादिक मुनीश्वरोंको देखा। उन मुनियोंसे नारदजीने कहा—मेरा अहोभाग्य है कि आप लोगोंके दर्शन मिले। मेरे ऊपर आप लोग कृपा कीजिये। आकाशवाणीसे जो आज्ञा हुई है, उसका मर्म मुझे बताइये। वह सत्कर्म बताइये, जिसके लिए आज्ञा हुई है। साथ ही उस सत्कर्मकी विधि भी बताइये। मुनियोंने सान्त्वना देते हुए कहा—हे देवर्षि! आप चिन्ता छोड़िये। हम वह सत्कर्म बता रहे हैं कि जिसके लिए आपको आज्ञा मिली है। तपोयज्ञ, योगयज्ञ आदि स्वर्ग आदिका फल देते हैं। ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म कहते हैं। श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत कथारूप जो ज्ञानयज्ञ बताया है, उसको करनेसे ही ज्ञान-वैराग्य पुष्ट होकर कष्टमुक्त हो जायँगे। भक्ति भी सुखी हो जायगी। श्रीमद्भागवत पाठके शब्दसे कलियुगके सब दोष दूर हो जायँगे। तब भक्ति प्रेमरससे परिपूर्ण होकर घर-घर प्रति मनुष्यके हृदयमें क्रीड़ा करेगी। हे नारद! वेद और उपनिषदोंके सारांशसे यह भागवतकी कथा बनी है। इसका फल अत्यन्त महान् है।

तृतीय अध्याय

भक्तिका दुःखमोचन

नारदजीने कहा—हे मुनियो! मैं विधिपूर्वक ज्ञानयज्ञका अनुष्ठान करना चाहता हूँ। इस भागवत शास्त्रकी महिमा आप मुझे बताइये और यह भी बताइये कि कथा श्रवणके लिए

कौन स्थान उपयुक्त होगा। कथा सुननेकी विधिका भी वर्णन कीजिये। सनकादिकोंने कहा—हे नारद! हरिद्वारके समीप गङ्गाजीके तटपर आनन्दवन नामक पवित्र स्थान है। ऋषिगण, देवता लोग और सिद्धगण वहाँ जाते आते रहते हैं। वृक्षों और ललित लताओं आदिसे वह परमशोभा सम्पन्न है। वहींपर जाकर तुम यह ज्ञानयज्ञ सम्पन्न करो। वहाँ जिस समय रसमयी हरिकथा होने लगेगी, उस समय भक्ति भी ज्ञान-वैराग्यको साथ लिये उपस्थित हो जायगी। कथाके शब्दोंके श्रवणमात्रसे भक्ति और ज्ञान-वैराग्य तीनों तरुणता प्राप्त करेंगे। सूतजीने कहा—तदनन्तर सनकादि चारों कुमार नारदजीको साथ लिये उस गंगा तटपर गये। तीनों लोकोंमें यह समाचार फैल गया। श्रीमद्भागवतकी अमृतमयी कथा सुननेके लिए द्रुतगतिसे लोग उस स्थानको चले। सर्वप्रथम वैष्णवोंका दल पहुँचा। फिर वशिष्ठ च्यवन गौतम मेधातिथि देवल देवरात परशुराम विश्वामित्र शाकल्य मार्कण्डेय दत्तात्रेय दुर्वासा वेदव्यास आदि मुनि लोग भी वहाँ पहुँचे। वेद-वेदान्त मंत्र-तंत्र गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, सब क्षेत्र, सब दिशाएँ, दण्डक आदि वन, पर्वत, देवता, गन्धर्व और किन्नर आदि शरीर धारण करके वहाँ पहुँचे। नारदजीने हरिकथा श्रवणके निमित्त दीक्षा ली। सनकादिकोंको उन्होंने उच्च आसन दिया। वैष्णवों, सन्यासियों और ब्रह्मचारियों आदिको अग्र पंक्तिमें बैठाला। सबके आगे नारदजी विराजे। ऋषिगण एक तरफ, देवता लोग एक तरफ, उपनिषद आदि धर्मशास्त्र

एक तरफ तथा जितनी स्त्रियाँ थीं वे सब एक तरफ कथा सुननेके लिए बैठीं। सबके मुँहसे 'जय-जय' 'नमोनमः' के शब्द होने लगे। सभी फल-फूल अक्षत आदि बरसाने लगे। शंख, नगाड़े आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। सूतजीने कहा—हे शौनक! इस प्रकार पूजोत्सव सुसम्पन्न हो गया। सब लोग एकाग्रचित्तसे अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। तब सनकादिक ऋषियोंने श्रीमद्भागवतका माहात्म्य कहना आरम्भ किया। वे लोग बोले—हे नारद! सर्वप्रथम तुम श्रीमद्भागवत शास्त्र पढ़ने और सुननेका माहात्म्य सुनो। श्रीमद्भागवतकी कथा सदा सुनते रहना सबका कर्तव्य है। इस कथाके श्रवणमात्रसे हरि भगवान चित्तमें विराजते हैं। भागवत ग्रंथमें १८ हजार श्लोक हैं। कुल बारह स्कन्ध हैं। जबतक कल्याणकारिणी हरिकथा कानमें नहीं पहुँचती तभीतक पुरुष संसार चक्रमें घूमते रहनेको बाध्य रहता है। यह शास्त्र मुक्तिदाता है। जिस गृहमें नित्य यह कथा होती है, वह घर तीर्थतुल्य रहता है। वाजपेय-अश्वमेध आदि यज्ञोंसे इसकी तुलना नहीं की जा सकती। परमगतिकी इच्छा रखनेवालोंको प्रति दिन कुछ न कुछ भागवतके श्लोक पढ़ने-सुनने चाहिये। धन खर्च करके किसी योग्य विद्वान पण्डितके मुखसे भागवतकी कथा सुननेसे करोड़ों जन्मके पातक नष्ट हो जाते हैं। मरणकालमें जो व्यक्ति भागवत शास्त्र सुनता है, उसपर भगवान गोविन्द प्रसन्न होते और वह भगवानकी कृपासे वैकुण्ठलोक गमन करता है। भागवतकी पुस्तकको स्वर्णके सिंहासन पर रखकर किसी वैष्णव विद्वानको देनेसे सायुज्य

मुक्ति मिलती है। इसको सुननेके लिए कोई विशेष दिन नियत नहीं है। सत्यवादी होना आवश्यक है। ब्रह्मचर्यका भी पालन करना चाहिये। कलियुगमें लोग अधिक दिन संयमसे नहीं रह सकते, यह बात शुकदेवजी जानते थे। अतएव सप्ताह पारायणको ही उन्होंने सुविधाजनक मान लिया। इस कलियुगमें अनेकानेक विघ्न हैं। मनको संयत और एकाग्र रखना कठिन है। इसके अतिरिक्त पुरुषोंकी आयु भी इस युगमें कम होती है। जीवनका कुछ भी भरोसा नहीं है। इस कारण सप्ताह-कथा सुनना ही उचित है। तप योग समाधि आदिसे बहुत कष्ट सहन करके भी जो फल नहीं मिलता, वह सम्पूर्ण फल सप्ताह पारायण सुननेसे अवश्य प्राप्त होता है। शौनकजीने कहा—हे सूत! आपने हमें यह आश्चर्यप्रद और अद्भुत कथा सुनायी। सनकादिकोंके कथनसे तो यह विदित हो रहा है कि भागवत पुराण मुक्तिदाता है। ज्ञान आदि जितने भी धर्मसाधन हैं, सभी इसके सम्मुख फीके पड़ जाते हैं। भागवतको ऐसा माहात्म्य किस प्रकार हुआ, यह मुझे बताइये। सूतजी बोले—हे शौनक! जब भगवान श्रीकृष्ण पृथ्वीतल छोड़कर अपने परमधामको जाने लगे तब उनके मुखसे एकादश स्कन्ध वर्णित ज्ञानकथा सुनकर भगवद्भक्त उद्धवने कहा—हे गोविन्द! घोर कलियुग आ गया है। अब दुष्टोंका अभ्युदय होगा। सर्वत्र दुराचार फैल जायगा। तब यह पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी? अतएव हे भक्तवत्सल! आप यहाँसे मत जाइये। आपके बिना भक्तजन यहाँ कैसे रह सकेंगे? आपके निर्गुण रूपकी उपासना कठिन

ही नहीं असम्भव भी है। उद्धवके वचन सुनकर श्रीहरि सोचमें पड़ गये। वे इस बातपर विचार करने लगे कि मुझे यहाँ क्या छोड़ जाना चाहिये। सोच-समझकर भगवानने अपना सब तेज इस भागवतमें ही स्थापित कर दिया। यह भागवत शास्त्र साक्षात् हरिकी शब्दमयी मूर्ति है। काम क्रोध आदि शत्रुओंको जीतनेका यही सर्वोत्तम साधन है। दुःख दरिद्रता दुर्भाग्य और पातक दूर करनेका यह सरल उपाय है। यही मानवमात्रके लिए परम धर्म है। सप्ताहकी कथा सर्वोत्तम धर्म है। हे शौनक! सनकादिक ऋषिगण इस प्रकार साधु-सज्जनोंकी मण्डलीमें भागवतका माहात्म्य कह रहे थे कि उसी समय एक अत्यन्त आश्चर्यपूर्ण दृश्य उपस्थित दिखाई पड़ा। मैं उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। कथाके समय अकस्मात् वहाँ भक्ति प्रकट हो गयी। उसके तरुण और हृष्टपुष्ट दोनों पुत्र भी उसके साथ थे। सभामें उपस्थित सब लोग आश्चर्यमें पड़ गये। वे लोग परस्पर तर्क करने लगे—अहो! इसका यहाँ कैसे आगमन हो गया? सनकादिकोंने उनको समझाकर कहा—आप लोग स्थिर रहें। आश्चर्यकी कोई भी बात नहीं है। भक्ति इसी कथाके फलसे यहाँ प्रकट हुई है। तदनन्तर भक्तिने नम्रतासे सनकादिकोंसे कहा—मैं कलियुगमें नष्ट हो गयी थी। तो भी आपने इस कथाके अमृतरससे मुझे परिपुष्ट कर दिया है। अब आप मेरे लिए निवासस्थान नियत कर दीजिये। ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंने कहा—भक्तोंके हृदयमें तुम्हारा निवास रहेगा। क्योंकि भक्तोंके हृदयमें तुम गोविन्दका स्वरूप स्थापित करनेवाली हो।

तुम भवरोगको हरनेवाली हो। तुम निरन्तर स्थिर चित्तसे वैष्णवोंके चित्तमें रहो। कलियुगके जितने दोष हैं, वे तुमको स्पर्श भी न कर सकेंगे। हे शौनक! सनकादिकोंकी आज्ञाके अनुसार उसी समयसे भक्ति हरिभक्तोंके चित्तमें बसी रहती है।

चतुर्थ अध्याय

गोकर्ण और धुन्धुकारीकी कथा

सूतजीने कहा—हे शौनक! वैष्णवजनोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिभाव देखकर भक्तवत्सल भगवान वैष्णवसमाजके बीच प्रकट हो गये। मुरलीधर, घनश्याम श्रीहरिको देखते ही उपस्थित सज्जन आनन्दित होकर जयजयकार करने लगे। भक्तिमें निमग्न होनेके कारण सभी तन्मय हो गये। देह-गेहकी सुधितक भी उनको नहीं रही। यह अवस्था देखकर नारदजीने कहा—सप्ताह यज्ञकी अद्भुत महिमा मैंने देख ली। महामूढ़ शठ और पशु पक्षी तक भी इस यज्ञके प्रभाव द्वारा पूर्णरूपसे शुद्ध हो जाते हैं। मेरा दृढ़-मत है कि कलिकालमें इससे बढ़कर चित शुद्ध करनेका और कोई उपाय नहीं है। हे मुनिवरों! कृपापूर्वक अब यह बताइये कि इस यज्ञसे कौन कौन लोग शुद्ध हो जाते हैं? सनकादिकोंने नारदजीके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—हे नारद! महापापी, कुमार्गगामी, परमक्रोधी, कुटिल और कामासक्त सभी प्राणी सप्ताह यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। पतित, दम्भी, माता-पिताको कष्ट देनेवाले, मिथ्यावादी, मत्सरग्रस्त, हत्यारे आदि भी इस यज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त परधन हरण करने-

वाले तथा व्यभिचारियोंकी भी इससे शुद्धि हो जाती है। इस प्रसंगमें हम तुमको एक पुरातन इतिहास सुनाते हैं। प्राचीन-कालमें तुंगभद्रा नदीके तटपर एक उत्तम नगर बसा था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग रहते थे। वे लोग सत्यवादी और धर्मपरायण थे। उसी नगरमें आत्मदेव नामक सदाचारी और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण भी रहते थे। भिक्षा वृत्तिसे ही उनकी जीविका चलती थी। तथापि उनकी आर्थिक स्थिति खराब नहीं थी। उनकी पत्नीका नाम धुंधुली था। वह अत्यन्त कर्कशा थी। उसकी बोली कभी बन्द नहीं होती थी। वह अत्यन्त कृपण भी थी। उच्च कुलमें उसका जन्म हुआ था। इन दुर्गुणोंके रहते हुए भी वह गृहकार्योंमें सदा निपुणतासे लगी रहती थी। किन्तु गृहस्थाश्रममें रहनेपर भी उनको कोई सन्तान—पुत्र या पुत्री नहीं थी। इस दुःखसे वे दोनों अत्यन्त चिन्ताग्रस्त रहते थे। उनके चित्तमें शान्ति नहीं थी। अवस्था भी दोनोंकी ढल चली। तब वे सन्तानकी कामनासे अनेकानेक धर्म-कर्म करने लगे। दान-पुण्यमें उन्होंने अपना-अपना धन खर्चकर डाला। किन्तु न तो पुत्र उत्पन्न हुआ और न पुत्री ही जनमी। चिन्ता बढ़नेसे दोनों अत्यन्त दुःखका अनुभव करने लगे। चिन्तासे अतिशय पीड़ित होकर एक दिन आत्मदेव घरसे निकल पड़े। वे वनकी ओर चले। चलते-चलते दोपहरका समय हो गया। चलनेके कारण वनमें ब्राह्मण देवताको प्यास लगी। उनको एक सरोवरका पता चला तो जल पीनेके लिए उस जलाशयके किनारे गये। जल पी चुकनेपर वे व्यथित चित्तसे तटपर बैठ गये। चिन्तामग्न अवस्था-

में चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देरके बाद वहाँ एक संन्यासी भी जल पीनेके लिए आये। सन्यासी जल पीकर निश्चिन्त हुए। उनको देखकर ब्राह्मण देवता उनके पास चले गये और प्रणाम करके उनके सम्मुख खड़े हो गये। ब्राह्मणको उदास और चिन्ता-पीड़ित समझकर सन्यासीने पूछा—हे ब्राह्मण! तुम घोर चिन्तामें पड़े हुए ज्ञात हो रहे हो। अपने दुःखका कारण मुझे बताओ। ब्राह्मणने उत्तर दिया—सन्तानके बिना मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। इस दुःखकी ज्वालाको मिटानेके लिए मैं प्राण त्याग करनेके निमित्त यहाँ आया हूँ। सन्तानहीन मनुष्यका जीवन व्यर्थ है। जिस गृहमें पुत्र या पुत्री नहीं है, उस घरको धिक्कार है। यह कहकर ब्राह्मण देवता फूट-फूटकर रोने लगे। सन्यासीके चित्तमें उसकी दशा देखकर दया उत्पन्न हुई। सन्यासीने ब्राह्मणके मस्तकपर विधाताकी लिखी कर्मरेखा पढ़कर कहा—तुम अपना शोक छोड़ दो। कर्मकी गति प्रबल है। यह किसीके टालनेसे टल नहीं सकती। इस कारण विवेकका अवलम्बन करके तुम संसारकी वासना छोड़ दो। मैंने देख लिया है कि तुम्हारे भाग्यमें सात जन्म तक भी सन्तान सुख नहीं लिखा है। कुटुम्बकी आशा छोड़ देना ही तुम्हारे लिए अच्छा है। अब तुम सन्यास ले लो। ब्राह्मणने कहा—आपके इस ज्ञानोपदेशसे मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है। आप अपने तपोबलसे मुझे पुत्र दीजिये। अन्यथा मैं आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगा। तब सन्यासीने कहा—हे ब्राह्मण! हठ करनेसे तुमको दुःख ही होगा। यह कहकर उक्त सन्यासीने ब्राह्मणको एक फल दिया और कहा—यह फल

ले जाकर तुम अपनी पत्नीको खिला दो। यह फल खाकर वह अवश्य ही पुत्रवती हो जायगी। किन्तु, इसकी सिद्धिके लिए एक वर्ष तक तुम्हारी पत्नीको कुछ नियमोंका पालन करना पड़ेगा। उसे बता दो कि वह सदा सत्यवादिनी बनी रहे। पवित्र जीवन बितावे। दान-पुण्यमें समय लगावे। एक ही बार भोजन करे। यदि वह इन नियमोंका पालन करती हुई चलेगी तो उसे अवश्य ही सच्चरित्र और बुद्धिमान पुत्र प्राप्त होगा। तदनन्तर ब्राह्मणदेव फल लेकर अपने घर लौट गये। घर जाकर उन्होंने वह फल अपनी पत्नीको दिया। पतिदेव जब फल देकर और खानेके लिए कहकर कहीं बाहर चले गये, तब वह ब्राह्मणी अपनी एक सहेलीसे रो-रोकर कहने लगी—हे सखि! मैं फल खाना नहीं चाहती। सन्तान प्रसवकी वेदना मैं सह न सकूँगी। सन्तान प्रसवके समय दारुण दुःख होता है। यदि कुशलपूर्वक बच्चा जन्म भी ले लेगा तो उसे पालनेमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी। यह कहकर फल उसने नहीं खाया। पतिके पूछनेपर उसने कह दिया कि मैं फल खा गयी। कुछ दिनोंके बाद उस ब्राह्मणीकी छोटी बहिन उससे भेंट करनेके लिए आयी। उससे उसने अपनी चिन्ताकी बात कह सुनायी। बहिनने समझाकर कहा—तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं गर्भवती हूँ। मेरे जो पुत्र जन्म लेगा, उसे मैं तुमको दे दूँगी। तुम गर्भवती होनेका बहाना करके चुपचाप घरमें पड़ी रहो। मेरे पति भी इस विचारका समर्थन करेंगे। तुम पुत्रके लिए उनको कुछ धन दे देना। वे तुमको पुत्र दे देंगे। मैं तुम्हारे घर ठहरकर उस बच्चेको दूध पिलाकर

पालूँगी। यह फल तुम गायको खिला दो। परीक्षा करके देखें कि क्या होता है। हे नारद! धुन्धुलीको अपनी बहिनकी बात अच्छी लगी। उसने फल गायको खिला दिया। समय पूरा होनेपर धुन्धुलीकी बहिनने पुत्र प्रसव किया। उसके कहनेसे उसके पतिने बच्चेको छिपाकर धुन्धुलीके पास पहुँचा दिया। धुन्धुलीने प्रचारित कर दिया कि मैंने सुखपूर्वक पुत्रप्रसव किया है—कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। पड़ोसियोंको आत्मदेवको पुत्रप्राप्तिका समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आत्मदेव भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिपूर्वक पुत्रका जातकर्म-संस्कार कराया। ब्राह्मणोंको दान देकर सन्तुष्ट किया। उन्होंने बड़ा भारी उत्सव मनाया। धुन्धुलीने पतिसे कहा—मेरे स्तनोंमें दूध नहीं उतरता, अन्य जातिकी स्त्रीका दूध पिलाना ठीक न होगा। इसलिए मैं चाहती हूँ कि अपनी छोटी बहिनको बुला लूँ। उसका हाल हीमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो भूमिष्ठ होते ही मर गया। उसके स्तनोंमें दूध है। अपने दूधसे वह हमारे बच्चेको पालेगी। पत्नीकी बात आत्मदेवने मान ली। पुत्रका नाम धुन्धुकारी रखा गया। उधर गायने भी एक मनुष्य-शिशु प्रसव किया। वह अत्यन्त सुरूप था। किन्तु उसके कान गायके कानों-जैसे थे। इस कारण उसका नाम गोकर्ण रखा गया। गायके पेटसे मनुष्य शिशुका जन्म होना एक आश्चर्यजनक घटना थी। इस समाचारसे सभी आश्चर्यचकित हो उठे। समय पाकर दोनों बालक बड़े हुए। गोकर्ण ज्ञानी और पण्डित हुए। किन्तु धुन्धुकारी महादुष्ट प्रकृतिका निकला। वह ब्राह्मणोचित आचार-

२

व्यवहार नहीं रखता था। अभक्ष्य भक्षण करता था। अगम्या स्त्रियोंके साथ गमन करनेमें उसे सङ्कोच नहीं था। वह दूसरोंके घरोंमें आग लगाता-फिरता था। बच्चोंको पकड़कर कुएँमें ढकेल देता था। वेश्याओंमें सतत आसक्त रहता था। इस प्रकार उसने अपना सब धन खर्च कर दिया। धनहीन होकर वह अपने माता-पितापर अत्याचार करने लगा। उनके सब बरतन भाँड़ेतक उसने छीन लिये। पुत्रके दुर्व्यवहारसे व्यथित होकर आत्मदेव रोने लगे। गोकर्णने पिताको समझाकर कहा—यह संसार असार है। पुत्र-धन आदि भ्रमजाल हैं। एकान्त-निवास करनेवाले मुनिको जो सुख मिलता है, वह सुख चक्रवर्ती राजाको भी नहीं मिलता। इस कारण पुत्रस्नेहरूप अज्ञानको छोड़ देना ही कर्तव्य है। अब सब त्यागकर तुम हरिका भजन करो। हे नारद! गोकर्णके उपदेशसे आत्मदेवको वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर छोड़कर वे वनको चले गये। वहाँ अपने चित्तको उन्होंने श्रीहरिको समर्पित कर दिया और नित्य श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पाठ करते हुए श्रीहरिकी आराधना करने लगे। अन्त समयमें शरीर त्यागकर वे परमपदको प्राप्त हुए।

पञ्चम अध्याय

धुन्धुकारीकी प्रेतयोनिसे मुक्ति

सूतजीने कहा—हे शौनक! पिताकी मृत्युके बाद एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको खूब पीटा। तदुपरान्त वह धन

भी माँगने लगा। माता उसके अत्याचारसे ऊब गयी और एक रातको उसने एक कुएँमें कूदकर प्राण त्याग दिया। गोकर्णने तीर्थयात्राको प्रस्थान किया। धुन्धुकारी अकेला रह गया। उसने पाँच वेश्याएँ लाकर घरमें रखीं। वेश्याप्रसङ्गसे उसकी बुद्धि अतिशय भ्रष्ट हो गयी। उनको सन्तुष्ट रखनेकी ही चिन्तामें वह डूबा रहता था। इस कारण उग्र कर्म किया करता था। एक दिन उन कुलटाओंने उससे आभूषण माँगे। तब धुन्धकारी चोरी करने गया और बहुत धन चुराकर वह घर लौटा। उसने बहुतसे आभूषण और स्वर्ण उन वेश्याओंको दिये। एक दिन वेश्याओंने परस्पर विचार-विमर्श किया कि यह मनुष्य प्रति दिन चोरी करता है। किसी दिन अवश्य पकड़ा जायगा और राजदण्ड पावेगा। राजा हमारा धन छीन लेगा। इसलिए यह अच्छा होगा कि हमीं लोग इसे मार डालें और धनका बँटवारा करके इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चली जायँ। इस निश्चयके अनुसार उन कुलटाओंने एक रातको, जब कि धुन्धुकारी निद्रित पड़ा था, उसके हाथ-पैर रस्सीसे बाँध दिये। फिर वे उसके गलेमें फाँसी लगाकर मार डालनेकी चेष्टा करने लगीं। किन्तु इतना करनेपर भी उसका प्राण नहीं निकला। तब उन्होंने आगकी जलती लुआठियाँ उसके मुँहमें डाल दीं। तब आगकी ज्वालासे छटपटाकर वह मर गया। तदनन्तर वेश्याओंने घरमें ही गड्ढा खोदकर उसकी लाश गाड़ दी। इसके बाद धन आपसमें बाँटकर वे कहीं चली गयीं। कुकर्म और अकाल मृत्युके दोषसे धुन्धुकारी महान् प्रेत हुआ। उसे प्रेतयोनिमें अनेक कष्ट मिलने

लगे। वह असह्य यंत्रणासे छटपटाता हुआ इधर-उधर घूमता फिरता था। गोकर्णको उसकी मृत्युका समाचार मिला तो उन्होंने उसकी सद्गतिके लिए गयामें श्राद्ध करके पिण्डदान दिया। अन्य तीर्थोंमें भी जाकर उसका श्राद्ध किया। तदनन्तर भ्रमण करते हुए गोकर्ण एक दिन अपने घर गये। रातके समय वे अपने आँगनमें सो रहे थे कि वहाँ धुन्धुकारी आ पहुँचा। वह कभी भैंसा और कभी हाथी आदि अनेक रूप धारण करके गोकर्णके सामने प्रकट होने लगा। अन्तमें वह पुरुषरूपमें गोकर्णके सामने आकर खड़ा हो गया। गोकर्णने उसे देखकर पूछा—तू कौन है? क्यों मुझे सतानेकी चेष्टा कर रहा है? धुन्धुकारी उत्तर देना चाहता था। किन्तु उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी। इशारेसे अपना दुःख बतानेकी चेष्टा करने लगा। गोकर्णने अंजलिमें जल लेकर उसके शरीरपर छिड़क दिया। अभिमंत्रित जलसे उसे शक्ति मिली। वह बोला—मैं धुन्धुकारी हूँ और अपने कुकर्मोंका फल भोग रहा हूँ। इस प्रेतयोनिमें मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। हे भाई! तुम मेरा उद्धार करो। यह सुनकर गोकर्ण आश्चर्यमें पड़ गये। वे बोले—यह कैसी बात है, समझमें नहीं आती। गयामें विधिपूर्वक श्राद्ध करके मैंने तुम्हारे लिए पिण्ड दिया है। किन्तु तुम्हारी मुक्ति अब तक नहीं हुई? कोई उपाय हो तो मुझे बताओ। मैं तुम्हारे उद्धारकी चेष्टा करूँगा। धुन्धुकारी बोला—श्राद्धोंसे मेरी मुक्ति नहीं होगी। मैं कोई उपाय भी नहीं जानता। तुम्हीं कोई उपाय सोचो। गोकर्ण चिन्तित हो उठे। बहुत देरतक सोचते रहे। किन्तु उनको कुछ भी नहीं

सूझा कि प्रेतयोनिसे भाईको कैसे छुड़ावें। तब उन्होंने सूर्यदेवसे पूछनेका निश्चय किया। उन्होंने अपने तपोबलसे सूर्यकी गति रोक दी। तदुपरान्त सूर्यदेवसे उन्होंने कहा—हे जगत्‌के साक्षी! कृपा करके इस प्रेतकी मुक्तिका उपाय बताइये। उस समय सुदूर सूर्यमण्डलसे यह वाणी सुनाई पड़ी—श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथा सुनानेसे प्रेतको अवश्य मुक्ति मिल जायगी। यह वाणी सुनकर सभीने कहा कि यह काय करना ही युक्तिसंगत है। गोकर्ण कथा सुनानेको तैयार हुए। लोगोंने यह समाचार सुना। कथा सुननेके लोभसे सभी लोग उस स्थानको जाने लगे। निश्चित समयपर धूमधामके साथ वह महान् उत्सव आरम्भ हुआ। गोकर्णजीने आसनपर बैठकर कथा आरम्भ की। उसी समय प्रेत भी वहाँ आया। वहाँपर सात गाँठोंवाला एक बाँस गड़ा हुआ था। उसकी जड़के एक छेदमें प्रवेश करके धुन्धुकारी कथा सुनने लगा। जब प्रथम दिवसकी कथा समाप्त हुई, तब बाँसके नीचेका एक पोर फट गया। दूसरे दिनकी कथा समाप्त होनेपर दूसरा पोर फटा। तीसरे दिनकी कथा समाप्त होनेपर तीसरा पोर फटा। इसी तरह सात दिनोंमें बाँसके सातों पोर फट गये। बारहों स्कन्धकी पूरी कथा सुननेके बाद धुंधुकारी प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया। तब वह दिव्यरूपमें गोकर्णके सामने आकर खड़ा हो गया और प्रणाम करके बोला—हे भाई! तुमने बड़ी कृपा की कि मुझे इस महाकष्टसे उबार लिया। मैं जान गया कि सब कष्टोंसे मुक्त होनेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा सुनी जाय। गोकर्णसे धुंधुकारी इस

प्रकार कह ही रहा था कि उसी समय वहाँ एक विमान आकाश-मार्गसे आ पहुँचा। सबके समक्ष धुंधुकारी उस विमानपर चढ़ गया। विमानपर विष्णुके पार्षद उपस्थित थे। गोकर्णने उनसे पूछा—बहुतोंने यह कथा सुनी है। उनके लिए आप लोग विमान क्यों नहीं लाये? फलप्राप्तिमें यह भेद क्यों हो रहा है? यह सुनकर श्रीहरिके सेवकोंने उत्तर दिया—सबने कथा तो सुनी, किन्तु एक भावसे नहीं सुनी। यही कारण है कि फलमें भेद हुआ। धुंधुकारीने मन लगाकर कथा सुनी है और चित्तको एकाग्र रखा है। इसने सात दिनोंतक निर्जल व्रत भी रखा था। मनन भी खूब किया है। मन लगाकर कथा सुनना ही पूर्ण फल देता है। इतनी बातें कहकर वे विष्णुसेवक विमान समेत वैकुण्ठलोकको चले गये। इसके बाद श्रावण महीनेमें गोकर्णने फिर उत्साहपूर्वक कथा बाँची। श्रोता लोग उपस्थित थे। सभीने मन लगाकर कथा सुनी। हे नारद! जब कथा समाप्त हुई तो उस समय एक अद्भुत घटना घटी। श्रीहरि भगवान अनेक विमान लिये वहाँ प्रकट हुए। उन्हें देख परमानन्दमें मग्न होकर सबलोग जयघोष करने लगे। तब स्वयं भगवानने प्रसन्न होकर अपना पांचजन्य शंख बजाया। उन्होंने गोकर्णको आलिंगन किया। भगवानने गोकर्ण तथा अन्य श्रोताओंको अपना स्वरूप प्रदान किया। तब मनुष्योंकी बात तो दूर रही, उस गाँवके कुत्ते तक सारूप्य मोक्ष पा और विमानोंपर बैठकर वैकुंठधामको गये।

षष्ठ अध्याय

सप्ताह कथा सुननेकी विधि

सनकादिकोंने कहा—हे नारद ! अब मैं तुमको सप्ताह कथा सुननेकी विधि बता रहा हूँ। सर्वप्रथम ज्योतिषीसे पूछकर शुभ मुहूर्त ठीक करावे। फिर विवाहकी भाँति खर्च करके धूमधामसे उत्सव मनावे। भादों, आश्विन, कार्तिक, अगहन, आषाढ़ और श्रावण—ये शुभ मास हैं। अतः इनमें कथा सुनना उचित है। महामारी आदिका उपद्रव जिस महीनेमें रहे, उसमें कथा आरम्भ न करे। कथा सुननेके लिए हरिभक्तोंको निमंत्रित करे। आनेवालोंको ठहरानेके लिए जगहकी व्यवस्था करे। तीर्थस्थानमें एकान्तवनमें अथवा अपने गृहमें कथा सुने। मैदान ही कथाका उपयुक्त स्थान है। यदि घरमें कथा हो तो घरकी सब सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे। मैदानमें कथा कहनेकी व्यवस्था करे तो पहले भूमिको बराबर कर ले। फिर जल छिड़ककर उसे लीप-पोत डाले। फिर विभिन्न धातुओंसे उस भूमिको रंजित करे। चारों कोनोंपर और सामने भी केलेके खंभे गाड़ दे। ऊपर चँदोआ बाँधकर चारों तरफ ध्वजाएँ बाँधे। मण्डपको अच्छी तरह सजावे। फिर उसपर सात लोकोंकी रचना करे। कथा कहनेवालेके लिए दिव्य आसन बिछाना चाहिये। वक्ताका मुख उत्तरको हो तो श्रोताका पूरबको होना चाहिये। यदि वक्ता पूर्वमुख हो तो श्रोता उत्तर मुख होकर बैठे। अथवा दोनों ही पूर्वमुख होकर बैठे। जो ब्राह्मण विरक्त, विष्णुभक्त, शास्त्रज्ञ, धीर, निस्पृह और सुशील हो उसीको वक्ता बनावे। वक्ताका सहायक एक

विद्वान् ब्राह्मण रहना आवश्यक है। व्रत ग्रहणके पहले वक्ताको चाहिये कि क्षौरकर्म करा डाले। नित्य स्नान करे। संध्या-वन्दनादि भी करे। श्रोताको प्रथम दिन स्नान-पूजनादिके बाद गणेशजीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर नवग्रहादिकी पूजा करे और शुद्धिके लिए प्रायश्चित्त करे। तदुपरान्त कृष्णके उद्देश्यसे विष्णुमूर्ति स्थापित करे। फिर कृष्णके उद्देश्यसे उसी मूर्तिमें क्रमशः विधिपूर्वक द्वादशाक्षर मंत्रसे पूजा करे। पूजनके बाद प्रदक्षिणा और प्रणाम करके स्तुति करे—हे करुणानिधान! मैं संसारसागरमें डूब रहा हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। तदनन्तर श्रीमद्भागवत पुस्तककी विधिपूर्वक पूजा करे और आरती उतारे। फिर वक्ताकी पूजा करे। सात दिनतक वक्ता और श्रोता हरि-मूर्तिके सामने नियमका पालन करें। कथाके प्रारम्भमें पाँच ब्राह्मणोंको द्वादशाक्षर मंत्र जपनेके लिए वरण करना चाहिये। मन लगाकर कथा सुने। शुद्ध बुद्धिसे कथा सुननेसे उत्तम फल मिलता है। सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहरतक कथा बाँचनेकी विधि है। दोपहरको दो घड़ी कथा बन्द करके विश्राम करे। वक्ता और श्रोताको एक बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये। सात दिनतक उपवास रहकर भी कथा सुन सकते हैं। केवल घी खाकर अथवा केवल दूध पीकर भी कथा सुन सकते हैं। फलाहार करके अथवा एक बार साधारण भोजन करके भी कथा सुन सकते हैं। कथा सुखपूर्वक सुने और कहे। उपवास करनेकी शक्ति न हो तो उपवास न करे। जो लोग विष्णुविमुख हों, उनको कथा सुननेका अधिकार नहीं है। कथा सुननेवालेको

ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पत्तलमें भोजन करना चाहिये। दो दलके अन्न अर्थात् उड़द-चना आदि न खाना चाहिये। काम-क्रोध आदि त्याग देना चाहिये। जो पुरुष दरिद्र हो, क्षयरोगसे पीड़ित हो, पातकी हो, सन्तानहीन हो और मोक्षका अभिलाषी हो उसे विधिपूर्वक कथा सुननी चाहिये। जिस स्त्रीको मासिक धर्म न होता हो, जो बंध्या हो, मृतवत्सा हो और जिसका गर्भ गिर जाता हो उसे नियमपूर्वक कथा सुननी चाहिये। यह कथा अति उत्तम और दिव्य है। इसको सुननेसे कोटि यज्ञका फल मिलता है। जो व्यक्ति किसी कामनासे कथा सुनता हो उसे उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनके दिन जन्माष्टमी व्रतकी तरह व्रत रखना चाहिये। सप्ताह यज्ञ समाप्त होनेपर वक्ता और पुस्तककी पूजा करनी चाहिये। वक्ताको उचित है कि श्रोताओंको प्रसाद तुलसीदल और मालाएँ देकर आशीर्वाद करे। फिर मृदंग-करताल आदि बजाकर हरिकीर्तन करना चाहिये। ब्राह्मणों-याचकों आदिको धन आदि देकर परितुष्ट करे। जो श्रोता निष्काम या विरक्त हों, वे कथासमाप्तिके दूसरे दिन गीता पाठ करें। यदि गृहस्थ हों तो होम करें। विधिपूर्वक दशम स्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर खीर, मिठाई, घी, तिल, जव, चावल मिलाकर आहुति देनी चाहिये। अथवा एकाग्र चित्तसे गायत्रीके मंत्रसे होम करे। यदि पूर्ण होम करनेकी शक्ति न हो तो हवनफलसिद्धिके लिए कुछ धन दे देवे। त्रुटियों और न्यूनाधिक दोषकी शान्तिके लिए विष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये। तब बारह ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करावे और कथा कहनेवालेको सुवर्णकी गाय

देवे। सामर्थ्य हो तो तीन तोले सुवर्णका सिंहासन बनवाकर उसके ऊपर श्रीमद्भागवत ग्रन्थ रखकर उसकी पूजा करे। फिर आचार्यकी पूजा करके दक्षिणाके साथ वह पुस्तक उनको दे दे। हे नारद! इस प्रकार कथा सुननेसे चारों फल प्राप्त होते हैं। सूतजीने कहा—हे शौनक! माहात्म्य कहकर मुनिवरोंने विधिपूर्वक सात दिन श्रीमद्भागवतकी कथा कही। कथा समाप्त होनेपर ज्ञान वैराग्य और भक्ति तीनों परमपुष्ट और तरुण हो गये। मनोरथ सिद्ध होनेपर नारदजी अपनेको कृतार्थ मानकर परम प्रसन्न हुए। वे सनकादिकोंके सामने हाथ जोड़कर कहने लगे—मैं धन्य हो गया, कृत-कृत्य हो गया। आप लोगोंने मुझे कृतार्थ कर दिया। श्रीमद्भागवतकी कथा सुनना ही सब धर्मसाधनोंमें सर्वोत्तम है। यह मेरा दृढ़ मत हो गया है। सूतजीने कहा—नारदजी बोल ही रहे थे कि उसी समय महायोगेश्वर श्रीशुकदेवजी वहाँ आये। उनको देखते ही सभी उपस्थित लोग उठ खड़े हुए। नारदजीने उन्हें आसन देकर उनकी पूजा की। श्रीशुकदेवजी सुखपूर्वक बैठकर कहने लगे—इस भागवत रसको प्रलय कालतक पीते रहो। इसमें शुद्ध निष्कपट परमधर्म वर्णित है। सूतजीने कहा—हे शौनक! शुकदेवजी बोल ही रहे थे कि उसी समय प्रह्लाद, बलि, उद्धव, अर्जुन आदि श्रेष्ठ भक्तोंके साथ हरि भगवानका पदार्पण हुआ। नारदजीने भक्तोंके साथ श्रीहरिकी पूजा की। श्रीहरिको आसीन देखकर सब भक्तजन कीर्तन करने लगे। वह महाकीर्तन सुननेके लिए भवानीके साथ भगवान शंकर और ब्रह्माजी भी वहाँ आ पहुँचे। तब प्रसन्न होकर भगवानने

भक्तोंसे कहा—वांछित वर माँगो। भक्तोंने प्रसन्न होकर कहा—हम यही चाहते हैं कि सप्ताह-पारायण कथामें चित्त लगाकर हम एकाग्रताके साथ सतत आपका चिन्तन करते रहें। यही हमारा मनोरथ है। आप इसे पूर्ण कीजिये। भगवान तथास्तु कहकर सबके देखते ही वहाँसे अदृश्य हो गये। तदनन्तर श्रोता लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। शौनकजीने सूतजीसे पूछा—हे सूत! परीक्षितको सूतजीने कब और किस महीनेमें यह भागवत-शास्त्र सुनाया था? धुन्धुकारीको गोकर्णने और नारदको सनकादिकोंने कब सुनाया? सूतजी बोले—कृष्णके परमधाम-गमनके पश्चात् कलियुगके और तीस वर्ष बीतनेपर भाद्रपदकी शुक्ला नवमीके दिन श्रीशुकदेवजीने कथा आरम्भ की थी। परीक्षितके कथा सुननेके बाद कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर आषाढ़ शुक्ला नवमीको गोकर्णने कथा आरम्भ की थी। उसके बाद कलियुगके और भी तीस वर्ष बीतनेपर सनकादिकोंने कथा आरम्भ की थी। कलियुगमें यह कथा संसाररोगका नाशक एकमात्र औषध है। जगत्‌में भागवतकी कथासे बढ़कर पवित्र और उत्तम दूसरा धर्म-कर्म नहीं है।

इति श्रीमद्भागवत-माहात्म्य समाप्त

* * *

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

प्रथम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

नैमिषीय उपाख्यान

जिनसे इस जगतकी सृष्टि स्थिति और लय होता है, जो जगत्‌की उत्पत्तिके आदि कारण हैं, सत्यस्वरूप उन परमेश्वरका मैं ध्यान करता हूँ।

यह श्रीमद्भागवत महामुनि वेदव्यासकी रचना है। इसमें परमधर्मका निरूपण है, परमार्थ ज्ञान है और इसे पढ़ने या सुननेसे सत्य परमेश्वरको हृदयमें स्थिर कर सकते हैं। वेदस्वरूप कल्पवृक्षका यह फल शुकजीके मुँहसे इस पृथ्वीपर गिरा है। संसारके चतुर पुरुष इस अमृत फलको बार-बार खाकर मोक्ष प्राप्त करें।

एक समय शौनकादि ऋषियोंने नैमिषारण्यमें बैठकर विष्णुलोक पानेके लिए एक हजार वर्षोंमें पूरा होनेवाले यज्ञका अनुष्ठान

आरम्भ किया। एक दिनकी बात है कि वे लोग सन्ध्या-तर्पण होम आदि कर्म समाप्त करके बैठे हुए थे। उसी समय उग्रश्रवा-नामक सूत वहाँ आ पहुँचे। मुनियोंने बहुत आनन्दित होकर सम्भाषण आदिसे उनका सत्कार किया और आसन देकर बैठाया तथा आदरके साथ पूछा—"हे सूत! तुमने महाभारत आदि इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पढ़े हैं और उनकी व्याख्या भी की है। दूसरे मुनियोंको जिन शास्त्रोंका ज्ञान है, उन सभीको तुम जानते हो। हे सूत! इस कलियुगमें लोग थोड़ी आयुवाले होते हैं, उनकी बुद्धि भी कम होती है, वे बड़े आलसी होते और बराबर रोगसे पीड़ित रहते हैं। इस कारण अनेक शास्त्रोंको पढ़ना-सुनना नहीं हो पाता। कर्म और शास्त्र अनेक हैं। उन सबमेंसे सार लेकर हमें बताओ, जिससे हमारे चित्त प्रसन्न हो जायँ।

हे सूत! भगवान लोगोंके हितके लिए जन्म ग्रहण करते हैं। किन्तु किस विशेष कामके लिए वसुदेवकी स्त्री देवकीके गर्भसे उन्होंने जन्म लिया था, यह बात सम्भवतः आप जानते ही हैं। अतः यह कथा भी वर्णन करें। जिनका नाम उच्चारण करनेसे तुरन्त मुक्ति मिल जाती है और भय स्वयं डरने लगता है। जिनके युगल चरणोंका आश्रय करके मुनि लोग पवित्र हो जाते हैं, उनकी कथा हमें सुनाइए। यह ठीक है कि गंगाजी भगवानके चरणसे आयी हैं, किन्तु उनका सेवन किये बिना कोई फल नहीं मिलता। सभी लोग सदा उन भगवानके कर्मोंकी श्लोकबद्ध स्तुति करते हैं। इस कलिकालके पापोंका नाश करनेवाला उनका यश भला कौन न सुनना चाहेगा?

अतएव हे सूत ! भगवानका शुभ अवतार, उनकी लीला और उनका चरित आप वर्णन करें। हम लोगोंको सुननेके लिए बहुत समय है। अब तो तुम सरीखे कर्णधार या मल्लाहको पाकर हम लोग अनायास कलिसमुद्रको पारकर जायँगे। हे सूत ! तुमसे हम पूछते हैं कि धर्मरक्षक श्रीकृष्णके चले जानेके बाद अब धर्म किसकी शरणमें चला गया है ?"

द्वितीय अध्याय

ऋषियोंके प्रश्नोंका उत्तर और भगवद्भक्तिवर्णन

मुनियोंकी बातसे सन्तुष्ट होकर सूतने कहा—जिन्होंने संसारी लोगोंपर दया करके समस्त वेदोंका सार और संसाररूपी घोर अन्धकारका नाश करनेवाला परम गोपनीय पुराण कहा था, उन्हीं व्यासके पुत्र शुकदेवजीकी शरणमें जाकर मैं नमस्कार करता हूँ।

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी सरस्वती और व्यासदेवके चरणोंमें नमस्कार करके मैं यह पुराण पाठ कर रहा हूँ।

इस प्रकार मंगलाचरण करके सूतजीने कहा—हे मुनिगण ! कामना अर्थात् सभी इच्छाओंको छोड़कर भगवानकी भक्ति करना ही धर्म है। भक्तिसे चित्त प्रसन्न होता है। विशेषतः श्रीकृष्णकी भक्ति करनेसे शीघ्र ही वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होते हैं। देखो, मोक्षतक जो धर्म है, उसका फल अर्थ या धन नहीं है। पापका जो अर्थ है, उसका फल काम नहीं है। केवल इन्द्रियोंकी तृप्ति ही कामका फल नहीं है। किन्तु जितने दिन जीवित रहते हैं,

उतने दिन ही कामका फल रहता है। धर्मकर्मसे जो स्वर्ग मिलता है उसका फल उतना ही नहीं है, किन्तु तत्त्वजिज्ञासा ही उसका फल है। ब्रह्मकी उपासना करनेसे भक्ति उत्पन्न होनेपर मुनि लोग अपनी आत्माओंमें ही तत्त्व देखने लगते हैं। हे मुनिगण! धर्मकार्य करते हुए भगवानकी आराधना करनेसे अनन्त फल मिलता है। इसीलिए एकाग्रचित्तसे भक्तिपूर्वक भगवानकी पूजा और उनके नामोंका संकीर्तन करना चाहिये। यदि किसीका मन इस तरफ न लगे तो उसको पहले तीर्थदर्शन करके पापमुक्त होना चाहिये। इस तरह करनेसे उसकी वासुदेवकी कथामें श्रद्धा होने लगेगी। भगवत्कथामें प्रेम लग जानेपर अशुभ काम आदि वासनाएँ हृदयसे दूर हो जायँगी। नित्य भगवत्सेवामें लगे रहनेसे अमंगलका नाश होता है। भगवानमें अटल भक्ति उत्पन्न होती है। रजोगुण और तमोगुणका नाश होकर चित्त प्रसन्न हो उठता है। भक्तिके संयोगसे चित्त प्रसन्न हो उठनेपर भगवत्तत्त्वका ज्ञान हो जाता है। तत्त्वज्ञान होनेसे ईश्वरसे मिलन हो जाता है। इन्हीं कारणोंसे पण्डित लोग परम आनन्दसे भगवान वासुदेवके प्रति सदा भक्ति करते रहते हैं।

परमपुरुष ब्रह्म एक है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण हैं। इन तीन गुणोंके एकत्र होनेपर, सृष्टि, स्थिति और प्रलयके हेतु वे हरि, विरञ्चि और हर—ये तीन नाम धारण करते हैं। भगवानकी सत्त्वगुणमयी मूर्तिसे मनुष्योंका मंगल होता है। देखो, काठसे धुआँ बड़ा है। क्योंकि उसमें चलनेकी शक्ति है। धुएँसे बड़ा अग्नि है। क्योंकि उससे धर्मकी साधना होती है। इस तरह

तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे सत्त्वगुण प्रधान है। क्योंकि इससे ब्रह्मका दर्शन होता है। इसी प्रकार हरि विरञ्चि और हर हैं। मुमुक्षु जन हिंसा परित्याग करके शान्त नारायणकी उपासना करते हैं। रज और तमःप्रकृतिके लोग धन-सम्पत्ति और पुत्र आदि पानेकी इच्छासे पितृ, भूत और प्रजापति आदि देवताओंकी आराधना करते हैं। किन्तु मोक्षपदकी प्राप्तिके लिए वासुदेवकी उपासना करना ही शास्त्रसम्मत है। क्योंकि वासुदेव ही योग, कर्म, ज्ञान, तपस्या, धर्म और परम गति हैं। वे ही इस जगत्के सृष्टिकर्ता हैं। उन्हीं भगवानने लोकहितके लिए देव-मनुष्यादि शरीरसे लीलावश अवतार ग्रहण किया था।

तृतीय अध्याय

अवतारकथा और भगवानका चरित्र वर्णन

सूतजी बोले—भगवानने सब लोकोंकी सृष्टिकी इच्छासे विराटमूर्ति धारण की थी। पूर्वकालमें योगनिद्राका विस्तार करके एकाकार महासमुद्रमें उनके सो जानेपर उनके नाभिरूप ह्रद अर्थात् तालाबके बिम्बसे विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीका जन्म हुआ था। उन विराटमूर्तिके हजारों पैर हैं, हजारों जाँघें हैं और उनका वदन भी अद्भुत है। उनके कान, मस्तक, मुख और नासिकाएँ भी असंख्य हैं। वे योगियोंको ज्ञानकी आँखोंसे दिखाई पड़ते हैं। यह विराटमूर्ति नाना अवतारोंका बीज है। वे अव्यय और अविनाशी सभीके प्रवेशके स्थान हैं। भिन्न-भिन्न कामोंके लिए भगवान

अवतार लेते और कार्य पूरा हो जानेपर अन्तमें उन्हींमें समा जाते हैं। विराटमूर्तिसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है। ब्रह्माके अंशसे देवता, ऋषि मनुष्य आदिकी सृष्टि होती है। इस हेतु विराटमूर्ति ही सबके बीज हैं।

उसी विराटमूर्तिने प्रथम कौमार नामक सृष्टिमें ब्राह्मण बनकर बहुत ही कठिन ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया था। फिर इस ब्रह्माण्डकी रचनाके लिए द्वितीय शूकरमूर्ति धारण करके रसातलमें पहुँची हुई पृथ्वीका उद्धार किया अर्थात् जलके अन्दरसे अपने दाँतोंसे खींचकर नावकी भाँति पृथ्वीको ऊपर उठा लिया था। तृतीय नारद अवतारमें देवर्षि होकर मुक्तिदायक वैष्णवतंत्रको प्रकट किया। चतुर्थ अवतारमें धर्मकी स्त्रीके गर्भसे नर-नारायण ऋषि होकर कठिन तपस्या की। पंचम अवतारमें कपिलनामसे सिद्धगणोंके अधिपति होकर सांख्यशास्त्र बनाया। छठें अवतारमें अत्रिमुनिके पुत्र होकर दत्तात्रेय अवतारके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस अवतारमें उन्होंने अलर्क और प्रह्लाद आदि भक्तोंको आत्मविद्याका उपदेश दिया। सातवें अवतारमें रुचिके औरस और आकूतिके गर्भसे उत्पन्न हुए और यज्ञ नामसे पुकारे गये। याम नामक देवता उनके पुत्र हुए और वे स्वयं इन्द्र बन गये। आठवें अवतारमें अग्नीध्रपुत्रके औरस और मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभनामसे उत्पन्न हुए। उन्होंने परमहंसकी रीति-नीति बतायी। बादको ऋषियोंकी प्रार्थनासे पृथुनामक राजाका शरीर धारण करके नवें अवतारमें प्रकट हुए। इस अवतारमें भगवानने पृथ्वीसे औषधादि दोहन किया। दसवें अवतारमें मत्स्यरूप धारण करके चाक्षुष मन्वन्तरमें

जलप्लावन अर्थात् बाढ़के जलमें पृथ्वीको नौकारूपमें करके वैवस्वत मनुको बचाया। ग्यारहवें अवतारमें कूर्मका रूप धारण किया। इन्होंने समुद्रका मन्थन होते समय मन्थनदण्डरूपी मन्दरपर्वतको अपनी पीठपर उठा रखा था। बारहवें अवतारमें धन्वन्तरिका रूप धारण करके संसारको वैद्यविद्या प्रदान की और तेरहवें अवतारमें मोहिनीरूपसे असुरगणको मोहित करके देवताओंको अमृत पिलाया। चौदहवें अवतारमें नृसिंहरूप धारण करके अपने नखोंसे दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी छाती फाड़ डाली। पन्द्रहवें अवतारमें वामनरूप धारण करके राजा बलिको स्वर्गसुखसे वंचित करनेकी इच्छासे उसके यज्ञमें उन्होंने तीन पग भूमि माँगी। सोलहवें अवतारमें परशुराम स्वरूप धारण करके इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे खाली किया। सत्रहवें अवतारमें पराशर ऋषिके औरस होकर सत्यवतीके गर्भसे पैदा हुए और व्यासनामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने ही लोगोंकी बुद्धि थोड़ी देखकर वेदोंकी व्याख्या की अर्थात् अर्थ समझाया। अठारहवें अवतारमें रामरूप धारण करके उन्होंने समुद्रबंधन किया। उन्नीसवें और बीसवें अवतारोंमें क्रमशः रामकृष्णरूपमें जन्म लेकर भूमिका भार दूर किया। इसके बाद कलियुग आरम्भ होनेपर गया प्रदेशमें अंजनके पुत्र होकर बुद्धनामसे अवतीर्ण हुए। कलियुगके अन्तमें जब राजालोग उपद्रवी डाकू बन जायँगे, तब विष्णुयश ब्राह्मणके घर जन्म लेकर कल्की नामसे प्रसिद्ध होंगे।

हे द्विजगण! भगवानके अवतार असंख्य हैं। मनु आदि जितने प्रजापति दिखाई पड़ते हैं, सभी उनके ही अंश हैं। किन्तु कृष्ण अवतार साक्षात् भगवान् नारायण हैं।

जो मनुष्य प्रातःकाल और सन्ध्याको उन भगवानकी जन्म-कथाका पाठ करता है, सुनता है और नाम जपता है, वह संसारके दुःखसे त्राण पा जाता है। अतएव कपट छोड़कर भक्त लोग निरन्तर उनके पादपद्मकी सेवा करनेसे परब्रह्म भगवानका तत्त्व जान सकते हैं।

हे ऋषिगण! आप लोग धन्य हैं। मैं जो भागवतपुराण सुना रहा हूँ, यह वेदके समान है। इसमें उत्तम श्लोकोंमें भगवान श्रीकृष्णका चरित्र वर्णित है। यह परम मंगलदाता है और महर्षि वेदव्यासने इसकी रचना की है। शुकदेवजीने अपने पिता वेदव्याससे इसे पढ़ा था। इसके बाद मृत्युका समय उपस्थित देखकर राजा परीक्षित जब आहार छोड़कर गंगाजीके तटपर आकर उपस्थित हुए तो मुक्तिके लिए शुकदेवजीने इस भागवतको पढ़कर उन्हें सुनाया। इस कलियुगमें यह पुराण सूर्यके समान अज्ञान अन्धकारका नाश करनेवाला है। यही भागवती कथा मैं आप लोगोंको सुनाऊँगा।

चतुर्थ अध्याय

वेदव्यासका भागवत आरम्भ

मुनियोंमें वृद्ध शौनकका प्रश्न सुनकर महाभाग सूतजीने कहा—हे द्विजगण! द्वापर युगके प्रारम्भमें परासर ऋषिके औरस और वसुकन्या सत्यवतीके गर्भसे नारायणके अंशस्वरूप वेदव्यासका जन्म हुआ। एक दिन प्रातःकाल सरस्वतीके जलमें स्नान-तर्पण करके अकेले बदरिका आश्रममें बैठकर मनुष्योंको श्रद्धाहीन, मन्द-

बुद्धि, अल्पायु और भाग्यहीन देखकर वे सोचने लगे कि किस तरह लोगोंका हित हो सकेगा। बहुत देर तक सोच-विचार करके उन्होंने वेदको ऋक्, यजुः, साम, अथर्व—इन चार भागोंमें विभक्त किया और इतिहास तथा पुराणको पाँचवें वेदमें गणना की। फिर पैलको ऋग्वेद, जैमिनिको सामवेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद, सुमन्तुको अथर्ववेद और मेरे पिता लोमहर्षणको पंचमवेद इतिहास-पुराण पढ़ाया। बादको उन ऋषियोंने वेदको अनेक प्रकारसे विभक्त किया और शिष्य-प्रशिष्यके परम्परानुसार प्रचारित होते होते इसकी अनेक शाखाएँ बन गयीं। पुराने समयमें बुद्धिमान शिष्य वेदोंको अनायास कण्ठस्थ कर सकते थे। स्त्रियों, शूद्रों और निन्दित ब्राह्मणोंका वेदमें अधिकार नहीं है, इस बातको ध्यानमें रखकर उन सबके मंगलसाधनके लिए उन्होंने महाभारतकी रचना की। इससे भी मन सन्तुष्ट न होनेपर उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि परमहंसोंको भागवत धर्म प्रिय है, परन्तु उसे मैंने विस्तारसे नहीं कहा है। वस्तुतः यही भगवानका प्रिय विषय है। इस प्रकार वेदव्यास खेद कर रहे थे, उसी समय नारद ऋषि वहाँ आकर उपस्थित हुए। उन्हें देखकर वेदव्यासने उठकर पाद्य और अर्घ्य देकर यथाविधि उनकी पूजा की।

पञ्चम अध्याय

वेदव्यासके मनकी तृप्तिके लिए नारदका हरिगुणसंकीर्तन

सूतजी बोले—नारद ऋषिने हँसते हुए कहा—हे पराशर-नन्दन ! तुमको जो कुछ बतानेकी इच्छा थी, सो महाभारतकी

रचना हो जानेसे वह सब पूरा हो गया है। फिर तुम क्यों उदास मुँह किये मलिन चित्तसे शोक कर रहे हो ? नारदकी बात सुनकर वेदव्यासने कहा—आपने जो कुछ कहा, वह सत्य है। फिर भी मेरे मनकी तृप्ति किस कारण नहीं हो रही है, यह मैं नहीं कह सकता। आप ब्रह्माके सन्तान हैं, सर्वदर्शी हैं, योगबलसे वायुके समान सबके हृदयमें प्रवेश कर सकते हैं और सभी गुह्य अर्थात् गोपनीय विषय आपको मालूम हैं। मेरा मन क्यों ऐसा हो रहा है, यह आप ही बताइये।

वेदव्यासकी बात सुनकर नारदजीने कहा—तुम्हारे सभी ग्रन्थ काकतीर्थकी भाँति हैं। वे रसज्ञ एवं ब्रह्मज्ञानी परमहंसोंके आदर योग्य नहीं हुए हैं। क्योंकि तुमने उनमें भगवानके पवित्र यशका वर्णन नहीं किया है। जिसमें भगवानके नाम और यशका वर्णन रहता है, उस पापनाशक ग्रन्थको साधु लोग पढ़ते हैं, सुनते हैं, कहते हैं और कीर्तन करते हैं। अब तुम कृष्णलीलाका स्मरण करके विस्तारपूर्वक वर्णन करो। देखो, हरिके अतिरिक्त जगत्में और कुछ भी नहीं है। मरते समय उनका नाम लेनेसे मुक्ति मिलती है। क्योंकि उनसे ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। हे वेदव्यास ! तुम सभी बातोंको जानते हो। मैंने केवल तुमको रास्ता भर बता दिया है।

हे व्यास ! पूर्वजन्ममें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका पुत्र था। मेरी माताने बरसातके चार महीनेके लिए मुझे उन लोगोंकी सेवामें नियुक्त कर दिया। मैं लड़कपनके खेल-कूद छोड़कर उन योगियोंकी सेवामें लग गया। यद्यपि वे समदर्शी थे, तो भी

मेरे ऊपर उन्होंने दया की। मैं उन लोगोंकी आज्ञासे केवल एकबार उनके पात्रका बचा जूठा अन्न खाता था। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरा चित्त शुद्ध हो गया और मेरी धर्ममें रति हो गयी। वे साधुगण प्रतिदिन हरिगुण गान करते थे और मैं उस मनोहर कथाको सुनता था। क्रमशः भगवानके प्रति मेरे मनमें भक्ति उत्पन्न हुई। जब बरसात बीत गयी, तब उन साधुओंने जाते समय मेरे ऊपर दया करके मुझे दिव्यज्ञानका उपदेश दिया। उसी ज्ञानके प्रभावसे मैं वासुदेवकी मायाका कुछ हाल जान सका हूँ।

हे ब्रह्मन्! उन भगवान वासुदेवका नामसंकीर्तन तीनों तापोंका नाश करनेवाला महौषध है। जो मनुष्य भगवान वासुदेवका ध्यान करता है, वही यथार्थ ज्ञानी है। हे वेदव्यास! तुम उसी विभुका यशकीर्तन करके सब जीवोंके क्लेश दूर करनेका मार्ग दिखाओ।

——०——

षष्ठ अध्याय

भगवद्भजनका विशेष फल और वेदव्यासको विश्वास करानेके
लिए नारद द्वारा अपने सौभाग्यका वर्णन

सूतजी बोले—हे ब्रह्मन्! नारदके जन्मकर्मकी कथा सुनकर वेदव्यासने पूछा—हे देवर्षे! साधुओंके चले जानेके बाद आपने क्या किया और पूर्वजन्मकी कथा किस तरह याद रही? इस बातको अच्छी तरह बताइये।

नारदजीने कहा—ब्राह्मणोंके दूर देश चले जानेपर मेरी माता

अबला स्त्रीजाति और पराधीन होते हुए भी मुझे यथेष्ट स्नेह करती थी। उस समय मेरी अवस्था पाँच वर्षकी थी। मैं उसीके साथ एक ब्राह्मणपरिवारमें रहने लगा।

एक दिन मेरी माता गाय दुहनेके लिए घरसे बाहर निकलीं तो मार्गमें काले साँपने आकर उनको काट लिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। अब मैंने उनकी मृत्युको भगवानकी कृपा समझकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। मैं घूमने लगा। अनेक राजधानियों, गाँवों, वनों और उपवनोंको पार करता हुआ एक भयंकर और बहुत बड़े वनमें जा पहुँचा। वहाँ मार्गकी थकावटके कारण भूख-प्याससे व्याकुल होकर मैंने एक झीलमें स्नान किया, जल पिया और नदीमें आचमन करके अपनी सारी थकावट दूर कर ली। उसके बाद एक पीपलके पेड़की जड़पर बैठ भक्तिपूर्वक भगवानका ध्यान करने लगा। जिसके फलस्वरूप भगवान मेरे हृदयमें आकर आविर्भूत हुए।

हे वेदव्यास! मैंने प्रेमभावसे उनका दर्शन कर लिया तो वे चले गये। उनको फिर सामने न देखकर मैं कातर हो उठा और पागलकी तरह उनकी खोजमें चक्कर काटने लगा। बादको वह ईश्वर गम्भीर और मधुर वचनोंमें बोले—हे नारद! अब तुम मुझे नहीं देख रहे हो। इससे निराश न हो मेरी सेवामें तत्पर रहकर इस निन्दनीय लोकको छोड़कर मेरे साथी हो सकोगे। मेरे अनुग्रहसे प्रलयके बाद भी तुम्हें मेरा स्मरण बना रहेगा। यह कहकर ईश्वर चले गये।

इसके बाद मैं क्रोध-ईर्षा आदि छोड़कर मत्सरहीन भावसे हरिगुण गाते-गाते पृथ्वीमें चारों ओर घूमने लगा। इस प्रकारकी

अवस्थामें कुछ दिनोंके बाद मेरी मृत्यु हो गयी। कल्पके अन्तमें विश्वका संहार होने लगा और भगवान जब अनन्तशय्यापर सो गये तो मैं उनके निःश्वासके सहारे उनके अन्दर चला गया। फिर जब सृष्टि हुई तब मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदि ऋषियोंके साथ मैं भी उत्पन्न हुआ।

हे वेदव्यास ! मैं तभीसे ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके देवताओंकी दी हुई इस वीणाको बजा-बजाकर हरिगुण गाता हुआ सर्वत्र घूमता रहता हूँ। पृथ्वीके किसी भी स्थानमें पहुँचनेमें मेरे लिए कोई रुकावट नहीं है। जिनके चरण-कमलसे गंगाजीकी उत्पत्ति हुई है, जिनका यश अत्यन्त मनोहर है, उन श्रीकृष्णकी लीला गाते समय वे मेरे हृदयमें आकर दर्शन देते हैं। मैंने भलीभाँति सोच-विचार करके जान लिया है कि हरिगुणगान करना ही संसार-समुद्रको पार करनेके लिए नावस्वरूप है।

हे वेदव्यास ! मेरे जन्म और कर्मकी जो बातें आपने पूछी थीं, मैंने तुम्हारे चित्तके सन्तोष देनेके लिए उनका वर्णन कर दिया।

सूतजीने कहा—वेदव्याससे इस प्रकार कहकर नारद बीणा बजा-बजाकर हरिगुण गाते हुए चले गये।

सप्तम अध्याय

अश्वत्थामाको दण्ड

शौनकने कहा—हे सूत ! नारदके चले जानेके बाद वेदव्यासने क्या किया ? सूतजी बोले—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिमी तटपर ऋषियोंके यज्ञोंको बढ़ानेवाला बेरके पेड़ोंसे घिरा शम्या-

प्रास नामक प्रसिद्ध आश्रम है। उसी स्थानपर बैठकर भगवान वेदव्यास ईश्वर चिन्तनमें लग गये। भक्तियोगसे उनका चित्त जब निर्मल हो गया तो उनको मायाका दर्शन हुआ। मायासे ही मोहित होकर सभी जीव अपनेको त्रिगुणात्मक समझने लगते हैं, इस बातको भी वे देख सके। श्रीकृष्णकी भक्ति करनेसे अमंगलका नाश होता है, यह देखकर उन्होंने अज्ञानी लोगोंकी भलाईके लिए श्रीमद्भागवतकी रचना की। इस संहिताको पढ़ने या सुननेसे परमपुरुष श्रीकृष्णकी कृपासे रोग, शोक, मोह, भय आदि सब कष्ट नष्ट हो जाते हैं और उनके प्रति भक्ति पैदा होती है। वेदव्यासजीने इस ग्रन्थकी रचना करके परमवैष्णव शुकदेवको पढ़ाया। शुकदेवजीने सदा परमात्माकी चिन्तामें लग और हरिगुणसे हृदयको भरकर इस महान् उपाख्यानको पढ़ा। हे मुनिगण! मैं आप लोगोंसे राजर्षि परीक्षितके जन्म-कर्म और मरणका विवरण और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आदिके महाप्रस्थान आदि सभी कथाओंका वर्णन कृष्णकथाके साथ-साथ कर रहा हूं।

कौरव-पाण्डवके युद्धमें जब कौरव वीर स्वर्ग सिधारे और भीमकी गदाका आघात लगनेसे दुर्योधनकी जाँघ टूट गयी, तब द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा रातके समय नींदमें सोयी हुई द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके सिर काटकर ले गया। यह दृश्य देखकर दुर्योधन आदि सभी लोग उसके इस निन्दनीय कर्मसे घृणा करने लगे। पुत्रोंका नाश देखकर द्रौपदीकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये और वे चिल्ला चिल्लाकर रोने लगीं। अर्जुनने सान्त्वना देकर कहा—हे भद्रे! मैं अभी उस दुरात्मा अश्वत्थामाका सिर काटकर

ला रहा हूँ। तुम जब उसपर खड़ी होकर स्नान करोगी तो तुम्हारा शोक दूर होगा। इस प्रकार सान्त्वना दे और धनुष-बाण लेकर अर्जुन अश्वत्थामाके पीछे दौड़े। अपनी कन्याके साथ रमण करनेको तैयार ब्रह्माको देखकर जैसे रुद्र त्रिशूल लेकर मार डालनेके लिए दौड़े थे और उस समय उन्हें देखकर ब्रह्माको जिस तरह हरिणका रूप धारण करके भागना पड़ा था, ठीक उसी तरह अश्वत्थामा अर्जुनको देखकर भागने लगा। किन्तु अश्वत्थामा कुछ ही देरमें थक गया। कोई बचानेवाला नहीं है, यह सोचकर उसने ब्रह्मास्त्रको ही अपना त्राणकर्ता सोच लिया। अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके उसे शान्त करनेका उपाय नहीं जानता था। किन्तु क्या करे, विपत्ति सामने आ गयी थी। अतएव आचमन करके उसने उसी ब्रह्मास्त्रको छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्रके भयंकर तेजसे चारों दिशाएँ जल उठीं। प्राणपर संकट देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णको पुकारकर कहा—हे कृष्ण! तुम भवभयभंजक हो, जीवोंका क्लेश दूर करनेवाले हो, आदि पुरुष हो, परमानन्दस्वरूप हो और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए अवतार लेते हो। हे कृष्ण! यह तेज कहाँसे आ रहा है और किस प्रकार यह उत्पन्न हुआ है, यह कुछ भी समझमें नहीं आ रहा है। यह क्या है, बताओ। श्रीकृष्णने कहा—हे अर्जुन! यह ब्रह्मास्त्र है। संकट सामने देखकर अश्वत्थामाने इसका प्रयोग किया है, किन्तु वह इसका संवरण करना नहीं जानता। हे अर्जुन! ब्रह्मास्त्रके बिना ब्रह्मास्त्रनिवारणका दूसरा कोई उपाय नहीं है। तुम अस्त्रविद्यामें निपुण हो। अतएव अपने अस्त्रतेजसे इसका निवारण करो।

सूतजी बोले—श्रीकृष्णके उपदेशसे अर्जुनने ब्रह्मास्त्र छोड़ा तो प्रलयकालीनके सूर्यके समान क्रमशः उसका तेज बढ़ने लगा। सभीने समझा कि प्रलयकाल आ गया है। इसके बाद श्रीकृष्णने तीनों लोकोंका विनाश होते देखकर दोनों अस्त्रोंको शान्त कर दिया। जब क्रोधसे आँखें लाल किये अर्जुन अश्वत्थामाको पशुकी तरह रस्सीसे बाँधकर अपने शिविरमें ले जानेको तैयार हुए तो उन्होंने अर्जुनसे कहा—हे अर्जुन! इसको इसी समय मार डालो। इस पापात्माने द्रौपदीके नींदमें बेसुध और निर्दोष पाँच पुत्रोंके सिर काट लिये हैं। यदि शत्रु मदिरा पी लेनेसे या वात आदि रोगसे पागल रहता है तो धर्मके जानकार लोग कदापि उसपर हथियार नहीं चलाते। बालक, स्त्रियाँ, जड़, शरणमें आये हुए, डरे हुए और रथहीन—ये सभी हर समय अवध्य हैं अर्थात् इनका वध न करना चाहिये। अतः हे अर्जुन! इस निष्ठुरका वध करनेमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार श्रीकृष्णने अनेक नीतिसंयुत बातें कहीं। फिर भी अर्जुन अपने महत्त्वपर दृष्टि रखकर गुरुपुत्र अश्वत्थामाको पुत्रहन्ता जानते हुए भी जानसे मार डालनेको राजी नहीं हुए। उसको अपने साथ लेकर शिविरमें आये और शोकमें पड़ी द्रौपदीको सौंप दिया।

पशुकी तरह बँधे हुए गुरुपुत्र अश्वत्थामाको देखकर शत्रु होनेपर भी द्रौपदीने उसे नमस्कार करके सम्भ्रमके साथ कहा—यह क्या? यह तो हम लोगोंके गुरु हैं। शीघ्र इनके बन्धन खोल दो। हे प्रभो! जिनकी कृपासे आपको अस्त्रशिक्षा मिली है, यह उनके ही पुत्र हैं। द्रोणाचार्यके निहत होनेपर भी उनकी अर्द्धांगिनी

पत्नी कृपीने अपने वीर पुत्रका मुँह देखकर ही सहमरण नहीं किया था। हे धर्मज्ञ! गुरुकुलको दुःखित करना आप लोगोंके लिए उचित नहीं है।

सूतजीने कहा—द्रौपदीकी बात सुनकर अर्जुन, भगवान वासुदेव, सहदेव आदि जो लोग वहाँ थे, सभी बहुत सन्तुष्ट हुए। किन्तु भीमको किसी तरह सन्तोष नहीं हुआ। वे ब्राह्मणवध करनेको तैयार हो गये। बादको अर्जुनने श्रीकृष्णका मनोभाव समझकर मणियोंके साथ उसके सिरके बाल काट लिये। तदनन्तर बन्धन खोलकर शिविरसे उसे बाहर निकाल दिया। ऐसा करनेसे श्रीकृष्णकी बात मान ली गयी। क्योंकि सिरके बाल काट देना, धन छीन लेना और अपने स्थानसे खदेड़ देना—ये ही सब ब्राह्मणोंके लिए दण्ड हैं। इनके अतिरिक्त शरीरवधका दण्ड नहीं है। इसके बाद द्रौपदीके साथ पाण्डव लोग मरे हुए स्वजनोंकी अन्तिम क्रियामें लग गये।

अष्टम अध्याय

श्रीकृषण द्वारा अश्वत्थामाके अस्त्रसे परीक्षितकी रक्षा, कुन्तीकी स्तुति और राजा युधिष्ठिरका शोक वर्णन।

सूतजी बोले—इसके बाद पाण्डव मरे हुए कुटुम्बी जनोंको जल देनेके लिए स्त्रियोंको आगे करके श्रीकृष्णके साथ गंगाजीके किनारे गये और रोते-रोते जाह्नवीके जलमें उन्होंने पुनः पुनः स्नान किया। इस समय भीम आदिके साथ राजा युधिष्ठिर अनमने होकर बैठे थे और धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी शोकसे कातर हो रही थीं। श्रीकृष्ण मुनियोंके साथ बैठकर उन

लोगोंको समझाने लगे कि द्रौपदीका केश पकड़नेके कारण दुर्योधन आदि पापी राजाओंकी आयु क्षीण हुई और उनका नाश हो गया है। श्रीकृष्णकी सहायतासे युधिष्ठिर आदिको पुनः राज्य मिला और वे तीन अश्वमेध यज्ञ करके देवराज इन्द्रके समान यशस्वी हुए।

इसके बाद श्रीकृष्णने सात्यकि और उद्धवके साथ रथपर चढ़कर द्वारका जाते समय मार्गमें देखा कि परीक्षितकी माता उत्तरा भयग्रस्त होकर दौड़ी चली आ रही है। वह पुकारने लगी—हे जगन्नाथ ! मेरी रक्षा कीजिये। हे प्रभो ! यह प्रचण्ड जलता हुआ बाण मुझे जला डाले, इसका कोई खेद नहीं है। किन्तु हे नाथ ! मेरा गर्भ न गिर जाय, इसका उपाय करिए। सूतजीने कहा—उत्तराका वचन सुनकर भगवानने समझ लिया कि अश्वत्थामाने पाण्डव वंशके नाशकी इच्छासे ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। तब भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रसे उस ब्रह्मास्त्रका निवारण करके उसके गर्भको बचा लिया। इसके बाद कुन्ती देवीके पाँचों पुत्रों और द्रौपदीने एक साथ मिलकर श्रीकृष्णकी स्तुति करना आरम्भ किया।

सूतजीने कहा—हे मुनिगण ! कुन्तीकी प्रार्थना सुनकर भगवान हँस पड़े। इसके फलस्वरूप सबके मनमें मोह उत्पन्न हो गया। फिर भगवान कुन्तीकी प्रार्थना स्वीकार करके हस्तिनापुर गये। राजा युधिष्ठिर ज्ञातिबन्धुओंका नाश हो जानेके कारण शोकसे व्याकुल हो गये थे। वेदव्यास प्रभृति ऋषियों और श्रीकृष्णके उपदेशसे भी शान्त न होकर वे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे।

नवम अध्याय

युधिष्ठिरके प्रति भीष्मका सर्वधर्म वर्णन, श्रीकृष्णकी स्तुति और मुक्तिकी कथा

सूतजी बोले—राजा युधिष्ठिर अधर्मसे भयभीत होकर सब धर्मोंको जान लेनेकी इच्छासे कुरुक्षेत्रके उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे। उनके साथ व्यास और धौम्य आदि ऋषि, श्रीकृष्ण और अर्जुन आदि पाँच भाई थे। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन लोगोंने देखा कि स्वर्गसे गिरे हुए देवताकी भाँति भीष्मदेव शरशय्यापर लेटे हुए हैं। पाण्डवोंने उनके निकट जाकर प्रणाम किया। इधर भीष्मजीको देखनेके लिए पर्वत नामक ऋषि, नारद, बादरायण, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुराम, वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, गृत्समद, कश्यप और बृहस्पति भी शिष्योंके साथ आ पहुँचे थे।

धर्मको जाननेवाले भीष्मदेवने इन लोगोंको आते देखकर यथाविधि इनकी पूजा की। भगवान श्रीकृष्णका प्रभाव वे अच्छी तरह जानते थे। अतएव उनकी भी पूजा की। पाण्डवोंको शोकाकुल देखकर भीष्मजी बोले—हे धर्मपुत्र! अपने ज्ञातिबन्धुओंके वियोगसे जीवन धारण करनेकी अनिच्छा तो घृणाकी बात है। श्रीकृष्ण तुम लोगोंके सहायक हैं, तब तुम इस तरह अनुताप क्यों कर रहे हो? हे वत्सगण! तुम लोगोंके पिता महारथी पाण्डुका देहान्त होनेपर कुन्ती माताने तुम अबोध बच्चोंके साथ बहुत कष्ट उठाया है। क्या वे भी तुम लोगोंको अप्रिय हो गयीं! यह सब कालका धर्म है। वायुके अधीन मेघकी तरह सभी लोग

कालके ही वशमें हैं। देखो, कालकी कितनी शक्ति है! जहाँ धर्मपुत्र स्वयं राजा हैं, भीम अस्त्रधारी हैं, अर्जुन धनुर्धारी हैं, गाण्डीव धनुष और श्रीकृष्ण सहायक हैं, वहाँ भी विपत्ति आकर उपस्थित हुई है। श्रीकृष्णकी इस व्यवस्थाको समझनेको शक्ति किसीमें भी नहीं है। पण्डित लोग भी मोहित हो जाते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! इन सभी बातोंको दैवाधीन समझकर उसी दैवका अनुसरण करो। यह तुम्हारे मामाके पुत्र जो मंत्री दूत या सारथि हैं, ये साक्षात् परमेश्वर हैं। परमेश्वर, समदर्शी और समान होते हुए भी भक्तजनोंपर इनकी कितनी दया है, यह तुम देख लो। मैं प्राण त्याग करने जा रहा हूँ। इसीलिए मेरे सामने स्वयं उपस्थित होकर ये मुझे दर्शन दे रहे हैं। योगीजन जिनका नाम मन-वचनसे कीर्तन करके अन्तकालमें मुक्त होते हैं, वही चतुर्भुज भगवान प्रसन्न वदनसे मेरे सम्मुख, जबतक मैं प्राण न छोड़ूँगा, तबतक ठहरे रहेंगे।

सूतजीने कहा—इसके बाद ऋषियोंके सम्मुख युधिष्ठिरने भीष्मदेवसे विविध धर्मोंका विवरण पूछा। भीष्मदेवने वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म, भगवद्धर्म, अपरधर्म, अर्थ, काम और मोक्षका विवरण वर्णन किया। भीष्मदेव योगी और इच्छामृत्यु थे। अर्थात् मृत्यु उनकी इच्छाके वशमें थी। उत्तरायणमें प्राणत्यागकी इच्छासे इतने दिनों तक वे शरशय्यापर लेटे हुए थे। युधिष्ठिरको धर्मकथा सुनाते-सुनाते मृत्युका समय आ गया और भगवान श्रीकृष्णको अपने हृदयमें रख और बारम्बार उन्हीं भगवानकी स्तुति करते-करते उन्होंने

प्राण छोड़ दिया। उनकी मृत्युके समय स्वर्गके देवता और मर्त्यलोकके मनुष्य बाजा बजाने लगे। देश-विदेशके राजे और साधु-सन्त धन्यवाद देने लगे और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी।

इस तरह भीष्मदेवके प्राण त्याग करनेपर युधिष्ठिर शवदाह आदि क्रिया समाप्त करके बड़े दुःखी हुए। मुनिगण इन सब घटनाओंको देखकर मन ही मन श्रीकृष्णका नामोच्चारण और उनकी स्तुति करते-करते अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। इसके बाद राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुर चले आये और शोकार्त धृतराष्ट्र और गान्धारीको सान्त्वना देने लगे। बादको जब धृतराष्ट्रने उनके राज्याभिषेक करनेका आदेश दिया तो श्रीकृष्णकी सम्मति ले और सिंहासनपर बैठकर युधिष्ठिर पिता-पितामहके राज्यका शासन करने लगे।

दशम अध्याय

श्रीकृष्णकी द्वारकायात्रा और महिलाओंकी स्तुति

इन सब कथाओंको सुनकर शौनकने पूछा—हे सूत! स्वजनोंको मारकर भाइयोंके साथ राज्यभोग करनेमें युधिष्ठिरको अवश्य संकोच हुआ होगा। राज्य-शासन कार्यमें लग जानेपर उन्होंने कैसा कार्य किया? सूतने कहा—भगवान श्रीकृष्ण परीक्षितकी रक्षा करके और युधिष्ठिरको राज्यका अधिकार दिलाकर आनन्दित हुए। भीष्मजीकी नीति और श्रीकृष्णके वचनोंसे युधिष्ठिरका मोह दूर हो गया और वे भगवानके शरणागत होकर अपने अनुजोंके साथ ससागरा पृथ्वीपर राज्य करने लगे। उनके

राज्यमें प्रजा धनधान्यसे पूर्ण होकर परम सुखसे रहने लगी। कुछ दिनों तक हस्तिनापुरमें रहकर श्रीकृष्ण फिर द्वारका चले गये। उनके जाते समय स्त्री-पुरुष सब मिलकर उनकी पूजा और स्तुति करने लगे और उनका संग छूट जाना उनको असह्य मालूम होने लगा। श्रीकृष्णकी इस यात्राके समय मंगलध्वनिसूचक तरह-तरहके बाजे बजने लगे। उस समय उनकी आश्चर्यजनक मूर्ति देखकर नगरकी स्त्रियाँ परस्पर मर्म भरी बातें कहने लगीं— हे सखी! श्रीकृष्णकी सुन्दरता देखकर आश्चर्यमें मत पड़ो, यह तो साक्षात् ईश्वर तथा पुरातन पुरुष हैं। इन्होंने ही कर्मोंकी विधि और वेदको प्रकट किया है। हे सखी! जितेन्द्रिय पण्डितगण भक्तियोगसे जिनके चरणोंका दर्शन करते हैं, यह वही पुरुष हैं। हे सखी! इन्होंने ही व्रजांगनाओं और सत्यभामा, रुक्मिणी जाम्बवती, नाग्नजिती आदि अबलाओंको स्वयम्वरमें ब्याहा था। उनके घरोंमें हृदयका आनन्द बढ़ानेवाले पारिजात वृक्ष आदि प्रिय वस्तुएँ मौजूद हैं। इसके बाद श्रीकृष्णके साथ पाण्डवगण कुछ दूर जाकर लौट आये। उनके जाते समय मार्गमें लोगोंने विविध उपहार लाकर श्रीकृष्णको समर्पित किये।

—।-।—

एकादश अध्याय

श्रीकृष्णका द्वारकापुरीप्रवेश

आनर्तनामक द्वारका देशके निकट जब श्रीकृष्ण पहुँचे और पाञ्चजन्य शंख बजाने लगे, तब द्वारकावासी प्रभुदर्शनके लिए उमड़ पड़े और सबने पूजा उपहार अर्पणकर उनकी स्तुति की।

भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण प्रजाजनोंके स्तुतिवाक्य सुनकर परम आनन्दसे नगरकी ओर चले। वह पुरी साधारण नहीं थी। श्रीकृष्णके समान ही बलवान मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णिगण चारों तरफ वैसे ही उसकी रक्षामें नियुक्त थे, जिस प्रकार पातालमें नागगणों द्वारा भोगवतीकी रक्षा होती है। द्वारकापुरीकी शोभा अपूर्व है। सरोवर तथा वृक्षों आदिसे परिपूर्ण होनेके कारण वह अतिशय मनोहर है। पुरीके बाहरी भागमें उत्सवके लिए कलश और केलेके वृक्ष लगाये गये हैं और चारों तरफ झंडे फहरा रहे हैं। फल-फूलोंसे घिरी रहने और धूप-दीप तथा पूजाके उपहार द्रव्योंसे उसकी शोभा बढ़ रही है।

यह सुनकर कि श्रीकृष्ण द्वारका लौट रहे हैं, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आनन्दसे विभोर हो तथा आहार-निद्रा छोड़कर मंगलके लिए आगे हाथी लिये ब्राह्मणोंके साथ रथपर सवार हुए और अगवानीके लिए गये। शंखध्वनि होने लगी, मन्त्रोंका पाठ होने लगा, नाच-गान होने लगे और भगवानके अद्भुत चरित्र गाये जाने लगे। समक्ष पहुँचकर लोग श्रीकृष्णसे मिलने, गले लगाने, दर्शन तथा हाथोंका संस्पर्श इत्यादि आनन्दजनक कार्य होने लगे। इसके बाद ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया। तब श्रीकृष्णने पुरीमें प्रवेश किया। पहले उन्होंने पिता-माताके घर जाकर प्रणाम किया और वे लोग उन्हें गोदमें लेकर आनन्द और स्नेहसे गद्गद हो गये। श्रीकृष्णका आगमन सुनकर पत्नियोंके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रही। इसके बाद श्रीकृष्ण अपनी पत्नियोंके साथ रहते हुए विहार करने लगे।

द्वादश अध्याय

परीक्षितकी जन्मकथा।

शौनकने परीक्षितकी जन्मकथा सुननेके लिए प्रश्न किया तो सूतजीने कहा—हे ब्रह्मन्! जिस समय श्रीकृष्णकी चरणसेवा करते हुए राजा युधिष्ठिर राज्य-शासन कर रहे थे, उस समय परीक्षित अपनी माताके गर्भमें थे। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे गर्भके अन्दर जलते हुए परीक्षितने यह दृश्य देखा कि कोई पुरुष कानोंमें कुण्डल और शरीरपर बिजलीकी भाँति सुनहला और पीला वस्त्र धारण किये खड़ा है। उसके चार हाथ थे, लाल-लाल दोनों आँखें थीं और हाथमें स्थित गदा चारों तरफ बार-बार घूम रही थी। जैसे सूर्य हिमका नाश करता है, उसी प्रकार उस गदाके प्रभावसे सभी अस्त्रोंका तेज नष्ट हो रहा था। इसी समय परीक्षितके सम्मुख ही वह महापुरुष विलीन हो गया।

इसके बाद शुभ घड़ीमें पाण्डुके वंशधर परीक्षितका जन्म हुआ। पौत्रका जन्म होनेसे राजा युधिष्ठिर आह्लादित हुए और जातकर्म आदि संस्कार नियमपूर्वक कराकर सन्ततिके मंगलके लिए सोना, गाय, भूमि आदि दान देनेका आदेश किया। ब्राह्मण लोग दान पाकर सन्तुष्ट हुए और सन्तानको विशेष आशीर्वाद देने लगे। गर्भस्थ बच्चेकी रक्षा विष्णुने की थी, इस कारण ब्राह्मणोंने इसका नाम विष्णुरात रखा। ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और बोले—हे साधुगण! क्या यह बच्चा अपने पूर्वपुरुषोंके मार्गपर चल सकेगा?

ब्राह्मणोंने कहा—यह बालक दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्रकी

भाँति ब्राह्मणोंका हितकारी और सत्यनिष्ठ होगा। यह उशीनर देशके अधीश्वर राजा शिविकी भाँति शरणमें आये हुए लोगोंकी रक्षा करेगा और भरतकी तरह पृथ्वीमें यशस्वी होगा। यह महापराक्रमी, क्षमा करनेवाला और माता-पिताकी तरह सहनशील होगा। आयुके अन्तिम समयमें ब्राह्मणपुत्र द्वारा भेजे गये तक्षकके काटनेसे इसकी मृत्यु होगी। यह संवाद सुनकर यह वैराग्य धारण करेगा और राज्य तथा धन त्यागकर भगवानके चरणोंकी शरण लेगा। अन्तमें महर्षि शुकदेवसे आत्मतत्त्व सीखेगा और फिर गंगाजीके जलमें प्राण त्याग करके ब्रह्मपद पायेगा। इस प्रकार ब्राह्मण लोगोंने राजाको भविष्यफल सुनाया और पूजा ग्रहण करके अपने-अपने घर चले गये। बादको वही बालक परीक्षित नामसे प्रसिद्ध हुआ।

कर और दण्डके अतिरिक्त राजा युधिष्ठिरको और किसी उपायसे धन नहीं मिलता था। जाति अर्थात् स्वजनोंके विद्रोहसे जो पाप हुआ था, उसे दूर करनेके लिए श्रीकृष्णके कथनानुसार मरुत्त राजाके यज्ञमें सोनेके बरतन आदि जो धन छोड़ दिया गया था, उसे मँगवाकर यज्ञकार्य सम्पन्न किया। बादको श्रीकृष्ण कुछ दिन वहाँ रहकर अर्जुनको अपने साथ लिये हुए द्वारका चले गये।

त्रयोदश अध्याय

विदुरके कहनेसे धृतराष्ट्रका महापथ यात्राके लिए निकलना और पौत्रको राज्य देकर युधिष्ठिरका महाप्रस्थान करना

तीर्थयात्रा करके विदुर सुमन्तुसे अपनी गति, श्रीकृष्णके

सम्बन्धमें जानकारी और तत्त्वज्ञान पाकर हस्तिनापुर लौट आये। विदुरको लौटा देखकर धृतराष्ट्र, सात्यकि, सूत, कृप, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी और अन्य सभी स्त्रियोंको परम आनन्द हुआ। युधिष्ठिरने यथाविधि उनका सत्कार किया। भोजन आदिके बाद जब वे सुखपूर्वक बैठ गये, तब तीर्थभ्रमण और यादवोंका कुशलसंवाद पूछे जानेपर विदुरने जहाँपर जो-जो देखा था, वह सब वर्णन किया। किन्तु यदुवंशके ध्वंसकी कथा नहीं सुनायी।

इसके बाद विदुर कुछ दिन वहाँ रहकर बड़े भाई धृतराष्ट्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश देने लगे। लोग विदुरको शूद्र ही समझते थे, किन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं थी। वह तो स्वयं यमराज पाण्डव्य मुनिके शापसे पृथ्वीपर आये थे। वे जितने दिनोंतक पृथ्वीपर थे, उतने दिनोंतक सूर्यदेवको यमलोकमें यमस्वरूप होकर पापियोंको दण्ड देनेका कार्यभार सम्हालना पड़ा था। राजा युधिष्ठिर राज्य पा और वंशकी रक्षा करनेवाले अपने पौत्रका मुख देखकर भाइयोंके साथ राज्यभोग करते हुए आनन्दसे समय बिताने लगे। इस गृहकार्यमें रत रहनेके कारण उनकी परमायु अनजानमें ही क्षीण हो गयी। उन लोगोंकी आयुको समाप्त जानकर विदुर धृतराष्ट्रके पास गये और बोले—हे प्रभो! आपकी मृत्युका समय आ पहुँचा है। हे राजन्! आपके पिता, माता, पुत्र, बन्धु-बान्धव सभी नष्ट हो चुके हैं। आपकी अवस्था भी बीत चुकी है। शरीर जीर्ण हो गया है। कानसे सुनाई नहीं पड़ता। आँखोंमें दर्शनशक्ति है ही नहीं। इस कारण बुद्धि भी मन्द हो

गयी है। दाँत टूट गये हैं और उदराग्निका तेज घट गया है। ऐसी अवस्थामें अब घरपर रहनेका क्या काम है? अहो! जीवनकी आशा कैसी भयानक होती है। हे राजन्! जिस भीमने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, तुम कुत्तेकी भाँति जीवनकी आशामें उसीका अन्न खा रहे हो? हे महाराज! जिनको आपने आगमें झोंककर जलाया, जहर खानेको दिया, धन छीन लिया, जिनकी स्त्रीको लज्जित किया, अब उन्हीं लोगोंका अन्नदान लेकर तुम प्राण धारण कर रहे हो। तुम्हारा इस तरह जीवित रहना ठीक नहीं है। हे महाराज! तुम्हारा जीवन चिरकाल तक तो नहीं रहेगा। जो व्यक्ति हरिनाम जपते हुए घर छोड़कर चले जाते हैं, वे ही नरोत्तम हैं। हे राजन्! तुम कुछ भी नहीं हो, अब तुम्हारा काल आ पहुँचा है।

विदुरका वचन सुनकर धृतराष्ट्रको ज्ञान हुआ और संसारबन्धनरूपी मायाको त्यागकर वे हिमालय पर्वतको चले गये। पतिव्रता गान्धारी भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं। दूसरे दिन अपने पितृव्य और गान्धारीको न देखकर राजा युधिष्ठिरने संजयके पास जाकर पूछा—हे संजय! ये लोग कहाँ हैं? संजय अनमने होकर कुछ देर बाद आँखोंका आँसू पोंछकर बोले—हे कुलनन्दन! आपके चाचा और चाचीके सम्बन्धमें मैं कुछ नहीं जानता। वे लोग मुझे धोखा देकर न मालूम कहाँ चले गये हैं। यह बात सुनकर राजा खेद प्रकट कर रहे थे कि उसी समय वीणा हाथमें लिये नारदमुनि वहाँ आ पहुँचे। नारदको देख उन सभी लोगोंने उठकर स्वागत-सम्भाषणादिसे भक्ति दिखाते हुए उन्हें बैठाया। युधिष्ठिरने

कहा—हे देवर्षि ! मेरे पितृव्य और उनकी पत्नी कहाँ हैं? राजाको व्याकुल देखकर नारदने कहा—हे राजन्! व्यर्थका शोक छोड़ दो। कोई भी कालको नहीं टाल सकता। असुरोंका नाश करनेके लिए भगवान द्वारकामें अवतीर्ण हुए हैं। देवताओंका सब काम समाप्त हो चुका है। अब यदुकुलका नाश करनेके लिए ठहरे हुए हैं और वह कार्य पूरा हो जानेके साथ ही वे अपने धामको चले जायँगे। तुम्हारे पितृव्य अपनी पत्नीके साथ ऋषियोंके स्थान हिमालयके दक्षिण भागमें चले गये हैं। वहाँ सुरधुनी गंगाजी सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेके लिए सात धाराओंमें बहती हैं। उस स्थानको सप्तस्रोत तीर्थ कहते हैं। हे राजन्! तुम्हारे पितृव्य पुत्र आदिकी माया छोड़कर जलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं खाते। वे विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र भावसे केवल पूजा और होम कर रहे हैं। हे राजन्! योग अवलम्बन करके वे दिन-रात हरिनाम जपते और ध्यान तथा जपमें ही लगे रहते हैं। काल उपस्थित होनेपर उनकी पत्नी पतिके साथ प्राण त्यागेगी। हे राजन्! इस आश्चर्यजनक घटनाको देखकर विदुर अपने भाईकी सद्गति जानकर आनन्दित हुए और उनके मरणसे उदास होकर फिर तीर्थयात्राके लिए चले गये। देवर्षि नारद इस तरह बात करके वीणा बजाते हुए स्वर्गको चले गये। युधिष्ठिरने भी उनके वचनोंको हृदयमें रखकर शोक छोड़ दिया।

चतुर्दश अध्याय

राजा युधिष्ठिरका अशकुन देखकर भयग्रस्त होना और अर्जुनके
मुँहसे श्रीकृष्णके तिरोधानका समाचार सुनना।

कई महीने बीत गये। श्रीकृष्णके यहाँसे अर्जुनके लौटनेमें

देर होने लगी। इधर दिन-पर-दिन राजा युधिष्ठिरको अपशकुन दीखने लगे। ऋतुओंका नियम टूट गया। कालकी गति उलटी हो गयी। लोगोंमें क्रोध बढ़ने लगा। झूठ, धोखेबाजी, झगड़े आदि कुकर्म प्रतिदिन बढ़ने लगे।

इस प्रकार अधर्मका समय उपस्थित देखकर राजा युधिष्ठिर भीमसे कहने लगे—भैया! सात महीने बीत चुके, किन्तु तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन द्वारकासे अब भी नहीं लौट रहे हैं। कुछ समझमें नहीं आता कि क्या बात है। देवर्षि नारदके कथनानुसार क्या वह दिन अब आ गया है? श्रीकृष्णके वियोगके बिना हम लोगोंका कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। नाना प्रकारके अमंगल देखकर युधिष्ठिर चिन्ता और खेदसे दुःखी हो रहे थे, इसी समय अर्जुन आ पहुँचे। अर्जुनने राजाके पैरोंपर झुककर प्रणाम किया और आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगे। तब उन्हें स्वजनोंके बीच बिठाकर युधिष्ठिर द्वारकाका समाचार पूछने लगे।

युधिष्ठिरने पूछा—द्वारकाका क्या समाचार है? सभी सकुशल हैं न? इस तरहके और भी प्रश्न पूछकर बोले—अर्जुन! तुम्हारे विषादका क्या कारण है? बताओ।

पञ्चदश अध्याय

कलिका प्रवेश देख परीक्षितको राज्य देकर युधिष्ठिरका स्वर्गारोहण।

राजा युधिष्ठिरकी बात सुनकर अर्जुनका चित्त शोकसे व्याकुल हो उठा। नेत्रोंका जल पोंछते-पोंछते गद्गद वचनोंमें वे कहने

लगे—महाराज ! परम मित्र श्रीकृष्ण हम लोगोंको धोखा देकर अपने धामको चले गये। हाय महाराज ! जिनकी सहायतासे चक्रमें घूमती हुई मछलीको बींध तथा सभी राजाओंको हराकर द्रुपद राजाकी कन्या द्रौपदीको स्वयंवरमें मैंने प्राप्त किया। जिनके निकट रहकर देवताओंके साथ देवराज इन्द्रको परास्त करके खाण्डव वनको जला दिया। जिनकी कृपासे मयदानव मिला। जिसने आपके राजसूय यज्ञमें अपूर्व मायामय सभामण्डपका निर्माण किया। जिनके तेजकी सहायतासे महाबलवान भीमने यज्ञकार्यके लिए जरासन्धका वध किया। जिन दुरात्माओंने सभामण्डपके बीच द्रौपदीको केश पकड़कर घसीटा था, उन लोगोंकी स्त्रियोंको जिन्होंने विधवा बनाकर केशहीन कर दिया था। शत्रुओंने हम लोगोंको घोर शापमें डालनेके लिए दोपहरके असमयमें दस हजार शिष्यके साथ भोजनके लिए दुर्वासाको भेज दिया तो उस समय कृष्णजीके बटलोईमें सटा सागमात्र खाकर सबका पेट भर गया और वे लोग तृप्त होकर चले गये। जिनकी कृपासे मैंने गिरिजा तथा पशुपतिको सन्तुष्ट करके पशुपति अस्त्र प्राप्त किया। जिनके प्रभावसे मैं इस शरीरसे इन्द्र-भवनमें इन्द्रके साथ अर्ध आसनपर बैठा। हे महाराज ! आज उन्हीं श्रीकृष्णने मुझे धोखा दिया है। इस प्रकार श्रीकृष्णका चरित्र वर्णन करते-करते अर्जुनकी मोहमाया छूट गयी। भगवानके प्रति भक्तिका उदय हुआ और वे शोकशून्य हो गये। इसके बाद नारदका वचन स्मरण करके राजा युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका विचार कर लिया। कुन्तीने अर्जुनके मुँहसे यादवोंका विनाश

और श्रीकृष्णकी महायात्रा सुनकर भगवानको आत्मसर्पण करके प्राण त्याग दिया।

जिस दिन भगवान श्रीकृष्ण स्वर्ग चले गये, उसी दिनसे कलिका प्रादुर्भाव होने लगा। इन सब बातोंको जानकर राजा-युधिष्ठिरने महाप्रस्थान करनेके लिए उसके अनुकूल कपड़े पहिने। इसके बाद अपने ही समान पौत्रको ससागरा पृथ्वीका अधिपति बनाकर हस्तिनापुरके सिंहासनपर बैठाया। अनिरुद्धके पुत्र वज्रको उन्होंने मथुरामें सूरसेनाधिपति बनाया। इसके बाद वस्त्राभूषण त्याग करके वे बाहर निकले और ब्रह्मका ध्यान करते-करते उत्तर दिशाको चल पड़े। युधिष्ठिरके भाइयोंने भी उसी रास्तेको पकड़ा। विदुर तीर्थ-भ्रमण करते हुए प्रभास-तीर्थमें पहुँचे और वहींपर उन्होंने अपना प्राण छोड़ दिया और द्रौपदी भी वासुदेवमें चित्त लगाकर उनको प्राप्त हुई। जो लोग भगवानके प्रिय पाण्डु-पुत्रोंके इस पवित्र और मंगलमय प्रस्थानका विवरण श्रद्धाके साथ सुनते हैं, वे श्रीकृष्णके चरणोंकी भक्ति पाकर सिद्धि पा जाते हैं।

——०——

षोडश अध्याय

कलिसे कष्ट पाकर धर्मका राजा परीक्षितके पास पहुँचना।

सूतने कहा—हे शौनक! इसके बाद भगवद्भक्त परीक्षित राजसिंहासनपर बैठकर ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार राज्य चलाने लगे। कुछ दिनों बाद इरावती नाम्नी राजपुत्रीसे उन्होंने विवाह किया। इरावतीके गर्भसे जनमेजय आदि चार पुत्रोंका जन्म

हुआ। राजा परीक्षितने कृपाचार्यको गुरु मानकर गंगाजीके तटपर तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उस यज्ञको देवताओंने भी देखा था।

एक बार राजा दिग्विजयके लिए निकले तो एक स्थानपर उन्होंने देखा कि एक शूद्र राजचिह्न धारण करके दो गायोंको लातसे मार रहा है। राजाने उस शूद्रको दण्ड दिया। उन्होंने वह दण्ड साक्षात् कलिको ही दिया था।

इन बातोंको सुनकर शौनक मुनिने सूतसे पूछा—राजाने उसी समय उस शूद्रका वध क्यों नहीं कर दिया? हे सूत! इन सब बातोंमें यदि कोई धर्मका प्रसंग हो तो मुझे बताओ। यदि धर्मका प्रसंग न हो तो कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ऐसी बातोंसे वृथा समय नष्ट होता है। इस समय भगवान यम हमारे पशु-हिंसाहीन यज्ञमें आये हुए हैं। जितनी देरतक वे रहेंगे, उतनी देरतक किसीकी मृत्यु नहीं होगी। आज-कलके मनुष्य अल्पायु हैं, कम बुद्धि रखते हैं, जीवनकाल थोड़ा है और उसका भी सदुपयोग नहीं होता। रात्रिके समयकी आयु नींदमें और दिनके समयकी आयु असत् कर्मोंमें बीत जाती है।

सूतने कहा—हे ब्रह्मन्! कलिका आगमन सुनकर राजा परीक्षितने दुष्टोंका दमन करनेकी इच्छासे सैन्य-सामन्तोंके साथ घोड़ेपर सवार होकर क्रमशः भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु, किम्पुरुष आदि देशोंको जीता और सब राजाओंसे कर संग्रह किया। उन स्थानोंके लोगोंके मुँहसे अपने पूर्व पुरुषोंका यश सुन और श्रीकृष्णके प्रति उनकी भक्ति देखकर राजा बहुत आनन्दित हुए। ऐसे ही समय एक आश्चर्यजनक घटना

घट गयी, उसे तुम सुनो। धर्मने वृषका रूप धारण करके एक पैरसे घूमते-घूमते देखा कि पृथ्वी गायका रूप धारण करके मृतवत्सा माताकी भाँति रो रही है। उसके पास जाकर धर्मने पूछा—भद्रे ! कुशल तो है ? ऐसा मलिन वदन, तीन पैर टूटे हुए, कृश, उदास, क्षोभ और शोकसे युक्त तुम क्यों दिखाई पड़ रही हो ? किस कारण तुम इतनी दुखी हो ?

पृथ्वीने धर्मकी बात सुनकर कहा—हे धर्म ! तुम तो सभी बातें जानते हो। पहले जिनकी कृपासे मेरे चार पैर थे और मुझमें ये गुण थे—सत्य, शौच, दया, क्षमा, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तपस्या, शत्रु-मित्रमें समता, दूसरोंका अपराध सहन करना, लोभ न करना, शास्त्रविचार, आत्मज्ञान, तृष्णामुक्त रहना, शासन, शूरता, प्रमादहीनता, दक्षता, कर्तव्यका अनुसन्धान, स्वाधीनता, कार्यनिपुणता, सौन्दर्य, धैर्य, चित्तकी कोमलता, प्रतिभा, विनय, सुस्वभाव, मन और ज्ञानेन्द्रियकी पटुता, गम्भीरता, स्थैर्य, श्रद्धा, कीर्ति, पूजा और अहंकारहीनता—उन्हीं भगवान श्रीकृष्णके विरहमें पापकी वृद्धि और कलिका आगमन देखकर मैं शोक कर रही हूँ। देवता, ऋषि, पितर, साधु तथा सब वर्णोंमें अपनी आत्मा और तुमको देखकर मुझे खेद हो रहा है। हे धर्म ! ब्रह्माने कमलाको पानेकी इच्छासे बहुत दिनों तक कठोर तपस्या की थी। उस कमलाने कमलावास छोड़कर श्रीकृष्णकी चरण सेवा की। उसको क्या साधारण विरह क्लेश है ? पृथ्वीने फिर कहा—जिन भगवानके ध्वज, वज्र, अंकुश और कमलचिह्नित चरणोंसे मैं अलंकृत हुई थी, आज वे ही भगवान मुझे छोड़कर

चले गये हैं। इस प्रकार पृथ्वी और धर्मके बीच श्रीकृष्णविरहकी बातें हो रही थीं। इन बातोंको सुनकर राजा परीक्षित सरस्वती नदीके किनारे जा पहुँचे।

सप्तदश अध्याय

परीक्षित द्वारा कलिको दण्ड

सूतजीने कहा—हे शौनक! राजा परीक्षितने सरस्वतीके तटपर जाकर देखा कि एक वृष और गायका पीछा करके एक शूद्र लाठीसे उन्हें मार रहा है। सफेद बैल मार खाकर एक पैरसे काँपता हुआ भयभीत होकर मल-मूत्र त्याग रहा है। शूद्रकी मारसे पृथिवीरूपिणी गाय मानो अपना बछड़ा खोकर शोकसे रो रही थी। बहुत दुबली हो जानेके कारण वह धीरे-धीरे घास चरती जाती थी। ऐसी अवस्था देखकर राजा परीक्षितने उस शूद्रसे पूछा—तू कौन है और अहंकारसे उन्मत्त होकर इन कमजोर प्राणियोंको क्यों मार रहा है? श्रीकृष्ण और अर्जुन अब यहाँ नहीं हैं। क्या इसीलिए तू ऐसे निरपराध प्राणियोंको सता रहा है? जो हो, तू बहुत बड़ा अपराधी है। तुझे प्राणदण्ड मिलना चाहिये। इसके बाद राजा परीक्षितने उस बैल और गायसे पूछा कि तुम लोगोंकी ऐसी हालतका क्या कारण है? यह प्रश्न सुनकर बैलरूपी धर्म कहने लगा—महाराज! किस कारण यह दुःख आया है, यह तो मैं जान नहीं सका। नास्तिकोंका कहना है कि जीव आप ही अपने दुःखका कर्ता है, कर्म या दैव दुःखका कर्ता नहीं है। ज्योतिषियोंका कहना है कि ग्रहोंके कारण सुख

दुःख मिलते हैं। नास्तिक कहते हैं कि यह स्वभावका फल है। महाराज! आप तो विद्वान् हैं। विचार करके समझिये। सूतजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! राजा परीक्षितने विचार करके कहा—तुम्हीं धर्म हो और वृषका रूप धारण करके घूम रहे हो। शास्त्र कहता है कि हत्यारेको जानकर भी बताना नहीं चाहिये। नहीं तो नरकमें जाना पड़ता है। हे धर्म! सत्ययुगमें तपस्या, शौच, दया, सत्य इन चारोंसे तुम्हारे चार पैर थे। अब कलिके प्रभावसे तुम्हारे तीन पैर टूट गये हैं। केवल सत्य ही एक पैर शेष रह गया है। श्रीकृष्णचन्द्र तुमको छोड़कर चले गये हैं। इसीलिए तुम्हारी आँखोंसे आँसू बह रहा है। शूद्र तुम्हें खा जायँगे, यह सोचकर तुम शोक कर रहे हो। इस प्रकार राजाने धर्मको समझाया और कलिको मार डालनेके लिए तलवार उठा ली। कलि राजा परीक्षितको हाथमें तलवार लिये देखकर प्राणभयसे व्याकुल हो और अपना राजवेश छोड़कर उनके पैरोंपर गिर पड़ा।

राजा परीक्षित बड़े दयालु थे। कलिको पैरपर पड़े देखकर दयावश उसका प्राणनाश न करके हँसते हुए बोले—हम वीर अर्जुनके यशकी रक्षा करते हैं। तुम शरणागत हो गये हो, इस हेतु छोड़ रहा हूँ। तुम अधर्मके परम मित्र हो। मैं कहता हूँ कि मेरे राजमें कहीं भी तुम न रहने पाओगे। तुम्हारे रहनेसे लोभ, मिथ्या, चोरी, विवाद, अहंकार और दरिद्रता आदिकी बढ़ती होती है।

सूतने कहा—हे विप्र! परीक्षितकी बातें सुनकर कलि भयसे काँपने लगा। उसने पूछा—ऐसी अवस्थामें आप ही बताइये कि

मैं कहाँ जाकर रहूँ ? राजाने कहा—तुम वेश्या, मदिराकी दूकान और जुएके अड्डेपर रहोगे। इन चारोंके अतिरिक्त उसने अपने लिए और भी आश्रय माँगा तो राजाने कहा—तुम सोनेमें भी रह सकोगे। इस तरह कलिके लिए उन्होंने पाँच स्थान नियत कर दिये। वृषरूपी धर्मको राजाने फिर चार पैर प्रदान करके पृथ्वीको भी आश्वासन दिया। इस प्रकार अभिमन्युपुत्र परीक्षित कलिको सजा देकर निर्विघ्न हस्तिनापुरमें रहते हुए पृथ्वीका पालन करने लगे।

——०——

अष्टादश अध्याय

परीक्षितको ब्रह्मशाप और वैराग्यप्राप्ति

सूतजी बोले—हे ऋषिगण ! एक दिन राजा परीक्षित शिकारके लिए वनमें गये तो प्याससे कातर होकर शमीक ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे। उस समय ऋषि ध्यानमग्न थे। इस कारण राजाका आगमन नहीं जान सके। मोहमें पड़ जानेके कारण राजाने समझा कि तपस्याके अहंकारवश ऋषिने मेरा आदर-सत्कार नहीं किया। भूख और प्याससे कातर राजा क्रुद्ध होकर आश्रमसे बाहर निकले तो पास ही एक मरा हुआ साँप दिखाई पड़ा। धनुषके अग्रभागसे उसे उठाकर उन्होंने ऋषिके गलेमें डाल दिया और वहाँसे चले गये। बादको राजाने सोचा कि ऋषि तो आँखें बन्द करके ध्यान कर रहे थे। मरा हुआ साँप उन महर्षिके गलेमें डालना अच्छा नहीं हुआ। इसके बाद

एक लड़केने आकर शमीक ऋषिके पुत्र शृंगी ऋषिसे कहा कि कोई तुम्हारे पिताके गलेमें मरा साँप डाल और उनको अपमानित करके चला गया है। यह बात सुनते ही शृङ्गीने क्रोधित हो तिरस्कार करते हुए कौशिकी नदीके जलमें आचमन करके कहा कि जिस दुरात्माने मेरे पिताका अपमान किया है, उसे मैं शाप देता हूँ कि आजसे सातवें दिन महासर्प तक्षक काट लेगा। इसके बाद आश्रममें आ और पिताके गलेमें मरा साँप देख वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

हे ब्रह्मन्! पुत्रकी रुलाई सुनकर आँखें खोलनेपर शमीक ऋषिने देखा कि उनके गलेमें मरा हुआ साँप झूल रहा है। उसे उन्होंने गलेसे उतारकर दूर फेंक दिया। फिर पुत्रसे पूछा—बेटा! रोते क्यों हो? समस्त विवरण सुनकर वे अपने पुत्रका तिरस्कार करते हुए कहने लगे—बेटा! तुम निरे बालक ही हो। तुम्हारी बुद्धि बहुत कच्ची है। राजा विष्णुस्वरूप होता है। उसे इस छोटेसे पापका बहुत बड़ा दण्ड मिला है। ऐसे दयालु, यशस्वी, भगवद्भक्त राजाको ऐसा शाप देना उचित नहीं हुआ। राजाके न रहनेपर राज्यमें अराजकता उपस्थित हो सकती है। इसके बाद उन्होंने फिर कहा—यदि राजा भी बदलेमें शाप दे दें तो मेरे पुत्रको इस पापसे छुटकारा मिल सकता है। किन्तु राजा तो परम भागवत हैं। किसीसे अपकार होनेपर भी वे उसका बदला नहीं लेते।

इधर राजा परीक्षितने अपकारको न समझकर शृंगी ऋषिके अपराधपर कुछ ध्यान नहीं दिया। साधुओंका कहना है कि

आत्माको सुख-दुःख कुछ भी नहीं होता। इससे हमारा क्या बनता बिगड़ता है ?

ऊनविंश अध्याय

शरीरत्यागके लिए राजा परीक्षितका गंगातटपर जाना और शुकदेवका आगमन

राजा परीक्षित सरस्वती नदीके तटपर जाकर सोचने लगे—उन निरपराध ऋषिका घृणा वश अपमान करके मैंने महापाप किया है। मैं अत्यन्त अशिष्ट हूँ। ब्रह्मकोपसे इसी समय मेरा राज्य, धन और बल आदि सभी भस्म हो जाय, मैं यही चाहता हूँ। इस तरहकी चिन्तामें वे पड़े हुए थे कि शमीक ऋषिका एक शिष्य वहाँ आ पहुँचा और शापकी बात बताते हुए उसने कहा कि सातवें दिन तक्षकके काटनेसे आपकी मृत्यु हो जायगी। यह बात सुनकर राजा आनन्दित हुए और श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण करके गंगाजीके तटपर चले गये। गंगाजीके किनारे रहकर वे श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे। उसी समय अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, सुबाहु, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भरद्वाज, गौतम, मैत्रेय, और्ब्ब, कवष, अगस्त्य, वेदव्यास, नारद आदि अन्यान्य देवर्षि और राजर्षिगण शिष्योंके साथ वहाँ आ उपस्थित हुए। राजा परीक्षितने उन लोगोंकी यथोचित पूजा-बन्दना की। राजा परीक्षित प्राणत्याग करनेके लिए बैठे तो स्वर्गसे देवतागण आनन्दित होकर प्रशंसा करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने और उनको भूरि-भूरि धन्यवाद देने लगे।

इसके बाद सभीने कहा कि परीक्षितकी मृत्युके समयतक हम लोग यहाँ ही रहेंगे। मरणकालमें मनुष्यको किस धर्मका पालन करना चाहिये, इस प्रश्नपर ऋषियोंमें मतभेद उपस्थित हो गया। किसीने कहा कि यज्ञ-याग ही विशुद्ध धर्म हैं। किसीने कहा योग धर्म है। किसीने तपस्या और किसीने दानको धर्म कहा। इस तरह वे लोग परस्पर विवाद करने लगे। उसी समय व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी वहाँ आ पहुँचे। उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। उनके आनेपर सभी लोग उठ खड़े हुए। शुकजीको चारों तरफसे घेरकर लड़के खिलवाड़ कर रहे थे। उनका शरीर सुकोमल था। दोनों आँखें बड़ी-बड़ी थीं। मनोहर ऊँची नासिका और दोनों कान परस्पर समान शोभा पा रहे थे। दोनों भौंहें मुखको सुशोभित कर रही थीं। भुजाएँ घुटनोंतक फैली हुई थीं। केश विस्तृत थे। शरीरका रंग साँवला था और उसमें असीम तेज तथा आश्चर्यजनक कान्ति चमक रही थी।

यह देखकर कि शुकदेवका सभी लोग विशेषरूपसे आदर-सम्मान कर रहे हैं, स्त्रियों और बालकोंने भी आश्चर्यमें पड़कर उनकी पूजा की। सबके बीचमें बैठे हुए शुकदेवजी तारागणोंके मध्य चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। राजा परीक्षितने भी दोनों हाथ जोड़कर अनेकशः स्तुति और विनय करते हुए शुकदेवजीसे पूछा कि मरणसमय उपस्थित होनेपर कौन-सा कार्य करनेसे सिद्धि मिल सकती है। शुकदेवजीने उनके प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया।

प्रथम स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

द्वितीय स्कन्ध

प्रथम अध्याय

श्रवण और संकीर्तनके द्वारा भगवानमें मनकी धारणा और महापुरुषकी कथा

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! गृहस्थोंके सुनने योग्य बहुत सी बातें हैं। क्योंकि उनकी आयु व्यर्थ नष्ट होती है। रातका समय नींदमें पड़े रहने या स्त्रीके साथ मौज उड़ाने और दिनका समय धन कमानेकी चेष्टा और परिवार पालन करनेमें व्यतीत होता रहता है। हे राजन् ! पुत्र परिवार आदि मिथ्या हैं। जो व्यक्ति मुक्ति पाना चाहे उसे भगवान श्रीहरिका स्मरण, उनके गुणश्रवण तथा नामसंकीर्तनमें लगे रहना चाहिये। अन्तिम समयमें नारायणका स्मरण होना ही मनुष्यजन्मकी सार्थकता है। मुनि लोग भी श्रीहरिके गुणोंका संकीर्तन करनेमें

आनन्द प्राप्त करते हैं। हे महाराज! मैं आपको जो पुराण सुना रहा हूँ, वह भगवान वेदव्यासका कहा हुआ है। इसका नाम भागवत है। यह वेदके समान प्रधान और अपूर्व पुराण है। द्वापर युगके आरम्भमें अपने पिता कृष्णद्वैपायनसे कृष्णलीलाके प्रति मनमें आकर्षण उत्पन्न होनेपर मैंने इसको पढ़ा। हे राजन्! तुम भगवानके परमभक्त हो। अतएव मैं तुमको यह शास्त्र समझाकर कह रहा हूँ। इसपर श्रद्धा करनेसे भगवानमें चित्त लगता है। फल चाहनेवालोंको इससे फलप्राप्ति होती, मुक्तिकी इच्छा करनेवालोंको मोक्ष मिलता और ज्ञानियोंको ज्ञान प्राप्त होता है। इससे बढ़कर साधकों और सिद्ध पुरुषोंके लिए परमकल्याणकी सामग्री और कुछ नहीं है।

हे राजन्! तुम्हारी आयु और थोड़ी-सी बाकी है। यह समझकर टालमटोल मत करो। अनेक वर्षोंमें जो काम नहीं होता, वह यत्न करनेसे एक ही मुहूर्तमें पूरा हो जाता है। हे राजन्! खट्वांग नामक ऋषि अपनी परमायु समाप्त जानकर एक मुहूर्तमें सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीहरिकी शरणमें चले गये थे। तुम्हारे जीवनके तो अब भी सात दिन बाकी हैं। इस बीच अच्छी तरह परलोकका काम बन जायगा। अन्तिम काल उपस्थित होनेपर सब त्याग करके तीर्थदर्शन और दिन-रात ईश्वरचिन्तन करना चाहिये। रज और तमोगुणसे मन विचलित होता है। उस हालतमें धारणाकी सहायतासे उसे ठीक कर लेना चाहिये। धारणासे भक्तियोग सिद्ध होता है। महाराज परीक्षितने पूछा कि धारणाकी विधि क्या है। उत्तरमें शुकदेवजीने कहा—हे

राजन्! पहले भगवानके स्थूल रूपमें मनको लगाना चाहिये। भगवानकी विराट मूर्ति बहुत स्थूल है। इसीसे यह समस्त विश्व प्रकट हुआ है। ब्रह्माण्डरूपमें यह विराट पृथ्वी है। यह जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व—इन आच्छादनोंसे ढकी हुई है। इस विराट मूर्तिके पैरोंका तल भाग पाताल है। पैरोंका अगला और पिछला भाग रसातल है। पैरकी एँड़ी महातल है। दोनों जाँघें तलातल हैं। दोनों घुटने सुतल हैं। दोनों घुटनोंका निचला भाग बितल और अतल है। नितम्ब महीतल है और नभोमण्डल नाभि-सरोवर है। इसके अतिरिक्त स्वर्गलोक जाँघ, महर्लोक गरदन, जनलोक मुख, तपोलोक कपाल, सत्यलोक उस विराटमूर्तिका मस्तक है। हे महाराज! तेजोमय इन्द्र आदि देवता उस विश्वमूर्तिकी बाँह, दिशाएँ कानोंके छेद और शब्द कर्णेन्द्रिय हैं। अश्विनीकुमारद्वय नाक, गन्ध उनका घ्राण, ज्वलन्त अग्नि उनका मुख, आकाश आँखोंकी पुतलियाँ, सूर्य नेत्रेन्द्रिय, रात और दिन उनकी आँखोंकी पलकें, ब्रह्मपद उनकी भौंहें, जल तालु और रस रसनेन्द्रिय है। चारों वेद उनके ब्रह्मरन्ध्र हैं। यम उनकी दन्तपंक्ति, माया उनकी हँसी और सृष्टिकी अन्य रचनाएँ उनके कटाक्ष हैं। लज्जा निचला ओठ है। लोभ अधर है। धर्म उनकी पीठ है। प्रजापति उनके लिंग हैं। मित्रावरुण दोनों अण्डकोष हैं। समुद्र काँख और पहाड़ उनकी हड्डियाँ हैं। हे राजन्! नदियाँ उस विराट मूर्तिकी नाड़ी हैं। वृक्ष रोएँ हैं। वायु श्वास-प्रश्वास हैं। अवस्था उनकी गति है। प्राणियोंका संहार उनका खेल है। बादल उनके बाल हैं। सन्ध्या वस्त्र है। प्रधान प्रकृति

उनका हृदय है। चन्द्रमा मन है और मन ही विकारका कोष है।

हे महाराज ! पण्डित लोग विज्ञानशक्तिको ही उनका महत्तत्त्व कहते हैं। रुद्रदेव अहंकार हैं। हाथी-घोड़ा आदि उनके नख हैं। मृगपशु कमर हैं। पक्षी शिल्पकला हैं। स्वायम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं। मनुष्य उनके आश्रय-स्थान हैं। गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सरागण उनकी स्वर और स्मृति हैं। असुरसैन्य उनके वीर्य, ब्राह्मण उनके मुख, क्षत्रिय उनके बाहु, वैश्यजाति उनकी जाँघ और शूद्र उनके चरण हैं। यागयज्ञ उनके कार्य हैं। हे राजन् ! इस विराट मूर्तिका तुमको मैंने पूरा विवरण सुना दिया। मुक्ति चाहनेवाले लोग इसी स्थूल शरीरमें अपने मनको सुस्थिर करते हैं।

द्वितीय अध्याय

श्रीविष्णुभगवानमें चित्त धारण करनेकी युक्ति

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सोचा कि भगवान श्रीहरिको सन्तुष्ट करके उनकी कृपासे फिर पहले जैसी सृष्टि करें। सुखकी इच्छा करनेसे नींदकी अवस्थामें जैसे सपनेमें क्षणिक सुख दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार मायामय मार्गमें भ्रमण करनेवालोंको परमार्थका सुख नहीं मिलता। परमार्थ सुखको त्यागकर केवल विषयसुखमें समय बिताना उचित नहीं है। हे महाराज ! सोनेके लिए भूमि सर्वत्र सुलभ है। अतएव जहाँ चाहे तहाँ सोकर समय बिताया जा सकता है। इस हालतमें बिछौनेकी भला कौन-सी आवश्यकता है ? बाँहोंपर माथा टेककर

अनायास सो सकते हैं तो तकियेकी क्या जरूरत है ? अंजलीके रहते भोजन और पानी पीनेके लिए बरतनकी क्या आवश्यकता है ? पेड़ोंकी छाल सर्वत्र मिलती है इस कारण दूसरे पहनावेकी जरूरत क्या है ? ऐसी हालतमें लोग धनोपार्जनके लिए इतनी कोशिश और धनिकोंकी सेवा क्यों करते हैं ? देखो, वृक्ष दूसरोंकी भलाईके लिए फल धारण करते हैं। उपासनाके बिना ही ये मिल जाते हैं। जलका भी अभाव नहीं है। रहनेके लिए पहाड़ोंकी बहुत-सी गुफाएँ खाली पड़ी हैं। यदि इन सबमेंसे कुछ भी न मिले तो भगवान् हरिकी शरणमें जानेसे वे ही रक्षा करेंगे। मनमें इस प्रकारकी धारणा जमा लेनेसे अवश्य ही भक्ति प्राप्त होती है। जिनके मनमें भक्तिका उदय न हुआ हो, वे शंख-चक्र-गदा-पद्म धारी चतुर्भुज भगवानके स्वरूपका स्मरण करें।

हे राजन् ! देश और कालकी तरफ मन न लगा सुखसे बैठकर प्राणोंपर विजय पानेके लिए प्राणायाम करे। इस प्रकार बुद्धियोगमें मनको नियमबद्ध करके बुद्धि और आत्माको ब्रह्मके साथ मिला चुकनेपर सब कार्योंसे विमुख हो जाय। ऐसा करनेसे देवताओंके प्रभु काल भी कुछ न बिगाड़ सकेंगे। उनके हृदयमें विष्णुपदके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं दिखाई पड़ेगी। इस प्रकार आप मुनिगण विश्वको ब्रह्मके रूपमें चिन्तन करते हुए शास्त्रोंकी आलोचना करते रहेंगे तो इसके प्रभावसे विषयोंकी वासना दूर हो जायगी। शरीरको नाशवान समझकर पादमूलसे गुह्यरंध्र अर्थात् गुप्तांगके छिद्रपथको बन्द करके स्थिर भावसे

नाभि इत्यादि छः स्थानोंसे प्राणवायुको ऊपर उठाये और नाभिके मणिपूरक चक्रमें स्थित प्राणवायुको हृदयचक्रमें ले जाय। उस स्थानसे उदानवायुकी गतिसे गलेके नीचेवाले विशुद्धचक्रमें उसे ले जाय। फिर बुद्धिके सहारे अनुसन्धान करके उदानवायुको धीरे-धीरे तालुके नीचेके विशुद्ध चक्रमें ले जाना चाहिये। इसके बाद प्राणके सात मार्ग (दो कान, दो आँखें, दो नाक, एक मुख) बन्द करके विशुद्ध चक्रके अगले भागसे प्राणवायुको लेकर दोनों भौंहोंके बीचवाले आज्ञाचक्रमें स्थापित करना चाहिये। किसी प्रकारके भोगकी वासना न रह जाय तो उस स्थानपर आधा मुहूर्त ठहरकर उक्त सब इन्द्रियोंका साथ छोड़ दे। यदि तत्काल मुक्ति पानेकी इच्छा न रहे तो शरीर छोड़ते समय मन और इन्द्रियोंको त्यागकर भोगके लिए उनके साथ प्राणवायुको बाहर निकाल लेना चाहिये। उपासना, भगवद्धर्म, अष्टांगयोग और समाधि द्वारा जो उत्तम गति मिलती है, वह गति कर्मकाण्डियोंको केवल कर्मसे नहीं मिल सकती। याग-यज्ञादि करनेसे शरीर छूटनेपर प्राणी आकाशमार्गसे जाकर सुषुम्नानाड़ीके सहारे देवताओंके पास पहुँच जाता है। वहाँ पापोंका क्षय हो जानेपर नारायणका वासस्थान एवं तारिकाओंसे परिपूर्ण ध्रुवसे भी आगेका शिशुमाराकार स्थान प्राप्त होता है। इसके बाद जहाँ भृगु आदि महर्षि विराजते हैं, वह महर्लोक मिलता है। कल्पके अन्तमें विष्णुके मुँहसे निकले अग्नि द्वारा तीनों लोकोंके जल जानेपर वे उसकी गरमीसे बाहर निकलकर ब्रह्म-लोकमें चले जाते हैं। वहाँ सिद्ध गणोंसे घिरे अनेक विमान हैं और मानसिक दुःखके अतिरिक्त शोक, जरा, मृत्यु,

दुःख तथा भय आदि कुछ भी नहीं हैं। चित्तका दुःख वहाँ इसलिए है कि भगवानकी ध्यानविधि न जाननेसे प्राणियोंका अत्यन्त दुःखदायक जन्म होता है। जिसे देखकर उनके प्रति मनमें दया उत्पन्न होती है।

ब्रह्मलोकमें जानेसे तीन प्रकारकी गति प्राप्त होती है—(१) जो लोग पुण्यका फल भोगनेके लिए जिस स्थानमें जाते हैं, वे फिर अपने पुण्यकी कमी-बेशीके कारण दूसरे-दूसरे स्थानोंके अधिकारी होते हैं। (२) हिरण्यगर्भ आदिकी उपासनाके बलसे लोग ब्रह्माके साथ मुक्ति पाते हैं। (३) जो लोग भगवानके उपासक हैं वे ब्रह्माण्डको भेद करके वैष्णवलोक प्राप्त करते हैं।

ब्रह्माण्डका आच्छादन इस प्रकार जानें—प्रकृतिका अंश महत्तत्त्व है। महत्तत्त्वके अंशसे अहंकार तत्त्व बना है। अहंकारतत्त्वके अंशसे शब्द द्वारा आकाश बना है। आकाशके अंशसे स्पर्श तन्मात्रा द्वारा वायु बना है। उसके अंशसे रूपतन्मात्रा द्वारा तेज, तेजके अंशसे रस तन्मात्रा द्वारा जल और जलके अंशसे गन्धतन्मात्रा द्वारा पृथ्वी बनी है। इन सबके सम्मिश्रणसे चौदहों भुवनके रूपमें विराट मूर्ति बनी है। विराटका शरीर पचास करोड़ योजन विस्तृत है। उसका पहला आवरण पृथ्वी है, द्वितीय-तृतीय आवरण जल आदि हैं। प्रकृति उसका आठवाँ आवरण है।

इसके बाद योगी नाकसे गन्ध, जीभसे रस, नेत्रसे रूप, चमड़ेसे स्पर्श, कानसे शब्द और कर्मेन्द्रियोंसे उनके कार्योंको प्राप्त करते हैं। स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियोंका लय करनेवाला

अहंकार है। अहंकारसे महत्तत्त्व है और महत्तत्त्व प्रकृतिमें स्थान प्राप्त करता है। प्रकृतिसे आनन्दमय आत्मा मिलती है। हे राजन्! इस प्रकार योगीगण परमगति पाकर पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाते हैं।

पूर्वकालमें भगवान वासुदेवने ब्रह्माकी आराधनासे प्रसन्न होकर इस प्रकारकी गतिका वर्णन किया था। संसारी लोगोंके लिए अनेक प्रकारके मोक्षमार्ग हैं, किन्तु दो मार्गोंके अतिरिक्त विघ्नरहित मार्ग कोई नहीं है। उनके अवलम्बनसे भगवान वासुदेवके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। हे राजन्! ब्रह्माने समस्त वेदों द्वारा तीन बार विचार करके किस उपायसे भगवान् हरिके प्रति रति उत्पन्न होती है, इसका निर्णय कर दिया था। भगवान श्रीहरिके नाम संकीर्तन, स्मरण और कथाश्रवणसे उनमें रति उत्पन्न होती है। जो लोग हरिनामरूपी अमृत रस पीते हैं, वे ही विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं।

—०—

तृतीय अध्याय

विष्णुभक्तिकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मृत्युकाल आ जानेपर हरिकथा सुनना ही आवश्यक कर्तव्य है। हे महाराज! भिन्न-भिन्न कामनाओंकी सिद्धिके लिए लोग भिन्न-भिन्न देवताओंकी उपासना करते हैं। ब्रह्मतेजकी इच्छासे लोग ब्रह्माकी उपासना करते हैं। इन्द्रियकी कामनासे इन्द्रकी पूजा करते हैं। प्रजा अर्थात् पुत्र आदिकी कामनासे प्रजापति दक्षकी आराधना करते हैं। श्रीके

लिए दुर्गादेवीकी, तेजके लिए अग्निकी, धनके लिए वसुगणकी, वीर्यके लिए रुद्रगणकी, अच्छा भोजन पानेके लिए अदितिकी, स्वर्गके लिए सूर्यकी, राज्यके लिए विश्वेदेवगणकी, प्रजाकी स्वाधीनताके लिए साध्यगणकी, आयु तथा पुष्टिके लिए अश्विनीकुमारकी, अपना स्थान न छोड़नेके लिए भूमि और आकाशकी, रूपके लिए गन्धर्वकी, स्त्री-कामनाके लिए उर्वशी अप्सराकी, सबके ऊपर आधिपत्य जमानेके लिए ब्रह्माकी, यशके लिए विष्णुकी, धनके लिए वरुणकी, विद्याके लिए शिवकी और स्त्री-पुरुषोंके प्रणयके लिए लोग उमाकी पूजा करते हैं। धर्मकी इच्छासे विष्णुयज्ञ, सन्तानवृद्धिके लिए पितृयज्ञ, रक्षा पानेके लिए यक्षयज्ञ और बलकी कामनाके लिए मरुद्गणका यज्ञ करते हैं। राज्य पानेकी इच्छासे लोग मन्वन्तरके अधिपतियोंकी, शत्रुकी मृत्युकी इच्छासे राक्षसोंकी और भोगके लिए सोमदेवकी उपासना करते हैं। जिसके मनमें कुछ भी कामना नहीं रहती वह परमेश्वरकी आराधनामें निमग्न रहता है। जिसकी बुद्धि उदार है, कोई कामना जिसमें नहीं है, कोई अभिलाषा या मोक्षकी वासना जिसमें नहीं रहती, उसकी एकान्तभक्ति ईश्वरकी उपासनामें लगी रहती है। हे राजन्! वे भक्तगण इन्द्र आदि देवताओंकी उपासना करके भगवद्भक्तोंके साथ भगवानमें 'स्थिर हो जाते हैं, तभी उस परमपुरुषको प्राप्त कर पाते हैं। यदि ऐसा न हो सके तो सब व्यर्थ है। हे महाराज! हरिकथाकी महिमाका कहीं अन्त नहीं है। इसको सुननेसे वैराग्य उत्पन्न होता है।

इतनी कथा सुनकर शौनकने कहा—हे सूत! हम लोगोंको

हरिकथा सुनाकर जीवन सफल करो। आहार-विहार और निःश्वास-प्रश्वास ही मनुष्यजीवनका फल नहीं है। क्योंकि पशु भी घास खाते और स्त्रीप्रसंग करते हैं, किन्तु उनका जीवन विफल हो जाता है। जिसके कानोंमें श्रीकृष्णकी कथाका प्रवेश नहीं होता, उसको पण्डित लोग कुत्ते, सुअर, ऊँट या गधेकी तरह मानते हैं। जिसके कानोंमें कृष्णकथा नहीं जाती, उसके कर्णरन्ध्र निरर्थक हैं। जो व्यक्ति भगवानकी गाथा नहीं गाता, उसकी जीभ मेढ़ककी जीभके समान है। जो व्यक्ति भगवान श्रीकृष्णकी मूर्तिको ध्यान लगाकर नहीं देखता, उसका जीवन वृक्षकी तरह जड़ है। जो व्यक्ति भगवानका चरणरज धारण नहीं करता, उसका जीवन मृत्युके समान है। जो मनुष्य विष्णुके चरणपर चढ़ी तुलसीको सूँघकर प्रसन्न नहीं होता, उसकी साँस चलती रहनेपर भी शरीर मुर्दाके समान रहता है। हरिनाम-श्रवणसे जिसकी आँखोंमें आँसू नहीं आता और शरीर रोमांचित नहीं हो जाता, उसका हृदय पत्थरकी भाँति कठिन है। हे सूत! राजा परीक्षितसे शुकदेवजीने जो कुछ कहा हो, वह सब मुझसे कहो।

चतुर्थ अध्याय

हरिकथाविषयक परीक्षितका प्रश्न और ब्रह्मा-नारदसंवाद

सूतजीने कहा—हे महर्षिगण! शुकदेवकी बातें सुनकर राजा परीक्षितने विषयवासना, धन-जन और माया-ममता सब कुछ छोड़कर भगवान् वासुदेवको अपना मन अर्पित कर दिया। शुकदेवसे राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! आप सर्वज्ञ हैं। आपसे मेरी

अज्ञानता दूर हो गयी। आपकी कथा बहुत ही अच्छी है। हे योगिवर! भगवानने अपनी मायासे जिस सृष्टिकी रचना की है, उस विषयको मैं फिर सुनना चाहता हूँ। क्योंकि वह बहुत कठिन विषय है, जल्दी समझमें नहीं आता। हे ब्रह्मन्! उनके संहारकी कथाको तो कविगण भी ठीक तौरसे वर्णन नहीं कर सकते। हे योगिन्! ब्रह्मा आदिके अवतारसे भगवान अनेकानेक कर्म करके किस तरह प्रकृतिका गुण ग्रहण करते हैं, इस विषयमें मुझे सन्देह है। आप शब्द और अनुभवपरब्रह्ममें दीक्षित हैं। सूतजीने कहा—योगिवर शुकदेव भगवानका स्मरणकर और देवता तथा गुरुको नमस्कार करके कहने लगे। शुकदेवने कहा—मैं सर्वोत्तम पुरुषको नमस्कार करता हूँ। उनकी महिमाकी सीमा नहीं है। वे सबके हृदयकी बात जानते हैं। वे सर्वशक्तिमान हैं। वे सिद्धिफल देते हैं। उनको मेरा नमस्कार है। वे भक्तपालक, पापोंके नाशक और मंगलस्वरूप हैं। ऐसे प्रभावशाली भगवानको मेरा नमस्कार है। इसके बाद राजाको सम्बोधन करके वे बोले—हे राजन्! पूर्वकालमें नारदने भी ब्रह्मासे इसी विषयको पूछा था। हम जो कुछ कहते हैं, ब्रह्माने नारदसे वही कथा वर्णन की है।

——०——

पञ्चम अध्याय

नारदसे ब्रह्मा द्वारा सृष्टि आदि हरिलीला और विराट् सृष्टिका वर्णन

देवर्षि नारद ब्रह्माकी वन्दना करके बोले—हे देव! हे भूतभावन! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मन्! जिससे आत्म-

तत्त्व दिखाई पड़ता हो, उसी ज्ञानसाधक वस्तुको स्पष्टरूपसे कहकर सुनाइये। हे प्रभो! यह विश्व जिस प्रकार प्रगट होता है। जिसका आश्रय करके यह टिका है। जिसने इसे रचा है। जिसमें यह विलीन होता है। जिसके अधीन ये सब विषय हैं। उन सभी बातोंको मुझसे कहिये। हे प्रभो! जो जन्म ले चुका है, जिसका जन्म आगे होगा और जो कुछ हो रहा है, उसके प्रभु आप हैं। यह पृथ्वी आपकी दृष्टिमें आँवलेंके फलकी भाँति है। इसे आप भलीभाँति जानते हैं। हे ब्रह्मन्! मैं जानता था कि आप स्वतंत्र परमेश्वर हैं, किन्तु आपको तपस्यामें निरत देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आपके ऊपर भी कोई है। वह आपके ज्ञानदाता कौन हैं? आप किसके अधीन हैं? हे विभो! इस जगत्में कौन वस्तु उत्तम है? कौन मध्यम और कौन अधम या समान है। यह मैं कुछ भी नहीं जानता। ये सभी विषय आपकी कृपासे मैं भलीभाँति समझ सकूँगा। आप सोचकर बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—हे वत्स! इन सब सन्देहोंसे भगवानकी शक्ति प्रगट हो सकेगी। इसलिए यह कहना पड़ता है कि तुमने मेरे ऊपर दया की है। हे पुत्र! यह सत्य है कि मैं ईश्वर हूँ, किन्तु मुझसे भी बड़े एक ईश्वर हैं। सम्भवतः तुम यह बात नहीं जानते। इस कारण मैं तुम्हारा भ्रम दूर कर रहा हूँ। मैं उसी परमेश्वरके स्वप्रकाशित विश्वको व्यक्त करता हूँ। अतएव उन भगवान वासुदेवको नमस्कार है। मैं उनका ही ध्यान करता हूँ। उनकी ही मायासे मोहित होकर तुम मुझे जगत्का कर्ता कह

रहे हो। हे वत्स नारद ! वेद आदिसे लेकर जगत्के जीवतक सभी प्राणी वासुदेवमय हैं। तपस्या, साधन, ज्ञान, गति और फल सब कुछ वे ही हैं।

हे नारद ! उन्हीं वासुदेव नारायणने मुझे उत्पन्न किया है। वे ही वासुदेव जीवको मायाके वशमें करके बन्धनमें डालते हैं। वे भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे और सभीके ईश्वर हैं। उनके भक्तगण ही उनकी गतिका निरूपण कर सकते हैं। हे नारद ! वे ही मायामय परमेश्वर विश्वसृष्टि करनेकी इच्छा करके अदृष्ट काल और स्वभाव ग्रहण करते हैं। कुछ काल बीतनेपर वे सत्त्व, रज और तमोगुणका समान भाव छोड़ देते हैं। इसीसे सृष्टिकी इच्छा होती है। स्वभावसे रूपान्तर होता है और अदृष्टसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है। महत्तत्त्वके रजोगुण और सत्त्वगुणमें बढ़नेसे तमोगुण उत्पन्न होता है। उसको अहंकार कहते हैं। सात्त्विक अहंकार देवभावनाओंपर, राजसिक इन्द्रियोंपर और तामसिक अहंकार पृथ्वी आदि पंचभूतोंपर अपना प्रभाव दिखाता है। तामस अहंकार तत्त्वमें विकार आ जानेसे शब्दरूप आकाशकी उत्पत्ति होती है। आकाशके विकारसे स्पर्शगुण युक्त वायु उत्पन्न होता है। वायुमें शरीर-धारण तथा इन्द्रिय, मन और शरीरके कार्य होते हैं। काल, अदृष्ट और स्वभावके कारण वायुके विकारसे तेजकी उत्पत्ति होती है। तेजका गुण रूप है। तेजसे जल उत्पन्न होता है। उसका गुण रस है। जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। उसका गुण गन्ध है। सात्त्विक अहंकारतत्त्वके विकारसे मन, मनसे चन्द्रमा, कानसे दिशाएँ,

चमड़ेसे वायु, आँखसे सूर्य, जीभसे वरुण, नाकसे अश्विनीकुमार, मुँहसे अग्नि, हाथसे इन्द्र, पैरसे उपेन्द्र, पायु अर्थात् मलद्वारसे मित्र और उपस्थ अथवा लिङ्गसे प्रजापति उत्पन्न होते हैं। हे नारद! परमेश्वरने अपनी शक्तिसे ब्रह्माण्डकी रचना की है। वह ब्रह्माण्ड हजारों वर्षतक जलमें सोया पड़ा था। कालने अदृष्ट और स्वभावसे अचेतन अण्डकोषको चेतन बना दिया। उसी अण्डसे परमपुरुष बाहर निकल पड़े। उनके हजार सिर, हजार मुख, हजार आँखें, हजार भुजायें और हजार चरण थे। इस रूपसे उन्होंने उस अण्डको पृथक् कर दिया। हे वत्स! पण्डितोंका कथन है कि उस पुरुषके शरीरसे चौदहों भुवन बने हैं। कमरके नीचेके सात अवयवोंसे अतल आदि पातालके सात लोक और कमरके ऊपरवाले सात अवयवोंसे पृथ्वी आदि ऊपरके सात लोक बने हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, दोनों जाँघोंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई। उनकी कमरसे अतल, दोनों जाँघोंसे वितल, दोनों घुटनोंसे सुतल, दोनों पंडुरियोंसे तलातल, एड़ियोंसे महातल, दोनों पैरोंके अग्रभागसे रसातल और पैरोंके तलुओंसे पाताल उत्पन्न हुआ है। पैरोंसे भूलोक, नाभिसे भुवर्लोक, हृदयसे स्वर्लोक, छातीसे महर्लोक, गरदनसे जनलोक, दोनों स्तनोंसे तपोलोक और मस्तकोंसे सत्यलोककी उत्पत्ति हुई है। सनातन वैकुंठ नामक ब्रह्मलोक इनके अन्तर्गत नहीं है।

षष्ठ अध्याय

सृष्टिसम्बन्धी वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! उस पुरुषका मुख हम लोगोंके वचन तथा उनकी इन्द्रिय देवता और अग्निका उत्पत्तिस्थान है। उनकी त्वचा आदि सातों धातुओंसे गायत्री छन्द बना है। उनकी जीभसे द्रव्य अर्थात् देवताओंका अन्न, कव्य अर्थात् पितृलोकका अन्न, अमृत अर्थात् मनुष्योंका अन्न बना है। उनकी रसनेन्द्रिय वरुणका उत्पत्तिस्थान हैं। उनकी नाकके दोनों छेद हम लोगोंके प्राणके परम स्थान है। नाकसे अश्विनीकुमार, औषधि और गन्ध बना है। उनकी आँखें रूप और रूपके प्रकाशक पदार्थके क्षेत्र हैं। आँखकी पुतलीसे स्वर्ग और सूर्यकी उत्पत्ति हुई है। कानोंके छेदसे दिशाएँ और तीर्थस्थान बने हैं। कर्णेन्द्रियसे आकाश और शब्द प्रगटे हैं। उनके शरीरसे सभी वस्तुओंका सारांश और सौभाग्य उत्पन्न हुआ है। उनके शरीरकी त्वचा, स्पर्श, वायु और सभी यज्ञोंका उत्पत्तिस्थान है। उनके रोमसे सभी उद्भिद्, वृक्ष, लता, तृण आदि अथवा यज्ञके साधनस्वरूप वृक्ष आदिकी उत्पत्ति हुई है। उनके बालसे मेघ, मुखके रोयेंसे बिजली, हाथ और पैरोंके नखसे पत्थर तथा लोहा उत्पन्न हुआ है। उस पुरुषके दोनों पैरोंके बीच भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकका आश्रय है। उनका चरण क्षेम अर्थात् प्राप्त वस्तुकी रक्षाका स्थान है। वही भयसे रक्षा पानेका भी स्थान है। काम और वरकी उत्पत्ति भी उस चरणसे ही हुई है। उनका लिंगाधार जल, शुक्ररचना, मेघ और प्रजापतिका उत्पत्तिस्थान है। उनका लिंगेन्द्रिय सन्तानार्थ किये गयें भोगके

तापको मिटानेका स्थान है। उस पुरुषका गुह्यछिद्र यम, मित्र और मलत्यागका उत्पत्ति स्थान है। उनका मलद्वार हिंसा, दरिद्रता, मृत्यु और यमका आश्रयस्थल है। उनकी पीठ अधर्म और अज्ञानका स्थान है। उनकी नाड़ियाँ नद-नदी, हड्डी पर्वत, उदर अन्न आदिका रस, समुद्र, भूत और उनके लयका स्थान है। उनका चित्त मेरा, तुम्हारा, सनकादि रुद्रका विज्ञान और सत्त्वका परम स्थान है। हे नारद! उन्हीं परमेश्वरसे सारे जगत्की उत्पत्ति हुई है। वे नित्य मुक्त हैं। वे ही इस विश्वको चारों ओरसे ढककर रखे हुए हैं। वे केवल एक उँगलीकी जगहमें समाये रहते हैं। उन महापुरुषका जन्म-मरण नहीं होता। वे आनन्द और अभयके स्वरूप हैं।

हे नारद! उनके नाभिकमलसे उत्पन्न होकर जब मैंने देखा कि उनकी आकृतिके अतिरिक्त और कोई यज्ञका साधन नहीं है, तब मुझे उस यज्ञसाधनको सिद्ध करना पड़ा। मैंने उसी परमपुरुषके अंगसे यज्ञ-सामग्री जैसे—घी, मधु, मिट्टी, धातु, वेद, मंत्र, तंत्र, कर्म, पद्धति; ध्यान, प्रायश्चित्त आदि बनाया और फिर उनका ही यज्ञ करने लगा। इसके बाद इन्द्र आदि नौ भाइयोंने उस पुरुषकी यज्ञ द्वारा ही सेवा की। अब भी मनु, ऋषि, पितृदेव, दैत्य और मनुष्यगण यज्ञ द्वारा उनकी पूजा करते हैं। उनकी ही आज्ञासे मैं विश्वकी रचना करता हूँ। शंकर संहार करते हैं और वे स्वयं विष्णुरूप धारण करके सबका पालन करते हैं। हे नारद! मैंने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया था। इस कारण मेरी इन्द्रियोंकी वृत्ति सत्य हो गयी है। मेरे मनकी गति अच्छी है।

मेरे वाक्य कभी असत्य नहीं होते। इन्द्रियाँ कभी कुमार्गमें नहीं जातीं। मैं वेद, तप तथा प्रजापतिगणका अधीश्वर हूँ और मैंने योगका आश्रय लिया है। फिर भी जिससे मेरी उत्पत्ति हुई है, उसे मैं नहीं जान सका, तब दूसरे क्या जानेंगे। अतएव मैं उसी भगवानके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। तुम, मैं, रुद्र, विष्णु, दक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, चारण सभी उस भगवानकी विभूति हैं। हे नारद! मैं उनके अवतारोंकी सुन्दर कथा क्रमशः तुमको सुनाऊँगा। इसको सुननेसे पापोंका नाश होता और परमगति प्राप्त होती है।

सप्तम अध्याय

भगवानकी लीलाका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—हे वत्स नारद! भगवान विष्णुने एकार्णव दशामें ही हिरण्याक्ष दैत्यको दाँतसे चीर डाला था। रुचिकी पत्नी आकूतिके गर्भसे प्रजापतिने जन्म लिया। वही सुयज्ञ नामसे प्रसिद्ध हुए। बादको अपनी स्त्री दक्षिणाके गर्भसे उन्होंने सुषमा आदि देवताओंको उत्पन्न किया और स्वयं इन्द्र बनकर लोगोंका दुःख दूर किया। तभीसे उनका नाम हरि हो गया। हे द्विज! उन्होंने कर्दम प्रजापतिके घर उनकी स्त्री देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ जन्म लेकर अपनी माताको ब्रह्मविद्या बतायी थी। उसी विद्याके प्रभावसे वे मुक्तिको प्राप्त हुईं। पुत्रलाभकी इच्छासे अत्रि मुनिने तपस्या की। वे प्रसन्न हुए और उनके पुत्ररूपमें जन्म लेकर दत्तात्रेय नामसे प्रसिद्ध हुए। हे नारद! लोकसृष्टिकी

कामनासे मैंने उनकी तपस्या की और वे प्रसन्न हुए। जिसके फलस्वरूप सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई। पूर्वकालमें उन्होंने ही सब लोगोंको आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। नरनारायणका अवतार ले और धर्मपत्नी दक्षकी कन्याके गर्भसे जन्म लेकर वे तपस्यामें निरत हुए तो उर्वशी आदि स्वर्गीय अप्सराओंने उनकी तपस्या भंग करनेकी चेष्टा की, किन्तु उन्हें इस काममें सफलता नहीं मिली। भयसे कामदेव भगवानके निर्मल हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका।

हे नारद! उन्होंने ही ध्रुवको दर्शन देनेके लिए एक अवतार लिया था। उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुवसे जब विमाताने अनादरसूचक वचन कहे तो अपनी बाल्यावस्थामें ही ध्रुव तपस्या करनेके लिए वनमें चले गये। इससे प्रसन्न होकर भगवानने बालक ध्रुवको ध्रुवपद प्रदान किया। ध्रुवके ऊपर भृगु आदि मुनि रहते और नीचेके सात ऋषि नित्य भगवानकी स्तुति करते रहते हैं। राजा वेण ब्रह्मशापसे जलकर नरकमें जा गिरा था। तब भगवान उसपर दया करनेके लिए पृथुरूपमें उसके पुत्ररूपमें प्रगटे। उन्होंने वेणराजाका नरकसे उद्धार किया और पुत्रपदको सार्थक बनाते हुए पृथ्वीसे अन्न आदि द्रव्योंको दुहकर निकाला। ऋषभ अवतारमें वे अग्निपुत्र नाभि और सुदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए और उनके ही द्वारा परमहंसपद प्रकट हुआ। हयग्रीव अवतारमें वेदवाक्य उत्पन्न हुए। हे नारद! युगके अन्तमें मत्स्यावतार लेकर उन्होंने पृथ्वीकी रक्षा की, जिसे वैवस्वत मनुने देखा था। उस समय प्रलयकालमें मेरे मुँहसे सभी वेद निकल गये थे। भगवानने

उन्हें पकड़ लिया और प्रलयकालके जलमें विहार करने लगे। कूर्म अवतारमें कछुएका रूप धारण करके अमृतका मन्थन होते समय मन्दर पर्वतको, जिसे मथानी बनाकर समुद्र मथा जा रहा था, अपनी पीठपर उठा रखा। उन्होंने नृसिंहअवतारमें नृसिंहमूर्ति धारण की और दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघपर रखकर उसके वक्षस्थलको अपने नखोंसे फाड़ डाला। जब गजराजको ग्राहने पकड़ लिया। तब उसकी करुण पुकार सुनकर भगवान हरि-रूपमें गरुड़की पीठपर सवार होकर आये और अपने चक्रके द्वारा उस ग्राहका मुँह चीरकर उस हाथीको उन्होंने बचा लिया। वामन अवतारमें बारह आदित्योंमें कनिष्ठ होनेपर भी वे अपने गुणोंके प्रभावसे ज्येष्ठ माने गये। बलि राजाके यज्ञमें कपट आचरणसे तीन पगभूमि मांगकर उन्होंने वामनरूपसे उसकी राज्यश्री हड़प ली। हे वत्स नारद! भगवानने बलिकी बुराईकी इच्छासे ऐसा काम नहीं किया। बलिने तो भगवानका चरणोदक अपने मस्तकपर धारण किया था। शुक्राचार्यके रुकावट डालनेपर भी बलिने अपना शरीरतक भगवानको दे दिया था। बलिको शासनकार्यमें अनुपयुक्त समझकर ही भगवानने उसका सर्वस्व हरण किया था।

हे नारद! हंस अवतारमें उन्होंने तुमको योग और भागवत ज्ञानका उपदेश दिया। जो लोग भगवानकी शरणमें जाते हैं, उनको ही वह ज्ञान पानेका अधिकार है। मन्वन्तर अवतारमें मनुके वंशपालक बनकर उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रसे जगतीतलके दुष्ट राजाओंका नाश किया। धन्वन्तरिके रूपमें प्रकट होकर उन्होंने महारोगोंको मिटाया। दैत्यगणोंने देवताओंके जिस यज्ञभागको

बन्द कर दिया था, उसका पुनः उद्धार उसी अवतारमें उन्होंने किया। परशुराम अवतारमें इक्कीस बार क्षत्रियोंका नाश करके उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा। हे नारद! ईक्ष्वाकुकुलमें रामरूपसे अवतार लेकर भगवान पिताकी आज्ञासे अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ वनको चले गये। रावणने सीताका हरण किया तो उसके वंशके साथ सब राक्षसोंको उन्होंने मार डाला। इसी अवतारमें समुद्र भयग्रस्त होकर बन्धनमें बँधनेको विवश हुआ था। इसके बाद असुरसेनाका नाश करने और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए बलदेवके साथ भगवानने कृष्ण अवतार लिया और बहुतसे अद्भुत कार्य किये। बचपनमें पूतनावध, तीन महीनेकी अवस्थामें पैरोंके सहारे गाड़ी उलटना, कालीयदमन, यशोदाकी बहुत-सी रस्सियोंसे बाँधे जानेसे बच जाना आदि अनेक कार्य किये। एक दिन उन्होंने मुँह बाया तो यशोदाने उनके मुँहमें चौदहों भुवन देखे। नन्दको वरुणके पाशसे बचाया। मयदानवके पुत्रसे उन्होंने गोपोंकी रक्षा की। व्रजके गोपोंको उन्होंने ही इन्द्रकी पूजासे विरत किया और देवराज इन्द्र जब ब्रजपुरीको जलमें डुबा देनेको तत्पर हुए तो उन्होंने छातेकी भाँति गोवर्धन पर्वतको उठाकर व्रजकी रक्षा की। ऐसे कार्य क्या ईश्वरके अतिरिक्त कोई मनुष्य कर सकता है? एक दिन वनमें रातके समय जब चाँदनी फैली हुई थी, तब उन्होंने रासलीला रचायी। मार्गमें कुबेरके अनुचर शंखचूड़ने गोपांगनाओंका हरण किया तो श्रीकृष्णने शंखचूड़का मस्तक काट डाला। उन्हीं भगवानकी प्रेरणासे प्रलम्ब-धेनुक-बक-केशि-अरिष्ट-मल्ल, कुवलयापीड़ हाथी, पौण्ड्रक-शाल्व-नरक-दन्त-

वक्र-सप्तोक्ष-शम्बर-विदूरथ-रुक्मी और कम्बोज-मत्स्य-कुरु-सृञ्जय-कैकय आदिका बलदेव, अर्जुन और भीम आदिने नाश किया। इस महान् कार्यमें बलदेव, अर्जुन आदि निमित्तमात्र थे। वस्तुतः ये सभी श्रीकृष्ण द्वारा ही मारे गये और बैकुण्ठ धामको सिधारे। हे नारद! यह समझकर कि समयके फेरसे लोगोंकी आयु बहुत घट जायगी, उन्हीं भगवानने व्यासरूपमें सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया और वेदको अनेक शाखाओंमें विभक्त कर डाला। वेद-हिंसक असुरोंने निगम मतका अवलम्बन करके मयदानवकी सहायतासे असंख्य पुरियोंकी रचना की और लोकहत्या आरम्भ कर दी तो भगवानने बुद्ध अवतार लिया। पाखण्डियोंका खण्डन करके उन्होंने अनेकानेक उपकर्मोंका उपदेश दिया। बादको असुरोंकी मतिमें मोह और बुद्धिमें लोभ पैदा हो गया। भविष्यमें जब साधुजनोंके घरोंमें हरिकथा बन्द हो जायगी तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पाखण्डी बन जायँगे और शूद्र राज-पाट ग्रहण करेंगे। तब कल्कि अवतार लेकर भगवान कलिका दमन करेंगे। हे नारद! सृष्टिकालमें मैं उत्पन्न हुआ तथा तपस्या और नौ प्रजापतियोंकी उत्पत्ति हुई। स्थितिकालमें धर्म, विष्णु, मनु, देवता, राजा आदि होते हैं और संहारकालमें रुद्र और सर्प आदि होंगे। यह सब भगवानकी माया और विभूति अर्थात् ऐश्वर्य है।

हे वत्स नारद! उस भगवानकी विभूतिका मैंने संक्षेपमें वर्णन किया है। विस्तारसे वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। एक समय उनके पदाघातसे समस्त लोक काँप उठे थे, उस समय उन्होंने स्वयं सत्यलोकको धारण कर रखा था। हे नारद! मैं

स्वयं और प्रधान-प्रधान ऋषिगण जब उनके अन्तका विवरण नहीं जान सके तो दूसरे लोग कैसे जानेंगे ? शेष भगवान हजारों मुँहसे निरन्तर उनका गुणगान कर रहे हैं, किन्तु आजतक उनको अन्त नहीं मिला। जिसपर उनकी दया होती है, वह अनायास उनकी दुस्तर मायाको पार कर जाता है। भगवानकी मायाका कोई अन्त नहीं है। हे नारद ! मैं उनकी योगमायाको जानता हूँ। तुम भी जानते हो और शंकर-प्रह्लाद-जनक-मान्धाता-उद्धव-विभीषण-हनुमान-शुक-विदुर-अर्जुन आदि भी यह बात जानते हैं। हे नारद ! दूसरे लोग भी उनकी मायाको जानकर उत्तीर्ण हो सकते हैं। जो लोग उनके रूपकी कथा सुनते हैं, उसमें मन लगाते और गुणगान करते हैं, वे लोग उस मायाको जानकर संसारसागरसे पार उतर जाते हैं। हे नारद ! जिनको मुनि लोग ब्रह्म कहते हैं, वे ही सुखस्वरूप हैं। वे सर्वदा शान्त, अभय और भेदशून्य हैं। ब्राह्मण लोग जो यज्ञ करते हैं, वह भगवानकी कृपासे ही सिद्ध होता है। वे ही सब कर्मोंके फलदाता हैं। हे वत्स ! याग-यज्ञादिका फल परलोकमें मिलता है। मृत्यु होनेपर शरीर नष्ट हो जाता है, किन्तु आत्माका नाश नहीं होता। क्योंकि शरीरके साथ आत्माकी उत्पत्ति नहीं होती। हे पुत्र ! भगवान हरिके सिवाय और कुछ भी सत्य नहीं है। वे स्वयं कार्य और कारणस्वरूप होते हुए भी कार्य और कारणसे सदा पृथक् रहते हैं। हे नारद ! इसका नाम भागवत महापुराण है। तुम हरि-लीलाको प्रधानता देकर श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए विस्तार-पूर्वक भगवानकी मायाका वर्णन करो। हे नारद ! जो लोग

नित्य हरिलीला सुनते और पाठ करते हैं, उनकी आत्मा कदापि मायासे मुग्ध नहीं होती।

अष्टम अध्याय

राजा परीक्षितका पुराणोंके सम्बन्धमें प्रश्न

राजा परीक्षितने शुकदेवसे कहा—हे ब्रह्मन्! देवर्षि नारदकी मंगलदायक हरिकथा सुन और श्रीकृष्णमें अपना मन लगाकर मैं शरीर त्यागूँगा। हे योगिन्! भगवान श्रीकृष्णका चरित्र श्रद्धापूर्वक सुननेसे मनकी मैल दूर हो जाती है। हे ब्रह्मन्! जिनके नाभिकमलसे सब लोकोंकी सृष्टि हुई, वे ब्रह्मा ईश्वरके अनुग्रहसे सब जीवोंके सृष्टिकर्ता हैं। तब पारलौकिक पुरुषों और ईश्वरमें क्या भेद है? हे योगिन्! सबके अन्तर्यामी पुरुष माया त्यागपूर्वक जिस रूपका अवलम्बन करके शयन करते हैं, वह बतानेकी कृपा करें। हे ब्रह्मन्! विराट् पुरुषके अवयव और दिक्पाल इन दोनोंमें क्या समता है? यह बात ठीकसे बताइये। महाकल्प, अवान्तर अर्थात् मध्यवर्ती कल्पका परिमाण, भूत-भविष्य-वर्तमानकाल, कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्थानोंकी संख्या, मनुष्य, पितर और देवादिकी आयुका परिमाण आदि मुझे बताइये। सत्त्वादि गुणोंका परिमाण, पाप और पुण्य इन सभीका विवरण भी भलीभाँति बतानेकी कृपा कीजिये। हे ब्रह्मन्! किस तरह आकाश, पाताल, दिव्य, ग्रह, नक्षत्र, पर्वतादि और सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्योंके चरित्र, वर्ण, आश्रम तथा युगकी संख्या, युगोंका

परिमाण, युगधर्म, भगवानका अवतार, साधारण धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, व्यवहारधर्म, राजधर्म, आपत्कालीन धर्म, प्रकृतिकी संख्याका स्वरूप, कार्यका लक्षण, अष्टांगयोगकी विधि, योगेश्वरोंकी गति, योगियोंका लय, वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराण इन सबका यथार्थरूप वर्णन करिए।

जीवोंकी उत्पत्ति, स्थिति, लय, महाप्रलय, काम-काजकी विधि, धर्म-अर्थ-काम तथा जीवकी सृष्टि, पाखण्डियोंकी उत्पत्ति, जीवका बन्धन और मोक्ष, प्रलयकालमें भगवानका माया-त्याग आदि जो कुछ मैंने पूछा है, हे ब्रह्मन् ! वह सब मुझे अच्छी तरह बताइये। मैं चित्त स्थिर करके सुनूँगा।

सूतजीने कहा—हे ऋषिगण ! राजा परीक्षितकी बात सुनकर शुकदेवजी सन्तुष्ट हुए और सृष्टिके आरम्भमें भगवान हरिने ब्रह्माको वेदतुल्य जो पुराण सुनाया था, वही भागवत-महापुराण सुनाना आरम्भ किया।

नवम अध्याय

शुकदेवजीके द्वारा भागवतकथन

राजा परीक्षितका प्रश्न सुनकर शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! आत्मा अनुभवस्वरूप है और स्वप्नवत् दिखाई पड़ती है। किन्तु भगवानकी मायासे प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। क्योंकि यह जगत् मायाके वशमें है। मैं-मेरा यह अभिमान, बाल्यकाल और युवावस्था यह सब मायासे ही हैं। किन्तु भक्ति-

योगसे यह माया दूर हो जाती और मोक्ष मिलता है। हे राजन्! भगवान हरिने ब्रह्माकी कपटहीन तपस्यासे सन्तुष्ट होकर अपने सत्य ज्ञानमय रूपको दिखाकर जिन तपस्या आदि उपासनाओं-का विवरण बताया था, तत्त्वज्ञानके लिए सभी जीवोंको इनकी जानकारी रखनी चाहिये। हे महाराज! योगमायाके सहारे ही भगवानका रूप प्रत्यक्ष होता है। वह रूप उनका ज्ञान और लीलामात्र है। भगवानके रूपका ध्यान करनेसे जीवको मुक्ति मिलती है। हे राजन्! दूसरोंकी बात तो दूर रखिये, उनकी ही कृपासे लोकस्रष्टा ब्रह्माको भी तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। प्राचीन कालमें ब्रह्मा पद्मासनपर बैठ और सृष्टि करनेकी इच्छासे बहुत दिनोंतक सोचकर भी न कुछ निश्चय कर सके—इस कार्यमें वे सर्वथा असमर्थ रहे। निरन्तर सृष्टिकी चिन्ता बनी रहनेसे एकाएक उनको 'तप' ये दो अक्षर सुनाई पड़े। हे राजन्! 'तप' शब्द त्यागी मुनियोंके लिए परम धन है। यही कारण है कि मुनियोंको तपोधन कहते हैं। उस वाणीसे ब्रह्मा बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। तप शब्द किसने कहा, यह जाननेके लिए वे इधर-उधर ताकने लगे। अन्तमें इन्द्रियदमन करके वे हजार साल तक तपस्या करते रहे। इसीसे अखिल जगत्का प्रकाश हुआ और इसीलिए ब्रह्मा परम तपस्वी माने गये।

तब भगवान श्रीहरि ब्रह्माके तपस्यासे सन्तुष्ट हुए और उन्होंने क्लेश, मोह और भयसे रहित तथा पुण्यवान पुरुषों द्वारा प्रशंसित अपना वैकुण्ठधाम उन्हें दिखाया। वहाँ सत्त्वगुणके अतिरिक्त रजोगुण और तमोगुणका प्रभाव नहीं रहता। कालका

पराक्रम भी वहाँ कुछ नहीं कर पाता। अधिक क्या बताऊँ, शोक-मोह आदि की बात तो दूर रही—माया भी वहाँ नहीं रहती। भगवानके सभासदोंकी सुर-असुर सभी पूजा करते रहते हैं। वैकुण्ठमें जितने सभासद हैं, उनके शरीर उज्ज्वल श्यामवर्ण हैं। आँखें कमलके समान रहती हैं। पहिनावा पीला वस्त्र तथा आकार कोमल और सुन्दर रहता है। उनके चार हाथ, वक्षस्थलमें मणि-पदक, कानोंमें कुण्डल रहता और वे माथेपर चूड़ामणि धारण किये रहते हैं। ब्रह्माने वहाँ देखा कि लक्ष्मीजी भगवानकी चरणसेवा कर रही हैं। नन्द, सुनन्द, प्रबल आदि सभासद चारों ओरसे घेरकर भगवान श्रीपतिकी सेवा कर रहे हैं। भगवानका मुख हास्यपूर्ण है। आँखें लाल हैं। वे पीलावस्त्र पहने हैं। उनके वक्षस्थलमें लक्ष्मी हैं। चतुर्भुजरूपमें वे रत्नके सिंहासनपर बैठे हुए हैं। प्रकृति, पुरुष, महत् अहंकार और एकादश इन्द्रियों, पंचमहाभूतों, पंच-तन्मात्राओं तथा पाँच शक्तियोंसे घिरे हैं। वे ही योगियोंके धन स्वयं ईश्वर हैं। भगवानको देखकर ब्रह्मा आनन्दित हुए। उन्होंने भक्तिपूर्वक उनके चरणकमलको प्रणाम किया। ब्रह्माको सामने खड़े देखकर भगवानने सोचा—ये प्रजासृष्टि करनेकी इच्छासे ही यहाँ आये होंगे। इनको सृष्टिसम्बन्धी बातोंका उपदेश देना चाहिये। इस कारण अत्यन्त सन्तुष्ट हो और उनके हाथपर हाथ रखकर कहने लगे। भगवानने कहा—हे वेदगर्भ ! तुमने सृष्टिकी इच्छासे अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या की है। उस तपस्यासे मुझे सन्तोष हुआ है। तुम्हारा मंगल हो। तुम वर माँगो। हे ब्रह्मन् ! मेरे दर्शनसे ही तुमको अभीष्ट फल

मिल गया। सृष्टिके प्रारम्भमें तुमको व्यग्र देखकर मैंने ही तप-तप कहकर तुमको उपदेश दिया था। हे अनघ! तपस्या भी मेरी ही शक्ति है। तपस्यासे ही मैं विश्वका सृजन, पालन और संहार करता हूँ।

ब्रह्माने कहा—हे नाथ! आप किस तरह निराकार, स्थूल और सूक्ष्म होते हैं, सो बताइये। इस विश्वकी रचना कैसे होती है और इसका पालन तथा संहार कैसे होता है? इस सम्बन्धमें आप मुझे बुद्धि प्रदान करनेकी कृपा कीजिये। मैं आलस्य छोड़कर आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। आप ऐसा कुछ कर दें कि जिससे प्रजाकी सृष्टि करके भी मैं अहंकारसे प्रमत्त न हो जाऊँ। हे भगवन्! आपका दर्शन और हाथोंका स्पर्श पा और प्रजाकी सृष्टि करके भी मुझे अभिमान न हो। ब्रह्माकी बातें सुनकर भगवान बोले—हे ब्रह्मन्! शास्त्रोंका ज्ञान, अनुभव, भक्ति और भक्तिका साधन यह सब मैं तुमको बतलाता हूँ, समझ लो। मेरी कृपासे तुमको इसी समय मेरे स्वरूपका, सत्त्वगुण और कर्म आदिका सच्चा ज्ञान हो जायगा। सृष्टिके पहले मेरे सिवा और कुछ भी नहीं था। किन्तु मैंने कोई काम नहीं किया। इस पृथ्वीमें जो कुछ है, वह सब मेरी माया ही है। मेरे मतके अनुसार काम करोगे तो कल्प-कल्पमें सृष्टि करते रहनेपर भी तुम मोहित न होओगे और मैं कर्ता हूँ, इस बातका अभिमान भी तुम्हें नहीं होगा। शुकदेवजीने कहा—भगवान हरि ब्रह्माको उपदेश देकर अन्तर्द्धान हो गये और ब्रह्माने पहलेकी तरह सृष्टि आरम्भ की। हे राजन्! इसके बाद ब्रह्माकी नारदसे बातचीत हुई। एक समय प्रजाकी कल्याण

कामनासे उन्होंने यम-नियमादि द्वारा तपस्या आरम्भ की। उनके प्रिय पुत्र नारद विषय-वासना छोड़कर पिताकी सेवा करने लगे। पहले भगवानने ब्रह्माको जो चार श्लोकोंका भागवत बताया था, उसे उन्होंने अपने पुत्र नारदकी सेवासे सन्तुष्ट होकर उन्हें सुनाया। वही भागवत मुझे भी मालूम हो गया। एक दिन महर्षि वेदव्यास सरस्वती नदीके किनारे बैठकर परब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, इसी समय अपनी इच्छासे नारदने आकर उन चारों श्लोकोंको सुनाया। हे राजन्! उसी भागवतकी व्याख्या करके मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ।

दशम अध्याय

भागवतकी व्याख्या

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! चार श्लोकोंकी चतुःश्लोकी भागवतमें सर्ग, विसर्ग, स्थिति, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—ये दस विषय वर्णित हैं। हे राजन्! आकाश आदिकी उत्पत्तिका नाम सर्ग है। ब्रह्माकी चराचर सृष्टिका नाम विसर्ग है। जीवलोकका पालन करनेका नाम स्थिति है। भक्तजनोंपर भगवानकी जो कृपा होती है, वही पोषण है। कर्मोंकी वासनाको ऊति कहते हैं। साधुओंके धर्मका नाम मन्वन्तर है। भगवानके चरित और महापुरुषोंकी सत्कथाको ईशकथा कहते हैं। चित्शक्तिके साथ लय होनेको निरोध कहते हैं। ब्रह्मरूपमें अवस्थितिका नाम मुक्ति है। जिनसे सृष्टि, स्थिति और लय होता तथा जिनसे जगत् प्रकाशित होता है, उसे आश्रय

कहते हैं। हे राजन्! हम लोगोंको अदृश्य वही परमात्मा सबके आश्रय हैं। किन्तु उनका आश्रय कोई नहीं है। हे राजन्! वैराज पुरुषने अण्डभेद करनेके बाद बाहर निकलकर रहनेका स्थान ढूँढ़ते हुए जलकी सृष्टि की। उस जलमें हजारों वर्षतक वे ठहरे रहे। हे राजन्! उस पुरुषका नाम नर और जलका नाम नार है। वही उनका अयन अर्थात् ठहरने या रहनेका स्थान है। इसी कारण उनका नाम नारायण पड़ा है। हे राजन्! उनके प्रभावकी कौन-सी बात बताऊँ? वे ही इस जगत्के सृष्टिकर्ता हैं। वे ही परमेश्वर योगनिद्रासे जब उठते हैं तो उनके शरीरसे आकाश उत्पन्न होता है। उन्हींसे इन्द्रिय, मन, देह और प्राण उत्पन्न होता है। जैसे भृत्य राजाका अनुगामी होकर बराबर पीछे-पीछे चलता है, उसी तरह प्राण चेष्टामें लग जाता और प्राणियोंमें चेष्टा उत्पन्न होती है। प्राणोंका संचालन होनेसे भूख और प्यास उत्पन्न होती है। इसको खाने-पीनेकी इच्छा होनेपर मुख बनता है। मुखसे तालु और उससे जीभ बनती है। जीभमें रस उत्पन्न होता है। उसके बाद वाक्य, अग्नि, नाक और आँख उत्पन्न होती है। जब उसे काम करनेकी इच्छा होती है तो दो हाथ बनते हैं। चलनेकी इच्छासे दो पैर, सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे लिंग और मलत्यागकी इच्छा होनेसे मलद्वार उत्पन्न होता है। इसके बाद मृत्युरूपी अपानवायुकी सृष्टि होती है। बादको उदर, नाड़ी, कांख, हृदय, मन, संकल्प और अभिलाषा आदि उत्पन्न होते हैं। इन सबके अधिष्ठातृ देवता और उनके नाम दूसरे स्थानमें बताये जा चुके हैं। यही भगवानका स्थूल शरीर है।

हे राजन् ! भगवानने ही ब्रह्माका रूप धारण करके अपनी माया द्वारा प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष, किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, नर, राक्षस, भूत, प्रेत तथा पिशाचोंकी सृष्टि की। इनमें पाप-पुण्योंका फल भी उत्तम, मध्यम और अधमभेदसे तीन प्रकारका होता है। हे राजन् ! जिस तरह भगवान अवतार लेकर विश्वका पालन करते हैं, उसी तरह रुद्रमूर्ति धारण करके—जैसे हवा बादलोंका नाश करती है—वे इस विश्वका संहार भी करते हैं। हे राजन् ! अब मैं पद्मकल्पकी व्याख्या कर रहा हूँ, सुनिये।

इतनी कथा सुनकर शौनक ऋषिने कहा—हे सूत ! परमभागवत विदुर बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर तीर्थयात्रामें गये तब उनके सौतेले भाईके साथ अध्यात्मविषयपर जो बातचीत हुई हो, वह हम लोगोंको सुनाओ।

सूतने कहा—हे शौनक ! आप लोग जो बात पूछ रहे हैं, उसी बातको राजा परीक्षितके प्रश्नके उत्तरमें शुकदेवजीने भी कहा था। वह कथा मैं कह रहा हूँ, आप सुनिये।

द्वितीय स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

तृतीय स्कन्ध

प्रथम अध्याय

विदुर-उद्धव-संवाद

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! महात्मा विदुर बन्धुजनोंका नाश देखनेके भयसे पाण्डवोंकी सब सम्पत्ति छोड़कर वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने मैत्रेय मुनिसे जो प्रश्न किये, उसका विवरण सुनाता हूँ। राजा धृतराष्ट्र अधर्ममें प्रवृत्त होकर अन्धे हो गये थे। उन्होंने अपने कुकर्मी पुत्रोंका पक्ष ले लिया था। छोटे भाई पाण्डुके पुत्रोंको उन्होंने लाहके मकानमें बसाया। उन्हें जीवित जला डालनेकी नीयतसे उस मकानमें आग लगवा दी। उन्होंने अपने पुत्र दुःशासनको द्रौपदीके केश पकड़कर सभामें लाते देखकर भी नहीं रोका। उस समय युधिष्ठिरकी महिषी द्रौपदीकी आँखोंसे आँसूकी धारा

बह रही थी, जिससे उनके वक्षस्थलका कुमकुम धुल गया था। धर्मपुत्र युधिष्ठिरने जुएमें अन्यायपूर्वक हारकर भी सत्य पालनेके लिए वनवास स्वीकार किया। वनसे लौटकर जब उन्होंने अपने राज्यका हिस्सा मांगा तो धृतराष्ट्रने मोहमें पड़कर उनका उचित हिस्सा नहीं दिया। अर्जुनकी बात मानकर जगद्गुरु श्रीकृष्ण दुर्योधनकी सभामें गये। उन्होंने जो बातें कहीं, उन्हे सुनकर भीष्म और कर्ण आदि प्रसन्न हुए। किन्तु धृतराष्ट्रका पुण्य समाप्त हो चुका था, अतः उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। धृतराष्ट्रने विदुरको बुलाकर पूछा तो विदुरने कहा—हे राजन्! तुम्हारे अनेक पुत्र हैं, इस तरहका विचार चित्तमें मत आने दो। युधिष्ठिरका अपने हिस्सेमें जो कुछ पावना है, वह उन्हें दे दो। जहाँ भगवान श्रीकृष्ण सहायक हैं, उनकी विजयमें क्या सन्देह है? दुर्योधन कुपुत्र है। वह वंशनाशका मूलकारण होगा। अब भी यदि कुशल चाहते होओ तो ऐसी कुमंत्रणामें न पड़ो। पृथ्वीविजयी श्रीकृष्णकी बात मान लो और उन लोगोंको राज्यका उचित हिस्सा दे दो। पाण्डवोंके साथ कभी विरोध मत करो। विदुरकी बात सुनकर दुर्योधन क्रोधसे अधीर हो उठा। कर्ण, दुःशासन और शकुनीके साथ मिलकर उसने विदुरको अपमानित करते हुए कहा—इस दुरात्मा दासीपुत्रको यहाँ किसने बुलाया। यह पापी एकदम बिगड़ गया है। जिसके अन्नसे जीता है, उसीके विरुद्ध पक्षका काम करना चाहता है। अरे! इसके पास जो कुछ हो, सब छीनकर नगरसे बाहर निकाल दो।

ऐसी बातें सुनकर विदुरको मार्मिक दुःख हुआ। इन लोगों-

की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, इनका मृत्युकाल उपस्थित है, यह सोच और धनुष कौरवोंकी ड्योढ़ीपर रखकर निकल पड़े। विदुर हस्तिनापुरसे चल दिये और पुण्यसंचयकी इच्छासे उन्होंने वृक्षकी छाल पहिन ली और वेश बदलकर तीर्थाटन करने लगे। सभी तीर्थोंमें घूमकर प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने सुना कि जैसे वन जलकर नष्ट हो जाता है, वैसे ही उनके सभी सुहृदजनोंका नाश हो चुका है। अतएव शोकसे कातर होकर उन्होंने सरस्वतीकी यात्रा की। सरस्वतीके किनारे उन्होंने त्रित, उशन, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गो, गुह और श्राद्धदेव इन ग्यारह तीर्थोंका दर्शन किया। इससे उन्हें श्रीकृष्णके स्मरणका फल प्राप्त हुआ। इसके बाद अनेक देशोंमें घूमकर यमुनातटपर आये तो उद्धवसे भेंट हुई। नीतिशास्त्रमें पण्डित और शान्तस्वभाव उद्धवको गले लगाकर उन्हेंाने भगवानके आत्मीयस्वजनों और अपने कुटुम्बीजनोंका कुशल-समाचार पूछा।

द्वितीय अध्याय

उद्धव द्वारा भगवानका बालचरित वर्णन

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! विदुरका प्रश्न सुनकर उद्धव कुछ देर चुप रहे। पाँच वर्षकी अवस्थासे ही उनका हृदय श्रीकृष्णके प्रेममें निमग्न रहता था। किसी भी वस्तुको श्रीकृष्ण मानकर वे उसमें तल्लीन हो उठते थे। भोजनके लिए माता-पिता बुलाते तो भी अपनी कल्पनाके अनुसार काम पूरा किये बिना वे भोजन करने नहीं जाते थे। श्रीकृष्णकी सेवामें लगातार निरत

रहकर उद्धव अब वृद्ध हो गये थे। श्रीकृष्णका नाम सुनकर उनका सर्वांग पुलकित हो उठा और आँखोंसे आँसू बहने लगा। यह देखकर कुछ देर बाद उद्धव चैतन्य हुए। उन्होंने दोनों आँखोंका आँसू पोंछा और विदुरको सम्बोधित करके यदुकुलके संहारकी कथा सुनाने लगे। भगवानके साथ रहते हुए भी अभागे यादव श्रीहरिको न पहचान सके। आश्चर्यकी बात है कि उनको ईश्वर न समझकर केवल यदुकुलका पुरुषश्रेष्ठ मात्र समझते थे। तपोबलके अभाववश उन सौन्दर्यसागरके दर्शनसे लोगोंकी आँखें तृप्त नहीं हुई थीं। हे महाशय! इतने दिनोंतक भगवान अपनी सौम्य मूर्ति दिखाकर अब वे अन्तर्हित हो गये हैं। भगवान उसी मूर्तिको धारण करके धर्मपुत्र युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें गये थे। वहाँ त्रिभुवनके सभी लोग उनको देखकर नयनोंका आनन्द लूटने लगे और आश्चर्यमें पड़ गये। किसी समय व्रजांगनाओंने हास्य-परिहासके समय उनकी लीला देखकर उन्हें पहिचाना था। हे विदुर! वे भगवान कालयवनके भयसे मथुरा छोड़कर द्वारका भाग गये, इससे मेरे मनमें दुःख हुआ। हाय! कितने दुःखकी बात है कि उन्होंने पिता-माताके पैर पकड़ कर कहा था—हे तात! हे मात! हम लोग कंसके डरसे आप लोगोंकी सेवा न कर सके, मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे महाशय! वे साक्षात् ईश्वर थे, यह समझानेकी जरूरत मुझे नहीं है। आप लोगोंने प्रत्यक्ष ही देख लिया है कि युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें द्वेष करनेपर चेदिराज शिशुपालको कैसी मुक्ति मिली थी। उस तरहकी मुक्ति योगियोंको सभी योगोंकी साधना करनेपर भी नहीं मिलती। कुरुक्षेत्रके युद्धमें अर्जुनके

शस्त्रोंके आघातसे वीरगण पापमुक्त हुए और श्रीकृष्णका दर्शन पाकर स्वर्गको सिधारे। हे महाशय! यह क्या साधारण दुःखकी बात है। उग्रसेन सिंहासनपर बैठे रहते थे। उनके सामने खड़े होकर वे 'जो आज्ञा हो' कहकर निवेदन करते थे। हे विदुर! उन्होंने पूतना जैसी राक्षसी और कंसका बातकी बातमें वध किया। वही कृष्ण बाल्यकालमें बाँसुरी बजाकर गोपालबालोंके साथ खेलते फिरते थे। उन्होंने कालीय सर्पका विनाश करके यमुनाके जलको विषरहित कर लिया, तब गौओं और गोप बालकोंको जल पिलाया। गोपराज नन्दके धनका सदुपयोग और इन्द्रका मान-भंग करनेकी इच्छासे उन्होंने गोवर्धनका पूजन कराया। इससे देवराज बहुत नाराज हुए और ब्रजपुरीको जलमें डूबा देनेको तत्पर हो गये। उनके इस कृत्यको देखकर भगवानने लीला करते हुए हाथोंपर गोवर्धन पर्वत उठाकर ब्रजको बचाया। शरद्‌कालमें रमणियोंसे घिरकर उन्होंने चाँदनी रात्रिमें रासलीला रचायी।

तृतीय अध्याय

श्रीकृष्णका मथुरागमन और कंसवध

उद्धवजी बोले—इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण बलदेवके साथ मथुरा गये। वहाँ उन्होंने दुरात्मा कंसको राजसिंहासनसे खींच और जमीनपर पटककर मार डाला। सन्दीपनी मुनिके मुंहसे केवल एक बार सुनकर छः अंगोंके साथ सभी वेद उन्होंने पढ़ डाले और मृत्यु-राक्षसीका पेट चीरकर सन्दीपनीके मरे हुए बच्चेको निकालकर गुरुदक्षिणास्वरूप प्रदान किया। उन्होंने सैकड़ों नरपतियोंके मस्तकों-

पर पैर रखकर भीष्मक राजाकी परम रूपवती कन्या रुक्मिणीका अपहरण करके गान्धर्व विधिसे विवाह किया। अविद्ध नासिकावाले वृषभोंका दमन करके स्वयंवरमें उन्होंने नाग्नजिती नामकी राजकन्यासे विवाह किया। सत्यभामाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए इन्द्रके साथ युद्ध करके स्वर्गसे पारिजात वृक्ष ले आये। भूमिसुत भौमासुर आकाशतक निगल जानेको तैयार हो गया तो भगवानके चक्रसे वह मारा गया। तदनन्तर भूमिकी प्रार्थनासे उसके पुत्र भगदत्तको राज्यभार देकर भगवान अन्तःपुरमें गये और सभी राजकन्याओंको लाकर उनसे विवाह कर लिया। उन सभी स्त्रियोंमें एक-एकके गर्भसे उन्होंने अपने समान दस-दस पुत्रोंको उत्पन्न किया। उन्हीं भगवानने कालयवन, मागध, शाल्व, शम्बर, द्विविद, बाण, मुर, बल्कल और दत्तवक्र आदि असुरोंका नाश किया। कुछ असुर प्रद्युम्न आदिके हाथोंसे मरे। हे विदुर! उन भगवानने तुम्हारे भतीजोंके दोनों दलोंमें जितने राजे थे, उनका वध कराया। कुरुक्षेत्रके युद्धमें पृथ्वी काँप उठी थी। कर्ण, दुःशासन और शकुनीकी कुमन्त्रणासे दुर्योधन श्रीहीन होकर सभी स्वजनोंके साथ विनष्ट हो गया तो भी श्रीकृष्णको प्रसन्नता नहीं हुई। श्रीकृष्णने कहा कि भीम, अर्जुन और द्रोणके इस महायुद्धमें भाग लेनेसे अठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी तो भी पृथ्वीका भार भला कितना कम हुआ है? मेरे अंशज प्रद्युम्न आदि हैं और उन लोगोंके अधीन अब भी अनेक यादवी सेना है। उनका भार बहुत बड़ा है। उनके ध्वंसके निमित्त मदिरा पीकर मतवाले बन जानेपर उन्हें परस्पर विवादमें लगा देना

पड़ेगा। हे महाशय! उन्हीं भगवान श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्युकी स्त्री उत्तराके गर्भकी रक्षा की थी। उन्होंने ही युधिष्ठिर द्वारा तीन अश्वमेध यज्ञ कराये थे। वे स्वयं द्वारकापुरीमें रहकर यदुगणोंके संग परम आनन्दके साथ समय बिताते रहे। उन्हीं श्रीकृष्णको गार्हस्थ्यधर्ममें रहकर कामभोगमें संलग्न रहनेपर भी एकाएक वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसका कारण यह है कि एक समय यदु और भोजवंशी बालक खेल रहे थे। उसी समय भगवानका अभिप्राय समझकर मुनियोंने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया। इसके कुछ ही महीने बाद वृष्णि, भोज और अन्धकवंशी लोग श्रीकृष्णभगवानकी मायासे मोहमें पड़ गये और प्रभासक्षेत्र तीर्थको चले गये। वहाँ उन लोगोंने स्नान करके देव, ऋषि और पितृतर्पण किया- तथा ब्राह्मणोंको धेनुदान दिया। इसके बाद सोना, चाँदी, शय्या तथा खाद्यवस्तु दान देकर विप्रोंको प्रणाम किया। उस समय उन लोगोंको ऐसा दिखाई पड़ने लगा कि मानो गो-ब्राह्मण ही प्राणियोंके पञ्चवायुको धारण किये हुए हैं।

चतुर्थ अध्याय

स्वजनोंका विनाश सुनकर आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए विदुरका मैत्रेयके पास जाना

उद्धवजी बोले—इसके बाद वृष्णि और भोजवंशी वीर मदिरा पी-पीकर उन्मत्त हो गये और परस्पर विवाद करते हुए मार-पीट करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण अपनी मायाकी गति समझकर सरस्वतीके जलमें आचमन करके एक वृक्षके नीचे बैठ गये। कुल-

संहारकी बात जानकर उन्होंने पहले ही मुझे बदरिकाश्रम भेज दिया। हे विदुर! मैं भगवानकी बात सुनकर शक्तिहीन हो गया था। फिर भी उनके पीछे-पीछे चला गया। मैंने देखा कि भगवान विषयसुख छोड़कर परम आनन्दसे पीपलके पेड़के नीचे बैठे हुए हैं। हे महाशय! उसी समय महर्षि वेदव्यासके सखा और पराशरजीके शिष्य मैत्रेय मुनि स्वेच्छासे वहाँ आ उपस्थित हुए। भगवानने मुझसे कहा—हे उद्धव! अन्तर्यामी होनेके कारण मैं तुम्हारे मनकी बात जान गया हूँ। पूर्वजन्ममें तुम वसु थे। विश्वस्रष्टा और वसुगणोंका यज्ञ करके मुझे पानेके लिए तुमने यज्ञ किया था। जिस प्रकार तुम मुझे पा सकोगे, उसका साधन मैं तुमको बता रहा हूँ। हे उद्धव! यही तुम्हारा अन्तिम जन्म है। इस जन्ममें तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया है। अब मैं यह जनलोक त्यागकर वैकुण्ठमें जा रहा हूँ। अबसे तुम भक्तियोग द्वारा अपने आपमें मेरा दर्शन करो। तुम्हारा भाग्य अच्छा है। अतएव तुम्हारा कल्याण होगा। हे उद्धव! पूर्वकालमें सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने ब्रह्माको अपनी महिमा प्रगट करनेवाला परम ज्ञानतत्त्व बताया था। पण्डितगण उसीको भागवत कहते हैं। हे महाशय! इसके बाद मैंने भगवान कृष्णकी स्तुति की और उन्होंने मुझे परमात्मज्ञानका उपदेश दिया। मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करके यहाँ चला आया हूँ, किन्तु उनके विरहसे मेरी अन्तरात्मा कातर हो रही है। अब मैं उनके उपदेशानुसार बदरिकाश्रम जा रहा हूँ। वहाँ ही भगवान नरनारायण ऋषिकल्पके अन्ततकके लिए शान्तिपूर्वक कठिन तपस्यामें लगे हुए हैं। शुकदेवजी बोले—उद्धवके मुँहसे

स्वजनोंके विनाशका विवरण सुनकर विदुर बहुत शोकाकुल हुए। किन्तु विवेककी सहायतासे उन्होंने उस शोकको शान्त कर दिया। उद्धव जाने लगे तो विदुरने कहा—हे मित्र ! भगवानने तुमको जो आत्मतत्त्व बताया था, वह मुझे भी बता दो। उद्धवजी बोले—उस समय तुम्हारे परम पूज्य मैत्रेयमुनि वहाँ उपस्थित थे। सो तुम उनसे जाकर पूछो। उद्धवजी प्रभात होते ही यमुना-तटसे बदरिकाश्रम चले गये। यह कथा सुनकर राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मशापसे जब श्रीकृष्ण आदि सभी लोगोंने शरीर त्याग दिया, तब केवल उद्धवजी कैसे जीवित रह गये ? शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्मशाप तो केवल नामकी वस्तु थी, वास्तवमें भगवानकी इच्छा ही वैसी थी। भगवानने देखा कि उद्धवजी योग्य हैं। इसलिए लोगोंको ज्ञानका उपदेश देनेके लिए उन्होंने उनको पृथ्वीपर ही रहने देना उचित समझा और बदरिकाश्रम जानेका आदेश दिया। हे राजन् ! उद्धव भगवानकी आज्ञासे बदरिकाश्रम गये और वहाँ समाधि लगाकर भगवानकी आराधनामें लग गये। भगवानकी लीला और उनके अन्तर्धानकी कथा सुनकर विदुर रोने लगे। हे राजन् ! वे कुछ दिनोंके बाद गंगाजीके तटपर जा पहुँचे। वहाँ ही उनके मित्रके पुत्र मैत्रेय मुनि रहते थे।

पञ्चम अध्याय

मैत्रेय मुनि द्वारा भगवल्लीला और सृष्टिका वर्णन

शुकदेवजी बोले—भगवानके अभावमें दुखी विदुरने गंगाजीके

तटपर विराजमान मैत्रेय मुनिसे पूछा—हे मुने! इस संसारमें लोग सुख पानेके लिए बहुतसे काम करते हैं। सो संसारमें रहकर मेरा जो कर्तव्य हो, उसका निर्णय करके आप मुझे बताइये। हे ब्रह्मन्! उसके साथ ही, ईश्वर और सृष्टिसम्बन्धी विषयोंका भी वर्णन कीजिये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! मैत्रेय मुनिने विदुरको साधु-साधु कहकर सम्बोधित करते हुए कहा—हे विदुर! तुम एकाग्रचित्तसे श्रीकृष्णनाम जपते हो, सो आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि महर्षि वेदव्याससे तुम्हारा जन्म हुआ है। पूर्व-जन्ममें तुम यम थे। माण्डव्य मुनिके शापसे विचित्रवीर्य राजाकी पत्नी-स्वरूपा दासीके गर्भ और वेदव्यासके वीर्यसे जन्म होनेके कारण तुम शूद्र कहे जाते हो। वस्तुतः तुम परम भागवत हो। तुमको भगवानने स्वयं उपदेश दिया है और तुमको उपदेश देनेके लिए वे मुझसे भी कह गये हैं। जो हो, अब भगवानकी लीलाका वर्णन करता हूँ। इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और नाश भगवानकी ही लीला है। सृष्टिके पहले कुछ भी नहीं था। पहले-पहल उस शक्तिसे जिसे माया कहते हैं, यह विश्व प्रकाशित हुआ। इसके बाद महत्तत्त्वके विकारसे अहंकारतत्त्व उत्पन्न हुआ। उसी अहंकारसे कार्य अर्थात् अधिभूत, कारण अर्थात् अध्यात्म होता और कर्ता अर्थात् अधिदैव उत्पन्न होता है। सात्त्विक, राजस और तामस ये तीन प्रकारके अहंकार होते हैं। सात्त्विक अहंकारके विकारसे मन और देवताओंकी उत्पत्ति हुई। राजस अहंकारके विकारसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी सृष्टि हुई। तामस अहंकारके विकारसे शब्द जायमान हुआ। शब्दसे आकाश बना। वही आत्मा अर्थात् चेतनारूपी शरीर

है। इसके बाद काल और मायाके अंशोंके योगसे भगवानने आकाशकी ओर दृष्टि फेरी तो वायुकी सृष्टि हुई। वायु और आकाशके विकारसे तेज बना। तेज और वायुसे जल एवं जलसे भूमिकी उत्पत्ति हुई। आकाशका गुण शब्द और वायुका गुण स्पर्श है। भूमिके शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस ये चार गुण हैं। इनके अतिरिक्त एक असाधारण गुण गन्ध भी है। सभी देवता विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। हे विदुर! एक साथ सबका मिश्रण नहीं हुआ। सभी पृथक्-पृथक् रह गये। तब सृष्टि करनेमें असमर्थ होकर सृष्टिकर्म करनेवाले देवता परमेश्वरकी स्तुति करने लगे।

षष्ठ अध्याय

विराटमूर्तिकी सृष्टि

मैत्रेयने कहा—जब देवता विश्वकी रचना नहीं कर सके, तब परमेश्वरने उन सभी वस्तुओंको एकत्र करके विराट् देहकी सृष्टि की। उस विराट् शरीरमें सभी ब्रह्माण्ड समा गये। इसके बाद भगवानने उस विराट् शरीरको सन्तप्त किया तो हे विदुर! उस विराट्के शरीरसे चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, अधिदेवता, वृक्ष, लता और जीवोंकी सृष्टि हुई। उस विराट् शरीरके सिरसे स्वर्ग, दोनों पैरसे पृथ्वी और उसकी नाभिसे आकाश उत्पन्न हुआ। देवता स्वर्गमें रहते हैं। मनुष्य पृथ्वीपर रहते और शेष प्राणी स्वर्ग तथा पृथ्वीके बीच शून्यमें रहते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! उस विराट् पुरुषके मुँहसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, दोनों जाँघोंसे वैश्य और दोनों पैरोंसे शूद्रजातिकी उत्पत्ति हुई। हे विदुर!

भगवानकी लीलाका संकीर्तन करनेसे कैवल्यपद प्राप्त होता है। जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हजारों वर्षतक योगसाधन करके भी श्रीभगवानकी महिमा नहीं जान सके तो किसमें इतनी शक्ति है कि उन भगवानकी मायाकी गति जान पाये। भगवानके तत्त्वको जान लेना बहुत कठिन है। इसीलिए मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

सप्तम अध्याय

मैत्रेय मुनिके वचनसे विदुरको आत्मग्लानि

शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा—हे राजन्! विदुरने प्रश्न किया—हे ब्रह्मन्! भगवान चैतन्यस्वरूप और निर्विकार हैं। इस अवस्थामें उनके गुणों और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हुआ? यदि आप कहें कि यह सब लीलाके कारण हुआ तो यह बात युक्तिसंगत कैसे हो सकती है? परमेश्वर तो सदा सन्तुष्ट रहते हैं। तब उनके मनमें अभिलाषा कैसे उत्पन्न हुई? हे मुने! भगवान अपनी माया द्वारा विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। तब वे स्वयं अविद्या अर्थात् मायाके बन्धनमें कैसे बँध गये? यदि भगवानका अंश सबके शरीरमें जीवरूपसे रहता है तो लोगोंको क्लेश क्यों होता है? विदुरकी बात सुनकर मैत्रेयने कहा—हे विदुर! भगवानकी माया अचिन्तनीय है। शरीर, धर्म और बन्धन आदि जीवको ही होते हैं, ईश्वरको नहीं। भगवान वासुदेवके गुणकीर्तन और उनके गुणोंकी कथाओंका श्रवण करनेसे क्लेश दूर हो जाता है। भगवानकी भक्तिसे मनुष्योंके विविध दुःख दूर हो जाते हैं। मैत्रेय मुनिके वचन सुनकर

विदुरने अपने मनके सभी संशय दूर कर लिये। आदिसे अन्ततक सृष्टिका विवरण जाननेको इच्छुक होकर उन्होंने फिर प्रश्न किया। मैत्रेय मुनिने प्रसन्न चित्तसे हँसते हुए कहना आरम्भ किया।

अष्टम अध्याय

ब्रह्माका जन्म और उनका भगवानकी स्तुति करना

मैत्रेयने कहा—हे विदुर! संसारका दुःख दूर करनेके लिए ही मैं भागवतपुराण कह रहा हूं, सुनो। एक समय सनत्कुमार आदि मुनियोंने पातालमें आदि भगवान संकर्षणसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया था। जिस समय भगवान संकर्षण अपने आश्रय और परम आराध्य वासुदेवका ध्यान कर रहे थे। उसी समय सनत्कुमार आदि मुनि उनके सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान संकर्षणने उन लोगोंका स्वागत करनेके लिए आधी आँख खोलकर देखा कि ऋषिगण स्वर्गसे पातालमें आये हैं। उनकी जटाएँ गंगाजीके जलसे भींगी हुई थीं। उसी जलसे उन्होंने उनके पादपद्मका स्पर्श किया। पाताललोककी नागकन्याएँ अपने लिए योग्य पति आनेकी कामनासे विविध उपहारोंसे संकर्षणभगवानकी पूजा किया करती थीं। सनत्कुमार आदि मुनियोंके सम्मुख भगवान संकर्षणने इस भागवत महापुराणका वर्णन किया। सनत्कुमारने संख्यायन नामक ऋषिको इसे सुनाया। परमहंस संख्यायनने मेरे गुरु मुनिवर पराशर और बृहस्पतिको सुनाया। यह सुनकर कि राक्षस मेरे पिताको खा गये, पराशर मुनिने राक्षसकुल नष्ट करनेके लिए यज्ञ किया। राक्षस लोग पुलस्त्यके वंशधर थे। यज्ञसे राक्षसकुलका विनाश होते देखकर महर्षि

पुलस्त्यने पराशरको उस यज्ञसे निवृत्त कर दिया और प्रसन्न होकर वर दिया कि तुम पुराणके वक्ता होओगे। पराशरने दया करके मुझको यह पुराण सुनाया। तुम मेरे अनुयायी हो। अतएव मैं तुमको यह पुराण सुना रहा हूँ। सुनो—हे विदुर! यह विश्व जब एकार्णवमें डूबा हुआ था, तब भगवान नारायण अकेले महासर्प अनन्तको शय्या बना और क्रियाशून्य होकर आँखे बन्द किये सोये पड़े थे। चार हजार युगोंतक योगनिद्रामें मग्न रहकर पुनः लोकसृष्टि करनेके लिए उन्होंने अपनी कालशक्तिको प्रेरित किया। बादको उनके नाभिदेशसे जगत्की उत्पत्ति हुई। कालके प्रभावसे वह जगत् कमलकोषके रूपमें परिणत हो गया। उस कमलकोषकी उत्पत्तिके मूल भगवान विष्णु ही थे। उस कमलकोषमें विष्णुका अधिष्ठान हुआ और उसीसे वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए। स्वयं ही उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्माको स्वयम्भू भी कहते हैं। पूर्वकल्पके अन्तमें ब्रह्मा नारायणके साथ निद्रामें मग्न हो गये। ब्रह्माजीने उत्पन्न होकर चारों तरफ देखा तो उनके चार मुख हो गये। जलके बीच जिस कमलपर ब्रह्माजी बैठे हुए थे, उसपर और किसीको न देख और प्रलयकालकी वायुमें जलके तरंगें देखकर ब्रह्माके मनमें मोह उत्पन्न हुआ। मोहके वशमें होकर वे तर्क-वितर्क करने लगे कि कमलपर बैठा हुआ मैं कौन हूँ? जलके ऊपर कमल है। इस शून्यमें शून्यकी उत्पत्ति कहाँसे हो गयी? अवश्य ही इसके नीचे कुछ है। इस प्रकार तर्क-वितर्क करके उन्होंने कमलनालके छेदसे होकर जलके अन्दर प्रवेश किया। किन्तु उस कमलनालका भी कोई आधार उनको नहीं मिला।

हे नारद ! इस प्रकार ब्रह्माका बहुत समय बीत गया। सौ संवत्सर आयु बीत गयी तो भी उन्हें वांछित फल नहीं मिला। इसके बाद वे वांछित वस्तुकी खोजसे विमुख हो गये और फिर समाधिस्थ होकर कमलके ऊपर बैठ गये। पहले खोज करके जिनको न पा सके, उनको अब उन्होंने अपने हृदयमें ही प्रकाशमान देखा। उन्होंने देखा कि जलमें गौरवर्णके संयत शरीरवाले सर्पके फणको शय्या बनाकर एक पुरुष उसपर सोया पड़ा है। उसके मस्तकपर रत्न शोभा पा रहा है। उसके प्रकाशसे जलका अन्धकार दूर हो गया है। वह पीले रंगके कपड़े पहिने है। माथेपर सोनेका मुकुट है। गलेमें वनमाला है और पैरोंमें तुलसी और फूल बिखरा पड़ा है। उसकी नाक और भौंहें सुन्दर हैं। गलेमें महामूल्यवान हार पड़ा है। पैरोंमें केयूर है और दोनों बाँहें तरह-तरहके रत्नोंसे भूषित हैं। ब्रह्माने जब भगवानका दर्शन किया, तब लोकसृष्टिके सम्बन्धमें दृष्टिनिक्षेप करनेपर उनके नाभिसरोवरमें कमल, आत्मा, जल, वायु और आकाशको देखा। सृष्टिका यह सब उपकरण देखकर उन्होंने भगवानकी स्तुति आरम्भ कर दी।

नवम अध्याय

लोकसृष्टिकी कामनासे ब्रह्मा द्वारा भगवानकी स्तुति

ब्रह्माने कहा—हे भगवन् ! अनेक वर्षोंकी उपासनाके बाद आज मैं आपको जान सका हूँ। अहा ! शरीर धारण करनेवालोंका कैसा दुर्भाग्य है कि उन लोगोंके लिए आपको अनेक रूपोंमें प्रगट होना पड़ता है। हे भगवन् ! मैं आपके नाभि-

कमलरूपी गृहसे बाहर निकल आया हूँ। आप आनन्दस्वरूप और एकरूप हैं। मैं आपके उसी रूपकी शरणमें आ रहा हूँ। हे प्रभो! आपका यही रूप उपासनाके लिए उपयुक्त है। यह विश्वसे भिन्न प्रकारका है। यही पृथ्वी आदि भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है। हे भगवन्! आप मंगलमय हैं। जगत्के नराधम आपका आदर नहीं करते। नहीं तो कौन ऐसा है, जो आपको नमस्कार नहीं करता। हे प्रभो! जो प्राणी आपकी कथाको आदरके साथ सुनते हैं। आपकी शरण में जाते हैं। वे आपके अपने जन होते हैं। उनका हृदय नित्य प्रकाशमान रहता है। हे प्रभो! आपका आश्रय ग्रहण करनेसे कोई भय नहीं रह जाता। आपकी दया सभी प्राणियोंपर समानरूपसे रहती है। आप शिष्टजनोंके पालक और दुष्टोंके नाशक हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे भगवन्! आप अपनी इच्छानुसार तिर्यक्, मनुष्य और देवादि योनियोंमें जन्मग्रहण करके लीला करते हुए अपनी प्रजाके शत्रुओंका नाश करते हैं। आप पुरुषोत्तम हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप अचिन्त्य पुरुष हैं। मैं आपकी और कितनी स्तुति करूँ। अब आपको नमस्कार भर कर लेता हूँ। ब्रह्माजीने इस प्रकारकी स्तुति करते हुए भगवानसे निवेदन किया कि आप मुझे जगत्की सृष्टि करनेकी शक्ति दीजिये। भगवानने देखा कि ब्रह्माजी बहुत उदास हो रहे हैं। उनके मन की बात वे जान गये। इसलिए उनका मोह दूर करते हुए कहने लगे—हे वेदगर्भ! खेद मत करो। सृष्टिके लिए तुम चिन्ता छोड़ दो। तुम मुझसे जिस बातके लिए प्रार्थना कर रहे हो, उसे मैंने पहले ही पूरा कर दिया

है। हे ब्रह्मन्! तुम फिर तपस्या करके मेरे सम्बन्धकी विद्याका अभ्यास करो। ऐसा करनेसे तुम अपने हृदयमें सभी लोकोंको स्पष्टरूपसे देख सकोगे। यदि भक्तिका आश्रय करके मनको स्थिर करोगे तो तुम देखोगे कि मैं सर्वव्यापी हूँ। ऐसा होनेसे जीवका मोह दूर हो जायगा और मुझे जीवका आत्मास्वरूप जान लेनेपर मोक्ष प्राप्त करोगे। हे ब्रह्मन्! तुम्हारे ऊपर मेरी विशेष कृपा है। अतएव अनेकानेक प्रजाकी सृष्टि करनेमें तुम्हें कुछ भी थकावट नहीं होगी। संसारके देहधारी मुझे जान नहीं सकते। किन्तु तुम आज मुझे जान गये हो। हे ब्रह्मा! तुम कमलके नालमें प्रवेश करके मूल आधारका पता लगा रहे थे, किन्तु तुम अपना सन्देह न मिटा सके। अर्थात् कमलके नालका आधार तुमको नहीं मिला। उस समय मैंने तुम्हारे हृदयमें ही अपना रूप दिखाया। हे ब्रह्मा! मेरी कृपासे ही तुमने मेरी स्तुति की और तपस्यामें तुम्हारी निष्ठा उत्पन्न हुई। जो हो, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मंगल हो। अपने सृष्टिकार्यमें तुमको सफलता मिले। यह कहकर नारायण अन्तर्धान हो गये।

दशम अध्याय

दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

विदुरने कहा—हे मैत्रेय! भगवानके चले जानेपर ब्रह्माजीने कितने प्रकारकी सृष्टि की, यह अच्छी तरह बताइये। सूतजी बोले—हे द्विजवर! विदुरकी बातसे सन्तुष्ट होकर मैत्रेय मुनि कहने लगे। मैत्रेयने कहा—हे विदुर! भगवान नारायण ब्रह्माको

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

उपदेश देकर चले गये। तब ब्रह्माजी आत्मामें मन लगाकर दो हजार वर्षतक तपस्या करते रहे। इसके बाद ब्रह्मा जिस कमलमें बैठे थे, वह काँपने लगा तो वे अपनी तपस्याके प्रभावसे सब वायु और जल पी गये। तदनन्तर वे जिस कमलपर बैठे थे, उसे आकाशमें स्थित देखकर सोचने लगे कि मैं इसी कमलके अवलम्बसे सृष्टि करूँ। इसी समय ब्रह्माने भगवत्प्रेरणासे उस कमलको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। वह कमल बहुत दूरतक विस्तृत था। चौदह भुवनोंसे भी अधिक स्थान उसके अन्तर्गत हो सकते थे। तब उससे तीनों लोकोंकी सृष्टि हो जानेमें आश्चर्य ही क्या है? ब्रह्मलोक, सत्यलोक और महर्लोककी सृष्टि नित्य नहीं होती। इन तीनों लोकोंके लोगोंकी प्रायः मुक्ति हो जाती है। दो परार्ध वर्षोंतक इनका नाश नहीं होता। किन्तु अन्य तीनों लोकोंकी सृष्टि नित्य होती रहती है। सृष्टिका विवरण सुनकर विदुरने भगवानका कालरूप जाननेकी इच्छा प्रकट की तो मैत्रेयने कहा—हे वत्स विदुर! गुणोंका जो पारस्परिक सम्बन्ध है, वही काल कहलाता है। कालका अन्त नहीं है अर्थात् वह आदि और अन्तसे रहित है। भगवान अपनी ईश्वरीय लीला द्वारा उस कालको कारण बनाकर ब्रह्माण्डके रूपमें आत्माकी सृष्टि करते हैं। यह विश्व इस समय जैसा है, पहले भी ऐसा ही था और बादको भी ऐसा ही रहेगा। इस विश्वकी सृष्टि नौ प्रकारकी है। इसके अतिरिक्त प्राकृत और वैकृत सृष्टि दसवीं सृष्टि है। इसी कारण काल, द्रव्य और गुण द्वारा तीन प्रकारके प्रलय भी होते हैं। कालके द्वारा नित्य प्रलय, अनन्तके मुखकी अग्निसे नैमित्तिक प्रलय और अपने ग्रासकारी

गुणोंसे प्राकृतिक प्रलय होता है। हे विदुर! अब नौ प्रकारकी सृष्टिकी कथा सुनो। प्रथम महत् सृष्टि, द्वितीय अहंकारसृष्टि, तृतीय भूतसृष्टि, चतुर्थ ज्ञानकर्मेन्द्रियसृष्टि, पंचम वैकारिक सृष्टि, षष्ठ अविद्या सृष्टि, सप्तम स्थावर सृष्टि, अष्टम तिर्यक् योनिसृष्टि और नवम मनुष्य सृष्टि होती है। प्रथम छः प्रकारकी सृष्टियोंको प्राकृत सृष्टि कहते हैं। वैकारिक सृष्टि भगवानकी लीलामात्र है। स्थावर सृष्टि छः प्रकारकी होती है। प्रथम वनस्पति अर्थात् फूलके बिना फल धारण करनेवाले वृक्ष उत्पन्न होते हैं। द्वितीय औषधि अर्थात् जो वृक्ष फलोंके पक जानेपर मर जाते हैं। तृतीय लता अर्थात् पेड़ोंके सहारे जिनकी उत्पत्ति होती है। चतुर्थ त्वक्सार अर्थात् बांस आदि हैं। पञ्चम वीरुध् लता विशेष हैं, जो आश्रयके बिना पृथ्वीपर रहती हैं। षष्ठ द्रुम हैं, जिनमें फूलोंमें ही फल होते हैं। तिर्यग् योनिकी सृष्टि अट्ठाईस प्रकारकी होती है। ये तमोगुणविशिष्ट और ज्ञानहीन होते हैं। गाय, बकरी, कृष्णसार हरिण, सूअर, बन्दर, रुरुनामक एक प्रकारका हरिण, भेंड़, ऊँट इन सबके खुर बीचमें फटे रहते हैं। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर जातीय हरिण, शरभ और चमरी गऊ—इनके खुर फटे नहीं रहते। कुत्ता, गीदड़, वृक अर्थात् भेड़िया, बाघ, बिल्ली, खरगोश, शल्लकीजातीय हरिण, सिंह, बन्दर, हाथी, कछुआ, गोह, मगर आदि—इनके पाँच नख होते हैं। इसलिए इनको पंचनख कहते हैं। मकर आदि जलजन्तु, कंक अर्थात् कांकपक्षी, बटेर, श्येन अर्थात् बाजपक्षी, भालू, मोर, हंस, सारस, चक्रवाक, काक, उलूक आदिकी खेचर सृष्टि है। ये आकाशमें घूम-घूमकर आहार खोजते हैं।

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

नवम सृष्टि मनुष्योंकी है। रजोगुणकी अधिकताके कारण ये सर्वदा कार्यमें व्यस्त रहते और दुःखमें भी सुखका अनुभव करते हैं। हे विदुर! वैकारिक देवसृष्टि आठ प्रकारकी होती है। यथा—देव, पितर, असुर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, चारण, विद्याधर, भूत, प्रेत, पिशाच, किन्नर, किम्पुरुष इत्यादि। इस तरह दस प्रकारकी सृष्टि मैंने कही। इसके बाद मैं वंश और मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ।

एकादश अध्याय

परमाणु, काल, युग और मन्वन्तरादिका वर्णन

मैत्रेयने विदुरको सम्बोधित करते हुए कहा—जिसका भाग नहीं हो सकता, ऐसे सूक्ष्म अंशको परमाणु कहते हैं। परमाणुओंके परस्पर मिल जानेसे जीवोंके अवयव तैयार होते हैं। दो परमाणुओंका एक अणु, तीन अणुओंका एक त्रसरेणु (त्रसरेणु दिखाई पड़ता है) तीन त्रसरेणुओंकी एक त्रुटि, एक सौ त्रसरेणुका एक वेध, तीन वेधका एक लव, तीन लवका एक निमेष, तीन निमेषका एक क्षण, पाँच क्षणकी एक काष्ठा, पन्द्रह काष्ठाका एक लघु, पन्द्रह लघुओंकी एक नाड़ी (दण्ड) दो नाड़ीका एक मुहूर्त और छः या सात नाड़ीका एक प्रहर होता है। यह प्रहर मनुष्योंके दिन या रातके चार भागोंका एक भाग होता है। नाड़ीका अनुमान इस प्रकार करना चाहिये—अढ़तालीस तोला वजनका ताँबेका ऐसा कटोरा लावे, जिसमें दो

सेर पानी अँट सके। उस कटोरेकी पेंदीमें बारीक छेद करके पानीपर छोड़ दे। जब वह कटोरा जलमें डूब जाय तो एक नाड़ी समझे। चार पहरकी एक रात होती है। चार पहरका एक दिन होता है। पन्द्रह दिन-रातका कृष्ण या शुक्ल एक पक्ष होता है। दो पक्षका एक महीना होता है। दो महीनेकी एक ऋतु, छः महीनेका एक अयन, दो अयनका देवता लोगोंका एक दिन-रात होता है। बारह महीने या देवताओंके एक दिन-रातसे मनुष्योंका एक वर्ष होता है। इस प्रकार एक सौ वर्ष मनुष्योंकी परमायु है। सूर्य एक वर्षमें बारहों राशियोंमें भ्रमण करते हैं। उसको कालचक्र कहते हैं। संवत्सर पाँच तरहका होता है। यथा—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर। बारह राशियोंमें सूर्यके भोगकालको संवत्सर कहते हैं। बारह राशियोंमें बृहस्पतिके भोगकालको परिवत्सर कहते हैं। तीस सूर्योदयका जो मास होता है, उसके बारह महीनेका एक इडावत्सर होता है। द्वादश राशियोंके चन्द्रभोगकालको अनुवत्सर कहते हैं। नक्षत्रघटित बारह महीनेको वत्सर कहते हैं। यह विवरण सुनकर विदुरने कहा—हे प्रभो! तीनों लोकोंके बाहर जो ज्ञानी महर्लोक आदिमें हैं, उनकी गति कैसी है? मुझे बतानेकी कृपा कीजिये। मैत्रेयने कहा—हे विदुर! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं। सन्ध्या और सन्ध्याके अंश सहित इन चार युगोंका परिमाण दिव्य बारह हजार वर्षोंका होता है। सत्ययुगका परिमाण—दिव्य चार हजार वर्ष, सन्ध्याकाल चार सौ वर्ष और सन्ध्यांश चार सौ वर्षका होता है। त्रेतायुगका परिमाण—तीन हजार वर्ष,

सन्ध्याकाल तीन सौ वर्ष और सन्ध्यांश तीन सौ वर्ष है। द्वापर युगका परिमाण—दो हजार वर्ष, सन्ध्याकाल दो सौ वर्ष और सन्ध्यांश दो सौ वर्ष है। कलियुगका परिमाण—एक हजार वर्ष, सन्ध्याकाल एक सौ वर्ष और सन्ध्यांश एक सौ वर्ष है। हे विदुर ! युगके प्रारम्भमें सन्ध्या और अन्तमें सन्ध्यांश होता है। सन्ध्या और सन्ध्यांशके मध्यमें जो समय है, उसे पण्डित लोग युग कहते हैं। सत्ययुगमें धर्मके चार पाद, त्रेतामें तीन पाद, द्वापरमें दो पाद और कलियुगमें एक पाद रहता है। इस त्रिभुवनके बाहर ब्रह्मलोक तक व्याप्त जो एक हजार चतुर्युग है, वह ब्रह्माका एक दिन और उतने ही समयकी एक रात्रि होती है। उसी रात्रिमें जगत्‌के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा नींदमें सोये रहते हैं। इसके बाद रात्रि बीत जानेपर ब्रह्मा जगत्‌की रचना प्रारम्भ करते हैं। एक-एक मनु अपने-अपने कालमें सत्तर युगसे कुछ अधिक समय तक भोग करते हैं। इस तरह चौदह मनुका भोगकाल ब्रह्माका एक दिन होता है। एक-एक मनुके समयमें सप्तर्षि, देवता, मनु, इन्द्र, गन्धर्व आदि उत्पन्न होते हैं। पशु, पक्षी, मानव, पितृगण और देवगण अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जन्म लेते हैं, वही ब्रह्माकी प्रात्यहिक अर्थात् प्रतिदिनकी सृष्टि कहलाती है। हे विदुर ! ब्रह्मा सत्त्वगुणसे इस विश्वका पालन करते हैं। इसके बाद दिन बीत जानेपर तमोगुण धारण करके वे संहार करते हैं। ब्रह्माकी रात्रि उपस्थित होनेपर अन्धकार-अग्निसे त्रिलोकी जलने लगती है तो उस समय भृगु आदि महर्षिगण गरमीका अनुभव करके महर्लोकसे जनलोकमें चले जाते हैं। कल्पान्त उपस्थित होनेपर

पृथ्वी समुद्रके जलमें डूब जाती है। भगवान हरि उस जलमें अनन्तको शय्या बनाकर आधी आँख खोले योगनिद्रामें सो जाते और ऋषिगण जनलोकसे उनकी स्तुति करते हैं। पहला ब्रह्मकल्प और दूसरा पद्मकल्प है। हे नारद! द्वितीय परार्द्धके प्रारम्भमें जो कल्प है, उसे बराहकल्प कहते हैं। इस कल्पमें भगवान हरिने बराह रूप धारण किया था। हे वत्स! इस ब्रह्माण्डके भीतर एक करोड़ योजनका विस्तार है। इस तरहके करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं। पण्डित लोग इन सब कारणोंका कारण उसी परमब्रह्मको बताते हैं। वे ही परमपुरुष विष्णुके परमस्वरूप हैं।

द्वादश अध्याय

ब्रह्माकी सृष्टिका वर्णन

मैत्रेयने कहा—हे विदुर! ब्रह्माकी कालमहिमाका वर्णन मैं कर चुका। अब ब्रह्मा जिस तरह सृष्टि करते हैं, वह बता रहा हूँ। सुनो—पहले ब्रह्माने तप, मोह और भोग तथा क्रोधकी भोगेच्छाके नाशसे मैं मर रहा हूँ—इस तरहकी बुद्धि और अज्ञानवृत्तियोंकी सृष्टि की। इन मन्द सृष्टियोंसे ब्रह्माको सन्तोष नहीं हुआ। तब वे भगवानका ध्यान करके अन्य प्रकारकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हो गये। इस कार्यमें प्रवृत्त होनेपर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार मुनि उत्पन्न हुए। ये लोग ऊर्ध्वरेता थे। ब्रह्माजीने इन लोगोंको प्रजासृष्टि करनेके लिए कहा तो इन्होंने उनके कथनपर ध्यान नहीं दिया। मोक्षको ही परम धर्म

समझकर वे भगवान वासुदेवकी उपासनामें रत हो गये। पुत्रोंने बात नहीं मानी, इससे ब्रह्मा मन ही मन बहुत क्रुद्ध हुए, किन्तु क्रोधको रोका। पर उस क्रोधसे दोनों भौंहोंके बीचसे नील-लोहित रंगका एक कुमार उत्पन्न हुआ। देवताओंमें सर्वप्रथम सृष्टि उसीकी हुई थी। उत्पन्न होते ही वह कुमार रोने लगा और बोला—मेरा नाम और रहनेका स्थान बताइये। ब्रह्माने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—हे वत्स! तुम बालककी तरह रोने लगे, इसलिए प्रजागण तुमको रुद्र कहकर पुकारेंगे। हे रुद्र! हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और तपस्या ये सब तुम्हारे रहनेके स्थान हैं। पहले ही मैंने इन सबकी रचना कर दी है। मन्यु, मनु, महिनस, महान, शिव, शतध्वज, उग्रतेजा, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत—ये ग्यारह तुम्हारे नाम होंगे। धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा और रुद्राणी—ये नौ तुम्हारी स्त्रियाँ होंगी। तुम प्रजापति हो। अतएव प्रजाकी सृष्टि करो। ब्रह्माकी आज्ञा पाकर रुद्रने अपने ही समान असंख्य पुत्र उत्पन्न किये। वे समस्त जगत्को निगल जानेको तैयार हो गये। उनकी यह मनोवृत्ति देखकर ब्रह्माने डरकर रुद्रसे कहा—हे वत्स रुद्र! सब प्राणियोंके सुखका कारण तपस्या है। इसलिए तुम तपस्या करो। तुम्हारा मंगल होगा। मैत्रेयने कहा—पिताके आदेशसे रुद्र वनमें चले गये और तपस्या करने लगे। इसके बाद ब्रह्माजी सृष्टिके सम्बन्धमें सोचने लगे तो भगवानकी शक्तिसे उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य,

पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद हैं। ब्रह्माकी गोदसे नारद, अंगूठेसे दक्ष, प्राणसे वशिष्ठ, चमड़ेसे भृगु, हाथसे क्रतु, नाभिसे पुलह, दोनों कानोंसे पुलस्त्य, मुँहसे अंगिरा, दोनों नेत्रोंसे अत्रि, मनसे मरीचि और उस दाहिने स्तनसे धर्म उत्पन्न हुए, जिसमें स्वयं नारायण विराजमान रहते हैं। इनके अतिरिक्त पीठसे अधर्म, हृदयसे काम, भौंहोंसे क्रोध, अधर और ओठसे लोभ, मुँहसे वाक्य, लिंगसे समुद्र और मलद्वारसे पापाश्रय निर्ऋति अर्थात् अलक्ष्मी उत्पन्न हुई। उनकी छायासे देवहूतिके पति कर्दमका जन्म हुआ। उन्हीं भगवान ब्रह्माके मन और शरीरसे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। हे विदुर! स्वयम्भू ब्रह्माके द्वारा वाक् नामकी एक परम सुन्दरी कन्याका जन्म हुआ और ब्रह्मा कामातुर होकर उस कन्यासे ही रमण करनेको तैयार हो गये। इस दुष्कर्ममें उनकी प्रवृत्ति देखकर मरीचि आदि मुनियोंने उन्हें समझाया। तब लज्जा और घृणाके कारण ब्रह्माने अपना शरीर छोड़ दिया। किन्तु पिताके प्रति कन्याके मनमें कोई आसक्ति नहीं उत्पन्न हुई। ब्रह्माके शरीर त्याग करनेपर उस घोर शरीरको दिशाओंने ग्रहण कर लिया। वही नीहारमय तमोरूपसे दिशाओंमें स्थित रहता है। हे विदुर! एक समय ब्रह्मा इस चिन्तामें पड़ गये कि पूर्वकल्पकी भाँति फिर कैसे सृष्टि करूँ। इस तरह चिन्तामें वे डूबे तैसे ही उनके चारों मुखोंसे वेद, उपवेद, नीति, तंत्र और धर्म ये सब सहसा निकल पड़े। विदुरने पूछा—हे मुने! ब्रह्माने अपने मुँहसे जिन वेद आदिकी सृष्टि की, उनका विशेष विवरण सुनाइये। मैत्रेयने कहा—ब्रह्माके पूर्व आदि

चारों मुखोंसे ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चार वेद एवं मंत्र, स्तोत्र, गीत, प्रायश्चित्त, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, विश्वकर्माका शिल्पशास्त्र और यज्ञका अंग कर्म—ये सब उत्पन्न हुए। तदनन्तर शौच, दान और तपस्या ये धर्मके तीन पद तथा सावित्र अर्थात् ब्रह्मचर्य, प्राजापत्य अर्थात् उपनयनतक गायत्री पढ़नेवालेका तीन रातका व्रत, ब्रह्मव्रत अर्थात् सम्वत्सरके बीच वेदपाठ आरम्भ करना, बृहत् अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, वार्ता अर्थात् जिन कार्योंको करनेका निषेध नहीं है, संचय अर्थात् याजनादि वृत्ति, शालीन अर्थात् याचनाके बिना वृत्ति, शिलोञ्छ यानी खेतोंसे अन्न बीनकर लाना—ये सभी वृत्तियाँ ब्रह्माके पूर्वादि मुखोंसे उत्पन्न हुईं। वनवृत्ति सृष्टि चार प्रकारकी होती है—वैखानस, बालखिल्य अर्थात् नया अन्न पाकर पहलेका संचित अन्न छोड़ देनेवाले, औदुम्बर अर्थात् प्रातःकाल उठकर जिधर दृष्टि जाय, उधरहीसे फल आदि संग्रह करके जीविका चलानेवाले और फेनपा अर्थात् आप ही आप गिरे फलोंको खाकर रहनेवाले। इनके अतिरिक्त भी संसारत्यागी कई प्रकारके होते हैं—कुटीचर अर्थात् अपने आश्रमधर्ममें प्रधान। बह्वोद अर्थात् कर्म-उपासना छोड़कर ज्ञानके अभ्यासमें निरत। हंस अर्थात् ज्ञान अभ्यासमें तत्पर। निष्क्रिय अर्थात् तत्त्वज्ञान प्राप्त। ब्रह्माके मुखोंसे इन सबकी उत्पत्ति हुई। आन्वीक्षिकी अर्थात् तर्कविद्या, त्रयीविद्या अर्थात् वेदविद्या और दण्डनीति, तीन प्रकारकी व्याहृतियाँ और प्रणव उनके हृदयसे उत्पन्न हुए। उसी विभुके लोमसे उष्णिक् छन्द, चमड़ेसे गायत्री छन्द, मांससे त्रिष्टुप् छन्द, स्नायुसे अनुष्टुप् छंद, हड्डीसे जगती छंद, मज्जासे पंक्ति और प्राणसे

CC0. In Public Domain, Digitiżagtion by eGangotri

बृहती छन्दकी उत्पत्ति हुई। उनके स्पर्शज्ञानसे क ख आदि पञ्चवर्गीय अक्षर, देहसे स्वरवर्ण, इन्द्रियसे श ष स ह आदि उष्मा संज्ञक वर्ण, बलसे य र ल व आदि अन्तस्थ वर्ण और बिहार द्वारा षड्ज आदि सप्तस्वरोंकी उत्पत्ति हुई। यह ब्रह्माकी शब्दमूर्तियें हैं। और व्यक्त (वैखरी नामकी वाक्यरूपा भाषा) और अव्यक्त (प्रणव) उभयात्मक हैं। व्यक्त मूर्तिसे पूर्ण ब्रह्म प्रकाशित होता और अव्यक्त मूर्तिसे नाना शक्तियोंसे युक्त इन्द्र आदि देवता प्रकट होते हैं। इसके बाद सृष्टिके सम्बन्धमें उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। जब उन्होंने देखा कि ऋषियोंसे सृष्टिका विस्तार नहीं हुआ तो दैवकी तरफ दृष्टिपात करके चिन्तामग्न हो गये। इसके फलस्वरूप उनकी मूर्तिके दो टुकड़े हो गये। एक अंशसे स्वायम्भुव मनु पुरुष और दूसरे अंशसे शतरूपानाम्नी स्त्री उत्पन्न हुई। इन दोनों स्त्री-पुरुषोंसे दो पुत्र और तीन कन्याओंका जन्म हुआ। दोनों पुत्रोंके नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद पड़े और तीनों कन्याएँ आकूति, देवहूति और प्रसूति नामसे प्रसिद्ध हुईं। मनुने आकूतिका रुचिके साथ, देवहूतिका कर्दमके साथ और प्रसूतिका दक्षके साथ ब्याह कर दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे इनकी सन्ततियोंसे सारा संसार भर गया।

त्रयोदश अध्याय

भगवानका वराहरूप धारण करके पृथ्वीका उद्धार करना

श्रीशुकदेवने कहा—हे राजन्! भगवान वासुदेवकी कथा सुनकर विदुरके मनमें भक्ति उत्पन्न हुई तो उन्होंने मैत्रेयमुनिसे

भगवानका पवित्र चरित्र सुननेकी इच्छा प्रकट की। इसपर मैत्रेय मुनि प्रसन्न होकर कहने लगे—हे विदुर! स्वायम्भुव मनुने यह सोचकर कि इस लोकमें यश और परलोकमें सद्गति मिलेगी, पितासे उन्होंने कोई सेवा लेनेकी प्रार्थना की। इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने कहा—हे वत्स पृथ्वीश्वर! तुम्हारा कल्याण हो। हम लोगोंको उपदेश दो, यह वचन सुनकर मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ। जो हो, अब तुम लोग सन्तान उत्पन्न करके पृथ्वीपर राज्य करते हुए यज्ञ द्वारा यज्ञपुरुष भगवान श्रीहरिकी आराधना करो। हे राजन्! अच्छी तरह प्रजापालन करोगे तो उससे मेरी ही शुश्रूषा होगी और भगवान वासुदेव भी प्रसन्न होंगे। मनुने कहा—हे भगवन्! जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करके हम लोगोंको रहनेका स्थान दीजिये। मुनिवर मैत्रेय बोले—हे विदुर! पितामह ब्रह्मा सन्तानकी बात सुनकर सोचने लगे कि मैं तो एक बार सब जल पी गया था, फिर इतना जल कहाँसे आ गया? अब जलसे इस पृथ्वीका उद्धार कैसे करूँ? केवल चिन्तामग्न होनेसे कुछ भी फल न होगा। जिन भगवानके हृदयसे मेरी उत्पत्ति हुई है, वे ही मेरा यह कार्य पूरा करेंगे। हे विदुर! जब ब्रह्माने इस तरह सोचा तो उनकी नाकसे अंगूठेके बराबर एक छोटा-सा बराह निकल पड़ा। क्षणभरमें उसका आकार इतना बढ़ गया कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह देखकर सभी आश्चर्यमें पड़ गये। वराहकी गर्जना स्वर्गतक सुनाई पड़ी। यह देखकर ब्रह्मा बहुत खुश हुए। भगवानने वराह मूर्ति धारण करके जलमें डूबी हुई पृथ्वीको दाँतसे उभाड़कर क्षणभरमें उठा लिया और

जलके बीच रहनेवाले आदि दैत्य हिरण्याक्षको मार डाला। पृथ्वीका उद्धार होते देखकर ऋषिगण नमस्कार और स्तुति करने लगे। भगवान पृथ्वीको जलसे बाहर करके चले गये। जो व्यक्ति भगवानकी इस अपूर्व लीलाको सुनाता या सुनता है, उसे संसारमें किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती।

चतुर्दश अध्याय

दितिके निवेदनसे सन्ध्यासमय कश्यप द्वारा गर्भाधान

शुकदेवजी बोले—विदुरने भगवानकी कथा विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा प्रकट की तो मैत्रेयने कहा—हे वत्स! हरिकथाके प्रभावसे बालक ध्रुव यमराजके सिरपर लात रखकर सदेह विष्णुलोकमें जा पहुँचे थे। हे विदुर! देवताओंके यह पूछनेपर कि भगवानका दैत्यराज हिरण्याक्षके साथ किस कारण युद्ध हुआ? उत्तरमें ब्रह्माने जो कुछ बताया था, वह मैंने सुना है। मैं तुमको वही इतिहास सुना रहा हूँ, सुनो। एक दिन सन्ध्यासमय कामपीडित होकर दक्षकी कन्या दितिने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे अपने पति मरीचिके पुत्र कश्यपसे संभोगके लिए प्रार्थना की। उस समय कश्यप यज्ञपति विष्णुकी पूजा कर रहे थे। उन्होंने पत्नीको समझाया कि सन्ध्याको यह काम अनुचित है और रुद्रगणोंके कुपित होनेकी आशंका है। तुम अपनी कामवासना रोककर शान्त रहो। किन्तु दिति शान्त न होकर वेश्याओंकी तरह पतिका कपड़ा पकड़कर खींचने लगी। तब कश्यपने लाचार होकर ईश्वरको प्रणाम करके एकान्तमें पत्नीसे सम्भोग किया। हे विदुर! सम्भोगके बाद कश्यपने

स्नान किया और प्राणायाम करके मौनभावसे परब्रह्मका ध्यान करते हुए गायत्रीमंत्रका जप करने लगे। बादको दिति लज्जित हुई। पतिसे उसने निवेदन किया कि मैं भूतपति रुद्रके निकट अपराधिनी हो चुकी हूँ। मुझे ऐसा वर दीजिये, जिससे वे मेरा गर्भ नष्ट न कर सकें। यह कहकर वह रुद्रकी स्तुति तथा नमस्कार करके खेद प्रकट करने लगी। कश्यपने कहा—हे प्रिये! तुम्हारे गर्भसे देवताओंको जीतनेवाले दो पुत्र जन्म लेंगे। उनमें हिरण्यकशिपुनामक जो पुत्र होगा, उससे भगवान श्रीहरिका एक परम भक्त और उपासक पुत्र उत्पन्न होगा। हे सुन्दरि! तुम्हारा वह पौत्र भक्तिके प्रभावसे भगवानका दर्शन पावेगा और श्रीविष्णुके हाथसे तुम्हारा पुत्र हिरण्यकशिपु मारा जायगा। यह सुनकर दिति परम आनन्दित हुई।

पञ्चदश अध्याय

ब्रह्माके पुत्र सनकादिकोंका वैकुण्ठमें विष्णुके दो भृत्योंको शाप देना

मैत्रेयने कहा—कश्यपने दितिके गर्भमें जो वीर्य निहित किया वह एक सौ वर्षतक गर्भमें ही पड़ा रहा। उस गर्भके तेजसे सूर्य-चन्द्र आदि देवता बलहीन हो गये। यह देखकर देवता लोग डर गये और सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकारसे स्तुति करके दितिके गर्भधारणका समाचार सुनाया।

मैत्रेयने कहा—हे विदुर! देवताओंकी कष्टकथा सुनकर ब्रह्मा हँसते हुए बोले—हे देवगण! मेरे कई मानस पुत्रोंको

विष्णुकी आराधनासे वैकुण्ठलोकमें जानेका अवसर मिला था। वैकुण्ठधाममें जितने लोग रहते हैं, सभीका रूप भगवान विष्णुकी तरह रहता है। वहाँ निःश्रेयस नामक एक परम रमणीय वन है। उसमें सभी वृक्ष अपनी-अपनी ऋतुओंमें फलों-फूलोंसे लदे रहते हैं। वहाँ गन्धर्वगण सर्वदा रमणियोंके साथ विष्णुका गुणगान करते हैं। वे लोग कभी संगीत नहीं छोड़ते। वहाँके भौंरे भी गुनगुन स्वरमें हरिगुण गाते रहते हैं। उनका गाना सुनकर पक्षी भी परम आनन्दका अनुभव करते हैं। जिस लक्ष्मीकी कृपा पानेके लिए ब्रह्मा आदि देवता नित्य प्रयत्न किया करते हैं, वह लक्ष्मी दिन-रात भगवान विष्णुके चरणकमलकी सेवा करती हैं। वहाँ धूलिका लेश भी नहीं रहता। सोने और स्फटिककी बनी परमरमणीय अट्टालिकाएँ शोभा पाती रहती हैं। सरोवरका जल अमृतके समान सुस्वादु रहता है। वैकुण्ठधाम सदा आनन्दमय रहता है और वहाँके भगवद्भक्त लोग सबको समान दृष्टिसे देखते हैं। एक दिन सनकादि मुनि योगबलसे वैकुण्ठके छः दरवाजे पार करके सातवें फाटकके पास पहुँचे तो दो द्वारपालोंने उन लोगोंको नंगे देखकर बेंत तानते हुए आगे बढ़नेसे रोका। इससे मुनियोंने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि तुम लोग काम, क्रोध और लोभके वशमें होकर पापलोकमें जाकर जन्म लोगे। दोनों द्वारपालोंने ब्रह्म-शाप सुना तो पैर पकड़कर क्षमा माँगी। उसी समय भगवान पद्मनाभ भी यह जान गये कि मेरे दो द्वारपाल साधुओंके प्रति अपराध करके शापग्रस्त हो चुके हैं। उन ऋषियोंको दर्शन देनेके लिए भगवान लक्ष्मीके साथ पैदल

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही गये और उनका क्रोध शान्त करनेके लिए उनके सामने उपस्थित हुए। मुनि लोग भगवानका दर्शन पाते ही उनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे भगवन्! अबसे पहले कभी हमलोगोंने कोई पाप नहीं किया था। सो आज हमलोगोंने आपके दो भक्तोंको शाप दे दिया है। जिससे उन्हें नरकमें वास करना पड़ेगा। इस पापके लिए हम लोगोंको भी नरकमें जाने दीजिये। इस तरह भगवानके सामने निवेदन करके उन लोगोंने नमस्कार किया।

षोड़श अध्याय

मुनियोंके शापसे भगवानके दोनों भृत्योंका वैकुण्ठसे गिरना

ब्रह्माने कहा—हे देवगण! वैकुण्ठवासी भगवान उन महायोगी मुनियोंका वचन सुनकर प्रफुल्लचित्तसे बोले—जय विजय नामके मेरे दो अनुचरोंने मुझे तुच्छ समझकर तुम लोगोंका अपमान किया है। इस कारण उन्हें जो दण्ड दिया गया है, वह मैं स्वीकार कर रहा हूँ। हे ऋषिगण! मैं ब्राह्मणोंको परमदेवता मानता हूँ। इसका कारण आप लोग इनके अपराधपर ध्यान मत दें। आप लोगोंसे ही मेरे वैकुण्ठकी महत्ता है। हे मुनिगण! ब्राह्मण, दूध देनेवाली गाय और असहाय प्राणी, ये तीन मेरे शरीर हैं। इनके विरुद्ध जो लोग भेदभावसे आचरण करते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। जो लोग इन तीनोंका पुत्रकी भाँति पालन करते हैं, मैं उनका सहायक हूँ। भगवानकी बातें सुनकर मुनिगण अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद मुनियोंकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

भगवानने कहा—तुम लोगोंका कुछ भी अपराध नहीं है। ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होंगे और फिर योगबलसे मेरे पास चले आयेंगे।

ब्रह्माने कहा—इसके बाद मुनियोंने विकुण्ठभगवान और वैकुण्ठको भलीभाँति देखा। वह वैकुण्ठलोक और श्रीहरि दोनों ही नेत्रोंके लिए परम आनन्ददायक हैं। उन्हें देखकर मुनि लोग परम पुलकित हुए। इसके बाद भगवानकी अनुमति लेकर उनका गुणगान करते हुए वे अपने वासस्थानको लौट गये। मुनियोंके चले जानेपर भगवानने दोनों अनुचरोंको सान्त्वना देते हुए कहा—तुम लोग प्रस्थान करो। डरनेकी कोई बात नहीं है। तुम्हारा कल्याण होगा। मैं ब्रह्मतेजकी मर्यादा हानि नहीं करना चाहता। तुम लोग शीघ्र ही पापसे मुक्त होकर फिर मेरे पास चले आओगे।

इसके बाद दोनों द्वारपाल ब्रह्मशापके कारण हरिलोकसे गिरकर श्रीहीन हो गये। हे देवगण! वैकुण्ठसे जब वे गिरने लगे तो हाहाकार मच गया। उन्हीं दोनोंने कश्यपके औरस होकर दितिके गर्भसे जन्म लिया। ब्रह्माने कहा—हे देवगण! हम लोगोंको चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है। योगेश्वर हरि आप ही हमारे कल्याणका विधान करेंगे। हम लोगोंकी चेष्टाका कुछ भी फल नहीं होगा।

——o——

सप्तदश अध्याय

भगवानके दोनों भृत्योंका आसुर जन्म पाना और हिरण्याक्षका प्रभाव

मैत्रेय बोले—ब्रह्माके मुँहसे दितिके गर्भके तेजका कारण सुनकर देवता लोग भयसे मुक्त होकर स्वर्गको चले गये। यहाँ दितिने

अपने पतिसे यह सुनकर कि मेरे जो पुत्र उत्पन्न होंगे वे देवताओंपर भारी उपद्रव करेंगे, बड़े ही सोचमें पड़ गयी। सौ वर्ष पूरा हो चुकनेपर उसने दो यमज (जोड़आ) पुत्र प्रसव किये। उनके जन्म लेते ही स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें भयानक उत्पात होने लगे और बहुत भय तथा आतंक छा गया। उन सबकी कथा कहाँतक वर्णन करूँ ? आकाश-पाताल डगमगाने लगे। वज्रपात होने लगा। बिजली गिरने लगी। चारों तरफ बादल घिरने लगे और समुद्र उमड़ने लगा। इस तरहके अनेकानेक उपद्रवोंसे प्रजा व्याकुल हो उठी और सब लोग मन-ही-मन सोचने लगे कि अब सम्भवतः पृथ्वी रसातलको चली जायगी। दिनपर दिन दोनों दैत्य पहाड़की भाँति बढ़ने लगे। उनके शरीर लोहेकी भाँति कठोर थे। उनके माथेपर सोनेका मुकुट था और शरीरमें तरह-तरहके अलंकार सुशोभित थे। उन लोगोंके पैरोंके आघातसे पद-पदपर पृथ्वी काँपने लगी। प्रजापति ब्रह्माने उनका नामकरण किया। जिसका जन्म पहले हुआ उसका नाम हिरण्याक्ष और बादको जन्म लेनेवालेका नाम हिरण्यकशिपु पड़ा। हिरण्यकशिपुने ब्रह्माके वरसे अमर होकर सभी लोकोंको अपने वशमें कर लिया। हिरण्याक्ष गदा हाथमें लेकर स्वर्गलोकमें गया। तब गरुड़को देखकर जिस प्रकार सर्प व्याकुल हो जाते हैं, उसी प्रकार देवता लोग डरकर भाग गये। देवराज इन्द्रके साथ देवता लोग जब भाग गये तो स्वर्गमें किसीको न देखकर वह दैत्य बड़ी देरतक गरजता रहा। फिर आप ही आप शान्त होकर मतवाले हाथीकी भाँति जलक्रीड़ा करनेकी इच्छासे उसने समुद्रमें प्रवेश किया। जलके अधिपति

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

वरुण और उनके सैनिकगण दैत्यराजको देखकर डर गये और भागने लगे। हिरण्याक्ष समुद्रमें स्थित वरुणजीकी विभावरी नामक पुरीमें पाकर वहाँ बहुत समयतक विहार करता रहा। बादको जलजन्तुओंके अधिपति और पाताललोकके पालक वरुणदेवको पाकर दैत्यराज गर्वके साथ उपहास करनेके लिए प्रणाम करके बोला—हे राजन् ! मेरे साथ युद्ध करनेकी कृपा कीजिये। आपने अनेक दैत्यों और दानवोंका वध करके राजसूय यज्ञ किया है। दैत्यराजका उपहासवाक्य सुनकर वरुणदेवको बड़ा क्रोध आया, किन्तु अपनेको दुर्बल समझकर उन्होंने क्रोधको रोक लिया और नम्र स्वरसे सम्बोधित करते हुए कहा—हे दैत्यराज ! इन दिनों मैंने युद्ध करना छोड़ दिया है और ऐसा कौन है, जो तुमसे युद्ध कर सके ? हाँ, सनातन पुरुष भगवान ही एक ऐसे हैं, जो तुम्हारे साथ युद्ध करके तुमको सन्तुष्ट कर सकेंगे। इसलिए तुम उनके पास जाओ। विष्णुभगवान ही तुम्हारे सदृश दुष्टोंका संहार करनेके लिए समय-समयपर अवतार लेते हैं।

अष्टादश अध्याय

वराह अवतारी भगवानके साथ हिरण्याक्षका युद्ध

मैत्रेयजी बोले—वरुणका वचन सुनकर हिरण्याक्ष प्रसन्न हुआ। नारदके मुँहसे यह सुनकर कि श्रीहरि इस समय पातालमें हैं, वह पातालमें जा पहुँचा। वहाँ उसने वराहरूपी भगवानको देखा। उनको देखकर उपहास करता हुआ बोला—आश्चर्यकी बात है कि यहाँ जलमें वराह घूम रहा है। उस समय वराहभगवान दाँतोंसे

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

पृथ्वीको उठा रहे थे। वे आँखें लाल करके उस दैत्यका तेज नष्ट करने लगे, किन्तु अपने कामसे विमुख नहीं हुए। दैत्यने भगवानका तिरस्कार करते हुए कहा—ओ मूर्ख ! इधर तो आ। पृथ्वीको छोड़ दे। तूने मायासे अनेक असुरोंको मारा है। अब इस गदाके आघातसे तेरा मस्तक चूर्ण करके मैं अपने मित्रोंका शोक दूर करूँगा। शत्रुकी तिरस्कार भरी बातोंपर ध्यान न देकर भगवान जलके ऊपर चले आये और उसके सामने ही जलके ऊपर पृथ्वीको रखकर बोले—अरे दुरात्मा ! सचमुच हम जलचर वराह हैं और तेरे जैसे अधम कुत्तोंको ढूँढ़ रहे हैं। तू व्यर्थ अपनी प्रशंसा कर रहा है। तेरी मृत्यु उपस्थित है। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! तब हिरण्याक्षके साथ भगवानका घोर युद्ध होने लगा। उसी समय ब्रह्मा उस दैत्यके नाशके लिए भगवानकी स्तुति करने लगे। अन्तमें ब्रह्माने कहा—हे भगवन् ! आप इसको मारकर त्रिभुवनको सुखी बनाइये।

ऊनविंश अध्याय

वराह भगवान द्वारा हिरण्याक्षके वधकी कथा

मैत्रेयजी बोले—ब्रह्माके अमृत समान वचन सुनकर भगवानने ब्रह्माका कथन स्वीकार किया। बादको भगवानके साथ उस दैत्यका युद्ध होने लगा। धीरे-धीरे उस दैत्यका तेज घटता गया और उस दैत्यके प्रहारसे वराह-भगवानके शरीरपर कुछ भी असर नहीं पड़ा। तब हिरण्याक्ष हरिके प्रति तरह-तरहकी मायाएँ बढ़ाने

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लगा। यह देख प्रजागण भयग्रस्त होकर सोचने लगे कि सम्भवतः प्रलय आ गया है। धूलि उड़ने लगी। चारों ओर अन्धकार छा गया। आकाश बादलोंसे घिर गया। पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। बिजलियाँ चमकने और तड़पने लगीं। पीब-रक्त-मल-मूत्र और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी। उस समय मार-मार काट-काट आदि वाक्योंके अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था। हिरण्याक्षकी ऐसी मायाओंको देखकर उसको मार डालनेके लिए भगवानने अपना सुदर्शन चक्र छोड़ा। इसी समय दितिको अपने पतिका वचन याद आ गया। उसका हृदय काँपने लगा। स्तनसे रक्त झरने लगा। उधर भगवानके चक्रसे सभी मायाएँ कट गयीं। तब भगवानने क्रुद्ध होकर मुक्के और लातसे उसे मारा। जिससे हिरण्याक्ष घबड़ा गया और पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा। क्रोधके आवेशमें वह दाँत कटकटाने और ओंठ काटने लगा। बादको उस महावराहका लात खाकर उसका प्राणान्त हो गया। दैत्यका नाश देखकर देवता लोग भगवान वराहकी स्तुति करने लगे। सूतने कहा—हे शौनक! परमभक्त विदुर मैत्रेय मुनिके मुँहसे हिरण्याक्षके वधकी कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। हे द्विज! भगवान द्वारा हिरण्याक्ष वधकी कथाको जो व्यक्ति सुनता या सुनाता है, वह ब्रह्महत्याके भी पापसे मुक्त हो जाता है। हे मुने! जो व्यक्ति भगवानकी इस परम पवित्र लीलाकथाको सुनता है, उसको परलोकमें भगवान नारायणकी परम गति प्राप्त होती है।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विंश अध्याय

मनुवंशका वर्णन और सृष्टिकी कथा

शौनकने सूतसे पूछा—प्राणियोंकी सृष्टि कैसे हुई ? हे सूत ! भगवानके परममित्र विदुरने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णका परामर्श न सुननेके कारण अपराधी समझकर त्याग दिया था। वे वेदव्यासके पुत्र थे। उन्होंने श्रीकृष्णका आश्रय लिया था और वासुदेवके भक्तजनोंके अनुगामी थे। विदुर तीर्थपर्यटनसे पापमुक्त हो गये थे। उन्होंने गंगाजीके तटपर मैत्रेय मुनिसे फिर कौनसा प्रश्न किया ? हे सूत ! तुम हम लोगोंको वह पुण्यकथाएँ सुनाओ। नैमिषारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंके प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा भगवानको अपना मन अर्पित करके बोले—हे द्विजगण ! विदुरने भगवानके शूकररूपसे पृथ्वीके उद्धार और हिरण्याक्षवधकी कथा सुन और आनन्दित होकर मैत्रेय मुनिसे प्रजासृष्टिके सम्बन्धमें प्रश्न किया। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! दैव, अदृष्ट और काल इन तीनोंसे महत्तत्व और महत्तत्वसे अहंकारतत्त्व उत्पन्न हुआ। सत्त्व, रज, तम ये तीन अहंकारके गुण हैं। अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा, रूपादि विषयी महाभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और उनके देवता—इन पाँचोंकी उत्पत्ति हुई। दैवयोगसे एक साथ मिलकर इन्होंने एक भौतिक अण्डको उत्पन्न किया। वह अण्ड जलपर तैरता रहा और उसमें भगवान विष्णु एक हजार वर्षतक बैठे रहे। बादको परमेश्वरकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ। वही कमल सब जीवोंका उत्पत्तिस्थान था। उसीसे ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुए। हे विदुर ! जलके ऊपर तैरनेवाले सोनेके अण्डमें जो

भगवान सोये हुए थे, उनकी ही कृपासे ब्रह्माने सब लोकोंकी रचना की। पहले-पहल ब्रह्माने छायासे तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह—यह पाँच प्रकारकी अविद्या उत्पन्न की। किन्तु यह सृष्टि केवल तमोमय रात्रि होनेसे ब्रह्माने उसे त्याग दिया। उसको यक्ष-राक्षसोंने ले लिया। रात्रिसे भूख-प्यास उत्पन्न हुई। यक्ष-राक्षस जब भूख-प्याससे व्याकुल हुए तो ब्रह्माको ही खा जानेको तैयार हो गये। इससे ब्रह्माजी डर गये। उन्होंने कहा—तुम लोग मेरी सन्तान हो। अतएव मेरी रक्षा करो—रक्षा करो, मुझे मत खाओ। ब्रह्माकी प्रभा अर्थात् उनके ज्ञानरूप शरीरसे सात्त्विक प्रकृतिवाले देवता उत्पन्न हुए। ब्रह्माके जघनदेशसे असुरोंकी उत्पत्ति हुई। वे अत्यन्त लम्पट थे और मैथुनकी इच्छासे ब्रह्माकी ही तरफ दौड़ चले। हे विदुर! ब्रह्मा असुरोंकी ऐसी चेष्टा देखकर हँस पड़े। फिर भी असुरोंने उनका पीछा किया तो ब्रह्मा डरकर भाग चले और श्रीहरिके पास जा पहुँचे। उनसे बोले—हे परमात्मन्! मेरी रक्षा कीजिये—रक्षा कीजिये। मेरे पापी प्रजाजन मुझसे ही मैथुनका उपक्रम कर रहे हैं। हे देव! आप ही मेरा क्लेश हर सकते हैं। सो शीघ्र मेरा क्लेश दूर कीजिये। ब्रह्माको देखकर भगवान हरिने कहा—तुम्हारा यह शरीर कामसे अपवित्र हो गया है। तुम इस शरीरको छोड़ दो। भगवानकी बात सुनकर ब्रह्माने उसी क्षण वह देह त्याग दिया। हे विदुर! ब्रह्माके देहत्याग करनेपर सन्ध्या उत्पन्न हुई। सन्ध्या कामको बढ़ानेवाली बेला थी। अतएव असुरोंने सन्ध्याको स्त्री समझकर उसका पीछा किया। असुर कहने लगे—इस स्त्रीके दोनों चरणोंमें नुपूर बज रहे हैं, दोनों नेत्र कामसे छल-

छला उठे हैं। नाक और हाथ परम सुन्दर हैं, दोनों कुच ऊँचे-ऊँचे हैं और हास्य मनोहर है। यह लज्जासे कपड़े पहने है। इस प्रकार असुरगण उसके रूप और उसकी केशराशि देखकर जन्मवृत्तान्तके सम्बन्धमें पूछते हुए मूर्खकी भाँति उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर ब्रह्माने अपनी कान्तिसे गन्धर्व और अप्सराओंको उत्पन्न करके उसी समय उस कान्तिरूप शरीरको त्याग दिया। उस चन्द्रिका अर्थात् ज्योत्स्नारूप शरीरको विश्वावसु आदि गन्धर्वगणने ग्रहण किया। तदनन्तर भगवान ब्रह्माने अपने आलस्यसे भूत और पिशाचगणोंको उत्पन्न किया, किन्तु उनके बाल खुले हुए और नग्नरूप देखकर कुछ देरतकके लिए उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और जम्हाई लेकर उन्होंने आलस्यनामक उस शरीरको त्याग दिया। उस आलस्य, जम्हाई, निद्रा और उन्मादको भूत, प्रेत और पिशाच आदिने ग्रहण किया। क्योंकि इन्हींसे उनके शरीर बने थे। तदनन्तर ब्रह्माने अपने अदृश्यरूपसे साध्यगण और पितृगणको उत्पन्न किया। पण्डित लोग उसीके उद्देश्यसे पितृगण और साध्यगणको श्रद्धादि द्वारा हव्य-कव्य देते हैं। फिर ब्रह्माने अपनी तिरोधान (देख पड़ते रहनेपर भी अन्तर्धान होनेकी) शक्तिसे सिद्ध और विद्याधरोंको उत्पन्न किया और उन लोगोंको अन्तर्द्धान नामक अद्भुत शरीर अर्पण कर दिया। फिर ब्रह्माने अपने प्रतिबिम्बसे किन्नर और किम्पुरुषोंको उत्पन्न किया। वे लोग नित्य प्रातःकाल गायन गाया करते हैं। फिर ब्रह्माके देहसे सर्प उत्पन्न हुए। तदनन्तर ब्रह्माने अपनेको कृत-कृत्य-सा समझकर अन्तमें अपने मनसे मनुओंको उत्पन्न किया और उन लोगोंको अपना शरीर

प्रदान किया। फिर ऋषियोंकी सृष्टि करके उन्होंने उनको समाधि, योग, तपस्या, उपासना और वैराग्य आदि प्रदान किये।

एकविंश अध्याय

कर्दम ऋषिके साथ मनुकी कन्याका विवाह

विदुरके पूछनेपर मैत्रेयजी बोले—ब्रह्माने कर्दम प्रजापतिको प्रजासृष्टि करनेके लिए कहा तो वे सरस्वती नदीके किनारे जाकर दस हजार वर्षतक तपस्या करते रहे। भगवान हरिकी आराधना करनेसे भगवान प्रसन्न हुए और प्रजापति कर्दमको उन्होंने दर्शन दिया। मनोरथ पूरा होते देखकर प्रजापतिने भूमिपर मस्तक टेककर भगवानको प्रणाम किया। फिर वे नाना प्रकारकी स्तुतियें करने लगे। मैत्रेयजीने कहा—भगवान गरुड़पर सवार थे और उसी अवस्थामें कर्दमकी स्तुति सुन रहे थे। स्तुति सुनकर वे हँस पड़े और मुनिकी ओर प्रेमपूर्ण कृपाकटाक्ष करके बोले—हे मुनिवर कर्दम! तुमने जो इच्छा की है, वह पूरी होगी। प्रजापतियोंके राजा मनु हैं। जो ब्रह्मावर्त देशमें रहकर ससागरा पृथ्वीका शासन कर रहे हैं। वे अपनी महिषी शतरूपाके साथ परसों आवेंगे। उनकी परमा सुन्दरी और अल्प अवस्थावाली एक कन्या है। तुम उसके लिए उपयुक्त पात्र हो। मनु उसका विवाह तुम्हारे ही साथ कर देंगे। हे वत्स कर्दम! भार्याके लिए तुम बहुत दिनोंसे चिन्तित थे। अब चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रही। वह राजकन्या शीघ्र ही तुमको अपना पति बनावेगी। तुम्हारे वीर्यसे उसके गर्भ द्वारा बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न होंगी। वे ऋषियोंसे ब्याही जायँगी

और ऋषिगण उनके गर्भसे विविध सन्तानें उत्पन्न करेंगे। हे कर्दम! तुम गृहाश्रमी होकर सभी जीवोंपर दया करना। हे मुने! तुम्हारे वीर्यसे तुम्हारी स्त्री देवहूतिके गर्भमें मैं अपनी अंश-कलासे अवतार लेकर तत्त्वसंहिता (सांख्यशास्त्र) की रचना करूँगा। इस प्रकार कर्दममुनिको उपदेश देकर भगवान सरस्वती नदीसे घिरे हुए विन्दुसरोवरसे चल दिये और कर्दमके देखते-देखते सामवेदकी स्तुतिसम्बन्धी ऋचाएँ सुनते हुए चले गये। भगवानके चले जानेपर कर्दम उसी विन्दुसरोवरके तटपर रहने लगे। इसी समय आदि राजा मनु स्वर्ण रथपर चढ़कर अपनी रानी और राजकुमारीके साथ देशभ्रमणको निकले और कन्याके लिए वर ढूँढनेके विचारसे घूमते-घूमते भगवानके कथनानुसार नियत दिनको कर्दम मुनिके आश्रममें आ पहुँचे। हे बिदुर! वह आश्रम साधारण नहीं है। उसका नाम विन्दुसर है। उसका जल अमृतके समान मीठा और रोगनाशक है। महर्षिगण सर्वदा वही जल पीते हैं। फलफूलोंसे सुशोभित वह स्थान अत्यन्त मनोरम है। मुनिवर कर्दम बहुत दिनोंतक तपस्यामें लगे रहनेसे बहुत तेजस्वी हो गये थे। वहाँ पहुँचते ही मनुने मुनिवरको पहचान लिया और उन्हें प्रणाम किया। मुनिने मनुको आशीर्वाद देकर पूजा आदिसे समुचित सत्कार किया। पूजा ग्रहण करके जब मनुजी सुखपूर्वक आसनपर बैठे तब कर्दम मुनिने उनकी प्रशंसा करके आगमनका कारण पूछा।

द्वाविंश अध्याय

कर्दमके साथ मनुकी कन्याका विवाह

मैत्रेयजी बोले—कर्दम ऋषिने जब राजा मनुका गुणानुवाद किया तो वे कुछ लज्जितसे हो गये और अपनी इच्छा सुनाते हुए बोले—हे ब्रह्मन् ! ब्रह्माने तपस्या, वेदविद्या और योगयुक्त तथा लम्पटतारहित आप ब्राह्मणोंको अपने मुँहसे उत्पन्न किया है। आप लोगोंकी रक्षाके लिए उन्होंने अपनी हजार भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया। इसीलिए लोग आप लोगोंको ब्रह्माका हृदय और हम लोगोंको उनका अंग कहा करते हैं। हम लोग परस्पर एक दूसरेकी रक्षा करते हैं। इसके फलस्वरूप ईश्वर जगत्की रक्षा करते हैं। हे प्रभो ! आपका दर्शन पा लेनेसे मानो मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। हे महानुभाव ! मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ। इस दीनपर दया करके इसकी विनीत प्रार्थना वचन सुन लें तो बड़ी कृपा हो। यह मेरी कन्या मेरे पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहिन है। यह वयस प्राप्त करके अपने लिए योग्य वर चाहती है। नारदके मुँहसे आपके गुणोंकी प्रशंसा सुनकर इसने आपको ही अपना पति बनानेका निश्चय कर रखा है। हे द्विजवर ! आप इसको अंगीकार कीजिये। कर्दम ऋषिने मनुजीका वचन सुनकर विवाहकी सम्मति दे दी और कहा—हे महाराज ! मेरी प्रतिज्ञा यह है कि जबतक इससे पुत्र न उत्पन्न होगा, तबतक मैं इसके साथ गृहस्थाश्रममें रहूँगा। मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर ! यह बात कहकर कर्दमऋषि भगवान पद्मनाभका स्मरण करके चुप हो रहे। मनुने अपनी महिषी और कन्याकी सम्मति जानकर

प्रसन्न मनसे परमगुणी कर्दम मुनिको अपनी कन्याका दान दिया। विवाह हो जानेपर शतरूपाने दामादको बहुत प्रकारके भूषण वस्त्र और द्रव्यादि दहेजमें दिये। कन्याको मुनिके पास रख और मुनिसे विदा लेकर मनुजी पत्नीके साथ रथपर चढ़कर अपने नगरको चले। मार्गमें मनु सरस्वती नदीके दोनों किनारोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे अपने नगरके पास आकर पहुँचे और प्रजाजनोंने राजाके आनेका समाचार सुना तो वे आनन्दित होकर गाते-बजाते मंगल ध्वनि और स्तुति करते हुए अगवानीके लिए चले। हे विदुर! भगवानने वराहमूर्ति धारण करनेपर अपने शरीरको कँपाकर फटकारा तो शरीरसे बहुतसे रोएँ जहाँ गिर पड़े थे। उसी स्थानका नाम बर्हिष्मतीपुरी है। बर्हिष्मतीपुरी ब्रह्मावर्तके अन्तर्गत है। हे विदुर! इस स्थानमें बहुतसे कुश और काश उत्पन्न होते हैं। ऋषिगण यज्ञके विघ्नकारी राक्षसोंको पराजित या नष्ट करके इसी स्थानपर यज्ञका अनुष्ठान करते हुए भगवानकी आराधना करते हैं। आदि राजा मनुने भी पृथ्वीमें स्थान पाकर उसी स्थानके कुश और काशसे यज्ञपुरुष भगवानकी पूजा की थी। इसी कारण यह स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ है। वही बर्हिष्मतीपुरी मनुकी राजधानी है। अपनी पुरीमें पहुँचकर मनुने तीनों ताप मिटानेवाले अपने भवनमें प्रवेश किया। वे सर्वदा भगवत्कथामें समय बिताते थे। कभी वृथा समय नष्ट नहीं करते थे। मनुके ज्ञानकी बातें कहाँतक बताऊँ। उन्होंने सब प्राणियोंके हितकी कामनासे मनुष्य-जातिके साधारणधर्म, वर्णधर्म और आश्रमधर्म बताये थे। हे वत्स! मैंने तुमसे आदिराज

मनुका चरित्र कहा। अब उनकी पुत्री देवहूतिका चरित्र वर्णन करता हूँ। सुनो।

त्रयोविंश अध्याय

कर्दम और देवहूतिका विहार

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! पिता-माता जब स्वदेशको लौट गये तो देवहूति पतिकी सेवा करने लगी। एक दिन मुनिवर कर्दमने अपनी स्त्रीको दुर्बल और क्षीण देखा तो उनके चित्तमें दया उत्पन्न हुई। उसको सम्बोधित करके मुनिवरने कहा—हे प्रिये! तुम्हारी शुश्रूषा और भक्ति देखकर मै सन्तुष्ट हूँ। उपासना, तपस्या और समाधि द्वारा मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, तुमने मेरी सेवा करके उसका आधा फल प्राप्त कर लिया है। अब तुम मनुष्योंके लिए परम दुर्लभ भोग्य वस्तुओंका भोग करो। देवहूतिने कहा—हे स्वामिन्! आप योग और मायाके अधिपति हैं। आपने जो कुछ कहा है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता। फिर भी मैं चाहती हूँ कि आपने विवाहके समय जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिये। जिससे गर्भ रह जाय, ऐसा सहवास होना चाहिये। हे प्रभो! पतिव्रता स्त्रियाँ श्रेष्ठ पति पाकर यदि सन्तान उत्पन्न कर सकें तो यही उनके लिए परम लाभ है। कामशास्त्रके अनुसार भोजन-पान आदिकी ऐसी व्यवस्था कीजिये, जिससे मेरा शरीर सबल हो और शरीर रतिक्रीड़ा करनेमें समर्थ हो। मैत्रेयजी बोले—मुनिवर कर्दम प्रियाकी बात सुनकर उसके सन्तोषके लिए योगासनपर बैठे। उन्होंने अपने योगबलसे एक ऐसा

विमान तैयार कर दिया, जो सब इच्छाओंको चरितार्थ करनेवाला था। कामसुखके लिए जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है, उन सभीसे अर्थात् मणि मुक्ता अलंकार फूलोंकी मालाएँ आदिसे वह विमान सुशोभित था। हे वत्स विदुर! उस विमानकी सुन्दरताका वर्णन नहीं किया जा सकता। कर्दम योगबलसे अपनी प्रियतमाका मनोभाव समझ गये और बोले—हे प्रिये! इस सरोवर (बिन्दुसर) में स्नान करके विमानपर बैठे। देवहूति पतिकी बात सुनकर मैले शरीरको साफ कर लेनेकी इच्छासे सरस्वतीके उस पवित्र सरोवरमें उतरी। वहाँ उसने देखा कि जलमें एक हजार किशोरी कन्याएँ उपस्थित हैं। वे देवहूतिको देखकर सम्भ्रमके साथ उठकर खड़ी हो गयीं और उनसे हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हम लोग आपकी दासी हैं। आज्ञा कीजिये। हम आपकी क्या सेवा करें? यह कहकर उन सबने तेल-उबटन आदि लाकर स्नान कराया और वस्त्र तथा अलंकार आदि पहिनाकर उसका सर्वांग सजा दिया। फिर खाद्य वस्तुओंको लाकर खिलाया और मधुर मदिरा लाकर सामने रख दिया। तदनन्तर देवहूतिने आइनेमें अपना मुख देखा और आह्लादसे विभोर होकर अपने पतिका स्मरण किया। स्मरण करते ही उन सहचरियोंसे घिरी अवस्थामें अपने-आपको अपने पतिके समीप उपस्थित पाया। क्षणमात्रमें यह सब देखकर उसके मनमें सन्देह उत्पन्न हो गया कि आखिर यह सब क्या हो रहा है। देवहूति स्नान करके आयी तो कर्दमने देखा कि उनकी प्रियतमाकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। कर्दमने देवहूतिका हाथ पकड़कर विमानपर चढ़ा लिया। प्रियाके साथ विमानपर चढ़नेसे कर्दम-

ऋषि भी परम शोभाको प्राप्त हुए। विद्याधारियाँ चारों तरफ खड़ी होकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगीं। उस विमानपर बैठकर कर्दम ऋषि बहुत दिनोंतक विहार करते रहे। इस प्रकार उस महायोगीने भिन्न-भिन्न देशोंमें प्रियतमाके साथ भ्रमण किया और देवहूतिको सब देश दिखाकर वे अपने आश्रमको लौट आये। एक दिन उन्होंने प्रियतमाको देखा तो उनकी समझमें यह बात आयी कि प्रिया संगमकी इच्छा कर रही है। इस अवस्थामें मुनि अपनेको नौ भागोंमें विभक्त करके उसके साथ रमण करने लगे। इस तरह रमण करते-करते एक सौ वर्ष बीत गये। किन्तु उन दोनोंको उतना लम्बा समय अल्प समयके समान ज्ञात हुआ। अब मुनिवर कर्दम अपने योगबलसे जान गये कि मेरी प्रिया सन्तानकी इच्छा करती है। इसलिए उसे अपने शरीरका आधा भाग समझकर उन्होंने अपने वीर्यको नौ भागोंमें विभक्त करके गर्भाधान किया। हे वत्स विदुर! कर्दम आत्मतत्त्वके ज्ञाता थे। इसलिए उनका मन स्त्रीमें विशेष आसक्त नहीं था। सो यथेष्ट वीर्यपात न होनेसे देवहूतिके इस गर्भमें सभी कन्याएँ ही आयीं और देवहूतिने एक ही दिनमें अत्यन्त मनोहर नौ कन्याओंको जन्म दिया। इसके बाद महामुनि कर्दम देवहूतिको छोड़कर प्रवास करनेको उद्यत हुए। यह देखकर देवहूति आश्चर्य और शोकमें पड़ गयी। वह मुख नीचे झुकाकर चरणनखसे भूमि कुरेदने और नेत्रोंका आँसू रोककर मृदु स्वरमें इस तरह प्रार्थना करने लगीं—हे प्रभो! आपने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरा कर चुके। फिर भी मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। मुझको अभयदान दीजिये। हे प्रभो! आप प्रवासको जा रहे हैं। आपके

चले जानेपर मैं किससे ज्ञानकी शिक्षा पाऊँगी। कुछ दिनोंतक यदि आप रह जायँगे तो मैं अवश्य एक ब्रह्मज्ञ पुत्र पा सकूँगी। हे प्रभो! मेरी और सभी इच्छाएँ पुरी हो चुकी हैं। मुझे पुत्र मिल जाता तो मैं उसीसे ज्ञान प्राप्त करती। हे मुनिवर! मैंने यह बड़ी भूल की, जो आप जैसे पतिको पाकर भी मोक्षपंद पानेकी इच्छा नहीं की। यंह सब भगवानकी माया है।

चतुर्विंश अध्याय

देवहूतिके गर्भसे कपिलका जन्म और कर्दममुनिका प्रवास

मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! मनुकन्याके ऐसे वचन सुनकर मुनिवर कर्दमके हृदयमें दयाका संचार हुआ। भगवान विष्णुका कथन स्मरण करके कर्दमऋषि कहने लगे—हे राजनन्दिनि! तुम अपनेको अभागिनी समझकर खेद मत करो। विष्णु-भगवान ही तुम्हारे गर्भमें प्रवेश करेंगे। अब श्रद्धापूर्वक ईश्वरका भजन करो। भावी पुत्र तुमको ब्रह्मज्ञानका उपदेश देकर तुम्हारे संसारबन्धनको छिन्न-भिन्न कर डालेगा। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! पतिकी बात सुनकर देवहूति भगवानकी आराधना करने लगी। बहुत दिनोंतक आराधना करनेपर—जिस तरह काठमें अग्नि उत्पन्न होती है—उसी प्रकार कर्दमके वीर्य और देवहूतिके गर्भसे भगवानने जन्म लिया। उस समय गन्धर्वगण गाने लगे और अप्सराएँ आनन्दपूर्वक नाचने लगीं। देवता आकाशसे फूल बरसाने लगे और सभी दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं। हे विदुर! उस समय मरीचि आदि मुनियोंके साथ ब्रह्माजी कर्दमऋषिके आश्रमपर आये।

ब्रह्माजी अपने ज्ञानके प्रभावसे जान गये थे कि विशेषरूपसे सांख्य-शास्त्रका उपदेश देनेके लिए भगवान परब्रह्म अपने सत्त्वमय अंशसे देवहूतिके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। तदनन्तर ब्रह्माजीने कर्दमको सम्बोधित करके कहा—हे तात ! पिताकी आज्ञा पालन करना और सेवा करना पुत्रका कर्तव्य है। तुमने मेरी बात मानी है और मेरी प्रतिष्ठाकी रक्षा की है। हे वत्स ! तुम्हारी ये कन्याएँ पतिव्रता होंगी और मेरी सृष्टि बढ़ावेंगी। मरीचि आदि जो ऋषि मेरे साथ आये हैं, तुम इनके साथ इन कन्याओंका विवाह करके पृथ्वीमें अपने निर्मल यशका विस्तार करो। हे मुने ! यह बालक साक्षात ईश्वर है। स्वयं भगवान देह धारण करके कपिलके रूपमें तुम्हारे घरमें अवतीर्ण हुए हैं। इसके बाद देवहूतिकी तरफ देखकर उन्होंने कहा—हे मानवि ! इस बालकके नेत्र कमलके समान, केश सोनेके रंगवाले और पादपद्ममें पद्ममुद्रा है। ये साधारण मनुष्य नहीं हैं। ये शास्त्रजन्यज्ञान और विज्ञान (परोक्षज्ञान) योगसे कर्मरूप वासनाओंकी जड़ उखाड़ डालेंगे। हे वत्से ! यह सिद्धगणके ईश्वर होंगे और बड़े-बड़े सांख्याचार्य इनका आदर करेंगे। जनसमाजमें ये कपिलनामसे प्रसिद्ध होंगे। मैत्रेयजी बोले—ब्रह्माजी कर्दम और देवहूतिको आश्वासन दे तथा मरीचि आदि ऋषियोंको वहीं छोड़कर अपने धामको चले गये। ब्रह्माके आदेशानुसार प्रजापति कर्दमने अपनी वसुनामक कन्या मरीचिको, अनुसूया अत्रि ऋषिको, श्रद्धा अंगिरा ऋषिको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वशिष्ठको और वह शान्तिनामकी कन्या अथर्वको दी, जिसके द्वारा यज्ञकर्मका विस्तार होता है। जामा-

ताओंको कुछ दिन अपने यहाँ उन्होंने रखा। फिर वे लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ अपने-अपने आश्रमको चले गये। जामाताओंके चले जानेपर मुनिवर कर्दम भगवान विष्णुको अपने घरमें अवतीर्ण जानकर एकान्तमें भगवान कपिलसे मिले और उनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर भगवान कपिल बोले—हे मुनिवर! लौकिक और वैदिक सब कार्योंमें मेरी उक्ति ही प्रमाण मानी जाती है। इसीलिए मैंने कहा था कि मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा। उस वचनको सत्य करनेके लिए मैंने तुम्हारे घरमें जन्म लिया है। हे मुने! ज्ञानका सूक्ष्म मार्ग पूर्वकालसे ही ठीक है। किन्तु कालवश नष्ट हो गया था। उसका फिरसे उद्धार करनेके लिए मैंने अपनी मायासे यह शरीर धारण किया है। तुम मुझसे अनुमति चाहते हो? तो मैं आज्ञा देता हूँ कि इच्छापूर्वक जगत्में विचरण करो। किन्तु मुझे सब कर्म अर्पण करके मृत्युको जीतनेके लिए मेरा भजन करते रहो। ऐसा करनेसे शोकहीन होकर मोक्षपद पाओगे। हे पिता! मैं अपनी माता देवहूतिको आत्मविद्याका उपदेश दूँगा, जिससे वे संसारके कष्टोंसे निस्तार पाकर परम आनन्द प्राप्त करेंगी। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! भगवान कपिलके ऐसा कहनेके बाद प्रजापति कर्दम उनकी प्रदक्षिणा करके आनन्दित चित्तसे वनको चले गये। इसके बाद अहिंसा आदि धर्मोंका अवलम्बन करके विविध देशोंमें भ्रमण करते हुए परम गतिको प्राप्त हुए।

पञ्चविंश अध्याय

मातासे कपिलदेवजीका भक्तिलक्षण वर्णन

शौनकने पूछा—हे सूत! भगवानने कपिलशरीर धारण करके जो-जो कर्म किये हैं, वे सभी कीर्तनीय हैं। आप वही चरित्र कहिए। हमलोग भक्तिपूर्वक सुनेंगे। सूतजीने कहा—जिस तरह आप लोग मुझसे पूछ रहे हैं, इसी तरह महात्मा विदुरने मुनिवर मैत्रेयसे पूछा था। उसके उत्तरमें मैत्रेय मुनिने जो कहा था, सो कह रहा हूँ। सुनिये—पिताके वनमें चले जानेपर भगवान कपिल माताके साथ उसी बिन्दुसरमें रहने लगे। वे तत्त्वमार्गके पारदर्शी होनेके कारण सदैव कर्मशून्य भावसे बैठे रहते थे। एक दिन ब्रह्माका वचन स्मरण करके देवहूतिने पुत्रके पास जाकर कहा—हे प्रभो! तुच्छ विषयोंकी अभिलाषासे मेरे मनमें बड़ी भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी है। तुम आदि भगवान हो। सब पुरुषोंके ईश्वर हो। मुझे ज्ञाननेत्र प्रदान करो। हे देव! तुम मेरा मोह दूर करो। मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मेरी यह कामना पूर्ण कर दो। मैत्रेयने कहा—भगवान कपिल जननीके वचन सुनकर हँसते हुए बोले—मेरे मतानुसार योग ही सबके मंगलका कारण है। उसीसे सुख और दुःखकी निवृत्ति होती है। अतएव मैं तुमसे सर्वांग योगकी कथाका वर्णन कर रहा हूँ। सुनो—पहले भी मैंने एकबार अनेक ऋषियोंको इसे सुनाया था। मनको स्थिर किये बिना योग नहीं होता। चित्त ही जीवके बन्धन और मोक्षका कारण है। मनको स्थिर करके परमेश्वरमें लगा देनेसे ही मुक्ति मिलती है। हे मातः! काम-क्रोध-लोभ आदि मनकी मैल और मैं-मेरा आदि अभिमान

मनसे हटा देनेपर वह स्वतः पवित्र हो जाता है। तब न दुःख होता है और न सुख होता है। चित्त सदा समान रहने लगता है। उस समय मन विशुद्ध हो जाता है। ज्ञान वैराग्य और भक्तिके प्रभावसे वह अपनेको उदासीनकी भाँति और प्रकृतिको अकिंचन समझने लगता है। हे मातः! इस भक्तियोगके समान दूसरा कोई मंगलमय तथा सुगम मार्ग नहीं है। इसी कारण पण्डितगण साधुसंगको स्वर्गका द्वार कहते हैं। हे माँ! साधु किसको कहते हैं, सो सुनो—जो लोग दयालु हैं, सबके साथ मित्रता रखते हैं, शान्त स्वभावके हैं और सब कुछ सहन कर सकते हैं, वे ही सच्चे साधु हैं। सुशीलता जिनके लिए आभूषण है और जिनका कोई भी शत्रु नहीं है, वे ही साधु हैं। जो लोग बन्धु-बान्धवादि आत्मीय कुटुम्ब छोड़कर मेरे प्रति दृढ़ भक्ति रखते हुए मेरी कथा कहते हैं, वे ही साधु हैं। साधुओंका चित्त सदा मुझमें लगा रहता है, इसलिए कभी उनको किसी तरहकी व्यथा नहीं होती। हे माँ! तुम इस तरहके साधुसंगकी ही इच्छा करना। साधुसंगके प्रभावसे संगदोष नष्ट हो जाता है। हे जननि! साधुसमागम होनेसे भगवान हरिमें अर्थात् मुझमें भक्ति उत्पन्न होती है। साधुओंके मुँहसे मेरी कथा सुननेसे चित्त एकाग्र होता है। तब वैराग्य ज्ञानयोग आदिसे लोग मुझको प्राप्त करते हैं। देवहूतिने कहा—हे प्रभो! तुममें कैसी भक्ति करनी चाहिए? मैं स्त्री हूँ—कुछ भी नहीं जानती। मुझे मोक्षपद कैसे मिलेगा? तुमने जिस योगको मुक्तिका कारण बताया है, वह योग कैसा है? जिस प्रकार मैं सहजमें इस बातको समझ सकूँ, वह उपाय बताओ। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! भग-

वान कपिलने माताका अभिप्राय समझकर उन्हें सांख्यशास्त्र और योगका रहस्य बताना आरम्भ किया। भगवान कपिलने कहा— हे माँ! जिन इन्द्रियोंसे शब्द-रूप आदि विषयोंका अनुभव होता है, उनकी सत्त्वमूर्ति भगवान हरिमें स्वाभाविक प्रवृत्तिको भगवान-की निष्काम भक्ति कहते हैं। जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया रहता है, उस साधकके लिए भक्ति मुक्तिसे भी श्रेष्ठ होती है। जैसे जठराग्निसे आहार जीर्ण होता है, वैसे ही भक्ति लिंगशरीरको भस्म कर देती है। किन्तु जो लोग सर्वदा मेरी चरणसेवामें लगे रहते हैं, वे मुक्तिकी इच्छा नहीं करते। बल्कि वे मेरी सब मुक्तियोंको देखना चाहते हैं। मेरी लीलाकी कथाएँ सुनना और सुनाना चाहते हैं। क्योंकि मुक्तिकी अपेक्षा भक्तियोगका सुख अधिक है। हे माँ! भक्तियोगसे पुरुष वैकुण्ठवासी होकर विविध भोग्य वस्तुओंको पाते हैं। वहाँ कालचक्र उनका नाश नहीं कर सकता। किन्तु इस तरहकी भक्ति मैं जैसे-तैसेको नहीं देता। जो सब कुछ त्याग देनेवाला मेरा परमभक्त होता है, उसीको मैं उस तरहकी भक्ति देता हूँ। माँ! मैं ही ईश्वर हूँ। मेरे अतिरिक्त और किसीसे संसारका भय नहीं दूर होता। मेरे ही भयसे हवा बहती है। मेरे भयसे सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, आग जलती है और मृत्यु सब प्राणियोंके ऊपर प्रवृत्त होती है। योगीजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा अपने कल्याणके लिए मेरे चरणोंका आश्रय लेते हैं। भक्तियोग द्वारा मुझमें चित्त अर्पण करना ही इस लोकमें पुरुषोंके लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

षड्विंश अध्याय

तत्त्वज्ञानकी बातें

भगवान कपिलने कहा—हे मातः! मैं तुमको तत्त्वकी बातें बता रहा हूँ। इसका ज्ञान हो जानेसे मुक्ति मिल जाती है। हे माँ! प्रतिलोमविशिष्ट आत्मा ही पुरुष है। वह पुरुष अनादि, संग-रहित और निर्गुण है। वह स्वयं प्रकाशित है। यह विश्व इसीसे संयुक्त होकर प्रकाशित होता है। सृष्टिकर्ता होनेके कारण ब्रह्मा अभिमानका अनुभव तो अवश्य करते हैं, किन्तु वस्तुतः विष्णु ही शक्ति हैं। प्रकृति अपने गुणोंसे युक्त रहती है। इसीलिए सबकी सृष्टि होती है। हे माँ! पुरुष तो केवल साक्षीमात्र है। वस्तुतः प्रकृति ही जन्म-मरणका कारण है। कपिलजी बोले—वायु, अग्नि, जल, भूमि और आकाश ये पंचमहाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप और स्पर्श ये पाँच तन्मात्रायें हैं। आँख, कान, नाक, जीभ, त्वक् (चमड़ा) मुख, हाथ, पैर, लिंग और मलद्वार ये दश इन्द्रियाँ हैं। मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त ये चार अन्तर इन्द्रियाँ हैं। सब मिलाकर चौबीस तत्त्व हैं। इन चौबीस तत्त्वोंके अतिरिक्त पचीसवाँ तत्त्व काल है। कालके सम्बन्धमें मतभेद है। किसी किसीके मतानुसार काल परमेश्वरका ही पराक्रम है। कालसे ही प्रकृतिका अस्तित्व है। उसीसे प्राणियोंमें भयकी उत्पत्ति होती है। कुछ लोग कहते हैं कि जिससे प्रकृतिकी चेष्टाएँ होती हैं, वही भगवान काल हैं। जो सबके अन्तर्यामी हैं—वे ही भगवान हैं, वे ही काल हैं। हे मातः! अब तत्त्वोंकी उत्पत्ति और लक्षण बता रहा हूँ। सुनो—जीवके अदृष्टवश प्रकृतिके गुणोंके क्षुब्ध होनेपर परम पुरुषने प्रकृतिकी

योनिमें अपने वीर्यको स्थापित किया। प्रकृतिसे महतत्त्व उत्पन्न हुआ। महतत्त्व लय और विक्षेपसे रहित एवं विश्वका अंकुर है। इस तत्त्वने ही अपनेमें सूक्ष्मरूपसे अवस्थित विश्वको प्रकट करके अपने तेज द्वारा प्रलयकालके तमको पीकर महतत्त्वको प्रकृतिमें लीनकर रखा था। हे माँ! सत्त्व गुणयुक्त और रागादि रहित चित्तका ही नाम वासुदेव है। वह चित्त ही महत्तत्त्वका स्वरूप है। अहंकार कैसे उत्पन्न होता है और उसके लक्षण क्या हैं, सो बता रहा हूँ। सुनो—भगवानके वीर्यसे उत्पन्न महत्तत्त्वमें विकार प्राप्त होनेपर उससे अहंकार उत्पन्न होता है। हे माँ! अहंकारके उपास्य-देवता संकर्षण हैं। उनके एक हजार सिर हैं। उन्हें महर्षि लोग अनन्त कहते हैं। यह अहंकार ही देवतारूपसे कर्ता, इन्द्रियरूपसे कारण तथा पञ्चतत्वरूपसे कार्य है। शान्तित्व, घोरत्व और विमूढत्व ये तीन गुण भी अहंकारमें ही विराजमान रहते हैं। अब मनकी उत्पत्ति बता रहा हूँ। सुनो—अहंकारके विकृत होनेपर मनतत्त्व उत्पन्न होता है। चिन्ताके जो कार्य हैं, वे ही मनके लक्षण हैं। पण्डित लोग अनिरुद्धको मनका देवता कहते हैं। उस मनको योगीजन धीरे-धीरे अपने वशमें कर सकते हैं। संशय, मिथ्या-ज्ञान, निश्चय और निद्रा ये सब मनके लक्षण हैं। अब इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका विवरण कहता हूँ। सुनो—कर्म और कालके आधारसे इन्द्रियाँ दो प्रकारकी हैं—कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय। तेजरूप अहंकारसे इन दोनोंकी उत्पत्ति होती है। अब महाभूतोंकी उत्पत्ति और लक्षण बता रहा हूँ। सुनो—भगवानके वीर्य अर्थात् महत्तत्त्वसे तामस अहंकारमें क्षोभ हुआ। तब उससे शब्द उत्पन्न

हुआ। उस शब्दसे आकाश और शब्दको ग्रहण करनेवाली श्रवणेन्द्रियकी उत्पत्ति हुई। हे माँ! आकाशकी शून्यताको पण्डित लोग शब्दका लक्षण कहते हैं और शब्दतन्मात्रा ही आकाशका लक्षण है। प्राण, मन और इन्द्रिय आदि शक्तियोंको आश्रय देना ही आकाशकी वृत्ति है। शब्दतन्मात्रास्वरूप आकाशमें कालगतिसे जब विकार हुआ तो उससे स्पर्शतन्मात्रा उन्मत्त हुई। उससे वायुतत्त्व और स्पर्श ग्रहण करनेवाली त्वक् इन्द्रिय उत्पन्न हुई। कोमलता, कठिनता, शीतलता और उष्णता यही स्पर्शका लक्षण है और उस स्पर्शको ही तन्मात्रा कहते हैं। वृक्षों-शाखाओं आदिका संचालन, तृण आदिको एकत्र कर देना, गन्ध आदिको घ्राणके प्रति, शीतल तथा गरम वस्तुओंको स्पर्शके प्रति और शब्दको कानके पास ले जाना वायुका कार्य है। ईश्वरकी इच्छासे वायुमें विकार होनेपर उससे रूपतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उससे तेज और रूपको ग्रहण करनेवाली आँखकी उत्पत्ति हुई। वस्तुओंके आकार आदिका गठन आदि तेजके गुण हैं। तेजकी वृत्तियाँ हैं—भूख, प्यास, भोजन-पान आदि। हे माँ! तेजसे रस उत्पन्न होता है। उससे जल और जीभकी उत्पत्ति होती है। पहले रस मधुर मात्र था। बादको विकार प्राप्त होनेपर वह कषाय (कसैला), मधुर, तिक्त (तीखा), कटु, अम्ल (खट्टा), लवण आदि अनेक भागोंमें विभक्त हुआ। जलकी वृत्तियाँ भी अनेक हैं। भूख-प्यास तथा तापका निवारण और तृप्ति तथा जीवित रखना आदि उसके कार्य हैं। अब भूमिकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ। सुनो—रसस्वरूप जलमें विकार प्राप्त होनेपर गन्धकी उत्पत्ति हुई। फिर भूमिके गन्धको ग्रहण

करनेवाला घ्राण उत्पन्न हुआ। गन्धतन्मात्रा (सूक्ष्मगन्ध) एक ही है तो भी सांसर्गिक द्रव्योंके भेदसे मिश्रगन्ध, दुर्गन्ध, कर्पूरादि गन्ध, लशुनगन्ध और हींगकी गन्ध इत्यादि भेद उत्पन्न हुए। ये सब पृथ्वीकी वृत्ति अथवा कार्य हैं। ऊपर कहे गये महत्तत्त्व, अहङ्कार और पंचमहाभूत ये सात तत्त्व जब परस्पर मिल नहीं सके और इनके द्वारा सृष्टिकार्य नहीं हुआ, तब ईश्वरने काल, कर्म और गुणयुक्त होकर इन तत्त्वोंमें प्रवेश किया। तब ये परस्पर मिलकर अचेतन अण्डकी तरह हो गये। उसी अण्डसे विराट् पुरुष आविर्भूत हुए। उस अण्डके चारों तरफ जल था। भगवानकी मूर्तिरूपमें सब लोक उस अण्डमें ही समाये थे। उस ईश्वरने उस अण्डमें अधिष्ठित होकर अपने कार्यक्रमके अनुष्ठानसे अनेक छेद कर दिये। सर्वप्रथम उस अण्डमें मुख उत्पन्न हुआ, फिर वाक्य और कर्म सहित अग्नि, फिर नाक और नाकसे प्राणवायुयुक्त घ्राणइन्द्रिय प्रकट हुई। घ्राणके अनन्तर उससे नेत्र प्रकट हुए। नेत्रोंसे सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर कर्णेन्द्रिय हुई। उससे दिशाएँ उत्पन्न हुईं। फिर विराट शरीरमें त्वक् और त्वक्में केश और रोम आदिका आविर्भाव हुआ। उसमें औषधियें आदि अधिष्ठित हुईं। फिर विराटके लिंग उत्पन्न हुआ। उसमें रेतः (वीर्य) शक्तिका आविर्भाव हुआ। उस रेतसे जल प्रकट हुआ। फिर मलद्वार उत्पन्न हुआ। उससे अपान नामक वायु तथा लोकभयंकर मृत्यु प्रकट हुई। बादको विराट् शरीरमें हाथ और उससे बलका आविर्भाव हुआ। बलसे इन्द्र आविर्भूत हुए। उसके चरणोंसे विष्णु प्रकट हुए। तदनन्तर उस देहमें नाड़ियाँ प्रकट हुईं। फिर रक्त और उस रक्तसे नदियाँ प्रकट हुईं।

तब उस देहमें उदर प्रकट हुआ। उसमें भूख-प्यासकी शक्ति उत्पन्न हुई। इनसे ही समुद्रकी भी उत्पत्ति हुई। तदन्तर विराट पुरुषके हृदयसे मन उत्पन्न हुआ। मनसे चन्द्रमा और चन्द्रमासे बुद्धि प्रगटी। बुद्धिसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उनसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारसे रुद्र और रुद्रसे चित्त उत्पन्न हुआ। उस चित्तसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्माका आविर्भाव हुआ। अब अग्नि, वायु, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, मृत्यु आदि सब देवताओंने उस विराट् पुरुषको जगानेके लिए अपने-अपने छेदमें अपनी-अपनी शक्ति सहित प्रवेश किया। किन्तु विराट् पुरुष नहीं ही जागा। अन्तमें जब क्षेत्रज्ञ आत्माने चित्त द्वारा हृदयमें प्रवेश किया तो तत्काल उस जल-राशिसे विराट् पुरुष खड़ा हो गया। हे जननि! इस प्रकार प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदि महाशक्तियोंमें भी इतनी शक्ति नहीं है कि वे सोये पुरुषको जगा सकें। इसलिए योग बुद्धि और ज्ञान द्वारा अपने जागृत अवस्थावाले हृदयमें उसका चिन्तन करो।

सप्तविंश अध्याय

मोक्षप्राप्तिकी रीतिका वर्णन

भगवान कपिलने फिर माताको सम्बोधित करके कहा—हे माता! परमपुरुष परमात्मा निर्गुण, अकर्ता और निर्विकार है। वह कभी सुखदुःखमें लिप्त नहीं होते। किन्तु संसारी पुरुष सुख दुःखमें आसक्त रहते हैं। अतः उनकी आत्मा अहंकारसे मुग्ध हो जाती है। मूढ़ होते हुए भी वे अपनेको कर्ता समझकर अभिमान करते हैं। इसी लिए कर्मदोषसे सत्-असत् योनियोंमें जन्म लेकर वे संसारमें

आते हैं। उस अवस्थामें वे स्वच्छन्द नहीं रह सकते। हे मातः! सपनेमें दीखनेवाली विभिन्न वस्तुओंकी भाँति यह संसार भी मिथ्या है। विषयोंका ध्यान ही सब अनर्थोंकी जड़ है और वह भक्तियोग तथा वैराग्यकी प्राप्तिमें विघ्नकारक है। संसारत्यागी पुरुष यमनियम आदिके सहारे चित्तको स्थिर करते और श्रद्धापूर्वक मुझमें मन लगाकर मेरी कथा सुनते हैं। वे सबको समान दृष्टिसे देखते और संग छोड़कर ब्रह्मचर्य धारण करते हैं। कोई-कोई मौन-व्रत रखते या ईश्वरको मन अर्पित करके स्वधर्ममें लग जाते हैं। वे अपने-आप जो कुछ मिल जाता उसीसे सन्तुष्ट रहते, परिमित भोजन करते, शान्त और दयालु होकर एकान्तवास करते और सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करते हैं। स्त्री-पुत्र आदि सांसारिक मायाको छोड़कर वे पुरुष आत्मदर्शी हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध ब्रह्मको प्राप्त होना कोई असम्भव बात नहीं है। सूर्यके प्रकाशसे जैसे जलमें आकाशका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार परब्रह्मका प्रतिबिम्ब भी दिखाई देता है। हे मातः! यह आत्मा ही शुद्ध और परमार्थ ज्ञानस्वरूप है। देवहूतिने पूछा—हे प्रभो! भक्ति और वैराग्यसे विवेक उत्पन्न होता है। फिर भी प्रकृति और पुरुषका संयोग नित्य है। इसी लिए प्रकृति पुरुषको कदापि नहीं छोड़ती। ऐसी अवस्थामें मुक्ति कैसे प्राप्त होगी? भगवान कपिल बोले—निष्काम धर्म पालने और निर्मल मन रखने तथा मेरी कथा सुनने और भक्तियोग, तत्त्वज्ञान, वैराग्य तथा समाधि आदिके द्वारा प्रकृति पुरुषको छोड़ देती है। एक बार प्रकृतिके अलग हो जानेपर फिर कभी उसका उद्भव नहीं होता और तब वह पुरुष मुझमें भक्ति

करके मेरी कृपासे मेरे आनन्दस्वरूप कैवल्यधामको प्राप्त होता है। इस प्रकार लिंगशरीर छूट जानेपर उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता और आत्मज्ञान द्वारा उसका सारा अज्ञान और मोह नष्ट हो जाता है।

अष्टाविंश अध्याय

अष्टांगयोग

भगवान कपिल बोले—हे माँ! अब मैं योगका लक्षण कहता हूँ। सुनो—इस योगका अभ्यास करनेसे मन प्रसन्न होकर सत्-मार्गमें प्रवृत्त होता है। निषिद्ध धर्मका त्याग करके यथाशक्ति स्वधर्मका पालन करो। प्रारब्धवश जो प्राप्त हो जाय उसीसे संतोष, आत्मतत्त्वके जाननेवाले ज्ञानियोंके चरणोंकी सेवा, धर्म-अर्थ-काम इस त्रैवर्गिक धर्मसे निवृत्ति, मोक्षदायक धर्ममें अनुराग, परिमित और शुद्ध भोजन, निर्जन स्थानमें निवास, अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, जितनी वस्तुका प्रयोजन हो उतनीका ही संग्रह करना, ब्रह्मचर्यसे रहना, तपस्या करना, भीतर और बाहरसे शुद्ध रहना, वेदपाठ करना, भगवानकी पूजा करना, मौन रहना, स्थिर भावसे आसनपर बैठना, क्रम-क्रमसे प्राणवायुको जीतना, इन्द्रियोंको मनद्वारा विषय-वासनाओंसे हटाकर हृदयमें ला रखना, मनके साथ प्राणको धारण करना, भगवानकी लीलाओं तथा समाधिमें मन लगाना—इस प्रकारके योगके सहारे प्राणवायुको जीतना चाहिये। इसके बाद पवित्र स्थानमें कुश, मृगचर्म अथवा वस्त्र इस क्रमसे बिछावे। ऐसे आसनपर सुखपूर्वक बैठकर अपने शरीरको

सीधा करके प्राणका संयमन करके प्राणायामका अभ्यास करे। पहले पूरक अर्थात् बाहरके वायुको भीतर भरना, कुम्भक अर्थात् उस वायुको भीतर रोकना, रेचक अर्थात् उस वायुको बाहर निकाल देना—इस तीन प्रकारके प्राणायामसे अनुलोम तथा प्रतिलोम क्रमसे चित्तको ऐसा शुद्ध करे कि जिससे वह चंचलता त्यागकर एकदम शान्त हो जाय। हे मातः! जैसे वायु और अग्निके तापसे सोना अपने मलको त्याग देता है, वैसे ही बारम्बार प्राणायाम द्वारा श्वास-पर विजय करनेसे योगीका भी मन शीघ्र निर्मल हो जाता और उसमें चंचलता नहीं रह जाती। (१) प्राणायाम द्वारा योगीके वात पित्त कफ आदि शरीरके दोष जल जाते हैं। (२) धारणा अर्थात् वायुके साथ मनको स्थिर करनेसे पाप नष्ट हो जाता और चित्त निर्मल होता है। (३) प्रत्याहार अर्थात् विषयोंमें आसक्त इन्द्रियोंको विषयोंसे खींच लेनेपर विषयवासना दूर हो जाती है। (४) ध्यानसे रागद्वेष आदि अवगुण नष्ट हो जाते और ईश्वरमें मन लगता है—समाधिके ये चार कार्य हैं। इस प्रकार जब मन भलीभाँति निर्मल और योग द्वारा पूर्णरूपसे स्थिर हो जाय, तब नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि स्थिर रखकर भगवानकी मूर्तिका—अर्थात् उनके अंग-प्रत्यंग यश गुण अस्त्र-शस्त्र अलंकार एवं कार्य आदिका ध्यान करे। ऐसा करनेसे भगवानके प्रति योगीके मनमें प्रेम उत्पन्न होगा। भगवानके प्रति भक्ति हो जानेसे योगी आनन्दसागरमें डूबने लगेगा। ऐसा करनेसे सुख-दुःखका अभिमान अर्थात् शरीरकी कुछ सुधि न रहेगी। इन सबपर विजय पा लेनेसे योगी ब्रह्मस्वरूपमें स्थिर हो जाता है।

ऊनत्रिंश अध्याय

भक्तियोग और वैराग्य

देवहूतिने कहा—हे देव ! सांख्यशास्त्रके अनुसार प्रकृति और पुरुषका लक्षण तो आपने बताया, अब भक्ति और वैराग्यका लक्षण विस्तारपूर्वक कहिये। मैत्रेयजी बोले—हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान कपिल माताका वचन सुनकर प्रसन्न मनसे कहने लगे—हे मातः ! तामसिक राजसिक और सात्विक तीन प्रकारकी भक्ति होती है। हिंसा, दम्भ, मात्सर्य, क्रोध तथा अहंकारके वश अपनी इच्छापूर्तिके लिए जो भक्ति की जाती है, वह तामसिक भक्ति है। विषय, यश अथवा ऐश्वर्यकी कामना करके भेददृष्टि पूर्वक प्रतिमा आदिमें पूजा करके जो मेरी भक्ति की जाती है, वह राजसिक भक्ति कहलाती है। पापका क्षय करनेकी इच्छासे अभेददर्शनपूर्वक सर्वदा यज्ञ करनेको सात्विकी भक्ति कहते हैं। हे माँ ! भेददर्शनसे रहित और फलकी इच्छा छोड़कर मुझ सर्वान्तर्यामीमें भक्ति करना निर्गुणभक्तिका लक्षण है। कामनारहित होकर मुझमें भक्ति करनेसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है। हे मातः ! फलकी इच्छा छोड़कर जो भक्त नित्य मेरी प्रतिमाका दर्शन करता, मेरे नामोंका संकीर्तन करता, मेरी पूजा-वन्दनादि तथा स्तुति करता है, वह मुझको प्राप्त होता है। मैं सभी जीवोंमें विद्यमान हूँ। इस अभेदभावको स्थिर न करके जो लोग प्रतिमा आदिका पूजन करते हैं, वे मेरी अवज्ञा करते हैं। वे केवल भस्ममें घी डालते हैं। ऐसा हिंसक व्यक्ति कभी मनकी शान्ति नहीं पाता। जो व्यक्ति सबकी निन्दा करता

हैं, किन्तु वह यदि मेरी प्रतिमाकी पूजा करता है तो मैं उस पूजासे सन्तुष्ट नहीं होता। हे देवि! इस बातको सुनकर यह मत समझना कि प्रतिमाकी पूजा करना निरर्थक है। हे माँ! वृक्ष पर्वत आदि जिनको ज्ञान नहीं है, उनकी अपेक्षा सचेतन जीव श्रेष्ठ हैं। सचेतनोंमें ज्ञानवान मनुष्य श्रेष्ठ हैं। वृक्षोंसे मत्स्य श्रेष्ठ हैं। मत्स्यसे भ्रमर श्रेष्ठ हैं। भ्रमरसे सर्प श्रेष्ठ हैं। पदहीन प्राणियोंसे चतुष्पद श्रेष्ठ हैं। सबकी अपेक्षा द्विपदजीव अर्थात् मनुष्य श्रेष्ठ हैं। द्विपद जीवोंमें भी वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें भी धर्मकर्मके आचरणमें निष्ठा रखनेवाले श्रेष्ठ हैं। धर्मानुष्ठानकारीकी अपेक्षा संगत्यागी श्रेष्ठ है। जो मुझे अपना शरीर और मन अर्पण कर देते हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। हे मातः! इस प्रकार भक्तियोग और योगका वर्णन मैंने किया। इसको हृदयंगम करके तुम परमेश्वरको पा सकोगी। भगवान विष्णु सबके प्रभु हैं, परब्रह्म हैं, परमपुरुष हैं और यज्ञफलदाता हैं। उनका मित्र, प्रिय या अप्रिय कोई भी नहीं है। उनकी आज्ञासे चन्द्र, सूर्य, ऋतु, वृक्ष, लता आदि सृष्टिकी सभी शक्तियाँ अपना कार्य कर रही हैं। वे महाप्रभु अनादि, अनन्त, अव्यय और सभीके आदि पिता हैं।

त्रिंश अध्याय

तामसी गति

भगवान कपिलने कहा—हे माँ! संसारी लोग भगवान कालके प्रबल पराक्रमको नहीं जानते, वे लोग सुखके लिए प्रयत्न करते हुए जिस धनका उपार्जन करते हैं, उस सबको काल नष्ट कर देता

है। तब वह शोकमें डूब जाता है। वह मोहके वशमें होकर स्त्री-पुत्र गृह क्षेत्र आदिके साथ अपनेको नित्य मानता है। ऐसे लोगोंको कभी वैराग्य नहीं हो पाता। हे माँ! इस तरह देवमायासे विमुग्ध होकर वह पड़ा रहता है और अन्तमें उसे नरकमें भी जाना पड़ता है। जो लोग सत्संग नहीं करते, बूढ़ों और कुटुम्बीजनोंकी सेवासे दूर रहते और कभी मेरी आराधना नहीं करते, उनकी दुर्गति होती है। ऐसे अभागे पुरुष पुत्र-पौत्र आदिके भरण-पोषणके लिए हिंसा, धनोपार्जनकी चिन्ता, शठता, प्रयत्न, उद्योग, परिश्रम आदिमें लगे रहकर समय बिताते हैं। हे माँ! देखो जब मनुष्य बूढ़ा हो जाता है और उपार्जन न कर सकनेके कारण परिवारका भरण-पोषण नहीं कर सकता, तब उसके स्त्री-पुत्रादि उसका निरादर करने लगते हैं। उसके प्रति श्रद्धाभक्ति दिखाना छोड़ देते हैं। उस समय वह जीवनकी आशा छोड़कर मृत्युके लिए प्रार्थना करने लगता है। घृणा तिरस्कार और अपमान सहन करके वह घरके चौकीदार या पालतू कुत्तेकी भाँति अपना तेज खो देता और घरवाले जो कुछ दे देते हैं, उसीको खाकर जीवन धारण करता है। अग्नि मन्द पड़ जानेके कारण उससे थोड़ा खाया जाता है और भी विविध पीड़ायें सहनी पड़ती हैं। इसके बाद उस पुरुषका मृत्युकाल आ उपस्थित होता है। सभी नाड़ियाँ कफसे रुँध जाती हैं। खाँसते-खाँसते कष्ट बढ़ जाता है। छातीमें पीड़ा होने लगती है और हृदयमें शोक छाया रहता है। इस तरहकी यातनाओंसे रो-रोकर उसे जीवन बिताना पड़ता है। अन्तमें ज्ञानशून्य होकर वह प्राण त्यागता है। मृत्यु होनेके साथ ही दो यमदूत उसके सामने

आकर खड़े हो जाते हैं। उन्हें देखकर मारे भयके वह एक साथ मल-मूत्र त्यागने लगता है। वे दूत उसकी गरदन बाँधकर मारने लगते हैं। वे दो या तीन मुहूर्तमें उसे लेकर भयानक कष्टदायक निन्नानबे हजार योजनका रास्ता पार करके यमके पास पहुँचाते हैं। वहाँ जिसका जैसा पाप रहता है, उसके अनुसार उसको दण्ड दिया जाता है। किसीको कुत्ते काटते हैं। किसीको बिच्छू काटते हैं। किसीको साँप आदिसे कटाया जाता है और किसी-किसीको पर्वत आदिसे नीचे फेंक दिया जाता है। यमराज इस तरहके दण्ड देते हैं कि उनका विवरण सुनकर हृदय फटने लगता है। पापकार्यमें लगकर जो मनुष्य धनोपार्जन करता, उससे वह परिवारका भरण-पोषण करता और उसको ही अपने पापका फल भोगना पड़ता हैं। उसके परिवार अर्थात् स्त्री-पुत्र आदिको कुछ दण्ड नहीं मिलता। अधर्मकी सजा भोगता हुआ वह प्राणी क्रमशः कुत्ता-शूकर आदि योनियोंमें जाकर यातनाएँ भोगता और पापक्षय होनेपर पवित्र होनेके बाद फिर मानव जन्मको प्राप्त होता है।

एकत्रिंश अध्याय

राजसी गति

भगवान कपिलजी बोले—जीव अपने पूर्वकृत कर्मोंके कारण पुरुषके वीर्यका आश्रय लेकर माताके गर्भमें प्रवेश करता है। वीर्य एक रातमें रक्तके साथ मिल जाता है। वह पाँच रातमें पानीके बुल्लेके समान गोल हो जाता है। दस दिनमें वह बेरके फलके

समान कठिन हो जाता है। बादको योनिकी पेशियोंके बीच वह अण्डेके सदृश बन जाता है। एक महीना बीतनेपर उसमें सिर निकलता है। दो महीनेमें हाथ-पैर आदि सभी अंग, नख, रोएँ, हड्डी, चमड़ा, लिंग और छेद निकलते हैं। वह छः महीनेका होता है, तब जरायु नामक चर्मावरण अर्थात् झिल्लीसे आवृत होकर माताकी कोखमें दाहिनी ओर घूमने लगता है। उसी समयसे माताके खाये हुए अन्नपानादिसे उसकी सभी धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं। इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते उसे विष्ठा-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भरूपी गढ़ेमें शयन करना पड़ता है। वहाँ कितना दुःख होता है, उसका वर्णन कहाँ तक करूँ। गर्भमें स्थित छोटे-छोटे कीड़े उसके समूचे अंगको छिन छिन काटते रहते हैं और धीरे-धीरे घाव कर देते हैं। उस क्लेशसे उसे बारबार मूर्च्छा आती रहती है। माताके कड़ुए, खट्टे, तीखे आदि भोजनके रससे उसके सभी अंगोंमें व्यथा उठती है। इस प्रकारकी यातनाओंके कारण वह अपने शरीरको हिला-डुला नहीं सकता और हाथ-पैर समेटकर पड़ा रहता है। हे मातः! गर्भमें रहनेकी अवस्थामें उसे अपने पूर्वजन्मोंकी बातें याद आती हैं। सातवें महीनेसे प्रसव वायु चलने लगता है। उस समय जीव एक स्थानपर स्थिर नहीं रह पाता। गर्भयन्त्रणा और अधिक न भोगनेकी इच्छासे वह हाथ जोड़कर ईश्वरकी स्तुति करने लगता है। हे माँ! दस महीनेतक गर्भमें रहकर वह जीव अनेक प्रकारसे परमेश्वरकी स्तुति करता है। उस समय प्रसूति वायु प्रसवके निमित्त उसका माथा नीचे करके फेंक देता है। भूमिष्ठ होते ही उसकी स्मरणशक्ति लुप्त हो जाती है। कीड़ेके समान भूमिमें गिरकर वह

अंग संचालन करता और बारबार रोता है। भूख लगनेपर माताका स्तन पीनेके लिए रोता है। पाँच महीनेतक वह शैशवकालका दुःख भोगता और समय बीतनेपर लिखने-पढ़ने आदिका कष्ट झेलता है। युवावस्थामें इच्छाके अनुसार लाभ न होनेपर शोकमें पड़ जाता है। इस समय काम, मोह, अभिमान और कुबुद्धि आदि कर्मोंके बन्धनोंसे क्लेश पाता है। ऐसी दशामें वह केवल कामपूर्ति और पेट पालनेके फेरमें पड़कर असत् संसर्गमें रहने लगता है। इस अवस्थामें सत्य, दया, बुद्धि, लज्जा, श्री, यश आदि गुण नष्ट होने लगते और वह मूर्ख स्त्रीके वशमें हो जाता है। हे मातः! असत् संसर्ग जितने हैं, उनमें नारीसंग सबसे खराब है और उसी प्रकार नारीसंग करनेवालोंका संसर्ग भी पाप है। इन दो प्रकारके संसर्गोंसे पुरुषको जितना मोह और बन्धन होता है, उतना और किसीके संसर्गसे नहीं होता। देखो माँ! नारीके संगसे कितना अनर्थ होता है, इसका कुछ विवरण सुनो—प्रजापति ब्रह्मा अपनी ही कन्यापर मोहित हुए। पिताकी कुवासना देखकर कन्या डर गयी और मृगीका रूप धारण करके भाग चली। उस भागती हुई कन्याका भी पीछा करनेसे वे बाज नहीं आये। लाज छोड़कर वे मृगका रूप धारण करके उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। जब साक्षात् ब्रह्माकी ऐसी दशा हुई, तब मरीचि आदिकी सृष्टिमें जो देव-मनुष्य आदि हैं, उनमें कौन ऐसा है जिसका मन नारीके प्रति आकर्षित न होगा। हे माँ! स्त्रीरूपिणी मेरी माया अत्यन्त भयंकर है। इसके प्रभावसे योगियोंका भी योग नष्ट हो जाता है। इस कारण योगियोंके लिए स्त्रियाँ नरकके द्वार सदृश हैं। हे देवि!

आत्माका नाश नहीं होता। अतएव असत् संग छोड़कर सत्संगमें रहना जीवोंका प्रधान कर्तव्य है। ऐसा करनेपर यमयातनाके भोगसे छुटकारा मिल जाता है। मुक्ति हो जानेपर फिर गर्भकी यन्त्रणा नहीं भोगनी पड़ती।

द्वात्रिंश अध्याय

सात्त्विकी गति

भगवान कपिलने कहा—हे माता! जो व्यक्ति घरमें रहकर काम और अर्थसे यज्ञादि द्वारा देवताओं और पितृगणकी पूजा करता है, पर भगवानकी आराधना नहीं करता वह चन्द्रलोकमें पहुँचकर सोमपान करता है। किन्तु उसको मनुष्यलोकमें फिर लौटकर आना पड़ता है। प्रलयकालमें जब भगवान अनन्त-शय्यापर शयन करते हैं, तब इन गृहाश्रमी लोगोंको अपने पुण्यबलसे प्राप्त लोक लय हो जाते हैं। चित्त शुद्ध हो जानेपर जो योगीजन परमेश्वररूपमें भगवान हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे वैकुण्ठलोकको प्राप्त होते और ब्रह्माके प्रलयकालतक विष्णुलोकमें ही रहते हैं। हे मातः! ब्रह्माका प्रलयकाल कैसा है, सो सुनो—जब ब्रह्माको भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन और इन्द्रिय आदि ब्रह्माण्डका संहार करनेकी अभिलाषा होती है, तब वे सभी हिरण्यगर्भमें समा जाते हैं। बादको ब्रह्मा पूर्ववत् जन्म धारण करते और मरीचि आदि भी पहलेकी भाँति फिर जन्म लेकर अपने-अपने अधिकारपर आरूढ़ हो जाते हैं। हे देवि! जो लोग ज्ञान, योग,

भक्ति और वैराग्य द्वारा भगवानकी उपासना करते हैं, वे ही उनकी चरणसेवामें रह पाते हैं। ऐसा न करनेवाले लोग गर्भकी यन्त्रणा भोगकर जन्म लेते और फिर मृत्युयन्त्रणा भी भोगते हैं। जो व्यक्ति मुझमें भक्ति रखकर मेरी आराधना करता और मुझमें ही मन लगाये रहता है, उसीको मुक्ति मिलती है।

……

त्रयस्त्रिंश अध्याय

देवहूतिकी जीवन्मुक्ति

मैत्रेयजी बोले—देवहूति अपने पुत्र भगवान कपिलके मुखसे सांख्यशास्त्र सुनकर ज्ञानप्राप्त दशामें भगवानके चरणोंमें प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुति करने लगी। मैत्रेयजीने कहा कि माताको इस प्रकार मुक्तिका मार्ग दिखा और उनकी अनुमति लेकर भगवान कपिल वहाँसे चले गये। देवहूतिने पुत्रके कथनानुसार योगका अवलम्बन किया और सरस्वती नदीके तटपर स्थित आश्रममें समाधि लगाना आरम्भ किया। कठिन तपस्याके कारण उसका शरीर कृश हो गया, सिरमें केशोंकी जटाएँ बन गयीं, चित्त क्षोभसे रहित हो गया और पुत्रका वियोग होनेके कारण उसका मुख मलिन दीखने लगा। हे विदुर! देवहूतिका मन भगवान वासुदेवमें लग चुका था। इस कारण अन्तमें वे मुक्त परब्रह्म स्वरूप भगवानको प्राप्त हुईं। हे विदुर! जिस स्थानपर देवहूतिको सिद्धि मिली थी, वह स्थान त्रिभुवनमें सिद्धिपद नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनका स्थूल शरीर योगबलसे नदीके रूपमें परिणत हो गया

है। उस नदीमें सिद्धगण सर्वदा स्नान करते हैं। हे विदुर! महायोगी भगवान कपिलने मातासे आज्ञा लेकर पिताके आश्रमसे उत्तर-पूर्व दिशाको प्रस्थान किया। उनके प्रस्थानके समय सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सराएँ स्तुति करने लगीं। समुद्र-तटपर पहुँचनेपर समुद्रने उनको अर्घ्य प्रदान किया और रहनेको स्थान दिया। वे अब भी वहाँ योगानुष्ठानमें तत्पर हैं और आजतक भी सांख्याचार्यगण उनकी स्तुति किया करते हैं।

तृतीय स्कन्ध समाप्त।

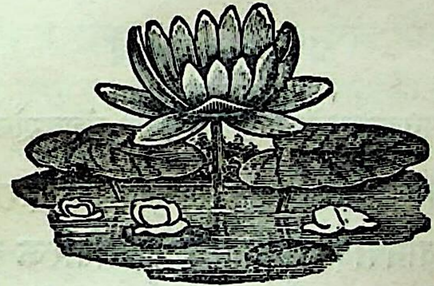

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

चतुर्थ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

मनुकन्याओंका पृथक् पृथक् वंशवर्णन

मैत्रेयजी बोले—स्वायम्भुव मनुकी शतरूपानामक भार्यासे प्रियव्रत और उत्तानपाद इन दो पुत्रोंके अतिरिक्त आकूति, देवहूति और प्रसूति ये तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। अपनी सम्मतिके अनुसार मनुने आकूतिका विवाह रुचिके साथ कर दिया। रुचिके औरस और आकूतिके गर्भसे साक्षात् विष्णु यज्ञस्वरूप धारण करके उत्पन्न हुए और परमपवित्र लक्ष्मीके अंशरूपसे दक्षिणानामक कन्या उत्पन्न हुई। इसके बाद इन दोनोंका परस्पर विवाह हुआ। यज्ञ भगवानके वीर्य और दक्षिणाके गर्भसे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। हे कुरुप्रवीर! प्रत्येक मन्वन्तरमें एक-एक मनु, देवता, मनुके पुत्र,

इन्द्र, सप्तऋषि और हरिके अंशावतार अलग-अलग होते हैं। इस मन्वन्तरमें मरीचि आदि सप्तऋषि, यज्ञ इन्द्र, प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दो मनुपुत्र तथा उनके पुत्र-पौत्र इस स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पृथ्वीका पालन करनेवाले हुए। मनुकन्या देवहूतिके गर्भ और प्रजापति कर्दमके वीर्यसे नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सब ब्रह्मर्षियोंको ब्याही गयीं। अब उनके वंशका वर्णन करते हैं, सुनो। मरीचिकी स्त्री कलाके गर्भसे कश्यप और पूर्णिमान दो पुत्र उत्पन्न हुए। पूर्णिमानके विरज और विश्वगनामक दो पुत्र और देवकुल्या नामकी कन्या हुई। यही देवकुल्या अन्य जन्ममें भगवानका पादपद्म धोकर स्वर्गनदी अर्थात् गंगाजी हो गयी थीं। कर्दमतनया अनसूया अत्रिजीकी पत्नी हुईं। इनके गर्भसे अत्रिजीके द्वारा दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम ये तीन पुत्र विष्णु, शिव और ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न हुए। हे वत्स! भगवान ब्रह्माने अत्रिको प्रजासृष्टि करनेकी आज्ञा दी। तदनुसार अत्रि ईश्वरसदृश पुत्र पानेकी इच्छासे अपनी स्त्रीके साथ ऋक्षनामक पर्वतपर गये। उसके समीप निर्विन्ध्या नदी प्रवाहित हो रही थी। पलाश और अशोकके वृक्षोंसे घिरा वन था और वह प्रदेश फूलोंके गुच्छोंसे सुशोभित था। उसी वनमें आश्रम बनाकर अत्रिजी योगासनपर बैठकर तपस्या करने लगे। एक सौ वर्षतक वे एक पैरसे खड़े-खड़े केवल वायु पीकर तपस्या करते रहे। तपकी उग्रताके कारण एकाएक उनकी खोपड़ीसे आग निकलने लगी। उससे तीनों लोक जलने लगे। यह देखकर ब्रह्मा विष्णु महेश्वर उसी क्षण अत्रिमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। अप्सराएँ मुनि गन्धर्व सिद्ध और विद्याधर जाकर उनका यश गाने

लगे। तीनों देववरोंको सम्मुख देखकर अत्रि मुनिने दण्डवत् प्रणाम किया और पूजनकी सामग्री ले और पूजन करके उनकी स्तुति करने लगे। तीनों देवता बोले—हे ब्रह्मन्! तुमने जो संकल्प किया है, वह पूरा होगा। हम लोगोंके अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र उत्पन्न होंगे, जिनसे जगतमें तुम्हारे यशका विस्तार होगा। यह कह और पूजा ग्रहण करके देवता लोग चले गये। बादको अत्रिके वीर्य और अनसूयाके गर्भसे ब्रह्माके अंशसे सोम, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और शंकरके अंशसे दुर्वासाका जन्म हुआ। हे वत्स विदुर! अब अंगिरा ऋषिके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनो। अंगिराकी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे चार कन्याएँ और दो पुत्र उत्पन्न हुए। कन्याओंके नाम सिनीवाली, कूहू, राका और अनुमति थे। इनके साक्षात् भगवानके अंश उतथ्य और ब्रह्मज्ञानी बृहस्पति ये दो पुत्र भी हुए। महर्षि पुलस्त्यके वीर्य और उनकी पत्नी हविर्भूके गर्भसे महामुनि अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवाका जन्म हुआ। विश्रवाकी इडविडानामक पत्नीसे यक्षपति कुबेर उत्पन्न हुए। उनकी सिनीवाली नामक दूसरी भार्यासे रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण उत्पन्न हुए। पुलहकी स्त्री गतिके कर्मश्रेष्ठ, वरीयान और सहिष्णु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। महामुनि क्रतुकी स्त्री क्रियाने ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान बालखिल्यनामक साठ हजार पुत्रोंका प्रसव किया। महर्षि वसिष्ठकी स्त्री अरुन्धतीके गर्भसे चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृधान और द्युमान ये सात पुत्र ब्रह्मर्षि हुए। उनकी अन्य स्त्रीमें शक्ति आदि अन्य पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। महर्षि अथर्वणकी पत्नी चित्तिके गर्भसे दधीचि और अश्वशिरा नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

भृगुपत्नी ख्यातिके गर्भसे धाता और विधातानामक दो पुत्र और 'श्री' नामकी कन्या उत्पन्न हुई। मेरुने आयति और नियति नामकी अपनी दो कन्याएँ धाता और विधाताको ब्याह दीं। उनसे यथाक्रम मृकण्डु और प्राण ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। मृकण्डुके मार्कण्डेय और प्राणके वेदशिरा मुनि हुए। भृगुके एक और पुत्र भगवान उशना (शुक्राचार्य) हैं। हे विदुर! प्रजापति कर्दमके दौहित्रवंशकी कथा सुननेसे सभी पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। हे विदुर! ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्षने मनुकन्या प्रसूतिसे विवाह किया। प्रसूतिके गर्भसे सोलह कन्याएँ हुईं। उनमें तेरह कन्याएँ धर्मको, एक अग्निको, एक सुयोग्य पितृगणको और एक संसारनाशक शिवको ब्याह दी। अब धर्मकी स्त्रियोंके नाम और उन स्त्रियोंके गर्भसे जो सन्तानें उत्पन्न हुईं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। धर्मपत्नी श्रद्धाके गर्भसे सत्य, मैत्रीके प्रसाद, दयाके अभय, शान्तिके सम, तुष्टिके हर्ष, पुष्टिके गर्व, क्रियाके दर्प, उन्नतिके दर्श, बुद्धिके अर्थ, मेधाके स्मृति, तितिक्षाके क्षेम, श्रीके विनय और मूर्तिके नर और नारायण नामक दो ऋषि उत्पन्न हुए। नरनारायणके जन्मसमयमें फूलोंकी वर्षा होने लगी और देवता तथा ऋषिगण स्तुति द्वारा उनकी उपासना करने लगे। देवताओंके चले जानेपर भगवान नर और नारायण गन्धमादन पर्वतको चले गये। हे विदुर! वे हरिके अंशावतार नारायण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए यदुश्रेष्ठ कृष्ण और कुरुश्रेष्ठ अर्जुनके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। हे विदुर! दक्षकी अन्य तीन कन्याओंका वंश कहता हूँ, सुनो। अग्निकी स्त्रीका नाम स्वाहा है। स्वाहाके गर्भसे पावक, पावमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न

हुए। इन तीनोंसे पैंतालीस अग्नि उत्पन्न हुए। ये अग्नि, तीन पिता और एक पितामहको मिलाकर उन्चास अग्नि हुए। याग-यज्ञमें ब्राह्मण लोग प्रत्येकका नाम उच्चारण करके आहुति प्रदान करते हैं। अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, सोमप, आज्यप ये पितृगण हैं। इन लोगोंमें जो कर्मयोगी हैं, वे साग्निक हैं और जो निष्कर्म हैं, वे अनग्नि हैं। इस प्रकार ये दो श्रेणीके हैं। इनकी स्त्री दक्षकी कन्या स्वधा हैं। स्वधाकी वसुना और धारिणी नामक दो कन्याएँ हुईं। ये दोनों ब्रह्मनिष्ठ हुईं। जीवन्मुक्त होनेके कारण इनके पुत्र या कन्या कोई सन्तान नहीं हुई। हे वत्स! शंकरने जिस दक्ष-कन्यासे विवाह किया था, उसका नाम सती था। युवावस्थामें योगका अवलम्बन करके सतीने देहत्याग दिया था और उनके कोई पुत्र नहीं हुआ।

द्वितीय अध्याय

दक्षयज्ञके उपलक्ष्यमें शिव और दक्षका वैर

विदुरजी बोले—हे ब्रह्मन्! दक्ष प्रजापति अपनी कन्याको प्यार करते थे, फिर शिवजीसे उनकी शत्रुता कैसे हो गयी और सतीने अपना शरीर किस कारण त्याग दिया, इन सब बातोंको स्पष्टरूपसे बताइये। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स! प्राचीन समयमें विश्वस्रष्टाओंने एक यज्ञ किया। उस यज्ञमें बड़े-बड़े ऋषिगण, देवगण, शिष्योंके साथ मुनिगण और सभी अग्नि सम्मिलित हुए। उसी समय दक्ष प्रजापति वहाँ आ पहुँचे। वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने आसनोंसे उठकर उनका सम्मान किया। केवल विष्णु और

शिवजी नहीं उठे। दक्ष जगद्गुरु ब्रह्माको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे आसनपर बैठे। शिवजी अपने आसनपर बैठे ही हुए थे। दक्ष बार-बार शिवजीकी तरफ देखते हुए सोचने लगे कि इन्होंने क्यों मेरा सम्मान नहीं किया। शिवका अनादर न सह सकनेके कारण क्रोधावेशमें वे कहने लगे—हे सभ्यगण! इस निर्लज्जने लोकपालोंके निर्मल यशको नष्ट कर दिया है। यह सज्जनोंके आचरित मार्गको दूषित कर रहा है। इस मूर्खने मेरी सावित्री सदृश कन्यासे विवाह किया है। इस कारण यह तो एक तरहसे मेरा शिष्य है। किन्तु इसका व्यवहार आप लोगोंने देख लिया? अहो! मेरा कैसा दुर्भाग्य है! यह पागल है। इसके नेत्र बानर जैसे हैं। यह सदा अशुचि रहता है। भूत-प्रेतोंके साथ घूमा करता है। कभी हँसता है—कभी रोता है। पागलकी तरह श्मशानोंमें घूमता है। नित्य चिताकी राख देहमें लगाये रहता है। प्रेतोंके पहिनने योग्य मुण्डमाला पहिनता है। मृतकोंकी हड्डियोंका भूषण धारण करता है। यही मेरा दामाद है। अभिमानवश मैंने इसको अपनी सती-साध्वी कन्या दे दी। इसका नाम तो शिव है, पर सदा मैं इसे अशिव ही देखता हूँ। यह केवल नशेमें उन्मत्त रहता है। नशाखोर ही इसके प्रियपात्र हैं। हाय! कैसे खेदकी बात है। यह सब जगदीश्वरकी विडम्बना है। मैत्रेयजी बोले—शिवजी दक्षके दुर्वचन सुनकर क्रुद्ध नहीं हुए, बल्कि चुपचाप बैठे रहे। किन्तु दक्ष यह निन्दा करके ही चुप नहीं रहे। उन्होंने मारे क्रोधके शाप भी दे दिया कि यह अधम शिव यज्ञमें इन्द्र आदि देवगणके साथ यज्ञका भाग न पावे। हे विदुर! सभी रोकते रहे, पर दक्ष भगवान

शिवको शाप दे और क्रुद्ध होकर उसी समय अपने भवनको चले गये। शिवके सेवकोंमेंसे मुख्य नन्दीश्वर शिवकी निन्दा नहीं सह सके और कुपित होकर उन्होंने दक्षको और जिन ब्राह्मणोंने दक्षके शापका अनुमोदन किया था, उनको यथोचित प्रतिशाप दिया कि दक्षका मुँह बकरेका हो जाय और ये शिवनिन्दक ब्राह्मण भक्ष्य-अभक्ष्यका विचार न करके पेट भरनेके लिए इधर-उधर घूमते फिरें। हे विदुर! नन्दीश्वर ब्राह्मणोंको शाप देने लगे तो भृगु मुनिसे न रहा गया। उन्होंने प्रतिशाप दिया कि जो लोग महादेवका व्रत करें, वे मतवाले और पाखण्डी हो जायँ। तुम सनातनधर्म और ब्राह्मणोंकी निन्दा कर रहे हो, इस कारण पाषण्ड-मार्गमें जाओ। जहाँ भूतनाथ रहते हैं, वहाँ जाकर उसी पाखण्डी देवताको तुम लोग प्राप्त होओ। मैत्रेयजी बोले—भृगु जब इस प्रकार शाप देने लगे, तब भगवान शिव परस्परके शापसे परस्परका विनाश समझकर उदास मनसे पार्षदोंके साथ वहाँसे उठकर चले गये। हे विदुर! तदनन्तर उन विश्वस्त्रष्टाओंके यज्ञसे एक हजार वर्षतक भगवान श्रीहरिकी पूजा हुई। बादको प्रयागमें जहाँ गंगा-यमुनाका संगम है, ऐसे पवित्र स्थानमें स्नान करके वे अपने-अपने धामको चले गये।

तृतीय अध्याय

सतीजीकी अपने पिता दक्षके यज्ञमें जानेकी प्रार्थना और शिवजीका मना करना

मैत्रेयजी बोले—प्रजापति दक्षके साथ उनके दामाद शिवका विवाद चलते-चलते बहुत काल बीत गया। तदनन्तर ब्रह्माजीने

दक्षको सब प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया। दक्षको इससे और भी अभिमान हो गया। उन्होंने महागर्वसे ब्रह्मज्ञानी व्यक्तियोंकी निन्दा करके पहले वाजपेय, फिर 'बृहस्पतिसव' नामक यज्ञ आरंभ किया। उस यज्ञमें शंकरके अतिरिक्त अन्य सभी देवता, देवर्षि और पितृगण निमन्त्रित होकर अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ गये और दक्षने सबका आदर-सत्कार और पूजन किया। आकाशमें उड़नेवाले विमानोंमें बैठी देवांगनाओंके मुँहसे सतीने पिताके यज्ञकी बात सुनी और अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ देवताओंको यज्ञ देखनेके लिए जाते देखकर शंकरजीको सम्बोधित करके सतीने कहा—हे प्रभो ! आपके श्वसुर प्रजापति दक्ष यज्ञ कर रहे हैं। आपकी इच्छा हो तो चलिये। मैं भी आपके साथ जाना चाहती हूँ। इस उत्सवमें मेरे माता-पिता अनेक वस्त्र अलंकार दान करेंगे। उन्हें प्राप्त करनेकी मेरी बड़ी इच्छा है। वहाँ जानेपर मैं अपनी बहिनोंको देख सकूँगी। आप प्रसन्न होकर वहाँ चलें। मैत्रेयजी बोले—भगवान शंकर प्रेयसीकी बात सुनकर हँस पड़े और दक्षने सबके सामने जो दुर्वचन कहे थे, वह सब उनको सुनाते हुए कहा—हे प्रिये ! मैंने तुम्हारे पिताका किसी प्रकार अपमान नहीं किया। मैं सदा भगवान वासुदेवका नाम जपता रहता हूँ। उनका चिन्तन करता हूँ और उनको ही नमस्कार करता हूँ। हे सती ! मैंने कोई अपराध नहीं किया था, किन्तु दक्षने मुझे अनेक गालियाँ देकर तिरस्कार किया। हे प्रिये ! तुम मेरी बात मानो। मेरी बात अनसुनी करके पिताके यज्ञमें मत जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हारी भलाई नहीं होगी।

चतुर्थ अध्याय

शिवकी बात न मानकर भवानीका पितृयज्ञमें जाना और पिताके अपमानसे शरीर त्याग करना

मैत्रेयजी बोले—भगवान शिव इतना कहकर चुप हो रहे। किन्तु मन ही मन चिन्ता करने लगे कि सतीको जानेकी अनुमति दूँ या जानेसे रोक दूँ ? दोनों प्रकार सतीके देहत्यागकी संभावना है। इधर सती भी पतिके भयसे शंकित होकर कभी घरसे बाहर निकल जातीं और फिर लौट आतीं। रह-रहकर उनका शरीर कोपसे काँपने लगता। बन्धुजनोंके मिलनेकी इच्छावश क्रोध और शोकमें पड़ जानेसे उनके हृदयमें सन्ताप उत्पन्न हुआ। अन्तमें स्त्रीस्वभावसे उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी और शंकरका अर्धशरीर त्यागकर अपनी इच्छाके अनुसार बिना पतिकी आज्ञाके वे पिताके घर चल पड़ीं। सतीजीको अकेले जल्दी-जल्दी जाते देखकर भूत-प्रेत निशाचरगण उनके पीछे-पीछे चल पड़े। सती जब पिताके घर पहुँचीं तो उनकी माता और बहिनोंके अतिरिक्त अन्य किसीने दक्षके भयसे उनका आदर-सत्कार नहीं किया। सतीने देखा कि यज्ञमें कहींपर शिवका भाग ही नहीं है। इस दृश्यसे उनका शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। सतीके कुपित होते ही उसी क्षण दक्षका विनाश करनेके लिए बहुतसे शिवगण उत्पन्न हो गये, किन्तु उनको देवीने रोक दिया। तदनन्तर सतीने यज्ञके बीच ही दक्षकी निन्दा की और फिर उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीमें बैठ गयीं और उसी समयसे उन्होंने मौनावलम्बन कर लिया। इसके बाद उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। हे वत्स विदुर ! यह अद्भुत व्यापार

देखकर आकाश और पृथ्वीमें हाहाकारका महाकोलाहल उठा। सभी दक्षकी निन्दा करने लगे। सती जब देह त्याग करनेको तत्पर हुईं तब अपनी आँखोंसे देखते हुए भी किसीने उनको मना नहीं किया। जब सतीका देहत्याग देखकर सभी आपसमें बातें करने लगे, तब सतीके पार्षद अपने-अपने शस्त्र उठाकर दक्षको मारनेके लिए उठ खड़े हुए। यज्ञके पुरोहित भृगुने यह देखकर यज्ञमें विघ्न करनेवालोंके विनाशके लिए यज्ञकुण्डमें आहुति छोड़ी। आहुति छोड़ते ही 'ऋभु' नामक यज्ञरक्षक देवगण हजारोंकी संख्यामें उस अग्निसे प्रकट हुए। वे देवगण तप द्वारा सोमत्वको प्राप्त हुए थे। ब्रह्मतेजके प्रतापसे जलती हुई लकड़ीको शस्त्ररूपमें लेकर भूतप्रेतगणोंके साथ ये ऋभुगण युद्ध करने लगे। जिससे शिवपार्षद हार मानकर भाग गये।

पञ्चम अध्याय

सतीका देहत्याग सुनकर शंकरके रोषसे वीरभद्रका जन्म और दक्षका वध

मैत्रेयजी बोले—जब महादेवने सुना कि भवानीने दक्षके अपमानसे सती देह त्याग दिया है और दक्षयज्ञमें ऋभुनामक देवगणने उत्पन्न होकर मेरे पार्षदोंको मार भगाया है, तब उनको बहुत क्रोध आया। उन्होंने दारुण क्रोधसे ओठोंको चबाते हुए उसी क्षण अपने सिरसे एक जटा उखाड़ ली। वह जटा बिजली और अग्नि शिखाके समान जलने लगी। फिर उठकर हँसते-हँसते उन्होंने उस जटाको पृथ्वीपर पटक दिया। उस जटासे प्रकाण्ड

शरीरवाले वीरभद्र उत्पन्न हुए। उनका शरीर इतना ऊँचा था कि मानों आकाशको छू रहा था। उसके हजार हाथ थे। शरीर मेघके समान श्याम था। तीनों नेत्र मानो तीन सूर्य थे। गलेमें मुण्डमाला थी। हाथोंमें अनेक प्रकारके शस्त्र थे। वीरभद्र हाथ जोड़कर बोले—हे प्रभो! आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ? भूतनाथने कहा—हे वीरभद्र! तुम भय मत करो। तुम्हें यज्ञके साथ दक्षका विनाश करना होगा। शिवकी आज्ञा सुनकर वीरभद्रने भगवान भवको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। अन्य सभी पार्षद भी बारबार सिंहनाद करते हुए वीरभद्रके साथ हो लिये। उनके चलनेसे इतनी धूलि उड़ी कि अंधेरा छा गया। वायुका प्रबल वेग देखकर सबने सोचा कि अब प्रलयकाल उपस्थित हो गया है। दक्षकी सभी स्त्रियाँ व्याकुल होकर कहने लगीं कि दक्षने अपनी कन्या सतीका अपमान किया है, उसके ही फलस्वरूप यह उत्पात हो रहे हैं। दक्षने केवल सतीका ही अपमान किया है, ऐसी बात नहीं हैं। बल्कि उन्होंने शंकरकी भी निन्दा की है और उनका तिरस्कार किया है। उन्हीं पापोंका फल यह सब प्रकट हो रहा है। सब लोग इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगे। ऐसे ही समय एकाएक आकाश और पृथ्वीमें हजारों उत्पात होने लगे। इन भयानक उत्पातोंको देखकर दक्षके भी चित्तमें भय उत्पन्न हुआ। हे विदुर! इतनेमें खर्व आकृतिवाले रुद्रके अनुचरोंने अस्त्र-शस्त्र लिये चारों ओरसे आकर यज्ञशाला, दक्षका मकान आदि सभी स्थानोंको घेर लिया और यज्ञमण्डप घर-द्वार आदि तोड़ना प्रारम्भ किया। चारों ओर लोग हाहाकार करते हुए भागने लगे

और रुद्रके अनुचर उनको पकड़-पकड़कर मारने लगे। मणिमान नामक रुद्रगणने आचार्य भृगुको, वीरभद्रने यजमान दक्ष प्रजापतिको, चण्डीशने सूर्यदेवको और नन्दीशने भगदेवको पकड़कर बाँध लिया। भृगुने महादेवका उपहास किया था। इस कारण वीरभद्रने उनकी दाढ़ी पकड़कर उसे उखाड़ना शुरू किया। फिर भगदेवको जमीनपर पटककर उनकी दोनों आँखें निकाल लीं। जब दक्ष शिवकी निन्दा कर रहे थे, तब पूषा दाँत निकालकर हँसे थे। इसलिए उनके दाँत उन्होंने तोड़ डाले। फिर वीरभद्र दक्षको पटककर उनकी छातीपर चढ़ बैठे और तलवारसे उसका सिर काटने लगे, किन्तु न काट सके। यह देखकर वीरभद्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे इस सम्बन्धमें सोचने लगे। इसके बाद उन्होंने यज्ञस्थलसे पशुवध करनेवाला हथियार उठाकर उसीसे प्रहार किया तो चोट लगते ही सिर धड़से अलग हो गया। यह देखकर भूत-प्रेत और पिशाचगण नाचने लगे। उनके आनन्दका कोई ठिकाना नहीं रहा। इसके बाद वीरभद्रने दक्षका कटा सिर यज्ञकुण्डमें पूर्णाहुति स्वरूप डालकर जला दिया और सैनिकोंके साथ कैलास पर्वतको लौट गये।

षष्ठ अध्याय

ब्रह्मा द्वारा भगवान शंकरको सान्त्वना प्रदान

मैत्रेयजी बोले—शिवजीकी सेनाने देवताओंको विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे मार-मारकर जब घायल कर दिया तब वे पराजित और भयभीत होकर सभ्यगण और पुरोहितोंके साथ ब्रह्माजीके पास गये

और उनसे दक्षयज्ञका सब वृत्तान्त कह सुनाया। ब्रह्मा और विष्णु पहलेसे ही जान गये थे कि दक्षके यज्ञकी क्या दशा होनेवाली है। इस कारण वे दोनों ही दक्षके यज्ञमें नहीं आये थे। देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—हे देवगण! भगवान शंकर यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी हैं। किन्तु तुम लोगोंने उनको भाग न देकर बड़ा भारी अपराध किया है। तुम लोग उनके पास जाओ और उनके चरणोंपर गिरकर उन्हें प्रसन्न करो और उनसे क्षमा माँगो। वे आशुतोष हैं और शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। तुम लोगोंकी प्रार्थनासे वे अवश्य प्रसन्न हो जायँगे। ऐसा करके उस यज्ञका पुनरुद्धार करो। अपनी प्रियतमाके वियोगसे वे बहुत दुखी हैं। शीघ्र जाकर उन्हें प्रसन्न न करनेसे वे अत्यन्त कोप करेंगे। तुम लोगोंके दुर्वचनसे उनका हृदय व्यथित हो गया है। भगवान ब्रह्माके आदेशसे देवता लोग ब्रह्माजीके साथ ही महेशके वासस्थान कैलास पर्वतको गये। उस पर्वतपर ओषधि, तपस्या, मन्त्र और योग आदि उपायोंसे सिद्धिको प्राप्त देवता, अप्सराएँ, गन्धर्व और किन्नरगण सदा उनकी सेवा करते हैं। पर्वतके चारों तरफ गंगा नदी बहा करती हैं। फल-फूलोंसे सुशोभित वह परम रमणीय स्थान देखकर देवता लोग चकित हो गये। इसके बाद वहाँपर देवताओंने कुबेरकी अलकापुरी और सौगन्धिक वन देखा। अलकाके बाहर दोनों तरफ नन्दा और अलकनन्दा नामक दो नदियाँ बहती हैं। भगवान श्रीहरिके चरणकमलकी रजसे वे परम पवित्र तीर्थस्थानके रूपमें परिणत हो गयी हैं। उन नदियोंमें देवताओंकी स्त्रियाँ स्नान और जलक्रीड़ा करती हैं। कुबेरकी पुरीको पार करके देवताओंने

परम आनन्दित होकर सौगन्धिक वन देखा। वहाँ उन लोगोंने एक प्रकाण्ड वृक्ष देखा। उसकी उँचाई एक सौ योजनकी थी। उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजन चारों ओर फैली हुई थीं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि उस वृक्षपर एक भी पक्षीका घोंसला नहीं था। उसके नीचे पहुँचकर देवताओंने देखा कि भगवान पशुपति बैठे हुए हैं। देखनेसे प्रतीत होता है कि उनका क्रोध शान्त हो चुका है। चारों तरफ सनक-सनन्दन आदि महासिद्ध ऋषिगण और यक्षराक्षसोंके स्वामी कुबेरजी शिवकी उपासना कर रहे हैं। उस समय शंकरजी लोककल्याणार्थ तपस्यामें लगे हुए हैं। इस कारण उनके अंगकी शोभा सन्ध्याकालीन मेघकी प्रभाकी भाँति रक्तवर्णकी थी। भस्म दण्ड जटा बाघम्बर और सिरपर चन्द्रमाकी कला धारण किये हुए थे। वे कुशासनपर बैठे थे। देवर्षि नारद ब्रह्मज्ञानविषयक प्रश्न कर रहे थे और शिवजी ब्रह्मज्ञानका उपदेश दे रहे थे। गलेमें अक्षमाला पड़ी थी। पैरपर पैर रखकर वीरासनसे बैठे थे। योगपट्टका सहारा लिये एकाग्रमनसे ब्रह्मानन्दका अनुभव करते हुए समाधिका अवलम्बन किये हुए थे। अतएव लोकपालसहित सब मुनि उनके निकट गये। तदनन्तर उनके चरणोंमें गिर तथा हाथ जोड़कर उन आदि भगवानको प्रणाम किया। ब्रह्माजी और सभी सुर-असुर झुककर वन्दना कर रहे हैं, यह जानकर शंकरजी उठ खड़े हुए और स्वयं जगत्पूज्य होकर भी उन्होंने ब्रह्माको प्रणाम किया। ब्रह्माजी भगवान शंकरके प्रणाम करनेपर हँसते हुए उनसे कहने लगे—हे भगवन्! यद्यपि आप साधारण लोगोंकी तरह मुझे नमस्कार कर रहे हैं,

तथापि मैं आपकी शक्तिसे परिचित हूँ। आप ही इस जगत्के ईश्वर हैं। हे प्रभो! आप ही यज्ञोंके फलदाता हैं। इन कुबुद्धि यजमानोंने आपको यज्ञका भाग नहीं दिया। अतएव आपके द्वारा दक्ष प्रजापतिका यज्ञ नष्ट हो गया। अब अनुग्रह करके उस यज्ञका उद्धार कीजिये। यजमान दक्ष फिर जी उठे। भगदेवको फिर अपनी आँखें मिल जायँ। भृगुकी दाढ़ी और पूषाके दाँत फिर जैसेके तैसे हो जायँ। हे प्रभो! आपके अनुचरों द्वारा अनेक देवताओं और पुरोहितोंके अंगभंग हुए हैं। वे सब भी आपके अनुग्रहसे पहलेकी ही भाँति ठीक हो जायँ। हे रुद्र! जो कुछ यज्ञमें बचा हुआ है, सो आपका भाग है। वह भाग ग्रहण करके आप उस यज्ञका उद्धार कीजिये।

—०—

सप्तम अध्याय

दक्ष शिव आदिकी स्तुतिसे भगवान विष्णुका आविर्भाव और
विष्णु द्वारा पुनः दक्षयज्ञका अनुष्ठान

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्माकी प्रार्थना और स्तुति सुनकर भगवान शंकर प्रसन्न हुए और हँसते हुए उन्होंने ब्रह्मासे जो कुछ कहा वह कहता हूँ, तुम सुनो। महादेवजी बोले—हे ब्रह्मा! मैं मन्दबुद्धिवालोंका अपराध न तो कहता हूँ और न उसके लिए किसी तरहकी चिन्ता ही करता हूँ। मैंने तो देवमायासे मोहित लोगोंको थोड़ा-सा दण्ड दिया है। आप इन लोगोंका अपराध क्षमा करनेकी बात कह रहे हैं। यह अच्छी बात है। प्रजापति दक्षका जो सिर कट गया है, उसके बदलेमें बकरेका सिर जोड़

दिया जायगा। भृगुकी दाढ़ी फिर ठीक हो जायगी। दूसरे जिन लोगोंका अंगभंग हुआ है, वे भी पूर्वकी भाँति अच्छे हो जायँगे। मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर! महादेवकी बात सुनकर सभी लोग साधु-साधु कहने लगे। इसके बाद शिवजी ब्रह्माजीके साथ यज्ञ-स्थलपर गये। भगवान शंकरने जैसा कहा था, उसके अनुसार सभीके अंग-प्रत्यंग जोड़ दिये और दक्षके सिरकी जगह बकरेका सिर जोड़ दिया गया।,सिर जुड़ते ही दक्षने नींदसे जागें पुरुषकी भाँति उठकर सामने शिवजीको देखा। शिवजीके दर्शनसे दक्षकी आत्मा निर्मल और शुद्ध हो गयी और उन्होंने शिवजीकी स्तुति करनेकी इच्छा की। किन्तु अपनी कन्याकी मृत्युकी बात स्मरण हो जानेसे शोकमें पड़ गये और अपनी इच्छा पूरी न कर सके। उन्होंने अपना अपराध स्वीकारकर क्षमा याचना की। मैत्रेयने कहा—हे विदुर! प्रजापति दक्षने भगवान शंकरसे अपराध क्षमा करा और ब्रह्माजीसे आज्ञा लेकर पुनः यज्ञ आरम्भ किया तब भगवान श्रीहरि प्रगट हुए। विष्णुके आगमनसे ब्रह्मा आदि देवता और मुनिगण सभी सन्तुष्ट हुए और स्तुति करने लगे। मैत्रेयने कहा—हे वत्स विदुर! भगवान विष्णुके आदेशसे प्रजापति दक्षने सबकी पूजा की और सभीको यज्ञभाग देकर यज्ञ पूरा किया। दक्षको धर्मसम्बन्धी उपदेश दे और सब कर्म समाप्त करके देवता लोग स्वर्गको चले गये। हे विदुर! हम लोगोंने सुना है कि दक्षकन्या सतीने अपना पहलेका शरीर त्याग करके हिमवान-की स्त्री मेनाके गर्भसे जन्म लिया और उन्होंने तप द्वारा पुनः महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त किया। हे विदुर! परमपवित्र दक्षयज्ञ-

की इस कथाको जो लोग सुनते हैं, उनका सब पाप नष्ट हो जाता है। जो लोग इस कथाको सुनकर कीर्तन करते हैं उन्हें संसारमें कोई कष्ट नहीं होता।

अष्टम अध्याय

ध्रुवकी तपस्यां

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! अब मैं अन्यान्य मनु-कन्याओंका वंश वर्णन करता हूं, सुनो। सनकादि चार ऋषि नारद, ऋभु, हंस, अरुण और यति इन नौ ब्रह्माके पुत्रोंने विवाह ही नहीं किया और सदा बालब्रह्मचारी बने रहे। इस कारण इनका वंश नहीं चला। हे विदुर! ब्रह्माका पुत्र अधर्म भी है। उसकी स्त्री मिथ्या हुई। मिथ्यासे माया नामकी कन्या और दम्भनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अधर्मके अंशसे उत्पन्न होनेके कारण इन भाई-बहिनोंमें विवाह हो गया। इन दोनोंसे लाभ नामक पुत्र और शठता नामकी कन्या उत्पन्न हुई। इन्होंने भी परस्पर विवाह किया। इनके क्रोधनामक पुत्र और हिंसानामक कन्या उत्पन्न हुई। क्रोधसे कलिनामक पुत्र और दुरुक्ति नामकी कन्या उत्पन्न हुई। हे सत्तम! कलिके वीर्य और दुरुक्तिके गर्भसे भीति नामक कन्या और मृत्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन दोनोंमें भी परस्पर विवाह हुआ। तुमसे मैंने अधर्मके वंशका वर्णन किया। जो कोई इस अधर्मवंशकी कथा सुनता है, उसके चित्तका मल दूर हो जाता है। हे विदुर! अब मैं स्वायम्भुव मनुके पुत्रोंके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनो। स्वायम्भुव मनुके वीर्य और शतरूपाके गर्भसे

भगवान वासुदेवके अंशस्वरूप प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। दोनों पुत्र जगत्‌की रक्षा करनेमें लगे रहे। उत्तानपाद राजाके सुनीति और सुरुचि नामक दो रानियाँ थीं। सुनीतिके पुत्रका नाम ध्रुव था। उत्तानपादको सुरुचि बहुत प्यारी थी। उनका सुनीतिपर उतना प्रेम नहीं था। एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लेकर खेला रहे थे। इतनेमें ध्रुव भी आ गये और पिताकी गोदमें चढ़ने लगे, किन्तु राजा सुरुचिके भयसे उसे गोदमें नहीं ले सके। गोदमें लेनेकी बात तो दूर रही, बातचीतसे भी उन्होंने ध्रुवका आदर नहीं किया। उस समय सुरुचि राजाके पास खड़ी थी। इस तरह गोदमें चढ़नेका उपक्रम देखकर वह सौतके पुत्र ध्रुवसे इस प्रकार हिंसासे भरे वचन कहने लगी—अरे ध्रुव! तू राजपुत्र तो हो सकता है, किंतु राजाकी गोद वा राज्यासनपर बैठनेके योग्य नहीं है। क्योंकि तुझे मैंने अपने गर्भमें धारण नहीं किया। इस तरह तिरस्कृत होनेपर ध्रुव रोते-रोते अपनी माताके पास गये। सुनीतिने ध्रुवको गोदमें उठा लिया। लोगोंके मुँहसे सौतके आचरणकी बातें सुनकर उसका हृदय व्यथित हो गया। सुनीति बार-बार लम्बी साँसें खींच और खेद प्रकट करके पुत्रसे कहने लगी—तुम्हारी सौतेली माँने जो कुछ कहा है वह ठीक ही है। तुम्हें यदि उत्तमके समान राज्यासन पानेकी इच्छा हो तो भगवान श्रीहरिके चरणकमलकी आराधना करो। माताकी बात सुनकर ध्रुव अपने मनको संयत करके पिताके गृहसे निकल पड़े। नारदजी अपने योगबलसे यह सब हाल जान गये और ध्रुवके पास जाकर समझाने लगे। देवर्षि

नारदकी बातें सुनकर कृतज्ञता प्रकट करते हुए ध्रुवने कहा—हे भगवन् ! मैं घोर क्षत्रियस्वभावके वशमें हूँ। अतएव किसीकी सीख माननेमें असमर्थ हूँ। सौतेली माँके दुर्वचनसे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। हे प्रभो ! मैं जगत्का सर्वोत्तम पद पानेकी इच्छा करता हूँ। आप अनुग्रह करके उसके लिए रास्ता बताइये। आप ब्रह्माके पुत्र और परम भागवत हैं। वीणा बजाते हुए सर्वत्र घूमते रहते हैं। मुझपर आप दया कीजिये। नारदजी बोले—हे वत्स ! तुम्हारी माताने जो उपदेश दिया है, वही तुम्हारे लिए सिद्धिका मार्ग है। तुम भगवान वासुदेवकी आराधना करो। ऐसा करोगे तो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। नारदमुनिने वासुदेवके रूपका वर्णन करते हुए कहा—हे राजनन्दन ! उन भगवानकी आराधना करनेका गुह्य मंत्र भी तुम्हें बता रहा हूं, सुनो। 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह बारह अक्षरोंका मंत्र है। इसी मंत्र द्वारा शान्त चित्त होकर पवित्र जल, माला, फलफूल, मूल, तुलसी आदिसे हरिकी पूजा, उनका ध्यान और जप करना चाहिये। जो लोग मुक्ति पाना चाहते हों उन्हें चाहिये कि इन्द्रियोंकी आसक्ति छोड़कर भक्तियोगके अवलम्बनसे एकाग्रतापूर्वक हरिका भजन करें। ऐसा करनेसे सद्यः मुक्ति प्राप्त होती है। देवर्षि नारदका उपदेश सुनकर राजकुमार ध्रुवने नारदकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। ध्रुवजी उनसे विदा होकर पुण्यधाम मधुवनको गये और नारदजी वहाँसे राजा उत्तानपादके राजभवनमें जा पहुँचे। राजाने उनकी अभ्यर्थना की और आदर-सत्कार करके अर्घ्य आदि प्रदानपूर्वक बैठनेके लिए आसन दिया। देवर्षि आसनपर बैठे तो राजाको

उदास देखकर उन्होंने पूछा—हे राजन् ! तुम उदास क्यों हो और क्या सोच रहे हो ? राजाने अपने पुत्रके वनगमनकी दुःखभरी कथा सुनायी। राजाको कातर देखर देवर्षिने दयापूर्वक उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे राजन् ! सोच मत करो। तुम्हारा पुत्र ध्रुव अपना कठिन कार्य पूरा करके शीघ्र ही आकर तुमसे मिलेगा और उसके द्वारा तुम्हारा यश पृथ्वीमें फैलेगा। नारदकी बात सुनकर राजा राज-कार्यतक त्यागकर दिन-रात पुत्रकी ही चिन्ता करने लगे। इधर ध्रुवजीने मधुवनमें पहुँचकर वहाँके तीर्थमें स्नान किया और उस रातको उपवास करके व्रत रखा। उसके बाद नारदके उपदेशानुसार भगवानकी आराधना करने लगे। ध्रुवने तीन-तीन दिनके बाद केवल कैथ और बेरके फल खाकर शरीरका पालन करते हुए हरिकी सेवामें पहला महीना बिताया। फिर नवें-नवें दिन केवल जल पीकर हरिके ध्यानमें तीसरा महीना बिताया। इसके बाद बारहवें-बारहवें दिन केवल वायु पीकर प्राणायाम द्वारा हरिकी आराधना करते हुए चौथा महीना बिताया। इस प्रकार चार महीने बीत गये। पाँचवें महीनेमें राजकुमार ध्रुव श्वासको रोककर एक पैरसे खम्भेके समान निश्चल खड़े होकर हृदयमें ब्रह्मका ध्यान करने लगे। उस समय ध्रुवको भगवानके रूपके सिवा और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा। जब एक पैरपर खड़े होकर ध्रुव तपस्या करने लगे तब पृथ्वी काँपने लगी और उनके भारसे पृथ्वी झुक पड़ी। ध्रुवकी तपस्यासे देवता लोग डर गये। वे अपना कष्ट दूर करानेकी प्रार्थना करनेके लिए भक्त-भयभंजन श्रीहरिकी शरणमें गये। भगवान्‌ने देवताओंको

सम्बोधित करते हुए कहा—तुम लोग डरो नहीं। मैं उस उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुवको तपस्यासे विरत करता हूँ। वह मेरा ही ध्यान कर रहा है।

—०—

नवम अध्याय

भगवानकी आराधनासे ध्रुवको वरलाभ और पितृराज्यपालन

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! भगवानके वाक्य सुनकर देवताओंका भय दूर हो गया और वे भगवानको प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। इसके बाद सहस्र सिरवाले भगवान भी गरुड़पर चढ़कर मधुवनको गये। जिस समय भगवान ध्रुवके सामने पहुँचे, उस समय ध्रुव अपनी अटल समाधिमें उनका ही ध्यान कर रहे थे। इस कारण उन्हें देख न सके। फिर भगवानने ध्रुवका चित्त आकर्षित किया तो वे आँखें खोल और भगवानका दर्शन करके स्तुति करने लगे। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! भक्तवत्सल भगवानने ध्रुवकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कहा—हे क्षत्रिय बालक! तुम्हारे मनकी बात मैं जान गया हूँ। मैं तुमको वह पद देता हूँ, जिसे आजतक किसीने नहीं पाया। वह लोक परमप्रकाशयुक्त है। उसीके आश्रयसे पृथ्वी घूम रही है। स्वर्ग, मर्त्य और पातालके नष्ट होनेपर भी उस स्थानका कभी नाश नहीं होता। वहाँ धर्म, अग्नि, कश्यप, इन्द्र और सप्तर्षि मण्डल तारागणके साथ निरन्तर उस स्थानकी प्रदक्षिणा करते हुए घूम रहे हैं। हे ध्रुव! राज्यका भोग करके अन्तमें तुम उसी स्थानको पाओगे। सम्प्रति

तुमको राज्य देकर तुम्हारे पिता वनको चले जायँगे। तब राजसिंहासनपर बैठकर तुम छत्तीस हजार वर्षतक राज्य करोगे। उतने समय तक तुम्हारा हृदय मेरी कृपासे विषयभोगमें किंचित् भी लिप्त न होगा। हे वत्स! तुम्हारी सौतेली माँ सुरुचि सदा तुमसे द्वेष करती थी। यद्यपि प्रतिहिंसाकी इच्छा मेरी नहीं है। तथापि तुम मेरे भक्त हो। मेरे भक्तसे द्वेष करनेका उसे यह फल मिलेगा कि तुम्हारा भाई उत्तम वनमें शिकार खेलने जायगा और वहाँ एक यक्षके हाथसे उसकी मृत्यु होगी। उत्तमकी माता सुरुचि पुत्रकी खोजमें वनको जायगी और वहाँ वनमें लगे दावानलमें पड़कर वह भी जल मरेगी। तुम राज्यभोग करते हुए अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करके मेरी पूजा करोगे। अन्तमें मेरा स्मरण करके ध्रुवलोकको जाओगे। वहाँ पहुँचकर फिर इस संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता। यह बात कहकर भगवान चले गये और ध्रुव भी वर पाकर पिताके घर लौट गये। इतनी कथा सुनकर विदुरने मैत्रेयसे पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान्के दर्शन पाकर भी ध्रुवने मुक्तिकी प्रार्थना क्यों नहीं की? मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! सौतेली माँके कटु वचन स्मरण करके उन्होंने मुक्तिकी इच्छा नहीं की। इसके लिए उन्होंने अत्यधिक खेद किया था। अब मैं यथार्थ कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो। राजा उत्तानपादको जब समाचार मिला कि ध्रुवजी लौटकर आ रहे हैं तो नारदके वाक्यका स्मरण करके उनको इस समाचारमें विश्वास हुआ। जिस दूतने यह समाचार सुनाया था, उसे उन्होंने पुरस्कार दिया। राजा पुत्रको देखनेके लिए चले तो आनन्दसूचक मंगलमय बाजे बजने लगे। सुनीति

और सुरुचि सोनेके गहने पहिने पालकीपर बैठकर चलीं। इस प्रकार अपनी दोनों रानियों और अन्य इष्टमित्र तथा मंत्रिगणके साथ महासमारोहसे वे पुत्रसे मिलनेके लिए चले। ध्रुवको आते देखकर राजा शीघ्रतासे पैदल ही चलकर पुत्रके पास गये और उन्होंने पुत्रको गलेसे लगा लिया। ध्रुवको पाकर राजाके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। ध्रुवने पहले पिताके दोनों पैर छूकर प्रणाम किया। फिर अपनी दोनों माताओंको प्रणाम किया। सुरुचिने ध्रुव पुत्रको दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद दिया। उत्तम और ध्रुव दोनों भाई प्रेमपूर्वक मिले। आत्मीय स्वजनोंके साथ सम्भाषण आदिसे सभी आनन्दित हुए। पुरवासी और अन्य सभी लोग ध्रुवकी प्रशंसा करने लगे। बादको ध्रुवने भाईके साथ हाथीपर सवार होकर पुरमें प्रवेश किया। सब लोग ध्रुवकी स्तुति करने लगे। ध्रुवके आगमनोपलक्ष्यमें सारी पुरी चारों तरफ मंगलसूचक वस्तुओंसे सजायी गयी थी। पतिव्रता रमणियाँ ध्रुवको देखकर आशीर्वाद देने लगीं। वे सफेद सरसों, अक्षत, दही, जल, दूब, फूल, फल आदि उनपर बरसाकर बड़े प्रेमसे जय जयकार कर रही थीं। नृत्य-गीत आदिसे महाउत्सव होने लगा। राजा उत्तानपादने जब देखा कि ध्रुव प्रभावशाली हो गये हैं, तब अपने राज्यका भार उनको सौंप दिया। राजा अपनी वृद्धावस्थाके कारण मृत्यु निकट समझकर सांसारिक विषयोंसे विरक्त हो गये और अपनी सद्गतिकी इच्छासे वैराग्य धारण करके तप करनेके लिए वनको चले गये।

दशम अध्याय

ध्रुवके पराक्रमका वर्णन

मैत्रेयजी बोले—ध्रुवने राजा होकर कुछ दिन बाद प्रजापति शिशुमारकी कन्या भ्रमिसे विवाह किया। उसके गर्भसे कल्प और वत्सरनामक दो पुत्र जनमे। ध्रुवने अपनी दूसरी स्त्री वायुकी कन्या इलाके गर्भसे उत्कलनामक एक पुत्र और परम रूपवती एक कन्या उत्पन्न किया। ध्रुवके भाई उत्तमका विवाह नहीं हुआ था। उसी दशामें एक दिन वह मृगया करनेके लिए वनको गया और वहीं एक बलवान् किन्नरने उसे मार डाला। उत्तमकी माता सुरुचि उसे ढूँढ़नेके लिए गयी और वह भी दावानलमें जलकर मर गयी। ध्रुवने जब किन्नरके हाथसे अपने भाईके मारे जानेका वृत्तान्त सुना तब वे क्रोध और शोकसे अधीर हो रथपर सवार होकर किन्नरका वध करनेके लिए अलकापुरीको गये। उन्होंने उत्तरदिशामें जाकर हिमालयके पास शिवके अनुचर भूतों और गुह्यकोंसे परिपूर्ण एक पुरी देखी। उस पुरीके पास पहुँचकर अपना शंख बजाया। उस घोर शब्दको सुनकर यक्षोंकी स्त्रियाँ डर गयीं। उस शब्दको यक्षगण न सह सके और अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर समक्ष आ डटे। ध्रुवने उन्हें देख और बाण चलाकर सबको मार डाला। सिद्धगण ध्रुवका युद्ध देखकर स्वर्गसे हाहाकार करने लगे कि हा! यह मनु वंशका सूर्यसदृश तेजस्वी बालक यक्षसेनारूपी सागरमें डूबकर नष्ट न हो जाय। इसके बाद यक्षगण 'हम युद्धमें जीत गये—जीत गये' कहकर ध्रुवके रथपर चढ़ गये। किन्तु ध्रुवने सबका नाश कर डाला और किसीको भी न देखकर विपक्षियोंकी

पुरी देखनेकी इच्छा रहते भी उसमें प्रवेश नहीं किया। क्योंकि मायावियोंकी मायाका पता मनुष्योंको नहीं लगता। मनमें वे ऐसी ही आशंका कर रहे थे कि इसी समय मेघगर्जनकी भाँति उन्हें घोर गर्जनका शब्द सुनाई पड़ा। उस समय हवाके वेगसे चारों दिशाएँ धूलिसे भर गयीं और अँधेरा छा गया। मेघमें बिजली चमकने लगी और भयानक वज्राघातके शब्द सुनाई देने लगे। हे विदुर! इसके बाद ही ध्रुवके सामने रक्त, पीब, विष्ठा, मूत्र और कटे हुए मुण्डके शरीर अर्थात् कबन्ध गिरने लगे। फिर आकाशमें बृहत् आकारका पर्वतकी भाँति कुछ दिखाई पड़ा। फिर उससे पत्थर और अस्त्र-शस्त्रकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर भयंकर साँस खींचते और क्रोधके मारे आँखोंसे आग उगलते हुए घोर सर्प अपनी ओर आते देख पड़े। सिंह, बाघ और हाथी सभी उन्मत्त होकर झुण्डके झुण्ड आते हुए दिखाई दिये। समुद्र उमड़ उठा। चारों तरफ बाढ़ आ गयी। कल्पान्तकी भाँति भयंकर शब्द होने लगे। इस तरहकी आसुरी मायाका विस्तार देखकर ऋषिगण ध्रुवके पास जाकर लोककल्याणके लिए प्रार्थना करने लगे—हे उत्तानपादतनय! भगवान विष्णु तुम्हारे विपक्षियोंका नाश करें। हे वत्स! भगवानके नामका स्मरण करनेसे यमके कराल ग्राससे भी परम सुखपूर्वक निस्तार पाया जा सकता है।

एकादश अध्याय

स्वायम्भुव मनुका आगमन और तत्त्वज्ञानके उपदेश देकर ध्रुवको युद्धसे निवृत्त करना

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! ऋषियोंके उपदेशसे ध्रुवने आचमनकर शुद्ध हो धनुषपर भयंकर नारायण अस्त्रका सन्धान किया। जिससे तुरत ही यक्षनिर्मित सभी मायाएँ नष्ट हो गयीं। बादको ध्रुवने निरपराध यक्षोंका प्राणवध करना आरम्भ किया। यह देखकर पितामह मनुके मनमें दया उत्पन्न हुई। मुनियोंके साथ वे ध्रुवके पास जाकर उपदेश देने लगे। मनुजीने कहा—हे वत्स ! अत्यन्त क्रोध महापाप है और वही नरक जानेका मार्ग है। इस कारण क्रोध त्याग दो। अब इसकी आवश्यकता नहीं है। क्रोधके ही वश होकर तुमने इतने निरपराध यक्षोंका वध किया है। थोड़ेसे अपराधपर तुमने यह महाअनर्थ कर डाला। यह कर्म हमारे कुलके योग्य नहीं है। सज्जन लोग ऐसे कुकर्मकी निन्दा करते हैं। हे वत्स ! इनमेंसे किसी एकने तुम्हारे भाईको मारा होगा। किन्तु सबने अपराध नहीं किया है। एकके अपराधसे तुमने इतने अधिक लोगोंका प्राण ले लिया। देहाभिमानी होकर पशुओंकी भाँति परस्पर मारकाट करके मरना भगवान विष्णुके भक्त साधुजनोंका कर्तव्य नहीं है। यक्षोंका अपराध रहनेपर भी ऐसा करना उचित नहीं है। हे वत्स ! लड़कपनमें तुम साधु थे। भगवान हरिकी आराधना करके तुमने परमपद पाया है। महान व्यक्ति सभी प्राणियोंको समभावसे देखते हैं। इसीसे भगवान भी प्रसन्न होते हैं। हे वत्स ! तुम यदि आत्मतत्त्वका विचार करके देखोगे तो जान

सकोगे कि तुम्हारा भाई कोई नहीं था और उसको किसीने मारा भी नहीं है। पाँच तत्त्वोंसे स्त्री और पुरुषका शरीर बनता है। स्त्री-पुरुषके परस्पर संयोगसे ही अन्य स्त्री और पुरुषकी उत्पत्ति होती है। हे वत्स! इसी प्रकार परमात्माकी मायाके द्वारा सत्त्वादि गुणोंके व्यवहारसे देहादिकी उत्पत्ति (सृष्टि) देहादिरूपमें अवस्थिति (पालन) और देहनाशादि (संहार) कार्य होते रहते हैं। यह सब परमात्माकी माया और गुणोंके पारस्परिक सम्बन्धसे ही होता है, स्वतः ऐसा नहीं होता। हे वत्स! सत्त्वादि गुण ही सृष्टिके कारण हैं। इस सम्बन्धमें सन्देह मत करना। कर्म, स्वभाव, काल, दैव और वासना आदिके सम्बन्धमें अनेक व्यक्ति अनेक प्रकारकी बातें कहते हैं। किन्तु हे तात! भगवान अव्यक्त, अप्रमेय और अशेष हैं। उन्हींसे जगत् और जगत्के कार्य होते हैं। उनको कौन जान सकता है। अतएव हे तात! ये सब यक्ष तुम्हारे भाईके हत्यारे नहीं हैं। पुरुषकी सृष्टि और संहारका कारण ईश्वर ही है। ईश्वरके अतिरिक्त ये दोनों कर्म और किसीसे भी नहीं हो सकते। उस सृष्टि, पालन और संहारकर्ताको अहंकार नहीं है। अतएव हे वत्स! तुम अहंकार छोड़कर ईश्वरकी शरणमें जाओ। क्रोध छोड़ दो। तुम्हारा मंगल होगा। जो लोग अभय चाहते हैं, उनपर क्रोध करना उचित नहीं है। हे वत्स! यक्षपति कुबेर भगवान् शंकरके भाई हैं। तुमने उनकी अवज्ञा की है। क्योंकि अपने भाईके हत्यारे समझकर क्रोधके आवेशमें तुमने बहुतसे यक्षोंको मार डाला है। तुम शीघ्र जाकर उनको प्रणाम करो और नम्र वचनोंसे उनको प्रसन्न करो। इतनी बातें कहकर मैत्रेयने विदुर-

को सम्बोधित करते हुए कहा—हे वत्स ! इस प्रकार स्वायम्भुव मनु अपने पौत्र ध्रुवको उपदेश देकर ऋषियोंके साथ अपने आश्रमको चले गये।

द्वादश अध्याय

ध्रुवका यज्ञानुष्ठान और हरिधामयात्रा

मैत्रेयजी बोले—जब कुबेरजीने सुना कि पितामहके कहनेसे ध्रुवजीका क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षोंके वधसे निवृत्त हो गये हैं। तब चारण-यक्ष-किन्नरगण कृत अपनी स्तुति सुनते हुए वे ध्रुवके पास गये और हाथ जोड़कर नम्रभावसे खड़े ध्रुवसे कहने लगे—हे क्षत्रियसन्तान ! तुमने अपने पितामहके कहनेसे शत्रुता छोड़ दी, इससे मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। देखो, परस्पर शत्रुता करनेका कुछ भी कारण नहीं है। जो यक्ष मारे गये हैं, उनको तुमने नहीं मारा है और तुम्हारे भाईको भी यक्षोंने नहीं मारा था। क्योंकि काल ही जीवोंके जन्म-मरणका कारण है। तुम और मैं यह सब भेदबुद्धि मिथ्या है। सुख-दुःख बुद्धिका अनुभवमात्र है। अब तुम अपने पुरको जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने कल्याणके लिए भगवान श्रीहरिको भजो। भगवान पद्मनाभके पादपद्मोंके पास रहनेके लिए वर माँगो। क्योंकि वर पानेके लिए तुम उपयुक्त पात्र हो। मैत्रेयजीने कहा—हे वत्स विदुर ! जब कुबेरजीने इस प्रकार वर माँगनेके लिए कहा, तब ध्रुवने उनसे श्रीहरिमें अचला भक्ति बनी रहनेका वर माँगा। कुबेरजी तथास्तु कहकर ध्रुवके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। इसके बाद ध्रुव अपने

घर गये। ध्रुवजीने यज्ञादिके अनुष्ठानसे पापोंका और भोगसे पुण्यका नाश करते हुए छत्तीस हजार वर्षतक पृथ्वी-मण्डलका शासन किया। बहुत कालतक राज्यसुख भोग करनेके बाद वैराग्य होनेपर ध्रुवजीने अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर सर्वस्व छोड़ दिया। वे तब अकेले तप करनेके लिए बद्रिकाश्रमको चले गये। ध्रुवजी जब भगवानकी भक्तिमें लीन रहने लगे तो आनन्दरससे उनका हृदय आर्द्र हो गया। ऐसी अवस्थामें ध्रुवने पुलकित होकर देखा कि एक रथ आकाशसे पृथ्वीपर उतर रहा है। उस रथकी शोभा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति थी। इसके बाद ध्रुवने देखा कि उस विमानमें दो देवता खड़े हैं। वे अलंकारोंसे भूषित हैं। उनका श्यामवर्ण है और चार भुजाएँ हैं तथा किशोर अवस्था है। इनको भगवानके किंकर जानकर ध्रुवजी अभ्यर्थनाके लिए उठ खड़े हुए। शीघ्रता और सम्भ्रमके कारण ठीक तौरसे उनकी पूजा करनेका ध्यान भी नहीं रहा और उन्होंने केवल हाथ जोड़कर भगवानका नामोच्चारण भर करते हुए उनको प्रणाम किया। हे वत्स विदुर! उन दोनोंका नाम सुनन्द और नन्द था। वे दोनों भगवानके परम प्रेम पात्र थे। परम भागवत ध्रुवको हाथ जोड़कर खड़े देखकर उन लोगोंने हँसते हुए कहा—हे राजन्! तुम्हारे पुण्यकी सीमा नहीं है। तुमने पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तपस्या करके भगवान विष्णुको प्रसन्न किया था। हम लोग उन्हीं भगवानके पार्षद हैं। उनकी आज्ञासे तुमको इसी देहसे हरिधाममें ले जानेके लिए आये हैं। तुमने दुर्गम विष्णुपदको पा लिया है। महातपस्वी सप्तर्षि भी वहाँ नहीं जा सकते। वे नीचे रहकर उस धामका केवल

दर्शन करते हैं। चन्द्र-सूर्य आदि ग्रह नक्षत्र और तारागण सब उस धामकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। उसी स्थानमें तुम रहोगे। तुम वहीं चलो। हे राजन्! तुम्हारे पूर्वज और अन्यान्य पुण्यात्मा लोग भी कभी उस स्थानको नहीं पा सके थे। तुम भगवान हरिके भेजे हुए इस श्रेष्ठ विमानपर सशरीर चढ़ जाओ। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! ध्रुव उस विमानपर चढ़कर चल पड़े। जाते समय उन्हें अपनी माता सुनीतिका स्मरण हो आया और उसकी चिन्ता करने लगे। ध्रुवकी इस चिन्ताको हरिके पार्षद जान गये। उन्होंने विमानपर बैठी और स्वर्गको जाती हुई उनकी माता सुनीतिको दिखाया। जिससे ध्रुवजी प्रसन्न हो गये। उस समय दुन्दुभि आदिकी ध्वनि होने लगी। देवताओं द्वारा फूल बरसाये जाने लगे और गन्धर्वगण उनका गुणगान करने लगे। धीरे-धीरे सभी ग्रहोंके लोक दीखने लगे। इसके बाद सप्तर्षिमण्डलमें होते हुए वे ऋषियोंके ऊपर ध्रुवलोकमें पहुँचे। जहाँसे फिर लौटना नहीं होता, वही विष्णुका पद है। हे वत्स! उस स्थानके प्रभावकी बात क्या कहूँ। वह चारों ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है और परम पवित्र स्थान है। हे विदुर! ध्रुव विष्णुस्थानको पार करके जहाँसे ज्योतिश्चक्र (चन्द्रसूर्य नक्षत्र आदि) घूमते हैं उस श्रेष्ठ स्थानको पहुँचे और देवर्षि नारदने प्रचेताओंके यज्ञमें जाकर ध्रुवजीके चरित्रका गान किया। मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर! तुमने जैसा प्रश्न किया था, उसके अनुसार ध्रुवका चरित्र मैंने तुमसे वर्णन किया। इस पवित्र चरित्रको पढ़ने या सुननेसे पापराशि नष्ट हो जाती और श्रोताको ध्रुवलोक प्राप्त होता है।

हे विदुर ! प्रातःकाल और सन्ध्याको ब्राह्मणोंकी सभामें ध्रुवचरित्र कहना चाहिये। पूर्णिमा, अमावस्या और द्वादशी इन तिथियोंमें, श्रवण नक्षत्र, व्यतीपातयोग, संक्रान्ति अथवा रविवारको तो इसका पाठ अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे ज्ञांन तथा सिद्धिकी प्राप्ति होती और रोग तथा शोक दूर होता है।

त्रयोदश अध्याय

ध्रुवके वंशमें पृथुका जन्म और वेणके पिता राजा अंगकी कथा

सूतजी बोले—विदुरने प्रचेताओं और यज्ञके विषयमें मैत्रेय मुनिसे पूछा तो मैत्रेयजीने कहा—हे वत्स विदुर ! ध्रुवके बड़े पुत्रका नाम उत्कल था। पिताके परमधाम चले जानेपर उसने राज्यभोग छोड़कर योगरूप अग्निसे अपनी वासनाको जला डाला था। मन्त्रियोंने उत्कलको उन्मत्त तथा जड़ जानकर उसके छोटे भाई वत्सरको राजा बनाया। हे विदुर ! ध्रुवके वंशमें कई पीढ़ियों-के बाद अंगकी उत्पत्ति हुई। उसका विवाह सुनीथा नामक कन्यासे हुआ था। सुनीथाके गर्भसे वेणका जन्म हुआ। वेणके दुष्ट स्वभावसे विरक्त होकर राजर्षि अंग पुर और राज्य छोड़कर वनको चले गये। हे विदुर ! जिनकी वाणी वज्रसे बढ़कर होती है, उन मुनियोंने उसके दुराचारसे कुपित होकर वेणको शाप दे दिया। मुनियोंके शापसे वेणके मर जानेपर राजाके बिना चोर आदि प्रजाको सताने लगे। प्रजाको पीड़ित देखकर मुनियोंने वेणके मरे हुए शरीरकी दाहिनी भुजाको मथा। उसकी भुजासे साक्षात् नारा-

यणके अंशस्वरूप राजा पृथु उत्पन्न हुए। विदुरजीने पूछा—हे महाराज ! राजा अंग तो बड़े धार्मिक पुरुष थे। तब उनको ऐसी दुष्ट सन्तान क्यों मिली ? कृपा करके वेणका चरित्र मुझसे कहिये। आपको कोई बात अविदित नहीं है। मैं आपका परम भक्त हूँ। अतः विस्तारपूर्वक कहिये। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर ! अब मैं अंग राजाका चरित्र कह रहा हूँ, सुनो। राजर्षि अंगने अश्वमेध यज्ञ किया था। उसमें सामग्री जुटाने और अन्य किसी कार्यमें कोई त्रुटि नहीं हुई। ब्राह्मणोंने उस यज्ञमें आहुति छोड़ और मंत्र पढ़कर इन्द्रादि देवोंको बुलाया, पर वे नहीं आये। तब पुरोहितोंने राजासे कहा—देवगण कर्मके साक्षी हैं, उनके बिना आये और बिना भाग ग्रहण किये सब कर्म निष्फल हैं। यह यज्ञ भी वृथा है। मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर ! ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा अंग बहुत ही उदास और दुःखित हुए। कुछ देरतक चुप रहकर वे बोले—हे सदस्यगण ! मेरे इस यज्ञमें कौनसा दोष हुआ है ? देवगण आकर अपने-अपने सोमपात्रको क्यों नहीं ग्रहण करते, इसका कारण क्या है ? सदस्यगण बोले—हे राजन् ! इस जन्ममें तो तुमने कुछ पाप नहीं किया है। जो कुछ था भी सो यज्ञके पहले प्रायश्चित्त करनेसे नष्ट हो गया है। किन्तु पूर्व जन्मके एक पापसे तुम निःसन्तान हो। पुत्र उत्पन्न होनेसे देवगण तुम्हारे यज्ञकी हवि ग्रहण करेंगे। भगवान विष्णुकी आराधना करनेसे वे तुमको अवश्य ही पुत्र प्रदान करेंगे। इसके बाद ब्राह्मणोंने राजाके पुत्रके लिए यज्ञ करके विष्णुको हवि प्रदान किया। उस यज्ञके हविसे एक पुरुष निकला। उसके गलेमें सोनेकी माला थी। वह

निर्मल वस्त्र धारण किये हुए था। हाथमें सिद्ध पायसका सुवर्णमय पात्र लिये था। उसे देखकर ब्राह्मणोंने राजाको पायस (खीर) लेकर खानेकी अनुमति दी। राजाने खीरका पात्र ले लिया और उस खीरको प्रसन्नतापूर्वक सूँघकर अपनी रानीको भोजन करनेके लिए दे दिया। पुत्रदायक खीर खानेके बाद रानीने राजासे सहवास किया तो तुरन्त ही गर्भ रह गया। यथासमय रानीको एक पुत्र प्राप्त हुआ। हे वत्स! अंगकी स्त्री सुनीथा 'मृत्यु' की कन्या थी। उसके गर्भसे उत्पन्न बालक वेण अपने नानाके स्वभावका हुआ। वह दुष्टप्रकृति तथा अधार्मिक था। वह नित्य शिकार करनेको वनमें जाता और व्यर्थ दीन मृगोंको मार डालता था। प्रजागण उसके निष्ठुर आचरणसे डरते थे। दूरसे ही उसे देखकर अरे! वेण आ रहा है। यह कहते हुए कातरता प्रकटकर चिल्ला उठते थे। हे वत्स विदुर! वेणके निष्ठुर आचरणका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसके हृदयमें दयाका लेशमात्र नहीं था। अंग राजाने पुत्रका ऐसा आचरण देखकर उसे कई बार समझाया और धमकाया, पर उसने एक न मानी। उसके स्वभावमें कुछ भी सुधार न देखकर संसारके प्रति उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। संसारमें सत्पुत्र ही त्राण करता है। ऐसे असत् पुत्रसे संसारमें केवल क्लेश ही मिलता है। इस प्रकार वैराग्य होनेपर उस रात्रिको उन्हें नींद नहीं आयी। आधी रात्रिके समय रानीको सोते ही छोड़ और पुत्र धन संपत्तिसे परिपूर्ण राजभवन त्यागकर वनको चले गये। राजा कब और किस समय किस तरफ चले गये, यह कोई भी न जान सका। सबेरे प्रजा, पुरोहित, मंत्री और इष्टमित्र आदि राजाको ढूँढ़ने लगे,

पर जब कहीं पता न लगा तब ऋषियोंको एकत्रकर राजाके चले जानेका वृत्तान्त उन्होंने बताया।

चतुर्दश अध्याय

वेणका राज्याभिषेक और ब्राह्मणोंके शापसे प्राणनाश

मैत्रेयजीने कहा—हे वत्स विदुर ! राजा अंग राज्य छोड़कर वनको चले गये, तब अराजकता देखकर भृगु आदि मुनियोंने रानी सुनीथाको बुलाकर परामर्श करनेके बाद वेणको राज्यपदपर अभिषिक्त किया। वेणके सिंहासनारूढ़ होनेपर चारों तरफ इस समाचारका प्रचार हो गया। चोर ठग आदि जहाँ तहाँ छिप गये। राजा वेण उन्मत्त होकर अपना निष्ठुर आचरण दिखाता हुआ महात्माओं, साधुजनों और बड़े लोगोंका निरादर करने लगा। वह दुर्धर्ष राजा निरंकुश गजराजके समान रथपर चढ़कर घूमता हुआ स्वर्ग और मृत्युलोकको कँपाने लगा। इसके बाद उसने घोषणा कर दी कि मेरे राज्यमें ब्राह्मण लोग यज्ञ, होम और दान आदि धर्मकार्य नहीं कर सकते। यदि कोई करेगा तो अच्छा न होगा। इस प्रकार वेणने अपने राज्यमें सब धर्म-कर्म एकदम बन्द करवा दिये। दुरात्मा वेणका ऐसा आचरण देखकर मुनियोंने सोचा कि भारी विपत्ति आ गयी है। यह कह और सब मिलकर शान्तिके लिए परामर्श करने लगे। उन लोगोंने स्थिर किया कि पहले उस दुराचारीको समझाया जाय। यदि समझानेपर भी न माने तो हम अपने तेजसे उसे जला डालेंगे। ऐसा निश्चय करके वे लोग वेणके पास गये और समझाने लगे। हे वत्स विदुर ! मुनियोंके हितकारी

वचन सुनकर वेणने क्रोधित होकर कहा—अरे! तुम लोग बड़े मूर्ख हो और अधर्मको ही धर्म मानते हो। मैं सबका अधिपति राजा हूँ। सब देवताओंका स्वरूप राजा ही ईश्वर होता है। मुझे छोड़कर तुम लोग दूसरोंकी उपासना करते हो? ऐसा करनेवाले सभी लोग अतिमूढ़ हैं। मेरी अवज्ञा करनेवालोंका कभी कल्याण न होगा। इस प्रकार देवताओंकी निन्दा सुन और राजाको अहंकारसे उन्मत्त देखकर मुनियोंको बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने अपने छिपे क्रोधको प्रकट करके भयानक 'हुंकार' शब्द करके वेणको मार डाला। वेण तो भगवान अच्युतकी निन्दा करके एक प्रकारसे पहले ही मर चुका था। ऋषिगण वेणका प्राणसंहार करके अपने-अपने आश्रमको चले गये। तब वेणकी माता शोकयुक्त होकर अपनी विद्याके बलसे मृत पुत्रके शरीरकी रक्षा करने लगी। कुछ समय बाद एक दिन वे मुनिगण सरस्वती नदीमें स्नानकर अग्निहोत्र पूरा करनेके उपरान्त तटपर बैठकर परस्पर बातें कर रहे थे। इतनेमें सहसा लोकभयंकर उत्पात देखकर बोले—ऐसा उत्पात क्यों हो रहा है? इस प्रकार मुनिगण विचार कर ही रहे थे कि चोरों और लुटेरोंके चारों ओर दौड़नेसे बहुत धूल उड़ने लगी। राजाके अभावसे चोर लोग निर्भय होकर प्रजाजनोंका धन लूटते हुए भयानक मारकाट कर रहे थे। ऐसी अराजकता देखकर ऋषियोंने सोचा कि उपद्रव न रोकनेसे अनर्थ हो जायगा। विलम्ब करना भी उचित नहीं है। इसके प्रतिकारके निमित्त उन्होंने वेणके मरे हुए शरीरकी जांघको मथा। उससे एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ। उसका रंग कौएके समान काला था। उसके सब अंग और हाथ

बहुत छोटे थे। नाक चिपटी थी। आँखें लाल और केश तांबेके जैसे लाल थे। वह हाथ जोड़कर नम्रतासे कहने लगा—मैं क्या करूँ ? आज्ञा दीजिये। मुनियोंने कहा–निषीद अर्थात् बैठ जाओ। इसीसे वह निषाद नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसीके वंशसे निषाद जाति बनी। वे लोग पहाड़ों, जंगलों और नदी तटपर रहते हैं। हे विदुर ! वेण जन्मकालसे ही पापकर्ममें रत था। इस कारण उसके वंशमें उसी प्रकारके लोग उत्पन्न हुए।

पञ्चदश अध्याय

राजा पृथुकी उत्पत्ति और राज्याभिषेक

मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर ! फिर ब्राह्मणोंने राजा वेणकी बाहुओंको मथा तो उनसे एक पुरुष और एक स्त्रीकी उत्पत्ति हुई। उन दोनोंको विष्णु और लक्ष्मीकी कला जानकर मुनिगण प्रसन्न हुए। ऋषियोंने कहा—यह बालक आदि राजा पृथु होकर अपने यशका पृथ्वीमण्डलमें विस्तार करेगा। इस कन्याका नाम अर्चि है। यही पृथुकी रानी होगी। यह बालक भगवान विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुआ है और अर्चि स्वयं लक्ष्मी ही हैं। यह भगवानसे पृथक् नहीं रह सकतीं। इसीलिए एक ही साथ उत्पन्न हुई हैं। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! पृथुके उत्पन्न होनेपर महासमारोह, दान, ध्यान, पूजा और बाजे-गाजे आदिके साथ मंगलसूचक धर्मकार्य किये गये। जगद्गुरु ब्रह्मा देवताओंके साथ आये। उन्होंने पृथुके सब चिह्न देखकर कहा—बालकके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न है और दोनों पादपद्मोंमें पद्मकी रेखा है।

यह निश्चय भगवानकी कला है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। इसके बाद ब्राह्मणोंने पृथुको राज्यपदपर अभिषिक्त किया। हे विदुर! पृथुके लिए धनके अधिपति कुबेरने सोनेका सिंहासन दिया। वरुणने चन्द्रमाके समान सुन्दर छत्र दिया। वायुने मनोहर चामर दिये। धर्मने कीर्तिकी माला दी। इन्द्रने अति उत्तम किरीट-मुकुट दिया। धर्मराजने दमन करनेवाला दण्ड दिया। ब्रह्माने वेदमय कवच दिया। सरस्वतीने मनोहर हार दिया। श्रीहरिने सुदर्शनचक्र दिया और विष्णुकी स्त्री कमलाने स्थिर सम्पदा दी। शिवजीने एक खड्ग लाकर उपहारमें दिया। उस खड्गमें दस चन्द्रके आकार बने थे। फिर सौ चन्द्र जिसमें बने थे, ऐसी ढाल अम्बिकाजीने दी। चन्द्रदेवने घोड़ा दिया। विश्वकर्माने अतिसुन्दर रथ दिया। अग्निने धनुष दिया। सूर्यने किरणमय बाण दिया। पृथ्वीने पादुकाएँ दीं और आकाशने सदाके लिए फूलोंकी वर्षाका उपहार दिया। आकाशमें विचरणकरनेवाले खेचरोंने उनको अन्तर्धान तथा नारदने गीत-वाद्यकी विद्या दी। समुद्रने शंख दिया। ऋषियोंने आशीर्वाद दिया। समुद्र पर्वत और नदियोंने महात्मा पृथुको रथका मार्ग दिया। इसके बाद सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति और यशोगान करने लगे। उस समय महाराज पृथुने उनको रोककर कहा—पहले मुझे अपने गुण प्रकट करके प्रसिद्ध होने दो। फिर बादको मेरा यथार्थ गुणगान करना।

षोड़श अध्याय

बन्दीजनों द्वारा पृथुकी स्तुति

मैत्रेयजी बोले—राजा पृथुने उन लोगोंको रोका, किन्तु मुनियोंकी प्रेरणासे बन्दीजन उनकी स्तुति करते ही रहे। उन लोगोंने कहा—हे राजन्! हम आपकी महिमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप वेणराजाके अंगसे प्रकट हुए हैं। आप प्रधान देव हैं। मायासे आपका अवतार हुआ है। ऋषिगणने योगबलसे हमारे हृदयमें जिस प्रकार पृथुके प्रशंसनीय गुणोंको प्रकाशित किया है, उसी प्रकार इन महात्माका चरित्र हम वर्णन करते हैं। महाराज पृथु परम धार्मिक धर्मरक्षक होकर धर्ममर्यादाकी रक्षा करेंगे और धर्मद्रोही कुमार्गगामियोंको दण्ड देंगे। ये एक होकर अनेक मूर्ति धारण करेंगे। यज्ञ आदिके द्वारा स्वर्गमें और वृद्धि आदिके द्वारा पृथ्वीमें लोगोंका हित-साधन करेंगे। यह प्रजाजनोंका कल्याण करेंगे और आवश्यकतानुसार प्रजासे कर लेकर दुर्भिक्ष आदिके समय मुक्त-हस्त होकर धन बाँटेंगे। ये प्राणियोंके प्रति दया करेंगे और पृथ्वीके समान क्षमाशील और करुणानिधि होंगे। ये मनुष्य शरीरधारी साक्षात् ईश्वर हैं। जब इन्द्र वर्षा न करेंगे और प्रजाजन कष्टमें पड़ जायँगे, तब अनायास इन्द्रके तुल्य वर्षा करके प्रजाके प्राणोंकी रक्षा करेंगे। ये महाराज पृथु अपने मुखचन्द्रकी मृदुहास्ययुक्त कृपादृष्टिसे सब प्रजाको संतुष्ट करेंगे। राजा पृथु अपने यश और अपनी निन्दा आदिमें उदासीनकी भाँति रहेंगे। इनका व्यवहार धर्मराजकी भाँति होगा। शत्रु भी यदि दण्डके योग्य न होगा तो उसे दण्ड न देंगे और यदि

अपना सगा पुत्र भी दण्ड देने योग्य कार्य करेगा तो उसे दण्ड देंगे। जहाँ तक सूर्यकी किरणें जाकर जगत्को प्रकाशित करती हैं, वहाँतक इनके रथकी गति होगी। पृथु प्रजाका मनोरंजन करेंगे। इस कारण प्रजाजन इनको राजा कहेंगे। ये महाराज दृढ़व्रत, सत्यसन्ध, ब्राह्मणोंके भक्त, वृद्धोंके सेवक, सब प्राणियोंके रक्षक, सबका पालन करनेवाले और दीनजनोंपर दयालु होंगे। परायी स्त्रीको माताके समान देखेंगे। अपनी पत्नीको अपना आधा शरीर मानेंगे और उससे प्रीति करेंगे। ये महाराज प्रजाजनपर पिताके समान स्नेह करेंगे और ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंके आज्ञाकारी होंगे। ये अनाथोंके नाथ होंगे और दुष्टोंको दण्ड देनेमें आलस्य न करेंगे। ये इस भूमण्डलमें अद्वितीय वीर होकर अखण्ड पृथ्वीमण्डलका शासन करेंगे और रथपर चढ़कर सूर्यके समान पृथ्वीके चारों ओर प्रदक्षिणा करेंगे। ये प्रजापतिके समान प्रजागणकी वृत्तिका विधान करनेके हेतु पृथ्वीसे औषध अन्न आदि दुह लेंगे और जहाँसे सरस्वती नदी निकली है, उस पुण्य स्थानपर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे। किन्तु इनके अन्तिम यज्ञमें देवराज इन्द्र इनके यज्ञके घोड़ेको हर ले जायँगे। तदनन्तर यह अपनी राजधानीमें लौटकर भगवान सनत्कुमारकी आराधना करके उसके फलस्वरूप निर्मल ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेंगे। इनके माहात्म्यको देवता और दैत्य दोनों गावेंगे।

सप्तदश अध्याय

पृथ्वीको मारनेके लिए पृथुका उद्योग और पृथ्वी द्वारा पृथुकी स्तुति

मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर! वेणके पुत्र महाराज पृथुने अपने

गुणों और कर्मोंका वर्णन सुना तो भाँट आदिको पुरस्कार देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद भृत्यों अमात्यों और पुरोहितोंको उन्होंने यथोचित पुरस्कार दिया। विदुरने पृथु द्वारा पृथ्वी दुही जानेका कारण पूछा तो उत्तरमें मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर ! एक बार अन्नके अभाववश पृथ्वीमें अकाल पड़ गया तो ब्राह्मणोंने महाराज पृथुके पास जाकर दुःखकी कथा सुनायी। उनका दीन विलाप सुनकर पृथुने बहुत देरतक विचार किया। उन्होंने यह समझ लिया कि पृथ्वीने औषधि और अन्नादिके बीजोंको चुरा लिया है। इसीसे अन्न नहीं उपजता और अकाल पड़नेसे प्रजा पीड़ित है। शिवजीने त्रिपुरको जलानेके लिए जिस प्रकार धनुष-बाण सम्हाला था, उसी प्रकार पृथुने भूमिपर छोड़नेके लिए अपने धनुषपर बाण चढ़ाया। यह देखा तो पृथ्वी भयग्रस्त होकर काँप उठी और अपनी रक्षाके लिए गऊका रूप धरकर भागी। महाराज पृथु धनुष-बाण लेकर उसके पीछे-पीछे दौड़े। अन्तमें पृथुसे अपना बचाव न देखकर डरती हुई पृथ्वी रुक गयी और विनयपूर्वक पृथुसे कहने लगी—हे महाभाग ! आप धर्मज्ञ हैं। सब प्राणियोंके प्रतिपालक हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये। मुझे यदि मार डालियेगा तो अपनेको और इन प्रजाजनोंको जलपर कैसे बसाइयेगा। पृथ्वीके ये वचन सुनकर महाराज पृथुने उत्तर दिया—तू मेरी आज्ञाओंका पालन नहीं करती, इसलिए मैं तुझे मार डालूँगा। तू देवतारूपसे यज्ञमें अपना भाग लेती है, पर हम लोगोंको अन्न नहीं देती। तू गायका रूप धारण करके बीजरूप घास चरती है, पर अन्नरूप दूध नहीं देती। इस अपराधके लिए तेरा वध करना आवश्यक हो गया है। ब्रह्माजी-

ने जिन औषधि और बीजोंको सिरजा था, उन सबको तूने अपने पेटमें रख लिया है। मेरी अवज्ञा करती हुई तू उन्हें अब भी छोड़ नहीं रही है। मैं अपने तीक्ष्ण बाणसे तेरा शरीर फाड़कर तेरे मांससे प्रजाजनोंकी भूखकी ज्वाला शान्त कर सकूँगा। जिसमें दया नहीं है, उससे बढ़कर पापी और कोई नहीं हो सकता। मैं तुझे इन बाणोंसे तिल-तिल काट डालूँगा और अपने योगबलसे स्वयं ही इस चराचर जगत्को धारण करूँगा। हे विदुर! महाराज पृथुने पृथ्वीका इस तरह तिरस्कार किया तो वह विनयपूर्वक नमस्कार करके स्तुति करने लगी।

अष्टादश अध्याय

पृथ्वीका दोहन

मैत्रेयजी बोले—पृथ्वीने स्तुति करके देखा कि अब तक भी पृथुका क्रोध दूर नहीं हुआ है। अतएव पृथ्वी पुनः बोली—हे प्रभो! क्रोध शान्त कीजिये और मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिये। हे महाराज! मेरी बातोंका निरादर मत करिएगा। पहले मुनिगण श्रद्धाके साथ वेदविहित यज्ञ आदि कार्य करते थे। ब्राह्मण लोग वेदपाठ करते हुए नियमोंके पालनमें किसी तरहकी त्रुटि नहीं करते थे। हे महाराज! मैंने देखा कि सृष्टिके प्रथम भगवान ब्रह्माने जिन औषधियोंको उत्पन्न किया था, उनको अब व्रत-विहीन दुष्ट लोग खाते हैं। इसके अतिरिक्त अबके राजे चोरोंका निरोध नहीं करते। वे ठीकसे मेरा पालन भी नहीं करते। बल्कि मेरा निरादर कर रहे हैं। इससे प्रजा भी चोरोंके समान हो

रही है। यह देखकर मैंने भविष्यमें होनेवाले यज्ञोंके लिए इन सब औषधियोंको ग्रस लिया है। हे महाराज! यदि मैं ऐसा न करती तो दुष्ट लोग इन औषधियोंको खा जाते। इनका नाम तक सुननेको न मिलता। यज्ञ आदि भी सम्पन्न न हो सकते। बहुत कालतक मेरे उदरमें रहनेके कारण ये औषधियाँ जीर्ण हो रही हैं। इसलिए आप उपाय करके मेरे पेटसे इनको निकालिये। मुझे मारनेसे क्या लाभ होगा? हे वीर! पहले आप मुझे इस तरह समतल कर दीजिये, जिससे वर्षाका जल वर्षाऋतु बीत जानेपर भी सब स्थानोंमें बराबर भरा रहे। ऐसा करनेसे जिस तरह कि देवता सर्वत्र समान भावसे जल बरसाते हैं, वर्षा बीत जानेपर सर्वत्र ही समान रूपसे औषधियें दिखाई पड़ेंगी। हे राजन्! मैं आपकी भक्त हो गयी हूँ। आप मेरे लिए बछड़ा, दोहनपात्र और दुहनेवाला ठीक कीजिये। पृथ्वीकी बातोंसे पृथु सन्तुष्ट हो गये और उन्होंने मनुको बछड़ा बनाया और स्वयं अपने हाथको पात्र बनाकर सम्पूर्ण औषधियोंको दुह लिया। फिर देवगणने इन्द्रको बछड़ा बनाकर सुवर्णके पात्रमें अमृतवीर्य अर्थात् मानसिक-शक्ति और इन्द्रिय-शक्तिरूप दूधको दुहा। दैत्यों और दानवोंने प्रह्लादजीको बछड़ा बनाकर लोहेके पात्रमें सुरा और आसवरूप दूध दुहा। गन्धर्वों और अप्सराओंने विश्वावसुको बछड़ा बनाकर पद्ममय पात्रमें गन्धर्वोंकी विद्या, वाणीकी मधुरता और सुन्दरतारूप दूध दुहा। श्राद्धके देवता पितरोंने अर्यमाको बछड़ा बनाकर कच्ची मिट्टीके पात्रमें श्रद्धापूर्वक कव्य अर्थात् पितरोंका अन्न दुहा। सिद्धगणने कपिलदेवजीको बछड़ा बनाकर अणिमा आदि योगकी सिद्धियोंको दुहा। विद्या-

धर आदि खेचरोंने उपर्युक्त कपिलदेवको ही बछड़ा बनाकर आकाशरूपी पात्रमें अन्तर्धान आदि खेचरी विद्याओंको दुहा। किम्पुरुष आदि और और मायावियोंने मयदानवको बछड़ा बनाकर आकाशरूपीपात्रमें अनेक मायाओंका दोहन किया। यज्ञ राक्षस भूत प्रेत पिशाच आदि मांसाहारियोंने रुद्रको बछड़ा बनाकर नरकपालरूपी पात्रमें रुधिररूप आसव दुहा। साँप बिच्छू आदि हिंसक जन्तुओंने तक्षकनागको बछड़ा बनाकर बिलरूपी पात्रमें अर्थात् मुखमें विषरूप दूध दुहा। पशुओंने शिवजीके वाहन बैलको बछड़ा बनाकर वनरूपी पात्रमें घासरूपी दूध दुहा। मांसाहारी पशुओंने सिंहको बछड़ा बनाकर अपने शरीररूपी पात्रमें मांसरूपी दूध दुहा। पक्षियोंने गरुड़को बछड़ा बनाकर वनरूप पात्रमें कीड़े फतिंगे और फलरूपी दूध दुहा। वृक्षोंने बरगदको बछड़ा बनाकर भिन्न-भिन्न रसायनरूपी दूध दुहा। सब पर्वतोंने हिमालयको बछड़ा बनाकर अपने शिखररूपी पात्रमें अनेक धातुओंको दुहा। इस प्रकार सभोंने अपने लिए अनुकूल वस्तुओंको दुह लिया। हे राजन्! तब महाराज पृथु सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली पृथ्वीपर परम प्रसन्न हुए और उन्होंने उसको अपनी दुहिता (कन्या) कहकर सम्बोधित किया। तदनन्तर राजराजेश्वर पृथुने अपने धनुषके अग्रभागसे पर्वतोंके शिखरों और टीलोंको चूर करके प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको समतल कर दिया। उसपर प्रजागण रहने लगे। पृथुने प्रजागणको रहनेके लिए निम्नलिखित स्थान बना दिये—गाँव, पुर, पत्तन, दुर्ग, घोष अर्थात् ग्वालोंके रहनेके स्थान, व्रज (गौओंके रहनेके स्थान), शिविर अर्थात् सेनाके ठहरनेके स्थान, आकर अर्थात् सोने आदिकी

खान, खेट अर्थात् किसानोंके गाँव, खेतीकी भूमि, ग्रामान्त, पर्वत प्रान्त आदि। महाराज पृथुके पहले ये पुर-गाँव आदि कुछ नहीं थे। सब लोग जहाँ चाहते, वहाँ सुखपूर्वक निर्भय होकर रहते थे।

ऊनविंश अध्याय

अश्वमेध यज्ञका घोड़ा चुरानेपर इन्द्रको मारनेके लिए पृथुका जाना और ब्रह्माजीका आकर रोकना

मैत्रेयजी बोले—इसके बाद राजर्षि पृथुने ब्रह्मावर्त नामक स्थानमें जहाँ पूर्ववाहिनी सरस्वती बहती है और जहाँ मनुका राज्य था, उसी स्थानमें एक सौ अश्वमेध यज्ञ करनेका संकल्प किया। महासमारोहके साथ यज्ञका महोत्सव आरम्भ हुआ। यह महा-उत्सव देवराज इन्द्रको असह्य हो गया। उन्होंने सोचा—मैंने एक सौ यज्ञ किये थे, इसीलिए मेरा नाम शतक्रतु हुआ है। अब यह मुझसे भी बड़ा होना चाहते हैं। पृथुके यज्ञमें भगवान विष्णु यज्ञपतिके रूपमें दिखाई पड़े थे और ब्रह्मा-शिव आदि सभी देवता उपस्थित थे। इन्द्र यज्ञका अभ्युदय नहीं सह सके और डाहके मारे उन्होंने यज्ञमें विघ्न डाल दिया। पृथु अन्तिम यज्ञ आरम्भ करके यज्ञपुरुषकी पूजा कर रहे थे। इसी समय इन्द्रदेव यज्ञका घोड़ा चुरा ले गये। अत्रिऋषिने इन्द्रको भागते हुए देखा। इससे रंज होकर उन्होंने पृथुके पुत्रसे कहा कि इन्द्रको मारकर घोड़ा ले आओ। पृथुपुत्रने ठहर-ठहर कहते हुए इन्द्रका पीछा किया। राजकुमारने देखा कि इन्द्र धार्मिक वेषमें हैं। इस कारण उनपर बाण नहीं चलाया। राजकुमारको घोड़ा चुरानेवालेका वध किये बिना

ही आते देखकर अत्रिजीने फिर चिल्लाकर कहा—उसे पकड़ लाओ। जिसने तुम्हारे पिताका यज्ञ नष्ट कर दिया है, तुम उस अधमको मार डालो। महर्षि अत्रिके कहनेसे राजकुमार क्रुद्ध होकर इन्द्रके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा। हे वत्स विदुर! देवेन्द्र घोड़ा लेकर आकाशमार्गसे भाग रहे थे। पृथुपुत्रसे बचनेका उपाय न देखकर इन्द्र अपने पाखण्डमयरूप और घोड़ेको वहींपर छोड़कर अन्तर्धान हो गये। घोड़ा लेकर जब पृथुपुत्र लौटा तो ऋषियोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की और प्रसन्न होकर उसका विजिताश्व नाम रखा। पृथुपुत्रके भयसे देवराजने घोड़ा तो छोड़ दिया, किन्तु यज्ञमें विघ्न डालनेकी उनकी इच्छा मनसे नहीं दूर हुई। इन्द्र फिर अपनी मायासे घोर अन्धकार उत्पन्न करके यज्ञके खम्भेमें सोनेकी जंजीरसे बँधे हुए घोड़ेको खोलकर ले भागे। अत्रि मुनिने यह दृश्य देखकर फिर पृथुपुत्रको बुलाकर घोड़ा लौटा लानेके लिए भेजा। देवराज कपाल और खट्वांग धारण करके भागे चले जा रहे थे। अत्रिमुनिके कहनेसे पृथुपुत्रने उनके पीछे-पीछे दौड़कर रोषके साथ तीखा बाण चलाया। उसी समय उस रूप और घोड़ेको छोड़कर इन्द्र अन्तर्धान हो गये। तब महावीर विजिताश्व घोड़ेको लेकर पिताके यज्ञस्थलमें आये। हे विदुर! इन्द्रने जिस मूर्तिको छोड़ दिया, उस निन्दित और पापमयी मूर्तिको मन्दबुद्धिके लोगोंने ग्रहण कर लिया। तभीसे जैन बौद्ध कापालिक आदि पाखण्ड मतोंकी सृष्टि हुई। ये सब धर्मके आभासमात्र हैं। भ्रममें पड़कर लोग इन्हें धर्म समझते और इनमें आसक्त हो जाते हैं। ये सब मत देखनेमें मनोहर और युक्तिपूर्ण हैं। अतएव लोगोंकी बुद्धि

भ्रान्त होकर इन मतोंमें चिपक जाती है। महाराज पृथुको यह सब हाल विदित हुआ तो वे इन्द्रपर कुपित हो और धनुष उठाकर बाण चलानेको उद्यत हो गये। इन्द्रको मारनेको उद्यत पृथुको यज्ञके ऋत्विजोंने रोककर कहा—महाराज! इस समय यज्ञपशुकी हिंसाके अतिरिक्त और किसी जीवकी हिंसा करना अनुचित है। जिस इन्द्रने आपके यज्ञमें विघ्न डाला है, उसका तेज तो आपकी कीर्तिसे ही फीका पड़ गया है। फिर भी हमलोग आपके अहितचिन्तक उस इन्द्रको अपने सर्वशक्तियुक्त मन्त्र द्वारा बलपूर्वक इन्द्रासनसे लाकर अग्निकुण्डमें झोंक देंगे। ऐसा होनेसे उसे उपयुक्त फल मिल जायगा। हे वत्स विदुर! यह कहकर ऋत्विज क्रोधपूर्वक यज्ञपात्र लेकर इन्द्रको होम करनेके लिए उद्यत हुए। उसी समय ब्रह्माजीने आकर उनको रोका। ब्रह्माजीने कहा—हे मुनिगण! इन्द्र मारनेके योग्य नहीं है। इसीका दूसरा नाम यज्ञ है। यज्ञ भगवानके अवतार हैं। अतिशय बलवान यह यज्ञ बन्द करके इनके साथ मित्रता करना ही उचित है। नहीं तो संसारमें पाखण्ड मतकी सृष्टि हो जायगी। इन निन्नानबे यज्ञोंसे ही महाराज पृथुकी कीर्ति इन्द्रसे अधिक होगी। ब्राह्मणोंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजीने पृथुको सम्बोधित करते हुए कहा—हे राजन्! तुम मोक्षधर्मके ज्ञाता हो। अतएव मुक्तिकी कामना करो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम और इन्द्र दोनों ही पवित्रकीर्तिसम्पन्न भगवानके अंग अतएव परस्पर अभिन्न हो। इन्द्रको मना करनेकी शक्ति हमलोगोंमें नहीं है। तुम यज्ञ बन्द कर दो। तुम्हारे यज्ञमें विघ्न नहीं हुआ है। इन्द्रने जिन सब पाखण्डोंकी रचना की है, उनसे धर्म-

मार्ग संकीर्ण हो जायगा। ब्रह्माकी आज्ञा पाकर राजा पृथुने यज्ञ बन्द कर दिया और इन्द्रसे मित्रता कर ली। ब्राह्मणोंने प्रसन्न मनसे पृथुको आशीर्वाद दिया।

विंश अध्याय

भगवानसे पृथुकी भेंट

मैत्रेयजी बोले—यज्ञपति विष्णु भी पृथुके यज्ञमें इन्द्रके साथ आ और पृथु द्वारा पूजित होकर प्रसन्न हुए। फिर भगवान विष्णु पृथुसे बोले—हे राजन्! इन्होंने तुम्हारे सौवें अश्वमेध यज्ञमें विघ्न डाला था और अब तुमसे क्षमा माँग रहे हैं। इनको क्षमा कर दो। बुद्धिमान् और विख्यात व्यक्ति किसीका अनिष्ट नहीं करते। यह शरीर आत्मा नहीं है। यह सोचकर वे किसीसे विरोध नहीं करते। क्योंकि उनको देहाभिमान नहीं रहता। हे राजन्! श्रद्धा और भक्तिके साथ मेरी उपासना करके मुझे प्रसन्न करनेवालेको सांसारिक बन्धनोंका भय नहीं रहता। हे वीर! तुम ज्ञानी हो। अतएव सुख दुःख और उत्तम मध्यम अधम सबमें समान बुद्धि रखकर इन्द्रिय और मनको वशमें करो और मंत्री आदि सहायकोंके साथ प्रजाकी रक्षा करो। हे वत्स! राजाओंके लिए तपस्या आदिकी अपेक्षा प्रजाका पालन करना ही प्रधान धर्म है। क्योंकि वे प्रजाजन जिन पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, राजा उन पुण्यकर्मोंका छठा अंश भोग करता है। इसके विपरीत जो राजा प्रजासे कर लेकर उसकी रक्षा नहीं करता, उसके पुण्यको प्रजागण करके बदलेमें पाते हैं और वह अन्यायी राजा प्रजाके पापोंका भोग करता है।

हे राजन् ! तुम धर्ममें मन लगाकर पृथ्वीकी रक्षा करो। प्रजाजन तुम्हारे भक्त होंगे और तुम शीघ्र ही सनकादि सिद्ध महर्षियोंको अपने घरमें उपस्थित देख सकोगे। इससे तुमको अनायास ही मोक्षलाभ होगा। हे राजन् ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। तुम वर माँगो। मुझे योग, यज्ञ और तप आदि उपायोंसे सहजमें कोई नहीं देख पाता। किन्तु जिनका मन सबके प्रति समान रहता है, उनके निकट मैं सदा उपस्थित रहता हूँ। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! महाराज पृथुने भगवान श्रीहरिका उपदेश सुनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय इन्द्र यज्ञका अश्व चुरानेकी बात स्मरण करके लज्जित हुए और अपराध क्षमा करानेके लिए पृथुके चरण छूनेको आगे बढ़े कि पृथुने उनका हाथ पकड़ और गलेसे लगाकर वैरभाव त्याग दिया। इसके बाद भगवानने वहाँसे जानेकी इच्छा की तो पृथु स्तुति करने लगे। मैत्रेयजीने कहा—हे विदुर! आदि राजा पृथुने नाना प्रकारसे भगवानकी स्तुति की तो भगवान हरिने प्रसन्न होकर कहा—हे राजन् ! मुझमें तुम्हारी अचल भक्ति होगी। तुम बड़े भाग्यवान हो। इसीलिए मुझमें तुम्हारी भक्ति दृढ़ हो गयी है। हे राजन् ! मैंने जैसा उपदेश दिया है, उसे मानकर काम करोगे तो तुम्हारा सदा मंगल होगा। इसके बाद पृथुने भगवानको प्रणाम किया और सिद्ध-चारण आदि जो लोग भगवानके साथ आये थे, उन सबकी यथायोग्य पूजा की। भगवानके अपने धाम चले जानेपर महाराज पृथु भी अपने राज्यको लौट गये।

एकविंश अध्याय

पृथुका प्रजागणको उपदेश

मैत्रेयने कहा—हे विदुर ! यज्ञकार्य समाप्त करके जब महाराज पृथु अपने नगरमें आये तो प्रजाजनोंने मंगलमय समारोहके साथ उनकी पूजा की। पृथुने भी सभीके पूज्य हो और अनेकानेक कार्य करके अपने यशका विस्तार करते हुए धरातलका शासन किया था। अतएव अन्तकालमें उनको परमपद प्राप्त हुआ। इतनी कथा सुनकर विदुरने मैत्रेय मुनिसे पूछा—हे ब्रह्मन् ! पृथुने कौन-कौन सत्कर्म किये थे। सो कृपापूर्वक हमसे कहिये। मैत्रेयजी बोले—हे विदुरजी ! गंगा और यमुनाके मध्यप्रदेशमें पृथुजीके रहनेका स्थान अर्थात् राजधानी थी। पृथुजी वहाँ रहकर पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यकर्मोंको क्षीण करनेके लिए विषयभोग करने लगे। सातों द्वीपकी पृथ्वीमें वे ही एक दण्डधारी राजा थे। वे केवल दण्डधारी ही नहीं थे, वरन् सबके लिए यथायोग्य दण्डका विधान भी करते थे। एक समय महाराज पृथुने एक महान् यज्ञ किया। उस यज्ञमें देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षि सभी एकत्र हुए और महासभाका आयोजन हुआ। उस सभामें पूजनीय सभ्य लोगोंकी यथायोग्य पूजा होनेके बाद सब प्रकारके शुभ चिह्नोंसे सुशोभित महाराज पृथुने सभाको चारों ओर देखा और कहा—हे सभ्यगण ! सभी साधु पुरुषोंका यहाँ आगमन हुआ है। मैं जो कहता हूँ, उसे आप लोग सुनें। मैं प्रजाका पालन करनेकी नीयत और धर्मतत्त्व जाननेकी इच्छासे कुछ कहूँगा। क्योंकि धर्म जाननेकी इच्छा रखनेवालोंको साधु-महात्माओंके आगे अपने हृदयका भाव प्रकट कर देना चाहिए।

ब्रह्माने प्रजापालन और शासनका भार मुझे सौंपकर दण्डधारी राजा बनाया है। मेरा कर्तव्य है कि प्रजाजनोंको धर्मकी शिक्षा देकर उनसे कर ग्रहण करूँ और उसी धनसे उनका सब अभाव दूर करूँ। जो राजा प्रजासे कर लेकर ऐसा नहीं करता, वह पापका भागी होता और उसका ऐश्वर्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसीलिए हे प्रिय प्रजागण! तुम लोग भगवान वासुदेवमें चित्त लगाकर अपने-अपने धर्मका पालन करो। ऐसा करोगे तो मेरे प्रति तुम लोगोंकी बड़ी कृपा समझी जायगी। हे देवऋषिगण! कर्मके फलदाता सर्वशक्तिमान परमेश्वर हैं, ऐसा सभीको स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि कभी किसीका कार्य सिद्ध हो जाता है और दूसरेका सिद्ध नहीं होता। हे प्रजागण! परमेश्वर ही जीवोंके मोक्षदाता हैं। अन्य देवताओंसे मुक्ति मिलनेकी सम्भावना नहीं है। जिनके चरणसे पतितपावनी गंगा निकली हैं, उनके चरणोंका आश्रय लेनेसे पुरुषके मनका मैल धुल जाता और वैराग्य उत्पन्न होता है। हे प्रजागण! मन और वचनसे तुम उनका ही ध्यान धरो, उनकी स्तुति करो और सेवा-परिचर्या द्वारा नित्य उनकी उपासना करते रहो। इसी उपायसे तुम लोगोंका प्रयोजन सिद्ध होगा। यागयज्ञादि सभी कर्म भगवानपर दृष्टि रखकर करना चाहिये। हे विदुर! महाराज पृथुने हरिभजनसे विमुख लोगोंको भजनमें प्रवृत्त करते हुए कहा—अहो! ये लोग मुझपर बड़ा अनुग्रह करते हैं, जो सब जगत्‌के गुरु श्रीहरिको अपने-अपने धर्मसे भजते हैं। अब मेरी इच्छा है कि राजकुलका तेज ब्राह्मणों और वैष्णवोंके कुलपर कदापि अपना प्रभाव न प्रकट करे। हे सभ्यगण! ब्रह्मण्यदेव पुरातन पुरुष श्रीहरि

ब्राह्मणोंके चरणोंकी वन्दना करके ही लक्ष्मी और जगत्को पवित्र करनेवाले यशको प्राप्त कर सके हैं। अतएव तुम लोग विनम्रभावसे हरिभजनमें तत्पर रहकर ब्राह्मणोंकी सेवा करो। हे सभ्यगण! ब्राह्मणोंकी सेवा करनेसे अति शीघ्र चित्त शुद्ध हो जाता और उसके फलस्वरूप ज्ञान-वैराग्य आदिके विना ही मोक्ष प्राप्त होता है। अतएव देवताओंके लिए भी ब्राह्मणोंसे बढ़कर श्रेष्ठ कोई नहीं है। सो तुम लोग ब्राह्मणोंकी सेवा करो। ऐसा करोगे तो स्वतः यज्ञादिका फल पा लोगे। हे सभ्यगण! सबके अन्तर्यामी हरिकी भी तृप्ति ब्राह्मणके मुखसे ही होती है। भगवान अनन्त सर्वदेवमय और चैतन्यमूर्ति हैं। तत्त्वज्ञानी पण्डितगण इन्द्रादि देवोंका नाम लेकर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणमुखमें जो हवन करते हैं, उससे श्रीहरिको जैसी तृप्ति होती है वैसी अचेतन अग्निके मुखमें हवन करनेसे नहीं होती। क्योंकि उपनिषद्में विप्रोंको ज्ञानधन कहा गया है। इसके अतिरिक्त जिस वेदसे यह विश्व आदर्शकी भाँति भासित होता है, उसी नित्य, शुद्ध और सनातन वेदको ये ब्राह्मण नित्य धारण किये रहते हैं। हे आर्य! मेरी यही कामना है कि जितने दिनोंतक जीवित रहूँ, उतने दिन ब्राह्मणोंके चरणोंकी धूलि अपने किरीटपर धारण करूँ। ब्राह्मणोंकी चरणरेणु सामान्य वस्तु नहीं है। जो लोग उसे धारण करते हैं, उनके पातक शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इन सब कारणोंसे मेरी यही इच्छा है कि ब्राह्मणकुल, गौवें और अपने अनुचरोंके साथ भगवान विष्णु मुझपर सदा प्रसन्न रहें। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इस प्रकार महाराज पृथुने ब्राह्मणोंके प्रति अपना भक्तिभाव प्रकट किया तो पितृगण, देवगण और ब्राह्मण लोग अत्यन्त

प्रसन्न हुए और साधु-साधु कहकर राजाकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले—अहो! सत्पुत्रसे मनुष्यको सद्गति मिलती है, यह कथन यथार्थ है। क्योंकि ब्रह्मशापसे नष्ट होकर भी पापी राजा वेण पृथु जैसे सुपुत्र द्वारा नरकसे बच गया। ऐसे ही अधम दानव हिरण्यकशिपु भी अपने सुपुत्र प्रह्लादके प्रभावसे त्राण पा गया था। हे महाराज! आप पृथ्वीके पिता हैं, आप सैकड़ों वर्ष जियें।

द्वाविंश अध्याय

भगवानके आदेशसे महर्षि सनत्कुमारका राजा पृथुको ज्ञानोपदेश

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! अब आगेकी कथा सुनो। लोग महाराज पृथुकी प्रशंसा कर रहे थे, उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी चार ऋषि आकाशसे आते हुए दिखाई पड़े। उनको देखकर सभासदों और अनुचरों आदिके साथ राजा उठकर खड़े हो गये और आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। ऋषियोंके आनेपर महाराज पृथुने अर्घ्यपात्र और आसन देकर यथोचित पूजा की। हे विदुर! ये चारों ऋषि भगवान शंकरके अग्रज होनेके कारण महामान्य थे। वे लोग सोनेके सिंहासनोंपर बैठे और महाराज पृथुने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—हे महोदय! आप लोग दूसरे योगियोंके समान नहीं हैं। आप तो साक्षात् भगवान हैं। भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिए सिद्धरूप धारण करके पृथ्वीमें भ्रमण करते रहते हैं। मैत्रेयजीने कहा—महाराज पृथुके ये वाक्य सुनकर श्रीसनत्कुमारजी बोले—हे राजन्! सभी शास्त्रोंमें भली भाँति विचार करके पुरुषके कल्याणके दो ही मार्ग निश्चित हुए हैं—एक तो आत्मासे भिन्न

मिथ्या शरीरादिमें वैराग्य और दूसरा निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मामें रति अर्थात् दृढ़ भक्ति। हे राजन्! किन्तु यह दुर्लभ है। पवित्र हरिकथा, योगनिष्ठा, योगेश्वरोंकी उपासना, अर्थप्रिय और कामार्थियोंका संगत्याग, अहिंसा, इन्द्रियदमन, अन्य धर्मोंकी निन्दा न करना, व्रत आदि नियम, शीत और उष्ण सहन करना—ये सब ऐसे साधन हैं, जिनसे आत्माके सिवा अन्य शरीर आदि मिथ्या पदार्थोंमें आसक्ति न होकर आत्मामें दृढ़ भक्ति होती है। हे महाराज! आत्मरति हो जानेपर आग जैसे अपने उत्पत्तिस्थल काष्ठको जला देती है, उसी प्रकार ज्ञान और वैराग्यके बलसे अहंकार जल जाता है। तब पुरुष सुख-दुःखका कुछ भी अनुभव नहीं करता। बादको मैं-मेरा आदि भेदबुद्धि भी नष्ट हो जाती है। हे राजन्! आत्मा एक है। केवल नाम भेदसे वह विभिन्न रूपोंमें प्रकट होता है। हे महाराज! मुक्तिका कारण मैंने वर्णन कर दिया। अब यह बता रहा हूँ कि आत्माके अतिरिक्त मिथ्या पदार्थोंमें आसक्त होनेसे किस तरह संसार बन्धनका कारण हो जाता है। विषयोंकी चिन्ता करते रहनेसे इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर खिंच जातीं और पीछेसे वे इन्द्रियाँ वैसे ही मनको अपनी ओर खींचती हैं जैसे जलाशयके तटवाले कुश आदि तृण अपने मूलसे जलको खींचते हैं। अन्तमें मन बुद्धिकी विचारशक्ति अर्थात् चेतनाको हर लेता है। तब अविवेकी पुरुषोंको कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। चेतना अर्थात् विचारशक्तिके चले जानेपर स्मृति (पूर्वापरकी समझ) भ्रष्ट हो जाती है। हे राजन्! इसीको विद्वान् लोग आत्माके द्वारा आत्माका विनाश कहते हैं। आत्माकी उन्नति ही मनुष्यका स्वार्थ

है और आत्मा द्वारा आत्माके नाशसे बढ़कर और कोई हानि नहीं है। हे राजन्! जो व्यक्ति घोर संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि धर्म अर्थ काम और मोक्षमें विघ्न डालनेवाली वस्तुओंका संग्रह कभी न करे। हे महाराज! मोक्ष ही पुरुषार्थ है। धर्म अर्थ और काममें सदैव कालका भय बना रहता है। हे नरेन्द्र! ईश्वर सर्वत्र प्रकाशमान है। वह सत्य-स्वरूप है। अतएव नित्य मुक्त और परिशुद्ध है। इसी कारण वह गुणमय कर्मों और मलिन मायासे अलग है। अहा! मैं उन्हीं भगवानकी शरणमें जाता हूँ। अतएव तुम उन्हीं शरण लेने योग्य भगवान वासुदेवको एकाग्र चित्तसे भजो। यतिगण ब्रह्मविद्या द्वारा अनेक कष्ट सहकर संसाररूपी सागरको पार करना चाहते हैं। तुम भी भगवान हरिके भजन करने योग्य चरण कमलोंको नाव बनाकर क्लेशमय और दुस्तर इस संसारसागरके पार चले जाओ। मैत्रेय-जी बोले—हे विदुर! ब्रह्माके पुत्र भगवान सनत्कुमारने जब इस प्रकार आत्मतत्त्वका मार्ग दिखाया, तब आदि राजा पृथुने भली भाँति उनकी प्रशंसा की और कहा–हे प्रभो! मैं गुरुदक्षिणा-में क्या दूँ? क्योंकि शरीर सहित अपना सर्वस्व मैंने साधुओंको अर्पण कर दिया था और उन्होंने उसे ग्रहणकर मुझे फिर प्रसाद-की भाँति लौटा दिया है। मैं उनकी जूठनमात्रका उपयोग करता हूँ। अथवा नौकर जैसे मालिकको उसीकी वस्तु (पान-इलायची आदि पदार्थ) देता है वैसे मैं भी आप लोगोंको प्राण, स्त्री, पुत्र, घर, राज्य, पृथ्वी, सेना, खजाना आदि अर्पण करता हूँ। आप इन्हें स्वीकार करें। इसके बाद चारों योगीश्वर पृथुकी पूजासे

सन्तुष्ट होकर उनकी प्रशंसा करते हुए सबके देखते-देखते आकाश मार्गसे चले गये। महाराज पृथुने आत्मविद्या सीखकर अपनेको पूर्ण मनोरथ समझ लिया। इसके बाद पृथुने परब्रह्ममें मन लगा और सूर्यकी भाँति निर्मल होकर इन्द्रियसम्बन्धी विषयोंकी आसक्ति त्याग दी। हे वत्स विदुर! इस प्रकार पृथुने अध्यात्मज्ञान युक्त होकर कार्य करते-करते अपनी अर्चिनाम्नी भार्यासे विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक—ये पाँच पुत्र उत्पन्न किये। राजा पृथु प्रजाके अत्यन्त प्रिय थे। प्रजासे कर द्वारा धन लेकर समय-समयपर प्रजाकी भलाईमें खर्च करते थे। प्रजाजन भी आज्ञाकारी होकर सर्वदा उनका गुणगान करते रहते थे।

त्रयोविंश अध्याय

भार्याके साथ महाराज पृथुका वैकुंठगमन

मैत्रेयजी बोले—महाराज पृथु आत्मतत्व जाननेके बाद दान-ध्यान आदिमें रत रहकर वृद्धावस्थाको पहुँचे तो राज्यभार पुत्रके हाथमें सौंपकर भार्याके साथ तपोवनको चले गये। राजाके चले जानेपर प्रजाजनोंने बड़ा खेद किया। पृथुने जिस प्रकार प्रथम अवस्थामें पृथ्वीको जीतनेमें यत्न किया था, उसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रममें जाकर उग्र तपस्यामें उन्होंने अपना मन लगाया। उनके प्रतापसे कोई भी विघ्न उनको डिगा न सका। हे वत्स विदुर! महाराज पृथुकी कठोर तपस्याका वर्णन करता हूँ, सुनो। कुछ दिन कन्द-मूल-फलोंका आहार करके, फिर कुछ दिन सूखे पत्ते खाकर, फिर कुछ दिन केवल जल पीकर और फिर कुछ दिन केवल वायु

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

पीकर पृथुने घोर तप किया। वीर पृथु गर्मियोंमें पंचाग्नि (चारों ओर जलती हुई अग्नि और ऊपर प्रखरतर सूर्यका उत्ताप) तापकर और वर्षामें खुले स्थानोंमें रहकर और शिशिर ऋतुमें गले-गलेभर पानीमें खड़े-खड़े तप करते रहे। मुनि अवस्थाको प्राप्त पृथु सर्वदा पृथ्वीपर सोते थे। उन्होंने क्षमा धारण करके शान्त स्वभाव ग्रहण किया। वाणी और सब इन्द्रियों और मनका दमन किया। वीर्यको ब्रह्माण्डमें चढ़ा लिया और प्राणवायुको प्राणायाम द्वारा अपने वशमें किया। इस प्रकार दिन-रात सनत्कुमारके उपदेशानुसार वे परम पुरुषकी उपासना करने लगे। हे वत्स विदुर! पृथु श्रद्धाके साथ भगवानकी आराधना करते थे। उसके फलस्वरूप कर्मबन्धन कट गये, वैराग्य प्रबल हुआ और भगवत्कथामें रति उत्पन्न हुई। वीरश्रेष्ठ राजा पृथु इस भाँति आत्माको परमात्मामें लगाकर ब्रह्मरूप हो गये और कालके आनेपर उन्होंने अपने स्थूल शरीरको त्याग दिया। हे विदुर! पृथुका शरीर जिस प्रकार छूटा, अब उसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। उन्होंने शरीर छोड़नेके समय दोनों एड़ियोंसे गुदाछिद्र बन्द करके अपान वायुको क्रमशः मूलाधारसे ऊपर उठाया। फिर अपानको नाभिदेशमें लाकर समान वायुमें मिलाया और क्रमशः हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें, फिर कंठमें और फिर भौंहोंके बीचमें लाकर स्थापित किया। तत्पश्चात् प्राणवायुको ब्रह्माण्डमें ले जाकर रोका। तदनन्तर महात्मा पृथुने शरीरस्थित वायुको वायुमें, देहके कठिन भागको पृथ्वीमें, देहके तेजको तेजमें, देहकी इन्द्रियोंके छिद्रोंको आकाशमें एवं देहके रस अर्थात् रुधिरको जलमें लीन कर दिया। इस प्रकार शरीरमें स्थित पंचतत्त्वोंको

पंचतत्त्वोंमें मिलाकर अद्वितीय आत्माको पानेके लिए पंचमहाभूतोंको भी लीन कर दिया अर्थात् पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें मिला दिया। फिर मनको इन्द्रियोंमें और इन्द्रियोंको पंचतन्मात्रामें लय कर दिया। अन्तमें अवशिष्ट आकाश और पंचतन्मात्राको अहंकारके सहित महत्तत्वमें लीन कर दिया। इसके बाद उन्होंने ज्ञान और वैराग्यके सहारे जीवन त्यागा। हे विदुर! इसके बाद पृथुपत्नी अर्चिकी कथा कहता हूँ, सुनो। कोमल शरीरवाली अर्चि भी अपने पतिके साथ वनमें गयी थीं। वे पतिके साथ भूमिपर सोतीं, पतिके प्रति निष्ठा रखकर फलमूल खाकर जीवन धारण करतीं और नित्य पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। इस प्रकार कठोर व्रतमें रहकर अर्चि बहुत दुबली हो गयीं। फिर भी उनको कुछ कष्ट नहीं हुआ। क्योंकि प्रिय पतिके सप्रेम हाथ फेर देनेसे ही उनका सब कष्ट दूर हो जाता था। बादको आपने प्यारे पति पृथुके शरीरको चेतनाहीन देखकर पतिव्रता अर्चिने कुछ विलाप किया और फिर सती होनेके विचारसे पर्वतके शिखरपर अपने हाथ चिता लगायी। नदीके जलमें स्नान किया और पतिको तिलांजलि दी। फिर देवताओंको प्रणाम किया और चितापर पतिके शरीरको रखकर आग लगा दी और तीन बार उसकी प्रदक्षिणा करके हृदयमें पतिके चरणोंका ध्यान करती हुई आप भी चितामें बैठ गयीं। हे विदुर! पतिव्रता रानी अर्चिको अपने पतिके साथ सती होते देखकर आकाशमें देवगण और देवांगनाएँ स्तुति करती हुई उनपर फूल बरसाने और उनकी प्रशंसा करने लगीं। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स

विदुर ! अर्चि पतिलोकमें अर्थात् महाराज पृथु जिस लोकमें गये थे, उस लोकमें चली गयी। पृथुके इस परम पवित्र चरित्रको जो कोई एकाग्र मनसे श्रद्धाके साथ पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है, वह राजा पृथुकी गतिको प्राप्त होता है। इस चरित्रके पढ़नेसे ब्राह्मणका ब्रह्मतेज बढ़ता है। क्षत्रियको चक्रवर्ती राज्य मिलता है। वैश्य धन अन्नसे युक्त होता और शूद्रका सब पातक नष्ट हो जाता है। निःसन्तानको सुन्दर सन्तानकी प्राप्ति होती और मूर्ख मनुष्य पण्डित हो जाता है। यह चरित्र पवित्र और स्वस्त्ययनस्वरूप, स्वर्गका साधन है और कलिके पापोंका नाशक है। जो राजा युद्धमें जाते समय इस चरित्रको सुनकर शत्रुओंपर चढ़ाई करता है तो शत्रु स्वयं उस राजाके अधीन होकर उसी तरह भेटें देते हैं, जैसे कि राजा पृथुको सब राजे भेंट देते थे। इस पवित्र चरित्रको पढ़ने सुनने या कीर्तन करनेसे अनायास संसारसागरसे पार हुआ जा सकता है।

चतुर्विंश अध्याय

प्रचेतागणोंकी उत्पत्ति और भगवान रुद्रसे मिलन

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! पृथुपुत्र विजिताश्वने पृथ्वीमण्डलके अधिपति होकर अपने पुत्र हर्यक्षको पूर्व दिशा, धूम्रकेशको दक्षिण दिशा और द्रविणको उत्तर दिशाका स्वामी बनाया। महाराज पृथुके अश्वमेध यज्ञके घोड़ेको इन्द्र चुरा ले गये थे तो विजिताश्वने इन्द्रका प्राण वध नहीं किया। इस कारण इन्द्रसे उनको अन्तर्धान विद्या (अदृश्य हो जानेकी विद्या) मिली थी। इस

कारण उनका एक नाम अन्तर्धान भी था। उन्होंने अपनी रानी शिखण्डिनीसे अपने ही समान गुण, रूप और बलवाले पावक, पवमान और शुचिनामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों अग्नि थे और वशिष्ठ ऋषिके शापसे मनुष्य योनिमें उत्पन्न हुए और शाप छूट जानेपर फिर अग्नि हो गये। उनकी नभस्वती नामक एक दूसरी रानी भी थी। उसके गर्भसे हविर्धान नामक एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। पिताका राज्य पाकर अन्तर्धानने कुछ समय तक राज्य किया। बादको उसके मनमें यह विचार आया कि कर लेना, दण्ड देना, शुल्क अर्थात् चुङ्गी लगाना—ये सब राजकोषमें रुपये लानेके साधन हैं। राजवृत्ति प्रजाको पीड़ा पहुँचाती है। इस प्रकार सोचकर वे अपना जीवन यज्ञ आदि कामोंमें बिताने लगे और राजवृत्तिसे एक तरह अलग हो गये। आत्मज्ञानी अन्तर्धान अन्तमें उन यज्ञोंसे भी निष्काम होकर परम पुरुषकी आराधना करते हुए समाधि लगाकर पुण्यलोकमें जा पहुँचे। हे वत्स विदुर! पृथुके द्वितीय पुत्र हविर्धानने अपनी स्त्री हविर्धानीसे बर्हिषद, जय, शुक्र, कृष्ण, सत्य और जितव्रत ये छः पुत्र उत्पन्न किये। उन पुत्रोंमें बर्हिषद महाभाग्यवान और प्रजापति थे। वे सर्वदा योगादिमें लीन रहते थे। इसलिए उनका दूसरा नाम प्राचीनबर्हि भी पड़ा। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्होंने शतद्रुति नाम्नी समुद्रकी कन्यासे विवाह किया। शतद्रुतिके गर्भसे दस पुत्र हुए। उन सबका नाम प्रचेता पड़ा। पिताकी आज्ञासे प्रचेतागण प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे तप करनेके लिए समुद्रके भीतर गये और वहाँ दस हजार वर्ष तक उन्होंने श्रीहरिकी आराधना की। जाते समय

राहमें महादेवजी मिल गये। महादेवजीने प्रसन्न होकर परमेश्वरकी आराधना करनेकी आज्ञा दी और उन्होंने जिस भाँति बताया उसी भाँति इन्द्रियोंको जीतकर नियमपूर्वक हरिका ध्यान, जप और पूजन करने लगे। विदुरने पूछा—हे ब्रह्मन्! जैसे राहमें प्रचेताओंसे शिवजीकी भेंट हुई हो और शिवजीने प्रसन्न होकर जैसे उन्हें उपदेश दिया हो सो सब आप हमसे कहिये। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स! प्रचेतागण पिताका आदेश शिरोधार्य करके तपस्याके लिए पश्चिम दिशाको चले। कुछ दूर जानेपर मानसके समान निर्मल और मनोहर एक तालाब दिखायी पड़ा। उसी समय महादेवजी अपने सेवकोंके साथ उस सरोवरसे निकल रहे थे। उन प्रचेताओंने देखा कि शिवजीके पीछे-पीछे चलते हुए देवगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। प्रचेताओंने शिवजीको प्रणाम किया। हे विदुर! धर्मवत्सल तथा दुःखविनाशकारी शिवजी धर्मपरायण प्रचेताओंको देखकर बोले—तुम लोग राजा प्राचीनबर्हिके लड़के हो, यह मुझे विदित है। तुम्हारा कल्याण हो। तुमपर अनुग्रह करनेके लिए ही मैंने दर्शन दिया है। हे राजनन्दनगण! तुम लोग परम भागवत हो। मैं जो स्तुति तुम्हें बता रहा हूँ, उसीसे भगवान वासुदेवकी आराधना की जा सकेगी। यह कहकर उन्होंने भगवान विष्णुका स्तोत्र पाठ करके सुनाया और कहा—हे राजपुत्रो! शुद्ध होकर अपने धर्मका आचरण करते हुए अपना अन्तःकरण भगवानको अर्पण करके अर्थात् श्रीहरिमें मन लगाकर इस स्तोत्रका पाठ करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। इस स्तोत्रके पाठसे जो कोई भगवानको प्रसन्न करता है, उसकी

सभी कामनाएँ श्रीहरिकी कृपासे पूरी हो जाती हैं। इस स्तोत्रको एकाग्र मनसे जपते हुए तप करो। अन्तमें तुम लोगोंको अभिलषित वस्तुएँ मिलेंगी।

पञ्चविंश अध्याय

प्रचेताओंके तपस्यारत होनेपर नारदका प्राचीनबर्हिके पास जाना और पुरंजन उपाख्यान सुनाकर विविध सांसारिक विषय बताना।

मैत्रेयजीने कहा—भगवान रुद्रने प्रचेताओंको इस प्रकार उपदेश दिया तो उन्होंने रुद्रदेवका पूजन किया और उन राजकुमारोंके देखते-देखते शंकरभगवान अन्तर्धान हो गये। प्रचेतागणने शिवजीके बताये स्तोत्रका जप करते हुए जलके भीतर दस हजार वर्ष तक घोर तप किया। हे विदुर! देवर्षि नारदने इसी समय प्राचीनबर्हिके पास आकर ज्ञानोपदेश देते हुए समझाया और पूछा—हे महाराज! तुमने कितने समय तक कर्ममें आसक्त होकर जीवन बिताया है? दुःखका नाश और सुखका लाभ ये दोनों बातें कल्याणकी हैं। सो इन कर्मोंसे न दुःखका नाश होगा और न सुख ही मिलेगा। प्राचीनबर्हिने कहा—हे महाभाग! मेरी बुद्धि कर्मोंमें लिप्त हो चुकी है। इसीसे परम कल्याणस्वरूप मुक्तिका ज्ञान मुझे नहीं है। हे भगवन्! कृपा करके आप मुझको निर्मल ज्ञानका उपदेश दीजिये। जिससे कर्मोंके पाशसे मेरी मुक्ति हो। हे ब्रह्मन्! मूर्ख लोग पुत्र-स्त्री-धन आदि में आसक्त होकर संसारके अनेक मार्गोंमें भटकते फिरते हैं। ऐसे लोग कभी परमार्थ (मोक्ष) पानेमें समर्थ नहीं होते। राजाके मनमें कर्मफल-

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

के प्रति वैराग्य उत्पन्न करके ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेके लिए देवर्षि नारदने विनष्ट यज्ञपशुओंको अपने योगबलसे जिलाकर कहा—हे राजन् ! तुमने निर्दयी होकर यज्ञोंमें हजारों पशुओंकी हत्या की है। वे सभी तुम्हारे मरनेकी राह देख रहे हैं। तुम मरोगे तो ये सब बदला लेंगे। ये कुपित होकर वज्रसदृश अपनी सींगोंसे तुम्हारे शरीरको छिन्न-भिन्न करेंगे। तुमपर बड़ा भारी संकट उपस्थित है। हे राजन् ! तुमको इस संकटसे बचानेकी इच्छासे मैं एक पुरातन इतिहास—जिसमें राजा पुरंजनका चरित्र है—कह रहा हूँ। मन एकाग्र करके सुनो। हे राजन् ! पुरंजन नामक एक यशस्वी राजा था। उसका एक मित्र था, जिसका नाम और कर्म किसीको विदित न था। पुरंजन जीव था और उसका मित्र ईश्वर था। राजा पुरंजन सुखभोगका स्थान खोजता हुआ पृथ्वीमें विचरने लगा। किन्तु कहीं भी उसे सुखदायक स्थान नहीं मिला। तब वह कुछ उदास-सा होकर सोचने लगा कि मैंने पृथ्वीमें जो-जो नगर देखे, उनमेंसे कोई भी अच्छा नहीं जँचता। इसके बाद वह फिर घूमने लगा। घूमते-घूमते एक समय उसने हिमवान पर्वतके दक्षिण शिखरपर भारतवर्षमें एक पुरी देखा। उस पुरीमें नव द्वार थे। वह दोषोंसे रहित और सब लक्षणोंसे युक्त था। चारों ओर ऊँची दीवार उपवन अँटारी खाईं झरोखे फाटक आदि उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसका उपवन अतिशय मनोहर था। पक्षीगण कोलाहल कर रहे थे। उस उपवनमें पुरंजनने एक श्रेष्ठ रमणी देखी। उसके दस भृत्य थे। वह रमणी युवती थी। उस पुरीका द्वारपाल एक पाँच सिरका सर्प उस पुरीकी रक्षा करता था। वह

सर्प भी उसके साथ था। देखनेसे प्रतीत होता था कि वह रमणी अपने लिए पति खोजने उस उपवनमें आयी है। उसकी सुन्दरताका बर्णन कहाँतक किया जाय ? उसकी नाक परम सुन्दर थी और दोनों कपोल गोल थे। मुख कमलके समान प्रफुल्लित था। समान कानोंमें कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा थी। वह पीले रंगकी धोती पहिने थी। विशाल नितम्ब था। चरणोंमें नूपुर ध्वनि कर रहे थे। दोनों स्तन समान गोल और उभड़े हुए थे। वह उन्हें लज्जित भावसे अंचलमें ढाँक रही थी। उसके कटाक्ष सान धरे हुए बाणके समान तीखे थे। भौंहें धनुषके समान थीं। मुखमण्डलपर मनोहर हास्यकी झलक शोभा पा रही थी। उस रमणीके कटाक्षरूपी बाणसे बिंधकर पुरंजनने पूछा—हे कमलमुखि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? कहाँसे आयी हो ? हे सुनयने ! ये तुम्हारे साथी दस सेवक कौन हैं ? और यह महाबलवान ग्यारहवाँ योद्धा कौन है ? हे सती ! क्या तुम लज्जा हो ? क्या तुम भवानी हो ? अथवा लक्ष्मी हो ? जो एकाग्र मनसे इस निर्जन वनमें अपने पति विष्णुको खोज रही हो ? हे राजन् ! जब पुरंजन किसी अधीर पुरुषकी भाँति इस प्रकार प्रार्थना करने लगा, तब वह स्त्री भी वीर पुरुष निरंजनपर मोहित होकर हँसती हुई आदरपूर्वक कहने लगी—हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं नहीं जानती कि मुझे या किसी औरको उत्पन्न करनेवाला कौन है ? मुझे अपना या किसी दूसरेका नाम और गोत्र भी मालूम नहीं है। हे पुरुषसिंह ! ये सब पुरुष मेरे सखा हैं और ये स्त्रियाँ मेरी सखियाँ हैं। यह सर्प मेरी पुरीकी रक्षा करता है। हे स्वामी ! इस नवद्वारकी पुरीमें रहकर तुम

सौ वर्षतक मेरे साथ विषयभोग करो। हे प्रभो! आपके सिवा मैं और किसके साथ रमण करूँगी? अन्य नैष्ठिक पुरुष रतितत्त्वको क्या जानें? वे कल या बादको क्या होगा इसकी चिन्ता नहीं करते। इसलिए वे पशुओंके समान हैं। हे प्रभो! गृहस्थाश्रमके समान सुख और कहाँ है? इस आश्रममें धर्म, अर्थ, काम, पुत्र-सुख, मोक्ष, यश और मुक्ति आदि सभी पदार्थ मिलते हैं। यति लोग इनका नामतक नहीं जानते। पण्डितोंका मत है कि पितृ, देव, ऋषि, मनुष्य और भूतगणका तथा अपना इस गृहस्थाश्रमसे ही कल्याण होता है। हे महाबाहो! इस पुरीमें मुझ-सी कौन स्त्री होगी जिसका मन आप सरीखे उदार, सुन्दर और स्वयं आये हुए वीर पुरुषको अपना पति न बनावे? हे राजन्! इस तरह परस्पर प्रतिज्ञा करके दोनों उस पुरीके भीतर गये और आनन्दपूर्वक आमोद-प्रमोदमें वर्षपर वर्ष बिताने लगे। हे राजन्! उस पुरीके ऊपरवाले हिस्सेमें सात द्वार थे—अर्थात् दो नेत्र, दो नाक, दो कान, एक मुख थे। नीचेके खण्डमें दो द्वार अर्थात् मलद्वार और लिंग था। पाँच द्वार तो पूर्व ओर थे, एक दक्षिणमें और एक उत्तरमें था और दो द्वार पश्चिममें थे। नेत्रोंसे दर्शन, नाकसे सूँघना होता था और मुँहसे बातचीतकी जाती थी और अन्न आदि खाद्य पदार्थ खाये जाते थे। हे राजन्! दक्षिण द्वारका अर्थ दक्षिण कर्णका नाम पितृहू था। पुरंजन अर्थात् जीवने उससे पांचाल राज्य प्राप्त किया और पाँच विषयोंके शास्त्र सुनने लगा। इस तरह उत्तर द्वार अर्थात् वाम कर्णका नाम देवहू था। उससे उसको उत्तर पांचालका राज्य मिला अर्थात् निवृत्ति लक्षणवाले शास्त्रों-

को सुनने लगा। पश्चिम द्वार या लिंग नाम आसुरी था। जीव गुह्येन्द्रियसे युक्त होकर उस द्वारसे ग्राम्य-विषय अर्थात् स्त्री-संसर्ग-जनित सुख अनुभव करता था। पश्चिममें आसुरीके अतिरिक्त एक और द्वार था, जिसका नाम निर्ऋति था। उससे मलत्याग-की क्रिया होती थी। इस पुरीमें दो और अंधद्वार हाथ और पैर थे, उनका नाम निर्वाक् और पेशस्कृत था। उनसे गमन आदि अनेक कार्य किये जाते थे। पुरंजन जिस समय अन्तःपुर अर्थात् हृदयमें जाता था, तब मन हृदयके साथ मिलकर कभी मोह कभी प्रमाद और कभी हर्षको प्राप्त होता था। हर्ष और मोहादिसे ही सन्तानोत्पत्तिकी क्रिया सम्पन्न होती थी। इस प्रकार पुरंजन कर्मोंमें आसक्त होकर स्त्रीके वशमें हो गया। अन्न मिठाई मदिरा आदि जब जो सामग्री वह देती थी, उसे वह खा जाता था। वह गाती तो वह भी गाता, रोती तो वह भी रोने लगता और बोलती तो आप भी बोलने लगता था। वह हँसती तो हँसने लगता, वह जो-जो कर्म करती वह भी वही करता था। पुरंजन अपनी इच्छासे कुछ नहीं करता था। स्त्री जो-जो करती थी, वह भी उसके अधीन होकर वही कर्म करता था।

—o—

षड्विंश अध्याय

पुरंजनकी आखेटयात्राके रूपक वर्णनमें संसारकी कथा

नारदजी बोले—एक समय राजा पुरंजन रथपर अर्थात् स्वप्नरूपी शरीरपर सवार होकर पंचप्रस्थ नामक वन अर्थात् जहाँ शब्दादि विषय हैं, उस वनको गया। हे राजन्! उसका

शरासन अर्थात् अहंकार अत्यन्त प्रचण्ड था। उसके रथमें पाँच घोड़े अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ नियोजित थीं। उसमें दो डंडियाँ अर्थात् अहंमन्यता और माया लगी थीं। दो पहिये अर्थात् पाप और पुण्य लगे हुए थे। एक जुआ अर्थात् प्रधान था। तीन ध्वजाएँ अर्थात् सत्त्व रज तम थे। पाँच बन्धन अर्थात् वायु थे। एक बागडोर अर्थात् मन था। एक सारथी अर्थात् वृत्ति थी। रथीके बैठनेका एक स्थान अर्थात् हृदय था। दो युग बाँधनेके स्थान अर्थात् शोकमोह थे। उनमें पाँच विषय अर्थात् शब्दादि फेंके जानेके साधनमें पाँच प्रहरण थे। सात चर्मादिके आवरण थे और पाँच प्रकारकी गति अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ थीं। उस रथका सब सामान सोनेका था। हे राजन्! पुरंजनने शिकारीका वेश धारण किया। उसने सोनेका कवच पहना। पीठपर अक्षय तरकस बाँध लिये। एकादश सेनापति अर्थात् अहंकारादि उसके साथ थे। पुरंजन वनमें प्रवेश करके धनुष-बाण अर्थात् रागद्वेषादि ग्रहण करके शिकारके लिए घूमने लगा। हे राजन्! उसका मन शिकारमें इतना आसक्त हो गया कि उसने अपनी धर्मपत्नी अर्थात् बुद्धिको त्यागने योग्य न होनेपर भी त्याग दिया। बादमें आसुरी बुद्धि धारण करके बाण अर्थात् रागादिसे अरण्यमें अर्थात् भजनीय देशमें वनचारियों अर्थात् भजनीय विषयोंको मारने लगा अर्थात् आत्माको वशमें कर लिया। हे राजन्! शिकार खेलनेका भी शास्त्रमें नियम है। राजा प्रसिद्ध तीर्थ अर्थात् प्रधान प्रधान श्राद्धादिके अवसरपर आवश्यकतानुसार वनमें जाकर पवित्र पशुओं अर्थात् विषयोंका वध करे अर्थात् उन्हें भोगे। मांस

भोजनकी लालसासे पशुओंको मारना निषिद्ध है। व्यवस्थाके अनुसार पशुवध करनेसे पाप नहीं लगता। जो अहंकार वश इस व्यवस्थाका उल्लंघन करता, वह बन्धनको प्राप्त होता है। गुणोंके प्रवाहमें पड़कर बुद्धिभ्रष्ट होनेके कारण अधोगति मिलती है। हे राजन्! पुरंजन लगातार शिकार करते-करते थक गया। उसे भूख और प्यास संताने लगी। तब वह घर लौट गया। घर पहुँचकर स्नान और भोजन किया। थकावट दूर होनेपर शय्यापर लेट गया। तब उसे कामदेवने सताया। फिर अपनी सुसज्जिता महिषीसे सुखसम्भोगकी अभिलाषा की। उसका मन मदनबाणसे उन्मत्तसा हो गया था। किन्तु वह राजसी वृत्तिमें लिप्त था। अतएव अपनी महिषी अर्थात् सात्त्विकी बुद्धिको नहीं देख सका। तब वह उदास होकर वहाँकी अन्य स्त्रियोंसे पूछने लगा—हे स्त्रियों! तुम और तुम्हारी मालकिन कुशलसे तो हैं? पहलेकी भाँति यह सब गृहसामग्री मुझे क्यों नहीं रुचती? यदि घरमें माता न हो अथवा सती स्त्री भी न हो तो वह घर बिना पहियेवाले रथके समान व्यर्थ होता है। किस बुद्धिमान व्यक्तिको भला वह अच्छा लग सकता है। चक्रविहीन रथमें भला कोई बैठ सकता है? सो मैं पूछता हूँ कि मेरी स्त्री कहाँ है? हे राजन्! पुरंजनकी बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा—हे नरनाथ! आपकी महिषी धूलिपर सोयी हुई हैं। वे क्या करना चाहती हैं, यह हम नहीं जानतीं। देखिये, वे पृथ्वीपर बिना बिछौनेके पड़ी हैं। यह सुनते ही पुरंजन घबड़ा गया। अपनी महिषीको धूलिभरी पृथ्वीपर पड़ी देखकर वह बहुत व्याकुल हो उठा और वह उसको सान्त्वना देने लगा। किन्तु

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

अपनी प्रेयसीका मनोभाव न जान सका। अनेक अनुनय-विनय करके पैरोंपर गिर और गोदमें उठाकर दुलारते हुए उससे ये वचन कहने लगा—हे सुन्दरि! तुमसे बिना कहे मैं शिकार खेलने चला गया था। मुझसे यह घोर अपराध हुआ। तुम दया करो। अपराध करनेपर सेवकको स्वामी दण्ड देते हैं और बादमें शिक्षा देकर उसे क्षमा भी कर देते हैं। हे प्रिये! मैं तुम्हारा सुहृद हूँ। इस प्रकार पुरंजनने पत्नीको मनानेके लिए अनेकानेक उपाय किये।

—o—

सप्तविंश अध्याय

संसारिक आसक्तिके कारण पुरंजनकी आत्मविस्मृति और कालकन्याका उपाख्यान

नारदजी बोले—हे महाराज! वह युवती पुरंजनको अपने वशमें करके दिन-रात रतिक्रियामें आसक्त रहकर व्यर्थ आयुक्षय करने लगी। राजा पुरंजन मदनके प्रभावसे अन्धा हो गया था। वह अपने ब्रह्मस्वरूपको भूल गया। हे राजन्! पुरंजन कामासक्त होकर अपनी महिषीके साथ इस तरह क्रीड़ा करने लगा कि उसकी सारी जवानी उसी क्रीड़ामें बीत गयी। इतने समयमें पुरंजनने पुरंजनीके गर्भसे ग्यारह सौ पुत्र उत्पन्न किये और उसकी आधी आयु बीत गयी। इसके बाद पुरंजनकी स्त्रीसे एक-सौ दस कन्याओंका जन्म हुआ। हे राजन्! पुरंजनसे जन्म होनेके कारण उन कन्याओंका नाम पौरंजनी पड़ा। पुत्रोंका और कन्याओंका विवाह हुआ तो उन सबने भी एक-एक सौ पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार पुरंजनके वंशका अत्यन्त विस्तार हो गया।

अब पुरंजन अनेक याग-यज्ञ और पूजा आदि करने लगा। इस प्रकार कुटुम्ब-जनोंके साथ आसक्त होकर वह अपनी भलाईके सभी विषयोंको भूल गया। ऐसे ही समयमें काल आकर उपस्थित हो गया। कराल काल विषयी पुरुषोंको बड़ा अप्रिय लगता है। हे राजन्! उस कालका नाम चंडवेग भी है। वह गन्धर्वोंका राजा था। उसके साथ बड़े बलवान तीन सौ साठ गन्धर्व अर्थात् दिवस थे। गन्धर्वोंकी श्वेत और श्यामवर्णकी तीन सौ साठ स्त्रियाँ थीं जो रात्रि थीं। श्वेत और कृष्णवर्णकी वे स्त्रियाँ परस्पर मिल-जुलकर रहतीं और कामके द्वारा निर्मित पुरी अर्थात् शरीरकी चोरी करती थीं। हे प्राचीनबर्हि राजन्! चण्डवेगके अनुचर गन्धर्व जब पुरंजनकी पुरी अर्थात् देहको नष्ट-भ्रष्ट करने लगे तब प्रजाजन अर्थात् प्राण आदि उनको मना करके रुकावट डालने लगे। गन्धर्वोंकी संख्या उनकी स्त्रियोंके साथ सात सौ बीस थी। पुरंजनकी पुरीका रक्षक बलवान सर्प अकेले उन सभीसे सौ वर्षतक लड़ता रहा। बहुत जनोंके साथ एककी विजय कभी नहीं होती। जब लड़ते-लड़ते उस सर्पका पराक्रम क्षीण होने लगा और वह शिथिल हो गया तो पुरंजन बान्धवगणके साथ बहुत ही उद्विग्न हो उठा। पहले कभी उसको भयग्रस्त होनेका अवसर नहीं मिला था। हे राजन्! कालकी एक कन्या अर्थात् जरा थी। वह अपने लिए वर ढूँढ़नेके लिए तीनों लोकमें घूमती फिरती थी। किन्तु किसीने उससे विवाह करना स्वीकार नहीं किया। इस कारण उसका नाम दुर्भगा पड़ा। बादको पुरुने उसको ग्रहण करना स्वीकार किया। इससे सन्तुष्ट होकर उसीने राजऋषि पुरुको वर देकर राज्यलाभ करा

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिया। शुक्राचार्यके शापसे राजा ययाति शापग्रस्त होकर वृद्धावस्थाको प्राप्त हुए तो उनके कनिष्ठपुत्र पुरुने पितृभक्ति दिखाकर उनकी वृद्धावस्था अर्थात् जराको स्वयं ग्रहण कर लिया था। इसीसे उसे प्रसन्नता हुई थी। हे प्राचीनबर्हि! वह कालकन्या एक समय घूमती हुई पृथ्वीमें आ रही थी और उसी समय मैं भी ब्रह्मलोकसे आ रहा था। मार्गमें उसने मुझे देख लिया। देखते ही वह काममोहित हो गयी और मुझसे प्रार्थना करने लगी कि आप मुझे अंगीकार कीजिये। मैंने ब्रह्मनिष्ठ होनेके कारण उसे ग्रहण नहीं किया और घृणा प्रकट की। तब उसने क्रोध करके मुझे बड़ा ही कठोर शाप देते हुए कहा कि हे नारद! तुम कभी एक स्थानपर न ठहरोगे, इधर-उधर मारे-मारे फिरा करोगे। हे राजन्! शापग्रस्त होकर मैंने विचार किया कि इस अबलाकी इच्छा मुझसे पूरी नहीं हुई, जिससे वह दुःखमें पड़ गयी है। इसलिए उसपर दया करके मैंने उसे यवनराजके पास अर्थात् आधि-व्याधियोंके अधीश्वरके पास भेज दिया और कहा कि तुम उसीको वरण कर लो। मेरे उपदेशानुसार कालकन्या यवनेश्वरके पास गयी और उसके गलेमें वरमाला डालकर प्रार्थना करने लगी कि हे यवनराज! तुम मेरे पति बनो। यवनराज अर्थात् मृत्युने स्वीकृति देकर मुसकुराते हुए कहा—मैंने तुम्हारे लिए भोगके स्थान ठीक कर दिये हैं। तुमको भयानक जानकर कोई भी ग्रहण करना नहीं चाहता। तुमको कोई न देख पायेगा। तुम अलक्षित भावसे विचरती हुई कर्मोंमें तत्पर जितने प्राणी हैं, उनसे भोग करो। ऐसा करनेसे सभी तुम्हारे पति होंगे। विनाशकी आशंका मत करो।

मेरी यवनसेना साथ लेकर जाओ और तीनों लोकोंमें विचरकर प्रजाका क्षय करो। प्रज्वार मेरा भाई है और तुम मेरी बहिन बन जाओ। मैं तुम दोनोंके साथ अलक्ष्यरूपसे लोगोंके बीच घूमता रहूँगा।

अष्टाविंश अध्याय

स्त्रीमें आसक्तिके कारण पुरंजनको स्त्रीका शरीर मिलना और ज्ञान होनेपर मुक्ति पाना

देवर्षि नारदने प्राचीनबर्हिको पुनः सम्बोधित करके कहा—हे राजन्! यवनराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भय नामक सैनिकगण प्रज्वार और कालकन्याके साथ पृथ्वीमें चारों तरफ विचरने लगे। एक दिन उन लोगोंने पुरंजनकी पुरीमें प्रवेश किया। वहाँ एक बूढ़ा सर्प अर्थात् प्राण उस पुरीकी रक्षा कर रहा था। कालकन्या बलपूर्वक पुरंजनपुरीको भोगने लगी। हे राजन्! कालकन्या जब पुरंजनकी पुरीको भोगने लगी, तब यवनसैनिक चारों ओरसे सभी द्वारोंकी कर्ण-चक्षु आदि इन्द्रियोंपर आक्रमण-कर तोड़फोड़ करने लगे। जिससे पुरंजन जराग्रस्त हो गया। स्त्री-पुत्र और परिजन किसीकी भी उसपर ममता नहीं रह गयी। इस कारण वह बहुत चिन्तामें पड़ गया। किसी तरह चिन्ताका प्रतीकार नहीं हुआ। स्त्री-पुत्रोंपर जो स्नेह था, उसे भी छोड़ना कठिन हो गया। क्या करना चाहिए, यह निश्चय न कर सका। उसने कालकन्याके अत्याचारसे ऊबकर इच्छा न रहनेपर भी पुरी त्याग कर देनेका निश्चय किया। इसके बाद भयके बड़े

भाई प्रज्वारने आकर पुरीको पूर्णरूपसे जला दिया। यह देखकर पुरंजनके सभी पुरवासी अत्यन्त सन्ताप करने लगे। अब पुरंजनके सभी अंग शिथिल हो गये। गन्धर्वोंने उसका पुरुषार्थ नष्ट कर दिया। तब शत्रु यवनोंने घेर और गला दबाकर उसे पकड़ लिया तो राजा पुरंजन रोने लगा अर्थात् घरघराहटके शब्द होने लगे। हे राजन्! मृत्यु आसन्न देखकर पुरंजनकी ममता धन-सम्पत्ति और गृह-पुत्र आदिपर बढ़ गयी। वह बहुत घबड़ा गया और स्त्रीके लिए चिन्ता करने लगा। पुरंजन सोचने लगा—मेरे परलोकगमनके बाद मेरी स्त्रीकी क्या दशा होगी ? ऐसे ही समय मृत्यु आ उपस्थित हुई और यवनों द्वारा पुरंजनको बँधवाकर ले चली। पुरंजनके अनुचर अर्थात् इन्द्रियाँ और प्राण शोक करते हुए उनके पीछे-पीछे चले। सर्प अर्थात् प्राणने जब पुरी त्याग दी तो सारी पुरी अर्थात् शरीर पंचमहाभूतोंके साथ मिल गया। हे राजन्! पुरंजनको उसकी अज्ञानावस्थामें ही यवनोंने मार डाला। इस कारण अपने अविज्ञातनामक पूर्वसखाका स्मरण वह नहीं कर सका। अस्तु, पुरंजन यमराजके पास पहुँचाया गया तो उन पशुओंने—जिनकी निष्ठुरतापूर्वक काम्यकर्मके यज्ञमें बलि दी गयी थी—उसकी क्रूरताका स्मरणकर कुल्हाड़ियोंसे उसके शरीरको खण्ड-खण्ड करना आरम्भ किया। इस प्रकार अपार क्लेशमें पड़कर उसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो गयी और स्त्रीसंगके दोषसे एक सौ वर्ष तक उसे कष्ट सहना पड़ा। हे राजन्! अन्तिम समयमें भी स्त्रीका ही ध्यान पुरंजनके मनमें बना रहा। इस कारण यमपुरीमें कर्मभोग पूरा होनेपर विदर्भ देशके राजाके घरमें कन्याके रूपमें उसका जन्म

हुआ। धार्मिक व्यक्तिके घरमें जन्म होनेके कारण परम भगवद्भक्त राजा मलयध्वजके साथ उसका विवाह हुआ। तदनन्तर भक्ति, वैराग्य और पातिव्रत धर्मके अनुसार पतिसेवा करनेपर ज्ञान-योगके प्रभावसे पुरंजनको मुक्ति प्राप्त हुई। हे राजन्! यह कथा मैं विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो। पुरंजनने जन्मान्तरमें विदर्भराजके घर कन्यारूपसे जन्म लिया और उसका नाम वैदर्भी पड़ा। विवाहका समय उपस्थित होनेपर युद्धमें अन्य क्षत्रियोंको परास्त करके मलयध्वजने उसका पाणिग्रहण किया। मलयध्वजका अर्थ विष्णुभक्तिमय दक्षिण देश है। वहाँ वे ही प्रधान थे। इस कारण पुरंजनको भगवद्भक्तिका लाभ हुआ। इसके बाद मलयध्वजने वैदर्भीके गर्भसे एक कन्या और सात पुत्र उत्पन्न किये। वें सातों पुत्र दविड़ देशके राजा हुए। हे राजन्! उन सातोंके असंख्य अर्बुद पुत्र उत्पन्न हुए। वे ही मन्वन्तरके कारण थे। उन सातों द्रविड़ राजाओंके वंशधर लोग पृथ्वीको भोग करते आये हैं और बादको भी भोग करते रहेंगे। हे राजन्! मलयध्वजकी प्रथम कन्यासे महामुनि अगस्त्यने विवाह किया। उन्होंने उस कन्याके गर्भसे दृढ़च्युतनामक एक पुत्र उत्पन्न किया। बादको राजर्षि मलयध्वज अपने पुत्रोंको पृथ्वी बाँटकर भगवान श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिए कुलाचल पर्वतको चले गये। उनकी पत्नी वैदर्भी भी पतिके साथ गयीं। हे राजन्! उस स्थानमें पहुँचकर राजा मलयध्वज वहाँकी चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी और वटोदका आदि नदियोंके पवित्र जलमें नित्य स्नानकर भीतर और बाहरके मलको दूर करते हुए क्रमशः फल-मूल-तृण और जलमात्र भोजन-

कर तप करने लगे। इससे धीरे-धीरे उनका शरीर कृश हो गया। जाड़ा, गर्मी, वर्षा और सुख-दुःखको जीतकर वे सबको समान दृष्टिसे देखने लगे। फिर परब्रह्मका दर्शन करके उन्होंने संसार त्याग दिया। उनकी पत्नी भी पतिकी सेवामें लगी रहनेके कारण जीर्ण-शीर्ण हो गयी थी। वह अपनी अनाथ और दीन अवस्थाको सोचती हुई ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगी। बादको सहमरणकी इच्छासे उसने चिता तैयार की और पतिके साथ सती होनेको उद्यत हुई। उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण (ईश्वर) ने आकर सान्त्वना देते हुए कहा—हे सुन्दरि! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यह पुरुष कौन है? तुम किसके लिए शोक कर रही हो? हे सुनयने! मैं तुम्हारा सखा हूँ। क्या मुझे तुम जानती हो? मुझसे ही पहले तुमने मित्र-सुखका अनुभव किया था। तदनन्तर पूर्वकथाका स्मरण दिलानेपर वह बोली—हे आर्य! हम और तुम मानसरोवरमें दो हंस थे। हजारों वर्षतक हम वहाँ एक साथ रहे। मैं तुमको पहिचान गयी हूँ। तुम ग्राम्य-विषय भोगनेके लिए मुझे छोड़कर भूमिपर चले आये। पृथ्वीपर विचरते-विचरते तुमने एक पुर देखा, जो किसी स्त्रीका बनाया हुआ था। हे मित्र! वह स्थान बड़ा सुन्दर था। उसमें पाँच उपवन, नव द्वार, एक पालनकर्ता, तीन कोष्ठ और छः वणिक् कुल अर्थात् अभीष्ट विषय थे। वहाँ पाँच बाजार अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ थीं। उसकी पाँच प्रकृति और स्वामिनी एक स्त्री थी। (अर्थात् वह पुरी और कुछ नहीं मनुष्यका शरीर है। पंचतत्त्व ही पाँच प्रकृति हैं और स्त्री अर्थात् माया उसकी स्वामिनी है) हे मित्र!

उस मायारूपिणी स्त्रीमें आसक्त रहनेके कारण तुमको ब्रह्मका स्मरण नहीं रहा। उसी पापके कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। न तुम विदर्भदेशके राजाकी कन्या हो और न यह वीर राजकुमार तुम्हारा पति है। यह सब मेरी उत्पन्न की हुई मायाका खेल है। तुम अपने मनमें इस सम्बन्धमें कुछ भी सन्देह मत करना। विद्या और अविद्याके कारण ही धर्मभेद होता है। इस प्रकार मानसरोवरवासी हंसको जब हंस अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वररूपी हंसने उपदेश दिया, तब उस भ्रान्त हंस (जीवात्मा) को परमात्माके वियोगसे जो स्मृति नष्ट हो गयी थी, वह पुनः प्राप्त हो गयी अर्थात् उसे अपने यथार्थ रूपका ज्ञान हो गया। हे राजन्! मैंने पुरंजन उपाख्यानके रूपकमें तुमको अध्यात्मज्ञानका उपदेश दिया है। क्योंकि भगवान विश्वभावनको ऐसी कथा विशेष रुचती है।

ऊनत्रिंश अध्याय

पुरंजनोपाख्यानकी व्याख्या

प्राचीनबर्हिने पुरंजनका उपाख्यान सुनकर देवर्षि नारदसे कहा—हे भगवन्! इसका यथार्थ तात्पर्य मैं कुछ भी न समझ सका। इसका स्पष्ट अर्थ समझा कर कहिये। नारदजी बोले—हे राजन्! जिसको मैंने पुरंजन कहा था, वही पुरुष है। पुर देह है। अविज्ञात परमात्मा है। क्योंकि यह पुरुष अर्थात् जीव उसको नाम कर्म तथा गुण द्वारा नहीं पहिचान सकता। उसी परमात्माको पुरंजनका सखा कहा गया है। विषयात्मिका बुद्धि ही पुरंजनकी स्त्री है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ ये ही दस उस स्त्रीके

मित्र हैं। इन्द्रियोंकी अगणित प्रवृत्तियाँ ही उसकी सखी हैं। प्राण-अपान आदि पाँच वृत्तियोंवाला प्राण ही पुरीकी रक्षा करनेवाला पाँच सिरोंका सर्प है। ग्यारहवाँ व्यक्ति जिसे नायक कहा गया है, वही मन है। हे राजन्! मैंने जिन द्वारोंका वर्णन किया है उनका अर्थ यह है कि दो नेत्र, दो नासिकाके छिद्र, दो कान, मुख, लिंगेन्द्रिय और मलद्वार ये ही नव द्वार हैं। यह जीव प्रत्येक इन्द्रियरूपी सखाके साथ इन्हीं द्वारोंसे प्रत्येक इन्द्रियके विषयोंका भोग करता है। नेत्र, नासिका और मुख ये पाँच पूर्व द्वार हैं। दक्षिण कान दक्षिण द्वार और उत्तर कान उत्तरका द्वार है। गुदा और लिङ्गेन्द्रिय ये दोनों पश्चिम मुख द्वार हैं। घ्राण इन्द्रिय ही 'अवधूत' नामक सखा है। मुख मुख्य नामक द्वार है। रसना रसज्ञ नामक सखा है। दाहिने कानका नाम 'पितृहू' और बायें कानका नाम 'देवहू' है। रूप-रस आदि पाँच विषयोंमें प्रवृत्ति और निवृत्ति ही 'पांचाल' देश है। पितृयान और देवयान ये दो शास्त्र हैं। लिंगेन्द्रिय ही पश्चिम मुख और आसुरीनामक द्वार है। मैथुन ही ग्राम्यदेश है। 'निर्वाक्' और 'पेशस्कृत' नामक जो अन्धद्वार कहे गये हैं, वे हाथ और पैर हैं। यह जीवके हाथसे कर्म करता और पैरसे चलता है। हे राजन्! हृदय ही अन्तःपुर है। मन ही 'विषूचीन' नामक सखा है। यह जीव मनकी सहायतासे हृदयमें मनके गुणों—सत्त्व रज तमके द्वारा मोह प्रसन्नता और आनन्दको पाता है। पुरंजनके जिस रथका वर्णन किया गया है, उस रथके चक्र पाप और पुण्य ये दो कर्म हैं। सत्त्व रज और तम ये तीन गुण ध्वजा हैं। पाँच प्राण उसके बन्धन हैं। मन ही

बागडोर या लगाम है। बुद्धि ही सारथी है। हृदय ही रथीके बैठनेका स्थान है। शोकमोहादिक द्वन्द्वधर्म जुए हैं। दस इन्द्रियाँ सेना है। ग्यारहवाँ मन सेनापति है। संवत्सररूपी काल ही चण्डवेगनामक गन्धर्व है। संवत्सरके तीन सौ साठ दिन ही गन्धर्व हैं। रात्रियाँ उन गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ हैं। ये सभी अपने हेर-फेरसे आयुको हरते हैं। हे राजन्! मैंने जिस कालकन्याका वर्णन किया है, वह वृद्धावस्था अर्थात् साक्षात् जरा है। जराको लेकर लोग आमोद-प्रमोद नहीं करते। मृत्यु ही यवनेश्वर है। लोकोंका क्षय करनेके लिए ही उसने वृद्धावस्थाको अपनी बहिन बनाया है। आधि और व्याधि यवनेश्वरके साथी यवन हैं। वे बड़े बलवान् हैं। ज्वर भयानक है। प्रज्वार मृत्युका कारण है। हे राजन्! अज्ञानवश पुरुष अनेक प्रकारके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःख सहन करके कष्ट भोगता और सौ वर्षतक जीवित रहता है। हे महाराज! जो जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही जन्म मिलता है। कर्मके श्वेत अर्थात् सात्त्विक होनेसे उत्तमलोक मिलता है। लाल अर्थात् राजस होनेपर उसका फल दुःखमात्र है। काला अर्थात् तामस होनेपर उसका फल दुःख होता है। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही सबको विभिन्न योनियाँ प्राप्त होती हैं। सुख-दुःख भी कर्मोंके अनुसार ही होते हैं। हे राजन्! भगवान् वासुदेवमें भक्ति होनेसे वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होते हैं। भक्तियोग दुर्लभ नहीं है। श्रद्धायुक्त होकर भगवान अच्युतकी कथा सुननेसे, नामसंकीर्तन करनेसे, उनका आश्रय करनेसे शीघ्र ही भक्ति प्राप्त हो जाती है। किन्तु ईश्वरकी कृपाके

बिना किसीको भी भक्ति नहीं मिल सकती और वह उनको जान भी नहीं सकता। हे राजन्! प्रजापतियोंके अधिपति साक्षात् ब्रह्माजी, शिव, मनु और दक्ष आदि प्रजापति, सनकादि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और भृगु आदि ब्रह्मज्ञानी ऋषि लोग जो बड़े तपस्वी और विद्वान् हैं, वे समाधि लगाते हैं और उपर्युक्त तप, विद्या तथा समाधि आदि उपायोंसे सर्वव्यापक उस ईश्वरको खोजते हैं, परन्तु उसे देख नहीं पाते। कारण यह है कि वेद विस्तृत है। उसके अर्थका पार नहीं है। उसी वेदके अनुसार कितने लोग सकाम भावसे इन्द्रादि देवताओंकी आराधना करते हैं। इस प्रकार सकाम भावसे भजनेवाले लोग उस ईश्वरको नहीं जान सकते। हे प्राचीनबर्हि! वेदोक्त कर्मोंमें परमार्थ बुद्धि मत रखना। जो लोग कहते हैं कि वेदमें कामनापूर्वक यज्ञादि करना ही लिखा है, उनकी बुद्धि यज्ञके धुएँसे मलिन हो गयी रहती है। वे वेदका कुछ भी अर्थ नहीं समझते। हे राजन्! तुमको कुछ भी बोध नहीं है। तुम अति अज्ञ हो। भगवान जिससे प्रसन्न हों, वही कर्म है और जिससे श्रीहरिमें भक्तिभाव हो वही विद्या है। वे ही सबके परमप्रिय आत्मा हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे मनुष्यको किसीका भय नहीं रहता। उसका सदा मंगल होता है। उन श्रीहरिकी सेवा करनेसे दुःख-भयकी सम्भावना नहीं रहती। नारदकी बातसे राजाका मन तृप्त नहीं हुआ। वे पुत्रके आगमनकी प्रतीक्षा करते रहे। उनको गृहसे निर्वासित करनेकी इच्छासे देवर्षि नारदने फिर कहा—हे महाराज! मैं एक गुप्त कथा सुना रहा हूँ, ध्यानसे सुनिये। हे राजन्! पीछेकी ओर

देखिये, मृगीके साथ मृग सुखपूर्वक विचरण करता हुआ घास चर रहा है। अब देर नहीं है। व्याध उसे बाणसे मार डालनेकी ताकमें है। इस हरिणकी भाँति ही अपना जीवन भी समझकर विचार करो और विषयसुखको तुच्छ समझकर उसे छोड़ दो। ईश्वरमें चित्त लगाओ। देर मत करो। इन बातोंको सुनकर राजा प्राचीनबर्हिने पूछा—क्या वेदविहित कर्म करनेवाला शरीर और है और भोग करनेवाला दूसरा है? इस अवस्थामें किये हुए कर्मफलका नाश और नहीं कियेका प्रकाश होनेके कारण दूसरे जन्ममें प्रथम जन्मका कर्मफल भोगनेवाली बात असंगत सी जान पड़ती है। इसके अतिरिक्त लोग जिन वेदविहित कर्मोंको करते हैं, वे थोड़े ही समयमें अदृश्य हो जाते हैं। उनका फिर प्रकाश नहीं होता। इससे जान पड़ता है कि उनके कर्म नष्ट हो जाते हैं। यदि कर्म नष्ट हो जाते हैं तो फलका भोग कैसा? नारदजीने कहा—यह जीव जिस देहसे इस लोकमें कर्म करता है, उसी देहसे परलोकमें कर्मफल भी भोगता है। क्योंकि स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी लिंगशरीर नष्ट नहीं होता। जीव उसी मनोमय लिंगशरीरसे कर्मफल भोगता है। इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं है। जाग्रत् अस्वथामें स्थित स्थूल शरीरका जीव स्वप्नावस्थामें स्थूल शरीरको त्यागकर मन द्वारा अनेक कर्म करके सुख-दुःखमय फलका अनुभव करता है। वैसे ही मरनेपर स्थूल शरीरको त्यागकर कर्मानुसार विविध योनियोंमें लिंगशरीर द्वारा कर्मफल भोगता है। इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है। मैं ब्राह्मण हूँ, मैं कर्ता हूँ, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा धन है—इस प्रकारकी भावनाएँ अभिमान हैं। हे महाराज! मन ही

मनुष्य की उन्नति और अवनति तथा प्राणियोंके सांसारिक बन्धनका कारण है। सो तुम अविद्या-निवारणके हेतु मन लगाकर भगवान हरिको भजो। इस विश्वको भगवानसे परिपूर्ण देखो। उनसे ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते रहते हैं। मैत्रेयजी बोले—हे वत्स विदुर! महर्षि नारद इस प्रकार जीव और ईश्वर की गति दिखा और प्राचीनबर्हि राजाको उपदेश देकर सिद्धलोकको चले गये। इसके बाद राजर्षि प्राचीनबर्हिने राजकाजका प्रबन्ध करके अपने पुत्रोंको राज्यभार सौंप दिया और तप करनेके लिए कपिलदेवके आश्रमको चले गये। वहाँ लोकसंग त्याग करके एकान्त भक्तिपूर्वक भगवान गोविन्दके पाद-पद्मका भजन करने लगे। भक्तिके प्रभावसे उनकी शीघ्र मुक्ति हो गयी। इस कथाको सुनने और कीर्तन करनेसे संसारके बन्धनोंसे मुक्ति मिलती और कर्मफलभोगका संशय दूर हो जाता है।

त्रिंश अध्याय

वर प्राप्त करके प्रचेताओंका राज्य करना

विदुरजीने पूछा—हे मुने! आपने प्राचीनबर्हि राजाके जिन पुत्रोंकी कथा कही, उन्होंने शिवजीकी आराधनासे वर प्राप्त करके क्या किया सो स्पष्ट रूपसे कहिये। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! प्रचेताओंने अपने पिताके आदेशानुसार समुद्रके जलमें रहकर रुद्रगीतका जप, यज्ञ और तपस्याकर श्रीहरिको सन्तुष्ट किया। दस हजार वर्षके उपरान्त सनातन विष्णुने प्रकट होकर अपने शान्त प्रकाशसे सत्त्वमूर्तिका अवलम्बन करते हुए उन्हें दर्शन दिया और

तपोजनित क्लेशको दूर कर दिया। हे विदुर! भगवान आदि पुरुष इस प्रकार प्रकट होकर दयादृष्टिसे देखते हुए प्राचीनबर्हिके पुत्रोंसे बोले—हे राजकुमारों! तुम लोगोंपर मैं प्रसन्न हूँ। मुझसे इच्छानुसार वर लो। मैं प्रसन्न होकर तुम लोगोंके सम्मानके लिए वर देता हूँ कि जो कोई सन्ध्या समय नित्य तुम्हारा स्मरण करेगा, वह बड़ा भ्रातृवत्सल होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंसे उसे सहानुभूति होगी। जो लोग सायंकाल और प्रातःकाल एकाग्र मनसे रुद्रगीत द्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उन्हें मैं निर्मल बुद्धि और उनकी इच्छाके अनुसार वर दूँगा। हे वत्सगण! तुम लोगोंने पिताकी आज्ञाका पालन किया है। इस लिए तुम लोगोंकी कीर्ति सारे जगत्में व्याप्त होगी। हे राजपुत्र-गण! तुम लोगोंको एक बहुत प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त होगा। वह गुणोंमें ब्रह्माके तुल्य होगा और उसके वंशसे तीनों लोक भर जायँगे। तुम लोगोंके स्त्री नहीं है इस कारण सन्तान कैसे होगी, इसकी शंका मत करो। देवपति इन्द्रने कण्डु ऋषिकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिए प्रम्लोचा नामक अप्सरा भेजी थी। उस अप्सरा द्वारा कण्डुके वीर्य से एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई। वह अप्सरा कन्याको छोड़कर स्वर्ग चली गयी। उस कन्याको वृक्षोंने पाया। वह कन्या भूख लगनेपर रोने लगी। तब औषधियोंके राजा चन्द्रमाने दया करके अपनी तर्जनी अँगुली, जिससे अमृत निकालता था, उसके मुखमें डाल दी। वह कन्या परम रूपवती थी। अमृत पीनेके कारण उसके शरीरसे पसीने आदिकी दुर्गन्ध नहीं निकलती थी। तुम सभी मिलकर उस सुन्दरी

कन्यासे विवाह कर लो। अब देर मत करो। तुम दसोंका एक-सा शील, एक-सा रूप और एक ही धर्म तथा गुण हैं। अतएव वह कन्या तुम दसोंकी स्त्री होगी। मेरी कृपासे महाबली होकर तुम लोग अनेक दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त पृथ्वीके दिव्य भोगोंको भोगोगे। इसके बाद मेरे ऊपर अचल भक्ति होनेपर काम-क्रोध आदिसे रहित हो जाओगे और तुम्हारी सभी कामनाएँ पूरी हो जायँगी। इसलिए विषयभोग छोड़कर मेरे परम धामको चले आओगे। हे राजकुमारो! गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेसे संसारमें आसक्ति उत्पन्न होगी, इसकी शंका मत करना। मेरे नामका कीर्तन और मेरी कथाके श्रवणमें कालयापन करते हुए गृहमें रहनेसे कभी बन्धनमें नहीं बँधना पड़ता। शोक, मोह या हर्षका अनुभव भी नहीं होता। मुझसे सम्पर्क होते ही वे सब झगड़े दूर हो जाते हैं। मैत्रेयजीने कहा— हे विदुर! भगवान जनार्दनके ये वचन सुने तो प्रचेतागण हाथ जोड़कर गद्‌गद्‌ स्वरसे सबके सच्चे सुहृद्‌ भगवानकी स्तुति करने लगे। भगवान प्रचेताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए और उन लोगोंकी प्रार्थना स्वीकार करके अपने धामको चले गये। भगवानके चले जानेपर प्रचेतागणने समुद्रके जलसे बाहर निकलकर देखा कि राज्यमें अराजकता व्याप्त हो गयी है। तरु-लताओंने बढ़कर सभी स्थान छिपा दिये हैं। पृथ्वीको वृक्षा-लताओंसे शून्य करनेके अभिप्रायसे उन लोगोंने अपने मुखसे प्रलयकालके अग्निसदृश भयानक अग्नि और वायु प्रकट किया। उस अग्निसे पृथ्वीके सब वृक्षोंको भस्म होते देखकर वहाँपर ब्रह्माजी आये और अपने युक्ति-संगत वचनों-

से राजकुमारोंका क्रोध शान्त किया। हे वत्स विदुर ! जो वृक्ष जलनेसे बचे थे, उन्होंने भयभीत होकर ब्रह्माजीके कथनानुसार वही कन्या (अप्सराके गर्भमें कण्डु ऋषिके वीर्यसे उत्पन्न) जिसका पालन वृक्षोंने किया था, प्रचेतागणको दे दी। उस कन्याका नाम मारिषा था। प्रचेतागणने ब्रह्माकी आज्ञासे उस कन्याके साथ विवाह किया। उस कन्याके गर्भसे प्रचेतागणको 'दक्ष' नामक पुत्र प्राप्त हुआ। हे वत्स ! यद्यपि दक्ष ब्रह्माके पुत्र थे, फिर भी पहले उन्होंने महादेवजीका निरादर किया था, जिसके अपराधसे उन्हें क्षत्रियवंशमें जन्म लेना पड़ा। यह वही दक्ष हैं, जिन्होंने चाक्षुष मन्वन्तर उपस्थित होनेपर कालवश पूर्व देह नष्ट होनेसे ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार मानस प्रजाकी सृष्टि की थी। सभी कामोंमें दक्ष 'कुशल' रहनेके कारण सभी इनको दक्ष कहते थे। भगवान ब्रह्माने दक्षको प्रजासृष्टिके लिए प्रजापतिके पदपर अभिषिक्त किया। फिर दक्षने मरीचि आदि अन्यान्य प्रजापतियोंको प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया।

एकत्रिंश अध्याय

दक्षको राज्यभार देकर प्रचेतागणका वनमें जाकर मुक्ति प्राप्त करना

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! दिव्य हजार वर्ष राज्य भोग करनेके बाद प्रचेतागणको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। तब दस हजार वर्षके बाद तुम हमारे धामको जाओगे, विष्णुभगवानका यह कथन स्मरणकर राज्य धन और स्त्री पुत्रको सौंपकर वे पश्चिम दिशामें समुद्रके तटपर तपस्याके लिए गये, जहाँ पहले जाजलि

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

नामक ऋषि तप करके सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए थे। प्रचेतागणने समुद्रतटपर जाकर अपने निर्मल चित्तको परब्रह्ममें लगाया। इसके बाद वे एक दिन अपने आश्रमपर बैठे थे, इसी समय वहाँ देवर्षि नारद जा पहुँचे। देवर्षि नारदको देखते ही प्रचेतागणने शीघ्र उठकर प्रणाम किया और यथाविधि पूजा करके बैठनेको स्थान दिया। जब नारदजी सुखपूर्वक आसनपर बैठे, तब प्रचेतागणने विनयपूर्वक कहा—हे मुने! भगवान विष्णु और महेश्वरने हम लोगोंको जो उपदेश दिया था, उसे गृहस्थाश्रममें आसक्त रहनेके कारण हम भूल गये हैं। अब आप हम लोगोंको उस अध्यात्मज्ञानका फिर उपदेश दीजिये, जिसके सहारे हम दुस्तर संसार सागरको पार कर सकें। नारदने कहा—हे नृपगण! जो मनुष्य भगवानकी सेवा नहीं करते, उनके जन्म कर्म आयु मन और वचन सभी व्यर्थ हैं। तुम लोगोंने गृहमें आसक्त होकर हरि-सेवा नहीं की थी। इसलिए तुम लोगोंके जन्म-कर्म सभी विफल हो गये हैं। जितनी प्रिय वस्तुएँ हैं, उनमें आत्मा ही प्रधान है और भगवान हरि ही सबमें आत्मारूपसे स्थित रहते हैं। इस कारण उनसे बढ़कर प्रिय वस्तु और कौन हो सकती है। वृक्षकी जड़में जल डालनेसे उसकी सभी शाखा-प्रशाखाएँ पुष्ट होती हैं, किन्तु डालियोंपर जल डालनेसे समूचे वृक्षको वह जल नहीं मिलता। उसी प्रकार अन्यान्य देवताओंकी आराधना भी व्यर्थ होती है। देवता, स्थावर, जंगम, भूत आदि सभीके मूल कारण भगवान हरि हैं। उनकी आराधना करनेसे ही देवता आदिकी पूजा हो जाती है। हे नृपगण! जैसे

आकाशमें मेघ, अन्धकार और प्रकाश क्रमशः प्रकट और विलीन होते रहते हैं, वैसे ही इस जगत्की पूरी सृष्टि भगवानमें लीन हो जाती है। वे ही परम ईश्वर हैं। अतएव तुम सब अनन्य भावसे उन्हींको भजो। हे राजपुत्रगण! सब प्राणियोंपर दया करने और जो कुछ मिल जाय, उससे ही सन्तुष्ट रहते तथा सभी इन्द्रियोंको शान्त कर लेनेसे शीघ्र ही जनार्दन भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु जो मतिमन्द मनुष्य धन, विद्या, कुल और कर्मके अहंकारमें मत्त होकर साधुजनोंकी निन्दा करते हैं, उनकी पूजाको भगवान ग्रहण नहीं करते। भगवान अपने भक्तजनोंका तिरस्कार नहीं सह सकते। मैत्रेयजीने कहा—हे वत्स विदुर! नारदजी प्रचेतागणको भगवत्तत्त्वकी कथाएँ सुनाकर ब्रह्मलोक चले गये। प्रचेतागण भी भगवान हरिके चरणोंमें चित्त लगाकर परमगतिको प्राप्त हुए। महर्षि शुकदेवने इतनी कथाएँ सुनाकर राजा परीक्षितको सम्बोधित करते हुए कहा—हे राजन्! मनुके पुत्र उत्तानपादके वंशका वर्णन तो हो चुका। अब उनके भाई प्रियव्रतका वंश कहता हूँ, सुनो। राजा प्रियव्रतने भी नारदजीसे अध्यात्मविद्या पाकर पृथ्वीका पालन किया था। तदनन्तर अपने पुत्रोंको राज्य बाँटकर परमेश्वरके परम पदको प्राप्त हुए। हे राजन्! मैत्रेयमुनिसे भगवत्कथा सुन और उनको प्रणामकर अपने इष्ट-मित्र और बन्धुओंको देखनेकी लालसासे विदुर हस्तिनापुरको चले गये। हे राजन्! हरिपरायण प्रचेताओंकी इस पवित्र कथाको जो लोग नित्य सुनते या पाठ करते हैं उनको धन, ऐश्वर्य, आयुर्बल, यश, मंगल और सद्गति मिलती है।

• श्रीहरिः •

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

पञ्चम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

प्रियव्रतका राज्य-भोग और ज्ञानमार्गमें निष्ठा

पहले प्रियव्रतके आत्मज्ञान, फिर गृहाश्रममें आसक्ति, फिर संगत्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त होने तककी कथा सुनकर राजा परीक्षित आश्चर्यमें पड़गये। उन्होंने शुकदेवजीसे पूछा—हेब्रह्मन्! राजा प्रियव्रत स्त्री-पुत्र-गृह आदिमें आसक्त रहकर कैसे सिद्धिको प्राप्त हुए और श्रीकृष्णचन्द्रमें उनकी अटल भक्ति कैसे हुई? मुझे वड़ा भारी सन्देह है। यह सुनकर शुकदेवजी वोले—हे राजन्! तुमने ठीक कहा। भगवानके चरणाविन्दके मकरन्दमें जिनका चित्त दिन-रात रत रहता है, उनको किसी तरहका विघ्न नहीं होता। मनुने अपने पुत्र प्रियव्रतको सुयोग्य समझकर राज्य करनेके लिए

नियुक्त किया। किन्तु उन्होंने राज-काज करना नहीं स्वीकार किया। हे राजन्! प्रियव्रतने भगवानका ध्यान करनेका निश्चय कर लिया था। पहलेसे ही उन्होंने सोच रखा था कि राज्य-धन आदि व्यर्थ हैं। इसलिए उन्होंने अपना मन और कार्य आदि सब कुछ वासुदेवको अर्पण कर दिया। देवर्षि नारदकी आराधनासे उनको आत्मज्ञान प्राप्त हुआ था। इस कारण पिताकी आज्ञापालन करनेको सहमत नहीं हुए। सर्वज्ञ आदिदेव ब्रह्माजी यह बात जान गये थे। इसी हेतु मरीचि आदि स्वजनोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर नारदजीके पास जा पहुँचे। उस समय गिरि-कन्दरामें बैठकर नारदजी प्रियव्रतको आत्मज्ञानका उपदेश दे रहे थे। मनुजी भी प्रियव्रतको ले जानेके लिए वहाँ उपस्थित थे। हंसयुक्त विमान देखकर ही देवर्षि नारदने जान लिया कि हमारे पिता हिरण्यगर्भ भगवान ब्रह्माजी आ रहे हैं। उसी समय पिता-पुत्र (मनु-प्रियव्रत) सहित नारदजी उठ खड़े हुए और प्रणाम करके तीनों उनकी स्तुति करने लगे। तब आदि पुरुष ब्रह्माजी हँसते हुए कृपापूर्ण दृष्टिसे प्रियव्रतकी ओर देखकर कहने लगे—हे तात! जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे सावधान होकर सुनो। क्योंकि मेरे द्वारा साक्षात् श्रीहरि तुमको प्रवृत्तिमार्गमें प्रवृत्त कर रहे हैं। सत्य और अप्रमेय परमेश्वरपर दोषारोपण करके उनकी आज्ञा न मानना उचित नहीं है। हम सभी लोग ईश्वरकी आज्ञाका पालन करते हैं। सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय, सुख और दुःख आदिके वश होकर कर्म करनेके लिए ही ईश्वरके दिये हुए शरीरको पाते हैं। कोई भी स्वतंत्रताके साथ कोई कर्म नहीं कर

सकता। किसीमें इसको टालनेकी शक्ति नहीं है। स्वतंत्रता किसीको नहीं है। सभी कर्मके अधीन हैं। हे पुत्र! तुमने भगवान विष्णुके चरण-कमलका आश्रय लिया है। तुमने छः रिपुओंपर विजय पा ली है। फिर भी जबतक शरीर रहे, तबतक ईश्वरके दिये हुए सभी भोग्य कर्मोंको भोगो। बादमें संग त्याग करके आत्मनिष्ठ हो जाना। इस तरहके वचन कहकर राजा परीक्षितको सम्बोधित करते हुए शुकदेवजीने कहा कि परम भागवत प्रियव्रतने ब्रह्माका उपदेश सुनकर सोचा—मैं तो बहुत ही छोटा प्राणी हूँ। फिर भी ब्रह्माजीने मुझे इस प्रकार सदुपदेश दिया है। अतएव ये जो आज्ञा कर रहे हैं, उसे ही सिर झुकाकर मान लूँगा। यह निश्चयकर उन्होंने राज्यका शासन भार ग्रहण कर लिया। इससे मनुने संतुष्ट होकर ब्रह्माजीकी यथाविधि पूजा की। प्रियव्रतका योग भंग करनेमें सफल होनेपर ब्रह्मा मन ही मन खेद करने लगे और नारदका एक शिष्य विचलित हो गया, इस बातका भी भय उनके मनमें था। क्योंकि नारदजीकी कोपदृष्टि पड़नेकी आशंका थी। किन्तु ऐसी कोई अप्रिय घटना नहीं घटी। ब्रह्माकी आज्ञाका पालन करते हुए प्रियव्रतने पृथ्वीका शासन करना आरम्भ किया। हे महाराज! प्रियव्रतको ईश्वरकी इच्छासे निवृत्तिमार्ग छोड़कर फिर प्रवृत्तिमार्गमें प्रवृत्त होना पड़ा। कुछ दिनोंके बाद प्रियव्रतने विश्वकर्मा प्रजापतिकी बर्हिष्मती नामकी कन्यासे विवाह किया। उसके गर्भसे अग्निसदृश दस पुत्रों और एक कन्याका जन्म हुआ। उन पुत्रोंके नाम आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि थे। कन्याका

नाम ऊर्जस्वती था। इन पुत्रोंमें कवि, महावीर और सवन बालब्रह्मचारी और ऊर्ध्वरेता हुए तथा तीनोंने अध्यात्मविद्याका अभ्यासकर परमहंस धर्म ग्रहण किया। हे राजन्! प्रियव्रतकी एक दूसरी स्त्री भी थी। उसके गर्भसे उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों मन्वान्तरोंके अधिपति हुए। प्रियव्रतने निरापद रहकर परम आनन्दके साथ आमोद-प्रमोद करते हुए ग्यारह अर्बुद (दस करोड़का एक अर्बुद होता है) वर्ष तक पृथ्वीका पालन किया। उनके प्रतापकी सीमा नहीं थी। एक समय भगवान सूर्य जब सुमेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करके लोकालोक पर्वततक प्रकाश करते हुए चले गये, तब पृथ्वीमण्डलका आधा भाग प्रकाशमय हो गया और आधे भागमें अन्धकार छा गया। प्रियव्रतको यह अच्छा नहीं लगा। इस अन्धकारको दूर करनेके लिए प्रियव्रतने सूर्यके समान वेगवाले ज्योतिर्मय अपने रथपर चढ़कर द्वितीय सूर्यकी भाँति सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की। यह देखकर ब्रह्माने प्रियव्रतके पास जाकर उनको इस कामसे रोकते हुए कहा—हे पुत्र! यह काम करनेका तुमको अधिकार नहीं है। पृथ्वीपति प्रियव्रतका रथ सात बार पृथ्वीपर घूमा। इससे पहियेकी सात लीकें बन गयीं। उन्हींसे सातों समुद्र हो गये। उन्हीं सातों सागरों द्वारा बीचकी पृथ्वीसे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर, ये सात द्वीप बन गये। हे राजन्! इन द्वीपोंका विस्तार एक दूसरेसे उत्तरोत्तर दूना है। ये द्वीप समुद्रोंके बहिर्भागमें चारों ओर फैले हुए हैं। लवणाक्त जलका, ऊखके रसका, मदिराका, घृतका, दूधका, दहीका और

शुद्ध जलका—ये सात समुद्र पूर्वोक्त द्वीपोंको खाईके समान चारों ओरसे घेरे हुए हैं। प्रियव्रतके तीन परमहंस पुत्रोंके अतिरिक्त अन्य सात पुत्र इन सातों द्वीपोंके अधिपति हैं। उनकी कन्या ऊर्जस्वती शुक्राचार्यको ब्याही गयी थी। उसके गर्भसे देवयानी नामकी कन्या उत्पन्न हुई। हे राजन्! इसके बाद प्रियव्रतने विषयभोगको वृथा और घृणित समझकर राज्य, धन तथा स्त्री सब छोड़कर पुनः देवर्षि नारदके बताये हुए मार्गको ग्रहण किया। श्रीहरिकी कृपासे सहसा उनके चित्तमें विवेकका उदय हो गया। हे राजन्! प्रियव्रतके प्रभावका वर्णन नहीं किया जा सकता। रात्रिका अन्धकार दूर करनेके लिए घूमते-घूमते अपने रथके पहियोंसे उन्होंने सात समुद्र बना दिये और द्वीपोंकी रचना करके पृथ्वीका विभाग कर दिया। जिससे कोई लड़े-झगड़े न हो सब सुखसे रहें, इसलिए नदी, पर्वत और वन आदिसे द्वीपों और खण्डोंकी सीमा बना दी। उन्होंने पृथ्वी, स्वर्ग और मनुष्यलोकमें योग तथा कर्मोंसे जो फल प्राप्त होते हैं, उन सब विभवोंको नरकके समान मानकर तृण तुल्य त्याग दिया। क्योंकि वे भगवद्भक्त थे और भक्तजन ही उनके प्रिय थे।

द्वितीय अध्याय

आग्नीध्रके चरित्रका वर्णन

शुकदेवजी बोले—प्रियव्रतजी जब इस प्रकार परमार्थसिद्धिमें लग गये तब उनके पुत्र आग्नीध्रने धर्मपर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीपमें रहनेवाली प्रजाको पुत्रके समान पालन करना आरम्भ

किया। एक समय राजा आग्नीध्र पुत्रकी कामनासे मन्दराचलकी कन्दरामें जाकर एकाग्र चित्तसे भगवानकी आराधना करने लगे। ब्रह्माजी आग्नीध्रकी अभिलाषा जान गये। उन्होंने पूर्वचित्ति नामक अप्सराको उनके पास सम्भोगके लिए भेजा। ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार वह अप्सरा आग्नीध्रके आश्रममें जाकर आस-पासके बागमें टहलने लगी। चार आँखें होते ही दोनोंमें प्रेम हो गया और पूर्वचित्तिके गर्भसे उन्होंने इन नौ पुत्रोंको उत्पन्न किया—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुश, भद्राश्व और केतुमाल। ये सभी पिताके समान बलवान थे। आग्नीध्रने जम्बूद्वीपके नव खण्ड किये और उनके नाम अपने पुत्रोंके नामोंके अनुसार रखे। जिस पुत्रके नामका जो खण्ड था, उसको उस खण्डका राज्य दिया। राजा आग्नीध्रको विषयभोगसे तृप्ति नहीं हुई थी। वे सर्वदा विषयसुख भोग करनेमें रत रहते थे। आग्नीध्र राजा जब परलोकको गये, तब उनके नौ पुत्रोंने मेरुकी नौ कन्याओंसे विवाह किया। उनके नाम थे—मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्रा, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति।

तृतीय अध्याय

नाभिके यज्ञसे सन्तुष्ट होकर भगवान द्वारा पुत्रत्व स्वीकार

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर आग्नीध्रके पुत्र नाभिने पुत्रकी कामनासे अपनी पुत्रहीन रानी मेरुदेवीके साथ एकाग्रचित्तसे यज्ञके अनुष्ठान द्वारा भगवान यज्ञपुरुषकी आराधना की। जिससे प्रसन्न होकर भगवानने उन्हें दर्शन दिया। नाभिने प्रणाम

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करके अनेक उपहारों द्वारा उनकी पूजा की। ऋत्विज और ऋषिगण भगवानके गुणोंका वर्णन प्रणाम और स्तुति करते हुए भगवानके सदृश पुत्र माँगा। उनकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर भगवानने दया दिखाते हुए कहा—हे ऋषिगण! तुम्हारे वाक्य कभी निष्फल नहीं हो सकते। किन्तु तुमने मेरे समान पुत्र पानेके लिए जो वर माँगा है, वह दुर्लभ है। मेरे समान तो और कोई नहीं है। क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। फिर भी ब्राह्मणोंका वाक्य मिथ्या नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मण लोग देवतुल्य होते हैं। पूजनीय विद्वान ब्राह्मण मेरे मुख हैं। अतः मैं ही अपनी अंशकलासे नाभिके पुत्ररूपमें जन्म लूँगा। हे राजन्! भगवान्ने नाभि राजाकी रानी मेरुदेवीके गर्भसे सत्त्वमूर्ति ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया।

चतुर्थ अध्याय

ऋषभदेवजीका राज्य-शासन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उत्पन्न होते ही ऋषभदेवके अंगोंमें भगवानके लक्षण दिखाई पड़ने लगे। रूप और गुणमें श्रेष्ठ देखकर उनके पिता नाभिने उनका नाम ऋषभ रखा। हे परीक्षित! ऋषभके प्रतापका मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। एक समय देवराज इन्द्रने डाहके मारे ऋषभके राज्यमें जल नहीं बरसाया। योगेश्वर भगवान ऋषभदेवने इन्द्रकी मूर्खतापर हँसकर अपने देशमें स्वयं जल बरसा लिया। यद्यपि भगवानने अपनी इच्छासे मनुष्य शरीर धारण किया था तथापि राजा नाभिने मायासे मोहित होनेके कारण उनको अपना पुत्र ही मान लिया था।

बादमें राजा नाभि अपने योग्य पुत्रको राज्यभार देकर बदरिकाश्रमको तप करनेके लिये चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान वासुदेवकी उपासनामें अपना चित्त लगा दिया। ऋषभको राज्य-पदपर अभिषिक्त करके जब पिता चले गये तो ऋषभजी कुछ समय तक गुरुकुलमें रहे। फिर अन्य लोगोंको शिक्षा देते हुए श्रुतिस्मृतिमें कथित धर्मके अनुसार कर्ममें तत्पर रहकर गृहस्थाश्रम चलाने लगे। इन्द्रने ऋषभके साथ अपनी कन्या जयन्तीका विवाह कर दिया। उस कन्याके गर्भसे उन्होंने अपने समान एक सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सौ पुत्रोंमें भरतजी सबसे बड़े थे। उन्हींके नामके अनुसार इस देश (वर्ष) का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरतजी महायोगी और सब गुणोंसे सम्पन्न थे। भरतके सिवा कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलयकेतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट नामक नौ पुत्र भरतके अनुगामी और निन्नानबे राजकुमारोंमें प्रधान हुए। बाकी नब्बेमेंसे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड़, चमस और करभाजन नामक नौ पुत्र भगवद्धर्मसम्बन्धी धर्म चलानेवाले हरिभक्त विरक्त और ज्ञानी हुए। भगवानकी महिमा युक्त इन लोगोंका चरित्र एकादश स्कन्धमें कहा जायगा। उसमें वसुदेव और नारदका संवाद रहेगा। इनसे छोटे जो इक्यासी कुमार बचे, वे पिताकी आज्ञा पालनेवाले, वेदज्ञ, विनीत और यज्ञ करनेवाले हुए। वे सब शुद्ध कर्म करनेके कारण ब्राह्मण हो गये। यद्यपि भगवान ऋषभ वेदादिके पूर्ण जानकार थे। तथापि ब्राह्मणोंसे पूछ-पूछकर साम-दाम आदि नीतिकी रीतियोंसे प्रजापालन करने लगे। उन्होंने यथा-

विधि सौ यज्ञ किये। भगवान ऋषभदेव एक समय घूमते हुए ब्रह्मावर्तमें पहुँचे। वहाँ प्रधान-प्रधान ब्रह्मर्षियोंकी सभामें जाकर उन्होंने अपने पुत्रोंको देखा। यद्यपि वे सब पुत्र विनय, प्रजाप्रेम और सौजन्यसे परिपूर्ण तथा शान्त स्वभावके थे तथापि उन्होंने उसी अवसरपर प्रजाजनोंके सामने ही उपदेश देते हुए निम्न लिखित वचन कहे।

पञ्चम अध्याय

ऋषभदेवका पुत्रोंको मोक्षधर्मका उपदेश और परमहंसज्ञानकी कथा

ऋषभदेवजी बोले—हे पुत्रों ! मनुष्यजन्म धारण करके दुःखदायक विषयोंका भोग करना अनुचित है। क्योंकि विष्ठा भोजन करनेवाले शूकर भी विषयभोगमें लिप्त रहते हैं। हे पुत्रों ! तपस्या ही सार पदार्थ है। इससे अन्तःकरण शुद्ध होता और अनन्त ब्रह्मानन्द मिलता है। पण्डितोंका कहना है कि महात्मा लोगोंकी सेवा ही मुक्तिका द्वार है और स्त्री-सेवक कामी-जनोंका संग ही संसार अर्थात् जन्म-मरणका कारण है। महात्मा कौन लोग कहलाते हैं सो बता रहा हूँ, सुनो। जो लोग सभीके मित्र हैं, क्रोधरहित हैं, शान्त-स्वभाव हैं, सदाचारपर चलनेवाले हैं, समदर्शी हैं, अहंकाररहित हैं, विषयासक्तिहीन हैं और धनकी अधिक स्पृहा नहीं करते, वे ही महात्मा होते हैं। हे पुत्रो ! इन्द्रियोंमें आसक्त होनेसे पाप होता है। मनुष्य इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिए प्रमत्त होकर विरुद्ध कर्म अर्थात् पाप करता है। जिन विरुद्ध कर्मोंके कारण आत्माको क्लेश देनेवाला यह शरीर प्राप्त हुआ है, उन्हीं कर्मोंको फिर इस शरीरसे करना मेरी समझमें अच्छा नहीं है। जो

लोग संसारमें रहकर स्त्रीसंगमें सुख अनुभव करते हैं—उसमें दुःख नहीं मानते, वे भूल करते हैं। क्योंकि पुरुष और स्त्रीका सम्बन्ध होनेपर 'मैं हूँ, यह मेरा है'—इस प्रकारका मनोभाव उत्पन्न होकर मोह होता है। ममतारूप आकर्षण बढ़कर बन्धनकी गाँठ दृढ़ होती जाती है। जिससे छूटना कठिन हो जाता है। क्योंकि इसी गाँठके कारण गृह, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, स्वजन और धन आदिमें ममता उत्पन्न होती है। इसलिए गृहस्थाश्रममें रमणी प्राप्त करना सुखका कारण नहीं, बल्कि अत्यन्त दुःखका कारण है। किन्तु मेरे कथनका यह अर्थ मत समझना कि स्त्री-पुरुषके संसर्गमें भी इस भावसे दूर नहीं रहा जा सकता। जो संसारके बन्धनका कारण है, उस अहंकारको छोड़ देनेपर भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो सकती हैं। हे पुत्रों! अहंकारका त्याग करना जैसे-तैसे मनमाने प्रकारसे सम्भव नहीं है। उसका त्याग करनेके चौबीस उपाय हैं। उन्हें बतलाता हूँ, सुनो। हंस और शुकस्वरूप मुझमें अनन्य भक्ति करना, मेरा अनुकरण करना अर्थात् जो मैं करता हूँ वही करना, वितृष्णा अर्थात् धनादिकी आशा छोड़ देना, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंका सहना, सर्वत्र सब प्राणियोंका दुःख देखना, तत्त्व-जिज्ञासा करना, तपस्या करना, मेरे लिए कार्य करना, मेरी कथा कहना, जो लोग मुझे ही परमदेवता मानते हैं उन्हींकी संगतिमें रहना, मेरे गुणोंका कीर्तन करना, किसीसे वैर न रखना, समदृष्टिसम्पन्न रहना, इन्द्रियोंको शान्त रखना, मैं-मेरा आदि मनोभाव छोड़ देना, अध्यात्म-शास्त्रका अभ्यास, निर्जन स्थानमें निवास, प्राण इन्द्रिय और मनको भली भाँति जीतना, सत्कर्मोंमें श्रद्धा रखना, ब्रह्मचर्य पालना, अपने कर्तव्य-

कर्मको न छोड़ना, वाणीका संयम करना, सर्वत्र मेरी भावना करना और अनुभवयुक्त ज्ञान तथा समाधियोगमें लीन रहना—इन उपायोंसे धैर्य यत्न और विवेकयुक्त होकर अहंकारको दूर करना चाहिये। हे पुत्रों! इस प्रकार अहंकार दूर हो जानेपर मेरे बताये हुए पूर्वोक्त उपायोंको भी त्याग दे। सबको ऐसा उपदेश दे कि जिससे वे केवल कर्ममें मुग्ध न होने पावें। संसारी व्यक्तियोंको कुमार्गसे हटाकर सुमार्ग अर्थात् भगवान्‌की भक्तिमें लगावे। जो गुरु भक्तिमार्ग द्वारा प्राणीको श्रीहरिसे मिलाकर मृत्युके भयसे न छुड़ावे, वह उसका गुरु नहीं है। वह मित्र या स्वजन नहीं है, पिता-माता नहीं है, देवता नहीं है और पति भी नहीं है। तुम सबने मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे जन्म लिया है। अतएव ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार त्यागकर तुम सभी लोग स्थिर चित्तसे अपने सहोदर बड़े भाई महात्मा भरतकी आज्ञाका पालन करो। भरतकी सेवा करनेसे ही तुम्हारे प्रजापालन आदि सभी कर्तव्य पूरे होंगे। हे पुत्रों! ब्राह्मणोंकी सेवा करना भी तुम लोगोंका कर्तव्य है। क्योंकि चेतन-अचेतन पदार्थोंमें स्थावर अर्थात् वृक्ष आदि श्रेष्ठ हैं। उनसे सर्प आदि कीड़े श्रेष्ठ हैं। उनसे बोधयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं। पशु आदिकी अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंसे भूत-प्रेत आदि प्रमथगण श्रेष्ठ हैं। भूत-प्रेतादिसे गन्धर्व-गण श्रेष्ठ हैं। गन्धर्वोंसे सिद्धगण श्रेष्ठ हैं। सिद्धगणोंकी अपेक्षा किन्नर श्रेष्ठ हैं। किन्नरोंकी अपेक्षा असुरगण श्रेष्ठ हैं। असुरोंकी अपेक्षा देवगण श्रेष्ठ हैं। देवताओंकी अपेक्षा इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन्द्रकी अपेक्षा ब्रह्माके पुत्र दक्ष आदि श्रेष्ठ हैं। दक्ष आदिकी अपेक्षा भगवान शंकर श्रेष्ठ हैं।

शंकरसे ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा मेरे भक्त हैं। इसलिए ब्रह्मासे मैं श्रेष्ठ हूँ। मैं ब्राह्मणोंको अपना पूजनीय मानता हूँ। इसलिए ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं। इस कारण ब्राह्मण सभीके पूज्य हैं। तुम लोग सर्वदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते रहना। इसके बाद ऋषभने वहाँ बैठे हुए विद्वान ब्राह्मणोंसे कहा—हे ब्राह्मणों! मैं इस जगत्में किसीको भी ब्राह्मणोंके समान नहीं देखता। क्योंकि ब्राह्मणरूप मुखमें लोग जो कुछ श्रद्धापूर्वक अर्पण करते हैं, उससे मुझे तृप्ति होती है। यहाँतक कि मेरे अग्निरूप मुखमें हवन करनेसे भी मुझे वैसी तृप्ति नहीं होती। इस लोकमें जिन्होंने मेरी सनातन साक्षात् मूर्ति धारण की है, जिनमें परमपवित्र सत्त्वगुण शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तप, सहनशीलता और प्रताप आदि गुण विराजमान रहते हैं, उन लोगोंकी अपेक्षा मैं किसको श्रेष्ठ समझूँ? हे विप्रगण! ब्राह्मण कितने निस्पृह होते हैं, यह मैं अधिक क्या बताऊँ! साधारण मनुष्यसे कुछ माँगनेकी बात तो दूर रही, मैं अनन्त हूँ, सर्वोत्तम परमेश्वर हूँ, स्वर्ग-अपवर्गका स्वामी हूँ, किन्तु वे लोग मुझसे भी कुछ नहीं माँगते। उनकी दृष्टिमें राज्य आदि एक तुच्छातितुच्छ पदार्थ ही नहीं, बल्कि विषतुल्य हैं। हे पुत्रगण! स्थावर और जंगम जितने प्राणी हैं उनमें मेरे रहनेका स्थान जानकर समय-समयपर सम्मान दिखाना, किसीसे वैर न करना, किसीका जी न दुखाना और हर समय उनका शुभचिन्तन करना चाहिए। मेरी उपासनाके बिना कोई भी मनुष्य महामोहपथ यमपाशसे कदापि मुक्ति नहीं पा सकता। शुकदेवजी बोले—भगवान ऋषभदेवने इस प्रकार अपने पुत्रोंको उपदेश देकर परमहंस धर्मकी शिक्षा

देनेके लिए अपने ज्येष्ठ पुत्र भरतको राज्यासनपर बिठाया। इसके बाद ऋषभदेवने शरीरके अतिरिक्त सब कुछ त्यागकर नंगे, बाल खोले हुए उन्मत्तकासा वेष धारणकर आहवनीय अग्निको अपनेमें ही स्थापित करके प्रवासमें जानेके लिए ब्रह्मावर्तसे प्रस्थान किया। राहमें लोग उनसे कुछ पूछते थे, तो भी वे मौन रहते और जड़, अन्धे, गूंगे, बधिर, पिशाचग्रस्त और उन्मत्तकी भाँति खड़े हो जाते थे। ऐसा करनेका कारण यह था कि उन्होंने मौनव्रत अवलम्बन किया था और उनका वेष अवधूतका सा हो गया था। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव अकेले पृथ्वीमें भ्रमण करने लगे। वे जिन-जिन स्थानोंमें जाते थे, वहाँ-वहाँ दुरात्मा लोग उनको डराकर, मारकर, उनके शरीरपर मूतकर, थूककर, पत्थर और धूल फेंककर, दुर्गन्धित अपान वायु छोड़कर और गालियाँ देकर सताते थे। किन्तु वे कुछ भी विचलित नहीं होते थे, किसीको कुछ भी नहीं कहते थे और उनपर दोषारोप भी नहीं करते थे। इस प्रकार उनका मैं और मेरापनका अभिमान दूर हो गया था। इनमेंसे किसीसे भी उनके मनमें विकार न उत्पन्न हो सका। उनका शरीर कोमल, देखनेमें मनोहर तथा परम सुन्दर था। किन्तु इस प्रकार शारीरिक यत्नके अभावसे वे मलिन दिखाई पड़ने लगे, मानो किसी ग्रहने पकड़ लिया हो। तब लोग ऋषभदेवके योगानुष्ठानमें विघ्न डालने लगे। उन्होंने प्रतीकार निन्दनीय समझकर अजगर व्रत धारण किया। अर्थात् एक स्थान पर पड़े-पड़े खाने-पीने और मल-मूत्र त्यागने लगे। वे कभी-कभी अपने ही मल-मूत्रपर लोटने लगते थे, जिससे देहभरमें विष्ठा लग

जाती थी। किन्तु आश्चर्य की बात है कि उनकी विष्ठामें दुर्गन्धका लेश भी नहीं था, बल्कि उसकी सुगन्धसे चारों ओर दस दस योजन तक सुगन्धित हो जाता था। भगवान ऋषभदेव इसप्रकार योगके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर गो मृग और काकके सदृश आचरण करनेलगे अर्थात् कभी चलते-चलते, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे-बैठे और कभी लेटे-लेटे खाने-पीने और मलमूत्र त्याग करने लगे। हे राजन्! भगवान ऋषभदेवने योगियोंके करने योग्य आचरण दिखानेके लिए ही अनेक योगचर्याओंका आचरण किया था।

षष्ठ अध्याय

वनाग्निमें जलकर ऋषभदेवका देह त्याग

राजा परीक्षितने पूछा—हे भगवन्! जो महात्मा आत्माराम अर्थात् अपनेमें ही रमण करनेवाले हैं, उनके कर्मोंके बीज काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि योगरूप वायुसे सुलगे हुए ज्ञानरूप पावकमें भस्म हो जाते हैं। अतएव स्वतः आये हुए योगके ऐश्वर्य उन परमहंसोंके लिए क्लेशदायक नहीं हो सकते। तब फिर भगवान ऋषभदेवने योगरूप ऐश्वर्यमें आनन्दका अनुभव क्यों नहीं किया? शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! आपने यह सच ही कहा है, किन्तु कुछ बुद्धिमान लोग चंचल मनको वशमें कर लेनेपर भी उसका विश्वास नहीं करते। इसलिए तत्त्ववेत्ताओंने कहा है कि जबतक मनकी चंचलता बिल्कुल न मिट जाय, तबतक उसका विश्वास भूलकर भी न करे। इस मनका विश्वास करनेसे ही मोहिनीरूप-दर्शनके अवसरपर शिवजीकी बहुत दिनोंकी संचित तपस्या नष्ट हो

गयी थी। हे महाराज! काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय और कर्मबन्धनका कारण मन ही है। अतः ज्ञानीपुरुष कभी उसको अपने अधीन समझकर विश्वास नहीं कर सकते। भगवान ऋषभदेव यद्यपि पृथ्वीके सभी लोगोंके अलंकारस्वरूप थे तो भी उनके साथ एक भी मनुष्य नहीं था। वे अकेले अवधूतोंकी भाँति वेषभूषा और आचरण धारणकर घूमने लगे। इस कारण उनमें भगवानके लक्षण और प्रभाव कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था। इस प्रकार कुछ कालतक घूमकर योगियोंको किस प्रकार शरीर त्यागना चाहिये, इसकी शिक्षा देनेके लिए उन्होंने अपना स्थूल शरीर त्यागनेकी इच्छा की। इसके वाद भगवान ऋषभदेव संस्कारवश कोंक, वेंक, कुटक और दक्षिण कर्णाटक देशोंमें घूमते हुए कुटक पर्वतके वनके पास आप ही आप यदृच्छापूर्वक जा पहुँचे। उस कुटकाचलके उपवनमें मुखमें छोटे-छोटे पत्थर दबाये पागलकी भाँति बड़ी-बड़ी जटा छिटकाये नंगे-धड़ंगे ऋषभदेवजी विचरने लगे। वनमें दैवात् वायुके वेगसे बांस हिलने लगे। परस्पर बाँसोंकी रगड़से भयानक दावानल प्रकट हुआ और देखते-देखते उनके शरीरके साथ समूचा वन जल गया। हे राजन्! भगवान ऋषभके आचरणोंका वृत्तांत सुनकर कोंक, बेंक, कुटक देशोंका अर्हतनामक राजा भी वैसा ही आचरण करने लगा और वह मतिमंद भवितव्यतासे मोहित होकर कलियुगमें अधर्मकी उन्नति करेगा। वह लोगोंको सनातनधर्म मार्ग छोड़कर अपनी बुद्धिसे पाखंडमय कुमार्गपर चलावेगा। हे महाराज! इस अधर्म-प्रवर्तक राजाके पीछे कलियुगके मन्दबुद्धि मनुष्यगण सदाचार त्यागकर देवताओंका तिरस्कार करेंगे

और घृणित तथा विपरीत व्रतोंको अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार ग्रहण करेंगे। जिससे वे स्वेच्छाचारी होकर घोर अन्धकारमें जा गिरेंगे। हे राजन्! ऋषभदेवजी लोक, वेद, देवता, ब्राह्मण और गऊ आदि सब पूजनीयोंके पूजनीय परम गुरु हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

सप्तम अध्याय

राज्य करते हुए भरतकी भगवदाराधना

शुकदेवजी बोले—भरत पिताकी आज्ञासे पृथ्वीपालन करनेके लिए नियुक्त हुए। भरतजीने ऋषभजीकी ही आज्ञासे विश्वरूपकी कन्या पञ्चजनीसे विवाह किया। उन्होंने पञ्चजनीके गर्भसे सुमति, राष्ट्रभित्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नामक पाँच पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्! पहले पृथ्वीके इस देशका नाम अजनाभ था। राजा भरतके होनेपर इसका नाम भारतवर्ष पड़ा। सर्वज्ञ राजा भरत अपने बाप-दादोंके ढंगसे ही प्रजाका पालन करने लगे। उन्होंने श्रद्धापूर्वक छोटे-बड़े अनेक यज्ञ करके भगवान विष्णुकी आराधना की। हे राजन्! राजा भरतने एक हजार अयुत वर्षतक राज्यभोग करनेके उपरान्त राज्य और सम्पदा शास्त्रानुसार अपने पुत्रोंको बाँट दी और आप सम्पदापूर्ण राजभवन छोड़कर विषयवासना त्यागपूर्वक हरिक्षेत्रमें पुलहाश्रमको गये और संन्यास धारणकर शुद्धभावसे रहने लगे तथा एकान्तमें रहकर अनेक प्रकारके फूल, किसलय, तुलसी, जल और फल-फूल आदि समाग्रीसे भगवान की आराधना करने लगे। वहाँ परम पवित्र गण्डकी नदी है। गण्डकीमें जो शिलाएँ हैं, उनपर चक्रका चिह्न है। उन चक्रोंके ऊपर

और नीचेके भागमें एक-एक नाभि (आवर्त) हैं। गण्डकी वहाँके सब आश्रमोंको अपने शुद्ध जलसे पवित्र करती रहती है। हे राजन्! राजर्षि भरत मृगचर्म धारण करके शुद्धाचारमें रहते हुए भगवान हिरण्मय पुरुषकी आराधना करने लगे। भरतजी आराधना करते हुए कहते थे—प्रकृतिसे परे और शुद्ध सत्त्वस्वरूप सूर्यदेवका आत्मस्वरूप तेज हम लोगोंको कर्मोंका फल दिया करता है। क्योंकि उसीके मनसे इस विश्वकी सृष्टि हुई हे। वह अपने उत्पन्न किये हुए विश्वमें सब जगह अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके अपनी चित् शक्ति द्वारा जीवोंका रक्षण-अवेक्षण करता है। हम उसी सूर्यकी शरणमें हैं।

अष्टम अध्याय

भरतको मृगशरीर मिलना।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक दिन राजा भरत स्नान आदि करके नदीके तटपर बैठे हुए ओंकारका जप कर रहे थे। उसी अवसरपर एक अकेली हरिणी जल पीनेके लिए नदीतटपर आयी। वह जल पी रही थी, इतनेमें निकट ही एक सिंहका गर्जन सुनाई पड़ा। सिंहकी गर्जना सुनकर हरिणी डर गयी और काँपने लगी। वह गर्भिणी थी। जब वह नदी फाँद जानेकी चेष्टामें थी, उसी समय भयके मारे उसका गर्भपात हो गया। जिससे बच्चा नदीके जलमें गिर पड़ा और हरिणी पर्वतकी गुफामें गिरनेके साथ ही मर गयी। उधर यह देखकर कि हरिणीका बच्चा नदीमें डूब रहा है, भरतजीका हृदय दयासे व्याकुल हो उठा। वे उस मृगशावकको

जलसे निकालकर अपने आश्रममें ले गये और पालन करने लगे। फिर तो भरतजी उस हरिण-शिशुमें अत्यन्त आसक्त हो गये। स्नान-ध्यान आदि छोड़कर दिन-रात उस हरिण-शावकके स्नेहमें आबद्ध रहने लगे। हे महाराज! मृगशिशुके लालन-पालनरूप कर्म-दोषसे उनका योग और उनकी आराधना नष्ट हो गयी। किसी समय भी वे उसको अलग नहीं करते थे। एक दिन वह मृग-बालक मृगोंके झुंडमें मिलकर दूर चला गया। उसे न देखकर भरतजी महामोहको प्राप्त हुए और दीन स्वरमें अनेक प्रकारसे शोकोद्‌गार करने लगे। कालान्तरमें जब मृत्युने आक्रमण किया, उस समय भी वे इसी ध्यानमें थे कि वही मृगबालक सन्तानकी तरह पास बैठा हुआ शोक कर रहा है। इस प्रकार मृगमें ही मन लगा रहनेके कारण शरीर त्यागनेके बाद दूसरे जन्ममें उन्होंने मृग-का शरीर पाया। किन्तु मृगयोनिमें भी उनको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। मृगशरीर पाकर भरतजी खेद करने लगे और उसी समय अपनी माता मृगीको अपने जन्म-स्थान कालंजर पर्वतपर छोड़कर वहाँसे फिर गण्डकी नदीके किनारे हरिक्षेत्रके अन्तर्गत पुलहके आश्रममें चले गये। उस पुण्याश्रममें भरतजी अकेले रहने लगे। सूखे पत्ते तृण लता आदि खाकर निर्वाह करते हुए वे मृग-शरीर छूटनेकी प्रतीक्षा करने लगे और जब मृत्युकाल आया, तब गण्डकी नदीके जलमें उन्होंने मृग-शरीर त्याग दिया।

नवम अध्याय

जड़ भरतका विप्रके रूपमें जन्म लेना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अङ्गिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके यहाँ भरतजीका तीसरा जन्म हुआ। वह विप्रवर शम, दम, तप, वेदाध्ययन, दान, सन्तोष, सहनशीलता, विनय, विद्या, सरलता, आत्मज्ञान और प्रसन्नता आदि उत्तम गुणोंसे युक्त थे। उनकी पत्नीके गर्भसे श्रेष्ठ गुणोंयुक्त नौ पुत्र उत्पन्न हो चुके थे। उनकी कनिष्ठा पत्नीके गर्भसे परमभागवत भरतका जन्म हुआ। इनके अतिरिक्त एक कन्या भी उत्पन्न हुई। हे राजन्! भरतजीको ईश्वरकी कृपासे अपने पहले जन्मका वृत्तान्त स्मरण था। विप्रकुलमें जन्मग्रहण करके भी फिर संगदोषसे अधः-पतन न हो जाय, इस आशंकासे भरतजो भगवानके चरणयुगलका स्मरण करते हुए स्वजनोंसे अलग ऐसी दशामें रहने लगे कि देखनेवाले उनको उन्मत्त जड़ (बावला) और बधिर समझकर अपने पास नहीं रखते थे। यद्यपि यह पुत्र जड़ था, तथापि ब्राह्मणने उसे लिखना-पढ़ना सिखानेमें कोई त्रुटि नहीं की। पिताने ओंकार और व्याहृतियों सहित गायत्रीकी शिक्षा देनेकी बहुत कुछ चेष्टा की, किन्तु सफलता नहीं मिली और केवल आशामें ही समय बीतने लगा। भरत कुछ भी याद नहीं कर सकते थे। वे सब बातें भूल जाया करते थे।. इसी समय कालने आकर ब्राह्मणको धर दबोचा। ब्राह्मणके मरनेके बाद उसकी छोटी स्त्री पुत्र भरत और कन्याको सौतके हाथमें सौंपकर पतिके साथ सती होकर पतिलोकको चली गयी। पिताका स्वर्गवास हो जानेपर भरतके

भाइयोंने जब देखा कि भरत जड़ हैं और दूसरोंसे भोजन पाकर उनके काम किया करते हैं, तब उन्होंने अपने खेतोंमें काम करनेके लिए इनको नियुक्त किया। भरतजी बिना कुछ कहे-सुने वह काम भी करने लगे। जो भी कोई काम करनेके लिए कहता, भरत वही करने लग जाते थे। जो जैसा कहता, वैसा ही करते थे। उनके अन्य भाई उन्हें जो कुछ भी दे देते थे, उसीको अमृतके समान मानकर खा लेते थे। उनके मनमें घृणाका भाव लेशमात्र भी नहीं था। सभी निन्दित ब्राह्मण कहकर उनकी निन्दा करते थे, किन्तु भरत किसीको कुछ नहीं कहते थे। भरतजी हृष्ट-पुष्ट और बलवान् थे। लोग जिस काममें उनको लगा देते थे, उनको परिश्रमसे पूरा करनेमें वे कुछ भी त्रुटि नहीं करते थे। थोड़ा भी भोजन दे देनेसे वे सन्तुष्ट हो जाते थे। हे राजन्! जड़ भरतके मनमें कुछ भी चंचलता नहीं थी। उनके सम्बन्धमें एक कहानी सुननेसे तुम्हें विश्वास हो जायगा। एक समय चोरोंके किसी सरदारने पुत्रकी कामनासे भद्रकालीको प्रसन्न करनेके लिए नरपशुकी बलि चढ़ानेकी मनौती मानी। दैववश वह पुरुष जिसको बलि देनेके लिए चोरराजने मँगाया था, बन्धन छूट जानेके कारण प्राण लेकर भाग गया। आधी रातके समय चोरराजके सेवक पशुको पकड़नेके लिए चारों ओर दौड़े। खेतमें पहुँचकर अकस्मात् उन्होंने देखा कि जड़भरत ऊँचे स्थानमें खड़े होकर खेतकी रखवाली कर रहे हैं। भरतकी विलक्षण और पशुसदृश आकृति देखकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। इस नरपशुसे स्वामीका कार्य सिद्ध होगा, यह समझकर प्रसन्नतापूर्वक भरतको रस्सीमें बाँधकर वे लोग उसे चण्डिका-

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के मण्डपमें ले गये। वहाँ उन चोरोंने भरतको स्नान कराया, नये कपड़े पहनाये, गहनोंसे विभूषित किया, उनके शरीरमें चन्दनादि सुगन्धित वस्तुएँ लगायीं, तिलक लगाया, माला पहनायी, भोजन कराया और इसके बाद गरदन झुकवाकर मूर्तिके आगे बिठलाया। फिर धूप, दीप, माला, लावा, बताशे, नवदल, दूर्वांकुर और फल आदि देवीको चढ़ाकर और पूजा करके वे लोग ऊँचे स्वरसे गाने और बाजे बजाने लगे। तदनन्तर चोरराजके पुरोहितने पशु-के रुधिरासवसे भद्रकालीको पूजा करनेके लिए उन देवीके ही मंत्र-से अभिमन्त्रितकर भयानक एवं तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया। इस प्रकार जब वे लोग ब्राह्मणका अनादर करके यह भयानक कर्म करनेको उद्यत हुए, तब देवी भद्रकाली ब्रह्मतेज न सह सकनेके कारण प्रतिमामेंसे बाहर निकल आयीं। जो ब्रह्मर्षिसन्तान स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप हैं, जिनकी किसीसे शत्रुता नहीं है, जो सबके शुभचिन्तक मित्र हैं, ऐसे मनुष्यका बलिदान देवी कैसे देख सकतीं। इस कारण देवीकी प्रतिमा असह्य ब्रह्मतेजसे जलने लगी। शरीर जल उठनेसे देवीको क्रोधका वेग असह्य हो उठा। वे ऊँचे स्वरसे भयानक अट्टहास करने लगीं और भयंकर वदनसे घोरतर शब्द करते हुए उन्हीं चोरोंके खड्गसे उनके सिर काटने और अपने परिजनोंके साथ उनका ताजा रुधिर पीने लगीं। फिर रुधिर-पान करनेके कारण मदसे विह्वल होकर अपने पार्षदोंके साथ नाचने और आमोद-प्रमोद करने लगीं। हे राजन्! चोरोंकी ऐसी दुर्गति कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। महात्मा लोगोंपर अत्याचार करनेका फल अपने ही ऊपर पड़ता है। हे परीक्षित! स्वयं

भगवान् इसी प्रकार अर्थात् भद्रकाली आदि रूपोंसे सर्वदा भक्तजनोंकी रक्षा किया करते हैं।

दशम अध्याय

जड़भरत और राजा रहूगणका संवाद

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एक समय सिन्धु-सौवीर आदि देशोंका राजा पालकीपर चढ़ा हुआ कहीं जा रहा था। इक्षुमती नदीके किनारे पहुँचनेपर एक कहारकी कमी पड़ गयी। अतएव कहारोंका मुखिया वहाँपर पालकी ढोने योग्य मनुष्य ढूँढ़ने लगा। अकस्मात् उसको वहाँ भरतजी दिखाई पड़े। बैल और गधेकी तरह मोटे जड़भरतको देखकर उसने उनको पकड़ लिया और पालकी ढोनेके काममें लगा दिया। इस कामके योग्य न होनेपर भी महानुभाव भरतजी बिना कुछ कहे पालकी ढोने लगे। पैरके तलेसे दबकर कोई जीव न मर जाय, इस विचारसे भरतजी नीचे भूमिपर दृष्टि रखते हुए उछल-उछलकर चल रहे थे। ऐसा करनेसे सब कहारोंकी चाल बराबर नहीं हुई और पालकी ऊँची-नीची होनेसे रहूगण राजाको धक्का लगा। अतएव राजा क्रुद्ध होकर उनका तिरस्कार करने लगा। कहारोंने राजाकी क्रोधपूर्ण बात सुनकर दण्डके भयसे विनयपूर्वक निवेदन किया कि हे नरदेव! यह नया कहार हमारे साथ ठीक चालसे नहीं चलता। यह सुनकर रहूगण जड़भरतका भी व्यंग्य वचनोंसे इस प्रकार तिरस्कार करने लगे—यह क्या बात है कहार! मुझे जान पड़ता है कि अकेले बहुत देरतक पालकी ढोनेसे तुम बहुत थक गये हो। तुम न बहुत मोटे हो और न

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुम्हारे अंग ही बलिष्ठ और दृढ़ हैं। इसपर वृद्धावस्थाने तुमको और भी शिथिल कर दिया है। इसी कारण तुम अपने इन साथियोंकी बराबरी नहीं कर सकते। इस प्रकार राजाने व्यंग्य-भरा उपहास किया, किन्तु सुनकर भी भरतजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और चुपचाप पहलेकी भाँति पालकी लेकर चलने लगे। हे राजन्! भरतके मौन धारणका कारण यह था कि ब्रह्मस्वरूप हो जानेके कारण "मैं-मेरा" के मिथ्या ज्ञानको भरतजीने त्याग दिया था। फिर जब पालकी टेढ़ी हुई, तब बहुत कुपित होकर राजा बोला—अरे! यह क्या? तू क्या जीते जी अपनी मौत चाहता है? क्या तू नहीं जानता कि मैं तेरा स्वामी हूँ। तू मेरा निरादर कर रहा है? तू बड़ा उन्मत्त है। अच्छा ठहर! अभी यमराजकी भाँति सजा देकर मैं तुझे सुधारता हूँ। हे राजन्! रहूगण अपनेको पण्डित समझकर बड़ा अभिमानी हो रहा था। इसी कारण रजोगुण और तमोगुण द्वारा बढ़े हुए मदसे उन्मत्त होकर उसने इस प्रकार अनेक असंगत बातें कहकर भरतका तिरस्कार किया तो ब्राह्मण भरत अहंकारशून्य भावसे हँसने लगे। हे राजन्! इसके बाद भरतने राजाको सम्बोधित करते हुए कहा—हे वीर! तुमने जो व्यंग्यपूर्ण वाक्य कहे, वे असत्य नहीं हैं। क्योंकि तुमने जिस भारका उल्लेख किया है, वह मेरे लिए कुछ भी नहीं है। तुमने जो यह कहा कि मोटे नहीं हो, यह तो सत्य ही है। क्योंकि आत्माके प्रति स्थूल शब्दका प्रयोग ही अनुचित है। देह ही स्थूल हो सकती है—आत्मा नहीं। मुझमें देहाभिमान नहीं है। अतएव मुझमें मोटापन या दुबलापन कुछ भी नहीं है।

तुमने मुझे जीवन्मृत कहा है अर्थात् जीवित रहते भी मुझे मरा हुआ समझते हो। इसके लिए मेरा यही कहना है कि मैं ही केवल ऐसा नहीं हूँ। जितने पदार्थ हैं, सभी जीवन्मृत दशामें देखे जाते हैं और वे सभी आदि और अन्तसे युक्त हैं। तुमने मुझसे कहा कि अपने प्रभुका आदेश नहीं मानते हो तो मेरा कहना है कि कौन किसका प्रभु है? प्रभुता क्या है? जबतक तुम राजा हो, तभीतक ऐसी बात कह सकते हो। फिर भी यदि तुमको प्रभुताका अभिमान है तो बताओ, हम तुम्हारी कौन-सी आज्ञा मानें? हे राजन्! तुमने मुझे उन्मत्त आदि कहा है। इसके सम्बन्धमें मेरा कथन यह है कि सचमुच मैं उन्मत्त अथवा मत्त या जड़की भाँति हो गया हूँ। क्योंकि मुझे ब्रह्मभाव प्राप्त हो चुका है। तुम मेरी चिकित्सा करो या दण्ड दो अथवा शिक्षा दो, इससे मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। मैं मुक्त हूँ। अतएव इष्ट-अनिष्टका कुछ भी प्रभाव मेरे ऊपर नहीं पड़ सकता। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भरतजी इस प्रकार रहूगणके व्यंग्यपूर्ण वाक्योंका उत्तर देकर फिर पहलेकी भाँति पालकी ढोते हुए चलने लगे। जो अविद्या देहाभिमानका कारण है, वह दूर हो जानेसे भरतजीको राजाकी पालकी ले चलनेमें कुछ भी कष्ट या अपमान नहीं जान पड़ता था। भरतके मुखसे सांख्य और योगकी बात सुनकर राजा तुरत पालकीसे उतर गया और राजा होनेका गर्व छोड़कर भरतजीके पैरोंपर गिर पड़ा और अपने अपराधके लिए क्षमायाचना करता हुआ कहने लगा—हे ब्रह्मन्! मैं आपके कन्धेपर यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। क्या आप ब्राह्मण हैं? क्या अवधूत हैं? या छिपे वेषमें कोई

महात्मा तो नहीं हैं ? राजा रहूगण इस तरह अनेक प्रकारके प्रश्न करने लगे।

एकादश अध्याय

राजा रहूगणको जड़भरतका ज्ञानोपदेश

राजा रहूगणके वाक्य सुनकर जड़भरतजी कहने लगे—हे महाराज ! तुम अविद्वान् होकर भी विद्वानोंकी-सी बातें करते हो। किन्तु तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सत्य नहीं है। मन ही इन सब विषयोंका मुख्य कारण है। मन जब गुणमय कर्मोंमें आसक्त होता है, तब अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियोंको ग्रहण करता है। किन्तु मन जब गुण-कर्मोंको त्याग देता है, तब अपने तत्त्व अर्थात् ब्रह्मको भजने लगता है। हे राजन् ! मनकी वृत्तियाँ वास्तवमें ग्यारह हैं। इनमें पाँच कर्माकार, पाँच ज्ञानाकार और एक अभिमान है। पण्डितजन रूप, रस और गुह्यादि कर्मोंको और शरीरको इन ग्यारह वृत्तियोंका विषय समझते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँच ज्ञानाकार वृत्तियोंके विषय हैं। कथन, ग्रहण, गमन, विष्ठात्याग और रमण—ये पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं। ग्यारहवाँ शरीर अभिमानका विषय है। शरीरका नाम है पुर। इस पुरमें जीव अहंकारके साथ शयन करता है। इसीसे जीवात्माका एक नाम पुरुष भी है। हे राजन् ! ये सब एकादश प्रकारकी वृत्तियाँ, स्वभाव, संस्कार, अदृष्ट (भाग्य) और काल आदि कारणोंसे सौ, हजार और करोड़ों प्रकारकी वृत्तियाँ हो जाती हैं। किन्तु वे न क्षेत्रज्ञ जीवसे जायमान होती हैं, क्योंकि वह विकारहीन है

और न परस्पर मिलकर ही होती हैं। क्योंकि कोई किसीका आश्रय नहीं हो सकता। मन ही कर्ता है। सभी वृत्तियाँ उसकी विभूति हैं। क्षेत्रज्ञ आत्मा दो प्रकारका होता है—जीव और ईश्वर। जीवके रूपका निरूपण पहले कर चुका हूँ। अब ईश्वरका निरूपण करता हूँ। ईश्वर सर्वव्यापी, पूर्णस्वरूप, जीवका कारण और जीवके लिए प्रत्यक्ष है। वह स्वयं प्रकाशमान है। उसका जन्म नहीं होता। वह ब्रह्मा आदि ईश्वरोंका भी ईश्वर है। वही नारायण है। वह भगवान है अर्थात् ऐश्वर्य आदि छः अपूर्व गुणोंसे परिपूर्ण है। वह वासुदेव अर्थात् सब तत्त्वोंका आश्रय और प्रकाशक है। वही मायामय वासुदेव भगवान सबके प्रभु हैं। हे नरेन्द्र! जबतक यह देही जीव ज्ञानकी उत्पत्ति द्वारा मायाको नहीं छोड़ता, तबतक संसारकी अनेक योनियोंमें मारा-मारा फिरता है। जबतक संसारको सभी सन्तापोंका क्षेत्र नहीं समझता, तबतक संसारसे त्राण नहीं पाता। रोग, शोक, मोह, लोभ, राग और द्वेष इन सबके संयोगसे मनमें ममता उपजती है। ममतासे संसारका ताप उत्पन्न होता है। इसलिए सिद्ध होता है कि मन ही संसारके सम्पूर्ण सन्तापोंका क्षेत्र है। अतएव हे राजन्! तुम हरिके चरणोंकी उपासनाके अस्त्रसे सावधानतापूर्वक इस मनरूपी शत्रुका विनाश करो।

द्वादश अध्याय

जड़भरत द्वारा रहूगणका सन्देह दूर होना

रहूगणने कहा—हे योगेश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप आत्मस्वरूप हैं और परमानन्दमय होकर शरीरको तुच्छ

समझ रहे हैं। हे ब्रह्मन्! आपके वाक्योंने मेरे लिए अमृतमय औषधका काम किया है। आपने अध्यात्मयोगसे पूर्ण जो गूढ़ वचन कहे हैं, वे बड़े ही कठिन हैं—जल्दी समझमें नहीं आते। वह अध्यात्मयोग विस्तारपूर्वक सरल व्याख्याके साथ कहिये, जिससे मैं सहजमें समझ सकूँ। यह बात सुनकर भरतने रहूगणको सम्बोधित करते हुए कहा—हे राजन्! जो पार्थिव विकार अर्थात् पृथ्वीका रूपान्तर देह है, वही किसी कारणवश पृथ्वीपर चलनेसे भारवाहकादि नामोंसे पुकारा जाता है। दोनों पार्थिव विकारोंमें अर्थात् पृथ्वीके रूपोंमें इतना ही भेद है। इस पार्थिव विकारके जो दोनों चरण हैं, उनपर क्रमशः गुल्फ, जंघा, जानु, ऊरु, मध्यदेश, वक्षःस्थल, कंठ और कंधा आदि अंग हैं। फिर उसपर काठकी बनी पालकी रखी हुई है। इस पालकीपर सौवीरराज नामसे प्रसिद्ध एक पृथ्वीका बिकारमात्र बैठा है। इस पृथ्वीके विकारमें ही तुमने मैं-मेरा सुदृढ़ अभिमान कर रखा है। इसी कारण तुम अपनेको सिन्धुदेशका राजा कहकर दुर्मदसे अन्धे हो रहे हो और इन दीन व्यक्तियोंको पालकी ढोनेके लिए बेगारमें रखकर कष्ट देते हो। इसलिए तुम बड़े निष्ठुर हो। मैं सबका रक्षक हूँ, कहकर जो आत्मश्लाघा कर रहे हो, वह मिथ्या है। तुम धृष्ट हो। महात्माओंकी सभामें तुम्हारी शोभा नहीं हो सकती। हे राजन्! जब पृथ्वीसे ही सभी चराचर पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है और नाश भी होता है, तब सिद्ध हुआ कि पृथ्वी ही सब विकारोंका मूल है। किन्तु ये सभी अनित्य हैं—मिथ्या हैं। केवल निर्विकार वासुदेवका नाम ही सत्य है। पण्डितोंका कहना है कि उन वासुदेवकी उपासना करने-

से सद्बुद्धि जाग्रत् हो सकती है। हे राजन्! पूर्वजन्ममें मैं भी भरत नामका एक राजा था। संसारको अनेक प्रकारसे देख-सुन और घूमकर मेरा बन्धन छूटा था और मैं भगवानकी आराधना करने लग गया था। कुछ कालके बाद दैववश एक मृगके संगसे मुझे मृगशरीर मिला, जिससे मेरा उद्देश्य विफल हो गया। पूर्वजन्ममें मैंने कृष्णभगवानकी अनेक प्रकारसे आराधना की थी। इसीलिए उनके अनुग्रहसे मुझको पूर्वजन्मकी घटना नहीं भूली है। तबसे ही मैं लोगोंका संग त्यागकर अपनेको छिपाये हुए घूमता रहता हूँ।

त्रयोदश अध्याय

रहूगणका वैराग्य दृढ़ करनेके लिए भरत द्वारा भवाटवीका वर्णन

भरतने पुनः राजा रहूगणको सम्बोधित करते हुए कहा—हे राजन्! यह भवाटवी अर्थात् संसाररूपी वन अति दुर्गम है। रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुणोंसे विभक्त जितने कर्म हैं, उनको ही अपना कर्तव्य समझकर यह जीव बनियेकी भाँति इसमें आकर धनोपार्जनके लिए चारों ओर भटकता फिरता है। किन्तु किसी प्रकार सुख नहीं पाता। हे राजन्! इस भवाटवीमें छः बड़े भयंकर और प्रबल दस्यु हैं। वे बलपूर्वक बनियोंका धन लूटते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भयभीत होनेके सैकड़ों-हजारों कारण हैं। हानि या लाभ इन दोनोंमेंसे एक ही फल उन बनियोंको मिलता है। किन्तु वे लोग उस पदको नहीं पाते, जहाँ संन्यासी और परमहंस लोग जाते हैं। हे राजन्! इस भवाटवीमें भटकनेवालोंका और भी

विवरण कह रहा हूँ, सुनो। बहुतेरे जीव पक्षियोंके मधुर कलरव सुननेकी कामनासे उनमें आसक्त हो जाते हैं। वे कभी-कभी वक्र, हंस, गीध और बटेर आदिसे मित्रता करते हैं। कभी उनके आहार-व्यवहार भले न मालूम पड़नेपर वानरोंके साथ मिलकर क्रीड़ा करते हैं। वे अपने जीवनकी अल्प अवधिको भूल जाते हैं। कितने जीव स्त्री-पुत्र आदिकी मायामें इतने आबद्ध हो जाते हैं कि मुक्तिपथका आश्रय नहीं ले सकते। इस प्रकार अनेकानेक भ्रममें पड़कर वे यथार्थ तत्त्वको नहीं जान पाते। इसलिए कहता हूँ कि हे रहूगण! तुम भी मायामें आबद्ध होकर भवाटवीमें भटक रहे हो। तुम राज्य त्यागकर सब प्राणियोंसे मित्रताका भाव रखो और हरिभजन करते हुए उसके द्वारा ज्ञानरूप अस्त्र तीक्ष्ण करके हाथमें ले लो और निर्भयभावसे इस संसारके पार चले जाओ। राजा रहूगण बोले—हे ब्रह्मन्! अन्य जन्मोंकी अपेक्षा मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है। इसमें आप सदृश परमहंसोंका समागम होता है। उन देव आदि श्रेष्ठ योनियोंसे क्या लाभ कि जहाँ आप जैसे महात्माओंका समागम नहीं होता। आपके चरणरजकी उपासना करनेसे जिनके पाप दूर हो गये हैं, उन सबकी यदि भगवानमें विशुद्ध-भक्ति हो जाय तो कोई अद्भुत बात नहीं है। क्योंकि क्षणभर आपका संग करनेसे ही मेरा सब भ्रम दूर हो गया है। श्रीशुकदेवजीने कहा—हे परीक्षित! यद्यपि राजा रहूगणने जड़भरतका अपमान किया था, तथापि उन्होंने दया करके उसको आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। उसके बाद रहूगणने भरतके चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया। भरत पहलेकी ही तरह फिर पृथ्वीमें घूमने लगे। इधर

रहूगणने भी भरतजीसे तत्त्वसहित आत्मज्ञान पाकर उसी क्षण देहाभिमानको त्याग दिया। महाराज परीक्षित बोले—हे भगवन्! भवाटवीका वर्णन तो आपने ठीक किया। किन्तु इस रूपकके भावको थोड़ी बुद्धिके लोग सहजमें नहीं समझ सकते। अतएव इस दुर्बोध रूपककी सरल व्याख्या करके कहिये, जिससे सब लोग सहजमें समझ सकें।

चतुर्दश अध्याय

भवाटवीकी व्याख्या

राजा परीक्षितकी प्रार्थनासे प्रसन्न शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस भवाटवीमें जीवगण बनियोंके समान हैं। ये बनिये इस संसारमें नित्य अर्थ उपार्जन करनेमें मग्न रहते और भक्तिमार्गतक नहीं पहुँच पाते। हे परीक्षित! संसारका मार्ग बहुत ही कठिन है। क्योंकि भोगमें आसक्त रहनेके कारण उन्हें परमार्थके सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी नहीं होती। हे राजन्! इस संसारमार्गमें स्त्री और पुत्र आदि सियार और भेड़िये हैं। अतिलोभी कुटुम्बी भेड़के बच्चेके समान हैं। पुरुष जिस सम्पत्तिकी रक्षा किया करता है, उसको ये स्त्री-पुत्र आदि अनेक बहानोंसे छीन लेते हैं। जैसे खेतोंमें बीज नष्ट नहीं होता। हर साल घास-फूस आदि जम जानेसे मार्ग दुर्गम हो जाता है। वैसे ही गृहस्थाश्रममें भी कर्मबीज नष्ट नहीं होते। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो सुवर्ण अग्निके मलसे उत्पन्न होता है, उसीके लोभवश संसारी लोग सत्य और धर्म-कर्म त्यागकर धनकी खोजमें जीवन नष्ट करते हैं। निवासस्थान और जल-

अन्न इत्यादि पदार्थ जीवके जीवनकी सामग्री हैं। इनके लिए तन-मनसे प्रयत्न करता हुआ यह जीव इस भवाटवीमें चारों ओर दौड़ता फिरता है। वह जीवनमें ही मुर्देकी भाँति होकर धनोपार्जनके लिए इधर-उधर भटकता रहता है। हे राजन्! इस संसारके सभी काम मधुकणके समान हैं। पुरुष उस कामकी खोजमें घूमता-फिरता है। वह पराये द्रव्य और परायी स्त्रीपर दृष्टि डालता और उन-पर आक्रमण कर देता है, तब राजाके द्वारा निहत होकर भयानक नरकमें जा गिरता है। इसीलिए पण्डित लोग कहते हैं कि संसार ही इहलोक और परलोकके फलाफलका क्षेत्र है। इस संसारकी दुर्दशाका वर्णन नहीं हो सकता। उपसर्ग भी अनेक हैं। प्रतिदिन विविध उपद्रव होते रहते हैं। इसके सिवाय सुख, दुःख, राग, द्वेष, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, भूख, प्यास, आधि, व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि बड़े-बड़े कष्ट मिलते हैं। मायारूपिणी स्त्रीके प्रेममें आसक्त होकर अजितेन्द्रिय होनेके कारण यह जीव अपने आपको घोर अन्धकार-में डाल देता है। हे राजन्! भगवानका कालरूप चक्र निरन्तर घूमता रहता और बाल्य-युवा आदि अवस्थाएँ ही उसकी गति हैं। कालचक्रके इस वेगमें ब्रह्मासे लेकर तृणतककी उत्पत्ति और नाश होता रहता है। किसी प्रकार कोई उसका प्रतीकार नहीं कर सकता। किन्तु विष्णुचक्र सदा सतर्क रहता है। अतएव वह काल-रूप विष्णुचक्रसे भयभीत होकर भगवान यज्ञपुरुषका अनादर करता और गीध-बक आदिके तुल्य पाखण्डशास्त्रानुयायी पाखण्डी देव-ताओंका आश्रय लेता है। पाखण्डी देवता आत्मविषयोंसे वंचित

रहते हैं। इसके बाद वह हंसतुल्य विवेकी ब्राह्मणोंके बीच जाकर वास करता है। किन्तु उनके साथ रहनेपर भी जो आचार-व्यवहार और श्रुतिस्मृति द्वारा अनुमोदित कर्मोंके अनुसार भगवान यज्ञ पुरुषकी आराधना करते हैं, उनमें उसकी रुचि नहीं रहती। तब वह अनेक अशुद्ध आचारमें अनुरक्त होकर शूद्रके समान हो जाता है। शूद्रोंको वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म करनेका अधिकार नहीं है। वानरोंके समान स्त्री-संग और कुटुम्बका पालन ही उनके कर्म हैं। इस प्रकार स्वेच्छानुसार आहार-विहारमें रत रहकर वह अपनी मृत्युकी अवधि तकको भूल जाता है। हे राजन्! प्रत्येक पुरुष संसारमें रहकर खेलके समान घर-द्वार और स्त्री-पुत्रका परिवार लेकर उनमें ही अनुरक्त हो जाता और मैथुनकार्यको ही उत्सव मानने लगता है। इस प्रकार वह पुरुष गिरिकन्दराके तुल्य घोर अन्धकारमें जा गिरता है। रोग आदि त्रिविध दुःख और शोक पाकर वह कठिन विषय-वासनामें पड़नेसे उदास हो जाता है। धनमें आसक्ति बढ़नेसे लोगोंसे शत्रुता बढ़ जाती है। धनोपार्जन करना और धनका नष्ट होना दोनों ही क्लेशदायक होते हैं। कोई-कोई जीव कर्मसूत्रका अवलम्बन करके अत्यन्त कष्टसे नरककी आपदासे छुटकारा पाते हैं, किन्तु वे फिर नरकलोकमें आकर जन्म लेते हैं। स्वर्गमें जो लोग जाते हैं, उनकी भी यही गति होती है।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! ऋषभनन्दन राजर्षि भरतने भगवानमें भक्ति रहनेके कारण युवा अवस्थामें ही स्त्री-पुत्र, राज्य और धन आदिको विष्ठाके समान त्याग दिया था। हे राजन्! यह भरतचरित्र मङ्गलमय, परमायु बढ़ानेवाला, धन और यश देनेवाला

और स्त्री तथा मोक्षके मिलनेका उपाय है। इस चरित्रको पढ़ने या सुननेसे स्वयमेव सब प्रकारके मंगल प्राप्त होते हैं। उनको औरोंसे कल्याणकी कामना नहीं करनी पड़ती।

पञ्चदश अध्याय

भरतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वृत्तान्त

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भरतके पुत्र सुमति हुए। पापात्मा पाखंडी लोग इनको कलियुगमें बुद्धदेवका अवतार मानेंगे, किन्तु वेदमें इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। इस वंशमें प्रतीह-नामक एक राजा हुआ था। महात्मा प्रतीहने अनेकानेक लोगोंके आगे आत्म-विद्याकी व्याख्या करके उसके द्वारा स्वयं पवित्र होकर भगवान विष्णुका साक्षात् दर्शन पाया। बादको कुछ काल बीतनेपर इसी वंशमें महाराज गय उत्पन्न हुए। राजर्षि गय महायशस्वी हुए थे। वे विष्णुके अवतार माने गये और महापुरुषकी पदवीको प्राप्त हुए। महाराज गय राज्याभिषेक होनेके बाद गृहाश्रममें रहकर प्रजाका लालन-पालन और याग-यज्ञ आदि करने लगे। प्रजापालन और गृहस्थधर्मके अनुष्ठानसे उनके चित्तसे देहादिका अभिमान दूर हो गया और वह स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मानन्दका अनुभव करने लगे। हे परीक्षित! इसी कारण पुराणोंमें उनके यशका भूरि-भूरि कीर्तन किया गया है। महाराज गयके यज्ञमें भगवान विष्णुने 'मैं तृप्त हुआ' कहकर प्रसन्नता प्रकट की थी। ऐसी दशामें गय राजाकी बराबरी कौन कर सकता है। हे राजन्! गयकी स्त्री गायन्तीके गर्भसे चित्ररथ, सुमति और अवि-

रोधन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। चित्ररथकी ऊर्णानामक स्त्रीसे सम्राट् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सम्राट्की उत्कलानामक स्त्रीके गर्भसे मरीचिनामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मरीचिकी रानी बिन्दुमतीके गर्भसे बिन्दुमान नामक पुत्र हुआ। बिन्दुमानकी संख्यानामकी स्त्रीके गर्भसे मधुनामक राजर्षिका जन्म हुआ। मधुने अपनी सुमनानामक पत्नीके गर्भसे वीरव्रतनामक पुत्र उत्पन्न किया। वीरव्रतकी स्त्री भोजा थी। उसके मन्थु और प्रमन्थुनामक दो पुत्र हुए। मन्थुकी सत्यानामक रानीके गर्भसे भौवननामक राजकुमारका जन्म हुआ। भौवनकी स्त्री दूषणाके गर्भसे त्वष्टानामक पुत्र हुआ। त्वष्टाकी विरोचनानामक रानीके गर्भसे विरजनामक पुत्र हुआ। विरजकी स्त्रीका नाम विषूची था। इसके गर्भसे सौ पुत्र और एक कन्या हुई। विरजके सौ पुत्रोंमें कुमार शतजित् ज्येष्ठ श्रेष्ठ और सद्गुणसम्पन्न थे।

षोडश अध्याय

पृथ्वीका वर्णन

महाराज परीक्षितने शुकदेवजीको सम्बोधित करते हुए कहा–हे ब्रह्मन्! भगवान सूर्य अपनी किरणोंसे जहाँतक प्रकाश करते हैं और जिस स्थानतक तारागण सहित चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं, उतना ही आपने पृथ्वीमण्डलका विस्तार बताया है। इसके अन्तर्गत सातों द्वीप और सातों सागर विद्यमान हैं। अब कृपा करके द्वीपों और सागरोंके साथ विस्तृत इस भूमण्डलका वर्णन कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! आपने जो पूछा है, वह अत्यन्त

विस्तृत विवरण है। आजीवन बोलकर भी समस्त स्थानोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं तुमको आवश्यक भूगोलका वृत्तान्त बता रहा हूँ, सुनो। हे राजन्! यह भूमण्डल कमलके समान है। सातों द्वीप इसके कोष हैं। सातो द्वीपोंमें जम्बूद्वीप मध्य अर्थात् अभ्यन्तरकोष है। इसका विस्तार एक लाख योजन है। यह कमलपत्रके समान सम गोलाकार है। इसमें नौ वर्ष (देश) हैं। भद्राश्व और केतुमालनामक दो खण्डोंको छोड़कर हर एकका विस्तार नव-नव हजार योजन है। इन नव वर्षोंके सीमाप्रान्तपर आठ पर्वत हैं, जो हरएक वर्षको अलग किये हुए हैं। इनमें इलावृतनामक अभ्यन्तर वर्ष है। उसके मध्यस्थलमें सुमेरु पर्वत है। यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी चोटी बत्तीस हजार योजन और तराई सोलह हजार योजन चौड़ी है। यह पृथ्वीके भीतर भी सोलह हजार योजन धँसा हुआ है। बाहरसे यह चौरासी हजार योजन विस्तृत दिखाई पड़ता है। हे राजन्! इलावृत खण्डके उत्तर भागमें नीलगिरि है। उसके उत्तरमें रम्यकवर्ष है। उसके उत्तरमें श्वेत पर्वत और उसके उत्तरमें हिरण्मय पर्वत है। फिर उसके भी उत्तर शृङ्गवाननामक पर्वत और उसके भी उत्तरमें कूटपर्वत है। इस प्रकार ये तीनों पर्वत तीनों वर्षोंकी सीमाका विभाजन करते हैं। ये तीनों पर्वत पूर्वकी ओर लम्बे हैं। इनकी चौड़ाई दो हजार योजन है और इनके दोनों छोर लवणसमुद्रमें मिले हुए हैं। ऐसे ही इलावृत वर्षके दक्षिणभागमें निषध, हेमकूट और हिमालयनामक तीन पर्वत हैं। ये तीनों पर्वत क्रमशः हरिवर्ष, किंपुरुषवर्ष और भारतवर्षकी सीमाका विभाग करते हैं। ये सब उँचाईमें दस हजार

योजन हैं। हे राजन्! इलावृत वर्षके पूर्वमें माल्यवान और पश्चिममें गन्धमादन पर्वत है। ये दोनों पर्वत उत्तरमें नीलपर्वत और दक्षिणमें निषध पर्वततक लम्बे और दो हजार योजन चौड़े हैं। ये दोनों पर्वत केतुमाल और भद्राश्व पर्वतकी सीमाका विभाजन करते हैं। सुमेरुके चारों ओर मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुदनामक चार पर्वत अवष्टम्भ अर्थात् थूनीके समान स्थित हैं। इन पर्वतोंमें प्रत्येकका विस्तार और उँचाई दस हजार योजन है। इन चारों पर्वतोंमें पूर्व और पश्चिमके पर्वत दक्षिणसे उत्तरतक चौड़े हैं एवं दक्षिण और उत्तर दिशाके पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक चौड़े हैं। मन्दर पर्वतपर आम, मेरुमन्दरपर जामुन, सुपार्श्वपर कदम्ब और कुमुदनामक पर्वतपर बरगदके वृक्ष हैं। इन वृक्षोंका विस्तार सौ-सौ योजन है। ये पहाड़ोंपर पताकाके समान देख पड़ते हैं। इनकी उँचाई ग्यारह-ग्यारह हजार योजन है और शाखाओंका घेरा भी सौ-सौ योजन है। हे राजन्! इन चारों वृक्षोंके निकट ही चार ह्रद अर्थात् तालाब हैं। एकमें दूध, दूसरेमें मधु, तीसरेमें ऊखका रस और चौथेमें शुद्ध जल भरा हुआ है। इन पर्वतोंपर नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नामक चार बगीचे हैं। उन बगीचोंमें देवगण अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ विहार करते और गन्धर्वादिक उपदेवगण उनकी महिमाका गान करते हैं। मन्दरपर्वतकी गोदमें ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवचूतका वृक्ष है। उसकी चोटीसे सर्वदा अमृततुल्य स्वादिष्ट और मधुर फल नीचे गिरते हैं। वह फल देखनेमें मनोहर हैं और उनका स्वाद अतिशय मधुर है। उन फलोंसे सुगन्धित अरुण रस निकलकर बहता है। उसी रससे

वहाँ अरुणोदा नामकी नदी वन गयी है। वह नदी मन्दरपर्वतके शिखरोंसे निकलकर इलावृत वर्षको घेरती है। भवानीकी सखी यक्षोंकी ललनाएँ इस रसका सेवन करती हैं। अतएव उनके अंगसे अपूर्व सुगन्ध निकलती रहती है। उनके अंगोंका स्पर्श करके वहनेवाली हवासे चारों ओर दस योजनतकका स्थान सुगन्धित हो जाता है। ऐसे ही मेरुमन्दर पर्वतपर स्थित जामुनके वृक्षसे हाथीके शरीरके तुल्य स्थूल फल गिरते हैं। उनके रससे जम्बूनामक नदी निकली है। वह अयुत (दस हजार) योजन ऊँचे मेरुमन्दरके शिखरसे पृथ्वीपर गिरती हुई इलावृत वर्षके दक्षिण ओर बहती है। इस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी जब जम्बूरसमय जलसे भींगती है तो सूर्यकिरणके संयोग और वायुके लगनेपर परिपक्व होकर उससे सोना तैयार हो जाता है। उस सोनेसे देवताओंके आभूषण आदि बनते हैं। सुपार्श्व पर्वतपर जो महान कदम्बका वृक्ष है, उसमें पाँच कोटर हैं। उनसे पाँच मधुकी धाराएँ गिरती हैं। ये धाराएँ सुपार्श्व पर्वतके शिखरोंसे नीचे गिरकर पश्चिममें स्थित इलावृत वर्षको अपनी सुगन्धसे सुगन्धित करती हैं। जो लोग इस मधुको पीते हैं, उनके मुखकी सुगन्धसे चारों ओर सौ-सौ योजन तक पृथ्वी सुगन्धित होती रहती है। कुमुद पर्वतपर शतवल्शनामक वरगद है। उसकी मोटी शाखाओंसे नीचेकी ओर दही, दूध, घी, मधु, गुड़, अन्न, भोजन, वसन, आभूषण, शय्या, आसन आदि सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओंको देनेवाले नद निकलते हैं। वे नद कुमुद पर्वतके शिखरसे नीचे गिरते हुए इलावृत वर्षके उत्तरभागमें रहनेवाले लोगोंका बड़ा उपकार करते हैं। इन सब वस्तुओंको अना-

यास ही पाकर वहाँके प्रजाजन परमसुखसे जीवन बिताते हैं। हे राजन्! सुमेरुके मूलमें चारों ओर कुरर, कुसुम्भ, वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शितिवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कपिश, कालंजर और नारद आदि पर्वत केशरके सदृश फैले हुए हैं। सुमेरुके पूर्व ओर जठर और देवकूट पर्वत हैं। पश्चिम तरफ पवन और पारिपात्र नामक दो पर्वत हैं। दक्षिणमें कैलास और करवीरनामक दो पर्वत हैं। उत्तरमें त्रिश्रृंग और मकरपर्वत हैं। इन आठ पर्वतोंसे घिरा हुआ सुमेरु पर्वत शोभा पा रहा है। इस सुमेरुके मस्तकपर बीचोंबीच भगवान ब्रह्माकी पुरी है, जिसका विस्तार एक हजार अयुत योजन है। वह पुरी सुवर्णनिर्मित और चारों ओर समचतुष्कोण है। ब्रह्माकी पुरीके ऊपरी भागमें इन्द्र आदि आठ लोकपालोंकी स्वर्णमयी आठ पुरियें बनी हुई हैं। इनमेंसे प्रत्येकका परिमाण ढाई-ढाई हजार योजन है।

सप्तदश अध्याय

गङ्गाजीकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! विष्णुभगवानने राजा बलिके यज्ञमें जाकर त्रिविक्रम मूर्ति धारण करके जब दक्षिण चरणसे पृथ्वी नापकर बायें चरणको ऊपर फैलाया, तब उनके बायें पैरके अंगूठेसे गंगाजी निकलीं और वे ही भूतलमें अवतीर्ण हुईं। धुलनेके कारण भगवान्के चरणका जो अरुणवर्ण कुङ्कुम उसमें मिल गया, वही किञ्जल्कस्वरूप होकर उस जलकी धाराको अर्थात् गंगाजीको

सुशोभित करने लगा। वह जलधारा अतिशय निर्मल, पवित्र और पापनाशक है। विष्णुके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण वह भगवत्पदी, भागीरथी, जाह्नवी आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुई है। विष्णुपद ही स्वर्गका मस्तक है। उत्तानपाद राजाके पुत्र परम-भागवत ध्रुवजी इस विष्णुपदमें अवस्थित होकर आज तक उस पवित्र जलधाराको मस्तकपर धारण करते हैं। हे राजन्! परम सिद्ध सप्तऋषिगण भक्ति प्राप्त करके अपनी जटाजूटमें यत्नपूर्वक गंगाजीकी धाराको धारण करते हैं। विष्णुके चरणसे निकलकर गंगा आकाशमार्गसे नीचे होती हुई चन्द्रमण्डलको प्लावित करके पहले सुमेरुपर्वतके मस्तकपर स्थित ब्रह्माके भवनपर गिरती है। वहाँसे भिन्न-भिन्न चार धाराओंमें विभक्त होकर सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामोंसे चारों ओर बहती हुई समुद्रमें जा गिरी है। सीता ब्रह्मसदनसे चलकर प्रधान-प्रधान पर्वतोंसे होती हुई गन्धमादन पर्वतपर गिरकर पूर्व-दिशाके लवणसमुद्रमें जा मिली है। चक्षु नामक धारा माल्यवान पर्वतके शिखरोंसे निकलकर पश्चिम दिशाके समुद्रमें जा गिरी है। भद्रा नामक धारा उत्तर दिशाके सुमेरुशिखरसे गिरकर कुमुद पर्वतके शिखरपर जाती और नीले श्वेत तथा शृंगवान पर्वतोंके शिखरोंसे नीचे उतरती हुई उत्तर कुरुवर्षके भीतर होकर उत्तर दिशाके समुद्रमें जा मिली है। अलकनन्दा भी बहुतसे पर्वतोंसे होती हुई हेमकूट और हिमकूट पर्वतोंके शिखरोंसे पृथ्वीपर उतरकर भारतवर्षके भीतरसे होती हुई दक्षिण दिशाके समुद्रमें मिल गयी है। हे राजन्! अन्यान्य नद और नदियाँ भी सुमेरु आदि पर्वतोंसे उत्पन्न होकर प्रत्येक वर्षमें

वहती हैं। किन्तु सब वर्षोंमें भारत ही कर्मक्षेत्र है। शेष आठ वर्ष स्वर्गीय लोगोंके शेष पुण्य भोग करनेके स्थान हैं। स्वर्ग तीन प्रकारके हैं—दिव्यस्वर्ग, भौमस्वर्ग और बिलस्वर्ग। उनमें ये आठों वर्ष भौमस्वर्ग हैं। उक्त आठ वर्षोंमें जो लोग रहते हैं, उनकी परमायु दसहजार वर्षकी है। उनमें दसहजार हाथीका बल है और उनका शरीर बहुत ही दृढ़ वज्रके तुल्य रहता है। वे देवताओंके तुल्य हैं। उनके शरीरमें ऐसा बल, यौवन और हर्ष है कि उनके साथ सम्भोगकार्यमें स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और सम्भोगके अन्तमें एक वर्ष आयु शेष रहनेपर उनकी स्त्रियाँ एक बार गर्भ धारण करती हैं। वे लोग पर्वतकन्दराओंमें और निर्मल जलाशयोंमें परम सुखपूर्वक क्रीड़ा करते हुए विचरते हैं। वहाँके वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल फल-फूलों आदिसे सुशोभित रहते हैं। जलाशयोंकी शोभाको क्या कहना है! खिले हुए नवीन कमलोंके सुवास और राजहंस, कलहंस, जलकुक्कुट, कारण्डव, सारस, चक्रवाक आदिके कलरव तथा भ्रमरसमूहके मधुर गुंजनसे उन सरोवरोंकी अतुलनीय शोभा होती है। उल्लिखित नव वर्षोंमें भगवान नारायण महापुरुष वहाँके रहनेवाले पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिए अपनी मूर्तियों द्वारा आज भी विराजमान हैं। भवानीके शापके कारण इलावृत वर्षमें भगवान शिवके अतिरिक्त और कोई पुरुष नहीं है। अनजानमें यदि कोई वहाँ चला जाता है तो वह स्त्री हो जाता है। यह कथा नवम स्कन्धमें बतायी जायगी। इस वर्षमें भवानीजी अपनी एक हजार अर्बुद सहचरियोंके साथ भगवान शंकरकी सेवा करती हैं। भगवान नारायणकी चार प्रकारकी मूर्तियोंमें चौथी तामसी मूर्तिका नाम

संकर्षण है और वही शिवजीकी प्रकृति है। भगवान शिव उसी मूर्तिको अपनी समाधिमें धारण करके भजते, नमस्कार करते और स्तुति करते हैं।

अष्टादश अध्याय

उपर्युक्त वर्षोंके धर्म-कर्मका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भद्राश्व वर्षके वर्षपति धर्मके पुत्र भद्रश्रवा हैं। वे अपने प्रधान-प्रधान अनुचरोंके साथ वहाँ रहते हैं। वे लोग भगवान वासुदेवकी धर्ममयी हयग्रीवमूर्ति हृदयमें धारण करके नमस्कार करते हुए भजते हैं। हे राजन्! हरिवर्षमें भगवान नृसिंहरूपसे स्थित हैं। भगवानने नृसिंह अवतार लिया था। इसका विवरण सप्तम स्कन्धमें कहेंगे। केतुमालवर्षमें भगवान नारायण कामदेवरूपसे विराजमान रहते हैं। भगवान कामदेव वहाँ लीलापूर्ण हास्ययुक्त चितवनसे अपने मुखकमलकी अद्भुत शोभा द्वारा लक्ष्मीजीको रमाते हुए स्वयं रमण करते हैं। लक्ष्मीजी रात्रिमें रात्रिकी अधिष्ठात्री देवियोंके साथ और दिनमें दिनके अधिष्ठाता देवगणके साथ भगवानके उस मायामय रूपकी उपासना करती हैं। रम्यक वर्षमें भगवान अपनी प्रियतम मत्स्यमूर्तिसे स्थित हैं। मनु उस वर्षके अधिपति हैं। हिरण्यवर्षमें भगवान हरि कूर्मशरीरसे स्थित हैं। पितृगणके अधिपति अर्यमा उस खण्डमें रहनेवालोंके साथ निरन्तर उनकी उपासना करते रहते हैं। हे राजन्! उत्तर कुरुदेशमें भगवान यज्ञपुरुष बराहरूपसे स्थित हैं। पृथ्वीदेवी कुरुवर्षवासियोंके साथ दृढ़ भक्तिपूर्वक उनका पूजन और उप-

निषदकी आवृत्ति करके उनको नमस्कार, उनका ध्यान और उनकी पूजा करती हैं।

ऊनविंश अध्याय

किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्षके धर्म-कर्मका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! किम्पुरुषवर्षमें भगवान आदिपुरुष सीताके पति और लक्ष्मणजीके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्र स्थित हैं। परम भागवत हनुमानजी किम्पुरुषगणके साथ भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करते हैं। गन्धर्वगण श्रीरामचन्द्रके परम कल्याणकारी चरित्रका गान करते हैं। उसको 'आर्ष्टिषेण' के साथ हनुमानजी सुनते और स्वयं भी भगवानकी महिमाका गान करते हैं। भगवान दशरथतनय श्रीरामचन्द्रने दुर्दान्त राक्षसोंका नाश करके रावणका वध किया। किन्तु उन्होंने केवल इसी उद्देश्यसे अवतार नहीं लिया था। स्त्रीसंग आदिसे असीम दुःख होता है, मनुष्योंको इसकी शिक्षा देना भी एक उद्देश्य था। यदि ऐसा न होता तो जो जगत्के आत्मा और ईश्वर थे, उनको सीताके वियोग आदिका दुःख कैसे सम्भव हो सकता था। वे तीनों लोकोंकी किसी वस्तुमें आसक्त नहीं थे। तब स्त्रीके वियोगसे दुख पाना असम्भव बात है। वशिष्ठजीकी सम्मतिसे प्रिय भाई लक्ष्मणको त्यागना भी आपके योग्य नहीं हो सकता था। ये सब चरित्र मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिए ही आपने किये हैं। बड़े कुलमें जन्म, सुन्दर वाक्य अथवा सुन्दर बुद्धि या जाति—इनमेंसे किसीसे भी आप सन्तुष्ट नहीं हो सकते। एकमात्र भक्तिसे ही आप सन्तुष्ट होते हैं। इसका

प्रमाण वानरोंके साथ आपकी मित्रता है। आपकी उपासनाका फल देखो कि अयोध्यावासी सभी प्रजाको अपने साथ स्वर्गको ले गये। हे राजन्! भारतवर्षमें जनताके हितके लिए भगवान नरनारायण दुश्चर तपस्या कर रहे हैं। जिस पञ्चरात्रमें भगवानका प्रभाव वर्णित है, सावर्णि मनुको भगवत्कथित सांख्ययोग सहित उसी पञ्चरात्रका उपदेश देनेके लिए देवर्षि नारद भारतीय प्रजागणके साथ उन्हीं नरनारायणकी उपासना करते हैं। वे कहते हैं—हम लोग ऋषियोंमें श्रेष्ठ भगवान नरनारायणको प्रणाम करते हैं। जो निरहंकार हैं, परमहंसोंके परमगुरु हैं, अभिमानशून्य हैं, उन्हीं भगवानको हमारा नमस्कार है आदि। हे राजन्! भारतवर्षमें बहुतसे पर्वत और नदियाँ हैं। पर्वतोंमें—मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोमुख, इन्द्रकील, कामगिरि आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंसे असंख्य नदियाँ निकली हैं। इनमें—चन्द्रवशा, पाम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती। सिन्धुनद, अन्धनद (ब्रह्मपुत्र), शोणनद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषि-कुल्या, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, असिक्नी और विश्वा आदि नदियाँ हैं। इस

भारतवर्षमें जन्म लेकर कर्मोंके फलानुसार मनुष्योंको नरक और स्वर्ग दोनों प्राप्त होते हैं। हे राजन्! भगवान वासुदेवकी भक्तिपूर्वक अर्चना करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। स्वर्गके देवता भी भारतवर्षकी इस विशेषताका गुणगान करते हैं। भारतवासी मानव बड़े ही भाग्यवान हैं। ये लोग श्रद्धापूर्वक विधि एवं मंत्र द्वारा जो पुरोडाशादि हवन करते हैं, उससे स्वयंपूर्ण एक भगवान हरि ही इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामोंसे बुलाये जाकर महाआनन्दसे ग्रहण करते हैं। देवता लोग स्वर्गके सभी सुखोंका भोग करके भी भगवान हरिके चरणकमलकी सेवाके निमित्त भारतवर्षमें ही जन्म लेनेकी कामना करते हैं। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कोई-कोई पण्डित कहते हैं कि जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीप भी हैं। राजा सगरके पुत्रोंने अपने पिताके यज्ञका घोड़ा खोजते समय इस पृथ्वीके चारों ओर खोदकर उनकी रचना की थी। उन उपद्वीपोंके नाम ये हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दर, हरिण, पाञ्चजन्य और सिंहल। हे राजन्! मैंने इस सम्बन्धमें जैसा सुना था, वैसा वर्णन कर दिया।

विंश अध्याय

प्लक्षद्वीप आदि छः द्वीपों और लोकालोक पर्वतका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! प्लक्ष आदि छः द्वीपोंके प्रमाण और लक्षण द्वारा उनके विभागका वर्णन कर रहा हूँ। जम्बूद्वीपसे प्लक्षद्वीप दो लाख योजन विस्तीर्ण है और ऊखके रसवाले समुद्रसे घिरा हुआ है। उसमें एक बड़ा भारी प्लक्ष

(पाकड़) का वृक्ष है। इस कारण ही उसका नाम प्लक्षद्वीप पड़ा है। राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व उस प्लक्षद्वीपके अधिपति थे। उन्होंने प्लक्षद्वीपको सात भागोंमें विभक्तकर अपने सात पुत्रों शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभयको एक-एक भाग दिया और समाधि योगसे ईश्वरमें मन लगाकर संसारको त्याग दिया। उन सातों भागोंके नाम और सातों राजाओंके नाम एक ही हैं। उन सातों खण्डोंमें सात मुख्य पर्वत ये हैं—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल। उस द्वीपमें ये सात महानदियाँ हैं—अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा। जैसे भारतवर्षमें ब्राह्मणादि चार वर्ण हैं वैसे ही वहाँ हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामक चार वर्ण हैं। इन नदियोंमें स्नान करनेसे उनकी रजोगुण तथा तमोगुणकी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गयी रहती हैं। उनकी परमायु एक हजार वर्षकी है। वे देखनेमें देवतुल्य होते हैं और उनके पुत्रोंकी उत्पत्ति भी देवतुल्य है। वे लोग आत्मस्वरूप त्रिवेदमय मंत्रोंके द्वारा भगवान सूर्यकी उपासना करते हैं। शाल्मलीद्वीपका विस्तार प्लक्षद्वीपसे दूना है और अपने ही समान परिमाणवाले मद्य अर्थात् सुरासमुद्रसे घिरा हुआ है। वहाँ एक बहुत बड़ा शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है। वही वृक्ष पक्षिराज गरुड़का निवासस्थान है। शाल्मली वृक्षके ही नामानुसार उस द्वीपका नाम शाल्मलीद्वीप पड़ा है। प्रियव्रत राजाके पुत्र यज्ञवाह इस द्वीपके अधिपति थे। उन्होंने भी अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त करके सात पुत्रोंको उनका राज्य दे दिया। उन सातों पुत्रों और सातों वर्षोंके

नाम ये हैं—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात। इस द्वीपमें भी सात विख्यात पर्वत और सात प्रसिद्ध नदियाँ हैं। पर्वतोंके नाम ये हैं—स्वरस, शतश्रृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति। वहाँकी सातों नदियोंके नाम ये हैं—अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका। वहाँके श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषंधर नामक चारों वर्णके प्राणी वेदमय तथा आत्मस्वरूप भगवान सोमकी वेदविहित विधिसे सदैव उपासना करते रहते हैं। सुरासमुद्रके बहिर्भागमें कुश द्वीप है। वह परिमाणमें प्लक्षद्वीपकी अपेक्षा दूना है। वह भी अपने समान परिमाणवाले घृतसागरसे घिरा हुआ है। वहाँ एक कुश वृक्ष हैं। इसी कारण उसका नाम कुशद्वीप पड़ा है। प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता उस द्वीपके स्वामी थे। उन्होंने भी कुशद्वीपके सात खण्ड कर डाले और उनमें अपने सात पुत्रोंको राजा बना दिया और स्वयं तप करनेके लिए वनको चले गये। उन सातों वर्षों या हिरण्यरेताके सातों पुत्रोंके नाम ये हैं—वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव। सातों वर्षोंमें सात ही प्रसिद्ध पर्वत और सात ही प्रसिद्ध नदियाँ हैं। पर्वतोंके नाम ये हैं—बभ्रु, चतुःश्रृङ्ग, कपिल, त्रिकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण। सातों नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, श्रुतबिन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला। कुशद्वीपनिवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक इन चार वर्णोंमें विभक्त हैं। वे सभी भगवान अग्निकी उपासना करते हैं। कुशद्वीपके बाहर क्रौञ्चद्वीप है। कुश-

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वीपसे यह दूना बड़ा है। यह क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। इस द्वीपमें क्रौञ्चनामक महान् पर्वत है। इसीसे इसका नाम क्रौञ्चद्वीप पड़ा है। इसमें भी प्रियव्रतके पुत्र घृतपृष्ठ नामक महाराज थे। उन्होंने भी इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त करके अपने सात पुत्रोंको बाँट दिये। घृतपृष्ठके सात पुत्रोंके और सात खण्डोंके नाम ये हैं—आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति। इन सात वर्षोंमें सात प्रसिद्ध पर्वत और सात ही प्रसिद्ध नदियाँ हैं। सात पर्वतोंके नाम इस प्रकार हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र। नदियोंके नाम ये हैं—अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला। उन नदियोंका जल पवित्र और निर्मल है। वहाँके अधिवासी पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवकनामक चार वर्णोंमें विभक्त हैं। उन्हीं नदियोंका वे लोग जल पीते और जलकी अंजलिसे जलमय भगवानकी पूजा करते हैं। हे राजन्! इस द्वीपके बाद शाकद्वीप है। उसका विस्तार क्रौञ्चद्वीपसे दूना अर्थात् बत्तीस लाख योजन है। वह दहीके समुद्रसे घिरा हुआ है। उस द्वीपमें शाकनामक एक विशाल वृक्ष है। उसी वृक्षसे इस द्वीपका नाम शाकद्वीप पड़ा है। प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि उस द्वीपके राजा थे। उन्होंने शाकद्वीपको सात भागोंमें विभक्त करके पुरोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वाधारनामक अपने सात पुत्रोंको बाँट दिये। इसके बाद स्वयं भगवान अनन्तमें मन लगाकर तप करनेके लिए वनको चले गये। इन सात वर्षोंमें भी सात ही मुख्य सीमापर्वत और महानदियाँ है। ईशान, उरुशृङ्ग,

बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महासन। ये पर्वत और अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति ये नदियाँ हैं। इन वर्षोंमें ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक चार वर्ण हैं। ये लोग प्राणायाम द्वारा रजोगुण और तमोगुणको नष्ट करके परम समाधियोगसे वायुरूपी भगवानकी उपासना करते हैं। इसी प्रकार दधिसमुद्रके बाद पुष्करद्वीप है। इसका विस्तार शाकद्वीपसे दुगुना है। इसको मीठे जलका सागर घेरे हुए है। इस द्वीपमें एक बड़ा भारी पुष्कर अर्थात् पद्म है। उसमें अग्निशिखाकी भाँति एक लाख निर्मल सुवर्णमय कमलपत्र सर्वदा प्रकाशित होते रहते हैं। उसी कमलमें भगवान कमलासन ब्रह्माके बैठनेका स्थान बना है। इस द्वीपमें मानसोत्तर नामक एक पर्वत है। वही पूर्व और पश्चिम वर्षोंकी सीमाका विभाग करता है। उसका विस्तार और उँचाई दस हजार योजन है। इस द्वीपकी चारों दिशाओंमें इन्द्र आदि मुख्य-मुख्य चारों लोकपालोंकी पुरियाँ बनी हुई हैं। उन्हीं पुरियोंके ऊपर सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्यके रथका संवत्सररूपी चक्र देवताओंका दिन-रात्रि अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायनके समयमें घूमा करता है। प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र इस द्वीपके राजा थे। रमणक और धातक नामक उनके दो पुत्र थे। उन्होंने उस द्वीपको दो वर्षोंमें विभक्त करके अपने दोनों पुत्रोंको बाँट दिये और स्वयं अपने पूर्वजोंकी भाँति भगवानकी आराधनामें प्रवृत्त हुए। उक्त दोनों वर्षोंके अधिवासी कमलासनमूर्ति भगवानकी आराधना करते रहते हैं। उक्त शुद्ध जलवाले सागरके बाद सूर्यादिके प्रकाशसे

युक्त और प्रकाशहीन देश है। इन देशोंका विभाग करनेके लिए इन दोनों देशोंके बीचमें लोकालोकनामक पर्वत स्थित है। मानसोत्तर और सुमेरु पर्वतके बीचमें जितनी भूमि है, उतनी ही भूमि मीठे जलवाले सागरके बाद भी है। वहाँ प्राणी भी रहते हैं। उसके बाद स्वच्छ सुवर्णमय भूमि है। उस भूमिमें केवल देवता लोग विहार करते हैं—वहाँ अन्य प्राणी नहीं रहते। लोकालोक पर्वत ध्रुवलोकसे भी अधिक ऊँचा है। इसलिये वह त्रिलोकीकी सीमाके समान है। हे राजन्! ब्रह्माजीने लोकालोक पर्वतके ऊपर चारों दिशाओंमें चारों दिग्गजोंको स्थापित किया है। उन दिग्गजोंके नाम ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन और अपराजित हैं। भगवान अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंके साथ श्रेष्ठ शस्त्र धारण किये हुए लोकालोक पर्वतपर त्रिलोकीके चारों ओर विचरते रहते हैं। भगवान वहाँ निष्कर्मा नहीं हैं, बल्कि अपने विशुद्ध सत्त्वको प्रकट करते हैं। लोकालोक पर्वतका परिमाण सुमेरुके एक ओर साढ़े बारह करोड़ योजन है। हे राजन्! लोकालोक पर्वतके बहिर्भागमें आलोकवर्ष है। उसका परिमाण सुमेरु पर्वतके एक ओर साढ़े बारह करोड़ योजन है। ऋषियोंका कथन है कि इस आलोक विभागके बाद केवल योगेश्वर ही जा सकते हैं। मरे हुए द्विजपुत्रको लानेके समय भगवान श्रीकृष्णने यह स्थान अर्जुनको दिखाया था। यह स्थान परमपवित्र है। हे राजन्! अब मैं ब्रह्माण्डका परिमाण बता रहा हूँ, सुनो। ब्रह्माण्डके मध्यस्थलमें सूर्यनारायण हैं। स्वर्ग और भूमिमें जो अन्तर है, वही ब्रह्माण्डका मध्यस्थान है। सूर्य और अण्डगोलक—इन दोनोंके मध्यस्थानका परिमाण सर्वतोभावसे

पचीस करोड़ योजन है। सूर्यका एक नाम मार्तण्ड भी है। इसका कारण यही है कि मृत अर्थात् अचेतन अण्ड (ब्रह्माण्ड) में वह वैराज अर्थात् चेतनरूपसे प्रवेश करते हैं। सूर्यदेव हिरण्मय अण्डसे प्रकट हुए हैं। इस कारण उनको हिरण्यगर्भ भी कहते हैं। सूर्यके ही द्वारा दिशा, आकाश, पृथ्वी और अन्यान्य भागोंका विभाग होता है। इसलिए सूर्यकी उपासना करना सबका कर्तव्य है।

एकविंश अध्याय

राशिसंचार और उसके द्वारा लोकयात्राका निरूपण

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! भूगोल जाननेवालोंका कहना है कि स्वर्गमण्डलका परिमाण भूमण्डलके परिमाणके बराबर है। यह भूमण्डल विस्तारमें पचास करोड़ योजन और ऊँचाईमें पचीस करोड़ योजन है। जैसे चना-उर्द आदि दो दलवाले अन्नोंमें एक दलका जो परिमाण होता है वही दूसरे दल या भागका भी होता है, उसी प्रकार भूमण्डल और स्वर्गमण्डल भी समपरिमाणमें विभक्त है। इन दोनोंके बीचमें जो आकाश है, वह दोनों खण्डोंकी सन्धियोंको जोड़ता है। भगवान सूर्य उसी आकाशके मध्यस्थलमें रहकर त्रिलोकीको ताप पहुँचाते और अपनी किरणोंसे त्रिलोकीको प्रकाशित भी करते हैं। सूर्य ही अपनी उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवसंज्ञक मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे यथासमय आरोहण-अवरोहण और समान स्थानमें स्थितिको प्राप्त होकर मकर आदि बारह राशियोंमें दिन और रात्रियोंको बड़ा-छोटा और समान करते हैं। जब सूर्यदेव मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं, तब

दिन और रात्रि बराबर होते हैं। जब सूर्यदेव मेष और तुला राशिमें गमन करते हैं, तब दिन और रात्रि बराबर होते हैं। जब सूर्यदेव वृष आदि पाँच राशियोंमे भ्रमण करते हैं तब दिन बड़े होने लगते हैं और हर महीने एक घंटा रात छोटी होने लगती है। जब सूर्य वृश्चिक आदि पाँच राशियोंमें भ्रमण करने लगते हैं तब रातें बड़ी होतीं और हर महीने एक-एक घंटा दिन छोटा होने लगता है। वस्तुतः दक्षिणायनके आरम्भतक दिन बढ़ते हैं और उत्तरायणके आरम्भतक रातें बढ़ती हैं। इस प्रकार सूर्यकी मन्द, शीघ्र और समानगति द्वारा मानसोत्तर पर्वतकी प्रदक्षिणाका परिमाण नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है—ऐसा पण्डितोंका कहना है। ऋषियोंका कथन है कि उल्लिखित मानसोत्तर गिरिवर सुमेरुके पूर्व इन्द्रकी देवधानी नामक पुरी है। दक्षिण तरफ यमराजकी पुरी है। उसका नाम संयमनी है। पश्चिम ओर वरुणकी निम्लोचनी पुरी है और उत्तर ओर चन्द्रमाकी विभावरी पुरी है। इन सब पुरियोंमें सुमेरुके चारों ओर विशेष-विशेष समयमें उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्धरात्रि होती है। ये सब उदय आदि ही प्राणियोंकी कर्मोंमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण हैं। जो सब प्राणी सुमेरुमें रहते हैं, उनको सूर्यनारायण सदैव मध्यगत होकर उत्ताप देते रहते हैं। जब सूर्य बहुत दूरसे पृथ्वीसे मिले हुए दिखाई पड़ते हैं, तब उदय होता है और जब सूर्य आकाशमें चढ़े हुए दिखाई देते हैं तब मध्याह्न होता है और जब भूमिमें प्रवेश करते हुएसे दिखाई पड़ते हैं, तब अस्त होना समझा जाता है। इसी तरह उनका अधिक दूर चला जाना ही अर्धरात्रि है। वास्तवमें सूर्यका उदय-

अस्त कुछ भी नहीं है। उनका देख पड़ना और न देख पड़ना ही उदय अस्त है। हे राजन्! सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें इन्द्र आदिकी चारों पुरियोंके चारों ओर चौंतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे भ्रमण करता हुआ घूमता है। इस रथका एक ही चक्र है, जिसका नाम संवत्सर है। बारह महीने ही उसके बाहर आरे अर्थात् अग्रभाग हैं और तीन चौमासे ही उसकी नाभि (चक्रका मध्यभाग) हैं। उस रथचक्रके जुएका एक सिरा सुमेरुके मस्तकपर है और दूसरा सिरा मानसोत्तर पर्वतपर रखा हुआ है। उस मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यका रथ स्थापित होनेसे वह तेलीके कोल्हूके समान प्रतिदिन घूमा करता है। हे राजन्! सूर्यरथके दो अक्ष हैं। उनमें प्रथम अक्ष सुमेरुसे मानसोत्तरतक विस्तृत है। उसका परिमाण डेढ़ करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन है। दूसरे अक्षका परिमाण उसका चतुर्थांश है। उस रथपर अरुणजी सारथीका काम करते हैं। उनका मुख सूर्यदेवकी ओर रहता और पीठ घोड़ोंकी ओर रहती है। अंगूठेकी पोर बराबर डीलवाले साठ हजार बालखिल्य ऋषिगण सूर्यकी ओर मुख किये रथके आगे-आगे स्तुति करते हुए पिछले पैरोंसे चलते हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, दैत्य और देवगण भी प्रत्येक महीनेमें भिन्न-भिन्न कर्मोंसे परमात्मारूप भगवान सूर्यकी उपासना करते हैं। हे राजन्! भगवान सूर्य इस प्रकार देवऋषि आदि गणसे परिवृत होकर नौ करोड़ एकावन लाख दो योजन भूमण्डलके दो हजार दो योजन एकक्षणमें लाँघ जाते हैं।

द्वाविंश अध्याय

सोम-शुक्र आदिके स्थान और उनकी गतिके अनुसार मनुष्योंके इष्ट और अनिष्टका वर्णन

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! सूर्यकी तथाकथित प्रदक्षिणाका निर्णय किस तरह किया जा सकता है ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! जैसे कुम्हारका चाक जब एक ओर मुख करके भ्रमण करता रहता है, तब उस चाकके आश्रयपर स्थित चींटी आदि जीव जो अन्य ओर मुख करके भ्रमण करते हैं उनकी उसी चाकपर भिन्न-भिन्न स्थलमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी गति दिखाई पड़ती है। वैसे ही जो कालचक्र ध्रुव और सुमेरुको प्रदक्षिणा करके भ्रमण कर रहा है, सो नक्षत्र और राशिचक्रमें दिखाई पड़नेपर भी उस चक्रमें पृथक्-पृथक् भ्रमण करनेवाले सूर्यादि ग्रहोंकी गति भिन्न-भिन्न है । हे राजन् ! स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके बीचमें जो आकाश व्याप्त है, उसके मध्यमें स्थित कालचक्रमें अवस्थित होकर सूर्यनारायण बारह राशियोंका भोग करते हैं । ये बारह महीने ही मेष आदि राशियाँ हैं । बारह राशियों या महीनोंका एक वत्सर होता है । हे राजन् ! चान्द्रमानसे दो पक्षका एक महीना होता है । सौरमानसे सूर्य जितने कालमें सवा दो नक्षत्रोंका भोग करते हैं, उसको एक महीना कहते हैं । कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष मिलकर एक महीना होता है । पितृलोकके परिमाणसे कृष्णपक्ष पितरोंका एक दिन और शुक्लपक्ष उनकी एक रात्रि है । दो राशियोंके भोगकालको ऋतु कहते हैं । छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है । सूर्य एक संवत्सरमें स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलका भोग करते हैं । सूर्यकी

मन्द, शीघ्र और समान गतियोंके भेदसे इस संवत्सरमें संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर ये पाँच विभाग हैं। हे राजन् ! सूर्यमण्डलके ऊपर एक लाख योजनपर अर्थात् भूतलसे दो लाख योजन ऊपर चन्द्रदेव दिखाई पड़ते है। यह एक महीनेमें सूर्यकी एक वर्षकी गति और सवा दो दिनमें सूर्यकी एक महीनेकी गति और प्रत्येक दिनमें सूर्यकी प्रायः एक पक्षकी गति पूरी कर डालते हैं। कभी-कभी चन्द्रमाकी गति बहुत ही शीघ्र हो जाती है। चन्द्रमण्डलकी सब कलाएँ जब वृद्धिशील होती हैं, तब देवगणका दिन और जब क्रमशः क्षीण होती हैं, तब पितृगणका दिन होता है। हे राजन् ! चन्द्रदेव इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंसे पितृलोकके दिन और रात्रिका विभाग करते हुए तीस मुहूर्तमें एक नक्षत्रका भोग करते हैं। षोडश कलाविशिष्ट चन्द्ररूपी भगवान परमपुरुष मनोमय, अन्नमय और अमृतमय हैं। हे राजन् ! चन्द्रमण्डलके दो लाख योजन ऊपर सत्ताईस नक्षत्र सुमेरुके दक्षिण ओर ईश्वर द्वारा कालचक्रमें योजित होकर भ्रमण करते हैं। नक्षत्रमण्डलके दो लाख योजन ऊपर शुक्रग्रह अवस्थित है। इस शुक्रग्रहकी भी सूर्यके ही समान शीघ्र, मन्द और समान गति होती है। यह सर्वदा लोगोंके अनुकूल ही रहता है और इसके संचारमें प्रायः अच्छी वर्षा होती है। शुक्रग्रहसे दो लाख योजन ऊपर बुधग्रह अवस्थित है। यह लोगोंके लिए प्रायः शुभकारी है। किन्तु जब वह सूर्यको अतिक्रम कर जाता है तब प्रायः प्रबल वायु, निर्जल मेघाडम्बर और अनावृष्टि आदिके भय उपस्थित होते हैं। बुधके ऊपर दो लाख योजनपर मंगल ग्रह है। यह तीन-तीन

पक्षमें एक-एक राशिका भोग करता है। यह अमंगलसूचक अशुभ ग्रह है। मंगलसे दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिजी हैं। यह वक्र न होनेपर एक-एक राशिमें एक-एक परिवत्सर रहते हैं। यह विशेषतः ब्राह्मणवंशके लिए मंगलकारी रहते हैं। बृहस्पतिके ऊपर दो लाख योजनपर शनि रहते हैं। ये एक-एक राशिमें तीस-तीस महीने रहते और तीस अनुवत्सरमें बारह राशियोंको भोगते हैं। शनि सभीके लिए अमंगलकारी हैं। शनिके ऊपर ग्यारह-लाख योजनपर सप्तर्षिगण दिखाई पड़ते हैं। वे सब लोगोंकी शक्तिकी कामना करते हुए भगवान विष्णुके परमपद स्वरूप ध्रुव-लोकको प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

त्रयोविंश अध्याय

ध्रुवस्थान और शिशुमाररूपसे भगवानकी उपस्थिति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवर्षियोंके स्थानसे तेरह लाख योजनके अन्तरपर भगवान विष्णुका परम प्रसिद्ध स्थान ध्रुवलोक है। वहाँ ही उत्तानपाद राजाके पुत्र परमवैष्णव ध्रुवभगवानकी उपासना करते हैं। परमेश्वरने उक्त ध्रुवको स्तम्भस्वरूप स्थापित किया है। अतएव निरन्तर उनका प्रकाश होता रहता है। ग्रह और नक्षत्रगण कालचक्रके भीतर और बाहर आबद्ध रहकर इन ध्रुवके ही अवलम्बपर स्थित हैं और वायु द्वारा परिचालित होकर कल्पान्तपर्यन्त चारों ओर मण्डलाकार गतिसे घूमते रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह ज्योतिचक्र शिशुमाररूपी भगवान वासुदेवकी योगकलामें अवस्थित है। इसलिए उसके पतनकी

आशंका नहीं है। शिशुमारका सिर नीचे है और शरीर मण्डलाकार तथा कुण्डलीभूत है। शिशुमारकी पूँछके अग्रभागमें ध्रुव हैं और उसके अधोभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछके मूलमें धाता और विधाता हैं और कटिदेशमें सप्तर्षिगण अवस्थित हैं। इस शिशुमारके दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत शरीरके दक्षिण पार्श्वमें अभिजित्से पुनर्वसुपर्यन्त चौदह नक्षत्र और वामपार्श्वमें पुष्पसे उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र विराजमान हैं। अतएव कुण्डलके विस्तारके अनुसार उसका सन्निवेश होनेसे दोनों पार्श्वोंकी अवयवसंख्या समान है। शिशुमारकी पीठमें अजवीथी और उदरमें आकाश गंगा हैं। हे राजन्! शिशुमारके जिस आकारका वर्णन किया गया, वही भगवान विष्णुका परमवेदमय रूप है और निरन्तर उनका नाम जपनेसे पापका नाश होता है।

चतुर्विंश अध्याय

राहु और अतल आदि अधोभुवनका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! सिंहिका राक्षसीका पुत्र असुराधम राहु देवत्वके अयोग्य होते हुए भी भगवानके अनुग्रहसे ग्रहत्व और देवत्वको प्राप्त हुआ है और सूर्यके नीचे दस हजार योजनके अन्तरपर नक्षत्रकी भाँति भ्रमण करता है। कहते हैं कि सूर्यमण्डल दस हजार योजन विस्तीर्ण है और चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है। किन्तु राहुमण्डलका विस्तार तेरह हजार योजन है। इस राहुने अमृत पीनेके समय सूर्य-चन्द्रके बीचमें घुसकर अमृत पीनेकी चेष्टा की थी। किन्तु इस छलकी सूचना

सूर्य-चन्द्रने मोहिनीरूप हरिको दे दी और भगवानने उसका सिर काट डाला। इसलिए प्रत्येक पर्वमें राहु सूर्य और चन्द्रकी ओर बदला लेनेके लिए दौड़ता है। भगवानने राहुकी कुचाल जानकर सूर्य और चन्द्रकी रक्षाके लिए अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शनचक्रका प्रयोग किया था। उस चक्रका तेज अत्यन्त दुस्सह है और वह सदा घूमा करता है। सुदर्शनचक्रको देख राहु पहले तो मुहूर्तभर राहमें ही ठहरकर ग्रसनेका उपक्रम करता है, किन्तु सुदर्शनसे भयभीत होकर वह अपने स्थानको लौट आता है। इसीको लोग ग्रहण कहते हैं। राहुके बारह हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर लोगों-के रहनेका स्थान है। उसके नीचे यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत और पिशाचोंके विहारका स्थान है। हे राजन्! यक्षादि लोकोंके नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं। उनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसा-तल और पाताल। प्रत्येकका विस्तार दस हजार योजन है। इन सब विवरोंमें दैत्य, दानव और नागगण गृहपति होकर परमसुखसे वास करते हैं। इन सात विवरोंमें उद्यान-क्रीड़ास्थल आदि स्वर्ग-की अपेक्षा भी अधिक रम्य-स्थान हैं। इन स्थानोंमें सूर्यादिका प्रकाश नहीं है। इसलिए वहाँ दिन और रातके समयका विभाग नहीं होता। महानाग अनन्तके सिरोंके प्रधान-प्रधान रत्नों (मणियों) की किरणोंके प्रकाशसे उन सब स्थानोंका अन्धकार दूर होता रहता है। हे राजन्! इन स्थानोंमें रहनेवाले लोग सदा दिव्य औष-धियोंके रसोंका पान करते हैं। इसलिए वे आधि-व्याधिकी यंत्रणा और जठर पीड़ा आदिसे पीड़ित नहीं होते। सुदर्शन चक्रके सिवा

मृत्युभी उनपर अपनी प्रभुता नहीं जमा पाती। अब अतल आदि भुवनवासियोंका विवरण कहता हूँ, सुनो। अतल नामक प्रथम विवरमें बलनामक असुर निवास करता है। इसी असुरने छियानबे प्रकारकी मायाओंकी सृष्टि की है। इसी असुरके मुखसे जम्हाई लेते समय स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली नामक तीन प्रकारकी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। जो स्त्रियाँ सवर्ण पुरुषसे रति करनेवाली हैं, वे स्वैरिणी हैं। जो स्त्रियाँ सवर्ण-अवर्ण दोनों प्रकारके पुरुषोंसे रति करती हैं, वे कामिनी हैं और जो स्त्रियाँ कामिनी अथच अत्यन्त चंचला हैं, वे पुंश्चली कहलाती हैं। ये स्त्रियाँ अतलमें गये हुए पुरुषोंको धत्तूररससे सम्भोगमें समर्थ करके अपने असाधारण विलासपूर्ण अवलोकन, सानुराग हास्य, सानुराग सम्भाषण और आलिंगन आदिके द्वारा अपनी इच्छाके अनुसार रतिक्रीड़ामें प्रवृत्त कर लेती हैं। धत्तूररसका ऐसा आश्चर्यजनक गुण है कि उसका सेवन करनेसे पुरुष अपनेको 'मैं ईश्वर हूँ, और मैं सिद्ध हूँ'—ऐसा मान लेता है और दस हजार मत्त हाथियोंके समान बलवान होकर सबको तुच्छ समझने लगता है। हे राजन्! अतलके नीचे वितललोक है। वहाँ शिव अपने पार्षदगणके साथ स्थित हैं और प्रजापतिकी सृष्टि बढ़ानेके लिए भवानीके साथ मैथुनधर्म अंगीकार किये रहते हैं। वहाँ भव और भवानीके वीर्य द्वारा हाटकी नामक नदी बही है। वहाँ अग्निदेव और वायुके संयोगसे वही शुक्र हाटक (सुवर्ण) हो जाता है। वितलस्थ दैत्योंके अन्तःपुरोंमें स्त्रियोंके साथ पुरुष उसी सुवर्णके आभूषण धारण करते हैं। हे राजन्! वितलके नीचे सुतललोक है। वहाँ विरोचनके पुत्र बलि अब भी निवास करते हैं।

भगवान विष्णुने देवराज इन्द्रका प्रिय कार्य करनेके लिए अदितिके गर्भसे वामनरूपमें जन्म लेकर पहले राजा बलिके त्रिभुवनका राज्य हर लिया और केवल उनका शरीर भर शेष रखा। ऐसा करके भी भगवान शान्त नहीं हुए। उन्होंने बलिको वरुणपाशसे भलीभाँति बाँधकर पर्वतकी कन्दरामें डाल दिया। किन्तु बलिने आक्षेपके साथ कहा—हाय ! कैसे दुःखकी बात है। यह देवराज इन्द्र हैं। बृहस्पतिजी इनके पूर्णसहायक और मंत्री हैं। किन्तु मुझे मालूम होता है कि इन्द्रको परमार्थका कुछ भी ज्ञान नहीं है। क्योंकि इन्द्रने उपेन्द्रको नियुक्तकर उनके द्वारा मुझसे त्रिभुवनके तुच्छ राज्यकी याचना की। स्वयं उनका दास्यभाव नहीं माँगा। जब भगवान् प्रसन्न हो जायँ, तब उनसे उनका दास्यभाव ही माँगना चाहिये। इसी कारण हमारे पितामह प्रह्लादने भगवान हरिसे दास्यभावकी ही माँग की थी। हे राजन् ! मैं राजा बलिकी महिमाका वर्णन कहाँतक करूँ ? भगवान हरि वामनरूपसे हाथमें गदा लिये बलिके द्वारपर आज भी द्वारपालका काम कर रहे हैं। एक समय दानवेन्द्र रावण दिग्विजय करनेके लिए निकला तो बलिके द्वारपर भी पहुँचा और वामनजीको बालक समझकर उनसे मदान्धकी भाँति बातें करने लगा। तब भगवानने अपने बायें पैरके अंगूठेकी एक ऐसी ठोकर मारी कि अपनेको वीर माननेवाला रावण दस हजार योजनकी दूरीपर जा गिरा और उसका सारा अभिमान नष्ट हो गया। हे राजन् ! सुतलके नीचे तलातल लोक है। वहाँ मयदानव रहता है। तलातलके नीचे महातल है। वहाँ फणवाले सर्पगण रहते हैं। महातलके नीचे रसातल है। वहाँ दैत्य, दानव, निवातकवच,

कालकेय आदि असुरगण सर्पोंके ही समान निवास करते हैं। उक्त दैत्यगण इन्द्रदूती सरमाके उच्चारण किये हुए मन्त्ररूप वाक्य द्वारा देवराज इन्द्रसे अब भी भय खाते हैं। रसातलके नीचे पाताललोक है। वहाँ वासुकि, शङ्ख, कुलिक आदि सर्पगण रहते हैं। इन सब नागोंमें किसीके पाँच, किसीके सात, किसीके दस, किसीके सौ और किसीके हजार सिर हैं। उनके फणोंकी दीप्तिमयी महामणियोंसे पातालका अन्धकार दूर होता रहता है।

पञ्चविंश अध्याय

अनन्तकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पातालके मूलप्रदेशमें तीस हजार योजनके अन्तरपर भगवानकी सुप्रसिद्ध तामसी कला विराजमान है। उसका नाम अनन्त है। भगवद्भक्त लोग उन्हें संकर्षण भी कहते हैं। उन्हीं हजार सिरवाले भगवान अनन्तके एक ही मस्तकपर यह पृथ्वीमण्डल स्थित है। वहाँ सुर, असुर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग और मुनिगण निरन्तर उनका ध्यान करते हैं। हे राजन्! देवर्षि नारदने ब्रह्माकी सभामें उन्हीं भगवान अनन्त देवकी महिमाका वर्णन किया था।

षड्विंश अध्याय

नरकोंका वर्णन

राजा परीक्षितने नरकोंका विवरण पूछा तो शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! कोई-कोई ऋषि कहते हैं कि त्रिलोकीके बीच

ही दक्षिण दिशामें पृथ्वीके नीचे और जलके ऊपर जहाँ यम अपने गणोंके साथ बैठकर दूतों द्वारा लाये गये मृत-प्राणियोंके कर्मानुसार दोषादोषके विचारके साथ दण्डकी व्यवस्था करते हैं, उसी स्थानमें सभी नरक अवस्थित हैं। नरकोंकी संख्या इक्कीस है। इनके नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, दन्दशूक, वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान। इनके सिवा क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख ये सात नरक और भी हैं। अतएव नरकोंकी संख्या अट्ठाईस है। इनमें पापियोंको अनेक प्रकारकी यातनाएँ मिलती हैं। हे राजन्! जो पुरुष पराये धन, परायी स्त्री और पराये पुत्रको हर लेता है उसको विकटाकार यमदूतगण कालपाशमें बाँधकर बलपूर्वक तामिस्रनामक नरकमें डालते हैं। यह नरक अन्धकारमय है। पापी इसमें गिरकर खाने-पीनेको नहीं पाता और दण्डताडन और तर्जनकी विविध यातनाएँ सहता है। वह कातर होकर एकदम मूर्च्छित हो जाता है। जो व्यक्ति अपने स्वामीसे छल करके उसकी पत्नीसे भोग करता है, वह दुरात्मा अन्धतामिस्र नरकमें डाला जाता है। इस नरकमें गिरे हुए मनुष्यकी स्मरणशक्ति भ्रष्ट और बुद्धि विनष्ट हो जाती है। जो व्यक्ति इस लोकमें यह शरीर मेरा है और यह धन मेरा है, इस प्रकारके अभिमानवश प्राणियोंसे द्रोह करके केवल अपने ही शरीर और अपने ही पुत्र तथा कुटुम्ब आदिका भरण-पोषण करता है, वह

व्यक्ति उक्त नरकमें गिरता है। जो निष्ठुर मनुष्य निरपराध प्राणियोंकी हिंसा करता है, वह रौरवनरकमें गिरकर विषमयंत्रणा पाता है। अपने शरीरका भरण-पोषण करनेके लिए पशुपक्षियोंको मारकर उनका मांस खाता है, उन्हें यमदूत कुम्भीपाक नरकमें डालकर तपते हुए तेलमें पकाते हैं। जो पुरुष पितर, ब्राह्मण और वेदोंसे द्रोह करता है वह कालसूत्र नरकमें डाला जाता है। वह नीचे अग्निके तापसे जलता है और ऊपर सूर्यकी घोर किरणें जलाती हैं। वह पापी भयंकर यातनामें पड़कर छटपटाता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगता है। पशुओंके शरीरमें जितने रोएँ रहते हैं, उतने ही हजार वर्ष तक उसे ऐसी ही यातना भोगनी पड़ती हैं। जो पुरुष आपत्काल न होनेपर भी इच्छापूर्वक वेदमार्गका उल्लंघन करके पाखण्डधर्मको ग्रहण करता है, उसे अतिभयानक यमदूतगण असिपत्रवन नामक नरकमें डालकर दौड़ाते और कोड़े मारते हैं। असिपत्रोंमें दोनों ओर धार रहती है। उसमें उसका शरीर कटकर लहू-लुहान हो जाता है। वह 'हाय ! मैं मर गया' ऐसा कहकर यंत्रणा प्रकट करता हुआ बार-बार मूर्छित हो होकर गिरता-पड़ता रहता है। जो पापी राजा या राजपुरुष अदण्डनीय व्यक्तिको अन्यायसे दण्ड देता अथवा ब्राह्मणको शारीरिक दण्ड देता है, वह शूकर मुख नामक नरकमें गिरता है। बली यमदूतगण उसको जोरोंसे दबाते हैं और वह व्यथासे मूर्च्छित हो जाता है। यह जानते हुए भी कि परमेश्वरने स्वभावानुसार सब जीवोंकी वृत्ति नियत कर दी है, फिर भी जो व्यक्ति मच्छड़ आदि जीवोंको मार डालता है वह अन्धकूप नरकमें गिरता और उस घोर अन्ध-

कारमें पड़कर निरन्तर महाक्लेश पाता है। जो व्यक्ति खानेकी चीज सबको न देकर अकेले ही खा जाता और जो मनुष्य पंच महायज्ञ नहीं करता, वह कृमिभोजन नामक नरकमें गिरता है। उस नरकमें लाख योजन चौड़ा एक कृमिमय कुण्ड है। वह व्यक्ति इसी कुण्डमें गिरकर स्वयं कीड़ेके समान होकर उन्हीं कीड़ोंको खाता है और वे कीड़े उसे खाते हैं। इस प्रकार जब तक उसका पाप क्षीण नहीं होता, तब तक वह अनेक यातनाएँ भोगता रहता है। जो चोरी करता है, उसे भयंकर दूतगण परलोकमें लोहेके अग्निपिण्डसे दागते और सन्दंश (सड़सी) द्वारा उसके शरीरको नोचते हैं। जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ गमन (सम्भोग) करता अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषसे रति करती है, उन दोनोंको निर्दय यमदूत कोड़ोंसे मारते हैं और पुरुषको लोहेकी बनी तप्त स्त्रीमूर्तिसे और स्त्रीको लोहेकी पुरुषाकृति मूर्तिसे आलिंगन कराते हैं। जो व्यक्ति पशु आदिसे सहवास करता है, उसको यमदूत नरकमें डालकर वज्रतुल्य कांटेवाली शाल्मलीपर चढ़ाकर नीचे घसीटते हैं। जो राजा अथवा राजपुरुष अच्छे कुलमें उत्पन्न होकर भी धर्मको दूषित करता है। वह मरकर वैतरणीमें गिरता है। उसमें रहनेवाले मगर आदि हिंस्र जन्तु उसको भक्षण करते हैं तो भी उसका प्राण नहीं निकलता। जो लोग शूद्राके पति होकर अपने-अपने शौच, आचार और नियमको नष्ट कर देते हैं, वे परलोकमें विष्ठा, श्लेष्मा और लारसे भरे हुए समुद्रमें गिरते हैं और इन्हीं बीभत्स तथा घृणित पदार्थोंको खाते हैं। अहंकार युक्त होकर यज्ञमें पशुओंको मारनेवाले वैशस नामक नरकमें गिरते

हैं। यमके दूत उनको अनेक यातनाएँ देते हुए उनके अङ्ग चूर-चूर कर देते हैं। जो द्विजकुलमें उत्पन्न व्यक्ति काममोहित होकर सवर्णा स्त्रीको शुक्रपान कराता है तो यमदूतगण उस पापी पामरको शुक्रकी नदीमें डालकर शुक्रपान कराते हैं। जो व्यक्ति दस्युवृत्ति ग्रहण करके लोगोंके घरोंमें आग लगाते हैं तथा प्राण नष्ट करनेके लिए विष खिलाते और जो राजा या राजसैनिक गाँवोंको या काफिलोंको लूट लेते हैं, उन्हें मरनेके बाद यमपुर जानेपर सातसौ बीस कुत्ते वज्रतुल्य कराल दाँतोंसे काटते हैं। जो व्यक्ति साक्षी देनेमें झूठ बोलता है, बेचने-खरीदनेमें कम तौलता है, झूठ बोलता है, उसको परलोकमें यमदूतगण नीचे सिर करके सौ योजन ऊँचे पर्वतके शिखरसे अवीचि नामक नरकमें डाल देते हैं। वह नरक तिल-तिल करके उसके शरीरको काटता रहता है, फिर भी उसके प्राण नहीं निकलते। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य अथवा इन तीनों वर्णोंकी स्त्री और व्रतीपुरुष अज्ञतावश मदिरा पीता है, उसे मरनेके बाद यमदूत पटक देते और छातीपर पैर रखकर आगमें गला हुआ सीसा पिलाते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें स्वयं अधम होता हुआ भी अपनेको बड़ा मानकर घमण्ड करता है और अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तियोंका निरादर करता है, वह जीते ही मरेके तुल्य है और मृत्युके बाद वह यमलोकमें जाकर 'क्षारकर्दममय' नरकमें गिरता है। उसका सिर नीचे हो जाता है और वह अनेक यातनाएँ भोगता है। जो लोग अन्य पुरुषोंके प्राण लेकर भैरव आदि देवताओंको बलि चढ़ाते हैं और जो स्त्रियाँ या मनुष्य पशुओंका मांस खाते हैं, वे सभी स्त्री-पुरुष मरनेपर यमलोक जाते और वहाँ वे ही मारे हुए

पुरुषपशु राक्षसरूपसे उनको वैसे ही तलवारसे काटते और रक्त पीकर नाचते-गाते और प्रसन्न होते हैं, जैसे कि इस लोकमें उनका मांस खाकर लोगोंने उत्सव मनाया था। जो लोग निरपराध प्राणियों-को यंत्रणा देते हैं। उनको यमदूत परलोकमें शूलीपर चढ़ाते हैं। वहाँ उनको विषम यमयंत्रणा भोगनी पड़ती है। जो व्यक्ति उग्रभाव धारण करके प्राणियोंको भयभीत करता है, वह मरनेपर दंदशूक नामक नरकमें गिरता है। वहाँ विषधर पाँच और सात मुखवाले राक्षस (सर्प) आकर उसे चूहेके समान निगल जाते हैं। जो लोग गढ़ों या अन्धकारमय गुफाओंमें प्राणियोंको बन्द करके कष्ट देते हैं, वे परलोकमें उसी प्रकारके गढ़े आदिमें बन्द किये जाते और वहाँके जहरीले धुएँमें पड़कर घोर कष्ट भोगते हैं। जो लोग अपने घरपर अतिथि-अभ्यागतोंके आनेपर क्रोध करते और लाल-लाल आँखें करके देखते हैं, वे नरकमें जाते और वहाँ उनके पापदृष्टिवाले नेत्रोंको वज्रसदृश चोंचवाले कङ्क आदि पक्षी बलपूर्वक निकाल लेते हैं। जो लोग धनसम्पन्न होकर भी कृपण बने रहते हैं, वे मरनेपर सूचीमुख नरकमें गिरते हैं। वहाँ यमराजके दूत दर्जीकी भाँति उनके अंगोंको छेदते और सिलाई करते हैं। हे राजन्! यमलोकमें इस तरहके सैकड़ों-हजारों नरक हैं। जैसे पापीलोग नरकगामी होते हैं, वैसे ही धार्मिक व्यक्ति अपने-अपने कर्मोंके अनुसार स्वर्ग आदि लोक प्राप्त करते हैं। भोग द्वारा धर्म या अधर्मकी समाप्ति होनेपर वे पुनः मर्त्यलोकमें आकर जन्म ग्रहण करते हैं।

---

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

षष्ठ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

अजामिलकी कथा।

राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे कहा—हे भगवन्! मनुष्य जिस उपायसे घोर यातनाओंसे पूर्ण नरकोंमें न गिरे, वह बताइए। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! शरीर, मन अथवा वचनसे पाप करके यदि मनुष्य इस लोकमें ही उसका प्रायश्चित्त नहीं कर डालता तो मरनेके बाद वह अवश्य नरकमें जाता है। जिस प्रकार वैद्य रोगका लघुत्व या गुरुत्व समझकर चिकित्सा करते हैं, उसी प्रकार पापका गुरुत्व-लघुत्व विचारकर शीघ्र उसका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। राजाने कहा—हे ब्रह्मन्! पापाचरणके बाद प्रायश्चित्त न करनेपर राजदण्डके अतिरिक्त यमराजका भी दण्ड भोगना पड़ता है। अधिकतर संसारी लोग पापका प्रायश्चित्त

करके फिर उसी पापमें लिप्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें हाथीकी भाँति उनका आचरण होता है। अर्थात् जैसे हाथी स्नान करके पुनः शरीरमें धूलि लगा देता है, उसी प्रकार मनुष्य यदि प्रायश्चित्त करके पुनः पाप करता है तो उसे नरक क्यों न भोगना पड़ेगा? ऐसे प्रायश्चित्त तो व्यर्थ ही हैं। अब इसी विषयका आप स्पष्टीकरण कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पाप और प्रायश्चित्त दोनों ही कर्म हैं। कर्मसे कर्म निर्मूल नहीं हो सकता। ज्ञान ही यथार्थ प्रायश्चित्त है। सर्वदा नियमोंका पालन करते रहनेसे धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त हो जाता है। किन्तु वासुदेवपरायण भक्तजन केवल भक्तिके द्वारा सम्पूर्ण पापोंको निर्मूल कर देते हैं। हे राजन्! भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। क्योंकि पापी मनुष्य भगवान श्रीकृष्णमें मन लगाकर और भगवद्भक्त पुरुषोंकी सेवा करके जितने शीघ्र पवित्र हो सकता है, उतने शीघ्र तपस्या आदिके द्वारा शुद्ध नहीं हो सकता। जो व्यक्ति भगवानका नाम जपता है और अपने चित्तको श्रीकृष्णजीके चरणारविन्दमें लगाता है, उसे यमदूत नहीं पकड़ सकते। भगवानका नाम मन लगाकर जपनेसे ही प्रायश्चित्त हो जाता है। उदाहरणस्वरूप इस विषयका एक पुरातन इतिहास है। जो यमदूत और विष्णुदूत-संवाद नामसे प्रसिद्ध है। वह इतिहास तुमसे कहता हूँ सुनो। हे राजन्! कान्यकुब्ज देशमें अजामिल नामका एक दासीपति ब्राह्मण रहता था। सर्वदा दासीके संसर्गमें रहनेसे उसका सदाचार नष्ट हो गया। वह निरन्तर अशुद्ध अवस्थामें रहता हुआ जुआ-पांसा खेलता और ठगी-चोरी आदिसे कुटुम्बका भरण-

पोषण करता था। इस प्रकार मनुष्योंको सदा क्लेश देते-देते उसकी अवस्था अट्ठासी वर्षकी हो गयी और वह वृद्ध हो गया। उसके दस पुत्र हुए थे। उनमें सबसे छोटे पुत्रका नाम नारायण था। वह पिता-माताका प्रेमपात्र था। अजामिल दिनरात अपने छोटे बालक नारायणमें ही आसक्त होकर उसे खिलाने-पिलानेमें लगा रहता था। इस प्रकार भूले हुए मूढ़ अजामिलका मृत्युकाल आ गया। उस समय उसका चित्त उसी बालक नारायणमें लगा रहा। उसने देखा कि हाथमें रस्सी लिये टेढ़े मुँहवाले तीन दारुण पुरुष उसे ले जानेके लिए आये हैं। उनको देखते ही अजामिल बहुत घबड़ा गया। कुछ दूरीपर उसका पुत्र नारायण खेल रहा था। घबड़ाहटमें ऊँचे स्वरसे वह 'नारायण-नारायण' कहकर पुकारने लगा। हे महाराज! आश्चर्यजनक बात तो यह हुई कि मरते हुए अजामिलके मुँहसे नारायणका नाम सुनते ही विष्णुके पार्षद वहाँ आ उपस्थित हुए। यमके दूत अजामिलकी जीवात्माको निकाल रहे थे कि उसी समय विष्णुके दूतोंने बलपूर्वक उन्हें रोका। हे महाराज! यमके दूतोंने उनसे पूछा—तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? हमें क्यों रोक रहे हो? तुम देवता, उपदेवता या कोई सिद्ध हो? तुम सभी कमलनयन हो, पीताम्बर पहिने हो। क्यों हमें यह कार्य करनेसे रोकते हो? ऐसा करना तो तुमलोगोंके लिए उचित नहीं है। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यमदूतोंके ऐसे वचन सुनकर विष्णुके दूतोंने सोचा कि इन लोगोंको दण्ड्य-अदण्ड्यका ज्ञान नहीं है। ये लोग झूठमूठ अपनेको यमदूत कह रहे हैं। क्षणभर चुप रहकर वे लोग बोले—हे पुरुषगण! तुम

लोग धर्मराजके दूत हो तो बताओ धर्मका तत्त्व क्या है ? उसका लक्षण क्या है ? उसका प्रमाण क्या है ? दण्डका यथार्थ पात्र कौन है ? दण्डनीय व्यक्तिका कर्म क्या है ? कर्म करनेवाले सभी दण्डनीय हैं या उनमेंसे कुछ लोग ही दण्ड पाने योग्य हैं ? दूतोंने कहा—वेदोक्त कर्तव्य ही धर्म है। जो कर्म वेदोंमें निषिद्ध बताये गये हैं, वे ही अधर्म हैं। वेद साक्षात् नारायणका स्वरूप है। क्योंकि परमेश्वरके निःश्वाससे वेदोंकी उत्पत्ति हुई है। इसी कारण वह स्वयम्भू कहलाता है। जो अपने स्वरूपोंसे सत्त्व-रज-तमोमय प्राणियोंको शान्तभाव आदि गुण, ब्राह्मणादि नाम, अध्ययनादि क्रिया एवं वर्णाश्रमादिको व्यक्त करते हैं, वे ही नारायण हैं। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आकाश, पवन, सन्ध्या, दिन, रात्रि, दिशा, पृथ्वी, जल और धर्म—ये ही जीवके साक्षी हैं। इन्हीं साक्षियोंसे धर्म-अधर्मका परिचय मिलता है। अधर्म करनेवाले दण्डके भागी होते हैं। जिसका जैसा अपराध रहता है, उसके ही अनुसार उसे दण्ड मिलता है। इस लोकमें जो व्यक्ति जितना धर्म या अधर्म करता है, वह परलोकमें उसका फल भोगता है। हे देवगण ! यमराज पाप-पुण्यका विचार करते और जिसको जिस दण्डके लिए उपयुक्त समझते हैं, उसको वही दण्ड देते हैं। जीव अज्ञ है। वह पूर्वापर कुछ भी नहीं जानता। यह जीव पाँच कर्मेन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण-गमनादि कार्य करता और पाँच इन्द्रियोंसे विषय भोगता तथा मनके साथ स्वयं जीव कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मनके सब विषयोंका भोग करता है। हे देवगण ! यह जीवका षोडश कलाविशिष्ट लिङ्गशरीर सत्त्वादि तीनों गुणोंकी कार्यरूपिणी जो तीन

शक्तियाँ हैं, उनसे युक्त है। उक्त तीनों शक्तियाँ जीवके लिए जो संसार उत्पन्न करती हैं, उससे जीवको हर्ष शोक भय और पीड़ा आदि उपस्थित होती है। हे देवगण! जीव अज्ञ है। इच्छा न रहनेपर भी लिंगशरीरकी प्रेरणासे यह कर्म करनेको बाध्य होता है। कोई व्यक्ति क्षणभर भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। यह अजामिल अपनी प्रथमावस्थामें इन्द्रियदमन करके सर्वदा व्रतनियमका पालन करता था। सदाचार आदि सद्गुणोंसे विभूषित था। अहंकारशून्य होकर गुरु, अग्नि और वृद्धोंकी सेवा करता और सब प्राणियोंसे मित्रभाव रखता था। एक दिन वह पिताकी आज्ञासे वनको गया और वहाँसे फल-फूल, लकड़ी और कुश लेकर लौटा। लौटते समय इसने एक कामी शूद्रको देखा। वह मदिरा पीकर एक दासीसे रमण कर रहा था। उस दासीके नेत्र मदसे विह्वल हो रहे थे। वह मत्त हो रही थी और उसका वस्त्र खुलकर गिर रहा था। कामुक शूद्र निर्लज्जभावसे उस स्त्रीको आलिंगन करता हुआ हँस और गा रहा था। यह दृश्य देखकर अपनी सामर्थ्यके अनुसार अजामिलने कुछ देरतक अपने मनको रोका। फिर कामको दमन करनेमें असमर्थ होकर उस युवतीका ध्यान करने लगा। यहाँतक कि इस अभागेने अपना धर्म त्याग दिया। इसके बाद उस दासीको प्रसन्न रखनेके लिए धन और विविध भोग्य वस्तुएँ आदि दे-देकर उसको सन्तोष देने लगा। इसकी स्वविवाहिता पतिव्रता स्त्री थी। किन्तु उस कुलटाके कटाक्षोंसे घायल होकर इसने अपनी युवती स्त्री छोड़ दी। यह मन्दबुद्धि अजामिल उस दासीमें अनुरक्त हो और जहाँ-तहाँसे धन ला-लाकर उसके परि-

वारका भरण-पोषण करने लगा। हे देवदूतगण! इस पापात्माने दासीका अन्न खाया और शास्त्र-विधिका उल्लंघन करके इसने स्वेच्छाचारमें बहुत काल बिताया। इस कारण हम लोग इस पापीको यमराजके पास ले जायँगे। इसने पापसे छूटनेके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं किया है। वहाँ यह अपने पापका समुचित दण्ड पाकर शुद्ध हो जायगा।

द्वितीय अध्याय

विष्णुदूतोंका यमदूतोंको हरिनामका माहात्म्य सुनाना और अजामिलको विष्णुलोक ले जाना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यमदूतोंके वचन सुनकर विष्णुके दूतोंने कहा—आः! यह कैसा अन्यायपूर्ण विचार है। जिसका पाप नहीं है, उसको भी आप दण्ड देनेका निश्चय कर रहे हैं? हे यमदूत! यद्यपि अजामिलने करोड़ों पाप करके अपने परिवारका पालन किया था, तथापि इसने विवश होकर प्रायश्चित्तका मर्म न समझते हुए भी श्रीहरिका नामोच्चारण किया। ऐसा करके इसने कोटि जन्मके पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला। मरते समय इसने अपने पुत्रको 'नारायण! यहाँ आओ' कहकर पुकारा। इन चार अक्षरोंके नामका उच्चारण करनेसे सब पापोंसे यह मुक्त हो चुका है। क्योंकि गऊका वध करनेवाला, मित्रसे द्रोह करनेवाला, ब्रह्म-हत्या करनेवाला, गुरुकी स्त्रीसे रमण करनेवाला, स्त्री-राजा तथा पिता-माता आदिकी हत्या करनेवाला और अन्य भी जो बड़े-बड़े पाप करनेवाले हैं, उन सभीके लिए विष्णुके नामका उच्चारण ही प्राय-

श्चित्त है। नारायणका नाम लेना ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है और इससे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिए इस मनुष्यकी रक्षा करना हम लोगोंका कर्तव्य है। हे यमदूतगण ! मनु आदि ब्रह्मवादियोंने पापमोचनके लिए जिन व्रत आदि प्रायश्चित्तोंका विधान किया है, उनसे पापीकी उतनी शुद्धि नहीं होती जितनी कि एक बार सप्रेम हरिनामके उच्चारणसे हो जाती है। चान्द्रायण व्रतादि प्रायश्चित्तोंसे पापका समूल नाश नहीं होता। क्योंकि प्रायश्चित्त करनेपर भी मन कुमार्गमें चला जाता है। अतएव पापकी जड़ उखाड़नेके लिए भगवान हरिके गुणोंका कीर्तन ही उत्तम प्रायश्चित्त है। नामोच्चारण श्रीहरिके गुणगणका ज्ञापक है। इस प्रकारके प्रायश्चित्तसे ही चित्तकी शुद्धि होती है। इस अजामिलने मरते समय भगवानका नाम लेकर अपने सब पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला है। इसलिए तुम लोग इसे मत ले जाओ। हे यमदूतगण ! पुत्रादिके सङ्केतसे हो, हँसीसे हो अथवा अवज्ञापूर्वक ही हो, भगवान हरिका नाम सब पापोंको नष्ट कर देता है। अधिक क्या बताऊँ। जो कोई ऊँचे मकान आदिसे गिरते समय, चलते-चलते पैर फिसल जानेके समय, अंगभंग हो जानेके समय, सर्प आदिसे डँसे जानेपर, ज्वरादिके आने और युद्धादिमें चोट खानेके समय विवश होकर 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण करता है, वह यम-यातना नहीं भोगता। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! यमके दूतोंने इस तरह परास्त हो अपने स्वामी धर्मराजके निकट जाकर आदिसे अन्ततक सब वृत्तान्त कह सुनाया। इधर अजामिल यमपाशसे मुक्त होकर निर्भय और प्रकृतिस्थ हुआ। उसने पृथ्वीमें सिर झुकाकर

विष्णुके दूतोंको प्रणाम किया और उनसे कुछ कहने ही जा रहा था कि सहसा उसके देखते ही देखते वे लोग अन्तर्धान हो गये। आदिसे अन्ततक इन घटनाओंको देखकर अजामिलके मनमें भगवानके प्रति भक्ति उत्पन्न हुई। अपने पूर्वकृत अशुभ कर्मोंका स्मरण करके वह बहुत पछताने लगा। अजामिल मन ही मन कहने लगा—अहो! मैंने दासीके गर्भसे अनेक सन्तानें उत्पन्न करके अपने ब्रह्मतेजको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मैं अपनी युवती सती भार्याको त्यागकर मदिरा पीनेवाली व्यभिचारिणीमें आसक्त हो गया। मैं दुष्कर्म करनेवाला, सज्जन समाजमें निन्दनीय और कुलकलंक हूँ—मुझे धिक्कार है। हे राजन्! इस प्रकार अजामिल अनेकानेक प्रकारसे खेद करता हुआ यमदूतों और विष्णुदूतोंकी बातोंका स्मरण करने लगा। धीरे-धीरे सब सांसारिक बन्धनोंसे नाता तोड़कर वह हरिद्वार चला गया। वहाँ गङ्गाजीके तटपर देवगणके रहनेके स्थानमें आसन जमाकर योगसाधनमें प्रवृत्त हो गया। उसने मनको विषयोंसे हटाकर आत्मामें लगाया। आत्माको चित्तकी एकाग्रता द्वारा देह-इन्द्रिय आदिसे विमुक्तकर ज्ञानमय परब्रह्मस्वरूप भगवानसे मिला दिया। हे राजन्! ऐसा करनेसे अजामिलका मन परब्रह्म परमात्मामें जा लगा। उसी समय अजामिलने उन्हीं महापुरुषोंको अपने आगे देखा, जिन्हें कुछ दिन पहले मृत्युके समय देखा था। देखते ही उनको दण्डवत् प्रणाम किया। तदनन्तर उसी तीर्थस्थलमें अपना कलेवर त्यागकर उन्हीं महापुरुषोंके साथ सुवर्णमय विमानमें चढ़कर जहाँ श्रीपति भगवान नित्य निवास करते हैं उसी पुनीत स्थानको आकाशमार्गसे चला गया। हे राजन्!

भगवानके गुणगान और नामसङ्कीर्तनसे मन निर्मल हो जाता है। फिर वह कर्मोंमें आसक्त नहीं होता। यह परम गुह्य और सर्वपापनाशक इतिहास है। इसे जो श्रद्धासे सुनते हैं, भक्तिपूर्वक पढ़ते और दूसरोंको सुनाते हैं, वे कभी नरकमें नहीं गिरते। उनको यमके दूत छू नहीं सकते। वे विष्णुलोकमें पूजित होकर निवास करते हैं।

तृतीय अध्याय

यम द्वारा वैष्णवधर्मकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन और अपने दूतोंको सान्त्वनाप्रदान

राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्! यमदूतोंने धर्मराजको अजामिलकी घटनाका विवरण सुनाया तो उसे सुन चुकनेपर धर्मराजने क्या उत्तर दिया? हे योगिवर! इसके पहले हमने कभी कहीं यमराजका दण्ड व्यर्थ होते नहीं सुना था। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! यमदूतोंने यमराजके समीप जाकर अजामिलसम्बन्धी घटनाका वर्णन करके कहा—हे प्रभो! जीवोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाले शासक इस ब्रह्माण्डमें कितने हैं? शुकदेवजीने कहा कि अपने दूतोंके इस प्रश्नसे यमराज आनन्दित हुए और भगवान हरिके चरणारविन्दोंका स्मरण करते हुए प्रीतिपूर्वक उनसे बोले—हे दूतगण! मेरे सिवा और एक चराचर जगत्के अधीश्वर हैं। उनके ही अंशसे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है। सब लोक नथे हुए बैलोंकी भाँति उनके वशमें हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उनके ही अंगसे उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं परमेश्वरका मैं किंकर हूँ। वे नारायण ही मेरे प्रभु हैं। उनकी लीला अचिन्त्य

है। उनकी चेष्टाको मैं महेन्द्र, देवेन्द्र, चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, रुद्र, साध्यगण, मरुद्गण, रुद्रगण, सिद्धगण, विश्वस्रष्टा और अन्यान्य प्रधान देवता आदि भी नहीं जान सकते। वे उनकी महिमाका वर्णन भी नहीं कर सकते। तुम लोगोंने जिन दूतोंका वर्णन किया है, वे भगवान श्रीहरिके ही दूत रहे होंगे। वे दूतगण भगवान हरिके समान ही रूप, गुण, वसन और भूषणवाले होंगे। वे प्रायः पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण किया करते हैं। वे भक्तोंको उनके शत्रु दुष्टोंके हाथसे, अग्निजल आदि अन्य सभी विपत्तियोंसे और मुझसे बचाते रहते हैं। ऐसा मत समझना कि उन विष्णुदूतोंने पक्षपात करके अजामिलको छुड़ा लिया है। देव, ऋषि, विद्याधर और भृगु आदि किसीको भी भगवद्धर्मकी पूरी जानकारी नहीं है। केवल स्वयम्भू ब्रह्मा, शम्भुभगवान, नारद,सनत्कुमार, कपिलदेव, मनुदेव, प्रह्लादजी, राजा जनक, भीष्म पितामह, राजा बलि, शुकदेवजी और मैं ये बारह जन ही उस गुह्य भागवतधर्मको जानते हैं, जिसे जाननेसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। यह धर्म अतिगोपनीय है। यह सहजमें बोधगम्य नहीं होता। किन्तु इसे जान लेनेपर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। हे दूतगण! हरिनामके उच्चारणका माहात्म्य तुमने देखा। पापी अजामिल अनजानमें भी भगवानका नाम लेकर मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया। भगवान वासुदेवका नाम लेना और भक्तियोग ही भागवतधर्म है। नामकी महिमा न जानकर ही लोग विविध प्रायश्चित्तोंका विधान करते हैं। कोई कितना ही पाप क्यों न करें, वासुदेवका नाम लेनेसे सब पाप नष्ट हो जाता है। ज़ो लोग शुद्ध अन्तःकरणसे भगवान अनन्तमें अनन्य भक्ति

रखते हैं, वे कभी मेरे दण्डके योग्य नहीं होते। तुम लोग यह बात सदा स्मरण रखना। जो साधुजन भगवानके शरणापन्न हैं, सबको समान दृष्टिसे देखते हैं, देवगण और सिद्धगण जिनकी पवित्र कथाका कीर्तन किया करते हैं—उन सब साधुओंके निकट तुम लोग कभी न जाना। भगवानकी गदा सदा सब प्रकारसे उनकी रक्षा किया करती है। अतएव उनको दण्ड देनेके लिए हम भी समर्थ नहीं हैं और काल भी समर्थ नहीं है। जो लोग भगवानके चरणारविन्दका रसपान नहीं करते, उन असाधुओंको ही मेरे पास लाना। यमराजने अपने दूतोंको इस प्रकार उपदेशपूर्ण आदेश देकर भगवानसे क्षमा माँगी कि मेरे भृत्योंने जो अपराध किया है, उसे पुराणपुरुष भगवान नारायण आप क्षमा करें। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। शुकदेवजीने राजा परीक्षितको सम्बोधित करके कहा—भगवान विष्णुके नामका कीर्तन बड़ेसे बड़े पापोंका प्रायश्चित्त है और जगत्के लिए मङ्गलस्वरूप है। अपने प्रभुके मुखसे भगवानका माहात्म्य सुनकर यमदूत आश्चर्यमें पड़ गये। तभीसे वे कृष्णभक्त व्यक्तियोंसे सशंकित रहते और उनकी ओर दृष्टि डालते भी भय करते हैं। हे कुरुराज! एक समय मलयाचलपर बैठे हुए महर्षि अगस्त्यने इस गुप्त इतिहासका वर्णन किया था।

चतुर्थ अध्याय

प्रजासृष्टिके निमित्त दक्ष द्वारा तपस्या और श्रीहरिकी आराधना

राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! परमपुरुष भगवान ब्रह्माने प्रत्येक सृष्टिमें जिस शक्तिसे सृष्टि की है, उसका विवरण जाननेकी

मेरी बड़ी इच्छा है। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! प्राचीनबर्हिके पुत्र दस प्रचेताओंने समुद्रके भीतरसे निकलकर देखा कि पृथ्वी अनेक वृक्ष-लताओंसे भर गयी है। क्योंकि नारदके उपदेशानुसार प्रचेतागणने निवृत्तिमार्गका आश्रय ले लिया, जिससे भूमिका कर्षण नहीं हो सका था। तपके प्रभावसे प्रचेताओंका क्रोध प्रज्वलित हो उठा था। इस स्थितिमें उन्होंने वृक्ष-लताओंको जला डालनेके लिए मुख द्वारा वायु और अग्निको उत्पन्न किया। हे राजन्! तब सब बनस्पतियोंके राजा भगवान सोम प्रचेतागणका कोप शान्त करनेके लिए मधुरस्वरसे इस प्रकार कहने लगे—हे वत्सगण! इन वृक्ष-लताओंको निर्मूल करना उचित नहीं है। प्रजापतियोंके पति भगवान हरिने ही सब वृक्षों, लताओं और औषधियोंको उत्पन्न किया है। इनसे चराचर जीवगण प्राण धारण करते हैं। इस समय अपने पिता-पितामह आदिके सुमार्गको ग्रहण करो और अपना क्रोध रोको। तुम साधुजनोंके बताये हुए मार्गका अवलम्बन करो। विचार करके देखो कि जैसे बालकोंके बन्धु पिता-माता हैं, नेत्रोंके बन्धु पलकें हैं, स्त्रियोंके बन्धु उनके पति हैं, भिक्षुकोंके बन्धु गृहस्थ हैं और मूर्खोंके बन्धु ज्ञान देनेवाले पण्डित हैं, वैसे ही प्रजाके बन्धु प्रजापति हैं। सभी प्राणियोंके शरीरके भीतर भगवान हरि आत्मारूपसे अवस्थित हैं। अतएव किसीसे भी द्रोह नहीं करना चाहिये। तुम दीन वृक्षोंको मत जलाओ। तुम लोगोंका कल्याण हो। इन वृक्षोंने एक सुन्दरी कन्याको पाल रखा है। वह अत्यन्त सुन्दरी है। उसके साथ तुम लोग विवाह कर लो। हे राजन्! राजा सोमके वचन सुनकर प्रचेतागण क्रोध छोड़कर शान्त हो गये।

उन्होंने उस कन्यासे विवाह कर लिया। उस कन्याके गर्भसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षके उत्पन्न होनेसे पृथ्वी असंख्य प्रजासमूहसे परिपूर्ण हो गयी। कन्यावत्सल प्रजापति दक्षने जिस भाँति वीर्य और मनके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि की, वह कथा एकाग्र मन होकर मुझसे सुनो। दक्ष प्रजापतिने पहले देवता, दैत्य, मनुष्य आदि, फिर खेचर अर्थात् पक्षी, भूचर अर्थात् पशु और जलचर अर्थात् मत्स्य आदि प्रजाको मन द्वारा उत्पन्न किया। किन्तु इससे प्रजाकी बढ़ती न देखकर दक्ष प्रजापति विन्ध्याचलके समीप एक छोटेसे पर्वतपर जाकर कठोर तप करने लगे। उस पर्वतके पास ही पतितपावन अघमर्षणनामका एक तीर्थ था। उसीमें प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करते हुए वे हंसगुह्यनामक प्रसिद्ध स्तोत्रका पाठ करके भगवान हरिको प्रसन्न करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! प्रजापति दक्षकी स्तुतिसे भगवान श्रीहरि सन्तुष्ट होकर उसी स्थान पर प्रकट हो गये। भगवानका आश्चर्यजनक रूप देखकर प्रजापतिके मनमें कुछ भय उत्पन्न हो गया। उसी क्षण प्रसन्न होकर उन्होंने भूमिमें लोटकर प्रणाम किया। आनन्दके आधिक्यसे उनका गला रुँध गया। वे कुछ बोल न सके। सब प्राणियोंके अन्तर्यामी भगवान इस प्रकार प्रणत और परम भक्त दक्ष प्रजापतिको सम्बोधन करके कहने लगे—हे दक्ष! श्रद्धापूर्वक मेरी भक्ति करनेसे तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी। मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। ब्रह्मा, शिव और देवेश्वरगण मेरी विभूति एवं सब प्राणियोंकी उत्पत्तिके कारण हैं। तप मेरा हृदय है। विद्या अर्थात् मन्त्रजाल मेरा शरीर है। यज्ञ मेरे अङ्ग हैं। धर्म मेरा मन है। यज्ञभोक्ता देवगण मेरे प्राण हैं।

हे दक्ष ! पहले केवल मैं अर्थात् चैतन्यमात्र था । यह जगत् प्रसुप्तकी भाँति चेष्टाशून्य था । गुणोंकी सहायतासे जब मेरा गुणमय शरीर अर्थात् ब्रह्माण्ड बना तब उससे मैं ही अयोनिज स्वयम्भू ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ । मेरे वीर्यसे प्रकट देवदेव ब्रह्मा सृष्टिकार्यमें उद्यत होकर जब अपनेको सृष्टिकार्यमें असमर्थ मानने लगे, तब मेरी आज्ञासे वे दारुण तपमें तत्पर हो गये । उन्होंने उसी तपके प्रभावसे तुम्हारे पूर्वज नौ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया । अतएव हे दक्ष ! यह प्रजापति पञ्चजनकी कन्या यहाँपर विद्यमान है । इसका नाम असिक्नी है । तुम इसको अपनी स्त्री बना लो । स्त्री-पुरुषके मैथुनधर्मको ग्रहण करके तुम इसके गर्भसे अनेक प्रजा उत्पन्न कर सकोगे । तुम्हारे बादके सब प्रजागण मेरी मायाके वश होकर स्त्रीके साथ मैथुनधर्म करते हुए पुत्रादिरूपसे उत्पन्न होंगे और मेरी पूजा करेंगे । शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! विश्वभावन भगवान श्रीहरि यह कहकर तत्काल वहीं अन्तर्धान हो गये ।

पञ्चम अध्याय

नारदको दक्षका शाप

शुकदेवजी बोले—प्रजापति दक्ष विष्णुमाया द्वारा वर्धित होकर उस पञ्चजनतनयाके गर्भसे हर्यश्वनामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये । ये सभी पुत्र एक आकार और एक ही प्रकारके स्वभाववाले हुए । जब प्रजापति दक्षने उनसे प्रजा उत्पन्न करनेके लिए कहा, तब वे पश्चिम दिशाको तप करने चले गये । वे उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ सिन्धुनद समुद्रमें मिला है । उस स्थानमें

मुनि-सिद्ध-सेवित नारायणसर नामक एक प्रधानतीर्थ है। उसका जल स्पर्श करते ही उनके अन्तःकरणसे रागादि सब मल दूर हो गये और परमहंस धर्ममें उनकी बुद्धि लग गयी। किन्तु वे लोग पिताकी आज्ञासे विवश होकर प्रजा उत्पन्न करनेकी कामनासे उग्र तपमें प्रवृत्त हुए। एक दिन देवर्षि नारद उस स्थानसे होकर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि हर्यश्वगण प्रजा बढ़ानेके यत्नमें तत्पर हो गये हैं। तब उन्होंने उनको सम्बोधित करते हुए कहा—हे हर्यश्वगण! तुम लोग बालक हो। भूमिका अन्त देखे बिना कैसे प्रजासृष्टि करोगे? खेदका विषय है कि तुम लोग वृथा तप कर रहे हो। तुम प्रजापति होकर भी अज्ञ हो। एक राज्य ऐसा है, जिसमें एक पुरुष है। वहाँ एक स्त्री ऐसी है, जिसके अनेक रूप हैं। एक पुरुष है, जो पुंश्चलीका पति है। एक नदी है, जिसकी धारा उलटी और सीधी बहती है। एक अद्भुत घर है, जो पचीस पदार्थोंसे गठित है। वहाँ ही विचित्र बोली बोलनेवाला एक हंस है। वज्रनिर्मित स्वयंभ्रमणशील एक चक्र है। इन सब बातोंको और अपने सर्वज्ञ पिताके उपयुक्त आदेशको जाने बिना सृष्टि कैसे करोगे? नारदकी ऐसी बातें सुनकर हर्यश्वगण परस्पर विचार करके नारदके वाक्यका इस प्रकार अर्थ करने लगे—यह जो भूमि अर्थात् क्षेत्र है, वही जीव है। यह लिङ्गशरीर जो आत्माके बन्धनका अनादि कारण है। उसका अन्त अर्थात् विनाश देखे बिना मोक्षके अनुपयोगी असत् कर्म करनेसे क्या फल हो सकता है। नारदजीने कहा है कि वहाँ एक ही पुरुष है। साथ ही और भी बातें उन्होंने कही हैं। इनका अर्थ यह है कि ईश्वर एक है और वह

सबका साक्षी, सबसे श्रेष्ठ, सर्वऐश्वर्यसपन्न और आप ही अपना आधार है। उस नित्यमुक्त ईश्वरको जाने बिना और उसे चित्त समर्पण किये बिना वृथा कर्म करनेसे क्या लाभ होगा? नदीका जो उल्लेख किया है, उसका अर्थ यह है कि परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मको जाने बिना वृथा कर्म करनेसे क्या फल होगा? बहुरूपवाली स्त्री का अर्थ यह है कि अपनी-अपनी बुद्धि स्वैरिणी स्त्रीकी भाँति आत्माको मोहित करनेवाली है। इस बुद्धिका अन्त जाने बिना अशान्त कर्म करनेसे क्या लाभ? पुंश्चलीके पतिका जो उल्लेख किया गया है, उसका अर्थ यह है कि जैसे दुष्ट पत्नीके संगसे पुरुषकी स्वाधीनता जाती रहती है, वैसे ही जो मायाके संगवश ऐश्वर्यभ्रष्ट हो गया है और जो उसी मायाकी सुख-दुःखरूप गतिका अनुगमन करता है, उस जीवको जो पुरुष नहीं जानता उसके अविवेककृत असत् कर्मोंका क्या फल है? उत्पत्ति और संहार करनेवाली माया ही नदी है। इसके तीव्र प्रवाहमें मनुष्य बहता है। इसको समझे बिना जो असत् कर्म करता है, उससे क्या फल? हे राजन्! नारदके वचनसे दक्षपुत्र हर्यश्वगण उस मार्गको चले गये, जहांसे लौटकर फिर कोई नहीं आता। देवर्षि नारद भी भगवान हृषीकेशके चरणोंमें मन समर्पण करके भुवनमण्डलमें भ्रमण करने लगे। कुछ दिनों बाद जब दक्षप्रजापतिने नारदके मुँहसे अपने पुत्रोंके चले जानेका समाचार सुना तो वे पुत्रशोकसे व्याकुल हो उठे। उस समय ब्रह्माजीने आकर उनको समझाया और सान्त्वना दी। ब्रह्माजीके समझानेसे पंचजन प्रजापतिकी कन्याके गर्भसे उन्होंने सबलाश्व नामक एक

हजार पुत्र और उत्पन्न किये। प्रजापति दक्षने उन सबलाश्व नामक अपने पुत्रोंको भी प्रजासृष्टिके लिए आदेश दिया। तदनुसार वे पुत्र नारायण सरोवरको गये और विष्णुकी आराधना करने लगे। नारायण सरोवरके पवित्र जलका स्पर्श करते ही सबलाश्वगण-का पातक नष्ट होकर चित्त शुद्ध हो गया। वे लोग परब्रह्मके नामका जप करते हुए घोर तप करने लगे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ जा पहुँचे और पहलेकी भाँति उनसे भी कटु वाक्य बोले—हे दक्षपुत्र सबलाश्वगण! तुम लोग अपने बड़े भाइयोंका अनुकरण करो। मेरी बात मानो और अपने भाइयोंकी भाँति परम गति प्राप्त करो। हे राजन्! देवर्षि नारदके वचन सुनकर सबलाश्वगणने वही काम किया और वे लोग भी परम गतिको प्राप्त हुए। दक्षप्रजापतिने कुछ दिनोंके बाद सुना कि नारदने पहलेकी भाँति इन पुत्रोंको भी प्रवृत्ति मार्गसे बहकाकर निवृत्ति-मार्गमें लगा दिया। अब पुत्रशोकसे वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। नारद भी तबतक उनके पास आ पहुँचे। उन्हें देखते ही क्रोधावेशमें दक्षके ओंठ फड़कने लगे। उन्होंने नारदसे कहा—तुम बड़े निर्दयी, निर्लज्ज और असाधु हो। तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। तुम्हारा वेष तो साधुओंका-सा है, किन्तु वास्तवमें साधु नहीं हो। मेरे पुत्र स्वधर्ममें प्रवृत्त थे। तुमने उनको उपदेश देकर भिक्षुकोंके मार्गमें भेज दिया। क्या यही साधुओंके कर्म हैं? तुमने मुझसे शत्रुता की है। तुमने मेरा जो अमंगल किया है, उसके बदलेमें मैं शाप देता हूँ कि तुमको तीनों लोकोंमें घूमते ही बीतेगा। कहीं-पर तुम्हारे पैर न ठहरेंगे, कहीं तुमको स्थान नहीं मिलेगा। हे

मूढ़ ! यही तुम्हारे लिए उचित दण्ड है। साधुजनोंसे प्रशंसित नारदजी दक्षप्रजापतिके शापको अंगीकार करके चले गये।

षष्ठ अध्याय

दक्षकी साठ कन्याओं का वंशवर्णन।

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद दक्षने ब्रह्माजीके अनुरोधसे उसी असिक्नीनामक भार्याके गर्भसे साठ पितृभक्त कन्याएँ उत्पन्न कीं। उसमें दस धर्मदेवको और तेरह कश्यप प्रजापतिको, सत्ताईस चन्द्रदेवको, दो दो भूत अंगिरा और कृशाश्वको और शेष चार कन्याएँ ताक्ष्र्यको ब्याह दीं। उनके पुत्रों और पौत्रोंके वंशसे तीनों लोक परिपूर्ण हो गये। हे राजन् ! भानु, लम्बा, कुकुप, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और संकल्पा—ये दस धर्मकी स्त्रियोंके नाम हैं। भानुके पुत्र देवर्षभ और उनके पुत्र देवसेन हुए। लम्बाके पुत्रका नाम विद्योत पड़ा। उसके पुत्र मेघ हुए। कुकुपके पुत्र संकट हुए। उनके पुत्र भूविवरोंके अधिष्ठाता देवता लोग हुए। जामिको स्वर्ग नामक पुत्र हुआ। उससे नन्दिकी उत्पत्ति हुई। विश्वाके पुत्र विश्वेदेवगण हुए। वे निःसन्तान थे। सन्ध्याकी सन्तान साध्यगण हैं। उनके पुत्रका नाम अर्थसिद्ध है। मरुत्वतीके मरुत्वान और जयन्त ये दो पुत्र हुए। जयन्त ही वासुदेवके अवतार हुए। इसीसे वे उन्पेद्र भी कहलाते हैं। मुहूर्ताके मौहूर्तिक नामके देवगण उत्पन्न हुए, जो प्राणियों को अपने-अपने समयमें किये कर्मोंका शुभाशुभ फल देते हैं। संकल्पाके संकल्प नामक पुत्र हुआ। उससे

काम (मनोरथ) की उत्पत्ति हुई। वसुके पुत्र आठ वसुनामक देवता उत्पन्न हुए। आठ वसुओंके नाम ये हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। द्रोणकी पत्नीका नाम अभिमति था। उसके गर्भसे हर्ष, शोक, भय आदि पुत्र उत्पन्न हुए। प्राणकी स्त्री ऊर्जस्वतीके गर्भसे सह, आयु और पुरोजव नामक पुत्र हुए। ध्रुवकी धरणी नामक स्त्रीने विविध पुत्रोंकी सृष्टि की। अर्ककी वासना नामक भार्याने तर्ष आदि अनेक पुत्र उत्पन्न किये। अग्निकी धारा नामक स्त्रीके गर्भसे स्कन्द और द्रविणक आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए। स्कन्दको कृत्तिका-पुत्र भी कहते हैं। स्कन्दके विशाख आदि पुत्र हुए। दोषकी स्त्री शर्वरीके गर्भसे हरिकी कला शिशुमारका जन्म हुआ। वसुकी स्त्री आङ्गिरसीके गर्भसे शिल्पाचार्य विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माके चाक्षुष मनु हुए। मनुके विश्वदेव और साध्यदेवता हुए। विभावसुकी स्त्री उषाने व्युष्ट, रोचिष और आतप नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। आतपसे दिवसकी उत्पत्ति हुई। भूतकी स्त्रीका नाम सरूपा था। उसके गर्भसे एकादश रुद्रोंने जन्म लिया। इनके नाम ये हैं—रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप। भूतकी दूसरी स्त्रीके गर्भसे घोर भूत-विनायक आदि एकादश रुद्रके पार्षद उत्पन्न हुए। हे राजन्! अङ्गिरा प्रजापतिकी स्वधा और सती दो स्त्रियाँ थीं। स्वधाके गर्भसे पितृगण और सतीके गर्भसे अथर्वाङ्गिरस नामक पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। वेदशिरा कृशाश्वने अपनी स्त्री अर्चिके गर्भसे धूम्रकेशको तथा धिषणाके गर्भसे देवल वयुन और मनु तीन पुत्र

उत्पन्न किये। तार्क्ष्य प्रजापतिकी विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी नामक चार स्त्रियाँ थीं। उनमें पतङ्गीसे पक्षी और यामिनीसे शलभ अर्थात् टिड्डियाँ उत्पन्न हुईं। विनताने भगवानके वाहन गरुड़जीको और सूर्यके सारथि अरुणको उत्पन्न किया। कद्रूने अनेक विषधर नागोंको उत्पन्न किया। हे राजन्! कृत्तिका आदि सत्ताईस तारिकायें (नक्षत्र) चन्द्रदेवकी पत्नी हैं। अन्य स्त्रियोंकी अवज्ञा करके चंद्रदेव रोहिणीके प्रणयमदमें मत्त रहने लगे तो दक्षने अन्य कन्याओंका दुःख देखकर क्रोधवश शाप दे दिया, जिससे चन्द्रको क्षयरोग हो गया। इसलिए चन्द्रको कोई सन्तान नहीं हुई। बादमें उन्होंने दक्षको प्रसन्न करके पन्द्रह दिन क्षय होनेके बाद पन्द्रह दिन वृद्धि होनेका वर प्राप्त कर लिया। अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभी, सरमा और तिमि ये कश्यपकी स्त्रियाँ विश्वजननी हैं। यह जगत् इनसे उत्पन्न है। तिमिसे सब जलजंतु उत्पन्न हुए। सरमाकी सन्तान सब श्वापद अर्थात् पंचनख पशु हैं। भैंस, गऊ और फटे खुरवाले सब पशु सुरभीके पुत्र हैं। श्येन (बाज) और गीध आदि सब पक्षी ताम्राकी सन्तानें हैं। सब अप्सराएँ कश्यप-पत्नी मुनिकी सन्तति हैं। दन्दशूक आदि अनेक जातिवाले सर्प क्रोधवशाके पुत्र हैं। पृथ्वी फोड़कर निकलनेवाली वृक्षजातियाँ इलाकी सन्तानें हैं। यातुधान अर्थात् राक्षसगण सुरसाके गर्भसे उत्पन्न हैं। एक खुरवाले पशु काष्ठाकी सन्तान हैं। हे राजन्! कश्यप प्रजापतिकी स्त्री दनुके गर्भसे इकसठ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें प्रधान अठारह हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—द्विमूर्धा,

शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय। इन सब दानवोंमें स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभासे नमुचि असुरने और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे नहुषके पुत्र राजा ययातिने विवाह किया। हे राजन्! वैश्वानर दानवकी उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका ये चार कन्याएँ थीं। उपदानवीसे हिरण्याक्षने और हयशिरासे क्रतुने विवाह किया। वैश्वानरकी पुलोमा और कालका नामकी दो कन्याओंको कश्यप प्रजापतिने ग्रहण किया। उन दोनोंके पौलोम और कालकेय नामक युद्धकुशल साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। वे यज्ञमें विघ्न डालते थे। अतएव इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए जब तुम्हारे पितामह अर्जुन स्वर्गको गये, तब उन्होंने उन दानवोंको अकेले ही मार डाला। इस प्रकार वे इन्द्रके प्रियपात्र हुए। विप्रचित्ति राक्षसने सिंहिकाके गर्भसे एक सौ एक पुत्र उत्पन्न किये। उनमें बड़ा राहु और छोटे एक सौ केतु हैं। वे सभी ग्रह हो गये थे। हे राजन्! अब अदितिके वंशकी कथा बता रहा हूँ। उन्हींके वंशमें नारायण विष्णुने अपने अंशसे अवतार लिया था। अदितिके विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र और उरुक्रम ये बारह आदित्य उत्पन्न हुए। विवस्वान्के वीर्य और संज्ञाके गर्भसे श्राद्धदेव मनुका जन्म हुआ और यमुना तथा यमराज भी उसीके गर्भसे जनमे। संज्ञाने ही विशेष कारणवश घोड़ीका रूप धारणकर विवस्वानसे अश्विनीकुमारको उत्पन्न किया। विवस्वानकी दूसरी स्त्री छायाके गर्भसे

शनैश्चर और सावर्णिमनु ये दो पुत्र और तपती कन्या उत्पन्न हुई। हे राजन्! अर्यमाकी स्त्रीका नाम मातृका है। इनके गर्भसे अनेक ब्रह्मवादी पुत्र उत्पन्न हुए। पूषाको कोई सन्तान नहीं थी। पहले वे दक्षपर कुपित महादेवको लक्ष्य करके दाँत निकालकर हँसे थे, इस कारण उनके दाँत तोड़ डाले गये। त्वष्टाकी स्त्री रोचना दैत्यकन्या थी। उसके गर्भसे विश्वरूपका जन्म हुआ। विश्वरूप यद्यपि शत्रुपक्षके नाती थे तथापि देवगणने उनको अपना पुरोहित बनाया था।

सप्तम अध्याय

विश्वरूपसे पुरोहित बननेके लिए देवगणकी प्रार्थना

राजा परीक्षितने पूछा—देवगुरु बृहस्पतिने अपने शिष्योंको क्यों त्यागा और देवताओंने अपने गुरुका निरादर क्यों किया? यह वृत्तान्त कृपा करके कहिये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! देवराज इन्द्र त्रिभुवनका राज्य और ऐश्वर्य पाकर मदसे उन्मत्त हो गये और उन्होंने सन्मार्ग त्याग दिया। एक समय मरुद्गण, रुद्रगण, आदित्यगण, ऋभुदेवता, विश्वदेवगण, साध्यगण, अश्विनीकुमार, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर, अप्सरागण, किम्पुरुष, पन्नग, उरग आदि स्वर्गसभामें इन्द्रको घेरकर बैठे थे। विद्याधर स्तुति कर रहे थे। गन्धर्वगण गा रहे थे। इन्द्र सिंहासनपर बैठे थे। अप्सराएँ नाच-गा रही थीं। चन्द्रमण्डलके सदृश शुभ्र छत्र इन्द्रके सिरपर शोभित था। दोनों ओर चँवर पंखे आदि राजोचित चिह्न शोभायमान थे। सिंहासनपर बायीं

ओर इन्द्राणी महारानी शची बैठी थीं। उसी समय महामुनि परम-पूज्य आचार्य बृहस्पतिजी आ गये। इन्द्रने उठकर उनका स्वागत-सम्मान कुछ भी नहीं किया। आसन देकर बैठनेको भी नहीं कहा। सुरासुर सभी जिनको प्रणाम करते थे, उनको आये देखकर भी अपने आसनसे नहीं उठे। बृहस्पति इस दशामें वहाँ न बैठकर अपने आश्रमको लौट गये और वहाँसे अदृश्य हो गये। उसके बाद इन्द्रको होश हुआ और अनुताप प्रकट करते हुए गुरुकी खोज करने लगे। किन्तु कहीं भी पता नहीं चला। इस अवस्थामें देवताओंके साथ वे अत्यन्त दुःखित हुए। किसी प्रकार भी उनके चित्तको शान्ति नहीं मिली। हे राजन् ! यह सब समाचार सुनकर असुरोंने अपने गुरु शुक्राचार्यकी सम्मति ले और अस्त्र-शस्त्रादिसे सुसज्जित होकर देवताओंसे युद्ध छेड़ दिया। देवता लोग युद्धमें परास्त हो गये। तब देवताओंको साथ लेकर इन्द्रदेव ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने देवताओंको पीड़ित देखकर दयायुक्त भावसे सान्त्वना देते हुए कहा—हे सुरगण! तुम लोगोंने ऐश्वर्यके मदमें मत्त होकर उस ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका सम्मान नहीं किया था। इसी कारण तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई है। अपने शत्रुओंकी अवस्था देखो। अपने गुरु शुक्राचार्यकी सेवासे उनकी कैसी श्रीवृद्धि हुई है। हे इन्द्र ! अपने ही दोषोंसे तुम लोगोंने अपना अमंगल किया है। जिन नरपतियोंपर गऊ, ब्राह्मण और गोविन्द भगवानकी कृपा रहती है उनका कभी अमंगल नहीं होता। अब तुम लोग एक काम करो। त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके पास जाकर उनकी उपासनामें लग जाओ। वे जितेन्द्रिय और तपस्वी हैं।

उनकी सेवासे अवश्य तुम लोगोंकी अभीष्टसिद्धि होगी। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्माजीके वचन सुनकर देवता विश्वरूप ऋषिके पास गये। उनको प्रणाम करके कहने लगे—हे तात ! हम लोग आपके पास आये हैं। सो हमारी इच्छा पूरी कीजिये। पिताकी सेवा ही सज्जन पुरुषोंका परमधर्म है। हे तात ! उपनयन कराके जो आचार्य वेद पढ़ाते हैं, वे वेदकी मूर्ति हैं। पिता प्रजापतिकी मूर्ति हैं। भाई मरुत्पति इन्द्रकी मूर्ति और माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति है। बहिन दयाकी मूर्ति है। अतिथि धर्मकी मूर्ति है और अभ्यागत व्यक्ति अग्निकी मूर्ति है। जगत्के जितने प्राणी हैं, वे सभी अपनी आत्माकी मूर्ति हैं अर्थात् उन्हें अपनी ही आत्माके समान देखना चाहिये। हे तात ! हम तुम्हारे पितृगण हैं। दानवोंके उत्पातसे हम अत्यन्त कातर हो रहे हैं। तुम अपने तपके प्रभावसे हमारी पीड़ा दूर करनेके लिए शत्रुके पराभवका उपाय करो। हे वत्स ! तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो अतएव सबके गुरु हो। हम तुमको अपना उपाध्याय बनाते हैं। काम पड़नेपर छोटेकी चरणवन्दना निन्दित नहीं मानी जाती। दूसरे वेदज्ञान ही बड़ाईका कारण है। मन्त्र देनेपर तुम्हीं ज्येष्ठ माने जाओगे। अधिक अवस्थासे कुछ नहीं होता। शुकदेवजीने कहा—महातपा विश्वरूप देवताओं द्वारा पुरोहिताईके लिए प्रार्थित होनेपर प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे देवगण ! यद्यपि धर्मशील व्यक्ति पौरोहित्य कर्मकी निन्दा करते और इससे ब्रह्मतेजका नाश समझते हैं। तथापि जब आप लोग प्रार्थना करते हैं, तब मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! विश्वरूप देवताओंके पुरोहित बनकर

विशेष उद्यमके साथ पुरोहिताई करने लगे। यद्यपि शुक्राचार्य दानवोंकी रक्षा कर रहे थे, तथापि विश्वरूपने नारायणकवचरूप वैष्णवी विद्याके बल द्वारा उनसे राज्यलक्ष्मी छीनकर इन्द्रको दिला दी। देवराज इन्द्रने जिस विद्याके बलसे असुरोंकी सेनाको हराया, वह विद्या विश्वरूपने ही इन्द्रको बतायी थी।

अष्टम अध्याय

दानवोंपर देवराजकी विजय

राजा परीक्षितने पूछा—हे भगवन्! नारायणकवच क्या है? किस प्रकार दानव शत्रुओंपर देवराज इन्द्रने विजय पायी थी, यह कथा मुझे सुनाइये। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब विश्वरूप देवताओंके पुरोहित हुए, तब उन्होंने इन्द्रके पूछनेपर जो नारायणकवच इन्द्रको बताया वह मैं तुमसे कहता हूँ। एकाग्र चित्तसे सुनो। विश्वरूपने इन्द्रको सम्बोधित करते हुए कहा—हे महेन्द्र! भय उपस्थित होनेपर हाथ और पैर धोकर आचमनकर कुशकी पवित्री हाथमें पहिने और उत्तरकी ओर मुँह करके बैठ जाय। फिर अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर मंत्रोंसे मौन होकर पवित्रताके साथ अङ्गन्यास और करन्यास करके नारायणकवचको धारण करे। हे देवेन्द्र! 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। अङ्गन्यास इस प्रकार करे—मंत्रके ओंकारादि प्रत्येक अक्षरको दोनों पैर, दोनों जङ्घा, दोनों ऊरू, उदर, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और मस्तकमें यथाक्रम धारण करे। चाहे पदद्वयसे आरम्भ करे या मस्तकसे आरम्भ करे। तदनन्तर इस प्रकार करन्यास करे—'ॐ नमो

भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मंत्रके ओंकारसे लेकर मकारतक हर एक अक्षरको यथाक्रम दोनों हाथोंकी तर्जनीतक चार-चार अंगुलियोंमें और दोनों अंगूठोंकी दोनों पोरोंमें धारण करे। हे राजन् ! अन्य मन्त्र 'ॐ विष्णवे नमः' है। इस मन्त्रके प्रणवको हृदयमें, 'वि'को मस्तकमें, 'ष'को भौंहोंके बीचमें, 'ण'को शिखामें, 'वे'को नेत्रोंमें, 'न'को सब सन्धियोंमें स्थापित करके 'म'को अस्त्ररूपसे ध्यान करता हुआ स्वयं मन्त्रमूर्ति हो जाय। 'महः अस्त्राय फट्' कहकर दिग्बन्ध कर दे। हे सुरराज ! इसके बाद ऐश्वर्यादि षट्शक्तिसम्पन्न जिस मूर्तिको लोकहितके लिए भगवान्ने धारण किया उसका ध्यान करे और फिर विद्या, तप और तेजकी मूर्ति इस नारायणकवचका पाठ करे—जिनके चरणकमल गरुड़की पीठपर विराजमान हैं, जो अणिमा आदि आठ सिद्धियोंसे युक्त हैं, जो हरि शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, धनुष, बाण, चर्म (ढाल) और पाशको आठ भुजाओंमें धारण किये हुए हैं, वे भगवान श्रीहरि सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें आदि। हे देवेन्द्र ! यह नारायण कवच मैंने तुमको बताया। इसको धारण करके तुम अवश्य असुरोंको जीत सकोगे। इसको धारण करनेसे किसी तरहका भय नहीं रहता। हे देवराज ! पहले किसी कौशिक ब्राह्मणने इसी विद्याको धारण करके योगबलसे मरुभूमिमें अपना शरीर त्याग दिया था। जहाँ उस ब्राह्मणने शरीर त्यागा था, उसी स्थानके ऊपर विमानसे एक समय गन्धर्वपति चित्ररथ स्त्रियोंके साथ जा रहा था। उस स्थानपर पहुँचते ही वह गन्धर्व सहसा विमानसहित आकाशसे नीचे गिर पड़ा। तदनन्तर बालखिल्य

ऋषियोंके उपदेशानुसार चित्ररथने उस ब्राह्मणकी हड्डियाँ बटोरकर सरस्वती नदीमें बहा दीं। फिर विस्मित होकर वह अपने धामको चला गया। हे परीक्षित! इन्द्र विश्वरूपके निकटसे यह विद्या पा और युद्धमें असुरगणको हराकर फिर त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे।

नवम अध्याय

विश्वरूपकी हत्या, वृत्रासुरकी उत्पत्ति और देवगण द्वारा भगवानकी स्तुति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवपुरोहित विश्वरूपके तीन सिर थे। वे एक मुखसे सोमपान, दूसरेसे सुरापान और तीसरेसे अन्न भोजन करते थे। विश्वरूप यज्ञके समय विनीत होकर प्रकटरूपसे देवगणको हविका भाग देते थे, क्योंकि देवता उनके पितृपक्षीय थे। किन्तु वे मातृस्नेहके वशवर्ती होकर यज्ञ करते-करते छिपाकर असुरोंको भी हविका भाग दे देते थे। एक दिन उनका यह कृत्य इन्द्रने देख लिया और कुपित होकर उनके तीनों सिर काट दिये। हे राजन्! विश्वरूपका सोमपान करनेवाला मुख चातक, सुरापान करनेवाला चटक और अन्न भोजन करनेवाला मुख तीतर हो गया। हे कौरवराज! यद्यपि इन्द्रदेव ब्रह्महत्याका पाप निवारण करनेमें समर्थ थे तथापि उन्होंने उसे हाथ पसारकर ग्रहण कर लिया और एक वर्षतक दोषी बने रहे। तदनन्तर लोकनिन्दाके भयसे उक्त पापको चार भागोंमें विभक्तकर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रीजातिमें बाँट दिया। खोदे हुए गढ़े स्वयं भर

जायँगे—यह वरदान पाकर पृथ्वीने इन्द्रकृत ब्रह्महत्याका चतुर्थांश ग्रहण किया। वह पाप पृथ्वीमें ऊसरके रूपमें दिखाई पड़ता है। काटे जानेपर फिर पनप जायँगे—यह वर पाकर वृक्षोंने पापका चतुर्थांश ले लिया। उनमेंसे जो गोंद निकलता है, वही ब्रह्महत्याका अंश है। सर्वदा सम्भोगकी शक्ति बनी रहेगी—यह वर स्त्रीजातिको मिला। रजोधर्मके रूपमें वह पाप स्त्रियोंमें प्रकट होता रहता है। दुर्गन्धादि अन्य पदार्थमें मिल सकनेका वर पाकर जलने पापका चतुर्थांश ग्रहण किया। बुल्ले और फेनके रूपमें वह पाप जलमें दिखाई पड़ता है। हे राजन्! विश्वरूपके निहत होनेपर उसके पिता त्वष्टा अत्यंत कुपित हुए और इन्द्रको मारनेकी इच्छासे उन्होंने आभिचारिक यज्ञ करके यह कहकर आहुति दी—हे इन्द्रशत्रो! तुम वृद्धिको प्राप्त होओ और शीघ्र ही शत्रुका विनाश करो। इसके बाद यज्ञकी दक्षिणाग्निसे भयंकर आकारका एक असुर उत्पन्न हुआ। वह दिन-दिन बड़ी तेजीसे बढ़ने लगा। उसका वर्ण जले हुए पर्वतके समान काला और कान्ति सन्ध्याकालीन मेघके सदृश लाल थी। सिर तथा दाढ़ी-मूँछके केश तपे हुए ताम्बेके सदृश पिङ्गलवर्णके थे। दोनों नेत्र दोपहरके सूर्यके समान तीक्ष्ण थे। उसके पदाघातसे पृथ्वी काँप उठती थी। कन्दराके समान गम्भीर मुखसे वह पुनः-पुनः इस तरह जम्हाई लेता था मानो त्रिभुवनको निगल जाना चाहता हो। उसके दाँत भी बड़े-बड़े और भयानक थे। उसका नाम वृत्र था। इसके बाद देवगणने उस दानवको देखकर दलबल सहित दौड़कर अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करना आरम्भ किया। किन्तु उनकी चेष्टा विफल हुई। तब सब देवता भगवान परमपुरुष

की स्तुति करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उनकी स्तुति के फलस्वरूप शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान आविर्भूत हुए। उनको देखकर देवता उनके चरणोंपर गिर पड़े। उस समय श्रीवत्स और कौस्तुभमणिसे सुशोभित हरिके सोलह पार्षद चारों ओर खड़े होकर उनकी सेवा कर रहे थे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवताओंकी आदरपूर्ण स्तुति सुनकर भगवान हरिने कहा—हे देवगण! इस स्तोत्रसे और तुम्हारे ज्ञानसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम लोगोंके लिए अब कोई भी वस्तु दुष्प्राप्य नहीं रही। हे महेन्द्र! अब अपने स्थानको लौट जाओ। तुम्हारा मङ्गल हो। तुम अब ऋषिश्रेष्ठ दधीचिके पास जाओ। विद्या, व्रत और तपके प्रभावसे सुदृढ़ उनका शरीर उनसे मांगो। देर मत करो। हे देवराज! यह मुनि अध्यात्मविद्यामें निपुण हैं। शुद्ध ज्ञानकाण्डको जानते हैं। उन्होंने वह विद्या अश्विनीकुमारको बतायी है। वह विद्या अश्वमस्तक द्वारा कथित होनेके कारण अश्वसिरके नामसे प्रसिद्ध हुई है। उसी विद्याके बलसे अश्विनीकुमारद्वय जीवन्मुक्त हो गये हैं। हे देवेन्द्र! दधीचि मुनिको नारायणकवच प्राप्त हुआ था। उन्होंने त्वष्टाको बताया। त्वष्टाने विश्वरूपको बताया और विश्वरूपसे तुमने पाया। हे देवेन्द्र! देह सबको प्रिय है। फिर भी दधीचि ऋषि अपना शरीर दे देंगे। अश्विनीकुमारके प्रार्थना करने पर तो निःसन्देह दे देंगे। उनकी हड्डियोंसे विश्वकर्मा जो अस्त्र बना देंगे, उसके द्वारा तुम मेरे तेजसे युक्त वृत्रासुरका सिर काट देना। हे देवगण! वृत्रासुरके मर जानेपर तुम सब फिर अपने तेज, अस्त्र और सम्पदाको पाओगे। वह पृथ्वीग्रासी असुर तुम

लोगोंको खानेके लिए आवे तो मत डरना। जो लोग मेरी भक्ति करते हैं, उनकी हिंसा कोई नहीं कर सकता। उन लोगोंका सदा मंगल होता है।

दशम अध्याय

इन्द्रके साथ वृत्रासुरका युद्ध

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान हरि इन्द्रको देवताओंके सामने इस प्रकार आज्ञा देकर, अन्तर्धान हो गये। उसके बाद देवता दधीचि मुनिके पास गये। आदिसे अन्ततक सब कथा सुनाकर उन लोगोंने उनसे उनका शरीर माँगा। हे राजन्! देवताओंके वचन सुनकर दधीचि ऋषि प्रसन्न हुए। हँसकर उन्होंने कहा—हे अमरवृन्द! शरीरके नाशसे जो दुःख होता है, उसको कदाचित् तुम लोग नहीं जानते। देह सभीको अत्यन्त प्रिय होती है। साक्षात् विष्णु भी यदि आकर शरीर माँगें तो भला बताओ उसे कौन देहधारी दे सकता है? लोग उत्कट मृत्युयंत्रणा सहते हैं, किन्तु सहसा वे भी अपना शरीर नहीं देना चाहेंगे। दधीचि मुनिकी बातें सुनकर देवगणने कहा—हे ब्रह्मन्! आपकी तरह दयालु और पुण्यवान् व्यक्ति परोपकारके लिए क्या नहीं कर सकते? किस वस्तुको वे नहीं छोड़ सकते? हे मुनिवर! सत्य बात तो यह है कि स्वार्थी लोग दूसरेके क्लेशको नहीं समझ सकते। समझें तो याचक माँगें ही नहीं और देनेवाले भी नहीं न करें। क्योंकि हम स्वार्थपरायण होकर आपकी विपत्ति नहीं देख रहे हैं, किन्तु आपके नहीं करनेपर हम लोगोंपर कौन-सी विपत्ति

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

आ पड़ेगी, इसकी चिन्ता आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। तब दधीचि ऋषि विनयपूर्वक बोले—हे देवताओं! आप लोगोंके मुखसे ऐसी धर्मकथा सुननेकी इच्छा करके ही मैंने रूखा उत्तर दिया था। मेरा शरीर अत्यन्त प्रिय होनेपर भी एक दिन अवश्य मुझे त्याग देगा। अतः आप लोगोंके लिए मैं इसको अभी त्यागे देता हूँ। शरीर क्षणभंगुर है। प्रतिक्षण इसका क्षय होता रहता है। यह धनपुत्र जो कुछ भी देख रहे हो सो सब सियार-कुत्ते आदिके भक्ष्य हो जायँगे। अहो! यह कैसी कृपणता होगी कि परोपकारमें इसको न लगा दिया जाय! हे राजन्! दधीचि ऋषिने ऐसा निश्चय करके परब्रह्मके साथ क्षेत्रज्ञ आत्माका ऐक्य सम्पन्न करके अपना शरीर त्याग दिया। परमयोगका अवलम्बन करनेके कारण उनको अपना शरीर छूटनेका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। तदनन्तर दधीचि मुनिकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने वज्र बनाया। देवराजने उस वज्रको धारण किया। अतएव भगवानके तेजसे युक्त और बलवान होकर गजराज ऐरावतकी पीठपर सवार होकर वे वृत्रासुरपर आक्रमण करनेको चल पड़े। तब देवताओं और दैत्योंमें भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया। हे राजन्! यह युद्ध सत्ययुगके अन्त और त्रेताके आरम्भमें नर्मदा-नदीके तटपर हुआ था। इस युद्धमें इन्द्रके पक्षमें रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, पितृगण, अग्निगण, मरुद्गण, ऋभुगण, साध्यगण और विश्वेदेवगण सम्मिलित हुए थे। शत्रु वृत्र आदि असुरगण यह न सह सके। अतएव नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋष्य, हयग्रीव, शंकुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख,

पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति और उत्कल आदि दैत्य, दानव, यक्ष और सुमाली-माली आदि हजारों राक्षस सुवर्णमय परिच्छद धारणकर सिंहनाद करते हुए इन्द्रसेनाके अग्रभागको रोककर उसे नष्ट करने लगे। देवताओंके पक्षमें भगवान श्रीकृष्ण थे। अतः असुरोंकी सारी चेष्टाएँ विफल हो गयीं। दानवगणका युद्धदर्प नष्ट हो गया। वे लोग अधीर होकर अपने नायक वृत्रासुरको छोड़कर भागने लगे। उन्हें भागते देखकर महामनस्वी वीर वृत्रासुर कहने लगा—हे विप्रचित्ति, नमुचि, पुलोमा, मय अनर्वा और शम्बर इत्यादि दैत्यगण! ठहरो, मेरे वचन सुनो। जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्य होगी। संसारमें मृत्युकी कोई दवा नहीं है। तब मृत्युसे यदि इस लोकमें यश और परलोकमें उत्तम गति मिले तो ऐसी मृत्युको कौन मनस्वी पुरुष स्वीकार न करेगा। दो प्रकारकी मृत्यु शास्त्रसम्मत और दुर्लभ है—एक तो योगधारणापूर्वक प्राणपर विजय प्राप्त करके शरीर त्याग और दूसरी सेनाके सम्मुख युद्धमें प्राणत्याग।

एकादश अध्याय

वृत्रासुरकी विचित्र कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! असुरराज वृत्रासुरकी बातोंपर असुरोंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। भयसे वे लोग घबड़ा उठे और भागने लगे। देवगणने उन भागनेवाले असुरोंका पीछा किया। यह देखकर वृत्रासुर क्रोधके आवेशमें अधीर हो उठा। वह उनका तिरस्कार करते हुए कहने लगा—हे देवताओं! तुम

लोग माताकी विष्ठाके तुल्य हो। भागते हुए दैत्योंका पीछा करके उन्हें मार डालनेसे क्या लाभ होगा? भयभीत और भागनेवालोंको मारना वीरोंके लिए प्रशंसनीय अथवा स्वर्गदायक नहीं है। यदि युद्ध करनेकी श्रद्धा और हृदयमें धैर्य हो तथा विषयभोगकी लालसा तुम लोगोंको नहीं है तो मेरे सामने ठहरो तो समझूँ? हे राजन्! यों कहकर वृत्रासुर इस तरह गर्जने लगा कि उससे त्रिभुवन काँप उठा और सभी देवता वज्राहतकी भाँति मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब वृत्रासुर देवसेनाको अपने पैरोंसे कुचलने लगा। यह देखकर वज्रधारी इन्द्रका कोप दूना हो गया। अब इन्द्रके साथ वृत्रासुरका युद्ध चलने लगा। इन्द्रने भारी गदासे उसपर प्रहार किया। वृत्रने उस गदाको पकड़ लिया और उसी गदासे इन्द्रके ऐरावतपर प्रहार किया। आहत ऐरावत कातर होकर पीछे हट गया और मुँहसे रुधिर उगलने लगा। वृत्रासुर महात्मा और रणधर्ममें निपुण था। ऐरावतकी दुर्दशाके समय विचलित इन्द्रपर उसने अस्त्रप्रयोग नहीं किया। इन्द्रदेव अपना अमृतमय हाथ फेरकर ऐरावतको व्यथारहित करके विश्रामके लिए थोड़ी देरतक ठहर गये। हे राजन्! वृत्रासुर अपने भाईके हत्यारे इन्द्रको युद्धके लिए ठहरा देखकर उनके उस निष्ठुर पापका स्मरण करके शोक और मोहसे हँसता हुआ कहने लगा—अहो! ब्रह्मघाती विशेषतः अपने गुरु और मेरे भाईको मारनेवाला शत्रु तू मेरे आगे खड़ा है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। इसी क्षण मैं तेरे पाषाणतुल्य हृदयको त्रिशूलसे विदीर्ण करके अपने भाईका ऋण चुकाऊँगा। अहो! आत्मतत्त्वज्ञ ब्राह्मण, निष्पाप, यज्ञदीक्षायुक्त,

अपने गुरु और मेरे ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूपको विश्वास दिलाकर, जैसे निर्दय व्यक्ति बलिपशुको खड्गसे काट डालता है, वैसे ही तूने उसके तीनों सिर काट डाले। मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ कि दया, लज्जा, श्री और कीर्तिने तुझको त्याग दिया है। इन्द्रका इस तरह तिरस्कार करके हृदयमें ज्ञानोदय होनेके कारण जीवित रहनेकी अपेक्षा मृत्युको ही श्रेयस्कर समझकर वृत्रासुर बोला—हे सुरेश! मैं तुम्हारा शत्रु हूँ। भगवानके आदेशसे और दधीचि मुनिकी हड्डियोंसे निर्म्मित उस वज्रसे इसी समय मेरा वध कर दो। जब कि श्रीहरि तुम्हारे सहायक हैं, तब मैं कदापि तुमको परास्त न कर सकूँगा। तुम विष्णु द्वारा प्रेरित हो। जिस स्थानमें हरि हैं, वहीं विजय, श्री और सब गुण रहते हैं। हे देवेन्द्र! मैं भी भगवानका भृत्य हूँ। मुझे वे स्वर्ग आदि सम्पत्ति देंगे, ऐसी आशंका मत कीजिये। सम्पत्ति ही द्वेष, उद्वेग, मानसिक पीड़ा, मत्तता, विवाद, विपद और क्लेशका कारण होती है। हमारे प्रभु भगवान अपने भक्तजनोंको धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंके लिए चेष्टा नहीं करने देते। जो लोग इन तीनों पदार्थोंके लिए चेष्टा नहीं करते, वे भगवानकी प्रसन्नताके पात्र होते हैं। अकिंचन भक्तजन ही ऐसे भगवत्प्रसादको पा सकते हैं। अन्य लोगोंके लिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। हे कौरवराज! वृत्रासुर इन्द्रको इस प्रकार कठोर वचन सुनाकर भगवानको सम्बोधित करता हुआ विविध प्रकारसे प्रार्थना करने लगे।

द्वादश अध्याय

वृत्रासुरका वध

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! वृत्रासुरने यह निश्चय कर लिया कि समरभूमिमें विजयकी अपेक्षा मृत्यु ही श्रेयस्कर है। इसके बाद त्रिशूल हाथमें लेकर उसने इन्द्रपर आक्रमण कर दिया। उसने प्रलयानलके तुल्य शूल घुमाकर महेन्द्रपर फेंका और सिंहनाद करते हुए कटूक्तियाँ करना आरम्भ किया। उस शूलको आते देखकर वज्रधारी इन्द्रने अकातरभावसे वज्र द्वारा उस शूलको और वृत्रासुरकी विशाल भुजाको काट डाला। हे राजन् ! जब वृत्रासुरका एक हाथ कट गया तो वह अपने दूसरे हाथमें परिघ लेकर पुरन्दरकी ओर दौड़ा। उसने इन्द्रकी ठोढ़ीमें और ऐरावतके मस्तकपर प्रहार किया। इस प्रहारसे इन्द्रके हाथसे वज्र गिर पड़ा। हे महाराज ! वृत्रासुरका यह महाअद्भुत कर्म देखकर देवता, दैत्य और सिद्ध-चारणगण उसकी प्रशंसा करने लगे। किन्तु इन्द्रपर संकट देखकर देवपक्षके लोग उच्चैःस्वरसे हाहाकार करने लगे। हे राजन् ! इन्द्रने लज्जित होकर हाथसे गिरे हुए वज्रको फिर नहीं उठाया। तब वृत्रासुर इन्द्रसे कहने लगा—हे इन्द्र ! यह विषादका समय नहीं है। वज्र उठा लो और मुझ अपने शत्रुको मारो। सृष्टि, स्थिति और संहार करनेमें समर्थ, एक, सर्वज्ञ और सनातन आदि पुरुषके सिवा युद्धमें और किसीकी सर्वत्र विजय नहीं होती। जय, पराजय, यश, श्री, ऐश्वर्य ये सब ईश्वराधीन हैं। अतएव इनके लिए हर्ष-विषाद करना अनुचित है। हे इन्द्र ! मुझको देखो। तुम्हारा हर्ष-विषाद निवारण करनेके लिए मैं गुरु हूँ। मैं तुमसे

युद्धमें हार गया हूँ। मेरा अस्त्र गिर गया और हाथ कट गये हैं। तो भी तुम्हारे प्राण लेनेकी इच्छासे मैं यथाशक्ति यत्न कर रहा हूँ। हे देवराज! हम लोगोंका यह संग्राम जुआ खेलनेके समान है। इसमें अपने-अपने प्राण ही पण अर्थात् बाजी है। बाण पाँसे हैं। वाहन चौसर हैं। यह नहीं जाना जा सकता कि किसकी हार होगी और किसकी जीत होगी। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! वृत्रासुरके कठोरताशून्य वाक्य सुनकर इन्द्रदेव उसके निष्कपटभावकी प्रशंसा करने लगे। फिर वज्र हाथमें लेकर हँसते हुए बोले—हे दानवेन्द्र! तुम्हारी ऐसी बुद्धि देखकर मैं कहता हूँ कि तुम सिद्ध हो। भगवान वासुदेवमें तुम्हारी भक्ति है। जब कि तुमने अमृतसागरमें विहार किया है, तब तुम्हें क्षुद्र गढ़े आदिके जलसदृश स्वर्ग आदिका कुछ भी प्रयोजन नहीं है। हे परीक्षित! इस प्रकार धर्मज्ञानसम्बन्धी वार्तालाप करते-करते दोनों युद्धमें प्रवृत्त हो गये। वृत्रासुरने इन्द्रपर परिघ चलाया। देवराजने परिघके साथ उसकी दूसरी भुजा भी काट डाली। दोनों भुजाएँ जड़से कट गयीं और उनसे रुधिर बहने लगा। तब वृत्रासुरकी शोभा आकाशसे गिरे पर्वतकी भाँति हुई। तब वृत्रासुरने मुँह फैलाकर भयंकररूप दिखाया। महा अजगर जैसे हाथीको लील ले, वैसे ही उसने वाहन सहित इन्द्रको लील लिया। यह देखकर ऋषिगण खेद करने लगे। हे परीक्षित! पुरन्दर अपने योगबल, मायाबल और नारायणकवचसे सुरक्षित होनेके कारण उसके पेटमें जाकर भी नहीं मरे। वे अपने वज्रसे उस असुरकी कोख फाड़कर बाहर निकल आये और शत्रुके गिरिशिखर सदृश मस्तकको उन्होंने बल-

पूर्वक काट डाला। हे राजन्! यद्यपि इन्द्रका वज्र अतिशय तीक्ष्ण था तो भी तीन सौ साठ दिनोंमें वह वृत्रासुरका वध कर सका। हे राजन्! उस महासुरका वध हो जानेपर आकाशमें दुन्दुभिध्वनि और फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसी समय वृत्रके शरीरसे उसकी आत्मज्योति निकलकर देवताओंके सामने ही भगवान सङ्कर्षणदेवमें जाकर लीन हो गयी।

त्रयोदश अध्याय

ब्रह्महत्याके भयसे इन्द्रका भागना और ब्रह्मा द्वारा उनकी रक्षा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृत्रासुरके मरनेपर इन्द्रको छोड़कर सब लोकपाल और तीनों लोक प्रसन्न हुए। देव, ऋषि, ब्रह्मा आदि सभी आनन्दसागरमें निमग्न होकर अपने-अपने लोकोंको चले गये। इसके बाद सभीने कहा कि अब इन्द्र उदास होकर क्या कर रहे हैं? राजा परीक्षितने पूछा—हे मुने! "महेन्द्रके कार्यसे जब सभी देवता सुखी हुए, तब देवेन्द्रको किस कारण दुःख हुआ? मैं यह जानना चाहता हूँ। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पहले इन्द्रकी इच्छा वृत्रासुरका वध करनेकी नहीं थी। क्योंकि ब्रह्महत्याका भय था। किन्तु क्या करें, ऋषियों और देवताओंने घबड़ाकर उसे मारनेके लिए अनुरोध किया तो उनकी बात टाल न सके। उन्होंने अनिच्छा प्रकट करके ऋषियोंसे कहा था—विश्वरूपको मारकर एक बार जो ब्रह्महत्या लगी उसे भूमि, वृक्ष, स्त्री और जलने अनुग्रहपूर्वक बाँट लिया था। अब वृत्रासुरको मारनेसे जो ब्रह्महत्या लगेगी, उससे

मुक्ति कैसे पाऊँगा ? ऋषियोंने उत्तर दिया—डरनेकी कोई बात नहीं है। हे देवराज ! तुम्हारा कल्याण हो। हम अश्वमेध यज्ञ कराकर तुमको ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त कर देंगे। अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे तुम जगत् भरकी हत्याके पापसे छूट जाओगे। फिर यह तो दुष्टका दमन करना है। यह कौन बड़ा भारी पाप होगा ? शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार सब ऋषियोंकी प्रेरणासे महेन्द्रने महाशत्रु वृत्रासुरको मारा था। वृत्रासुरके मरनेपर ब्रह्महत्याने इन्द्रपर आक्रमण किया। इससे इन्द्रको महासन्ताप हुआ। उनका चित्त बेचैन हो उठा। वे बहुत लज्जित हुए। उन्होंने देखा कि ब्रह्महत्या भीषणरूप धारण करके उनका पीछा कर रही है। वृद्धावस्थाके कारण ब्रह्महत्याके सब अंग काँप रहे हैं। उसके केश पक गये हैं। वह 'ठहर जा-ठहर जा' कहकर चिल्ला रही है। उसकी साँससे मछलीकी-सी दुर्गन्ध आ रही है। उसे देखकर इन्द्र भागने लगे। किन्तु कहीं भी रक्षास्थान न पाकर अन्तमें पूर्वोत्तर कोणमें स्थित मानसरोवरमें घुस गये। वहाँ एक पद्म था। इन्द्र उसीकी डण्डीमें प्रवेश करके रहने लगे। अग्निदेव जलमें प्रवेश नहीं कर सकते। इस कारण देवराज वहाँ यज्ञके भागसे वञ्चित रहे। हे राजन् ! इन्द्र उस स्थानमें एक हजार वर्षतक छिपे पड़े रहे। दिन-रात उनको यही चिन्ता रहती थी कि ब्रह्महत्याका पातक कैसे छूटेगा। उनकी अनुपस्थितिमें राजा नहुष स्वर्गका शासन कार्य चलाते रहे। हे राजन् ! नहुषको राजपद मिलनेकी बात सुनकर आश्चर्य मत करना। विद्या, तपस्या और योगबलसे क्या नहीं हो सकता ! कुछ दिनोंतक राज्यसंचालन करनेपर नहुषको ऐश्वर्य-

का मद हो गया। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अन्तमें इन्द्राणीके शापसे वे सर्पयोनिको प्राप्त हुए। इसकी कथा यह है कि एक दिन नहुषने इन्द्राणीसे कहा कि अब तो मैं ही इन्द्र हूँ। तुम मेरी सेवा करो। शचीने यह बात सुनकर चुपचाप बृहस्पतिसे परामर्श किया। बृहस्पतिने उस दुरात्माके नाशका उपाय बताते हुए कहा—हे शचि! तुम नहुषसे कहो कि जिस सवारीपर कभी कोई न चढ़ा हो, उसपर चढ़कर मेरे पास आओ तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। इस उपायसे उस दुरात्माका पतन होगा। शचीने ऐसा ही किया। नहुषने सोचा कि ब्राह्मणोंके कंधेपर रखी हुई पालकीपर चढ़ना चाहिये। क्योंकि ऐसी सवारीपर कोई कभी न चढ़ा होगा। इस विचारके अनुसार अगस्त्यादि ऋषियोंके कंधेपर पालकी रखवाकर वे इन्द्राणीके पास चले। मार्गमें जल्दीके कारण सर-सर अर्थात् 'जल्द चलो' कहनेकी जगहपर राजाके मुँहसे 'सर्प सर्प' निकल गया। अगस्त्य ऋषिने कुपित होकर शाप दे दिया कि तू सर्प हो जा। बस नहुष सर्प होकर स्वर्गसे गिर पड़े। इन्द्राणीकी बात रह गयी। तदनन्तर ब्राह्मणोंके वाक्यसे बुलाये जानेपर देवराज पुनः स्वर्गको प्राप्त हुए। सत्यपालक हरिकी आराधना करनेसे उनकी ब्रह्महत्या छूट गयी। हे राजन्! इस कथाको पढ़ने-सुननेसे सब पाप मिट जाते हैं। इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ती है। धन और यश बढ़ता है। शत्रुजय होता और आयुकी वृद्धि होती है। यह कथा परम स्वस्त्ययनस्वरूप है।

चतुर्दश अध्याय

चित्रकेतुके शोककी कथा

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! रजोगुण और तमोगुणपूर्ण वृत्रासुर अत्यन्त पापी था। तब विष्णुके चरणमें उसकी भक्ति कैसे हुई ? इस विषयमें हमें बड़ा संशय है। सूतजीने कहा—हे ऋषिगण ! महाराज परीक्षितका यही प्रश्न सुनकर शुकदेवजी आनन्द प्रकट करते हुए बोले—हे राजन् ! इस विषयमें द्वैपायन, नारद और देवलके मुँहसे जो इतिहास मैंने सुना है, वह तुमको बता रहा हूँ। सावधान होकर सुनो। हे महाराज ! प्राचीन समयमें शूरसेन देशमें चित्रकेतु नामक एक परम प्रसिद्ध राजा थे। वे सार्वभौम नरेश थे। उनकी अनेक रूपवती स्त्रियाँ थीं। किन्तु दुर्भाग्यवश वे सभी वन्ध्या थीं। सब गुणोंसे अलंकृत रहनेपर भी बाँझ स्त्रियोंके पति होनेके कारण चित्रकेतुका अन्तःकरण चिन्तासे व्याकुल रहता था। उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता था। एक समय महर्षि अङ्गिरा इच्छापूर्वक सब लोकोंमें विचरते-विचरते चित्रकेतुके भवनमें गये। राजाने महर्षिका यथोचित आदर-सत्कार किया और बैठनेको आसन दिया। महर्षिने पूछा—हे महाराज ! कुशलसे तो हो ? जिस प्रकार महत् आदि सात प्रकृतियोंसे जीव नित्य रक्षित रहता है, उसी प्रकार राजा भी सात प्रकृतियों अर्थात् गुरु, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्रके द्वारा सदा रक्षित रहता है। इनकी ही सहायतासे राजा राज्यका सुख भोगता है। राजाके सुखी होनेपर उसके द्वारा प्रजाजन धनी और समृद्ध होते हैं। हे महाराज ! तुमसे मैं पूछता हूँ कि तुम्हारे पुत्र, स्त्री, मन्त्री,

अमात्य आदि सभी वशवर्ती हैं न ? किन्तु मुझे प्रतीत हो रहा है कि तुम्हारी आत्मा सन्तुष्ट नहीं है। तुम्हारा ऐसा मनोभाव क्यों है ? चित्रकेतुने कहा—हे भगवन् ! आप लोग सब कुछ जानते हैं। तथापि जब आप मेरे मनकी चिन्ताका हाल जानना चाहते हैं, तब आपके सर्वज्ञ होनेपर भी मैं कहता हूँ—सुनिये। मेरे पास साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पदा सभी सुखके साधन हैं, किन्तु पुत्र न रहनेके कारण मुझे उनसे कुछ भी सुख नहीं मिल रहा है। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! समर्थ, ब्रह्मपुत्र, परमदयालु अङ्गिरा-ऋषिने चित्रकेतुकी यह प्रार्थना सुनकर चरुपाक करके त्वष्टा देवताका यज्ञ किया। यज्ञसमाप्तिके बाद उन्होंने राजाकी कृतद्युति नामकी ज्येष्ठा रानीको यज्ञका बचा हुआ अन्न दिया। इसके बाद उन्होंने चित्रकेतुसे कहा—हे राजन् ! तुम्हारी इस रानीसे एक पुत्र उत्पन्न होगा। उससे तुमको हर्ष भी होगा और शोक भी होगा। यह कहकर महर्षि अङ्गिरा वहाँसे चले गये। हे राजन् ! राजमहिषी कृतद्युतिने गर्भ धारण किया। दस महीने पूर्ण होनेपर एक राजकुमार उत्पन्न हुआ। राजकुमारके जन्मका समाचार सुनकर राजा चित्रकेतु और शूरसेनदेशवासी सभी लोग परम आनन्दित हुए। महाराजने पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करा और ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देकर उनका आशीर्वाद पाया। वृद्धावस्थामें पुत्र पाकर महाराजके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अब पुत्रवती स्त्रीपर उनका प्रेम बढ़ गया। अन्य स्त्रियोंपर उतना प्रेम नहीं रहा। इससे अन्य रानियाँ डाह करने लगीं। उनके हृदयमें घोर विद्वेषका अंकुर उत्पन्न हुआ। उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी। सौत-

का सौभाग्य न सह सकनेके कारण उन्होंने एक दिन राजकुमारको विष दे दिया। हे राजन्! सौतोंके इस निष्ठुर आचरणसे बालक मर गया। वह मृतावस्थामें सोया पड़ा था। कृतद्युति कुछ भी न जान सकी। उसका ख्याल था कि बच्चा नींदमें सो रहा है। कुछ देर बाद उसको ध्यान आया कि कुमार आज बड़ी देरसे सो रहा है। उसने धात्रीको बुलाकर कहा—बच्चेको मेरे पास ले आओ। धात्रीने बच्चेके पास जाकर देखा कि वह मरा पड़ा है। वह उसी क्षण घबड़ाकर मूर्च्छित हो गयी और पृथ्वीपर गिर पड़ी। होश आनेपर वह ऊँचे स्वरसे रोने लगी। उसकी रुलाई सुनकर कृतद्युति शीघ्र उसके समीप गयी। वहाँ उसने देखा कि बच्चा मृतावस्थामें पड़ा हुआ है। हे राजन्! शोकसे कातर होकर रानी भी रोने लगी। फिर राजाको यह समाचार मिला। सुनते ही उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। शोकके आवेगसे राहमें गिरते-पड़ते वे मृत-पुत्रके पास चले, किन्तु बार-बार मूर्च्छित होने लगे। मन्त्री आदि राजपुरुष और ब्राह्मणगण भी राजाके साथ ही साथ राजभवनमें गये। भवनमें प्रवेश करते ही राजा मरे हुए बालकके पैरोंपर गिर पड़े। दुःखसे कातर होकर राजा रोने लगे और अचेत हो गये। राजा-रानीका दुःख देखकर सभी दुःखमें पड़ गये। राजाकी ऐसी विपन्नावस्थाका समाचार सुनकर महर्षि अङ्गिरा देवर्षि नारदके साथ वहाँ जा पहुँचे।

पञ्चदश अध्याय

तत्त्वज्ञानके उपदेश द्वारा चित्रकेतुका शोकनिवारण

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! शूरसेनाधिपति राजा चित्रकेतुको शोकाकुल देखकर अङ्गिरा और नारद विविध सद्युक्तियोंसे उनको समझाने लगे। उन लोगोंने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम जिसके लिए शोक कर रहे हो, वह तुम्हारा कौन है ? तुम कैसे यह समझ गये कि यह तुम्हारा पुत्र है ? पहले इससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध था और इस समय भी क्या सम्बन्ध है ? हे महाराज ! यह सब भगवानकी मायामात्र है। कोई किसीका नहीं है। पिता-पुत्रका सम्बन्ध कल्पनामात्र है। वृथा शोक करनेकी क्या आवश्यकता ? हे राजन् ! विचार करके देखो कि तुम और वर्तमानकालके जो सब चराचर प्राणी हैं, वे और हम—जैसे जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके बाद भी नहीं रहेंगे, वैसे ही इस समय भी नहीं हैं अर्थात् आदि अन्तमें असत् होनेसे मध्यकी स्थिति भी स्वप्नवत् मिथ्या है। परमेश्वरकी मायासे ही जीवोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है। हे राजन् ! जैसे बीजसे बीज उत्पन्न होता है। वैसे ही सन्तानसे सन्तानकी उत्पत्ति स्वभावतः होती है। शुकदेवजी बोले—उन दोनों महर्षियोंके वचन सुनकर चित्रकेतुको ज्ञान हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा—आप दोनों कौन हैं ? आप लोग अवधूत वेषमें अपना रूप छिपाकर यहाँ आये हैं। भगवानके भक्त ब्राह्मण पागलोंकी भाँति चिह्न धारण करके मुझ सरीखे साधारण बुद्धिवाले लोगोंको बोध देनेके लिए ही पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करते हैं। सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अंगिरा, देवल,

असित् और वेदव्यास आदिके मनका अन्धकार दूर हो गया है। मार्कण्डेय, गौतम, वशिष्ठ, परशुराम, कपिल, शुक, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातुकर्ण्य, अरुणि, लोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा, धौम्य, पञ्चशिखा मुनि, हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज—ये लोग और इनके समान अन्य सिद्धगण ज्ञानदानके लिए सदा विचरते रहते हैं। मैं ग्राम्यपशुके तुल्य मूढ़बुद्धि हूँ। आप दोनों ज्ञानदान देकर मुझे दुःखसे बचा लीजिये। चित्रकेतुके वचन सुनकर अङ्गिराने कहा—हे राजन्! जब पुत्र पानेकी तुम्हारी इच्छा थी, तब मैंने ही आकर तुमको पुत्र दिया था। मैं वही अङ्गिरा मुनि हूँ और यह मेरे साथ साक्षात् ब्रह्माके पुत्र नारद ऋषि हैं। मैं जान गया था कि तुम पुत्रशोकसे व्याकुल हो रहे हो। तुम भगवानके भक्त हो। इस तरह पुत्रशोकसे कातर होना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुमपर अनुग्रह करनेके लिए ही हम लोग यहाँ आये हैं। हे महाराज! मैं जब तुम्हारे घर आया था तभी तुमको आत्मज्ञान देता, किन्तु उस समय तुम विषयोंमें आसक्त थे। इसलिए तुमको पुत्र देकर मैं चला गया। स्त्री, गृह, धन, पुत्र, सैन्य, राज्य, भृत्य, अमात्य, बन्धु आदि सभी शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले हैं। ऐश्वर्य आदि सब स्वप्न हैं, मिथ्या हैं। हे राजन्! ये सब मनके विकारमात्र हैं—यथार्थ नहीं हैं। कर्मवासनाके साथ कर्मकी चिन्ता करते-करते ही मनसे विविध कर्मोंकी उत्पत्ति होती है। हे राजन्! द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक यह देह ही देहाभिमानी जीवको विविध सन्ताप देता है। अतएव एकाग्रमनसे तत्त्वविचारपूर्वक द्वैतवस्तुमें

यह वस्तु सत् है, इस विश्वासको त्यागकर शान्ति धारण करो। महर्षि अङ्गिरा महाराज चित्रकेतुको तत्त्वोपदेश दे चुके तो उसके बाद देवर्षि नारद मन्त्रविद्याका उपदेश देनेके लिए बोले—हे राजन् ! संयत होकर मुझसे परममंगलविधायक यह मन्त्र ग्रहण करो। इसे धारण करनेसे तुम सात दिनमें प्रभु सङ्कर्षणदेवके दर्शन पाओगे। हे नरेन्द्र ! शंकर आदि प्रधान देवता जिनके चरण-कमलोंकी शरण ग्रहणपूर्वक द्वैतभ्रमको त्यागकर जिन भगवानका दर्शन पा चुके हैं, वह तुम भी पाओगे।

षोडश अध्याय

नारद द्वारा चित्रकेतुको महाविद्याका उपदेश

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इसके बाद देवर्षिने पिता-पुत्रसम्बन्धको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए शोकसे व्याकुल बंधुओं और आत्मीय स्वजनोंके सामने मृत राजकुमारकी जीवात्माको प्रकट किया। उन्होंने उस जीवात्मासे कहा—हे जीवात्मन् ! तुम अपने माता-पिताको देखो। तुम्हारे लिए ये सभी शोकार्त हो रहे हैं। तुम्हारी अकाल मृत्यु हुई है। अब भी तुम्हारी आयु अवशेष है। अपने शरीरमें प्रवेश करो। तुम्हारे पिता तुमको राज्य देंगे। उठो, स्वजनोंके साथ मिलकर विषयसुख भोगो। नारदके वचन सुनकर जीव प्रेतशरीरमें ही रहकर बोला—ये किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए थे ? मैं तो अपने कर्मफलानुसार देव, पशु, मनुष्य आदि नाना योनियोंमें भ्रमण कर रहा हूँ। मेरी मृत्यु होनेसे यदि पुत्र-शोकमें ये लोग कातर होते हों तो इसके बदलेमें मुझे शत्रु समझ-

कर आनन्दित क्यों नहीं होते ? क्रमशः सभी सबके परस्पर जाति, बन्धु, शत्रु, मित्र और उदासीन आदि होते रहते हैं। जैसे बेंचने-खरीदनेकी वस्तुएँ—सोना-चाँदी आदि बेंचने खरीदनेवालोंके पास आती-जाती रहती हैं, वैसे ही जीव भी अनेक योनियोंमें भ्रमण करता रहता है। किसीके साथ चिरकालतक सम्बन्ध नहीं रहता। जितने दिन जिसके साथ जिसका सम्बन्ध रहता है, उतने दिन उसपर उसकी ममता रहती है। जीवका प्रिय या अप्रिय अपना या पराया कोई नहीं है। जीव सुख-दुःख या राज्यभोग कुछ भी नहीं चाहता। वह सर्वदा उदासीनकी भाँति रहता है। यह एक है और कार्यकारणका साक्षीमात्र है। तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ, इस तरहका वास्तविक सम्बन्ध कुछ भी नहीं है। तब इसमें शोक या मोह क्यों करें ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! सबके सामने इस प्रकार कहकर जीव राजपुत्रके शरीरसे चला गया। इसके बाद सबने मृतदेहका संस्कार और यथोचित कर्मकाण्ड समाप्त किया। हे राजन् ! कृतद्युतिकी सौतोंको भी राजकुमारकी हत्या करनेका पश्चात्ताप हुआ। वे लज्जित और मलिन हो गयीं। बाल-हत्याके पापसे मुक्त होनेके लिए उन्होंने प्रायश्चित्त किया। यमुनाके तटपर उन्होंने यह व्रत आरम्भ किया था। अङ्गिराके वचन सुनकर चित्रकेतुने भी पुत्रकी कामना छोड़ दी। फिर यमुनाके तटपर जाकर उन्होंने स्नान-तर्पणादि समाप्त किया और मौन धारण करके जितेन्द्रिय होकर ब्रह्माके पुत्र अङ्गिरा और नारदके चरणोंमें प्रणाम किया। भक्त चित्रकेतुको शरणागत देखकर महर्षि नारद प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको आत्मविद्याका उपदेश दिया। फिर वे अंगिरा-

के साथ ब्रह्मलोकको चले गये। वह आत्मविद्या इस प्रकार है— आप भगवान वासुदेव हैं। आप प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणदेव हैं। आपको मैं शुद्ध हृदयसे नमस्कार करता हूँ। आप भगवान विज्ञानमात्र हैं। आप परमानन्दमय, आत्माराम और शान्त हैं। सब विश्व आपकी मूर्ति है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिसमें यह जगत् अवस्थित है और उत्पन्न होकर लयको प्राप्त होता है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ। इत्यादि। हे राजन्! नारदजीके निर्देशानुसार राजा चित्रकेतुने सात दिनतक केवल जलपान करते हुए एकाग्रभावसे उक्त विद्याका जप किया। उनकी मनोगति इतनी उन्नत हुई कि वे देवदेव शेषजीके चरणोंके निकट जा पहुँचे। शेषजीका दर्शन करते ही राजर्षिके सब पाप नष्ट हो गये। उनका अन्तःकरण निर्मल और स्वस्थ हो गया। उन्होंने भक्तिपूर्वक आदि पुरुषको प्रणाम किया। किन्तु बहुत देरतक स्तुति नहीं कर सके। प्रेमके मारे कंठावरोध हो गया। कुछ देरके बाद उनमें बोलनेकी शक्ति हुई। उन्होंने इन्द्रियोंकी बहिर्मुखी वृत्तियोंको रोककर मनःको संयत किया और भक्तिशास्त्रमें जिनके शरीरका वर्णन है, उन जगद्गुरु भगवानकी स्तुति करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजा परीक्षित! चित्रकेतुने स्तुति की तो भगवानने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—हे राजन्। नारद और अङ्गिराने जो उपदेश दिया है, उसके प्रभावसे मेरा दर्शन पाकर तुम पूर्ण सिद्ध हो गये हो। सब प्राणी मेरे स्वरूप हैं। मैं सब प्राणियोंका आत्मा और जनक हूँ। शब्दब्रह्म और परब्रह्म ये दोनों मेरे अविनाशी रूप हैं। सभी आत्माएँ ब्रह्म हैं। ब्रह्मको ही आत्मा समझो। हे महाराज! सुख

मिलने और दुःखसे छूटनेके लिए सब नर-नारी विविध कर्म करते हैं। किन्तु उन कर्मोंसे दुःखकी निवृत्ति या सुखकी प्राप्ति नहीं होती। हे महाराज! ज्ञान-विज्ञानसे परितृप्त होकर तुम मेरे भक्त हो जाओ। यदि तुम मेरी इस बातको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करोगे तो शीघ्र ही ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर सिद्ध हो जाओगे। शुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! भगवान हरि इस प्रकार चित्रकेतुको आश्वासन देकर उनके सामने ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

सप्तदश अध्याय

उमाके शापसे चित्रकेतुको असुरयोनि मिलना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब भगवान अनन्त अन्तर्धान हो गये तो जिस दिशामें वे अन्तर्हित हुए थे, उस दिशाको प्रणाम करके आकाशचारी विद्याधर चित्रकेतु इच्छानुसार विचरने लगे। लाखों वर्षतक गगनचारी होकर वे घूमते रहे। कुलाचलोंकी कन्दराओंमें भी वे गये, जहाँ इच्छामात्रसे नाना प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वहाँ विद्याधरियोंके मुखसे श्रीहरिके गुणोंका गान सुनते हुए चित्रकेतु विहार करते थे। एक दिन वे विष्णुभगवानके दिये हुए तेजोमय विमानपर चढ़े चले जा रहे थे। मार्गमें उन्होंने देखा कि भगवान शंकरजी सिद्धचारणोंके बीच मुनिगणकी सभामें भगवती भवानीको गोदमें लिपटाये बैठे हैं। यह दृश्य कुछ देरतक देखकर चित्रकेतुने शिवजीके सामने ही उपहास करते हुए कहा—ये सबके गुरु, साक्षात् धर्मके उपदेशक और जीवोंमें श्रेष्ठ हैं। इनका आचरण तो देखो! स्त्रीको किस प्रकार गोदमें लेकर सभामें बैठे

हैं। ये जटाधारी, कठोर तपस्वी, ब्रह्मवादी और सभापति हैं। क्या ही आश्चर्य है ! इनको कुछ भी लज्जा नहीं है। व्रतधारी होते हुए भी सभाके बीच स्त्रीको गोदमें लेकर बैठे हैं। हे परीक्षित ! भगवान् गिरीश चित्रकेतुकी ऐसी उक्ति सुनकर हँस पड़े और कुछ भी नहीं बोले। सभामें जो लोग बैठे थे, वे लोग भी शिवजीको चुप देखकर कुछ नहीं बोले। किन्तु चित्रकेतुके गर्वको सहन करनेमें असमर्थ भगवती पार्वतीने क्रुद्ध होकर कहा—क्या ही आश्चर्य है ! जान पड़ता है कि पद्मयोनि ब्रह्माजी धर्मको नहीं जानते। ब्रह्माके पुत्र भृगु, नारद आदि भी धर्मका तत्त्व नहीं समझते। सनत्कुमार और कपिलमुनि भी धर्मज्ञ नहीं हैं। क्योंकि शास्त्रविधिका उल्लंघन करनेवाले भगवान महादेवको वे लोग नहीं बरजते। यह कैसा निर्लज्ज है ? जो सबके मंगलदाताको कटु वचन सुना रहा है। यह कार्य सज्जनोंके योग्य नहीं है। इस दुर्मतिको दण्ड देना चाहिए। यह कहकर भवानीने चित्रकेतुको बुलाकर कहा—ओ दुर्मते ! तेरी मति भ्रष्ट हो गयी है। तू पापमयी आसुरी योनिमें जाकर जन्म ले। ओ पुत्र ! ऐसा होनेसे फिर कभी तुझे महापुरुषोंके प्रति अपराध करनेका साहस न होगा। शुकदेवजी बोले—हे भारत ! भवानीने शाप दे दिया तो उसी क्षण चित्रकेतु विमानसे उतरकर सतीके चरणोंपर गिर पड़े और प्रसन्न करनेके लिए उनकी स्तुति करने लगे। हे राजन्! चित्रकेतुने हर-पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिए स्तुति की और उनके सामने ही विमानपर चढ़कर आकाशमार्गसे चले गये। यह देखकर वहाँ बैठे हुए लोगोंको और शिव-पार्वतीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद शंकरजीने भवानीको

सम्बोधित करते हुए कहा—हे प्रिये ! तुमने अद्भुत कर्मवाले भगवान हरिके दासानुदास निःस्पृह महात्माओंका माहात्म्य देखा ! हरिपरायण व्यक्ति किसीसे नहीं डरते । वे स्वर्ग, नरक और मुक्तिमें समान दृष्टि रखते हैं । क्योंकि परमेश्वरकी लीलासे ही देहधारियोंको देहकी प्राप्ति और उसके लिए ही सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह हुआ करते हैं । यह चित्रकेतु भगवानका दास है । इस कारण शान्त और समदर्शी है । भगवान हरिका माहात्म्य कौन जान सकता है ? उनके लिए प्रिय-अप्रिय या अपना-पराया कोई भी नहीं है । वे सभी प्राणियोंको प्रिय हैं । महाभाग चित्रकेतु भी उन्हीं हरिका प्रिय अनुचर है । हे सती ! मैं भी उन्हीं अच्युतका प्रिय हूँ । इस कारण चित्रकेतुपर मुझको कोप नहीं हुआ । तुम विस्मय छोड़ दो । हे महाराज परीक्षित ! भवानीको प्रतिशाप देनेमें समर्थ होकर भी भगवद्भक्त चित्रकेतुने भवानीका शाप विनीत भावसे स्वीकार कर लिया । यही उनकी साधुताका लक्षण है । उसके बाद चित्रकेतु दानवी योनिको प्राप्त होकर त्वष्टाके यज्ञमें उत्पन्न हुए । बादको ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर वृत्रनामसे विख्यात हुए । हे राजन् ! आपने जो पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया । महात्मा चित्रकेतुकी इस पवित्र कथाको पढ़ने और सुननेसे मनुष्य संसारके बन्धनसे छूट जाता है । जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर भगवान हरिका स्मरण करके श्रद्धापूर्वक इस इतिहासको पढ़ते हैं, वे उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ।

अष्टादश अध्याय

त्वष्टा, आदित्य और देवगणके वंशका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सविताकी पत्नीका नाम पृश्नि है। उन्होंने सावित्री, व्याहृति और त्रयी तथा अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य याग और पंच महायज्ञोंको उत्पन्न किया। हे महाराज ! भगकी स्त्री सिद्धि हैं। उनसे महिमान, विभु और प्रभु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए तथा आशीः नामवाली एक सुन्दरी कन्या भी जायमान हुई। धाताकी कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति नामवाली स्त्रियोंने क्रमसे सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमासको उत्पन्न किया। विधाताने अपनी स्त्री क्रियाके गर्भसे पुरीष्यनामक पाँच अग्नि उत्पन्न किये। वरुणकी स्त्रीका नाम चर्षणी था। उसके गर्भसे भृगुने पुनः जन्मग्रहण किया। (पहले भृगु ब्रह्माके पुत्र थे) वल्मीकसे उत्पन्न महायोगी वाल्मीकि वरुणके पुत्र हैं। वरुण और मित्र दोनोंका वीर्य उर्वशीको देखकर स्खलित हो गया। उसको उन्होंने कुम्भमें स्थापित कर दिया। उसीसे अगस्त्य और वशिष्ठमुनि उत्पन्न हुए। मित्रने अपनी स्त्री रेवतीके गर्भसे उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पलको उत्पन्न किया। इन्द्रने पौलोमीके गर्भसे जयन्त, ऋषभ और मीढुसनामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। मायावामनरूपसे अवतीर्ण उरुक्रमदेवने अपनी स्त्री कीर्तिके गर्भसे बृहत्श्लोक उत्पन्न हुए और उनके सौभग आदि कई पुत्र जनमे। ये लोग कश्यप वंशके हैं। इनकी कथा अष्टम स्कन्धमें वर्णित होगी। अब तुमसे चितिके गर्भसे उत्पन्न कश्यपके वंशका वर्णन करता हूँ, सुनो। हे राजन् ! दितिके हिरण्यकशिपु और

हिरण्याक्षनामक दो पुत्र हुए। इनकी कथा तृतीय स्कन्धमें कही गयी है। जम्भासुरकी कन्या कयाधू दानवी हिरण्यकशिपुकी स्त्री थी। उसने संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद ये चार पुत्र उत्पन्न किये। इनकी बहिनका नाम सिंहिका था। उसके साथ विप्रचित्तिनामक दानवने विवाह किया। उसके गर्भसे राहुका जन्म हुआ। मोहिनीरूप हरिने अमृत पीते हुए राहुके सिरको चक्रसे काट डाला था। हे राजन्! संह्लादकी स्त्री कृतिने पञ्चजननामक पुत्र उत्पन्न किया। ह्लादकी स्त्री धमनिने वातापि और इल्वलको उत्पन्न किया। एक समय अगस्त्य मुनि उनके यहाँ अतिथि बनकर गये। तब इल्वलने अपने छागरूपधारी भाईको पकाकर अगस्त्य मुनिको खिलाया। अनुह्लादकी स्त्री सूर्म्या थी। उसके गर्भसे वाष्कल और महिषासुरका जन्म हुआ। प्रह्लादकी स्त्रीका नाम दर्वी था। उसके गर्भसे विरोचनका जन्म हुआ। विरोचनके पुत्र बलि हुए। बलिकी स्त्रीका नाम अशना था। इसके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सबमें बड़ा बाणासुर था। बलिकी कथा आगे चलकर वर्णित होगी। बलिपुत्र बाणासुर भगवान शिवकी आराधना करके उनके गणोंमें मुख्य हो गया था। हे राजन्! उनचास मरुद्गण भी दितिके ही पुत्र हैं। ये सभी पुत्रविहीन हैं। इन सभीको इन्द्रने असुरसे देवता बना लिया था। राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! दितिपुत्र मरुद्गण अपने स्वाभाविक आसुर भावको छोड़कर किस प्रकार इन्द्रके द्वारा देवत्वको प्राप्त हुए? शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे दितिके पुत्रोंको मारडाला। तब वे बहुत

चिन्तित हो गयीं। उन्होंने मन ही मन सोचा कि दुरात्मा तथा निष्ठुर इन्द्रने भाइयोंको मार डाला है। यदि मैं इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न करूँ तभी सुखसे सो सकूँगी और मनका यह दुःख दूर होगा। अहो! प्रभु नामसे विख्यात कितने ही शरीरोंकी तीन गतियाँ हुईं—पशु-पक्षियोंके खानेसे विष्ठा, गाड़नेसे कृमि और जलानेसे भस्म। क्योंकि मृत देहका संस्कार न होनेसे वह सड़कर कृमि हो जाती है, कुत्ते आदि खा जाते हैं तो विष्ठा होती है और जला देनेसे भस्ममात्र होकर शेष रह जाती है। जो व्यक्ति इस देहकी रक्षाके लिए जीवहिंसा करता है, वह घोर नरकमें जाता है। यह विचारकर दिति अपने पति महर्षि कश्यपकी भक्तिपूर्वक सेवा करने लगीं। हे तात! जब दिति इस प्रकार पतिकी सेवामें प्रवृत्त हुईं, तब भगवान कश्यप परम प्रसन्न हुए और एक दिन उन्होंने मुसकुराकर पत्नीसे कहा—हे साध्वि! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। इच्छानुसार वर माँगो। हे प्रिये! पतिके प्रसन्न होनेपर स्त्रीकी इस लोक या परलोकसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती। शास्त्रमें पति ही स्त्रियोंका परमदेवता माना गया है। हे सुन्दरि! स्त्रियोंके लिए पतिरूपधारी वासुदेव परम पूजनीय हैं। भगवान वासुदेव सबकी आत्मामें विद्यमान हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ पतिकी ही सेवामें रत रहती हैं। क्योंकि पति ही उनके आत्मा हैं और पति ही ईश्वर हैं। दितिने कहा—हे ब्रह्मन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक वर दीजिये। मुझे ऐसा पुत्र दीजिये कि जो इन्द्रका वध कर सके। इन्द्रने मेरे दो पुत्रोंको मार डाला है। मुझे इसके लिए बड़ा शोक है। मैं इस समय पुत्रहीन हूँ। दितिके

ये वचन सुनकर कश्यपजी पछताते हुए अपना ही तिरस्कार करने लगे। वे बोले—अहो ! इस समय बड़ा भारी अधर्म आ उपस्थित हुआ। मैं जितेन्द्रिय क्यों न हो सका ? इन्द्रियसुखमें रत रहनेके कारण स्त्रीरूपिणी मायाने मेरे चित्तको वशमें कर लिया। मुझे अवश्य ही नरकमें गिरना पड़ेगा। इस अबलाका क्या अपराध है ? इसने तो अपने स्वभावका ही अनुसरण किया है। स्त्रियोंका मुख शरद्ऋतुमें प्रस्फुटित कमलके समान होता है। उनके वाक्य कानोंमें अमृतकी धारा उँड़ेलते हैं, किन्तु हृदय छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण होते हैं। स्त्रियोंकी चेष्टाको कौन जान सकता है ? वास्तवमें स्त्रियोंको कोई भी प्रिय नहीं है। वे स्वार्थके लिए पति, पुत्र और भाईको भी मार डालतीं या दूसरोंसे मरवा डालती हैं। जो हो, मैं दितिको वर देनेका वचन दे चुका हूँ। उसको मिथ्या नहीं कर सकता। किन्तु इन्द्रका वध भी अनुचित है। इस तरह सोचकर वे अपनी ही निन्दा करने लगे। इसके बाद कश्यपने दितिसे कहा—यदि तुम वर्ष भर विधिपूर्वक पुंसवन व्रत धारण कर सको तो तुम्हारे गर्भसे इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। किन्तु यह व्रत पूर्णविधिके साथ करना पड़ेगा। विधिमें कुछ भी अन्तर पड़नेसे वह पुत्र देवताओंका मित्र हो जायगा। यह सुनकर दितिने प्रसन्न होकर कहा—हे स्वामिन् ! मैं वह व्रत करूँगी। उसमें जो-जो करना हो, जो-जो नहीं करना हो, जो करनेसे व्रतमें हानि पहुँचे सो सब मुझको बताइये। कश्यपजीने पत्नीसे कहा—इस व्रतमें प्राणीकी हिंसा वर्जित है। यह व्रत करते समय किसीको शाप न देना होगा। झूठसे दूर रहना पड़ेगा।

नख और रोम न काटना होगा। अमांगलिक वस्तुओंको न छूना होगा। जलमें घुसकर स्नान करना भी निषिद्ध है। क्रोध न करना चाहिये। दुर्जनोंसे बातचीत न करनी चाहिये। अशुद्ध और अधौत वस्त्र न पहने और किसीकी पहिनी हुई मालाको भी न पहिने। जूठा अन्न, भद्रकालीको चढ़ाया हुआ अन्न, चींटी आदिके द्वारा दूषित अन्न, मांसयुक्त अन्न, शूद्रका लाया हुआ अन्न और रजस्वलाका देखा हुआ अन्न न भोजन करे। अंजलिसे जलपान न करे। उच्छिष्ट अवस्थामें, बिना आचमन किये, सन्ध्याकालमें बालोंको खोलकर बिना शृंगार किये, आभूषण बिना धारण किये तथा नग्नदेहसे कभी बाहर न घूमे। बाहर जाकर वाणीका संयम रखे। बिना पैर धोये, अपवित्र अवस्थामें, दोनों पैर गीले रहते, उत्तर और पश्चिमको सिर करके, दूसरेके साथ, नग्न होकर अथवा प्रातःकाल और सायंकालमें न सोवे। हे दिति! धोये हुए वस्त्र धारण करके, पवित्र होकर, भोजनके पहले गऊ, ब्राह्मण और लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। चन्दन, माला, वस्त्र और आभूषण आदिसे सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजा करके पतिकी सेवा करे और उसीके तेजको अपने गर्भमें स्थित समझे। इस आचरणसे एक वर्षतक व्रत धारण करोगी तो इन्द्रका विनाशक पुत्र उत्पन्न होगा। हे राजन्! कश्यपके वचन सुनकर दितिने कहा कि मैं ऐसा ही करूँगी और फिर उसने कश्यपके सहवाससे गर्भ धारण किया। हे राजन्! इन्द्र किसी तरह मौसीका यह अभिप्राय जान गये और दितिके व्रतको नष्ट करनेकी कामनासे कपट साधु वेष धारण करके दितिकी सेवा करने और व्रतका छिद्र अन्वेषण करने लगे। किन्तु

कोई त्रुटि नहीं दिखायी दी तो वे बहुत चिन्तामें पड़ गये। इस बीच विधिकी विडम्बनासे दितिको एक दिन मोह उपस्थित हुआ। एक दिन दिति थकी रहनेके कारण सन्ध्याके समय उच्छिष्ट अवस्थामें विना आचमन किये और हाथ धोये ही सो गयी। उसी समय इन्द्रने योगमायाके बलसे निद्रिता दितिके उदरमें प्रवेश किया और गर्भमें स्थित सन्तानको काटने लगे तो बालक रोने लगा, तब इन्द्रने कहा मत रो और प्रत्येक खण्डके सात-सात टुकड़े कर डाले। वे ही उनचास मरुद्गण हो गये और उन्होंने इन्द्रसे कहा—हे इन्द्र! तुम हमको क्यों मारते हो? हम मरुद्गण तुम्हारे भाई हैं। इन्द्रने कहा—मत डरो, तुम लोग मेरे भाई हो। तुम लोग मेरे पारिषद रहोगे। इन्द्रने वज्रसे गर्भको खण्ड-खण्ड तो कर डाला, किन्तु श्रीहरिकी कृपासे दितिका गर्भ नष्ट नहीं हुआ। वे मरुद्गण मातृदोष अर्थात् आसुरी भावको त्यागकर इन्द्रके साथ मिलकर पचास हो गये। इन्द्रने उनको सोमपान करनेवाले देवताओंमें मिला लिया। हे राजन्! तबतक दिति नींदमें पड़ी थीं। नींद टूटनेपर उठकर उन्होंने देखा कि इन्द्रके साथ उनचास पुत्र बैठे हुए हैं। उन्हें देखकर वे प्रसन्न तो अवश्य हुईं, किन्तु थोड़ी देरके बाद उन्होंने इन्द्रसे पूछा—हे पुत्र! मैंने अदितिकी सन्तानोंके लिए भयानक संहारकारी एक पुत्रकी कामनासे यह कठिन व्रत धारण किया था, किन्तु ये उनचास पुत्र कैसे हो गये! यदि तुमको इसका कुछ वृत्तान्त विदित हो तो सत्य-सत्य कहो—झूठ मत बोलो। दितिकी बात सुनकर इन्द्रने सच्ची बात कह दी। वे बोले—माता! तुम्हारी यह चेष्टा जानकर ही मैं तुम्हारी सेवा करने लगा था।

मैं व्रतमें त्रुटियोंकी प्रतीक्षामें रहा। आज त्रुटि पकड़ी गयी तो मैंने उदरमें प्रवेशकर गर्भके सात टुकड़े कर दिये। पहले सात टुकड़े किये तो सात पुत्र हुए। फिर उनमेंसे प्रत्येकको सात-सात टुकड़ोंमें काट दिया तो उनचास हो गये। जब मैंने देखा कि इतना करनेपर भी उन लोगोंकी मृत्यु नहीं हुई तो हे माता! मैं जान गया कि तुम महापुरुष भगवानकी आराधना करके किसी अमोघ सिद्धिको प्राप्त हुई हो। जो लोग वासनाशून्य होकर भगवानकी आराधना करते हैं, वे लोग मोक्षपदकी अभिलाषा नहीं करते। विषयभोग तो नरकके समान हैं। कौन बुद्धिमान व्यक्ति भगवान हरिकी आराधना करके इस विषयभोगकी कामना करेगा। हे मातः! मुझे क्षमा करो। मैंने बड़ी दुष्टता की है। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर दितिने इन्द्रपर सन्तुष्ट होकर उसका अपराध क्षमा कर दिया और इन्द्र उनको प्रणाम करके मरुद्गणके साथ स्वर्गको चले गये। यह मरुद्गणके जन्मका विवरण मैंने सुनाया। अब और क्या वर्णन करूँ सो बताओ।

ऊनविंश अध्याय

हरितोषण व्रतकी कथा।

राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने जिस पुंसवन व्रत का वर्णन किया है, उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। आप उसकी वह विधि विस्तार पूर्वक कहिये कि जिससे भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। उसे सुननेकी मेरी इच्छा है। शुकदेवजी बोले—अगहन महीनेके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको स्त्री अपने पतिकी आज्ञासे सब

कामनाओंको देनेवाला पुंसवन व्रत आरम्भ करे। ब्राह्मणोंकी अनुमति ले और मुँह धोकर स्नानोपरान्त एवं पवित्र होनेके बाद मरुद्गणके जन्मकी कथा सुने। फिर शुभ्र वस्त्र-अलंकार आदि पहिनकर प्रातःकालके समय भोजनके पहले लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। फिर धूप-दीप नैवेद्यादि द्वारा भगवानकी पूजा करके पूजाके बचे हुए सामानसे अग्निमें बारह आहुतियाँ दे। हे राजन्! लक्ष्मी और विष्णु दोनों ही वरदायक और मंगलकारी हैं। यदि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंकी कामना हो तो नित्य भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करे और भक्ति द्वारा नम्रचित्त होकर प्रणाम करे। हे राजन्! इस प्रकार वर देनेवाले लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मीपतिकी स्तुति करके अर्पण किये हुए उपहारोंको वहाँसे हटावे और फिर आचमन कराकर पूजन करे। इसके बाद भक्तिपूर्ण चित्तसे स्तुति करे और यज्ञोच्छिष्टको सूँघकर फिर हरिकी पूजा करे। फिर वह स्त्री भक्तिपूर्वक ईश्वरभावसे प्रिय वस्तु और प्रिय कर्मोंसे अपने पतिकी सेवा करे। पति भी प्रेमपूर्वक स्वयं पत्नीके छोटे और बड़े कामोंमें अनुकूल आचरण करे। हे महाराज! यह पुंसवन व्रत स्त्री-पुरुष दोनोंमेंसे कोई भी करे तो दोनोंको इसका फल मिलेगा। हे राजन्! भगवान विष्णुका यह व्रत धारण करनेसे सन्ततिविच्छेदका दुःख नहीं होता। साध्वी स्त्री इस भाँति पूजाका अनुष्ठान करते हुए बारह महीने बिताकर कार्तिक मासके अन्तिम दिनमें उपवास करे। प्रातःकाल होनेपर दूसरे दिन आचमन करके श्रीकृष्णकी पूजा करे। फिर उस स्त्रीका पति पाकयज्ञविधिके अनुसार दूधमें पके हुए घृत मिले चरु (खीर) से बारह आहुतियाँ दे।

फिर ब्राह्मणोंके दिये हुए आशीर्वादको सिर झुकाकर ग्रहण करे और भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करे। बादमें ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर उस चरुका भोजन करे। फिर आचार्यको आगे करके वाक्य-संयम-पूर्वक बन्धु-बान्धव सहित पत्नीके निकट जाकर उस चरुका शेष भाग भोजन करनेके लिए देवे। हे राजन्! यह विष्णुव्रत विधि-पूर्वक करनेसे पुरुषको मनचाही वस्तु मिलती है। स्त्रियोंको सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, अवैधव्य, यश और भवन इत्यादि इच्छानुसार मिलते हैं। कुमारी कन्याको सब लक्षणोंसे पूर्ण पति मिलता है। विधवा स्त्री उत्तम गति पाती है। जिस स्त्रीके पुत्र होकर मर जाते हैं, इस व्रतसे उसके पुत्र जीवित रहते हैं। दुर्भगा सुभगा होती और कुरूपा सुन्दर रूप पाती है। हे महाराज! इस व्रतके माहात्म्यसे रोगी पुरुष असाध्य रोगोंसे मुक्त होकर स्वस्थ हो जाते हैं। जो व्यक्ति आभ्युदयिक श्राद्धादिके समयमें इस प्रकरणको पढ़ते हैं, उनके पितरों और देवताओंको अनन्त तृप्ति मिलती है। होमके अन्तमें श्रीहरि सन्तुष्ट होकर सब कामनाएँ पूरी करते हैं। हे राजन्! यह दितिके महाव्रतका विवरण मैंने तुमसे वर्णन किया।

षष्ठ स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

सप्तम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! जब भगवान विष्णु सर्वत्र समदर्शी, सब प्राणियोंके प्रिय और सुहृद् हैं। तब उन्होंने भेदबुद्धि धारण करके और इन्द्रका पक्ष लेकर दैत्योंको क्यों मारा? शुकदेवजी बोले—हे महाराज! भगवान्के चरित्र अति अद्भुत हैं। हरिभक्त प्रह्लादका माहात्म्य सुननेसे भगवानके चरणोंमें भक्ति उत्पन्न होती है। इस कारण नारद आदि महर्षि सदा भगवानके चरित्रका गान करते रहते हैं। अब मैं व्यासदेवको प्रणाम करके वही हरिकथा कहता हूँ, सुनो। यद्यपि भगवान विष्णु सर्वत्र समभाव रखते हैं, किन्तु विभिन्न कारणोंसे इसमें विषमता भी हो सकती है। जिस प्रकार

काठमें अग्नि, पात्रमें जल और घड़ेमें आकाश विद्यमान रहता है, उसी प्रकार विभिन्न गुणोंके भेदानुसार भगवान नानारूपोंमें प्रकट होते हैं। हे राजन्! चेदिराज शिशुपालको वासुदेव भगवान द्वारा जब सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई, तब राजसूय यज्ञमण्डपमें यह अद्भुत घटना घटी देखकर पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने विस्मित होकर सभामें बैठे हुए नारदसे मुनियोंके सामने इस सम्बन्धमें पूछा था। उन्होंने कहा—हे मुनिवर! शिशुपाल कैसे सबके सामने दुर्लभस्वरूप भगवानमें लीन हो गया? आप मेरा संशय दूर कीजिये। नारदने कहा—हे राजन्! भगवानके दानवादिवध कार्यमें हिंसाका भाव नहीं रहता। उनके इस कार्यको हिंसा नहीं कह सकते। अभिमानके कारण मैं-मेरा आदि विषमभाव आते हैं। ईश्वर अद्वितीय और सबके आत्मा हैं। उनके शरीर नहीं है। दूसरोंको उनकी कल्याण कामनासे ही वे दण्ड देते हैं। उनके साथ शत्रुता करनेसे दानवोंको भी शीघ्र मुक्ति मिल जाती है। भक्तियोगसे वे उतनी सरलतासे मुक्ति नहीं पा सकते। मैंने विचार करके यही मत निश्चित किया है। भृङ्गी एक तरहका कीड़ा होता है। उसको भौंरे पकड़कर अपने बिलमें ले आते और बन्दी करके रख लेते हैं। तब वह द्वेष और भयसे घबड़ाकर भौंरेका ध्यान करते-करते भौंरा ही हो जाता है। इसी प्रकार शिशुपाल आदि राजे श्रीकृष्णसे शत्रुता करके सर्वदा उनका ध्यान करते-करते निष्पाप होकर उन्हींमें लीन हो गये। कामसे गोपियाँ, भयसे कंस, द्वेषसे शिशुपाल आदि नरपति, सम्बन्धसे वृष्णिवंशी यादव, स्नेहसे तुमलोग और भक्तिसे हमलोग उन हरिको प्राप्त हुए हैं। किन्तु वेनने उक्त पाँच उपायोंमेंसे किसी

उपायको ग्रहणकर श्रीकृष्णका ध्यान नहीं किया था। इसीसे वह उनको नहीं प्राप्त हुआ। अतएव जिस किसी उपायसे हो कृष्णमें मन लगाना चाहिये। शिशुपाल और दन्तवक्र दोनों ही विष्णुके पार्षद थे। वे ब्राह्मणोंके शापसे पदच्युत हो गये थे। युधिष्ठिरने पूछा कि जिस पापने विष्णुके भक्तोंपर आक्रमण किया, वह कैसा और किसका था। हरिके अनन्य भक्तोंका फिर जन्म होनेकी बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती। जो हो, आप मुझसे यह कथा कहिये। देवर्षिने कहा—हे राजन्! एक समय ब्रह्माके पुत्र सनन्दन आदि ऋषिगण त्रिभुवनमें घूमते-घूमते इच्छानुसार विष्णुलोकमें जा उपस्थित हुए। वे सर्वप्रथम उत्पन्न मरीचि आदि ऋषियोंके भी अग्रज थे, किन्तु देखनेमें पाँच-छः वर्षके बालकोंके समान दिगम्बर रहते थे। विष्णुपुरीके द्वारपाल जय और विजयने मुनियोंको नंगे-धड़ंगे पाँच-छः वर्षके बालककी तरह देखकर भीतर प्रवेश करनेसे रोका। इससे उन ब्रह्मर्षियोंने क्रुद्ध होकर दोनोंको शाप दिया कि तुमलोग अहंकारी हो। अतएव यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो। तुम लोग इस स्थानसे भ्रष्ट होकर शीघ्र ही दुष्ट असुर योनिमें जन्म लो। शाप देनेपर जब वे दोनों द्वारपाल अपने स्थानसे नीचे गिरने लगे, तब दयालु ऋषियोंने दया करके फिर कहा कि तुम तीन जन्मके बाद फिर अपने स्थानको प्राप्त हो जाओगे। हे महाराज! वे ही दोनों आकर दैत्यदानववन्दित दितिके पुत्र हुए। उनमें हिरण्यकशिपु बड़ा था और हिरण्याक्ष छोटा। श्रीहरिने नृसिंह अवतार लेकर हिरण्यकशिपुका वध किया और हिरण्याक्षको पृथ्वीका उद्धार करते समय वाराह अवतारमें

मारा। भगवानने नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुको क्यों मारा—यह कथा मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। हिरण्यकशिपुने जब देखा कि मेरा पुत्र प्रह्लाद भगवद्भक्त हो गया है तो उसने प्रह्लादको मार डालनेके लिए अनेक उपाय किये और उसे दुस्सह यन्त्रणाएँ दीं। किन्तु रागद्वेषादि रहित प्रह्लाद सर्वथा ब्रह्मदर्शी थे। इस कारण विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करनेपर भी उनका प्राणसंहार नहीं किया जा सका। हे राजन्! इन दोनों पार्षदोंने दूसरे जन्ममें विश्रवा मुनिके वीर्य और केशिनीके गर्भसे जन्म लिया। उस जन्ममें वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण नामसे प्रसिद्ध हुए और सब लोगोंको पीड़ित करने लगे। तब भगवान विष्णुने रामावतार लेकर शापसे मुक्त करनेके लिए उन दोनोंको मारा। हे महाराज! मार्कण्डेय मुनिके मुँहसे तुम श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुनोगे। इसके बाद वे ही दोनों हरिपार्षद तीसरे जन्ममें इस बार तुम्हारी मौसीके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए और श्रीकृष्णके चक्रसे नष्ट और शापमुक्त होकर पुनः भगवानके पास चले गये। युधिष्ठिरने पूछा—हे भगवन्! हिरण्यकशिपुने अपने महात्मा हरिभक्त पुत्र प्रह्लादसे विद्वेष क्यों किया? यह कथा मुझे सुनाइये।

द्वितीय अध्याय

साधुजनोंका दमन करनेके लिए दानवोंको हिरण्यकशिपुका उपदेश

नारदने कहा—हे राजन्! भगवानने देवताओंका मङ्गल करनेके लिए वाराह अवतार लेकर हिरण्यकशिपुके भाई हिरण्याक्षको मार डाला तो हिरण्यकशिपु क्रोध और शोकसे सन्तप्त हो

बादको उसने भीषण मूर्ति धारण करके क्रोधके आवेशमें सभाके बीच अपने अनुचरोंसे कहा—हे दैत्य और दानवगण! तुम सभी मेरी बातें सुनो और फिर जो कर्तव्य समझो, उसके अनुसार शीघ्र काम करो। भगवान हरि सर्वत्र समदर्शी कहलाते हैं, किन्तु उन्होंने उपासना करनेके कारण हमारे शत्रु देवताओंकी सहायता करके मेरे सहोदर भ्राताका वध किया है। अतएव मैं अपने इसी त्रिशूलसे उनका मस्तक काटकर उनके गरम रुधिरसे अपने भाईका तर्पण करूँगा। ऐसा होनेसे मेरे मनकी व्यथा दूर हो जायगी। मैं जानता हूँ कि वृक्षकी जड़ काटनेपर जिस तरह शाखाएँ सूख जाती हैं, उसी तरह उन कपटशत्रु हरिके नष्ट हो जानेपर देवता भी स्वयं नष्ट हो जायँगे। सो पृथ्वीमण्डलमें जाकर तुम लोग तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, व्रत और दान आदि सत्कर्म करनेवाले मनुष्योंके संहारकार्यमें लग जाओ। जहाँ-जहाँ गौ, ब्राह्मण, वेद और वेदविहित आश्रमोचित कर्म होते देखो, उसी नगर और जनपदमें जाकर उसको जलाकर नष्ट कर दो। हे महाराज! दानव अपने प्रभुकी यह आज्ञा पाकर तदनुसार प्रजाके संहारमें प्रवृत्त हो गये। उनके अत्याचारसे पुर, ग्राम, व्रज, उद्यान आदि सर्वत्र ऊधम मच गया और लोग व्याकुल हो उठे। इसके बाद हिरण्यकशिपुने अपनी अनुजवधूको विविध प्रकारसे समझाकर कहा—इस तरह शोकाकुल होना उचित नहीं है। क्योंकि शोक करनेका कोई कारण नहीं है। किसीके मरनेपर संसारी लोग व्यर्थ शोक करते हैं। इसके उदाहरणमें पण्डित लोग एक इतिहास वर्णन करते हैं। मैं तुमको वह इतिहास सुनाता हूँ, सुनो।

उशीनर देशमें सुयज्ञ नामका एक विख्यात राजा था। शत्रुओंने उसे युद्धमें मार डाला। जातिवाले उसके शरीरको घेरकर रोने लगे। राजाका हृदय बाण लगनेसे विदीर्ण हो गया और उससे रुधिर बह रहा था। युद्धभूमिकी धूलिसे उसके शरीरकी शोभा नष्ट हो गयी थी। राजाकी मृत्युका समाचार सुनकर उसकी रानियाँ बहुत ही दुःखित हुईं। वे दोनों हाथोंसे छाती पीटने और विलाप करने लगीं। वे बोलीं—हे नाथ! निर्दय विधाताने तुम्हारी जैसी दुर्दशा की है, यह हमसे देखी नहीं जाती। हे प्रभो! हम तुम्हारे बिना कैसे जीवित रह सकती हैं। हे वीर! तुम जहाँ जा रहे हो, वहीं हमको भी लेते चलो। वहाँ भी हम तुम्हारे चरणोंकी सेवा करेंगी। रोते-कलपते सूर्यास्त हो गया, पर रानियोंने पतिके शरीरको जलाने नहीं दिया। उस समय यमराज रोनेकी ध्वनि सुनकर बालकका रूप धारण करके स्वयं वहाँ आये और उन लोगोंके सामने कहने लगे। यमराजने कहा—अहो! ये सब लोग मुझसे अधिक अवस्थाके हैं और लोगोंके नित्य उत्पन्न होने और मरनेका चरित्र देखते रहते हैं, किन्तु इनका मोह नहीं मिटता। यह मनुष्य जहाँसे आया, वहीं चला गया। इसके लिए सोच करना व्यर्थ है। इन सबको भी एक दिन मरना ही होगा। हे अबलाओं! यह चराचर जगत् उसी अव्यय परमेश्वरकी क्रीड़ा सामग्री है, जो अपनी इच्छाके अनुसार विश्वको उत्पन्न करके उसका पालन और संहार करनेमें समर्थ है। ईश्वर जिसकी रक्षा करता है, वह कहीं भी पड़ा रहे तो नष्ट नहीं हो सकता और ईश्वरके नष्ट करनेसे कहीं भी कोई नहीं बच सकता। समय पाकर

प्राणियोंका शरीर नष्ट होता है। देवताओंके भी शरीर इसी प्रकार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं। किन्तु आत्माका कभी नाश नहीं नहीं होता। हे मूढ़ो! तुम लोगोंके प्रभु जो भगवान हैं, उन्होंने भी अवतार लेकर शरीर त्याग किया था। ऐसी दशामें शोक क्यों करें। मेरा-मेरा कहकर अभिमान करना भी मिथ्या है। ज्ञानी व्यक्ति इस नश्वर शरीरके लिए शोक नहीं करते। इस सम्बन्धमें मैं एक कहानी कहता हूँ, सुनो। परमेश्वर द्वारा निर्मित पक्षियोंका नाशक एक व्याध जहाँ-जहाँ पक्षी रहते थे, उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें दानेका लालच दे और जाल फैलाकर पक्षियोंको पकड़ा करता था। एक दिन उस व्याधने एक कुलिङ्ग पक्षीके जोड़ेको इधर-उधर विचरते देखा। उनमें उस पक्षीकी स्त्री दानेके लोभसे व्याधके जालमें जाकर फँस गयी। प्रियतमा स्त्रीको जालमें आबद्ध देखकर कुलिङ्ग अपनी स्त्रीके लिए इस प्रकार विलाप करने लगा—अहो! विधाता कैसा निष्ठुर है। यह स्त्री मेरा आधा शरीर है। इसका वियोग होनेसे मेरा आधा शरीर कैसे जीवित रह सकेगा? दैव मुझे इसी समय ले जाय तो अच्छा हो। मेरे बच्चोंको अभी पर नहीं निकले हैं। वे बिना माताके हो गये हैं। मातृहीन बच्चोंका पालन मैं कैसे करूँगा! बच्चे अभी तक घोसलेमें अपनी माताके आनेकी राह देख रहे हैं। हे अबलागण! कुलिङ्ग इस प्रकार विलाप कर ही रहा था कि उसी समय चुपचाप आकर व्याधने उस पर भी बाण चला दिया। वह पक्षी मर गया। तुम लोग भी उसी पक्षीके समान निर्बोध हो। अपनी अवश्यम्भावी मृत्युकी ओर नहीं देख रही हो। इस प्रकार एक सौ वर्ष तक

शोक करते रहनेपर भी तुम लोग अपने स्वामी सुयज्ञको न पा सकोगी। बालकरूपधारी यमराज यह कथा सुनाकर अन्तर्धान हो गये। इसके बाद सुयज्ञके कुटुम्बियोंने शोक छोड़कर श्राद्धादि क्रिया सम्पन्न की। इस जगत्‌में अपना या पराया कोई नहीं है। सो तुम लोगोंको शोक करना उचित नहीं हैं। नारदजीने कहा—अपनी वधूके साथ दितिने दैत्यपतिके ये वाक्य सुने तो पुत्रशोक त्यागकर आत्मतत्त्वमें मन लगाया।

तृतीय अध्याय

हिरण्यकशिपुका उग्र तप देखकर ब्रह्माका आगमन और वरप्रदान

नारदजीने कहा—हे राजन्! हिरण्यकशिपु अजेय, अजर, अमर और अद्वितीय राजा बननेकी वासनासे मन्दराचलकी कन्दरामें चला गया। वहाँ ऊर्ध्व बाहु करके आकाशकी ओर दृष्टि किये केवल पैरके अंगूठेके सहारे खड़े-खड़े घोर तप करने लगा। उस समय देवता लोग कुछ दिनोंतक अभय और निश्चिन्त रहकर बादको उसकी कठोर तपस्याके प्रभावसे व्याकुल हो उठे और सन्तप्त दशामें स्वर्गलोक छोड़कर शान्तिस्थापनके उद्देश्यसे ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास गये। देवताओंने ब्रह्माजीसे निवेदन किया—हे देवदेव! हे जगत्‌के स्वामी! शान्तिका उपाय कीजिये। हिरण्यकशिपु तप द्वारा आपकी ही तरह श्रेष्ठ आसनपर बैठना चाहता है। हे ब्रह्मन्! आपका स्थान उस दैत्यको मिल जायगा तो घोर अनिष्ट होगा। हे राजन्! देवताओंके इस प्रकार निवेदन करनेपर भगवान ब्रह्माजी भृगु-दक्ष आदि मुनियों-

के साथ दैत्येश्वर हिरण्यकशिपुके आश्रममें गये। वहाँ जाकर पहले हिरण्यकशिपुको उन लोगोंने नहीं देख पाया। वाल्मीक (बाँबी), तृण और कीचड़से भरी बाँसकी झाड़ीमें रहकर वह ढक गया था और असंख्य चींटियाँ उसकी त्वचा, मांस, मेदा और रक्त खा रही थीं। फिर विशेषरूपसे लक्ष्य करनेपर मेघमालामें छिपे सूर्यके समान तेजस्वी उस दैत्यको उन लोगोंने देखा। इस प्रकार उसे पहिचानकर ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—हे कश्यपनन्दन! उठो, उठो। तुम्हारा तप सिद्ध हो गया है। मैं तुमको वर देनेके लिए आया हूँ। इच्छानुसार वर माँगो। नारदने कहा—हे युधिष्ठिर! भगवान ब्रह्माने इतना कहकर हिरण्यकशिपुके शरीरपर अमोघ शक्तिवाले दिव्य कमण्डलुका जल छिड़क दिया। जलका स्पर्श होते ही वह दैत्यपति सर्वाङ्गसम्पन्न बल और तेजसे परिपूर्ण युवा होकर उठ खड़ा हुआ। सामने ब्रह्माजीको देखकर आनन्दाश्रुसे उसके नेत्र भर गये और शरीरमें रोमांच हो आया। तदनन्तर उसने भक्तिभावसे ब्रह्माजीकी स्तुति की। इसके बाद उसने कहा—हे वरदानियोंमें उत्तम! यदि आप मेरी इच्छाके अनुसार वर देनेको उद्यत हैं तो यह वर दीजिये कि आपकी सृष्टिमें उत्पन्न प्राणियोंसे मेरी मृत्यु न हो। भीतर, बाहर, दिनको, रातको, शस्त्रोंसे, पृथ्वीपर, आकाशमें, मृगसे या मनुष्यसे, मृत या जीवितसे मेरी मृत्यु न हो। तप और योगके प्रभावसे सम्पन्न व्यक्तियोंको जो प्राप्त हैं, वे कभी नष्ट न होनेवाले अणिमादिक ऐश्वर्य भी मुझको दीजिये।

—o—

चतुर्थ अध्याय

वर पाकर हिरण्यकशिपु द्वारा लोकपालोंपर अत्याचार

नारदजी बोले—दैत्यराजको वाञ्छित वर देकर ब्रह्मा अपने स्थानको चले गये। इस प्रकार दुर्लभ वर पाकर हिरण्यकशिपु घर आया और विष्णुको अपने भाईका हत्यारा मानकर उनसे द्वेष करने लगा। तदनन्तर उस महाअसुरने सम्पूर्ण दिशा, तीनों लोक, देवता, दैत्य, नरपति, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितृपति, मनु, यज्ञ, राक्षस, पिशाचपति, प्रेतपति, भूतपति और अन्यान्य सब प्राणियोंके अधिपतियोंको जीतकर अपने वशमें कर लिया। इस प्रकार विश्वविजयी होकर उसने बलपूर्वक लोकपालोंके लोकोंको छीन लिया। हे राजन्! वह दैत्यराज बहुत ही उग्र गन्धवाली मदिरा पीकर सदैव मत्त रहता था। उसके नेत्र लाल-लाल और भयानक दिखाई पड़ते थे। वह तपस्या और योगबल द्वारा प्राप्त तेजसे परिपूर्ण था। अतएव ब्रह्मा, विष्णु और शिवके सिवा सब लोकपाल अपने हाथसे भेंट ले जाकर उसको अर्पण करते थे। हे राजन्! लोकपाल और अन्य सब लोग उसके उग्र दण्डसे घबड़ाकर और कहीं किसीको अपना रक्षक न देखकर भगवान हृषीकेशकी शरणमें गये। उन्होंने विनयपूर्वक भगवानको प्रणाम किया। फिर वे लोग एकाग्र मनसे उन्हीं हृषीकेश भगवानकी उपासना करने लगे। कुछ दिनोंके बाद साधुओंको अभय देनेवाली देववाणी सुनाई पड़ी। वह देववाणी यह थी—हे देवश्रेष्ठगण! डरो नहीं। तुम्हारा मङ्गल होगा। तुम लोग समयकी प्रतीक्षा करो। यद्यपि ब्रह्मासे दुर्लभ वर पाकर

हिरण्यकशिपु अपनेको अजर, अमर और अजेय मान रहा है, तथापि जब वह अपने प्रिय पुत्र प्रह्लादसे द्रोह करेगा, तब मैं उसे अवश्य ही मारूँगा। नारदजी बोले—हे राजन्! लोकगुरु भगवान विष्णुके इस प्रकार कहनेपर स्वर्गवासी देवता स्वस्थ होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। हे राजन्! हिरण्यकशिपुके चार पुत्रोंमें प्रह्लाद कनिष्ठ थे, किन्तु गुणोंमें सबसे ज्येष्ठ थे। वे जितेन्द्रिय, सुशील और सबके सुहृद् थे। अहंकारका लेशमात्र भी उनमें नहीं था। वे भगवान हृषीकेशके परम उपासक थे। ऐसे महाभाग्यशाली, महात्मा और महाभागवत पुत्रसे भी हिरण्यकशिपु द्रोह करने लगा।

पञ्चम अध्याय

गुरुका उपदेश अमान्य करके प्रह्लाद द्वारा भगवानकी स्तुति और प्रह्लादके प्राण लेनेके लिए हिरण्यकशिपुका विफल उद्योग

नारदजी बोले—हे राजन्! शुक्राचार्यजीको असुरोंने अपना पुरोहित बनाया था। अतः हिरण्यकशिपुके भी पुरोहित वे ही थे। शुक्राचार्यजीके शण्डामर्क नामक दो पुत्र हिरण्यकशिपुके भवनके पास ही रहते थे। दैत्यराजने अपने पुत्र प्रह्लादको पढ़नेके लिए उनके पास भेज दिया। वे ब्राह्मण अन्यान्य असुर बालकोंके साथ प्रह्लादको भी पढ़ाने लगे। गुरु जो कुछ कहते थे, उसे प्रह्लाद सुन लेते थे और फिर उसे सीखकर गुरुको सुना देते थे। किन्तु यह अपना है, यह पराया है—इस असत् आग्रहसे युक्त पाठ उनको अच्छा नहीं लगता था। प्रह्लाद अरुचिकर पाठपर ध्यान ही नहीं

देते थे। हे युधिष्ठिर ! एक दिन दैत्यराज हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाया और गोदमें लेकर पूछा—बेटा प्रह्लाद ! तुमने किस वस्तुको उत्तम समझा है, मुझे बताओ—मैं सुनना चाहता हूँ। प्रह्लादने कहा—पिताजी ! मायामोहरूपी अन्धकूपके सदृश गृहको त्याग तथा वनमें जाकर भगवान हरिका आश्रय ग्रहण करना ही मैं उत्तम समझता हूँ। हे राजन् ! पुत्रके मुखसे अपने परम वैरी विष्णुकी प्रशंसा सुनकर हिरण्यकशिपु हँसने लगा और बोला—बालकोंकी बुद्धि औरोंके बहकानेसे भ्रष्ट हो जाती है। इस बालकको फिर गुरुके यहाँ ले जाओ। पुरोहित ब्राह्मण यत्नपूर्वक इसकी देख-रेख करें। कपट वेषधारी वैष्णव इसको फिर न बहका सकें, इसका ध्यान रखना होगा। इसके बाद दैत्योंने प्रह्लादको फिर गुरुजीके पास पहुँचाया और उनको दैत्यराजका आदेश सुना दिया। तब शण्डामर्क पुरोहितने प्रह्लादको सान्त्वनापूर्ण कोमल वचनोंसे कहा—हे वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो। किसने तुमको ऐसी उलटी बुद्धि दी है ? यह बातें तुम अपने ही विचारसे कहते हो या किसीने तुमको सिखाया है ? ठीक-ठीक बताओ। किन्तु वे कुछ नहीं बोले। प्रह्लादको गुरुजी पीटते थे, डपटते थे, धमकियाँ देते थे, किन्तु हरिनामके सिवा प्रह्लाद और किसी बातमें मन ही नहीं लगाते थे। तब आचार्य तर्जन आदि अनेक उपायोंसे भय दिखाकर धर्म-अर्थ-कामदायक शास्त्र पढ़ाने लगे। गुरुजीने जब जाना कि यह बालक जानने योग्य साम-दाम आदि राजनीतिके चारों उपाय जान गया है, तब उनको राजभवन ले गये। वहाँ प्रह्लादने चरणोंपर गिरकर पिताको प्रणाम किया। दैत्यराजने

आशीर्वाद दिये और बहुत देरतक पुत्रको हृदयसे लगाकर आनन्दित हुआ। फिर गोदमें ले और माथा सूँघकर प्रह्लादसे पूछा—वत्स! इतने दिनोंतक गुरुके यहाँ रहकर तुमने शिक्षा पायी है, उसमें जो उत्तम विषय सीखा हो सो हमसे कहो। प्रह्लादने कहा—हे पिताजी! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरणसेवा, पूजा, वन्दना, दास्य-भाव, सखाभाव तथा आत्मसमर्पण—ये भगवान विष्णुकी नवधा भक्ति है। पढ़ा-लिखा व्यक्ति यदि इसे करे और निष्काम होकर कृष्णार्पण कर दे तो मेरी समझमें यही सर्वोत्तम शिक्षा है। पुत्रके ये वचन सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधसे लाल हो गया। वह गुरुपुत्रसे कहने लगा—अरे दुर्म्मति ब्रह्मबन्धो! यह क्या है? मेरा निरादर करके मेरे विपक्ष (शत्रु) का पक्ष लेकर तूने बालकको इस प्रकार असार विषयकी शिक्षा दी है? दैत्यराजने इस प्रकार तिरस्कार किया तो काँपते हुए शण्डामर्कने कहा—हे दैत्यराज! आपका पुत्र जो कुछ कहता है, वह न मेरा सिखाया है और न किसी दूसरेका सिखाया है। इसकी यह बुद्धि स्वतः सिद्ध है। अतएव क्रोध शान्त कीजिये और हमको व्यर्थ दोष न लगाइये। हे राजन्! आप इन्द्रशत्रु हैं। आपको इस दीन ब्राह्मणपर क्रोध करना उचित नहीं है। नारदजीने कहा—गुरुपुत्रके इस प्रकार उत्तर देनेपर दैत्यराजने क्रुद्ध होकर पुनः अपने पुत्रसे पूछा—अरे दुष्ट! यदि गुरुके उपदेशसे तेरी यह कुबुद्धि नहीं हुई है तो बता कैसे हुई? प्रह्लादने कहा—केवल गुरुके उपदेशसे या किसीके सिखानेसे भगवानके चरणोंमें भक्ति नहीं होती। देखिये, विषयोंमें आसक्त प्राणी गुरुसे उपदेश पाकर भी अज्ञान अन्धकारमें पंथ

नहीं देख सकते। किन्तु यदि एक बार भगवानके चरणकमलकी प्राप्ति हो जाय तो फिर संसारके सभी बन्धन दूर हो जाते हैं। यह बात सुनकर हिरण्यकशिपुने क्रोधान्ध होकर प्रह्लादको अपनी गोदसे उतार कर पटक दिया और क्रोधके आवेशमें आँखें लाल करके अनेक प्रकारके गर्जन-तर्जन, तिरस्कार और आक्षेप करने लगा। दैत्यराजने जब अच्छी तरह समझ लिया कि पुत्र अतिशय रामभक्त हो गया है तो उसने अपने अनुचरोंसे कहा कि इसे मार डालो। मेरे सामनेसे इसे दूर कर दो। आदेश पाते ही असुरोंने शूल आदिसे प्रहार करना आरम्भ किया। किन्तु प्रह्लाद निर्विकार और सर्वशक्तिमान श्रीहरिका ध्यान कर रहे थे, इस कारण उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। हे युधिष्ठिर! जब असुरोंका उद्योग विफल हो गया, तब हिरण्यकशिपुको और भी शंका हुई और वह हठके साथ प्रह्लादको मारनेके लिए अनेकानेक उपाय करने लगा। उसने गजराजोंको प्रह्लादपर छोड़ दिया। बड़े-बड़े विषधर सर्पोंसे कटवानेका यत्न किया। जादू-टोने कराये। पर्वतके ऊँचे शिखरसे नीचे गिरा दिया। मायाओंसे मारनेका उद्योग किया। अंधेरी कोठरीमें बन्द करके उसमें जहरीला धुआँ भराया। भोजन बन्द कर दिया। हिम, वायु, अग्नि और जलसे तथा पर्वतोंके नीचे दबाकर मारना चाहा। किन्तु हिरण्यकशिपु अपने निरपराध पुत्रको नहीं मार सका। ऐसी दशामें दैत्यराजको अतिशय चिन्ता हुई। उसने सोचा—इसका प्रभाव अप्रमेय है। यह अमर प्रतीत हो रहा है। इसके साथ शत्रुता करनेसे कहीं मेरी ही मृत्यु न हो जाय। इस प्रकारकी चिन्तासे हिरण्यकशिपुके

मुखकी कान्ति कुछ फीकी पड़ गयी और उसने अपना मुँह नीचे कर लिया। इसके बाद दैत्यगुरुके पुत्र शण्डामर्कने दैत्यराजके पास जाकर एकान्तमें कहा—हे प्रभो! आपने अकेले तीनों लोक जीत लिये हैं। तब आप किस कारण इतने चिन्तित हो रहे हैं। जबतक आपके गुरु शुक्राचार्यजी नहीं आते, तबतक इसे वरुणके पाशोंसे बाँधकर रखिये, जिससे कहीं भाग न जाय। तबतक इसकी अवस्था भी अधिक हो जायगी। मनुष्यकी बुद्धि अवस्था और गुरुसेवासे बदल जाती है। गुरुपुत्रके कथनको हिरण्यकशिपुने मान लिया और तदनुसार व्यवस्था कर दी। हे राजन्! इसके बाद शण्डामर्क प्रह्लादको धर्म, अर्थ और कामकी शिक्षा देने लगे। एक दिन आचार्य अपने घरका कुछ काम करने चले गये तो लड़कोंको खेलनेकी छुट्टी मिली। प्रह्लादजी बालकोंके निकट जाकर हँसते-हँसते उपदेश देने लगे और वे सब बालक प्रह्लादजीको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये।

षष्ठ अध्याय

प्रह्लादका दैत्यबालकोंको धर्मोपदेश

प्रह्लादजी बोले—भाइयो! मनुष्य जन्म पाकर धर्मका आचरण करना मुख्य कर्तव्य है। कुमार अवस्थामें ही मानवजन्ममें दुर्लभ भागवत धर्मका आचरण करना चाहिये। हे दैत्यतनय! इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न सांसारिक सुख तो सभी शरीरोंमें भाग्यवश अनायास ही प्राप्त होते हैं। उनके लिए प्रयास करना अनावश्यक है। क्योंकि उनसे व्यर्थ ही आयु नष्ट होती है। पुरुषकी परमायु

केवल एक सौ वर्षमात्र है। उसमेंसे आधी आयु रात्रिमें सोनेसे बीत जाती है। बाल्यकाल और कौमार अवस्थामें खेल-कूद करके ही बीस वर्ष बीत जाते हैं। वृद्धावस्थामें शरीर अकर्मण्य हो जाता है। इस तरह और बीस वर्ष व्यर्थ चले जाते हैं। युवावस्थामें काम और मोहके वशमें लोग रहते हैं। इस कारण गृहमें आसक्त रहनेसे मानवको मुक्ति नहीं मिलती। धनकी लालसा इतनी अधिक रहती है कि अपने प्राणोंको भी लोग तुच्छ समझते हैं। धन तुच्छ वस्तु है। तुम देखते ही हो कि चोर, सेवक और वणिकगण प्राणहानि स्वीकार करके भी धनका उपार्जन करते हैं। प्रियतमा स्त्रीका प्रणय कौन छोड़ सकता है। पिता-माता, सहोदर पुत्र-कन्या आदि किसीको भी कोई नहीं छोड़ सकता। कुछ कीड़े जिस तरह अपने रहनेके लिए घर बनाते हैं, किन्तु बाहर निकलनेके लिए द्वार नहीं बनाते। उसी प्रकार धन-जनमें जिनका मन आसक्त है, वे लोभवश निरन्तर कामोंमें व्यस्त रहते हैं। मैथुन और जीभके सुखको ही वे भारी सुख मान लेते हैं। हे असुरतनय! तुम असुररूप सब दैत्योंका संसर्ग त्यागकर आदि देव नारायणकी शरणमें जाओ। वे ही वांछनीय मोक्षस्वरूप हैं। केवल अनुभवस्वरूप आनन्द ही उनका स्वरूप है। हे बान्धवगण! तुम लोग आसुर भाव त्यागकर सब प्राणियोंसे दया और मित्रताका बर्ताव करो। इसीसे भगवान विष्णु प्रसन्न होंगे। उन आदि पुरुष अनन्तके सन्तुष्ट होनेपर कोई वस्तु अलभ्य नहीं रह जाती। हम निरन्तर उनके नाम और उनके श्रीचरणोंके अमृतका पान करते हैं। हे भाइयों! धर्म, अर्थ, काम और आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्कशास्त्र,

दण्डनीति और विविध जीविका आदि वेदप्रतिपादित विषय यदि अन्तर्यामी परमपुरुषको आत्मसमर्पण करनेके साधन हैं तो मेरी समझमें सत् हैं, अन्यथा सब असत् हैं। मैं तुमसे कोई नयी बात कह रहा हूँ, ऐसा मत समझना। पहले भगवान नारायणने नारदजीको भी यही ज्ञानोपदेश दिया था। तुम लोग ऐसा मत समझना कि तुम नारदजीके समान नहीं हो। जो कोई भी उन भगवानका भक्त है, उसको शुद्ध ज्ञान मिलता है। केवल उत्तम पुरुषोंको ही यह मिलेगा, ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने यह भागवत धर्म देवर्षि नारदसे सीखा था। यह सुनकर दैत्यबालकोंने कहा—तुम कब नारदके पास गये थे? इन दोनों गुरुपुत्रोंके सिवा और गुरुको तो तुम नहीं जानते और हमलोग भी नहीं जानते। जब हम और तुम बहुत छोटे थे, तभीसे ये हमारे शिक्षक हैं। हे प्रह्लाद! यदि हो सके तो हमारा यह संशय दूर करो।

सप्तम अध्याय

गर्भमें रहनेके समय नारदका उपदेश सुननेकी कथा सुनाकर प्रह्लाद द्वारा दैत्यबालकोंका संशय निवारण

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! दैत्यबालकोंके पूछनेपर महाभागवत प्रह्लादजी मुसकुराकर मेरे कहे हुए वाक्य स्मरण करके कहने लगे। प्रह्लादजी बोले—हे भाइयो! मेरे पिता हिरण्यकशिपु जब तप करनेके लिए मन्दराचलको चले गये, तब इन्द्रादि देवता प्रसन्न होकर दानवोंपर चढ़ाई करनेकी इच्छासे युद्धका उद्योग करने लगे। युद्धमें असुरोंका विनाश होने लगा तो वे लोग भय-

भीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गये। सब अपने-अपने प्राण बचानेके लिए स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, भवन, पशु और गृहस्थीका साधन छोड़कर भागे। देवताओंने हिरण्यकशिपुके भवनको धूलिमें मिला दिया और इन्द्रने मेरी माता राजरानीको पकड़ लिया। मेरी माताको वे लेकर स्वर्ग चले। भाग्यवश मार्गमें नारदजी मिल गये। उन्होंने यह देखकर इन्द्रसे कहा—हे सुरेन्द्र! इस निरपराध स्त्रीको ले जाना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे देवेन्द्र! इस अबलाका कोई अपराध नहीं है। हे देवराज! इस सती और परनारीको छोड़ दो। नारदके वचन सुनकर इन्द्रने कहा—हे भगवन्! इसके गर्भमें दैत्यराजका दुःसह वीर्य है। अतएव जब तक प्रसव नहीं होगा, तब तक इसे अपने घर रखूँगा। पुत्र होनेपर उसे मारकर इसको छोड़ दूँगा। नारदजी बोले—हे देवराज! इसके गर्भमें जो बालक है वह निष्पाप, महाभागवत, अपने गुणोंसे महान् और विष्णुभगवानका अनुचर है। इस कारण तुम इसको नहीं मार सकते। इन्द्रने देवर्षिके वचन मानकर मेरी माताको वहीं छोड़ दिया। इसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममें ले गये और आश्वासन देकर बोले—जब तक तुम्हारा पति न आवे, तब तक तुम यहीं रहो। मेरी माताने यह स्वीकार कर लिया और जब तक दैत्यपति तप समाप्त करके नहीं लौटे, तब तक वहीं रहीं। देवर्षिके समीप उनको कोई भय नहीं था। मेरी माताने इच्छा की कि पतिके आ जानेपर ही सन्तानका प्रसव होना अच्छा होगा और भली भाँति उस शिशुकी रक्षा हो सकेगी। इस कारण इच्छाप्रसवकी कामनासे भक्तिपूर्वक वे देवर्षिकी सेवा करने

लगीं। समर्थ और दयालु ऋषिने उसी अवसरपर मेरे उद्देश्यसे मेरी माताको धर्मके तत्त्वका और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया। किन्तु बहुत अधिक समय बीत जानेसे और स्त्री जाति होनेके कारण नारदजीका वह उपदेश माता भूल गयीं, किन्तु ऋषिके अनुग्रहसे मैं अब तक नहीं भूला हूँ। हे मित्रगण! तुम लोग यदि मेरे वाक्योंपर श्रद्धा करो तो मेरे समान तुमको भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आत्मा नित्य, अव्यय, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, सर्वाश्रय, विकारशून्य, आत्मदर्शी, सबका कारण, व्यापक, सङ्गहीन और अनावृत अर्थात् पूर्ण है। 'मैं हूँ' 'यह मेरा है' यह भाव मिथ्या है। इस भावको विद्वान् पुरुष छोड़ दे। जिस तरह सुवर्णकणयुक्त पत्थरों द्वारा अग्निसंयोग आदि उपायोंसे लोग स्वर्ण प्राप्त करते हैं, उसी तरह आत्माका ज्ञान रखनेवाले लोग इसी देहमें आत्मयोगके द्वारा ब्रह्मत्व प्राप्त कर लेते हैं। आत्मा मूल प्रकृतिसे भिन्न होते हुए भी सबका साक्षी है। कपिल आदि आचार्योंने ऐसा ही कहा है। हे भाइयो! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—बुद्धिकी इन तीनों वृत्तियोंका अनुभव करनेवाला तुरीय अवस्थामें स्थित और साक्षी वही परम पुरुष है और उसे योगके बलसे ही प्राप्त कर सकते हैं। अतएव तुम लोग उसी योगका अनुष्ठान करो। हे मित्रगण! अन्य अनेक उपायोंके रहते भी धर्मके अनुष्ठान द्वारा भगवानमें रति होती है। अतएव गुरुजनोंकी सेवा, भक्ति, मिली हुई वस्तुओंका समर्पण, साधु भक्तोंका संग, ईश्वरकी आराधना, भगवानकी कथामें श्रद्धा, भगवानके गुणों और कर्मोंका कीर्तन, उनके चरणकमलका ध्यान, भगवानकी मूर्तियोंका दर्शन और

पूजन, सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखना—इन सब कर्मोंके द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या आदिको वशमें करके ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। इससे ही ईश्वरमें रति होती है। भगवानके अनुपम कर्म, गुण और पराक्रमकी कथा सुनकर जब मनुष्यके रोम खड़े हो जाते हैं और आनन्दके आँसू गिरने लगते हैं और वह गद्‌गद् स्वरसे नाचते-गाते हुए आनन्दकी ध्वनि करता है, जब पागलोंकी भाँति कभी हँसता, कभी रोता, कभी ध्यान करता, कभी छोटे-बड़ोंकी वन्दना करता और कभी हे हरे! हे जगन्नाथ! हे नारायण! कहता है, तब सब बन्धनोंसे मुक्त होकर वह भगवानको प्राप्त हो जाता है। हे असुरनन्दनगण! सुर, असुर, मनुष्य, यक्ष और गन्धर्व कोई भी हो, मुकुन्दके चरणोंका भजन करनेसे सभी मेरे समान भक्ति पा सकते हैं। दान, तपस्या, यज्ञ, व्रत, शुद्धि—इनसे भगवानको कोई प्रसन्न नहीं कर सकता। भगवान तो केवल विशुद्ध भक्तिसे ही सन्तुष्ट होते हैं। भक्तिके सिवा और सब विडम्बनामात्र हैं। हे दानवतनय! इसलिए सबको अपने समान जानकर सब प्राणियोंके आत्मा ईश्वर भगवान हरिकी ही भक्ति करो। यक्ष-राक्षस, स्त्री-शूद्र, व्रजवासी, नीच जातिके पशुपक्षी आदि पापी जीव भी भगवानके स्वरूप हैं। भगवानमें एकान्त भक्ति और उनको सर्वत्र देखना ही इस लोकमें पुरुषोंका परमकर्तव्य कहा गया है।

* * *

अष्टम अध्याय

भगवान नृसिंहजीके हाथों हिरण्यकशिपुका वध

नारदजी बोले—दैत्यबालकोंने गुरुके सिखाये विषयको छोड़ दिया और प्रह्लादके उपदेशको अच्छा समझकर ग्रहण कर लिया। शुक्राचार्यके पुत्र शण्डामर्क बालकोंका ऐसा रुख देखकर डर गये। उन्होंने दैत्यराजके पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। दैत्यराजने सुनते ही प्रह्लादको मार डालनेका निश्चय कर लिया। प्रह्लादने पैरोंपर गिरकर प्रार्थना की, किन्तु दैत्यराजका क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह अनेक कटु वचनोंसे पुत्रका तिरस्कार करने लगा। पिताकी कटूक्तियोंके उत्तरमें प्रह्लादने कहा—हे राजन्! भगवान ही मेरा और सबका बल है। पुत्रकी यह उक्ति सुनी तो हिरण्यकशिपु क्रोधान्ध होकर बोला—रे मन्द बुद्धि! तू मरना ही चाहता है? जिनकी मृत्यु निकट आती है, वे ही ऐसी बातें करते हैं। रे मन्दभाग्य! तूने जो मेरे सिवा दूसरा जगदीश्वर बताया, वह कहाँ है? यदि तू कहे कि वह सर्वत्र है तो इस खंभेमें क्यों नहीं दिखाई पड़ता? प्रह्लादने उस खम्भेको प्रणाम करके कहा कि खम्भेमें भी भगवान दिखाई पड़ते हैं। हिरण्यकशिपु गालियाँ देता हुआ बोला—तू मेरी निन्दा कर रहा है। इसी समय मैं तेरा सिर काटता हूँ। तेरा रक्षक आकर तेरी रक्षा करे। इस प्रकार बारंबार दुर्वचन कहकर महाभागवत पुत्रको पीड़ा पहुँचाते हुए उस महादैत्यने खड्ग हाथमें लिया और श्रेष्ठ सिंहासनसे उठकर बड़े वेगसे उसी खम्भेमें एक घूँसा मारा। इससे उस खम्भेमें बड़े भयानक शब्द हुआ। स्वर्गमें देवताओं तकने उस

शब्दको सुना। देवताओंने सोचा कि आज हमारे लोकोंका प्रलय होगा। उधर प्रह्लादने भगवानकी मूर्ति देख ली। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान उसी खम्भेसे अपूर्व रूपमें प्रकट हुए। उनका आधा शरीर मनुष्यका और आधा सिंहका था। हिरण्यकशिपु शब्द सुनकर डर गया। चारों तरफ देखते-देखते उसने जब नरसिंह भगवानको देखा तो बहुत आश्चर्यमें पड़ गया। वह बोला—अरे! आश्चर्य है। यह कौन जन्तु है! सिंह भी नहीं है और मनुष्य भी नहीं है। फिर उसने स्थिर किया कि यह सिंह ही है। हिरण्यकशिपु इस प्रकार उन भीषण रूपधारी नृसिंहके विषयमें विचार कर ही रहा था कि उसी समय नृसिंह भगवान उसके सम्मुख आ गये। उनके नेत्र तपे हुए सोनेके समान लाल-लाल और बड़े भयानक थे। उनकी गरदनके बाल हिल रहे थे। कराल दाँत खड्गके समान दीखते थे। जीभ छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण थी। मुख और नासिका पर्वतकन्दराके समान जान पड़ते थे। गरदन नाटी और मोटी थी। वक्षःस्थल विस्तृत और उदर अत्यन्त कृश था। शरीरके सब भागोंमें चन्द्रकिरण तुल्य रोम व्याप्त थे। उनके नख अस्त्र सदृश थे। हिरण्यकशिपुने मन ही मन समझ लिया कि साक्षात् भगवान ही मुझे मारने आये हैं, किन्तु इससे मेरा क्या अनिष्ट होगा? वह इतना सोचकर नृसिंहजी पर खड्ग लेकर लपका। किन्तु वह असुर उसी प्रकार नृसिंहजीके असीम तेजमें पड़कर अलक्ष्य हो गया, जैसे अग्निमें गिरकर पतङ्ग जल जाते हैं। हे युधिष्ठिर! जिन्होंने सृष्टिके आरम्भमें अपने तेज द्वारा प्रलयकालीन अन्धकारको पी लिया था, उन्हीं सत्त्वप्रकाशक

हरिके तेजमें पड़कर उस तमोमय असुरका अदृश्य हो जाना कोई विचित्र बात नहीं थी। तदनन्तर वह दैत्य अत्यन्त कुपित होकर नृसिंहजीपर गदाके प्रहारका उपक्रम करने लगा। किन्तु जैसे गरुड़ महासर्पको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान गदाधरने उस दानवको पकड़ लिया। उस दानवने किसी प्रकार हरिके हाथसे निकलकर फिर भगवानपर आक्रमण किया। भगवानने उसे फिर पकड़ लिया और वह छूटनेके लिए छटपटाने लगा। किन्तु भगवानने उसे अपनी जाँघपर गिराकर अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसका हृदय फाड़ डाला। हे राजन्! हिरण्यकशिपुका वध करके नृसिंहभगवान आनन्दपूर्वक उसके सिंहासनपर बैठ गये। किन्तु प्रचण्डमुख और अत्यन्त तेजस्वी प्रभुके पास जानेका साहस कोई नहीं कर सका। देवाङ्गनाएँ भगवानपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं। दर्शनाभिलाषी देवताओंके विमानोंसे आकाशमण्डल भर गया। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्व गाने लगे। देवता बाजे बजाने लगे। ब्रह्मा, इन्द्र, शिव आदि देवता, ऋषि और सिद्ध आदि हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोले—दुरन्त शक्ति, विचित्रवीर्य, जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले अव्ययात्मा अनन्तको प्रणाम है। रुद्रने कहा—यह क्षुद्र असुर मारा गया। अब क्रोध शान्त करके शरणागत अपने भक्त इस दैत्यके पुत्रकी रक्षा कीजिये। इन्द्रने कहा—हे नरसिंह! आपके यज्ञभागको दैत्य हर लेते थे। आपने उनका नाश करके उसे लौटा लिया। हे प्रभो! आप अन्तर्यामी और यज्ञ-भोक्ता हैं। अतः क्रोध शान्त कीजिये। ऋषियोंने कहा—हे आदिपुरुष! आपने

इसे जो तपोबल दिया था, उसी तपको इस दैत्यने लुप्तप्राय कर दिया था। हे विघ्ननाशक! आपने उस विषका नाश करके हमें तप करनेकी अनुमति दी। आपको प्रणाम है। पितृगणने कहा—हे भगवन्! हमारे वंशज हमारा श्राद्ध करते थे, किन्तु यह दुरात्मा पिण्ड आदि बलपूर्वक खा लेता और तिलोदक पी जाता था। आपने अपने तीक्ष्ण नखोंसे इसका पेट फाड़कर हमारे भाग हमको लौटा दिये। इसलिए हम आपको नमस्कार करते हैं। सिद्धगणने कहा—हे नृसिंह! इस दुरात्माने अपने योग और तपके बलसे हमारी योगसिद्ध अणिमादि सिद्धियोंको हर लिया था। नखोंसे इस महान् अहंकारी दुरात्माका पेट फाड़कर आपने बड़ा ही अनुग्रह किया। आपको प्रणाम है। विद्याधरोंने कहा—हमारी विद्याओंको इस दानवने रोक दिया था। उसको जिन्होंने युद्धमें पशुकी भाँति मारा, उन नृसिंहरूपधारी हरिको मेरा प्रणाम है। तदनन्तर मनुओंने हाथ जोड़कर कहा—हे देव! हम आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले मनु हैं। इस दुरात्माने हमारी रची हुई धर्म-मर्यादा और वर्णाश्रम धर्मको नष्ट कर दिया था। आपने इस दुष्टका संहार किया। हे प्रभो! हम आपके किंकर क्या करें सो आज्ञा दीजिये। प्रजापतियोंने कहा—हे परेश! हम आपके उत्पन्न किये हुए प्रजापति हैं। इस दुरात्मा दैत्यकी बाधासे इतने दिनों तक हम प्रजासृष्टि नहीं कर सके। आपने इस दुष्टको मार डाला है। अब हम फिर निर्विघ्न होकर प्रजासृष्टि कर सकेंगे। आपका अवतार जगत्के मंगलके लिए ही होता है। इस प्रकार गन्धर्व-चारण-यक्ष-किम्पुरुष-वैतालिक-किन्नर और विष्णुपार्षदोंने भगवानकी स्तुति की।

नवम अध्याय

नृसिंहके कोपनिवारणार्थ प्रह्लादजी द्वारा स्तुति

नारदजी बोले—हे युधिष्ठिर! ब्रह्मा-रुद्र आदि देवता दूरसे ही स्तुति करते रहे। कुपित नृसिंह भगवानके पास नहीं जा पाये और उनको सन्तुष्ट भी नहीं कर सके। देवताओंने पहले साक्षात् लक्ष्मीको भगवान्के पास जानेके लिए कहा—पर उन्होंने ऐसा रूप कभी नहीं देखा था। इसलिए उनके समीप वे भी नहीं जा सकीं। तब ब्रह्माने अपने पास खड़े प्रह्लादसे कहा—वत्स! भगवान नृसिंह तुम्हारे पितापर कुपित हैं। तुम पास जाकर भगवानका क्रोध शान्त करो। हे राजन्! ब्रह्माके कथनानुसार प्रह्लादने भगवान्के निकट जाकर हाथ जोड़ और पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। बालकको चरणोंपर गिरा देखकर नृसिंहजीका कोप शान्त हो गया और उनको दया आ गयी। उन्होंने अपना कर-कमल प्रह्लादके सिरपर रख दिया। जिससे प्रह्लादजीके सब अशुभ दूर हो गये। उनके हृदयमें ब्रह्मज्ञानका उदय हुआ। वे हृदयमें भगवान्के चरणारविन्दका ध्यान करने लगे। फिर वे गद्गद चित्तसे भगवान्की स्तुति करने लगे। हे राजन्! ब्रह्माके कहनेसे प्रह्लादजीने जब स्तुति की तब भगवानने सन्तुष्ट होकर कहा—हे प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। जो चाहो, सो वर माँगो। मैं मनुष्यों की सब कामनाएँ पूर्ण करनेवाला हूँ। जो व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं कर सकता—उसको मेरा दर्शन दुर्लभ है। मेरा दर्शन होनेपर किसीकी कामना अपूर्ण नहीं रह जाती, जिसके लिए उसको पश्चात्ताप करना पड़े। हे महाभाग! मैं सब कल्पनाओंका

अधीश्वर हूँ। इससे साधुजन कल्याणकी कामना करके अनन्य भावसे मुझको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टामें तत्पर रहते हैं। नारदजीने कहा—असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद तो निष्काम भक्त थे। इसलिए वरदानका लोभ दिखानेपर भी उन्होंने नृसिंहजीसे किसी भी वरकी इच्छा नहीं प्रकट की।

दशम अध्याय

भगवान नृसिंहका अन्तर्धान होना

नारदजीने कहा—भगवानने जो-जो वर देनेकी इच्छा प्रकट की, उनको भक्तियोगमें विघ्नकारक समझकर प्रह्लादने अस्वीकार करते हुए हँसकर कहा—हे भगवन्! मेरी जाति स्वभावतः कामासक्त है। मुझको वरका प्रलोभन न दीजिये। मैं मोक्षकी कामना करके आपकी शरणमें आया हूँ। जो व्यक्ति आपके दुर्लभ दर्शन पाकर आपसे सांसारिक सुख माँगता है, वह आपका दास नहीं है। वह तो व्यापारी है। हे भगवन्! मुझे अब अनिष्टकारी कामका प्रयोजन नहीं है। कामना उपजनेसे इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, सम्पत्ति, तेज, स्मृति और सत्यका विनाश होता है। हे प्रभो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवानने कहा—हे वत्स! तुम मेरी आज्ञाओंका पालन करो। इस स्थानमें रहकर दैत्येश्वरोंके भोग करने योग्य सम्पूर्ण भोगोंको भोगो। सब प्राणियोंमें वर्तमान एकमात्र यज्ञाधिष्ठाता अर्थात् मुझको अपने हृदयमें स्थापित करो। सब कर्म मुझे अर्पण करते हुए कर्मफल त्यागकर यज्ञ आदिसे मेरा पूजन करो।

हे प्रह्लाद ! तुम्हारे लिए कोई बन्धन नहीं है। मेरी स्तुति करते हुए मेरा चरित्र स्मरण करके तुम मुक्ति पाओगे। यह वचन सुनकर प्रह्लादने कहा—हे महेश्वर ! आपसे मैं यह वर माँगता हूँ कि मेरे पिताने आपके ऐश्वर्य और तेजको न जानकर जो आपकी निन्दाकी है और आपको अपने भाईका मारनेवाला कहकर कटु वचन कहे हैं, उसके लिए उनको क्षमा करके पापसे मुक्त कर दीजिये। भगवानने कहा—हे निष्पाप ! जब तुम जैसे कुलपावन पुत्रने इसके घरमें जन्म लिया, तभी तुम्हारा पिता पुरातन इक्कीस पीढ़ियों सहित पवित्र हो गया। तुम मेरे भक्त हो। तुम्हारा पिता मेरे अङ्गका स्पर्श करके अवश्य ही पवित्र हो गया है। तो भी तुम इस समय उसका प्रेतकर्म सम्पन्न करो। उसे अवश्य ही सद्गति मिलेगी। इस समय तुम पिताके पदपर अधिष्ठित होकर वेदवादी मुनियोंकी आज्ञाका उल्लंघन न करते हुए मुझमें मन लगाकर अनन्यभावसे सत्कर्म करो। नारदजीने कहा—हे राजन् ! प्रह्लादने भगवानकी आज्ञाके अनुसार कार्य किया। तदनन्तर पूज्य ब्राह्मणोंने उनका राज्याभिषेक किया। फिर ब्रह्माजी नरसिंहरूपधारी हरिको प्रसन्न देखकर स्तुति करने लगे। स्तुति सुनकर भगवानने कहा—हे ब्रह्मन् ! असुरगण स्वाभाविक दुष्ट होते हैं। उनको वर देना और सर्पको दूध पिलाकर पालन करना समान है। अतएव असुरोंको ऐसा अलभ्य वर न देना चाहिये। नारदजीने कहा—हे राजन् ! भगवान नृसिंहजी इतना कह और ब्रह्माजीकी पूजा ग्रहणकर सबके देखते-देखते अदृश्य हो गये। तदनन्तर प्रह्लादने ब्रह्मा, महेश, प्रजापति आदि देवताओंकी पूजा की और पृथ्वीपर सिर झुकाकर

उनको प्रणाम किया। ब्रह्मा आदि देवगण प्रह्लादको राजा बना तथा पूजा लेकर अपने-अपने स्थानको चले गये। हे राजन्! विष्णुके वे दोनों पार्षद इस भाँति विप्रशापसे दितिके पुत्र होकर उत्पन्न हुए और शत्रुभावसे चिन्तित हरिने उनको मारा। फिर वे ही दूसरे जन्ममें कुम्भकर्ण और रावण नामक दो राक्षस हुए और रामचन्द्रजीके हाथसे मारे गये। हे युधिष्ठिर! वे ही फिर इस संसारके बीच तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र हुए, जिनको तुम्हारे सामने श्रीकृष्णने मारकर सायुज्य मुक्ति दे दी। हे युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किये थे, उन सबका मैंने उत्तर दे दिया। जो लोग इस अपूर्व कृष्णकथाको पढ़ते या सुनते हैं, उनको मुक्ति मिलती है। हे राजन्! श्रीकृष्ण ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही महाजनोंके खोजनेकी वस्तु, कैवल्य-निर्वाण एवं सुखानुभवस्वरूप हैं, जिनको तुम प्रिय, सुहृद्, मामाके पुत्र, आत्मा, पूजनीय, आज्ञाकारी और गुरु मानते हो। तुमलोग प्रह्लादकी अपेक्षा भाग्यवान हो। हे राजन्! पहले महामायावी मयदानवने रुद्रदेवके विशाल यज्ञको नष्ट करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु इन्हीं भगवान्ने रुद्रके यशको फिर विख्यात कर दिया। यह बात सुनकर युधिष्ठिरने पूछा—यह कथा कैसी है? मैं सुनना चाहता हूँ। कृपापूर्वक मुझे सुनाइये। नारदने कहा—हे राजन्! देवासुर युद्धके समय श्रीकृष्णने देवगणकी सहायता की थी। इसलिए देवताओंने युद्धमें असुरगणको मार भगाया। तब वे मायावियोंके प्रधान गुरु मयदानवकी शरणमें गये। उस समर्थ दानवने सोने, चाँदी और लोहेके तीन पुर बना लिये थे। असुरोंके सेनापति उन पुरोंमें अलक्षितभावसे अवस्थित

होकर पहलेका वैर स्मरण करते हुए लोकपाल सहित सबलोकोंका विनाश करने लगे। उन पुरोंमें खाद्यद्रव्य आदि कितना सामान था, इसका अनुमान करना कठिन है। इसके बाद लोकपालों सहित सब प्रजागण शिवजीके पास गये और प्रणाम करके कातर स्वरसे कहने लगे—हे विभो! हे देवदेव! हम आपके ही दास हैं। त्रिपुरनिवासी असुरगण हमें नष्ट कर रहे हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। तब भगवान शिव देवगणपर अनुग्रह करके कहने लगे—हे देवगण! तुमलोग भयभीत न होओ। इसके बाद समर्थ शिव भगवानने त्रिपुरको लक्ष्य करके अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर मारा। हे राजन्! जिस प्रकार सूर्यमण्डलसे असंख्य किरणें निकलती हैं, उसी प्रकार उस बाणसे अग्निमय अनेक बाण उत्पन्न हुए जिनसे दैत्योंकी तीनों पुरियाँ ढक गयीं। उन बाणोंके लगते ही त्रिपुर-निवासी सभी दानव मर-मरकर नीचे गिरने लगे। यह देखकर मायावी मयदानवने उन सब मृत दैत्योंके शरीर अपने बनाये हुए अमृतके कूपमें डाल दिये। सिद्ध अमृतरसका स्पर्श होते ही वे सब मरे हुए दानव फिर जी उठे और उनमें फिरसे महाबल आ गया तथा उनके सब अङ्ग वज्रके समान सुदृढ़ हो गये। इस समय शिवका संकल्प भग्न होते देखकर भगवान विष्णुने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। विष्णुजीने ब्रह्माको बछड़ा बनाया, आप गऊ बने तथा मध्याह्नके समय त्रिपुरके भीतर प्रवेश किया और अमृतकूपके निकट जाकर सब अमृतरस पी गये। वहाँके रखवाले असुरगण देखते रहे, परन्तु भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण वे रोक नहीं सके। महायोगी एवं शोकशून्य हरि इस बातको जानकर दैवगति-

का स्मरणकर हँसते हुए उन शोकाकुल रखवालोंसे बोले—अपने लिए या दूसरोंके लिए अथवा अपने और दूसरे दोनोंके लिए जो कुछ दैवकल्पित है, उसे अन्यथा करनेकी शक्ति क्या देवता, क्या मनुष्य और क्या अन्य कोई व्यक्ति किसीमें नहीं है। तदनन्तर भगवान हरिने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, अणिमादिक ऐश्वर्य, सम्पत्ति, तप, विद्या और क्रियादि द्वारा अपनी ही शक्ति जो शम्भु हैं, उनके संग्रामकी सामग्री रथ, सारथि, अश्व, ध्वजा, धनुष, बाण, कवच आदिकी रचना कर ली। हे राजन्! महेश्वर शम्भुने कवच धारणकर धनुषबाण हाथमें ले और शरासनपर बाण चढ़ाकर मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तमें उस दुर्भेद्य त्रिपुरको अनायास ही भस्म कर डाला। तब आकाशमें नगाड़े बजने लगे और फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्व प्रसन्न होकर गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। हे राजन्! भगवान शंकरने मयदानवके पुरत्रय जला डाले, इसलिए उनका नाम त्रिपुरारि पड़ा। त्रिपुर भस्म करके भगवान त्रिपुरारि अपने धामको चले गये। हे राजन्! मयदानवकी कथा मैंने तुमको सुना दी, अब और क्या वर्णन करूँ?

एकादश अध्याय

मनुष्यधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मकी विवेचना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! महाराज युधिष्ठिर नारदजीसे भगवान श्रीहरिके भक्त प्रह्लादका पवित्र चरित्र सुनकर आनन्दको प्राप्त हुए और फिर ब्रह्माके पुत्र नारदजीसे पूछने लगे। युधिष्ठिरने

कहा—हे भगवन् ! मैं मनुष्योंका सनातनधर्म और वर्णाश्रमका आचार-विचार सुनना चाहता हूँ। आपको सभी विषय अवगत हैं। यह परम गोपनीय कथा आप मुझे सुनाइये। नारदजीने कहा—नारायणको प्रणाम करके तुम्हारे निकट उनके मुखसे सुने हुए धर्मका वर्णन करता हूँ। वे भगवान नारायण सब लोगोंके मंगलके लिए धर्मके वीर्य तथा दाक्षायणीके गर्भमें अपने अंशसे अवतार लेकर बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं। हे राजन् ! मनुष्योंका साधारण धर्म क्या है, यह मैं तुमको बता रहा हूँ—सुनो। सत्य, दया, तपस्या अर्थात् एकादशी आदिको उपवास, शौच अर्थात् पवित्र रहना, तितिक्षा अर्थात् क्षमा, सत्-असत्का विचार, शम अर्थात् मनकी स्थिरता, दम अर्थात् इन्द्रियका दमन करना, दान, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदृष्टि, साधुओंकी सेवा, कुकर्मोंका त्याग, मनुष्यकृत सब कर्मोंकी विफलताका ज्ञान, वृथा वार्तालापका त्याग, आत्मविचार, यथोचितरूपसे प्राणियोंको अन्न आदि बाँटकर खाना, सब प्राणियोंमें इष्टदेव परमात्माको देखना, भगवानके नाम और गुण सुनना, कीर्तन करना, स्मरण करना, हरिकी सेवा-पूजा और प्रणाम करना, अपनेको हरिका दास जानना, आत्मसर्पण कर देना—ये सब सनातन धर्मके लक्षण हैं और ये सभी मनुष्योंके साधारण धर्म हैं। इनके पालनसे सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं। हे राजन् ! अब वर्णधर्म कहता हूँ—सुनो। जिनके वेदमंत्रयुक्त संस्कार होते हैं, वे ही द्विज हैं। जिनका कुल और आचार शुद्ध हो उन द्विजोंके लिए यज्ञ कराना, पढ़ना, दान करना और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंकी कही हुई सब क्रियाएँ करना

वेदविहित हैं। पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दान लेना, यज्ञ करना और कराना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके हैं। यज्ञ कराना, पढ़ाना और विशुद्ध दान लेना ब्राह्मणोंकी जीविका है। ब्राह्मणके सिवा अन्य प्रजासे कर शुल्क और दण्ड लेना क्षत्रियकी जीविका है। कृषि-वाणिज्य आदि वैश्यकी जीविका है। ब्राह्मणोंके अनुगत रहना वैश्यका धर्म है। तीनों वर्णोंकी सेवा शूद्रका धर्म है। हे राजन्! शम, दम, तपस्या, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, विष्णुकी भक्ति और सत्य—ये ब्राह्मणके लक्षण या धर्म हैं। शूरवीर होना, धैर्य, तेज, दान, आत्माको जीतना अर्थात् मनका दमन, क्षमा, ब्राह्मणकी भक्ति, प्रसन्नता, रक्षा करना और सत्य—ये क्षत्रियके लक्षण या धर्म हैं। देवता, गुरु और विष्णुमें भक्ति, धर्म, अर्थ और कामका पालन, आस्तिक भाव, नित्य उद्योग—ये वैश्यके लक्षण या धर्म हैं। नम्रता, शौच, निष्कपट भावसे स्वामीकी सेवा, बिना वेदमंत्रके यज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, गऊ-ब्राह्मणकी रक्षा करना—ये शूद्रके लक्षण या धर्म हैं। हे राजन्! अब स्त्रियोंका धर्म बताता हूँ, सुनो। पतिकी सेवा, पतिके अनुकूल रहना, पतिके बन्धुओंकी अनुवृत्ति और सदा पतिके नियमोंका पालन—ये पतिव्रता स्त्रियोंके लक्षण और धर्म हैं। सती साध्वी स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे घरको बहारें, झाड़ें, लीपें, सँवारें, घरकी सामग्री यथोचित स्थानपर रखें, स्वयं आभूषण और वस्त्रोंसे शोभित हो अनेक योग्य वस्तुएँ देकर विनयसे, इन्द्रियदमनसे, मधुर वाणीसे और प्रेमसे पतिको सन्तुष्ट रखें। स्त्रीको चाहिये कि सदा मधुर वचन बोले और स्नेहसहित पतिकी सेवा करे। हे

राजन्! जो स्त्री लक्ष्मीके समान पतिपरायणा होकर अनन्य भावसे हरिकी भावना करके पतिकी सेवा करती है, वह वैकुण्ठ-धाममें हरिस्वरूप पतिके साथ लक्ष्मीके समान आनन्दको प्राप्त होती है। हे राजन्! रजक-चमार आदि अन्त्यज और चाण्डाल हैं। मनुष्योंके स्वभावानुसार युग-युगमें जो धर्म विहित हुआ है, वही धर्म उनके लिए इस लोक और परलोकमें सुखदायक है। अन्त्यज और सङ्कर जातिके लोगोंका धर्म है कि चोरी वा अन्य किसी पाप-कार्यमें निरत न होकर कुलपरम्पराकी वृत्तिसे जीविका-निर्वाह करें।

द्वादश अध्याय

आश्रमोंके धर्मोंका वर्णन

नारदजीने कहा—ब्रह्मचारीको उचित है कि गुरुकुलमें निवास करे और इन्द्रियोंको वशमें करके गुरुके हितका कार्य करे। प्रातःकाल और सायंकाल अग्नि, सूर्य और अन्य देवताओंकी उपासना करे। गायत्रीजप और त्रिकाल सन्ध्या करे। गुरु जब आज्ञा दें तब मन और देहको अच्छी तरह स्थिर करके वेदाध्ययन करे और पढ़नेके पहले तथा अन्तमें गुरुके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करे। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मेखला, कृष्णाजिन, वल्कल वसन, जटा, दण्ड, कमण्डलु और यज्ञोपवीत धारण करे और हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षासे मिला हुआ अन्न गुरुको अर्पण करे। फिर गुरुकी आज्ञा पावे तो आप भी उसमेंसे भोजन करे, नहीं तो उपवास करके रह

जाय। हे राजन्! गृहस्थके सिवा ब्रह्मचारीमात्रको स्त्री-सम्बन्धी वार्तालाप न करना चाहिये। क्योंकि प्रबल इन्द्रियाँ बड़े-बड़े यतियोंके भी मनको चलायमान कर देती हैं। स्त्रियाँ अग्निके तुल्य हैं और पुरुष घीके घड़ेके समान हैं। इस कारण निर्जन स्थानमें उनके साथ कदापि न बैठना चाहिये। प्रकाश्य स्थानोंमें भी प्रयोजनके अनुसार ही साथ रहना चाहिये। हे राजन्! गृहस्थ और यतियोंके भी ये ही धर्म हैं। गृहस्थको ऋतुकालमें ही स्त्रीसङ्ग करना चाहिये। ब्रह्मचारीके लिए अञ्जन और उबटन लगाना, हाथ-पैर और शरीर दबवाना, स्त्रीसङ्ग और उनका चित्र रखना, मांस-मद्यका सेवन, माला पहिनना, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुएँ लगाना और अलङ्कार पहिनना वर्जित है। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी गुरुकुलमें वास करके वेदाङ्ग, उपनिषद और तीनों वेद पढ़कर अपने अधिकार और शक्तिके अनुसार वेदके अर्थको विचारे। यदि शक्ति हो तो गुरुको उसकी इच्छाके अनुसार दक्षिणा दे और उसकी आज्ञा लेकर गृहस्थ, वानप्रस्थ, परिव्राजक अथवा आजन्म ब्रह्मचारी रहकर वहीं गुरुकुलमें निवास करे। हे राजन्! इन चारों ही आश्रमोंसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो सकती है। अब मैं मुनि-सम्मत वानप्रस्थ आश्रमका नियम कहता हूँ, जिनका पालन करनेसे ऋषिलोक अर्थात् महर्लोककी प्राप्ति होती है। जो फल सूर्य या अग्निके तापसे पके हों अथवा कच्चे हों और खेतीसे न उत्पन्न हों केवल उन्हींको खाना चाहिये। नवीन अन्न प्राप्त होनेपर पूर्वसंचित पुराने अन्न त्याग दे। अग्निस्थापनके लिए पर्णकुटी अथवा पर्वतकन्दराका आश्रय ग्रहण करे। किन्तु स्वयं सर्वदा

खुले स्थानमें रहकर हिम, वायु, अग्नि, वर्षा और घामके कष्टको सहे। जटा धारण करे। केश, रोम, नख और दाढ़ी-मूँछ न कटवावे। शरीरके मलको भी न साफ करे और कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल और अग्निपरिच्छद (अग्निका सामान) न छोड़े। तपके क्लेशसे बुद्धि भ्रष्ट न हो, इसके लिए यथाशक्ति उक्त रीतिसे बारह वर्ष, आठ वर्ष, चार वर्ष, दो वर्ष या एक वर्ष वनमें विचरण करे। रोग अथवा बुढ़ापेके कारण जब धर्मपालनकी शक्ति न रहे, तब अनशन आदि करके जीवन समाप्त कर दें। अनशन आदि करते समय पहले आत्मामें अग्निको आरोपित करके 'मैं हूँ—मेरा है' इस प्रकारके अभिमानको छोड़ दे। और जिस प्रकार पञ्चतत्त्वोंसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है, उसी क्रमसे शारीरिक तत्त्वोंको पञ्चतत्त्वोंमें लीन कर दे अर्थात् शरीरके छिद्रोंको आकाशमें, श्वासको वायुमें, उष्णताको अग्निमें, शुक्र-शोणित और श्लेष्माको जलमें और अवशिष्ट कठिन अंशको पृथ्वीमें और समष्टिस्वरूप देहको निज-निज कारणमें यथाविधि लीन कर दे। इसके बाद वाक्य सहित वचन इन्द्रियको अग्निमें, शिल्प सहित हाथोंको इन्द्रमें, गतिसहित दोनों पैरोंको विष्णुमें, रति सहित उपस्थको प्रजापतिमें और मलमूत्र त्याग सहित वायुको मृत्युमें लीन करे। शब्द सहित कर्णेन्द्रियको दिशाओंके मण्डलमें, स्पर्श सहित त्वक् इन्द्रियको वायुमें, रूपसहित चक्षुको नेत्रमें, वरुणसहित जिह्वाको जलमें, औषधि सहित प्राणको पृथ्वीमें, मनोरथ सहित मनको चन्द्रमामें, बोधसहित बुद्धिको ब्रह्मामें और अहंकार सहित सब कर्मोंको रुद्रमें लीन कर दे। तदनन्तर चेतना सहित

चित्तको क्षेत्रज्ञ आत्मामें और गुणसङ्गसे विकृतप्राय क्षेत्रज्ञको निर्विकार ब्रह्ममें लीन करे। अन्तमें पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अहंकार तत्त्वमें, अहंकारतत्त्वको प्रकृति अर्थात् मायामें और प्रकृतिको परमात्मामें लीन कर दे। इसके बाद क्षेत्रज्ञ आत्माको अक्षयस्वरूप जान और भेदभाव छोड़कर बुझ जानेपर जिस तरह आग शान्त हो जाती है, उसी तरह शरीरका अवसान करके शान्ति प्राप्त करे।

त्रयोदश अध्याय

यतिधर्म और अवधूत धर्मका वर्णन

नारदजी बोले—हे राजन्! संन्यासी एक गाँवमें एक रातसे अधिक न रहे। इस विधिसे पृथ्वीके चारों तरफ भ्रमण करता रहे। यदि वस्त्र धारण करना चाहे तो केवल कौपीन पहने। दण्ड आदिके सिवा और किसी प्रकारका चिह्न आपत्कालके बिना न धारण करे। क्योंकि सभी प्रकारके चिह्न उसके त्यागे हुए रहते हैं। भिक्षाजीवी होकर अकेले ही घूमे। किसी एक स्थानमें आश्रम बनाकर न रहे। सदा आत्माके अनुभवानन्दमें मग्न रहे। सब प्राणियोंसे मित्रताका व्यवहार करे। नित्य शान्त रहकर नारायणपरायण हो। जगत्को ब्रह्ममय देखे। निश्चित देहकी निश्चित मृत्यु या अनिश्चित जीवनका अभिनन्दन करे। असत् शास्त्रोंमें आसक्त न हो। किसी जीविकाका अवलम्बन न करे। वितण्डावाद युक्त तर्कको त्याग दे और किसी पक्षको ग्रहण न करे। प्रलोभन आदि उपायोंसे शिष्योंका संग्रह, बहुत ग्रन्थोंका

अभ्यास, शास्त्रकी व्याख्या और कहीं मठ आदिकी स्थापना न करे। सबके प्रति समदर्शी भाव रखे और चित्तको सदा शान्त रखे। योगके नियम अर्थात् व्रत-उपवास आदिके आचरणसे ज्ञानोपार्जनमें यत्नशील रहे। प्रयोजनके अतिरिक्त व्यर्थकी बात न करे। वह विद्वान् होकर भी अपनेको उन्मत्त और बालकोंकी भाँति और कवि होकर भी गूँगे बावलोंकी भाँति बना रहे। हे राजन्! यहाँपर पण्डितजन एक पुरातन इतिहासका वर्णन करते हैं, जिसमें प्रह्लाद और अजगरकी वृत्ति धारण करनेवाले मुनिका संवाद है। वह इतिहास मैं सुनाता हूँ, सुनो। एक समय अजगरव्रत धारण करनेवाले एक परमहंस कावेरी नदीके निकट सह्य पर्वतके नीचे भूमिपर लेटे हुए थे। उनके सब अङ्ग धूलिसे भरे थे, जिसके कारण उनका निर्मल तेज छिपा हुआ था। उसी समय भगवानके प्रियभक्त प्रह्लादजी कुछ मित्रोंके साथ लोकतत्त्व जाननेकी इच्छासे तीनों लोकोंमें घूमते हुए वहाँ पहुँचे और उनको देखा। दूसरे जिनको जल्दी नहीं पहिचान सकते, उनको देखते ही प्रह्लादने पहिचान लिया। उन्होंने उनके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम और यथाविधि पूजन किया। फिर जिज्ञासाभावसे उन्होंने यह प्रश्न किया—हे प्रभो! मैं देखता हूँ कि आप उद्यमी और भोगी लोगोंके समान मोटा-ताजा शरीर धारण किये हुए हैं। इसका क्या कारण है? उद्योगी लोगोंके पास धन होता है। धनी लोग ही भोग करते हैं और भोग करनेवालोंका शरीर ही ऐसा मोटा-ताजा हो सकता है। हे ब्रह्मन्! आप निरुद्यम होकर पड़े रहते हैं, तब धनोपार्जन असम्भव है। धनसे ही भोग होता है। फिर भी बिना भोगके ही आपका

शरीर मोटा-ताजा बना हुआ है। यदि हो सके तो इसका कारण मुझे बताइये। नारदजी बोले—दैत्यपति प्रह्लादने जब इस प्रकार पूछा तब मुनिवरने विस्मित होकर कहा—हे असुरश्रेष्ठ! तुमने जिस प्रकार ज्ञानीकी भाँति बातचीत की, इससे मुझे जान पड़ता है कि तुम भगवानके परम भक्त हो और तुमसे कोई विषय अज्ञात नहीं है। फ़िर भी मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ। हे राजन्! संसारचक्र चलानेवाली तृष्णाको यथोचित विषयभोगके द्वारा भी शान्त करना कठिन है। उसी तृष्णाके द्वारा कर्मोंमें प्रवृत्त होकर मैंने पहले अनेक योनियोंमें जन्म लिया। मैंने कर्मवश विविध योनियोंमें भ्रमण करते-करते उसी तृष्णाके द्वारा यह मनुष्य शरीर पाया है। हे राजन्! स्वर्गका साधन धर्म है। अधर्मसे कुत्ता-सियार आदि योनियोंमें जन्म होता है। किन्तु मनुष्ययोनि मोक्षका द्वार है। मैंने दुःख छोड़कर सुख पानेके लिए निवृत्तिमार्ग ग्रहण किया है। मैं सब भोगोंको अनित्य समझकर केवल प्रारब्ध भोग कर रहा हूँ। जैसे अज्ञ व्यक्ति तृण-सेवार आदिसे ढके हुए जलको छोड़कर जलकी कामनासे मृगतृष्णाकी ओर दौड़ते हैं, उसी भाँति आत्माको शरीरसे भिन्न अन्य पदार्थोंमें स्वार्थ देखनेवाले पुरुष निरन्तर संसारको प्राप्त होते हैं। किन्तु मैंने घोरतर संसारको त्याग दिया है। हे राजन्! जिस मनुष्यके सिरपर मृत्यु खड़ी है, उसे दुःखोपार्जित धनके लाभ अथवा भोगसे क्या सुख हो सकता है? बिना क्लेशके जो धन मिल जाता है, उसमें भी दुःख है। वे भयवश भलीभाँति सुखसे नहीं सो सकते और सर्वदा सभीसे सशंक रहते हैं। अतएव धन और प्राणकी स्पृहा त्याग देना ही उचित

है। हे राजन् ! इस लोकमें मधुमक्षिका और अजगर मेरे उत्तम गुरु हैं। मधुकी भाँति संचित धनको धनीके प्राण नष्ट करके अन्य लोग हर ले जायँगे, यह जानकर मैंने मधुमक्षिकासे सब कामनाओंसे विरक्त होनेकी शिक्षा ली है। अजगरसे शिक्षा पाकर मैं धैर्यधारणपूर्वक निश्चेष्ट पड़ा रहता और जो कुछ मिलता है, उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ। कभी थोड़ा और कभी बहुत भोजन करता हूँ। कभी सुस्वादु अन्न खाता हूँ। कभी रूखा-सूखा स्वादरहित अन्न खाता हूँ। कभी बहुत गुणोंसे युक्त और कभी गुणरहित अन्न भोजन करता हूँ। कभी किसीका श्रद्धासे लाकर दिया हुआ और कभी किसीका अपमानपूर्वक लाकर दिया हुआ अन्न खा लेता हूँ। किसी दिन भोजन मिलता है—कभी नहीं भी मिलता। पहिननेके लिए रेशमी वस्त्र, दुकूल, मृगचर्म, कौपीन, वल्कल और अन्य जो कुछ मिल जाता है, उसीको पहिन लेता हूँ। कभी जमीनपर सो रहता हूँ, कभी घासपर, कभी पत्तेपर, कभी पत्थरपर, कभी राखपर और कभी पलंगपर आरामसे सोता हूँ। कभी स्नान करके चन्दन आदि सुगन्ध लगाकर सुन्दर वस्त्र और मनोहर माला धारणकर रथ हाथी अथवा घोड़ेपर चढ़कर विचरता हूँ और कभी पागलोंकी भाँति नंगे होकर भ्रमण करता हूँ। मैं किसीकी निन्दा और प्रशंसा नहीं करता। केवल विष्णुमें मन लगाये रखनेकी इच्छा रखता हूँ। हे राजन् ! इस प्रकार जीवन बितानेका उपाय बताता हूँ, सुनो। भेदज्ञानजनक मनकी वृत्तिमें विकल्पको और अर्थभ्रमका हेतु जो मन है, उसमें मनकी वृत्तिको लीन कर दे। मनको अहंकारमें लीन कर दे। अहंकारको मायामें लीन करे। फिर

सत्यदर्शी मुनि मायाको आत्माके अनुभवमें लीन करके निरीहभावसे स्वानुभवस्वरूप आत्मामें अवस्थित रहे। हे राजन्! तुम भगवद्भक्त हो। इसीलिए मैंने अति गोपनीय अपना वृत्तान्त तुमसे वर्णन किया। नारदने कहा—हे राजन्! प्रह्लाद अजगरव्रती मुनिसे परमहंसोंका धर्म सुनकर उनकी पूजा करके अपने भवनको चले गये।

चतुर्दश अध्याय

गृहस्थधर्मका वर्णन

युधिष्ठिरने कहा—हे नारद! अनुग्रहपूर्वक अब गृहस्थधर्मका वर्णन कीजिये। नारदजी बोले—हे राजन्! गृहस्थ व्यक्ति कृष्णार्पणपूर्वक यथायोग्य कर्म करता हुआ समयानुसार महर्षियोंकी पूजा करे, भगवानकी कथा सुने और शान्त तथा जितेन्द्रिय लोगोंका सङ्ग करे। धनका संग्रह आवश्यकतानुसार ही करे। स्त्री-पुत्रादिपर माया-स्नेह आदि छोड़ दे। माता-पिता, पुत्र-मित्र आदिकी इच्छाओंका अनुमोदन करे, किन्तु किसीपर ममता न रखे। प्राप्त धनका रक्षणावेक्षण करके संसारयात्रा करे। अधिकसे अधिक धन मिलनेपर भी अभिमान न करे। जो व्यक्ति अधिक धन पाना चाहता है, वह चोर है और दण्ड पाने योग्य है। अतः धन अधिक मिल जाय तो अभिमान न करे। मृग, ऊँट, गधा, बानर, चूहा, साँप, पक्षी, मक्षिका आदि जो प्राणी गृह अथवा खेतमें घुसकर अन्न आदि खा लें तो न रोके, वरन् उनको अपने पुत्रके तुल्य स्नेहकी

दृष्टिसे देखे। स्त्रीके वशमें होकर माता-पिता और अन्य गुरुजनोंका अपमान न करे। उनका अपमान करनेसे असद्गति मिलती है। हे राजन्! गृहस्थ व्यक्ति दैवके द्वारा प्राप्त धनसे पञ्च यज्ञका निर्वाह करे और पंच यज्ञ करनेसे जो बचे, उसीसे अपनी जीविका चलावे। देव, ऋषि, मनुष्य, भूत, पितृगण आदिकी और अपनी पूजा नित्य करनेसे भिन्न-भिन्न रूपसे अन्तर्यामीका पूजन हो जाता है। भगवान हरिको यज्ञ आदिसे प्रसन्न करना चाहिये। धनी ब्राह्मण अपने विभवके अनुसार भाद्रपदमासमें पिता-माता और उनके बन्धुवर्गका श्राद्ध करे। इस प्रकार अयनद्वय, विषुवद्वय, व्यतीपात, ग्रहस्पर्श, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, द्वादशीतिथि, श्रवण नक्षत्र, अक्षयतृतीया, कार्तिक शुक्ला नवमी, हेमन्त और शिशिर ऋतुके अन्तर्गत चार महीनेकी चार अष्टका, माघमासकी शुक्ला सप्तमी आदिमें, यथा चित्रादि नक्षत्रमास और मघा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमामें और जिन-जिन नक्षत्रोंसे चैत्रादि महीनोंका नामकरण होता है, वे सब नक्षत्र जब सम्पूर्ण चन्द्रयुक्त चन्द्रमा अथवा किंचित् न्यून चन्द्रयुक्त तिथिके साथ मिलित हों, उस समय और जब द्वादशी तिथियोंमें अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा वा उत्तराभाद्रपद नक्षत्रका योग हो अथवा शेषोक्त तीन नक्षत्र जब एकादशी तिथिको हों—उन दिनोंमें और जन्मनक्षत्र या श्रवण-नक्षत्रके योगवाले दिनमें अवश्य श्राद्ध करना चाहिए। ये सब समय केवल श्राद्धके ही लिए प्रशस्त नहीं हैं, वरन् इन दिनोंमें किये गये सभी पुण्यकार्य अक्षय होते हैं। इन सब अवसरोंपर धर्म-कर्म करनेसे मंगल और परमायुकी वृद्धि होती है। इसके बाद जो

जो देश धर्म-कर्म करनेसे कल्याणकारी हैं, उनका वर्णन करता हूँ। चराचरमय भगवानकी मूर्तियाँ जहाँ हैं, वे ही देश परम पवित्र हैं। जहाँ तप, विद्या और दया आदि उत्तम गुणोंसे विभूषित ब्राह्मण वास करते हैं और जहाँ-जहाँ भगवान हरिकी मूर्तियाँ हैं, वे सब देश मङ्गलप्रद हैं। जहाँ गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर और सिद्धजनोंकी निवासभूमि क्षेत्र विद्यमान हैं, वे सब स्थान और कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहमुनिका आश्रम, नैमिषारण्य, फल्गुनदी, सेतुबन्ध, प्रभासतीर्थ, कुशस्थली, वाराणसी, मधुपुरी, पम्पा-सरोवर, बिन्दु-सरोवर, नारायणाश्रम, नन्दानदी, जनकपुरी, अयोध्या, ये सब स्थान, महेन्द्र-मलय आदि पर्वत और जिन-जिन स्थानोंमें हरिभगवान्की प्रतिमा अधिष्ठित हैं, वे सभी देश परम पवित्र हैं। जो लोग इन स्थानोंमें जाते तथा सरोवरों-नदियों आदिमें स्नान करते और श्रीहरिकी मूर्तिका दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं। हे राजन्! तुमने जो राजसूय यज्ञ किया था उसमें देव, ऋषि, तप, योग आदिसे सिद्ध मुनिगण और ब्रह्माके पूज्य पुत्रोंके उपस्थित रहनेपर भी हरि ही सर्वसम्मतिसे सर्वप्रथम अग्रपूजाके पात्र चुने गये थे। जो लोग उन भगवानकी पूजा अथवा ध्यान और दर्शन करते हैं, उनकी सभी वासनाएँ पूरी होती हैं। जिन लोगोंने परस्पर द्वेष नहीं छोड़ा है, उनके प्रतिमा-पूजनसे कोई फल नहीं है।

पञ्चदश अध्याय

मोक्षके लक्षणोंका वर्णन।

नारदने कहा—हे राजन् ! ब्राह्मणोंमें कोई-कोई कर्मनिष्ठ हैं, कोई तपोनिष्ठ हैं, कोई स्वाध्यायमें तत्पर हैं, अन्य कुछ प्रवचन-चतुर हैं और कुछ लोग ज्ञान और योगमें निष्ठा रखते हैं। जिनको दानके अनन्त फलकी इच्छा हो, उन्हें उचित है कि ज्ञान-निष्ठको हव्य (देवताओंका अन्न) और कव्य (पितरोंका अन्न) दें। यदि संयोगवश वैसे ब्राह्मण न मिलें तो ज्ञानके अनुसार न्यूनाधिककी विवेचना करके अन्य ब्राह्मणोंको भी हव्य-कव्य दिया जा सकता है। श्राद्धमें देवताओंके उद्देश्यसे दो और पितरोंके उद्देश्यसे तीन ब्राह्मण अथवा दोनोंके उद्देश्यसे एक-एक ब्राह्मणको भोजन करावे। अत्यन्त धनवान होनेपर भी श्राद्धमें बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन न कराना चाहिये। बहुतसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें खिलानेसे देश-कालके अनुरूप श्रद्धा, द्रव्य, पात्र और पूजन—ये सब बातें सुन्दर रूपसे नहीं सम्पन्न हो सकतीं। उपयुक्त देशकाल प्राप्त होनेपर वनके नीवारादि अन्न अथवा न्यायोपार्जित यत्किंचित् अन्न भगवान् हरिको अर्पण करके श्रद्धापूर्वक यथाविधि यदि सत्पात्रको खिलाया जाय तो वह भी अक्षय और अभिलाषाके अनुरूप फल देनेवाला हो जाता है। हे राजन् ! श्राद्धमें मछली या मांसका उपयोग न करे। धर्मतत्त्वके जानकार लोग मांसादि भोजनको निषिद्ध मानते हैं। अतएव हिंसा त्याग देना चाहिये। यज्ञमें पशुवध तो कदापि उचित नहीं है। हे राजन्! धर्मज्ञ व्यक्ति विधर्म, परधर्म, धर्माभास, उपधर्म और कुलधर्म इन पाँच अधर्म-

की शाखाओंको भी अधर्मके समान त्याग दे। धर्म जानकर करनेपर भी जिससे अपने धर्ममें वाधा हो, वही विधर्म है। अन्यके धर्मको परधर्म कहते हैं। अपने मनसे धर्म कहकर जिसका अनुष्ठान किया जाता है, वह धर्माभास है। पाखण्डाचार अथवा दम्भको उपधर्म कहते हैं। अन्य प्रकारका अर्थ करके जिस धर्मकी व्याख्या की जाय, वह कुलधर्म है। हे राजन्! जो धनके लिए चेष्टा न करके सन्तुष्ट रहता है, उसके लिए चारों दिशाएँ मङ्गलमय होती हैं। असन्तुष्ट व्यक्ति कुत्तेकी तरह सदा विपद्ग्रस्त रहता है। इन्द्रियचञ्चलताके कारण तेज, विद्या, तपस्या, यश और ज्ञान—ये सभी नष्ट हो जाते हैं। हे राजन्! क्षुधा और तृष्णासे लोग कामभोगका अन्त पा सकते हैं और हिंसा करके क्रोधका भी अन्त पा सकते हैं, किन्तु दशों दिशाएँ जीतकर और सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका भोग करके भी लोभका अन्त नहीं पा सकते। हे राजन्! उन काम आदिको जीतनेका उपाय बता रहा हूँ, सुनो। संकल्प त्यागकर कामनाको जीते और कामना त्यागकर क्रोधको दूर करे तथा अर्थ अर्थात् धनमें अनर्थ देखकर लोभको जीते और तत्त्वानुसन्धानसे मृत्यु आदिके भयको परास्त करे। विवेकसे शोक और मोहको त्यागे, महात्मा लोगोंकी सेवासे दम्भको दूर करे। मौन धारण करके भोगकी वाधाओंको दूर करे। काम आदि विषयोंकी चेष्टा त्याग करके हिंसा आदिका दमन करे। जिन प्राणियोंसे भयकी सम्भावना हो, उनका हित करके उनसे होनेवाले दुःखको दूर करे। दैव द्वारा प्राप्त दुःखको समाधिसे दूर करे। आध्यात्मिक क्लेशको योगबलसे दूर करे। निद्राको

सात्त्विक आहार और सात्त्विक व्यवहारसे दूर करे। सतोगुणसे रजोगुण और तमोगुणको नष्ट करे। हे राजन्! गुरुपर सुदृढ़ भक्ति करनेमें मनुष्य इन सबको अनायास वशमें कर सकता है। हे युधिष्ठिर! गुरु साक्षात् भगवानका स्वरूप है। योगेश्वरगण भी गुरुकी खोजमें रहते हैं। इन्द्रियदमन ही योगका मूलमंत्र है। योगका फल मोक्ष है। हे राजन्! अब योगकी बातें बताता हूँ। सङ्ग और गृहादि त्यागकर संन्यास ग्रहण करे। अकेले निर्जन स्थानमें वास करे। भिक्षासे प्राप्त वस्तु परिमित मात्रामें आहार करे। समतल और पवित्र स्थानमें आसन लगा और सीधे होकर, जिसमें कष्ट न हो उस भाँति स्थिरभावसे बैठकर प्रणव अर्थात् ओंकारका उच्चारण करता रहे। पूरक, रेचक और कुम्भक इन त्रिविध प्राणायामोंसे प्राण और अपान वायुको रोककर स्थिर करे और अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टिको स्थिर करके मनसे सभी कामनाओंको दूर कर दे। इसके बाद भ्रमणशील मनको रोककर धीरे-धीरे हृदयमें स्थिर करके अपने वशमें करे। हे राजन्! इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें काम आदिका नाश होकर ब्रह्मसुख प्राप्त हो जाता है। हे युधिष्ठिर! असत् व्यक्ति योगधर्म त्यागकर पुनः गृहधर्ममें लौट आते हैं। ऐसे व्यक्ति महापापी और दुराचारी हैं। वे लोग नरकमें जाते हैं। हे राजन्! पण्डित लोग कहते हैं कि यह शरीर रथ है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियोंका स्वामी मन लगाम है। शब्द आदि विषय गन्तव्य स्थान हैं। बुद्धि सारथि है। यह चित्त बड़ा भारी बंधन है। इस प्रकार प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान एवं नाग,

कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्रकारके प्राण उस रथके धुरे हैं। धर्म और अधर्म दोनों पहिये हैं और अहंकार-सहित वर्तमान जीव रथी है। प्रणव (ॐ) इस रथीका धनुष है। शुद्ध जीव बाण है और परब्रह्म उसका लक्ष्य है। हे राजन्! राग, द्वेष, लोभ, मोह, शोक, भय, मद, मान, अपमान, असूया, माया, हिंसा, मात्सर्य (डाह), अभिनिवेश (आसक्ति), असावधानता, क्षुधा और निद्रा ये सब और अन्यान्य सब विषय जीवके शत्रु हैं। अच्युत भगवानका आश्रय न लेनेसे लोग घोर विषयरूपी दस्युओंके वशमें हो जाते हैं। वे दस्यु अश्व और सारथि सहित उस रथीको गुरुतर मृत्युभयसे युक्त अन्धकारमय संसारकूपमें ढकेल देते हैं। हे राजन्! प्रवृत्तिसम्बन्धी और निवृत्तिसम्बन्धी दोनों कर्म वेदोक्त हैं। प्रवृत्त कर्मोंसे बारबार जन्म होता है। निवृत्त कर्मसे मुक्ति मिलती है। किंतु यागादिकर्म शान्तिपूर्ण विधिसे नहीं हो सकते। इन प्रवृत्त कर्मोंको 'इष्ट' कहते हैं। देवालय, उपवन, कूप और जलाशयका निर्माण ये 'पूर्त' कर्म कहलाते हैं। हे राजन्! याग-यज्ञादि कर्मोंके फलसे देवताओं द्वारा चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। वहाँ कर्मानुसार भोग करना पड़ता है। चन्द्रलोकमें भोग शेष होनेपर प्रथमकी देह विनाशको प्राप्त होकर विलीन हो जाती है। फिर पृथ्वीपर उसकी उत्पत्ति होती है। हे राजन्! निवृत्तिमार्गके कर्मसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। इस मार्गसे पुरुष यथाक्रम अग्नि, सूर्य, दिन, पूर्वाह्न, शुक्लपक्ष, पूर्णिमा और उत्तरायणके अभिमानी देवगणके समीप जाकर क्रमशः ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मलोक प्राप्त होनेसे फिर

जन्म नहीं होता। हे राजन्! तुम जिस तरह भगवान श्रीकृष्णकी सहायतासे बहुत-सी दुस्तर आपत्तियोंसे पार हो गये और जिस तरह उनके चरणकमलकी सेवाके प्रभावसे सब दिशाएँ जीतकर तुमने बहुतसे बड़े-बड़े यज्ञ किये, उसी प्रकार उन्हीं आत्मस्वरूप श्रीहरिका आश्रय ग्रहणकर संसारसागरसे पार हो जाओ। हे राजन्! मेरे पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनो। गत कल्पमें मैं उपबर्हण नामक गन्धर्व था। सब गन्धर्व मुझे मानते थे। मैं देखनेमें बहुत सुन्दर था। युवतियाँ मुझे बहुत प्यार करती थीं। मैं सर्वदा उनके साथ मस्त रहकर समय बिताता था। एक बार देवताओंके यज्ञमें हरिगुण गानेके लिए बुलाहट हुई। इस बुलावेमें स्त्रीगण सहित मैं भी उन्मत्तभावसे गान करता हुआ वहाँ गया। विश्वस्रष्टागणने मेरी ढिठाई और लम्पटता देखकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मुझे शूद्रत्व प्राप्त होकर दासीके गर्भसे मेरा जन्म हुआ। किन्तु ब्रह्मज्ञानी मुनियोंकी सेवा और संग करनेके कारण दासीपुत्र होनेपर भी दूसरे जन्ममें मैं ब्रह्माजीका पुत्र हुआ हूँ। हे राजन्! मैंने गृहस्थोंका यह पापनाशक धर्म तुमसे वर्णन किया। तुम लोग बड़े ही भाग्यशाली हो। क्योंकि लोकपावन मुनिगण तुम्हारे घर आते हैं और स्वयं भगवान तुम लोगोंके प्रिय हैं। हे राजन्! साक्षात् शिव और ब्रह्मा आदि देवता भी निश्चितरूपसे जिनके रूप-गुणका वर्णन नहीं कर सकते, मैं भला उनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? वे ही भगवान हमपर प्रसन्न हों। शुकदेवजी बोले—राजा युधिष्ठिर देवर्षिके वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेमसे विह्वल होकर श्रीकृष्णका पूजन किया।

तदनन्तर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरसे बिदा हो और उनकी अनुमति लेकर नारदजी वहाँसे अपने स्थानको चले गये। श्रीकृष्णजी परब्रह्म परमात्मा हैं—यह बात नारदके मुखसे सुनकर युधिष्ठिरको बहुत विस्मय हुआ।

सप्तम स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

अष्टम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन।

राजा परीक्षितने कहा—हे गुरो ! अब कृपा करके अन्यान्य मनुओंका वर्णन कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! भगवान्‌ने आदिम स्वायम्भुव मनुकी आकूति और देवहूति नामक दो कन्याओंके गर्भसे भिन्न-भिन्न समयोंमें धर्म और ज्ञानका उपदेश करनेके लिए कपिलदेव और यज्ञ नामसे अवतार लिया था। शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु कामभोगसे विरक्त होकर तप करनेके लिए पत्नीके साथ राज्यभोग छोड़कर वनको चले गये। उन्होंने सुनन्दानदीके तटपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्ष तक दुश्चर तप किया। तपके समय वे इस प्रकार ईश्वरकी स्तुति करते थे—लोग

जो कुछ देख पाते हैं, वह सभी ईश्वरके चैतन्यसे व्याप्त हैं। वह ईश्वर सबमें अवस्थित है। अतएव हे मनुष्यवृन्द! उस ईश्वरने जो कुछ दिया है, उसीसे सब विषयोंका भोग करो। अपने लिए अन्य किसीके धनपर मन न चलाओ। वह ईश्वर सबको देखता है, किंतु और सब लोग उसे देखनेमें अशक्त हैं। सभी भूतोंके अन्तर्यामी उस ईश्वरको भजो। जिसका आदि, अन्त और मध्य नहीं है, जिसका कोई आत्मीय अथवा पर नहीं है, जिसका अभ्यन्तर और बाह्य नहीं है, जो रामकृष्ण आदि नानारूपोंमें अवतार लेकर अपने आचार द्वारा मनुष्योंको शिक्षा देते हैं, मैं उन्हीं ईश्वरकी शरणमें हूँ। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मनुभगवान समाधिस्थ होकर ईश्वरका नाम ले रहे थे, उसी समय क्षुधासे व्याकुल असुर और राक्षसगण उनको असहाय जानकर भक्षण करनेके लिए दौड़े। उन दुष्टोंका वह दुष्ट विचार देखकर यज्ञनामक सर्वव्यापक हरिने अपने पुत्र यामनामक देवगणके साथ उन दैत्योंका संहार किया और वे स्वयं इन्द्रासनपर बैठकर त्रिलोकीका पालन करने लगे। हे राजन्! द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष था। वे अग्निदेवके पुत्र थे। इन मनुके सुषेण और रोचिष्मान आदि पुत्र हुए। स्वारोचिष मन्वन्तरमें रोचन नामक इन्द्र, तुषित आदि देवता और ऊर्जस्तम्भ आदि ब्रह्मवादी सप्तर्षि विद्यमान थे। इस मन्वन्तरमें वेदशिरा नामक एक ऋषि थे। उनकी स्त्रीका नाम तुषिता था। तुषिताके गर्भसे भगवान्ने जन्म ग्रहण किया और विभु नामसे विख्यात हुए। विभुदेवने बालब्रह्मचर्य ग्रहण किया। उस समय अठासी हजार ऋषियोंने उनसे ब्रह्मचर्यव्रतकी शिक्षा ली। तृतीय मनुका नाम उत्तम था।

वे प्रियव्रतके पुत्र थे। पवन, सृंजय और यज्ञहोत्र आदि उनके पुत्र हुए। उत्तम मन्वन्तरमें वशिष्ठके पुत्र प्रमद आदि सप्त ऋषि और सत्य, वेद, श्रुत और भद्र नामक देवता और सत्यजित् नामक इन्द्र वर्तमान थे। उत्तम मन्वन्तरमें धर्मकी सूनृता नामक भार्याके गर्भसे भगवान पुरुषोत्तमने सत्यव्रतगण सहित जन्म लिया और सत्यसेन नामसे विख्यात हुए। सत्यसेन भगवान सत्यजित्के सखा थे। सत्यजित्ने मिथ्याव्रतधारी, दुःशील, दुष्ट यक्षराक्षसों- और प्राणियोंका संहार करनेवाले अन्य प्राणियोंका संहार किया। चौथे मनुका नाम तामस था। वे उत्तमके भाई थे। उनके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। तामस मन्वन्तरमें सत्यक हरि और वीर नामक देवता, त्रिशिख नामक इन्द्र और ज्योतिर्धामा आदि सप्तऋषि विद्यमान थे। हे महाराज! जब युगधर्मसे कालवश सम्पूर्ण वेद लुप्तप्राय हो गये थे, तब विधृतिके जिन-जिन पुत्रोंने अपने तेजसे वेदोंको धारण किया, वे तामस मन्वन्तरमें वैधृति नामक देवता हुए। तामस मन्वन्तरमें भगवान्ने हरिमेधाकी पत्नी हरिणीके गर्भसे जन्म लिया और हरि नामसे विख्यात हुए। हरि भगवान्ने ग्राहके मुखसे गजेन्द्रका उद्धार किया। यह कथा सुनकर राजा परीक्षितने कहा—हे व्यासनन्दन! श्रीहरिने ग्राहके मुखसे जिस प्रकार गजको उबारा था, यह कथा मैं आपके श्रीमुखसे सुनना चाहता हूँ।

द्वितीय अध्याय

गजेन्द्रकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! त्रिकूट नामक एक बहुत प्रसिद्ध तथा सुन्दर पर्वत है। वह तरह-तरहके वृक्षादिसे परिशोभित है। वह पर्वत दस हजार योजन ऊँचा है और चारों ओरसे क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। एक दिन उस त्रिकूट पर्वतपर उसी पर्वतके वनमें रहनेवाला एक गजराज अपनी हथिनियोंके साथ विचरण करता तथा झाड़ियों और वनस्पतियोंको तोड़ता हुआ सरोवरके पास पहुँचा। वह गजराज धूपकी गरमीसे व्याकुल और प्यासा था। वह जल पीनेके लिए सरोवरके भीतर घुस पड़ा। जल पीकर स्वस्थ होनेके बाद अपने साथियोंको जल पिलाने लगा। हे राजन्! उस सरोवरमें एक महाबली ग्राह रहता था। उस ग्राहने होनहारकी प्रेरणासे क्रोधपूर्वक गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। महाबली गजराज यथासाध्य अपना पैर छुड़ानेकी चेष्टा करने लगा। बलवान ग्राह भी जलके भीतर गजराजको खींचने लगा। हाथियों और हथिनियोंने गजराजको उबारनेकी चेष्टा की, किन्तु किसी प्रकार वे गजको ग्राहके मुखसे न छुड़ा सके। दोनों ओरसे युद्ध होता रहा। यह युद्ध एक हजार वर्षतक चलता रहा। इतने समयमें किसीकी भी मृत्यु नहीं हुई और न किसीकी हार ही हुई। यह देखकर देवताओंको आश्चर्य हुआ। तदनन्तर यूथपति गजराज संकटमें पड़कर अपनेको उससे किसी प्रकार भी छुड़ानेमें समर्थ नहीं हुआ। वह अत्यन्त चिन्तित हो गया। वह सोचने लगा—मेरी जातिवाले ये सब हाथी मुझको बचा नहीं सकते और मैं भी

अपनी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, तब हथिनियाँ कैसे मेरी रक्षा कर सकती हैं ? इस ग्राहने मुझको जो पकड़ा है सो अवश्य विधाताका ही पाश है। जो परमपुरुष ब्रह्मादि देवताओंका भी परम आश्रय है, मैं उसीकी शरणमें जाता हूँ। इस प्रकार सोचकर वह गजराज शुद्ध परमेश्वरका शरणापन्न हुआ।

तृतीय अध्याय

गजेन्द्रमोक्षकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब ब्रह्मा आदि देवताओंमेंसे कोई भी गजराजका उद्धार करनेके लिए नहीं आया, तब सब प्राणियोंके आत्मा सर्वदेवमय हरि गजकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर स्वयं उस स्थानपर प्रकट हो गये। गजेन्द्रको संकटमें देखकर वेदमय गरुड़की पीठपर चढ़कर भगवान नारायण उसके निकट दया करके आ पहुँचे। आकाशमें गरुड़के ऊपर सवार चक्रधारी भगवानको देखकर गजराजने नमस्कार करते हुए कातरता प्रकट की। गजेन्द्रको पीड़ित देखकर विष्णुभगवान उसी क्षण गरुड़की पीठसे कूदकर नीचे आ गये। उन दीनबन्धुने दयापूर्वक ग्राह समेत गजेन्द्रको सरोवरसे बाहर निकाल लिया और चक्रसे ग्राहका सिर काट डाला। श्रीहरिने इस प्रकार देवताओंके सामने गजेन्द्रको संकटसे मुक्त कर दिया।

चतुर्थ अध्याय

ग्राहकी मुक्ति

हे राजन्! यह ग्राह कि जिसने गजेन्द्रको पकड़ लिया था, पूर्व जन्ममें हूहू नामक श्रेष्ठ गन्धर्व था। पीछे वही देवल ऋषिके शापसे ग्राह हो गया। इस समय भगवानके चक्रसे काटे जानेपर मरनेके साथ तुरत ही वह शापसे मुक्त हो गया। फिर आश्चर्यजनक सुन्दर गन्धर्वशरीर धारण करके उसने नारायणको सिर झुकाकर प्रणाम किया और भगवानका गुणगान करते-करते निष्पाप होकर उनकी प्रदक्षिणा करके सबके सामने ही गन्धर्वलोकको चला गया। हे राजन्! इधर गजेन्द्र भी भगवान्के हाथका स्पर्श होनेके कारण अज्ञानसे मुक्त होकर भगवानके समान पीताम्बर धारण करके दिव्य चतुर्भुजरूप हो गया। गजेन्द्र पूर्वजन्ममें पाण्डुदेशका इन्द्रद्युम्न नामक राजा था। वह विष्णुव्रत परायण होकर समय व्यतीत करता था। एक दिन राजा इन्द्रद्युम्न राज्यभोग त्यागकर कुलाचलपर चला गया। वहीं आश्रम निर्माणकर तपस्वी वेषमें श्रीहरिकी पूजा-आराधना करने लगा। एक दिन वह भगवानके ध्यानमें बैठा था कि उसी समय अगस्त्यमुनि अपने शिष्योंके साथ उसके आश्रममें आ पहुँचे। किन्तु राजा श्रीहरिकी आराधनामें मग्न था। इस कारण वह मुनिकी अभ्यर्थना आदि कुछ भी न कर सका। यह देखकर मुनिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने शाप दे दिया कि तुम जड़ हाथीकी योनि प्राप्त करके अज्ञानमें निमग्न रहो। इन्द्रद्युम्नने बहुत कालतक भगवान हरिकी आराधना की थी। इस कारण गजयोनि पानेपर भी उसकी स्मरणशक्ति नष्ट नहीं हुई।

हे राजन् ! भगवान नारायणने गजेन्द्रको मुक्ति देकर यह बात कही—हे अङ्ग ! जो लोग प्रातःकाल जागकर तुमको स्मरण करेंगे और यह सरोवर, गिरि, कानन, लता, गुल्म, शिव, ब्रह्मा, मेरे निवासका स्थान, शिखर, मेरी प्रिय आवासभूमि क्षीर-सागर, श्वेतद्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, गदा, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़, शेषनाग और मेरे हृदयमें निवास करनेवाली लक्ष्मीदेवी, शिव, ब्रह्मा, देवर्षि नारद, प्रह्लाद, मेरे मत्स्य-कूर्म-वराह आदि अवतारोंके किये हुए सब पवित्र कार्य, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, प्रणव, सत्य, माया, गौ, ब्राह्मण, भक्तिलक्षण युक्त धर्म, चन्द्रमा, कश्यप आदिकी स्त्री—दक्षकन्याएँ, गंगा, सरस्वती, नन्दा, कालिन्दी, ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्तब्रह्मर्षि और अन्य पवित्र यशस्वी महात्मा मनुष्य आदि मेरे विविध रूपोंका स्मरण करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त हे गजेन्द्र ! जो लोग पिछले पहर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर पूर्वोक्त मेरी मूर्तियोंमें मेरी स्तुति करते हुए तुम्हारे कहे हुए स्तोत्रका पाठ करेंगे, उनको मैं अन्त समयमें सुमति और सद्गति दूँगा। ऐसा कहकर हृषीकेश भगवान गरुड़पर सवार होकर अपने स्थानको चले गये।

पञ्चम अध्याय

पाँचवें और छठें मनुका विवरण और विप्रशापसे श्रीभ्रष्ट देवताओंके साथ ब्रह्मा द्वारा श्रीहरिकी स्तुति

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! पञ्चम मनुका नाम रैवत था।

वे चतुर्थ तामस मनुके सहोदर भाई थे। रैवत मनुके अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि कई पुत्र हुए। रैवत मन्वन्तरमें विभु नामक इन्द्र, भूतरथ आदि देवता और हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि हुए। स्वयं भगवान नारायणने इस मन्वन्तरमें शुभ्रके वीर्यसे उनकी स्त्री विकुण्ठाके गर्भमें वैकुण्ठवासी देवताओंके साथ वैकुण्ठ नामसे अवतार लिया। उन्हीं वैकुण्ठ भगवानने रमादेवीकी प्रार्थनासे वैकुण्ठलोकका निर्माण किया। हे राजन्! छठें मनुका नाम चाक्षुष है। वे चक्षुके पुत्र हैं। पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि इनके पुत्र हुए। चाक्षुष मन्वन्तरमें मन्त्रद्रुम नामक इन्द्र हुए। आप्यादिगण देवता और हविष्मान तथा वीरक आदि उस समय सप्त ऋषि थे। इस मन्वन्तरमें भगवान विष्णुने वैराजकी भार्या देवसम्भूतिके गर्भ द्वारा अपने अंशसे जन्म लेकर अजित नाम धारण किया। अजित भगवानने कच्छपरूपसे जलमें घूमते हुए मन्दराचल पर्वतको पीठपर धारण किया, क्षीरसागरको मथा और देवताओंको अमृत पान कराया। राजा परीक्षितने समुद्रमन्थनका इतिहास पूछा तो शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! असुरोंने जब युद्धमें तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे देवताओंका विनाश करना आरम्भ किया तो अनेकानेक देवता युद्धभूमिमें गिरकर फिर नहीं उठे। इसके अतिरिक्त दुर्वासा ऋषिके शापसे इन्द्रके साथ तीनों लोक जब श्रीविहीन हो गये और याग-यज्ञादि क्रियाकलाप एकदम बन्द हो गये, तब इन्द्र तथा वरुण आदि लोकपाल मिलकर यह संकट टालनेका उपाय सोचने लगे, किन्तु कोई भी उपाय ठीक नहीं कर सके। अन्तमें सब लोगोंने ब्रह्माजीके पास जाकर सब वृत्तान्त

सुनाया। ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागरको गये और परम पुरुष भगवान हरिकी स्तुति करने लगे।

षष्ठ अध्याय

क्षीरसागरसे अमृत निकालनेका उद्योग

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! देवगणके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान हरि उनके सम्मुख प्रकट हुए। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंको सम्बोधित करके भगवानने कहा—जिस उपायसे तुम लोगोंका हित होगा वह मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। इस समय दैत्य-दानवोंको शुक्राचार्यकी कृपा प्राप्त है। जबतक तुम लोगोंकी उन्नतिका समय न आवे, तबतक जाकर उन दानवों और दैत्योंसे सन्धि कर लो और इसके बाद अमृत निकालनेका यत्न करो। क्योंकि अमृत पीनेसे मृत्युग्रस्त प्राणी भी अमर हो सकता है। उसका उपाय यह है कि सब तृण, लता, औषध और वनस्पति क्षीरसागरमें डालो। मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाओ। इस प्रकार मेरी सहायतासे दैत्योंके साथ मिलकर एकाग्रचित्तसे सागर मथो। हे देवताओं! तुम लोगोंके साथ मिलकर दैत्यगण भी समुद्र मथेंगे तो उनको केवल क्लेश ही होगा, किन्तु तुम लोगोंको फल अर्थात् अमृत मिलेगा। बलवान सहकारियोंके साथ कोई काम करनेकी आवश्यकता हो तो उनकी बातें मानकर ही चलनेसे अच्छा होता है। इसलिए इस समय असुरगण जो कुछ कहें, उससे सहमत हो जाना। हे देवगण! समुद्रमन्थनसे पहले कालकूट विष निकलेगा। उससे

तुम लोग भय मत करना और मन्थन करते-करते उनसे जो रत्न निकलेंगे, उनमें लोभ या अभिलाषा न करना अथवा अभिलाषा पूर्ण न होनेपर क्रोध भी मत करना। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान पुरुषोत्तम देवताओंसे ये वचन कहकर अन्तर्धान हो गये और देवगण प्रणाम करके सन्धिकी इच्छासे राजा बलिके पास गये। भगवान पुरुषोत्तमने जिस प्रकार समुद्रमन्थनसम्बन्धी प्रस्ताव रखनेका उपदेश किया था, उसी प्रकार महाबुद्धिमान इन्द्रने अपना प्रस्ताव रखा। महेन्द्रने जो प्रस्ताव रखा, उसे दैत्यराजने भी पसन्द किया और शम्बर-अरिष्टनेमि आदि असुरों तथा त्रिपुरनिवासी दानवोंको भी रुचिकर लगा। हे राजन्! इसके बाद असुर और सुरगण परस्पर मेल करके मित्रभावसे अमृत निकालनेके निमित्त विशेष यत्न करने लगे। तदनुसार बलपूर्वक मन्दर-पर्वतको पृथ्वीसे उखाड़कर देवता और दानवगण सिंहनाद करते हुए क्षीरसागरकी ओर चल पड़े। किन्तु बहुत दूरतक बोझा ले चलनेसे सब देव और दानव थक गये, जिससे पर्वत मार्गमें ही गिर गया। मन्दराचलके राहमें गिर पड़नेसे उसके नीचे पड़कर अनेक देवता और दानव चूर्ण हो गये। यह देखकर भगवान गरुड़ध्वज तुरन्त उस स्थानपर प्रकट हुए और उनके टूटे-फूटे अंग-प्रत्यंग देखकर अपने कृपाकटाक्षसे पुनः जीवित कर दिया। तदनन्तर नारायणने उस पर्वतको लीलापूर्वक एक हाथसे उठाकर गरुड़की पीठपर रख दिया और स्वयं भी उसपर सवार होकर समुद्रकी ओर ले चले। देवता और असुरगण भी उनके साथ क्षीर-सागरकी तरफ गये। तदनन्तर समुद्रके पास पहुँचनेपर गरुड़ने

मन्दराचलको अपनी पीठसे उतारकर रख दिया और भगवान उसे जलके पास ले गये। क्योंकि गरुड़के वहाँ जानेसे वासुकिका आगमन नहीं हो सकता था।

सप्तम अध्याय

समुद्रमन्थनसे कालकूटकी उत्पत्ति

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! सागर मथनेसे जो अमृत निकलेगा उसमेंसे कुछ तुमको भी मिलेगा, यह विश्वास दिलाकर देवता और दानवोंने नागराज वासुकिको मथानीकी रस्सीके रूपमें लग जानेको प्रवृत्त किया। उन्होंने एकाग्रचित्तसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ कर दिया। वासुकिके मुखमें और दातोंमें तीव्र विष रहनेके कारण भगवान् हरिने कौशलपूर्वक असुरों द्वारा उसे पकड़वाना चाहा और इसी उद्देश्यसे उन्होंने पहले वासुकिका मुँह पकड़ा। अन्य देवता भी उनकी ओर लगकर सहायक बन गये। यह देखकर दानवोंने सोचा कि पौरुषका काम सम्भवतः यही है। इसलिए आपत्ति प्रकट करके वे लोग बोले—हम लोग सर्पकी पूँछ न पकड़ेगे। क्योंकि वह अमङ्गल अङ्ग है। दैत्योंके मुखसे यह बात सुनकर भगवान हरि मन ही मन मुसकुराने लगे और उसी क्षण वासुकिका मुख छोड़कर उन्होंने देवताओंके साथ वासुकिकी पूँछ पकड़ ली। हे राजन्! सब लोग सागर मथने लगे, किन्तु टिकनेका कुछ भी आधार न रहनेके कारण वह बड़ा भारी पर्वत जलके अन्दर धँसने लगा। यह देखकर देवताओं और दैत्योंके मन खिन्न हो गये और उनके मुख फीके पड़ गये। यह विघ्न देखकर भगवान्ने अति

अद्भुत कच्छप शरीर धारणकर जलके भीतर अपनी पीठपर पर्वतको उठा रखा। मन्दराचलको ऊपर उठा देखकर देवता और दानव फिर प्रसन्न चित्तसे समुद्र मथने लगे। कच्छपरूपधारी भगवानने अपनी पीठ लाख योजन चौड़ी बना ली। तदनन्तर हरि भगवानने असुरों और देवताओंके शरीरोंमें प्रवेश करके उन लोगोंका बलवीर्य बढ़ा दिया। यह देखकर ब्रह्मा, इन्द्र और शंकर आदि सब देवता स्तुति करते हुए उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। मथते-मथते नागराज वासुकिके नेत्रों और मुखोंके हजारों कठोर श्वासों और विषैले धुएँसे युक्त अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं। उनकी झार लगनेसे असुरगण दावानलसे जले हुए साखूके वृक्षोंकी भाँति प्रभाहीन हो गये। किन्तु उसी समय ईश्वरीय इच्छाके वशवर्ती मेघमण्डल भगवद्भक्त देवगणकी ओर शीतलधाराकी फुहारें छोड़ने लगे और सागरकी तरङ्गसे सुशीतल वायु चलने लगा। इस प्रकार श्रीहरिकी कृपा होनेसे देवताओंको उस विषैले धुएँसे उतना कष्ट नहीं हुआ, जितना असुरोंको हुआ। इस प्रकार जब स्वयं अजित भगवान समुद्र मथने लगे, तब उसके भीतर रहनेवाले जल-जन्तु व्यथित और व्याकुल हो उठे। सबसे पहले सागरसे हलाहल नामक बहुत ही तीव्र विष निकला। वह सब लोगोंके लिए असहनीय हो उठा। सब प्रजा और प्रजापति लोग उससे अपनी रक्षा होते न देखकर भयभीत हो मृत्युञ्जय सदाशिवकी शरणमें गये। भगवान शंकरने स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर प्रियतमा सतीको समझाकर कहा—हे भवानी देवि! देखो, कालकूटके विषसे प्रजागणपर कैसा संकट आ पड़ा है। ये लोग प्राणोंकी रक्षाके लिए बहुत ही व्याकुल हो

रहे हैं। इनको निर्भय करना हमारा कर्तव्य है। जो लोग प्राणियोंपर कृपा करते हैं, उनपर सर्वदेवमय हरि प्रसन्न होते हैं। भगवान् हरिके सन्तुष्ट होनेपर चराचर जगत् सहित मैं भी सन्तुष्ट होता हूँ। अतएव मैं यह विष अब पी रहा हूँ। मेरे इस कार्यसे प्रजागणका कल्याण हो। हे राजन्! इस प्रकार भगवती भवानीसे कहकर विश्वभावन भगवान महेश्वर वह हलाहल विष पान करनेको प्रवृत्त हो गये। पार्वतीदेवी शङ्करका प्रभाव जानती थीं। इसलिए उन्होंने भी शङ्करकी इच्छाका अनुमोदन कर दिया। तदनन्तर भूतभावन महादेवने करुणावश उस सर्वतोव्याप्त हलाहलको अंजलीमें लेकर पी लिया। उस विषने महादेवजीपर भी अपना प्रभाव दिखाया, जिससे शिवजीका कण्ठ नीलवर्ण हो गया और वह नीलवर्ण परोपकारी शम्भुके लिए आभूषणस्वरूप हो गया। हे राजन्! महादेवने जिस समय विषपान किया, उस समय जो कुछ विष उनकी अंजलीकी संधियोंसे गिर पड़ा, उसको सर्प-बिच्छू आदि काटने वाले विषैले जन्तुओं और विषौषधियोंने आपसमें बाँट लिया।

अष्टम अध्याय

भगवान विष्णुका मोहिनीरूप धारण करना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! समुद्रका मन्थन पुनः आरम्भ हुआ तो क्षीरसागरसे कामधेनु प्रकट हुई। ब्रह्मवादी ऋषियोंने यज्ञके हविके लिए उस अग्निहोत्री धेनुको ले लिया। उसके बाद उच्चैःश्रवानामक घोड़ा उत्पन्न हुआ। दैत्यराज बलिने उसे लेनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु इन्द्रने विष्णुभगवानकी शिक्षाके अनुसार चित्त

नहीं चलाया। फिर समुद्रसे ऐरावत नामक गजराज निकला। चन्द्रतुल्य श्वेतवर्ण ऐरावतके शिखर समान उसके चार दाँत थे। तदनन्तर ऐरावत आदि आठ दिग्गज और उनकी अभ्रमु आदि आठ हथिनियाँ प्रकट हुईं। अन्तमें समुद्रसे पद्मराग अर्थात् कौस्तुभ नामक मणि उत्पन्न हुआ। हरिभगवानने उस मणिको अलङ्कारकी भाँति अपने वक्षःस्थलमें धारण किया। उसके बाद स्वर्गलोकका आभूषण कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ। स्वर्गमें कल्पवृक्ष प्रार्थियोंकी सभी प्रार्थनायें सफल करता है। फिर कण्ठमें पदक धारण किये सुन्दर वस्त्र पहिने अप्सराएँ प्रकट हुईं। मनोहर गति और विभ्रमपूर्ण चितवनसे उन्होंने स्वर्गवासियोंके चित्तको अपने वशमें कर लिया। हे राजन्! इसके बाद लक्ष्मीदेवी बिजलीके समान आविर्भूत होकर अपनी कान्तिसे दिशाओंको रंजित करने लगीं। उनका रूप देखकर सभी मोहित हो गये और उनको पानेकी अभिलाषा करने लगे। लक्ष्मीदेवीको देखकर देवराज इन्द्रने एक अद्भुत आसन उनको भेंटमें दिया। श्रेष्ठ नदियोंने स्त्रीरूप धारण करके सुवर्णके कलसोंमें अपना-अपना पवित्र जल लाकर अर्पण किया। पृथ्वीने औषधियाँ लाकर भेंट कीं। गौओंने पञ्चगव्य और वसन्तने चैत्र और वैशाखके फल-फूल भेंट किये। तदनन्तर ऋषिगणने यथाविधि लक्ष्मी देवीका अभिषेककार्य सम्पन्न किया। गन्धर्वगण मङ्गलगान करने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। मेघगण मृदङ्ग, पणव, मुरज, गोमुख, आनक, शङ्ख, वेणु और वीणा आदि गम्भीर शब्दवाले अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे। हे राजन्! चारों दिग्गज सुवर्णके कलशोंसे पद्महस्ता लक्ष्मी देवीका अभिषेक

करने लगे और ब्राह्मणगण वैदिक मन्त्र पढ़ने लगे। समुद्रने एक जोड़ा रेशमी पीताम्बर लक्ष्मीजीको दिया। वरुणदेवने एक वैजयन्ती माला, प्रजापति विश्वकर्माने अनेक आभूषण, सरस्वतीने हार, ब्रह्माजीने पद्म और नागगणने दो कनककुण्डल भेंट किये। तदनन्तर देवी लक्ष्मी एक फूलोंकी माला लेकर इधर-उधर भ्रमण करने लगीं। लक्ष्मीजीने बहुत सोच-विचारकर नारायणके गलेमें वह कोमल कमलकलित जयमाला डाल दी। जयमाला पहनानेके बाद लक्ष्मीजी मौनभाव धारण करके लज्जापूर्ण मन्द मुसकानसे विभासित और विकसित नयनों द्वारा हरिके वक्षःस्थलमें स्थान बनाकर अवस्थित हुई। परमपिता नारायणने अपने वक्षःस्थलको जगज्जननी लक्ष्मीदेवीके निवासका स्थान बना दिया। तदनन्तर समुद्रसे एक कमलनयनी वारुणीनामक कन्या निकली। हरिकी अनुमति पाकर दैत्योंने उसको ले लिया। हे राजन्! इसके बाद एक परम अद्भुत पुरुष अमृत भरा कलश हाथमें लिये प्रकट हुए। उनका रूप मनोहर था और वे मणिमय कुण्डल धारण किये हुए थे। वे साक्षात् विष्णुके अंशावतार वैद्यशिरोमणि धन्वन्तरिजी थे। वे आयुर्वेदके प्रथम आचार्य हैं और उनको यज्ञोंमें भाग भी दिया जाता है। धन्वतरिके हाथमें अमृतसे पूर्ण कलश देखकर असुरगण बलपूर्वक झपटकर उसे छीन ले गये। यह देखकर देवता लोग बहुत खिन्न हुए और हरिभगवानकी शरणमें गये। भगवानने देवताओंको सान्त्वना देते हुए कहा—मैं दैत्यगणोंमें पारस्परिक झगड़े कराकर योगमायाके प्रभावसे तुम लोगोंकी मनोवांछा पूर्ण कर दूँगा। तुम लोग खेद मत करो।

हे राजन् ! अमृतको लेकर लोभी दैत्यगण परस्पर घोरतर विवाद करने लगे। उसी अवसरपर सब उपायोंके जानकार ईश्वर हरिने अनिर्वचनीय और परम अद्भुत स्त्रीका रूप धारण किया। भगवान विष्णुने मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित कर लिया। वह मोहिनी मूर्ति लज्जापूर्ण मधुर मुसुकानके साथ भ्रुकुटीरूप धनुषको विचलित करके मोहनेवाली दृष्टिसे बारंबार दैत्योंके अन्तःकरणको कामके बाणोंसे बींधने लगी। हे महाराज ! उस कामिनीका अपूर्व रूपलावण्य और भ्रूभङ्गी देखकर दैत्योंका चित्त मुहुर्मुहुः कामोत्तेजित होने लगा।

नवम अध्याय

दानवोंका अमृतसे वञ्चित होना

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सभी दैत्य भगवानका मोहिनी रूप देखकर मोहित हो गये। उन लोगोंने अमृतका कलस मोहिनीजीके हाथमें दे दिया और कहा—तुम न्यायानुमोदितरूपसे यह अमृत हम सब लोगोंमें बाँट दो जिससे हम लोगोंका यह आपसी झगड़ा मिट जाय। भगवानने कहा—हे दानवों ! तुमलोग मुझ पुंश्चली स्त्रीका क्यों इतना अनुसरण और मुझपर विश्वास करते हो। पण्डित लोग कभी ऐसी स्त्रियोंका विश्वास नहीं करते। कुत्ते और कुलटा स्त्रियाँ नित्य नवीनकी खोज करती रहती हैं। तदनन्तर मोहिनीरूपी हरिने अमृतका पात्र हाथमें लेकर मुसकुराते हुए कहा—देखो, मैं जो कुछ करूँ वह भला हो या बुरा, तुम लोगोंको मान लेना पड़ेगा। यदि कहो तो मैं यह अमृत बाँटना

आरम्भ करूँ। मोहिनीकी यह बात सुनकर असुरोंने कहा—अच्छा! ऐसा ही होगा। तदनन्तर असुरोंने उपवास करके स्नान और अग्निमें हवन किया। फिर ब्राह्मणोंको नमस्कार करके ईश्वरका नाम स्मरण करनेके बाद वे लोग कुशासनोंपर बैठ गये। मोहिनी कलश हाथमें लेकर दैत्योंकी ओर मुख करके मीठे-मीठे वचनोंसे उनको भुलाती हुई पिछले पैरोंसे देवताओंकी पंक्तिमें आ पहुँचीं और उनको ही अजर-अमर कर देनेवाला अमृत पिलाने लगीं। हे राजन्! असुरगण अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए चुपचाप बैठे रहे। इसके अतिरिक्त वे मोहिनीजी पर तन-मनसे अनुरक्त और आसक्त थे, इस कारण कुछ भी न बोल सके। इसी बीच हे राजन्! दानव राहु देवताओंके चिह्न धारण करके देवताओंकी पंक्तिमें छिपा बैठा था। ज्योंही मोहिनी भगवानने राहुको अमृत दिया त्योंही पास बैठे हुए चन्द्र और सूर्यने भगवानको बता दिया, कि यह देवता नहीं है, यह तो असुर राहु है। यह सूचना पाते ही हरिने तीक्ष्ण धारवाले सुदर्शन चक्रसे झटपट राहुका सिर काट डाला। अमृत कंठसे नीचे नहीं आया था, इसलिए कबन्ध कटकर गिर गया और सिर अमर हो गया। ब्रह्माजीने सूर्य आदिके समान उसको भी ग्रह बना दिया। वैरभाव धारण करके राहुग्रह अब भी प्रत्येक पर्वमें ग्रसनेकी इच्छासे सूर्य और चन्द्रमाकी ओर दौड़ता है। हे राजन्! जब सब देवताओंने सम्पूर्ण अमृत पी लिया, तब लोकोंकी रक्षा करनेवाले भगवान हरिने दैत्योंके आगे ही मोहिनीरूप त्यागकर अपना रूप धारण कर लिया।

दशम अध्याय

देवासुरसंग्राम

भगवान विष्णु देवताओंको अमृत पिलाकर सबके सामने ही गरुड़की पीठपर चढ़कर अपने स्थान अर्थात् वैकुण्ठलोकको चले गये। तदनन्तर अमृत न पी सकनेके कारण असुरगण देवताओंके साथ घोरतर युद्ध करने लगे। इस युद्धमें विरोचनके पुत्र राजाबलि स्वयं दैत्यसेनाके सेनापति बनकर युद्ध सञ्चालन कर रहे थे। मायावी दानवोंने विविध मायाओंका सृजन किया। इस युद्धमें देवताओंके अनेक सैनिक मारे गये। हे राजन्! इन्द्र आदि देवता युद्धकी भीषणतासे अत्यन्त घबड़ा गये और बचनेका कुछ भी उपाय न देखकर भगवानका ध्यान करने लगे। ध्यान करते ही उसी स्थानपर भगवान प्रकट हुए। जिस प्रकार जागनेपर स्वप्नावस्था दूर हो जाती है, उसी प्रकार पूजनीय हरिके उस युद्धभूमिमें प्रकट होनेपर उनकी महामहिमासे असुरोंकी कूटमन्त्रमयी सब मायाएँ सहसा लुप्त हो गयीं। समरभूमिमें गरुड़वाहन हरिको देखकर सिंहपर सवार कालनेमि दानवने कराल त्रिशूल घुमाकर गरुड़के ऊपर चलाया। वह त्रिशूल गरुड़के सिरपर गिरने भी नहीं पाया था कि हरिने लीलापूर्वक उसको हाथपर रोक लिया और उसीसे सिंह समेत कालनेमिको नष्ट कर दिया। हे राजन्! इसके बाद भगवानने अपने चक्रसे माली और सुमाली नामक दोनों दानवोंके सिर काट दिये। तदनन्तर माल्यवान नामक असुरने हरिके निकट आकर गरुड़पर कठिन गदा चलायी और

सिंहनाद करने लगा। आदि पुरुष नारायणने सुदर्शन चक्रसे उसका भी सिर तत्क्षण काट डाला।

एकादश अध्याय

दैत्यगणोंका पुनर्जीवन

तदनन्तर इन्द्रने क्रोध करके विरोचनके पुत्र बलिपर चलानेके लिए वज्र उठाया तो प्रजागण हाहाकार करने लगे। तब वज्रधारी इन्द्र और बलिमें परस्पर कटु वाक्योंका प्रयोग और घोरतर युद्ध होने लगा। फिर इन्द्रके वज्रप्रहारसे राजा बलि विमानके साथ आकाशसे पृथ्वीतलपर गिर पड़े। बलिका सखा और हितकारी जम्भनामक एक दानव था। उसने जब अपने प्रिय सखा बलिको इस प्रकार गिरते देखा, तब मरे हुए मित्रका बदला लेनेके लिए वह सिंहवाहन महाबली असुर आगे बढ़ा और गदा लेकर ऐरावत हाथीके कन्धेपर मारी और फिर इन्द्रपर चलायी। गदाके प्रहारसे गजराज बहुत ही विह्वल होकर दोनों जानुओंसे पृथ्वीपर बैठ गया। तब मातलि सारथि उत्तम रथ ले आया। उस रथमें हजार घोड़े जुते हुए थे। इन्द्रदेव हाथीसे उतरकर उस रथपर सवार हुए। जम्भदानवने मातलि सारथिके उस कार्यकी प्रशंसा करके मुसकुराते हुए प्रज्वलित अग्निके समान त्रिशूल मातलिपर चलाया। यह देखकर इन्द्रने क्रोधित होकर वज्रसे जम्भका मस्तक काट डाला। नारदमुनिके मुखसे जम्भकी मृत्युका समाचार पाकर नमुचि, बल और पाक नामक उसकी जातिवाले तीन दानव शीघ्रताके साथ युद्धभूमिमें आये और

इन्द्रके साथ युद्ध करने लगे। हे राजन्! देवराजने अपने अस्त्रसे बल और पाक नामक दोनों असुरोंके सिर काट डाले। यह देखकर अन्य असुर भयभीत होकर भागने लगे। बल और पाकका विनाश देखकर नमुचि दैत्य असह्य शोक और कोपके आवेशसे उन्मत्त-सा हो गया और इन्द्रको मारनेके लिए प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। प्रतापी इन्द्रने बाणोंसे नमुचिके चलाये हुए शूलके हजारों टुकड़े कर डाले। फिर उन्होंने कुपित होकर नमुचिका सिर काटनेके विचारसे सुतीक्ष्ण वज्र चलाया। किन्तु उस वज्रप्रहारसे सिर कटनेकी बात तो दूर रही, उससे उसका थोड़ा-सा चमड़ा भी नहीं छिला। यह आश्चयजनक घटना देखकर देवराज बहुत डर गये। हे राजन्! देवराजको विषादग्रस्त देखकर आकाशवाणी हुई कि—यह दानव सूखे या गीले पदार्थसे नहीं मर सकता। इसको ऐसा ही वर मिला है कि सूखे या गीले पदार्थसे तेरी मृत्यु न होगी। ऐसी अवस्थामें तुम इसको मारनेका कोई और उपाय निकालो। इस प्रकारकी देववाणी सुनकर इन्द्रने विचार करके देखा कि जलका फेना न सूखा और न गीला ही होता है। यह सोचकर इन्द्रने उसी समय समुद्रसे जलका फेना लेकर उसीसे नमुचिका सिर काट डाला। हे राजन्! नमुचिके मारे जानेपर स्वर्गमें देवताओंके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रही। देवताओंने स्वर्गमें नगाड़े बजाये और अप्सराएँ आनन्दसे नृत्य करने लगीं। देवताओं और दानवोंका इस प्रकार क्षय होते देखकर ब्रह्माजीने देवर्षि नारदको युद्ध निवृत्त करनेके लिए भेज दिया। नारदजीने देवताओंके पास जाकर कहा—नारायणके बाहुबलसे तुम लोगोंको अमृत मिला

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और कमलाके कृपाकटाक्षसे तुम्हारे बलवीर्य और वैभवकी वृद्धि हुई है। अतएव अब युद्ध बन्द करो। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! देवर्षि नारदकी बात मानकर देवता लोग अपना क्रोध रोककर अपने धामको चले गये। जो दानव युद्धभूमिमें बचे हुए थे, वे नारदमुनिकी आज्ञाके अनुसार जीवहीन बलिका शरीर लेकर अस्ताचलको गये। वहाँ शुक्राचार्यने अपनी सञ्जीवनी नामक विद्याके प्रभावसे विनष्ट दानवोंको पुनर्जीवितकर दिया। शुक्रका हाथ लगते ही बलिने जीवित होकर फिर संज्ञा लाभ किया। यद्यपि बलिकी पराजय हुई तो भी लौकिक तत्त्वके भली-भाँति अभिज्ञ होनेके कारण वे थोड़ा भी खिन्न या उदास नहीं हुए।

द्वादश अध्याय

मोहिनीरूप देखकर महेशका मोहित होना

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवानका मोहिनीरूप देखनेके लिए महादेवजी नन्दीश्वरकी पीठपर प्रियतमा पार्वतीके साथ सवार होकर और समस्त भूतगणको साथ लिये उस स्थानपर पहुँचे जहाँ मधुसूदन हरि निवास करते हैं। उमासहित उमापतिको देखकर मधुसूदनने समुचित् सत्कार करके बैठनेके लिए आसन दिया। महादेवजी भी विष्णुके प्रति सम्मान दिखाकर सुन्दर आसनपर सुख-पूर्वक बैठे और थोड़ी देरतक विश्राम करनेके बाद मन्द मुसकुराहटके साथ बोले—हे भगवन्! जिस कामिनीरूपसे आपने दानवगणको मोहित किया था उसी रूपको देखनेकी इच्छासे मैं यहाँ आया हूँ। वह रूप देखनेके लिए हमलोगोंको बड़ा कौतूहल

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

है। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! शङ्कर भगवान की यह प्रार्थना सुनकर भगवानने हँसते हुए कहा—हे देवदेव ! आप मेरा वह मोहिनीरूप देखना चाहते हैं। अतएव मैं आपको वह रूप दिखाऊँगा। भगवान नारायण यह बात कहते-कहते वहाँसे अदृश्य हो गये। महेश्वर शङ्कर पार्वतीदेवीके साथ चकित भावसे इधर-उधर देखने लगे। क्षण भरके बाद महेश्वरने देख पाया कि नवपल्लवादिसे सुशोभित उपवनमें एक परम सुन्दरी कामिनी गेंद उछाल उछालकर क्रीड़ा कर रही है। शिवजी उनके रूपसे मोहित हो गये और भवानीजीके पास खड़ी रहनेपर भी निर्लज्ज होकर उस रमणीके पास चले गये। दारुण कामदेवके बाणोंसे पीड़ित शङ्करजी मोहिनीकी ओर दौड़े। उस समय वस्त्र उड़ जानेसे वह कामिनी नग्न थी। अतएव शिवजीको अपनी ओर आते देखकर अत्यन्त लज्जित हुई और हँसती हुई वृक्षोंकी आड़में होकर भाग चली। भगवान शङ्करकी इन्द्रियाँ उन्मत्त हो उठीं और कामदेवके वशीभूत होकर गजराज जिस तरह हथिनीके पीछे दौड़ते हैं उसी तरह वे उस सर्वांग सुन्दरी नारीके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। बहुत दूर तक पीछा करके अन्तमें उसके पास पहुँच गये। शिवजीने उस स्त्रीकी इच्छा न होनेपर भी पीछेसे वेणी पकड़कर उसे रोक लिया और अपने पास खींचकर बलपूर्वक दोनों बाहुओंसे आलिङ्गनकर लिया। मोहिनी अपनेको छुड़ानेके लिए बलप्रयोग करने लगी। इस बलप्रयोगमें उसकी वेणी खुल गयी। हे महाराज ! ऋतुमती हथिनीका पीछा करनेवाले हाथीका जिस तरह वीर्य स्खलित होता है उसी तरह मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ते-दौड़ते भगवान शङ्करका

वीर्य स्खलित होने लगा। महात्मा रुद्रका वीर्य पृथ्वीपर जिन जिन स्थानोंमें गिरा उन-उन स्थानोंमें सोने और चाँदीकी खानें हो गयीं। तदनन्तर भगवान मधुसूदनने पुनः अपनी मूर्ति धारण कर ली। महादेवजी अपनी हारसे कुछ भी लज्जित या क्षुब्ध नहीं हुए। नारायणने शिवजीकी विशेष रूपसे प्रशंसाकी। हे राजन्! श्रीवत्स विभूषित भगवान द्वारा इस प्रकार प्रशंसा और सत्कार पाकर शिवजीने उनकी प्रदक्षिणाकी और उमा तथा पार्षदगणके साथ अपने स्थानको प्रस्थान किया।

त्रयोदश अध्याय

सप्तम आदि चक्षुदर्श मनुओंका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! विवस्वानके पुत्र श्राद्धदेव सातवें मनु हैं। इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, कारूष, पृषध्र और वसुमान—ये सात वैवस्वत मनुके पुत्र हुए। वैवस्वत मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभुगण देवता हैं। और पुरन्दर नामक इन्द्र हैं। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तऋषि हैं। इस मन्वन्तरमें भी कश्यपके वीर्य और अदितिके गर्भसे भगवानका वामन अवतार हुआ था। वामनजी अदितिके सब पुत्रोंमें छोटे हैं। विवस्वानकी संज्ञा और छाया नामक दो स्त्रियाँ थीं। दोनों ही विश्वकर्माकी कन्या थीं। उनकी एक और स्त्री भी थी जिसका नाम वड़वा था। संज्ञाके गर्भसे यमराज श्राद्धदेव और ये तीन पुत्र हुए और यमुना नामक

एक कन्या भी हुई। छायाके सावर्णिनामक मनु और शनैश्चर ये दो पुत्र हुए तथा तपती नामक कन्या हुई। तपतीका विवाह राजा सम्बरणके साथ हुआ। वड़वाके अश्विनीकुमार नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। हे राजन्! इसके बाद आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि नामक मनु होंगे। उनके निर्मोक और विरजस्क आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमे सुतपा, विरज अमृतप्रभ नामक देवगण रहेंगे और इन्द्रका पद विरोचनके पुत्र बलिको प्राप्त होगा। बलिराजा साधारण नहीं हैं। वे तीन पग पृथ्वी माँगनेवाले हरिको तीनों लोक देकर प्रसन्न करेंगे और सप्तम मन्वन्तरमें मिले हुए इन्द्रपदको त्याग कर भगवानके प्रसादसे पीछे सिद्धकाय हो जायँगे। हे राजन्! पहले परीक्षा करनेके लिए भगवान वामनने बलिको बँधवा दिया किन्तु उनकी धर्मनिष्ठा देखकर फिर प्रसन्न हुए और उनको सुतल लोकमें भेज दिया। अब राजा बलि वहाँ इन्द्रके समान वैभवसे वास करते हैं। इस अष्टम मन्वन्तरमें गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृंग और मेरे पिता भगवान बादरायण वेदव्यास—ये सप्तऋषि होंगे। हे राजन्! इसी सावर्णिमन्वन्तरमें देवगुह्यके वीर्य और सरस्वतीके गर्भसे सार्वभौम नामक हरिका अवतार होगा। ईश्वरके अंश परमप्रतापी सार्वभौमजी बलपूर्वक पुरन्दरसे स्वर्गका राज्य लेकर राजा बलिको देंगे। वरुणके पुत्र दक्ष सावर्णि नवम मनु होंगे। उनके श्रुतकेतु और दीप्तकेतु आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पार और मरीचिगर्भ आदि देवता अद्भुत नामक इन्द्र तथा द्युतिमान प्रभृति सप्तऋषि होंगे। इस मन्वन्तरमें आयुष्मानके वीर्य और अम्बुधाराके गर्भसे भगवान

विष्णु जन्मग्रहण करके ऋषभनामसे प्रसिद्ध होंगे। भगवान ऋषभ अपने बाहुबलसे अद्भुत नामक इन्द्रको सर्वसमृद्धि सम्पन्न त्रिभुवनका राज्य भोग करावेंगे। उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि दशम मनु होंगे। भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान, सुकृत, सत्य, जय और मूर्ति आदि सप्तऋषि तथा सुवासन, अविरुद्ध आदि देवगण तथा शम्भु नामक इन्द्र होंगे। इस मन्वन्तरमें भी भगवान विष्णु विश्वस्रष्टागणके गृहमें विषूचीके गर्भसे जन्मग्रहण करके विष्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध होंगे। विष्वक्सेन और देवराज शम्भुमें परस्पर मित्रता होगी। आत्मज्ञानी धर्मसावर्णि ग्यारहवें मनु होंगे। उनके सत्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें विहङ्गम, कालगम और निर्वाणरुचि नामक देवगण तथा वैधृत नामक इन्द्र होंगे। अरुण आदि ऋषि होंगे। भगवान हरि आर्यकके वीर्य और वैधृताके गर्भसे जन्म लेकर धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे। रुद्रसावर्णि द्वादशमनु होंगे। देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि उनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें ऋतधामा इन्द्र होंगे। हरित् आदि देवगण और तपस्वी आग्नीध्रक आदि सप्तऋषि होंगे। भगवान हरि सत्यसहनामक ब्राह्मणकी स्त्री सूनृताके गर्भसे अंशावतार लेकर स्वधामा नामसे प्रसिद्ध होंगे। देवसावर्णि तेरहवें मनु होंगे। देवसावर्णिके चित्रसेन और विचित्र आदि पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें सुकर्मा और सुत्रामा नामक देवगण और दिवस्पति नामक इन्द्र होंगे तथा निर्मोक और तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे। इस मन्वन्तरमें योगेश्वर देवहोत्रके वीर्य और बृहतीके गर्भसे अमूर्ति नामक हरिका अंशावतार होगा।

उनके द्वारा उस समयके दिवस्पति नामक इन्द्रकी सब कामनाएँ सिद्ध होंगी। चौदहवें मनुका नाम इन्द्रसावर्णि होगा। उरु, और गम्भीर बुद्धि आदि उनके पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें पवित्र और चाक्षुष आदि देवगण, शुचि नामक इन्द्र और अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तऋषि होंगे। इस मन्वन्तरमें सत्रायणके वीर्य और विनताके गर्भसे हरि अवतार लेकर बृहद्भानु नामसे प्रसिद्ध होंगे। बृहद्भानुदेव क्रियाकलाभवका विस्तार करेंगे। ये चौदह मनु सहस्र युग पर्यन्त भोग करेंगे। सहस्र युग हो जानेपर एक कल्प पूर्ण होगा।

चतुर्दश अध्याय

मनु आदिके कर्मोंका भिन्न भिन्न विवरण

राजा परीक्षित बोले—हे भगवन्! कृपा करके मनु आदिके कर्मोंका वर्णन कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मनुगण, मनुपुत्रगण, सप्तर्षिगण, इन्द्रगण और देवगण—सभी उसी परमपुरुष नारायणके आज्ञाकारी और अनुगत हैं। ये लोग ईश्वर द्वारा नियुक्त किये जाकर जगत्का कार्य संचालन करते हैं। चार युगके अन्तमें काल पाकर जब श्रुतियोंका लोप हो जाता है तब सप्तर्षिगण अपने तपोबलसे उन श्रुतियोंको प्रकट करते हैं। उन श्रुतियोंसे सनातनधर्म आजतक चला आता है लुप्त नहीं हुआ। मनुगण नारायणकी आज्ञाके अनुसार पृथ्वीमण्डलपर धर्मका प्रचार करते हैं। देवराज इन्द्र सब ऐश्वर्यका भोग करते हुए त्रिभुवनका पालन और यथासमय वर्षा करते हैं। हे महाराज! भगवान हरि

प्रत्येक युगमें सनकादि सिद्धरूप धारण करके ज्ञानका और याज्ञवल्क्यादि ऋषिरूपसे कर्मका एवं दत्तात्रेय आदि योगेश्वररूपसे योगका उपदेश करते रहते हैं। भगवान मरीचि आदिके रूपसे सृष्टि करते हैं, राजाके रूपसे दस्युगणका वध करते हैं और कालके रूपसे शीत, उष्ण आदि विविध गुण धारण करके सम्पूर्ण संसारका संहार कर देते हैं।

पञ्चदश अध्याय

राजा बलिका स्वर्ग विजय

राजा परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन् ! राजा बलिसे भगवान हरिने तीन पगभूमि मांगी थी और फिर मांगी हुई पृथ्वी पाकर भी भगवानने राजा बलिको बँधवाया था। आप इन घटनाओंका वर्णन कीजिये। पूरा वृत्तान्त मैं जानना चाहता हूँ। शुकदेवजी बोले—इन्द्रने राजा बलिको मारकर उनकी राज्यलक्ष्मी हर ली किन्तु शुक्राचार्यकी कृपासे दैत्यपतिने फिर जीवन लाभ किया। तदनन्तर परम उदार राजा बलि, भृगुकुलके शिष्य होकर धनदान पूर्वक मन, वाणी और शरीरसे उन भृगुवंशियोंकी उपासना करने लगे। बलिकी शुश्रूषासे भृगुवंशीय ब्राह्मण प्रसन्न हुए। उन लोगोंने स्वर्गजयाभिलाषी बलिका विधिपूर्वक महा अभिषेक किया और उनके द्वारा विश्वजित् नामक महायज्ञका अनुष्ठान कराया। उस यज्ञमें हव्यकी आहुति देनेपर अग्निकुण्डसे सुवर्णमण्डित एक रथ, इन्द्रके अश्वोंके समान हरिद्वर्ण कई घोड़े, सिंहके चिह्नसे युक्त ध्वजा, कांचनालंकृत धनुष, अक्षयबाण पूर्ण दो तूणीर और दिव्यकवच प्रकट हुआ। बलिको यह सब युद्ध सामग्री मिली तब

उनके पितामह प्रह्लादने उनको एक ऐसी माला दी जिसके फूल कभी मलिन नहीं होते और शुक्राचार्यने एक शंख दिया। तदनन्तर बलिने भृगुप्रदत्त दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर गलेमें माला धारण करके कवच पहिन लिया। धनुष, खड्ग और तूणीर धारण करके दैत्यसेनाके अधिपति राजा बलिने देवताओंकी राजधानी अमरावतीको चारों ओरसे घेर लिया और उसके बाहरी भागमें ठहरकर शुक्राचार्यका दिया हुआ महाशंख बजाया। यह देखकर देवताओंके साथ पुरन्दर इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिके निकट जाकर सब समाचार कह सुनाया। बृहस्पतिजीने कहा—हे इन्द्र! तुम्हारे वैरीका प्रताप इतना बढ़ गया है इसका कारण मैं जानता हूँ। ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे दानवराज उत्तरोत्तर अधिक बलवान बनता गया है। ब्रह्मतेजसे इसके बलकी वृद्धि हुई है अतएव कोई भी इसे जीत नहीं सकता। ब्राह्मणोंकी कृपासे इसका विक्रम और भी बढ़ेगा। किन्तु फिर उन्हीं ब्राह्मणोंका कहा न माननेसे इसका वंश सहित विनाश हो जायगा। हे राजन्! अनन्तर गुरुके परामर्शसे देवता लोग स्वर्ग छोड़कर अदृश्य हो गये। जब देवताओंके साथ इन्द्र पुरी छोड़कर चले गये तब राजा बलिने देवशून्य पुरीपर अधिकार कर लिया और त्रिभुवनको अपने वशमें करके वे उसका शासन करने लगे। शिष्यवत्सल भृगुगणने विश्वविजयी बलिसे एक सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। उन यज्ञोंके प्रभावसे महाउदार बलि दस दिशाओंमें कीर्ति फैलाकर नक्षत्रपति चन्द्रमाके समान शोभाको प्राप्त हुए और राज्यविभवका भोग करने लगे।

षोड़श अध्याय

देवमाता अदितिको पयोव्रतका उपदेश

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! जब देवता लोग इधर-उधर छिप गये और स्वर्गका राज्य दैत्योंने छीन लिया तब देवमाता अदिति अनाथकी भाँति निरन्तर विलाप करने लगीं। बहुत दिनोंके बाद समाधिसे उठकर अदितिके पति प्रजापति कश्यपजी अदितिके आनन्दशून्य आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ अपनी पत्नीको उदासीन और मलिनमुखी देखकर उन्होंने पूछा—हे भद्रे ! तुम किस कारण म्लान और अन्यमनस्क दिखाई पड़ रही हो ? अदितिने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरी सौतके पुत्र दैत्योंने मेरे पुत्रोंका राज्य और रहनेका स्थान छीन लिया है। आप पुत्रोंके साथ मेरी रक्षाका उपाय कीजिये। शत्रुओंने मुझे भी निर्वासित कर दिया है। इस कारण मैं भी दुःखसागरमें डूब रही हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! महर्षिकश्यपने अदितिको समझाकर कहा—भद्रे ! तुम आदि पुरुष भगवान जनार्दनकी उपासना करो। वे अन्तर्यामी और जगद्गुरु हैं। वे ही श्रीहरि तुम्हारा मंगल करेंगे। वे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे। हे देवि ! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षके पहले बारह दिनोंमें तुम पयोव्रत अर्थात् केवल दूध आहार करनेका नियम धारण करके भक्तिपूर्वक कमललोचन भगवानका पूजन करो। यदि मिले तो चतुर्दशीयुक्त अमावास्याके दिन बराहकी खोदी हुई मृत्तिका शरीरमें लगाकर नदीके जलमें स्नान करो और नदीकी धारामें खड़ी होकर इस मन्त्रका उच्चारण करो—हे देवि ! आवासस्थानकी इच्छासे आदि वराहजी तुमको रसातलसे जलके

ऊपर लाये हैं। तुमको नमस्कार है। मेरे पाप दूर करो। इस प्रकार मंत्र उच्चारण करनेसे मंगल होगा। इसके अतिरिक्त नित्य-नैमित्तिक क्रिया सम्पन्न करके एकाग्रचित्तसे तुम प्रतिमामें, हवन-की वेदीमें, सूर्यमें, जलमें, अग्निमें अथवा गुरुमें नवमंत्रोंसे भगवानकी आराधना करना। हे भद्रे! जिससे हरिभगवान प्रसन्न हों वही सफल और यथार्थ यम, नियम, तप, दान, व्रत और यज्ञ है। अतएव हे सति! तुम श्रद्धापूर्वक यह व्रत करोगी तो भगवान हरि प्रसन्न होकर शीघ्र ही तुमको अभिलषित वर देंगे।

सप्तदश अध्याय

भगवानका अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अपने पति महर्षि कश्यपके वचन सुनकर अदितिने भगवान वासुदेवमें मन लगाकर बारह दिनतक पयोव्रत करनेका नियम ग्रहण किया। अनन्तर अदिति-के व्रतसे भगवान आदिनाथने प्रसन्न होकर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करके मनोहररूपसे उनको दर्शन दिया। आँखोंके सामने भगवानको प्रकट देखकर अदितिने साष्टांग प्रणाम किया। तद-नन्तर देवी अदिति लक्ष्मीपति जगत्पतिकी स्तुति करने लगीं। भगवानने प्रसन्न होकर कहा—हे देवि! मैं तुम्हारी कामनाको जानता हूँ। किन्तु इस समय दैत्यगण किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सकते। क्योंकि समर्थ ब्राह्मण लोग उनके अनुकूल हैं सहाय हैं तथा रक्षक हैं। एकाएक उन ब्राह्मणोंके आशीर्वादके प्रतिकूल कुछ भी नहीं किया जा सकता। तथापि हे देवि! मैं तुम्हारे

व्रताचरणसे सन्तुष्ट हुआ हूँ। अतएव तुम्हारे मङ्गलका कोई उपाय अवश्य निकालूँगा। मेरी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती। मैं कश्यपजीके तपोवीर्यसे अपने अंशद्वारा तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा। हे भद्रे! इस समय तुम अपने निष्पाप पतिके पास जाकर उनकी सेवा करो। सेवा करते समय सर्वदा यह भावना करना कि मानो मैं इसी रूपसे कश्यपजीमें अवस्थित हूँ। हे देवि! यह वृत्तान्त पूछनेपर भी किसी दूसरेसे मत कहना। क्योंकि देवताओंका रहस्य जितना गुप्त रहता है उतना ही उत्तमरूपसे उनकी सिद्धि होती है। भगवानके ऐसे वचन सुनकर अदिति सन्तुष्ट होकर पतिकी सेवा करनेके लिए चली गयीं। महर्षि कश्यप समाधियोगसे जान गये कि उनमें हरि भगवानके अंशने प्रवेश किया है। सनातन भगवान अदितिके गर्भमें अधिष्ठान करके अवस्थित हैं यह जानकर हिरण्यगर्भ भगवान ब्रह्माजी गुप्तनामोंसे भगवान हरिकी स्तुति करने लगे।

अष्टादश अध्याय

वामन अवतारकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! परम पुरुषने आदितिके गर्भसे जन्म लिया। भगवानने भाद्रपद मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रके प्रथम चरण और अभिजित् मुहूर्तमें वामन रूपसे जन्मग्रहण किया। वामनजीका जन्म होते ही शंख, दुन्दुभी, भेरी, मृदङ्ग, पणव, आनक और अन्यान्य तुरी आदि बाजे बजने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। गन्धर्वगण गाने लगे। मुनिगण स्तुति

करने लगे। महर्षिगण ब्राह्मण कुमारकी वामनमूर्ति देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और कश्यपजीके साथ उनके सब जात कर्म करने लगे। जब वामन भगवानका उपनयन हुआ उस समय सूर्य भगवानने स्वयं गायत्रीका उपदेश किया। बृहस्पतिजीने यज्ञसूत्र और कश्यपजीने मेखला पहिनायी। उन वामन स्वरूप जगत्पतिको वसुन्धरा पृथ्वीने कृष्णमृगचर्म, वनपति सोमने दण्ड, माता अदितिने कौपीन वस्त्र, स्वर्गने छत्र, ब्रह्माने कमण्डलु, सप्तर्षिगणने कुश और सरस्वतीने अक्ष (रुद्राक्ष) माला दी। हे राजन्! इस प्रकार यज्ञोपवीत पड़ जानेपर धनपति कुबेरने उनको भिक्षाके लिए पात्र दिया और साक्षात् भगवती अम्बिकादेवीने भिक्षा दी। वह सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणकुमार वामनजी इस प्रकार ब्रह्मणोचित सब सामग्री पाकर अपने ब्रह्मतेजसे ब्रह्मर्षिगण सेवित उस सभामें सबसे बढ़कर शोभायमान हुए। तदनन्तर भगवान नर्मदा नदीके उत्तर तटपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें पहुँचे जहाँ राजा बलिके पुरोहितगण अश्वमेध नामक श्रेष्ठ यज्ञ करा रहे थे। वामनजीको देखते ही ब्राह्मणोंने जाना कि निकट ही मानो सूर्यदेवका उदय हुआ है। सब पुरोहित यजमान बलि और सदस्यगण वामनजीके तेजसे प्रभाहीन हो गये। राजा बलिने अत्यन्त आनन्दित होकर भगवानको आसन दिया, पैर धोये और उनका पूजन किया। और चरणोदक सिरपर धारण किया। तदनन्तर राजा बलिने कहा—हे विप्रतनय! मैं अनुमानसे कहता हूँ कि आप कुछ माँगनेके लिए यहाँ आये हैं। अतएव, आपको जो अभिलाषा हो वह मुझसे लीजिये।

ऊनविंश अध्याय

वामनजीका बलिसे तीनपग भूमि माँगना

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! बलिके धर्मसंगम वाक्य सुनकर भगवान प्रसन्न हुए। बलिको प्रतिज्ञापाशमें आबद्ध कराकर भगवानने कहा—हे दैत्यराज ! मैं तुमसे अपने पैरोंकी नापसे तीन पग पृथ्वी माँगता हूँ। यद्यपि तुम वरदानियोंमें श्रेष्ठ हो और सब कुछ दे सकते हो किन्तु मैं तुमसे यह थोड़ी-सी पृथ्वी ही चाहता हूँ। मुझे अधिककी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकताके अनुसार याचना करनेसे कोई दोष नहीं होता। विद्वान् व्यक्ति प्रयोजनमात्र ही दान लेते हैं और इस प्रकार पापके भागी नहीं होते। वामनजीका यह वचन सुनकर राजा बलि आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने विस्मयके साथ कहा—हे विप्रतनय ! तुम अभी बालक हो किन्तु वृद्धकी तरह बातें करते हो ! तुमको अपने स्वार्थका भलीभाँति बोध नहीं है। मैं तीनों लोकका अधीश्वर हूँ। मैं चाहूँ तो पृथ्वीका एक द्वीप दान कर सकता हूँ। किन्तु तुम तो ऐसे अबोध हो कि केवल तीन पग सामान्य पृथ्वी मांग रहे हो। जो हो, हे विप्रतनय ! अपनी जीविका चलानेके लिए पूरी भूमि मुझसे मांग लो। भगवानने कहा—हे राजन् ! जितनी अभीष्ट प्रियतम वस्तुएँ हैं वे सभी अजितेन्द्रिय मनुष्यको तृप्त नहीं कर सकतीं। आशाकी निवृत्ति नहीं होती। एक द्वीप मिलनेपर सातो द्वीप पृथ्वी पानेकी अभिलाषा होगी। सन्तुष्ट व्यक्ति यदृच्छा प्राप्त वस्तुका ही भोग करके सुखी रहता है। जो कुछ बिना यत्नके प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट ब्राह्मणका ब्रह्मतेज बढ़ता है। इस कारण मैं

तुमसे केवल तीन पग पृथ्वी ही मांग रहा हूँ। इतनी पृथ्वी पाकर ही मैं अपनेको कृतकृत्य समझूँगा। प्रयोजन भरका धन सुखदायक होता है। अधिक धन होनेसे अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं। शुकदेवजीने कहा—वामनरूपी हरिकी ये बातें सुनकर हँसते हुए बलिने कहा—अच्छा जो आपकी इच्छा हो वही लीजिये। यह कहकर महात्मा बलिने वामनजीको पृथ्वी देनेके लिए हाथमें जलका पात्र लिया। किंतु सर्वज्ञ दैत्यगुरु शुक्राचार्यने विष्णु भगवानका उद्देश्य जानकर, विष्णुको भूमिदान करनेपर उद्यत अपने शिष्य बलिसे क्रोधावेशमें तिरस्कार करते हुए कहा—रे मूढ़! ये अविनाशी साक्षात् विष्णु हैं। ये तीन पगमें तीनों लोक नाप लेंगे। तुम अपना सर्वस्व विष्णुको दे दोगे तो तुम्हारे पास निर्वाहके लिए क्या रह जायगा? इस वामनरूप विष्णुके एक चरणमें पृथ्वी, दूसरेमें स्वर्ग आ जायगा। तीसरा चरण कहाँ जायगा? स्वीकृत वस्तुको देनेमें असमर्थ होनेके कारण तुम अपनी प्रतिज्ञाका पालन न कर सकोगे। प्रतिज्ञा भंग करनेपर अवश्य ही तुमको नरकमें जाना पड़ेगा। किंतु मिथ्याके बिना देहकी रक्षा नहीं हो सकती। सब समय सत्य बोलनेसे निर्वाह नहीं हो सकता। स्त्रीको प्रोत्साहन द्वारा वश करते समय हास परिहासमें, विवादके समय वरके गुण कीर्तन करनेमें, जीविकाकी वृत्ति नष्ट हो तो उसकी रक्षाके लिए, प्राणोंपर संकट आ पड़ा हो तो उसको बचानेके लिए, गऊ ब्राह्मणका हित करनेके लिए झूठ बोलना पाप नहीं है। इसलिए हे बलि! तुम अपनी जीविका-रक्षाके लिए स्वीकृतिदानमें 'नहीं' कर सकते हो।

विंश अध्याय

वामनजीके शरीरकी अद्‌भुत वृद्धि

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! शुक्राचार्यके वाक्य सुनकर बलिने कहा—हे गुरो ! मैं दान करना अङ्गीकार कर चुका हूँ। अब मैं अस्वीकार कैसे करूँ ? कैसे ब्राह्मणसे कहूँ कि नहीं दूँगा। मिथ्या बोलनेसे बढ़कर और अधर्म नहीं है। मैं झूठ नहीं बोल सकता। इस प्रकार अनेक नीतियुक्त वचनोंसे बलिने गुरुको समझाकर कहा कि ब्राह्मणकुमार जो कुछ माँगते हैं मैं वह उनको अवश्य दूँगा। बलिकी बातोंसे गुरु शुक्राचार्यको संतोष नहीं हुआ। क्रोधित होकर उन्होंने बलिको शाप देते हुए कहा—रे मूर्ख ! तू अपनेको पण्डित मानकर अभिमान करता है। तूने उपेक्षा करके मेरी आज्ञाका उल्लंघन किया और मेरा निरादर किया। अतएव तू शीघ्र ही श्रीभ्रष्ट हो जायगा। हे राजन् ! शुक्राचार्यने इस प्रकार शाप दे दिया किन्तु राजा बलि सत्यसे विचलित नहीं हुए। उन्होंने पूजन करके जल हाथमें लेकर वामनजीको पृथ्वीदान कर दिया। उस समय मुक्ताभरण और पुष्पमालासे विभूषित बलिकी भार्या रानी विन्ध्यावलिने वामनजीके चरण धोनेके लिए जलपूर्ण सुवर्णका कलस लाकर बलिको दिया। उस समय स्वर्गमें देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारणगण—सभी आनन्दित होकर बलिके उदार कार्योंकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। हे राजन् ! देखते ही देखते हरिका वह वामनरूप आश्चर्यजनक ढंगसे बढ़ने लगा। राजा बलिने

उन परमपुरुष विश्वमूर्ति हरिके पदतलमें रसातल, दोनों चरणोंमें पृथ्वी, दोनों जंघाओंमें पर्वतसमूह, दोनों जानुओंमें पक्षिगण, दोनों ऊरुओंमें मरुद्गणको देखा । इसके अतिरिक्त उन भगवानके वसनमें सन्ध्याकाल गुह्यमें प्रजापतिगण, जघनस्थलमें असुरगण, नाभिमें आकाशमण्डल, कुक्षिमें सातो सागर वक्षःस्थलमें नक्षत्र माला, हृदयमें धर्म, स्तनद्वयमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षमें लक्ष्मी, कण्ठमें सामवेद और शब्द, चारों भुजाओंमें इन्द्रादिक सब देवता, दोनों कानोंमें दस दिशाएँ, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघमण्डल, नासिकामें वायु, नेत्रोंमें सूर्य, मुखमें अग्नि, वाक्यमें सब वेद, रसनामें वरुण, दोनों भृकुटियोंके मध्यमें निषेध और विधि, पलकोंमें दिन और रात्रि, ललाटमें क्रोध, अधरमें लोभ, स्पर्शमें काम, शुक्रमें जल, पृष्ठमें अधर्म, पादन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसीमें माया, रोमसमूहमें सब औषधियाँ, नाड़ियोंमें सब नदियाँ, नखोंमें शिलासमूह, बुद्धिमें ब्रह्मा, इन्द्रियोंमें देवगण और ऋषिगण और अंगोंमें स्थावरजंगम प्राणीमात्रको देखा । तदनन्तर भगवानने अपने एक चरणसे पृथ्वी नाप ली । आकाशमण्डल शरीरमें और दिशाएँ बाहुओंमें आ गयीं । इसके उपरान्त दूसरा चरण फैलानेपर उसमें स्वर्ग आदि ऊपरके लोक आ गये किन्तु तीसरे चरणके लिए कुछ भी नहीं बचा । भगवानका दूसरा ही चरण क्रमशः महर्लोक, जनलोक और तपोलोकको बाँधता हुआ सत्यलोककी सीमातक पहुँच गया ।

एकविंश अध्याय

दैत्यराज बलिका बन्धन

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! वामनजीका तीसरा चरण सत्यलोकमें जा पहुँचा तो उसे देखते ही ब्रह्मा आदि देवता हरिचरणके समीप गये। तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवानके उन्नत चरणको जलसे धोकर उसका पूजन किया और फिर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति करने लगे। कमण्डलुके जिस जलसे ब्रह्माजीने वामनजीके चरणको स्नान कराया, वह हरिचरणके स्पर्शसे पवित्र होकर स्वर्गकी नदी आकाशगङ्गा हो गया। वह गङ्गाजल अबतक भगवानकी पवित्र कीर्तिके समान आकाशसे पृथ्वीमें गिरकर त्रिभुवनको पवित्रकर रहा है। तब ब्रह्मा आदि लोकपालोंने अनुचरों सहित आकर वामनजीकी शीतल जल, सुन्दर माला, सुगन्धित चन्दन और कर्पूर आदि अनुलेपन, सुगन्धपूर्ण धूप, दीप, खील, अक्षत आदिसे पूजा की। हे राजन् ! इधर असुरगण महाक्रोधसे कहने लगे—अरे ! यह ब्राह्मण बालक नहीं है। यह तो महामायावी विष्णु है। देवताओंका काम बनानेके लिए ब्राह्मणके वेषमें छिपकर आया है। इस वैरी विष्णुने वटु ब्राह्मणके रूपसे भिक्षुक बनकर हमारे स्वामीका सर्वस्व हर लिया है। हमारे प्रभु सदा सत्य बोलते हैं। कभी मिथ्या बोलनेका विचार भी नहीं करते। विशेषकर इस समय तो इन्होंने यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेके कारण दण्डत्याग कर दिया है। इसके सिवा ये ब्राह्मणभक्त और दयाशील हैं। अतएव इनकी आज्ञा पाये बिना भी इस वामनरूपी शत्रुको मारना हमारा धर्म है।

यह काम करनेसे स्वामीकी यथेष्ट सेवा होगी। यह कहकर बलिके सेवक असुर वामनजीको मार डालनेके लिए दौड़ पड़े। किन्तु यह ऊधम मचानेकी इच्छा राजा बलिने नहीं की। नन्द, सुनन्द, जय, विजय आदि श्रीहरिके प्रधान पार्षदोंने उन असुरोंको रोका और अस्त्र-शस्त्र लेकर दैत्यसेनाका संहार करने लगे। भगवानके अनुचरों द्वारा अपने अनुचरोंका विनाश होते देखकर महात्मा बलिने अपने गुरु शुक्राचार्यके दिये हुए शापको स्मरणकर उन्हें युद्ध करनेसे रोका। उन्होंने कहा—हे विप्रचित्ति, हे राहु, हे नेमि आदि वीरो! मेरा कथन सुनो। युद्धसे निवृत्त हो जाओ। यह समय हमारे अनुकूल नहीं है। यदि हमपर कभी फिर दैव अनुकूल होगा, तब हम लोग पुनः इन लोगोंको जीत लेंगे। इसलिए तुम लोग अनुकूल समय आनेतक प्रतीक्षा करो। हे राजन्! अपने स्वामी बलिके वचन सुनकर विष्णुपार्षदोंके द्वारा विताड़ित सभी दैत्यदलपति रसातलको चले गये। तदनन्तर पक्षिराज गरुड़ने हरिभगवानके अभिप्रायको जानकर वरुणके पाशोंसे बलिको बाँध लिया। हे राजन्! भगवान विष्णुने इस प्रकार बलिको बँधवा दिया तो आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओंमें हाहाकार होने लगा। तदनन्तर महात्मा बलिसे भगवान वामनने कहा—हे दैत्यराज! तुमने मुझको तीन पग पृथ्वीका दान दिया था। सो मैंने दो ही पगमें तुम्हारी पृथ्वी और स्वर्ग नाप लिया। अब तीसरे चरणके लिए भूमि कहाँ है सो दे दो। तुम अपनी दी हुई तीन पग पृथ्वी नहीं पूरी कर सके। अतएव तुम्हारा नरकमें वास होना उचित है। तुमने अपनेको धनी मानकर 'देता हूँ'

कहकर छल किया है। इस प्रतारणा और मिथ्या बोलनेका फल यह है कि तुम कुछ दिन नरक भोग करो।

द्वाविंश अध्याय

पातालमें भगवान द्वारा बलिका द्वारपाल होना स्वीकार

महाराज बलि बोले—हे भगवन्! हे हरि! हे देवश्रेष्ठ! मैंने जो कुछ कहा है उसे आप मिथ्या समझते हैं। किन्तु मेरा कथन असत्य नहीं है। आपने ही पहले कपटाचरण करके वामनरूपसे भिक्षा माँगी, किन्तु फिर रूप बदल दिया। जो हो, आप उस उपायसे यदि मेरी बातको झूठ कहते हैं तो मैं अपना वचन झूठा न होने दूँगा। आपको दो पग पृथ्वी मिल चुकी है। अब अपना तीसरा चरण मेरे सिरपर स्थापित कीजिये। हे ब्रह्मन्! योग्यतम व्यक्ति जो दण्ड देते हैं, वह मङ्गलकारी होनेके कारण परम अभीष्ट और प्रशंसनीय होता है। इस कारण इस बन्धनसे मैं लज्जित अथवा व्यथित नहीं हूँ। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि महात्मा प्रह्लादजी वहाँ आ उपस्थित हुए। बलिने पितामहको देख केवल सिर झुकाकर प्रणाम किया, क्योंकि हाथ-पैर बँधे हुए थे। प्रह्लादजीने श्रीहरिके निकट आकर पृथ्वीमें सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—हे भगवन्! आपने बलिको राज्यलक्ष्मी और धन-सम्पत्तिसे भ्रष्ट करके इसपर परम अनुग्रह किया है। आपने ही इसको इन्द्रपद दिया था और इस समय आपने ही वह हर लिया। यह काम आपने अच्छा ही किया है। ऐश्वर्य और सम्पत्ति ही मोहका कारण है।

आप जगदीश्वर और नारायण हैं। आप ही सब लोकोंके साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। हे राजन्! इसके बाद ब्रह्माजी हाथ जोड़कर महात्मा प्रह्लादके सामने ही श्रीहरिसे कुछ निवेदन करना चाहते थे। इतनेमें ही बलिकी पत्नी विन्ध्यावली पतिका बन्धन देखकर भयसे विह्वल होकर बोली—हे ईश! आपने अपनी लीलाके लिए त्रिभुवनकी रचना की है। किन्तु आपको भूलकर जो जगत्के कर्ता होनेका अभिमान करते हैं, वे दुर्बुद्धि हैं। हे भगवन्! मेरे इस मन्दबुद्धि पतिको कृपापूर्वक आप मुक्त कर दीजिये। इस प्रकार प्रह्लाद और विन्ध्यावलीकी बातें सुनकर भगवान वामन प्रसन्न हुए। फिर भी, ब्रह्माने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर विविध सम्बोधनोंसे कहा—हे प्रभो! बलिने उदारताके साथ आपको अपनी सब पृथ्वी दे दी। अतएव महात्मा बलि निग्रहके योग्य नहीं है। भगवानने कहा—हे ब्रह्माजी! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन और विभव पहले हर लेता हूँ। क्योंकि मनुष्य धन, सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे मतवाला होकर सब प्राणियोंका और मेरा निरादर करता है। अतएव धनका अपहरण ही मेरा अनुग्रह है। भक्तकी इच्छासे मैं धन-सम्पत्ति प्रदान करता हूँ और भक्तिहीन व्यक्ति सम्पत्तिसे मोहित हो जाते हैं तो मैं उनकी सम्पत्ति हरण करके उनपर अनुग्रह करता हूँ। हे ब्रह्मन्! इस दानवराज बलिने मेरी दुर्जय मायाको जीत लिया है। यह इतना कष्ट पानेपर भी मोहित नहीं हुआ है। यह अपने वचनपर स्थिर हैं। इसने सत्यको नहीं छोड़ा है। मैं इसपर परम प्रसन्न हूँ। इसलिए जो स्थान देवताओंको भी दुर्लभ है, वही स्थान इसको दे रहा हूँ।

यह सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा। मैं इसकी सब भाँति सहायता करूँगा। जबतक सावर्णि मन्वन्तरका आरम्भ नहीं होता, तबतक यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतल लोकमें निवास करे। हे राजन्! ब्रह्माको ये वचन सुनाकर भगवान वामनने बलिसे कहा—हे बलि! तुम सुतल लोकको जाओ। अधिक क्या, वहाँ लोकपालगण भी तुमको परास्त नहीं कर सकेंगे। मैं सब प्रकारसे सदा तुम्हारी रक्षा करूँगा। मैं सच कहता हूँ, तुम मुझको वहाँ अपने द्वारपर इसी रूपसे नित्य उपस्थित देखोगे।

त्रयोविंश अध्याय

बलिका सुतललोकको जाना

शुकदेवजी बोले—तदनन्तर दैत्यराज बलिने हाथ जोड़कर भगवान वामनकी स्तुति की और ब्रह्मा तथा शिवजीके साथ श्रीहरिको प्रणाम करके आनन्दपूर्वक असुरोंके साथ सुतललोकको चले गये। श्रीहरिने इस प्रकार इन्द्रको स्वर्गका राज्य लौटा दिया और अदितिकी इच्छा पूर्ण करके उपेन्द्ररूपसे त्रिभुवनका शासन किया। इधर जब भक्तचूड़ामणि प्रह्लादने देखा कि पौत्र बलि बन्धनसे मुक्त होकर भगवानके कृपापात्र बन चुके हैं, तब उन्होंने भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए भगवानसे कहा—हे मधुसूदन! आप सर्वज्ञ हैं। आपने ही अपरिमेय योगमायाकी लीला द्वारा इस जगत्की सृष्टि की है। अतएव आप सबके आत्मा और समदर्शी हैं। कल्पवृक्षकी भाँति आप सबकी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। प्रह्लादकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर भगवानने कहा—हे वत्स प्रह्लाद! तुम्हारा मंगल हो।

तुम भी सुतललोकको जाओ। वहाँ अपने पौत्रके साथ आनन्दसे रहो और जातिवालोंको सुखी करो। वहाँपर तुम सदा मुझे गदा हाथमें लिये द्वारपर स्थित देख पाओगे। मेरे दर्शनसे उत्पन्न आनन्द द्वारा तुम्हारा अज्ञानमय कर्मबन्धन छूट जायगा। भक्तचूड़ामणि प्रह्लादने भगवानका आदेश मानकर उनको प्रणाम किया। फिर प्रदक्षिणाकर और अनुमति लेकर सुतल लोकको चले गये। इसके बाद वामन भगवानने ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंकी सभामें ऋत्विजगणके बीच बैठे हुए शुक्राचार्यको सम्बोधन करके कहा—हे ब्रह्मन्! आपके शिष्य बलिके यज्ञमें जो काम अबतक असमाप्त है, उसे अब आप पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि जो कर्म असम्पूर्ण रह जाता है, उसकी पूर्ति ब्राह्मणोंके देखनेसे ही हो जाती है। भगवानकी यह बात सुनकर शुक्राचार्यजीने प्रसन्न होकर बलिके यज्ञके अवशिष्ट अंशकी पूर्ति कर दी। हे राजन्! जो कोई अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीहरिके इस अवतारका विचित्र चरित्र पाठ करता या सुनता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

चतुर्विंश अध्याय

मत्स्य-अवतारका वर्णन

महाराज परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं विचित्र कर्म करनेवाले भगवानके मायामय मत्स्य-अवतारकी कथा सुनना चाहता हूँ। कृपापूर्वक आप मुझे वह कथा सुनाइये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! जो कल्प बीत गया, उसके अन्तमें इसी उद्देश्यसे नैमित्तिक प्रलय हुआ था। उस समय भूआदि तीनों लोक समुद्रके जलमें

डूब गये। ब्रह्माजीने कालवश निद्रित होकर शयन किया तो अचेत ब्रह्माजीके मुखसे सब वेद निकल पड़े। यह अवसर पाकर महाबली हयग्रीव नामक दैत्यने उनको चुरा लिया। हे राजन्! भगवान विष्णुने दैत्यपति हयग्रीवका यह भयङ्कर दुष्कर्म देख और उसे मारकर वेदोंका उद्धार करनेके लिए मत्स्यरूप धारण किया। उस समय सत्यव्रत नामक एक राजर्षि जलके भीतर बैठकर तपस्या कर रहे थे। वही सत्यव्रत राजर्षि इस कल्पमें विवस्वान अर्थात् सूर्यके पुत्र होकर श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध हुए। उनको श्रीहरिने सातवें मनुका पद दिया था। एक दिन राजर्षि सत्यव्रत नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे। इतनेमें उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटी-सी मछली चली आयी। हे राजन्! द्राविड़राज सत्यव्रत उस मछलीको अञ्जलिके जलसहित नदीके जलमें फेंक देनेको उद्यत हो गये। तब उस मछलीने परम दयालु राजासे कातर होकर दीन स्वरसे कहा—हे दीनवत्सल! मैं निर्बल हूँ। मेरी जातिका संहार करनेवाले मगर-ग्राह आदि भयङ्कर जलजन्तु इस नदीमें भरे हैं। मैं उनसे डरती हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। यह सुनकर दयालु राजा उस छोटी-सी मछलीको जलपूर्ण कमण्डलुमें डालकर अपने आश्रमको ले गये। वह मछली एक ही रातमें इतनी बढ़ गयी कि उसमें रहना कठिन हो गया। तब मछलीने राजासे कहा—हे नरपति! इस सङ्कीर्ण स्थानमें मैं नहीं रह सकती। मेरे लिए कोई बड़ा स्थान दीजिये। तब राजा सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक मटकेमें डाल दिया। दो घड़ीमें वह मछली तीन हाथ बढ़ गयी। उसने फिर राजासे कहा—

महाराज ! इस स्थानमें मैं सुखसे नहीं रह सकती, कोई दूसरा स्थान दीजिये। तब सत्यव्रतने उस मछलीको सरोवरमें डाल दिया। कुछ ही समयमें मछलीका आकार बहुत बढ़ गया। उस मीनने फिर राजासे कहा—महाराज ! मुझे सरोवरमें कष्ट हो रहा है। यह मेरे लिए छोटा है। इस तरह राजा मछलीके कहनेसे अन्य बड़े जलाशयों अर्थात् नदी आदिमें उसे डाल दिया। किन्तु कहीं भी उसका निर्वाह न हो सका। यह देखकर अन्तमें राजा उसे सागरमें डालनेके लिए ले गये। जब सत्यव्रत उसको समुद्रमें छोड़ने लगे तो उसने फिर कहा—हे वीर ! मुझसे अधिक बलवाले मगर आदि जलजन्तु सागरमें मुझे खा जायँगे। इसलिए इस सागरके जलमें अब मुझे मत छोड़िये। मत्स्यके ये मधुर वचन सुनकर राजर्षि सत्यव्रत मोहित हो गये। उन्होंने उस महामत्स्यसे कहा—आप कौन हैं ? जो मत्स्यरूपसे हम लोगोंको मोहित कर रहे हैं। आपको नमस्कार है। आपने अपना यह अद्भुत शरीर प्रकट करके हमको आश्चर्यमें डाल दिया है। मत्स्यरूपी भगवानने कहा—हे राजन् ! आजसे सातवें दिन तीनों लोक प्रलयसागरके जलमें डूबकर नष्ट हो जायँगे। जब तीनों लोक प्रलयके जलमें डूब जायँगे, उस समय मेरी प्रेरणासे एक बड़ी भारी नाव तुम्हारे पास आकर उपस्थित होगी। उसे देखते ही तुम सब औषधि और सब प्रकारके बीज और सब प्रकारके प्राणियोंको लेकर सप्तर्षिगण सहित उसी बड़ी नावपर चढ़कर सुस्थिर चित्तसे उस अन्धकारमय प्रलयसागरमें विचरते रहना। उसके बाद जब प्रलयपवनके झोकोंसे वह नाव हिलने लगेगी, उस समय मैं इसी

रूपमें तुम्हारे निकट आकर उपस्थित हूँगा। तब तुम महासर्प वासुकिसे मेरे विशाल शृंगमें उस नावको बाँध देना। मैं ऋषिगण और तुम्हारे सहित उस नौकाको जबतक ब्रह्माकी रात्रिका अन्त न होगा, तबतक खींचता हुआ प्रलयसागरमें विचरता रहूँगा। उसी समय तुम मेरी महिमाको समझ सकोगे। राजर्षि सत्यव्रतको इस प्रकार आदेश देकर भगवान हरि उसी स्थानपर अदृश्य हो गये। तदनन्तर राजर्षि प्रलयकालकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ दिनोंके बाद दिखाई पड़ा कि समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर चारों ओरसे उमड़ पड़ा है और पृथ्वीको पूर्णरूपसे डुबा रहा है। बादलोंकी घोर घटाएँ घिर आयीं और मूसलाधार जलकी वर्षा होने लगी। उस समय राजर्षि सत्यव्रत भगवानकी आज्ञाका स्मरण करने लगे। उसी समय उन्होंने देखा कि उनके निकट एक नाव आकर उपस्थित हुई है। तब भगवानके कथनानुसार राजर्षि सब औषधि, लता और जीवोंको लेकर सप्तर्षिगण सहित उस नावपर सवार हो गये। तब सप्तर्षिगणने प्रसन्न होकर सत्यव्रतसे कहा—हे राजन्! इस समय केशव भगवानका ध्यान धरो। वही इस संकटसे रक्षा करके हमारा कल्याण करेंगे। तदनन्तर राजाके ध्यान करनेपर उसी महासागरमें सुवर्णमय मत्स्यशरीरधारी भगवान प्रकट हुए। उनके सिरपर एक विशाल सींग थी और उनका शरीर दस हजार योजन लम्बा और चौड़ा था। प्रसन्नचित्त राजाने नारायणकी आज्ञाके अनुसार वासुकि नागके शरीरसे मत्स्यरूपी भगवानकी सींगमें उस नावको बाँध दिया और सन्तुष्ट होकर भगवान मधुसूदनकी स्तुति करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! राजर्षि

सत्यव्रतके इस प्रकार स्तुति करनेपर आदिपुरुष भगवानने प्रलयसागरमें महामत्स्यरूपसे विहार करते हुए सत्यव्रतको परमतत्त्वका उपदेश दिया। भगवानने सांख्ययोग और क्रियासे युक्त सम्पूर्ण मत्स्यपुराणकी व्याख्या की और आत्मज्ञानका भी अनेक प्रकारसे उपदेश दिया। हे राजन्! बीते हुए महाप्रलयके अन्तमें जब ब्रह्माजी नींदसे उठे, तब दानवोंके शत्रु मत्स्यरूपधारी हरिने हयग्रीव नामक दानवका संहार करके उनको नष्ट हुए वेद फिर लौटा दिये। राजा सत्यव्रत विष्णुकी कृपासे ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न होकर इस वर्तमान कल्पमें वैवस्वत नामक सातवें मनु हुए। हे राजन्! जो कोई मनुष्य राजर्षि सत्यव्रत और मायामय मीनरूपधारी विष्णुका महाआश्चर्यमय संवाद और कथा सुनता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

अष्टम स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

नवम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

मनुवंशकी कथा

राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे कहा—हे ब्रह्मन् ! वैवस्वत मनुके पुत्रोंके वंश और वंशधर राजाओंके चरित्र सुननेकी मेरी इच्छा है । मनुके वंशमें जो राजे हो गये हैं, जो होंगे और जो इस समय वर्तमान हैं, उन पवित्र कीर्तिवाले राजाओंके चरित्र आप मुझे सुनाइये । शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! मनुवंशका विवरण अति विस्तृत है। सैकड़ों वर्षोंमें भी इसका विस्तारसे वर्णन नहीं किया जा सकता । हे राजन् ! सबसे पहले नारायण भगवान्की नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ। उस कमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । उन ब्रह्माजीके मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए । मरीचिके पुत्र कश्यप हुए । उनकी स्त्री दक्ष प्रजापतिकी कन्या अदिति थी ।

अदितिके गर्भसे विवस्वान उत्पन्न हुए। विवस्वानकी स्त्री संज्ञा थी। संज्ञाके गर्भसे श्राद्धदेव नामक मनु उत्पन्न हुए। श्राद्धदेवकी स्त्री श्रद्धा थी। संज्ञाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन दस पुत्रोंके नाम ये हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि। हे राजन्! पहले जब मनुको कोई पुत्र न था, तब महर्षि वसिष्ठने पुत्रप्राप्तिके लिए राजासे मित्रावरुणदेवका यज्ञ कराया। मनुकी स्त्री श्रद्धा उस यज्ञकी दीक्षामें केवल दूध ही पीकर रहती थी। वह होम करनेवाले ऋषिके पास आकर प्रणाम करके प्रार्थना करने लगी कि हे महाराज! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मेरे गर्भसे कन्या ही उत्पन्न हो। हवन करनेवाले ब्राह्मणके व्यतिक्रमसे इला नामक कन्या उत्पन्न हुई। कन्याको देखा तो असन्तुष्ट होकर मनुने वशिष्ठजीसे कहा—हे भगवन्! आप लोग ब्रह्मवादी हैं। आपके कर्मका यह उलटा फल कैसे हुआ? राजाके खेदसूचक वचन सुनकर वशिष्ठजीने ध्यान करके सब जान लेनेके बाद कहा—राजन्! हवन करनेवाले ब्राह्मणने कन्याकी कामना करके आहुति छोड़ी है। इसमें हमारा या मंत्रका कोई दोष नहीं है। किन्तु इस कन्याको मैं सुन्दर राजकुमार बनाऊँगा। यह कहकर वशिष्ठजी आदिपुरुष ईश्वरकी स्तुति करने लगे। भगवान हरिने सन्तुष्ट होकर वशिष्ठजीकी इच्छाके अनुसार वर दिया। फलस्वरूप कन्या इला पुरुष हो गयी और उसका नाम सुद्युम्न हुआ। हे महाराज! एक दिन सुद्युम्न सिन्धुदेशके घोड़ेपर चढ़कर धनुष-बाण हाथमें लिये कुछ मंत्रियों और अनुचरोंके साथ शिकार खेलनेके लिए उत्तर दिशाको

गये। उधर सुमेरु पर्वतकी तलहटीमें सुकुमार वन है। वहाँ भगवान शङ्कर सदा पार्वतीजीके साथ रमण किया करते हैं। मनुपुत्र सुद्युम्नने अपने सहचरोंके साथ उसी वनमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचते ही सुद्युम्नने देखा कि वे स्वयं स्त्री हो गये हैं और घोड़ा घोड़ी हो गयी है। इसी प्रकार साथके अन्य लोगोंका भी रूप बदल गया है। यह देखकर सभी उदास हो गये और विस्मित होकर परस्पर एक दूसरेको देखने लगे। राजा परीक्षितने पूछा—भगवन्! उस स्थानका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। वहाँका पूरा विवरण जाननेकी मुझे बड़ी इच्छा है। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! एक समय अपने तेजसे दिशाओंका अंधकार दूर करते हुए सप्तऋषिगण शिवजीका दर्शन करनेके लिए उस वनमें गये थे। उस समय भवानीजी नग्न थीं। एकाएक ऋषियोंको वहाँ उपस्थित देखकर वे बहुत लज्जित हुईं। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक शंकरकी गोदसे उठकर अपने वस्त्र पहिन लिये। ऋषिगण भी दूरसे ही शिव-शिवाको रमण करते देखकर लज्जित हुए और उसी क्षण वहाँसे लौटकर नर-नारायणके आश्रमको चले गये। उसके बाद भगवान शिवने भवानीको सान्त्वना देते हुए कहा कि आजसे जो कोई पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा। तबसे उस वनमें लोग नहीं जाते थे। सुद्युम्न यह बात नहीं जानते थे। अब राजकुमार सुद्युम्न स्त्रीरूपमें स्त्रीरूपधारी अपने सहचरोंके साथ वनमें इधर-उधर घूमने लगे। उसी वनके पास चन्द्रके पुत्र बुधका आश्रम था। बुधने अपने आश्रमके पास उन स्त्रियोंको टहलते देखा। देखते ही वे मोहित हो गये। वह स्त्री

(सुद्युम्न) भी बुधपर आसक्त हो गयी। अन्तमें बुध और वह स्त्री अर्थात् सुद्युम्न उसी आश्रममें रहने लगे। तदनन्तर बुधके वीर्य और सुद्युम्नके गर्भसे पुरूरवानामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे राजन् ! मैंने सुना है कि स्त्री होनेके बाद सुद्युम्नने अपने कुलके आचार्य वशिष्ठजीका स्मरण किया। वशिष्ठजीने आकर सुद्युम्नकी दशा देखी तो उनके मनमें बड़ी दया आयी। तब वे सुद्युम्नको पुरुष बनानेके लिए शिवभगवानकी आराधना करने लगे। शिवजी सन्तुष्ट हुए और अपना वचन मिथ्या न होने पावे, इस विचारसे उन्होंने व्यवस्था की कि सुद्युम्न एक महीनेतक स्त्री रहें और एक महीने पुरुष रहकर पृथ्वीका पालन करें। हे राजन् ! वशिष्ठजीकी कृपासे सुद्युम्न पृथ्वी-पालन करने लगे, किन्तु स्त्री हो जानेपर एक महीना उनको छिपकर रहना पड़ता था। किन्तु उनकी प्रजाको यह व्यवस्था भली नहीं लगी। सुद्युम्नके उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों दक्षिण देशके राजा और परम धार्मिक हुए। कुछ समयके बाद जब राजा सुद्युम्न वृद्ध हुए, तब अपने बड़े पुत्र पुरूरवाको राज्य देकर वनको चले गये।

द्वितीय अध्याय

करूष आदि मनुके पुत्रोंका वंशवर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! सुद्युम्नकी अवस्था देखकर वैवस्वत मनुने पुत्रकी इच्छासे सौ वर्षतक यमुनाके किनारे तप किया। इसके बाद मनुने पुत्रके लिए हरि भगवानका पूजन किया। तब उनको अपने ही समान इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र प्राप्त हुए। इक्ष्वाकु

सबसे बड़े थे। हे राजन्! इनमें पृषध्रनामक पुत्रको मनुने गायोंकी रक्षाके काममें लगाया था। पृषध्र वीरासनसे बैठकर रातको गायोंकी रक्षा किया करते थे। एक दिन रात्रिके समय पानी बरस रहा था और घोर अन्धकार फैला था कि उसी समय एक सिंह गोशालाके भीतर घुस आया। वह एक गायको पकड़कर भाग चला। वह गाय भयभीत होकर चिल्लाने लगी। पृषध्र तलवार लेकर उसे मारनेको दौड़े। रात्रिकी अंधेरी थी। अतः सिंहके भ्रममें उन्होंने गायका ही सिर काट डाला। किन्तु उसी प्रहारसे सिंहका कान भी कट गया। सिंह भयभीत होकर भाग चला। राहमें उसके घावसे रुधिर गिरता गया। रात बीतनेपर सबेरे जब पृषध्रने देखा कि सिंह नहीं मरा—गाय मरी है, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। हे राजन्! यद्यपि अनजानमें धोखेसे पृषध्रने गोवध किया था, तथापि कुलके आचार्य वशिष्ठने शाप देकर कहा कि तू अब क्षत्रिय नहीं रहा—इस कर्मसे शूद्र हो गया। पृषध्रने हाथ जोड़कर शाप स्वीकार कर लिया। उसी समयसे उन्होंने मुनियोंके समान ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। भगवान हरिकी भक्तिमें वे तन्मय हो गये। सब प्राणियोंके मित्र और समदर्शी होकर सब विषयोंका संग उन्होंने त्याग दिया। इन्द्रियोंको वशमें करके पृषध्रजी जो कुछ मिल जाता उसीको खा लेते, कुछ भी संचय नहीं करते हुए एकाग्रभावसे ब्रह्मज्ञानमें सन्तुष्ट रहकर इस पृथ्वीमें जड़, अन्धे और बहरोंके समान विचरने लगे। एक दिन घूमते-घूमते वे एक वनमें गये जहाँ दावानल लगा हुआ था। उसी अग्निमें पड़ जानेसे उनका शरीर भस्म हो गया और वह परब्रह्ममें लीन हो गये।

मनुके सबसे छोटे पुत्रका नाम कवि था। बाल्यकालसे ही उनको विषयोंसे वैराग्य हो गया था। इसलिए भाइयोंको राज्यभार सौंपकर वे वनको चले गये और परम पुरुषकी आराधना करते हुए विचरने लगे। इसीलिए उनका वंश नहीं चला। मनुके पुत्र करूषसे कारूष नामक क्षत्रिय जाति उत्पन्न हुई। इस जातिके लोग ब्रह्मनिष्ठ, धर्मरक्षक और उत्तरापथके राजा हुए। मनुके धृष्ट नामक पुत्रसे धार्ष्टनामक क्षत्रिय हुए। वे अपने कर्मोंसे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये। मनुके नृगनामक पुत्रको सुमतिनामक पुत्र हुआ। सुमतिके पुत्र भूतज्योति हुए। भूतज्योतिके वसु हुए। वसुके प्रतीक हुए। प्रतीकके पुत्र ओघवान हुए। ओघवानके पुत्रका भी नाम ओघवान ही पड़ा और एक कन्या हुई, जिसका नाम ओघवती हुआ। सुदर्शन राजाने उसके साथ विवाह किया। हे राजन्! मनुके पुत्र नरिष्यन्तके वंशमें अग्निवेश्य नामसे साक्षात् भगवान अग्निने जन्म लिया। उनको कानीन और महाऋषि जातुकर्ण भी कहते हैं। अग्निवेश्यके वंशधर सभी ब्राह्मण हो गये। मनुके दिष्ट नामक पुत्रके पुत्र नाभाग हुए। यह नाभाग अपने कर्मसे वैश्य हो गये। इनके पुत्र भलन्दन हुए। भलन्दनके वत्सप्रीति हुए। वत्सप्रीतिके प्रांशु हुए। प्रांशुके प्रमति हुए। प्रमतिके पुत्र खनित्र और खनित्रके पुत्र चाक्षुष हुए। चाक्षुषके विविंशति हुए। विविंशतिके पुत्रका नाम रम्भ हुआ। रम्भके पुत्र परमधार्मिक खनिनेत्र हुए। उनके पुत्र करंधमनामक राजा हुए। करंधमके पुत्र अवीक्षित हुए। उनके चक्रवर्ती महाराज मरुत् हुए। मरुत्से महायोगी अंगिरा ऋषिके पुत्रने महायज्ञ कराया। उस यज्ञमें इन्द्रको इतना सोमरस

इस यज्ञमें पिलाया गया कि वे प्रसन्न हो गये। दान-दक्षिणासे ब्राह्मण लोग सन्तुष्ट हुए। उनके यज्ञमें साक्षात् मरुत्गण भोजन परोसनेवाले और विश्वेदेव सभासद थे। मरुतके पुत्र दम थे। दमके पुत्र राजवर्द्धन हुए। राजवर्द्धनके सुधृतिनामक पुत्र राजा हुए। सुधृतिके पुत्र नर थे। नरके पुत्र केवल और केवलके पुत्रका नाम धुन्धुमान था। धुन्धुमानके पुत्र वेगवान थे। वेगवानके पुत्र बुध हुए। बुधके पुत्र राजा तृणबिन्दु थे। तृणबिन्दुने अलंबुषा नामक अप्सराके गर्भसे कई पुत्र उत्पन्न किये और इडविडा नामकी कन्याका भी जन्म हुआ। हे राजन्! विश्रवा ऋषिने अपने पितासे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके राजकुमारी इडविडाके गर्भसे कुबेरको उत्पन्न किया। राजा तृणबिन्दुके विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु ये तीन पुत्र हुए। उनमें विशालने राजा होकर वैशाली नामकी नगरी बसायी। विशालके पुत्र हेमचन्द्र थे। हेमचन्द्रके धूम्राक्ष और धूम्राक्षके संयम नामक पुत्र हुए। संयमसे देवल और कृशाश्वनामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। कृशाश्वके पुत्र सोमदत्त थे। उन्होंने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञपुरुष भगवानकी आराधना की और अन्तमें योगेश्वरोंकी श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हुए। सोमदत्तके पुत्रका नाम सुमति था। सुमतिके पुत्र जनमेजय हुए।

तृतीय अध्याय

मनुके पुत्र शर्यातिके वंशका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! मनुपुत्र राजा शर्याति वेदका

अर्थ जाननेवालोंमें श्रेष्ठ थे । उन्होंने अङ्गिरावंशज ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनके कर्तव्य कर्मका उपदेश किया था। उनकी सुलोचनानामक एक कमलनयनी कन्या थी। उस कन्याको साथ लेकर एक दिन वनमें घूमते-घूमते वे च्यवन ऋषिके आश्रमपर पहुँचे। सुकन्या सखियोंके साथ वनमें घूमती हुई वृक्षोंकी बहार देख रही थी। इतनेमें बल्मीक (बांबी) के छेदमें दो जुगुनुओंकी-सी चमक देखी। बचपनकी चपलतावश दैवयोगसे उसने उस चमकती हुई वस्तुमें काँटा भोंक दिया। काँटा लगते ही उसमेंसे बहुत-सा रुधिर बहा। सुकन्या भयभीत होकर वहाँसे अपने डेरेमें चली गयी। इधर सब सैनिकों और सामन्तोंका मलमूत्र बन्द हो गया। यह देखकर राजर्षि शर्याति बहुत विस्मित हुए। अपने आदमियोंसे उन्होंने पूछा—यहाँ च्यवन ऋषिका आश्रम है। तुम लोगोंमेंसे किसीने उनका कोई अपराध तो नहीं किया है? मुझे स्पष्ट विदित होता है कि किसीने अवश्य उनके आश्रमको दूषित किया है। यह सुनकर सुकन्याने कहा—पिताजी! मैंने इतना अवश्य किया है कि दो चमकती हुई वस्तुओंको बिना जाने-बूझे काँटेसे फोड़ दिया है। यह सुनकर राजा शर्याति बहुत घबड़ा गये और कन्याको साथ लेकर च्यवनजीके आश्रममें गये। च्यवनजी तप करते-करते बांबियोंमें छिपे हुए थे। वे अनुनय-विनय करके धीरे-धीरे मुनिको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे और अपराध क्षमा कराने लगे। इसके बाद महर्षिका अभिप्राय समझकर राजा शर्यातिने उन्हें अपनी कन्या अर्पण कर दी। इस प्रकार कष्टसे मुक्त होकर राजा अपने पुरको लौट

गये। कुछ कालमें सुकन्या अपने पति च्यवनका स्वभाव जान गयी। क्रोधी पतिको प्रसन्न रखनेके लिए विशेष यत्नके साथ वह उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी। एक दिन अश्विनीकुमारद्वय च्यवनजीके आश्रममें आये। च्यवनजीने यथोचित आदर-सत्कार करके उनसे कहा—हे स्वर्गके वैद्यों! तुम लोग मुझे युवा बना दो। जिससे स्त्रियाँ मुझे देखकर मोहित सकें। इसके बदलेमें मैं भी कुछ उपकार करूँगा। यद्यपि इन्द्रने यज्ञमें तुम्हारा भाग बन्द कर दिया है, तथापि मैं अपने तपोबलसे सोमयागमें तुम लोगोंको भाग दिलाऊँगा। यह सुनकर दोनों वैद्योंने महावृद्ध च्यवन ऋषिका हाथ पकड़कर एक सरोवरमें अपने साथ स्नान कराया। कुछ ही समय बाद उस सरोवरसे तीन परमसुन्दर पुरुष निकले। तीनोंका एक-सा सुंदर स्वरूप था। सूर्यके समान तेजस्वी उन तीनों एक ही रूपके पुरुषोंको देखकर सुकन्या अपने पतिको नहीं पहचान सकी। तब सुकन्याने अश्विनीकुमारसे निवेदन किया कि मेरे पतिको अलग कर दीजिये। उसके पातिव्रत धर्मसे दोनों देवता बहुत सन्तुष्ट हुए। उन लोगोंने च्यवनजीको अलग कर दिया और उनसे आज्ञा लेकर विमानमें बैठकर स्वर्गको चले गये। हे राजन्! कुछ दिनों बाद राजा शर्याति यज्ञ करनेकी इच्छासे च्यवन ऋषिके आश्रमको गये। वहाँ उन्होंने देखा कि कन्याके पास सूर्यके समान एक तेजस्वी युवक बैठा हुआ है। सुकन्याने उठकर पिताको प्रणाम किया किन्तु असन्तुष्ट होकर राजाने आशीर्वाद नहीं दिया और कहा—तूने यह क्या किया? अपने बूढ़े पतिको छोड़कर इस पथिक उपपतिको ग्रहण कर लिया। पितासे तिरस्कृत

होकर भी सुकन्याने मुस्कुराकर कहा—पिताजी ! आपके दामाद च्यवन ऋषि ये ही हैं। तत्पश्चात् च्यवन ऋषिको किस प्रकार जवानी मिली, यह वृत्तान्त पिताको सुनाया। यह सुना तो राजाने बहुत ही प्रसन्न होकर कन्याको गलेसे लगा लिया। हे राजन् ! इसके बाद महर्षि च्यवनने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराया और उसमें आचार्य बनकर अश्विनीकुमारद्वयको सोमपात्र दिया। इससे इन्द्र बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने च्यवनजीको मारनेके लिए वज्र उठाया। किन्तु उन महामुनिने ब्रह्मतेजसे इन्द्रकी भुजाको रोक दिया। उस समयसे सब देवताओंने अश्विनीकुमारका भी भाग स्वीकार कर लिया। शर्यातिके उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें आनर्तके रैवत नामक पुत्र हुए। उन्होंने समुद्रके भीतर कुशस्थली पुरी बनवायी और उसमें रहकर आनर्त आदि देशोंका शासन किया। रैवतके सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था। ककुद्मीकी कन्याका नाम रेवती था। उसको साथ लेकर उसके योग्य वरका पता लगानेके लिए वे ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके पास गये। ब्रह्माजीने पूछनेपर कहा—हे राजन् ! तुम्हारे समयके राजा लोग कालके करालगालमें पड़कर नष्ट हो गये। इस समय तो उनके पुत्र-पौत्रादिके भी वंशका पता नहीं है। क्योंकि उस समयसे अबतक सत्ताईस चौयुगी बीत गयी है। अच्छा जाओ, इस समय पृथ्वीपर विष्णुभगवानके अंशावतार महाबलवान बलदेवजी हैं। उन पुरुष-रत्नको यह कन्या अर्पण कर दो। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर राजाने उनको प्रणाम किया। फिर अपनी पुरीमें लौटकर उन्होंने देखा कि

यक्षोंके भयसे भाइयोंने पुरीको छोड़ दिया है। तदनन्तर बलशाली बलदेवको अपनी सुन्दरी कन्या ब्याहकर आप बदरिकाश्रममें तप करने चले गये।

चतुर्थ अध्याय

अम्बरीषकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! मनुपुत्र नभगके पुत्र नाभाग हुए। नाभाग बहुत दिनोंतक गुरुकुलमें रहे। इस कारण भाइयोंने नाभागको बालब्रह्मचारी समझकर अपना-अपना हिस्सा बाँट लिया और पैतृक धनमें नाभागके लिए कुछ भी नहीं रखा। गुरुकुलसे लौटकर जब नाभागने भाइयोंसे अपना हिस्सा माँगा, तब भाइयोंने पिताको छोटे भाईके हिस्सेमें दे दिया। पिताने नाभागसे कहा—पुत्र ! तुम्हारे भाइयोंने तुमसे छल किया है। मैं भोग्य वस्तु नहीं हूँ। मुझे तुम्हारे हिस्सेमें रखना निरर्थक है। अतएव मैं तुम्हारे जीवनका उपाय बताता हूँ। हे वत्स ! आङ्गिरस मुनिगण यज्ञ कर रहे हैं। किन्तु वे हर छठें दिन कर्तव्यविमूढ हो जाते हैं। कर्मकी पूर्णता जिन सूक्तोंसे होती है, उन्हें वे नहीं जानते। आज छठें दिन तुम वहाँ जाकर उनको वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्त बता दो। कर्म समाप्त होनेपर वे स्वर्ग चले जायँगे और जो कुछ यज्ञकी सामग्री बची रहेगी, वह सब अवश्य तुमको दे जायँगे। हे राजन् ! पिताके कथनानुसार नाभागने कार्य किया तो ऋषि सचमुच यज्ञके अन्तमें स्वर्ग जाते समय यज्ञकी बची सामग्री नाभागको दे गये। किन्तु धन मिलते ही तुरत

काले शरीरवाले एक पुरुष (रुद्र) ने उत्तर दिशासे वहाँ आकर कहा—यह सब यज्ञका बचा हुआ धन मेरा है। नाभागने कहा—ऋषियोंने यह सामग्री मुझको दी है। उस पुरुषने कहा—तुम अपने पितासे ही पूछ लो। पूछनेपर पिताने कहा—जो कुछ यज्ञकी बची सामग्री है, वह रुद्रका भाग है। ऋषियोंने दक्षके यज्ञमें ऐसा ही नियम बनाया है। अतएव उन सबके अधिकारी रुद्र ही हैं। पिताकी बात सुनकर नाभागने तुरन्त रुद्रके पास जाकर प्रणाम करके कहा—पिताजीका कहना है कि यह सब सामग्री आपकी ही है। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। नाभागके विनयसे सन्तुष्ट होकर रुद्रने कहा कि तुम्हारे पिताने धर्म नहीं छोड़ा है और तुमने भी सत्य वचन कह दिया है। सो तुमपर प्रसन्न हूँ। मैं तुमको ब्रह्मरूप सनातन ज्ञानका उपदेश करता हूँ ! और यज्ञका बचा हुआ धन भी मैं तुमको देता हूँ, इसे ग्रहण करो। यह कहकर भक्तवत्सल भगवान रुद्र अन्तर्धान हो गये। इन नाभागके पुत्र महाराज अम्बरीषजी हुए। महाराज परीक्षितने कहा—मैं राजर्षि अम्बरीषका चरित्र सुनना चाहता हूँ, कृपा करके वर्णन कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! राजा अम्बरीष सातों द्वीप पृथ्वीका राज्य, कभी न चुकनेवाला धन और अतुल ऐश्वर्य पाकर भी उन्हें कंकड़-पत्थरकी भाँति तुच्छ मानते और यज्ञाधिपतिकी आराधनामें सर्वदा मग्न रहते थे। राजा अम्बरीषकी दृढ़ और शुद्ध भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान हरिने दुष्टोंका नाश करनेवाला अपना सुदर्शन चक्र राजाको दे दिया था। हे राजन् ! राजाने रानी सहित एक समय कृष्णभगवानकी प्रीतिके लिए

एक वर्षकी एकादशियोंके व्रतका नियम लिया। व्रत-समाप्तिके अवसरपर कार्तिकके महीनेमें राजाने तीन दिन निर्जल व्रत लिया। तदनुसार यमुना नदीमें स्नान करके मथुरामें हरि भगवानका पूजन किया। दान और ब्राह्मणभोजनादि कराकर पारण करनेकी तैयारी करने लगे कि उसी समय भगवान दुर्वासा ऋषि आकर उनके अतिथि हुए। राजा अम्बरीषने मुनिको देखा तो पारणकी तैयारीसे विमुख होकर उनका यथोचित आदर-सत्कार किया। तदनन्तर राजाने मुनिके चरणोंपर गिरकर भोजन करनेकी प्रार्थना की। दुर्वासाजीने राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मध्याह्नका नित्यकर्म करनेके लिए यमुनानदीके तटपर गये। स्नानके उपरान्त वे वहाँ श्रीहरिका ध्यान करने लगे। हे राजन्! बहुत समय बीत गया। इधर द्वादशी एक ही घड़ी बाकी थी। द्वादशीमें यदि पारण न किया जाय तो व्रत भंग हो जाता है। राजा धर्म-सङ्कटमें पड़ गये। फिर ब्राह्मणोंसे परामर्श करके निश्चय किया कि जल पीकर व्रतको पूरा कर लेना चाहिये। क्योंकि मुनियोंने बताया है कि जल पी लेना भोजन भी है और भोजन नहीं भी है। यह कहकर ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार राजाने जल पीकर पारण कर लिया। उसी समय दुर्वासाजी आवश्यक कर्मसे निवृत्त होकर यमुनातटसे लौट आये और राजाके पास उपस्थित हुए। राजाने भोजन करनेकी प्रार्थना की। किन्तु अपने तपोबलसे दुर्वासा ऋषि जान गये कि राजा अम्बरीष पारण कर चुके हैं। दुर्वासा ऋषि स्वभावके क्रोधी तो थे ही और इसी कारण रोषसे राजाका तिरस्कार करते हुए बोले—अहो! लक्ष्मीके मदसे अन्धे इस

अधम राजाकी ढिठाई और धर्मका निरादर भाव तो देखो ! यह अब विष्णुभक्त नहीं रहा और अपनेको ईश्वर मानता है। देखो तो भला ! इसने मुझे न्यौता देकर अतिथि बनाया, किन्तु मुझे भोजन कराये बिना आप भोजन कर लिया। अच्छा ! मैं इसका फल अभी चिखाता हूँ। यह कहकर दुर्वासाने क्रोधके आवेशमें अपने सिरसे एक जटा उखाड़ ली और उसीसे कालानलके समान प्रचण्ड एक कृत्या उत्पन्न की। हे राजन् ! वह कृत्या तलवार हाथमें लिये अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कँपाती हुई राजाकी ओर झपटी। यह देखकर भी राजा स्थिरभावसे खड़े रहे—न पीछे हटे और न डरे। उधर विष्णुजीके भेजे हुए सुदर्शनचक्रने अपने प्रचण्ड तेजसे उस भयानक कृत्याको भस्म कर दिया। तब दुर्वासाने देखा कि अपना प्रयास निष्फल हो गया और उलटे अपने ही ऊपर संकट आ गया है। इस दशामें प्राण बचानेके लिए दुर्वासाजी भाग चले। चक्रने भी उनका पीछा किया। भयभीत दुर्वासा ऋषि ब्रह्माजीके पास गये और कातरभावसे बोले—हे भगवन् ! श्रीहरिके इस चक्रसे मेरी रक्षा करो। ब्रह्माजीने कहा—मुझमें यह शक्ति नहीं है। वहाँसे निराश होकर विष्णुचक्र द्वारा पीड़ित दुर्वासाजी शिवजीकी शरणमें गये। किन्तु शिवजीने भी कहा—हे तात ! अनन्त ब्रह्माण्ड जिससे उत्पन्न होते और जिसमें लीन हो जाते हैं, उस परमेश्वरपर मेरी प्रभुता न चलेगी। तुम श्रीहरिकी शरणमें जाओ। वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे। दुर्वासाजी वहाँसे भी निराश होकर वैकुण्ठधामको गये। वहाँ हरिके चरणोंपर गिरकर कहने लगे—हे भगवन् ! मैंने आपके भक्तका अपराध किया है। हे ईश !

इस अपराधसे मुझे मुक्त कीजिये। विष्णुजीने कहा—हे ब्राह्मण! भक्तजन मुझे बहुत ही प्यारे हैं। मेरे हृदयपर उनका पूर्ण अधिकार है। मैं भक्तोंके अधीन हूँ—स्वतंत्र नहीं हूँ। हे ब्राह्मण! तुम परमवैष्णव राजा अम्बरीषके पास जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। अपने अपराधके लिए महाभाग अम्बरीषसे क्षमा माँगो। इस उपायसे तुमको शान्ति मिलेगी।

पञ्चम अध्याय

अम्बरीष द्वारा दुर्वासाकी रक्षा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान्‌का आदेश पाकर महर्षि दुर्वासा तुरन्त राजर्षि अम्बरीषके पास गये और उनके पैरोंपर गिर पड़े। ब्राह्मणने पैर छुए, इस कारण राजा अम्बरीष लज्जित हुए। दुर्वासाका दुःख देखकर उनको दया आ गयी। तब उनका दुःख दूर करनेके लिए वे विष्णुचक्रकी स्तुति करने लगे। राजाके प्रार्थना करनेपर सुदर्शन चक्रने अपना वह तेज शान्त कर लिया, जिससे कि दुर्वासाजी जलते जा रहे थे। सुदर्शनचक्रके शान्त होनेपर दुर्वासाजीका चित्त शान्त हुआ। तब भयमुक्त होकर राजा अम्बरीषको दुर्वासाजी आशीर्वाद देने लगे। राजर्षिने भी मुनिको प्रसन्न करके भोजन कराया। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! भोजन करके दुर्वासाजी तृप्त हुए और राजासे अनुमति लेकर आकाशमार्गसे ब्रह्मलोकको चले गये। मुनिके भाग कर जाने और लौटकर आनेमें एक साल बीत गया। तबतक राजाने अन्न भोजन नहीं किया। वे केवल जल पीकर रहते हुए मुनिके आनेकी राह देखते रहे।

दुर्वासाजीके भोजन करके चले जानेपर अम्बरीषने ब्राह्मणोंके भोजनसे बचा हुआ पवित्र अन्न भोजन किया और ऋषिके प्राणपर संकट आना और फिर उस संकटसे छूटना और अपनेमें धैर्य आदि शक्तियोंका होना इत्यादि बातोंको उसी ईश्वरका प्रभाव माना। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! इसके बाद महाराज अम्बरीष इस प्रकार अनेकानेक कर्मों द्वारा आत्मारूप परब्रह्म वासुदेवमें भक्ति दृढ़ करने लगे। तदनन्तर महाराज अम्बरीष अपने पुत्रोंको राज्य-भार सौंपकर वनको चले गये और भगवान वासुदेवको आत्मसमर्पण करके भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करने लगे। यह राजा अम्बरीषकी कथा परम पवित्र है। जो कोई मन लगाकर इसे पढ़ता या सुनता है, वह अवश्य भगवानके प्रसादसे अनायास ही मुक्तिपद लाभ कर सकता है।

षष्ठ अध्याय

सौभरिकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! राजा अम्बरीषके विरूप, केतुमान और शम्भु नामक तीन पुत्र हुए। उनमें विरूपके पुत्र पृषदश्व हुए और उनके पुत्र रथीतर हुए। रथीतर पुत्रहीन थे। उन्होंने पुत्रके लिए अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की तो अङ्गिराजीने रथीतरकी स्त्रीसे कई पुत्र उत्पन्न कर दिये। ये ही लोग आङ्गिरस नामसे प्रसिद्ध हुए। हे राजन् ! एक समय मनुने छींका तो उनकी नासिकासे एक बालक उत्पन्न हुआ, उसका नाम इक्ष्वाकु पड़ा। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डक

ये श्रेष्ठ थे। इनमेंसे आर्यावर्त अर्थात् विन्ध्य और हिमालय-पर्वतके बीचकी भूमिके अग्रभागमें पचीस और पीछेके भागमें पचीस राजा हुए। एक समय राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्ध करनेके लिए अपने पुत्र विकुक्षिको बुलाकर कहा कि पुत्र! वनमें जाकर पवित्र मांस ले आओ। विकुक्षिने वनमें जाकर वहाँ बहुतसे मृगोंको मारा। बादको भूख और थकावटके कारण उनको श्राद्धका स्मरण नहीं रहा। इसलिए एक खरगोश अग्निमें भूनकर खा गये। बादको बाकी मांस लेकर पिताके पास गये। कुलपुरोहित वशिष्ठजीने कहा कि यह मांस जूठा होनेके कारण श्राद्धके कामका नहीं रहा। गुरुके बतानेसे इक्ष्वाकुको मालूम हुआ कि पुत्रने मांस जूठा कर डाला है। तब इक्ष्वाकुने क्रोधित होकर सदाचारका उल्लंघन करनेवाले पुत्रको अपने देशसे निकाल दिया। इसके बाद इक्ष्वाकुको वैराग्य हो गया। तब वे वशिष्ठजीसे योगविद्या सीखकर उसी योगके अभ्यास द्वारा देहान्तके बाद परब्रह्ममें लीन हो गये। बड़े होनेके कारण विकुक्षि ही फिर देशमें आकर पृथ्वीमण्डलका राज्य करने लगे। शशक खा लेनेके कारण उनका 'शशाद' नाम पड़ गया। उन्होंने अपने राज्यके समयमें भगवानकी प्रसन्नताके लिए अनेक यज्ञ किये। शशादके पुत्रका नाम पुरंजय पड़ा। पुरंजय इन्द्रवाह और ककुत्स्थ इन दो नामोंसे भी प्रसिद्ध हुए। पूर्व समयमें दैत्योंसे युद्धमें देवता लोग हार गये। तब उन लोगोंने पुरंजयसे सहायता माँगी। पुरंजयने कहा—यदि इन्द्र मेरे वाहन बन जायँ तो उनपर चढ़कर मैं दैत्योंको मारूँगा। विष्णुभगवानके कहनेसे इन्द्रने स्वीकार कर लिया।

और बड़े भारी बैल बन गये। राजा पुरंजय देवताओंके राजा इन्द्रकी ककुद (बैलकी पीठके आगे जो मांस होता है) पर बैठे। उनके शरीरमें विष्णुभगवानके तेजका अंश आ जानेसे वे अजेय हो गये। उसी समय देवताओंके साथ पश्चिम दिशामें जाकर उन्होंने दैत्योंके पुरको घेर लिया। दैत्य लोग पुरंजयके घोर संग्रामसे घबड़ाकर पातालको भाग गये। राजर्षि पुरंजयने दैत्योंका पुर, धन और स्त्रियोंको जीतकर इंद्रको सौंप दिया। इन कर्मोंसे उनका पुरंजय नाम पड़ा। वे इन्द्रको वाहन बनानेसे इन्द्रवाह और इन्द्रके ककुदपर बैठनेसे ककुत्स्थ नामसे भी प्रसिद्ध हुए। हे राजन्! पुरंजयके पुत्रका नाम अनेना था। अनेनाके पुत्रका नाम पृथु हुआ। पृथुके पुत्र विश्वगन्धि हुए और विश्वगन्धिके पुत्रका नाम चन्द्र था और चन्द्रके पुत्रका नाम युवनाश्व था। युवनाश्वके पुत्र श्रावस्त हुए। उन्होंने श्रावस्ती पुरी बसायी। श्रावस्तके पुत्रका नाम बृहदश्व हुआ। बृहदश्वके पुत्र कुवलयाश्व हुए। बली कुवलयाश्वने महर्षि उत्तङ्ककी प्रसन्नताके लिए इक्कीस हजार पुत्रोंके साथ धुन्धुनामक असुरको मारा था। इसलिए उनका नाम धुन्धुमार भी पड़ा। धुन्धु दैत्यके मुखकी अग्निसे कुवलयाश्वके सब पुत्र जल गये। केवल दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व ये तीन पुत्र बच रहे। दृढ़ाश्वके पुत्र हर्यश्व हुए। हर्यश्वके पुत्र निकुम्भ हुए। उनके पुत्र बहुलाश्व हुए। बहुलाश्वके पुत्र कृशाश्व हुए और उनके पुत्र सेनजित् हुए। सेनजित्के पुत्र युवनाश्व हुए। युवनाश्वकी सौ रानियाँ थीं, परन्तु वे निःसन्तान थे। इस कारण दुःखित होकर अपनी सौ रानियोंके साथ वनको चले गये। वहाँ उन्होंने पुत्रके लिए

ऋषियोंसे प्रार्थना की। दयालु ऋषियोंने एकाग्र होकर राजासे इन्द्रका यज्ञ कराया। एक दिन रातको राजा युवनाश्वको प्यास लगी तो यज्ञमण्डपमें गये। उस समय सब ब्राह्मण सो रहे थे। वहाँ एक कलसमें रानीके पीनेके लिए मंत्रसे अभिमंत्रित जो जल रखा हुआ था, उसे उठाकर राजा पी गये। सबेरे जब ब्राह्मणोंने कलसको खाली देखा तो आश्चर्यमें पड़कर पूछा कि यह किसका काम है? राजाके कहनेसे जब वे लोग जान गये कि राजाने ही जल पी लिया है। तब कहने लगे—अहो! देवबल ही मुख्य बल है, पुरुषका बल कुछ भी काम नहीं कर सकता। यह कहकर उन लोगोंने बार-बार ईश्वरको प्रणाम किया। उसके बाद नौ महीने बीतनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर एक चक्रवर्ती और महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। बालकको रोते देखकर ब्राह्मणोंने कहा कि यह बालक बहुत रो रहा है, किसका दूध पीकर जिये? इन्द्रने मां धाता कहकर अपनी तर्जनी अंगुली बालकके मुँहमें दे दी। इस कारण बालकका नाम मान्धाता पड़ा। युवनाश्व देवब्राह्मणोंकी कृपासे वनमें तपस्या करके सिद्ध हो गये। युवनाश्वके पुत्र मान्धाता चक्रवर्ती राजा हुए। उन्होंने सातों द्वीपकी पृथ्वीको जीता। उनका विवाह राजा शशबिन्दुकी कन्या इन्दुमतीसे हुआ था। इन्दुमतीके गर्भसे पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचकुन्द ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। धर्मात्मा मान्धाताके पचास कन्याएँ भी हुईं। उन सभीने सौभरिनामक ऋषिको अपना पति बनाया। सौभरि ऋषि यमुनाके जलमें गोता लगाकर बड़ा ही कठिन तप कर रहे थे। जलके

भीतर मछलियोंका भोग-विलास देखकर उनका चित्त भी कामके वशमें हो गया। विवाहकी इच्छासे मान्धाताके पास जाकर उन्होंने एक कन्या माँगी। राजाने चतुरताके साथ उत्तर दिया—कन्याओंका स्वयंवर कर दिया जायगा। जो कन्या आपके गलेमें जयमाल डाल देगी, उसे आप ले लीजिये। राजाकी यह बात सुनकर सौभरिने सोचा कि राजा मुझे वृद्ध समझकर स्वयंवरका बहाना कर रहे हैं। अस्तु, योगबलसे मैं ऐसा सुन्दर नवयुवक बन जाऊँगा कि राजकुमारियोंकी बात कौन कहे, देवताओंकी स्त्रियाँ भी मुझे देखकर मोहित हो जायँगी। सुन्दर युवाका रूप धारण करके जब सौभरि अन्तःपुरमें गये तो उनके रूपसे पचासों राजकुमारियाँ रीझ गयीं और सभीने उनको ही पति मान लिया। तदनन्तर सौभरि दिन-रात विषय-भोग करने लगे। आगमें घीके बूँद पड़नेसे जिस तरह आग नहीं बुझती, वरन् और भी बढ़ती है, उसी तरह सौभरिकी भोगेच्छा नहीं घटी। एक दिन सौभरिके मनमें अनुताप हुआ कि इतने दिनोंका मेरा तप नष्ट हो गया। इस प्रकार सौभरिजीको वैराग्य हो गया और वानप्रस्थधर्म ग्रहण कर तप करनेके लिए वे वनको चले गये। उनकी पतिव्रता स्त्रियाँ भी उनके साथ वनको गयीं। सौभरिजीने वहाँ तप करके शरीर स्थित तीनों अग्नियोंके साथ आत्माको परमात्मामें लीन कर दिया। बादको सभी स्त्रियाँ भी मुनिके प्रभावसे सती हो गयीं।

सप्तम अध्याय

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! मान्धाताके श्रेष्ठ और बड़े पुत्र अम्बरीषजी थे। उनको पितामह युवनाश्वने अपना पुत्र बनाया था। अम्बरीषके पुत्रका भी नाम युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके पुत्रका नाम हारीत था। अम्बरीष युवनाश्व और हारीत—ये तीनों मान्धाताके गोत्रके प्रवर हैं। अब इसी वंशमें उत्पन्न राजा पुरुकुत्सके वंशका वर्णन करते हैं। हे राजन् ! रसातलके सर्पोंने पुरुकुत्ससे अपनी बहिन नर्मदाका विवाह कर दिया। नर्मदा अपने पति पुरुकुत्सको रसातलमें ले गयी। विष्णुके अंश राजा पुरुकुत्सने सर्पोंपर अत्याचार करनेवाले दुष्ट गन्धर्वोंको मारा। फलतः नागराजने उनको यह अत्युत्तम वर दिया कि जो कोई इस चरित्रको पढ़ेगा या सुनेगा, उसे नागोंसे भय न होगा। पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्युके अनरण्य हुए। अनरण्यके हर्यश्व और हर्यश्वके अरुण हुए। अरुणके त्रिबन्धन हुए। त्रिबन्धनके सत्यव्रत हुए। इनका एक नाम त्रिशंकु है। त्रिशंकुने विवाहिता ब्राह्मण कन्याको हरण किया था, जिसके कारण उनके पिताने क्रुद्ध होकर शाप दिया था। इस कारण वे चण्डाल हो गये थे। बादको विश्वामित्रजीने अपने तपके प्रभावसे उनको सशरीर स्वर्ग भेज दिया। देवताओंने त्रिशंकुको नीचे ढकेल दिया, पर विश्वामित्रने अपने प्रभावसे गिरने नहीं दिया—बीचमें ही रोक रखा। त्रिशंकुका मुख नीचे और पैर ऊपर है और अब भी वे स्वर्गके पास दिखाई पड़ते हैं। त्रिशंकुके पुत्र राजा हरिश्चन्द्र हुए। जिनके लिए बहुत वर्षोंतक विश्वामित्र

और वशिष्ठ ऋषि पक्षीका रूप धारणकर लड़ते रहे। राजा हरिश्चन्द्र पहले निःसन्तान थे। इस कारण बहुत ही उदास रहते थे। एक दिन देवर्षि नारदके उपदेशसे वरुणकी शरणमें जाकर राजाने प्रार्थना की कि हे देव! मुझे एक पुत्र हो, ऐसा वर दीजिये। हे प्रभो! जो वीर पुत्र उत्पन्न होगा, तब मैं उसी पुत्रको यज्ञपशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा। वरुणने कहा—तथास्तु। इसके बाद हरिश्चंद्रके यहाँ रोहित नामके पुत्रका जन्म हुआ। पुत्र होनेपर वरुणने आकर कहा—हे राजन्! आपको पुत्र हो गया। प्रतिज्ञाके अनुसार मेरा यज्ञ करो। हरिश्चंद्रने कहा—अभी तो पशु अपवित्र है। दस दिनका होनेपर पवित्र होगा, तब आपकी पूजा करूँगा। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! दस दिनके बाद फिर वरुणने आकर कहा कि अब यज्ञ करो। राजाने फिर बहाना किया कि दाँत निकलनेपर शुद्ध होगा। जब बालकके दाँत निकल आये, तब फिर वरुणने आकर यज्ञ करनेके लिए कहा। तब हरिश्चंद्रने कहा कि दाँत एक बार गिर जानेपर यह शुद्ध होगा। एक बार दाँत टूटनेपर फिर वरुणने आकर कहा कि अब तो दाँत भी गिर गये, अपना वचन पूरा करो। राजाने कहा कि जब नये दाँत निकल आयँगे, तब यह पशु शुद्ध होगा। फिर जब दाँत निकल गये, तब वरुणने आकर कहा कि अब मेरा पूजन करो। इस बार भी हरिश्चंद्रने कहा कि जब क्षत्रियपशु कवच पहिनकर संग्राम करने योग्य होगा, तब पवित्र होगा। पुत्रपर सुदृढ़ प्रेम रहनेके कारण राजा इस प्रकार टाल-मटोल करने लगे। इसी समय किसी दिन रोहितको पिताका अभिप्राय

मालूम हो गया। तब वे प्राण बचानेके लिए धनुष-बाण लेकर शिकार खेलनेके बहाने वनको भाग गये। इधर हरिश्चन्द्रका छल जानकर वरुणने क्रोध किया, जिससे हरिश्चन्द्रको जलन्धर रोग हो गया। पिताके रोगका समाचार पाकर रोहितने राजधानीमें आनेका विचार किया। किन्तु इन्द्र एक मनुष्यके रूपसे रोहितको मिले और 'पृथ्वीमें घूमना पुण्य है' कहकर उनको लौटा दिया। फिर रोहित कई वर्ष वनमें रहे। किन्तु लगातार पाँच वर्षतक इन्द्र उनको लौटाते रहे। छठें वर्ष फिर जब रोहित जाने लगे तो मार्गमें अजीगर्तनामक ऋषिसे उनके मझले पुत्र शुनःशेफको मोल ले लिया। पिताके पास जाकर रोहितने शुनःशेफको दे दिया। इसके बाद हरिश्चन्द्रने पुरुषमेध यज्ञ किया। राजाका जलन्धर रोग जाता रहा। इस यज्ञमें देवराज इन्द्र इतने प्रसन्न हुए कि हरिश्चन्द्रको सुवर्णमय रथ प्रदान किया। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया। अन्तमें राजाने अपना अज्ञान नष्ट कर डाला। फिर परमानन्दके अनुभवसे ज्ञानको भी त्याग और सब प्रकारके बन्धनोंसे छूटकर उस ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो गये, जो अनिर्देश्य और अतर्क्य है।

अष्टम अध्याय

राजा सगरके वंशका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! रोहितके पुत्र हरित हुए। हरितके पुत्रका नाम चम्प पड़ा। उन्होंने चम्पापुरी बसायी। चम्पके पुत्र सुदेव हुए। सुदेवके पुत्र विजय हुए। विजयके

३०

पुत्र भरुक थे। भरुकके वृक और वृकके बाहुक हुए। शत्रुओंने बाहुकको हराकर उनका राज्य छीन लिया। राजा बाहुक अपनी रानियोंके साथ वनको चले गये। वृद्ध राजा बाहुकका वनमें ही देहान्त हो गया। बड़ी रानी राजाके साथ सती होनेको उद्यत हुई। किन्तु महर्षि और्व जानते थे कि रानी गर्भवती हैं। इसलिए उन्होंने रानीको सती होनेसे रोक दिया। हे राजन्! रानीकी और सौतें रानीको गर्भवती जानकर उनसे डाह करती थीं। इसलिए उन सबने भोजनके अन्नमें गर अर्थात् विष मिलाकर दे दिया। गरके साथ ही एक महाप्रतापशाली पुत्र उत्पन्न हुआ और वह सगर नामसे विख्यात हुआ। राजा सगर चक्रवर्ती सम्राट हुए थे। राजा सगरने अपने गुरुके कहनेसे नालजङ्घ, यवन, शक, हैहय, बर्बर आदि जातिवाले शत्रुओंको प्राणसे तो नहीं मारा, किन्तु उनके वेषको बिगाड़ दिया। किसीका सिर मुड़वा दिया, किसीको गल-मुच्छे और दाढ़ी रखनेको बाध्य किया। किसीके सिरके आधे बाल मुड़वा दिये, किसीको नंगे रहनेकी आज्ञा दी और किसीको अकच्छ रहनेका आदेश दिया। हे राजन्! महर्षि और्वके उपदेशसे राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ करके भगवान हरिकी आराधना की। दिग्विजयके लिए सगरने अपना घोड़ा छोड़ा तो यज्ञमें विघ्न डालनेके लिए उसे इन्द्र हर ले गये। राजाकी सुमति और केशिनी—ये दो रानियाँ थीं। पिताकी आज्ञासे सुमतिके साठ हजार लड़के यज्ञका घोड़ा खोजनेके लिए निकले, किन्तु पता न लगनेपर पृथ्वी खोदने लगे। कुछ दिनोंके बाद उत्तर-पूर्व कोनेमें भगवान कपिलके पास

वह घोड़ा दिखायी पड़ा। राजकुमार कहने लगे कि यह आँखें बन्द करके चोर बैठा है। इस पापीको मारो-मारो यह कहकर शस्त्र लिये वे राजकुमार मुनिकी ओर दौड़े। मुनि समाधिस्थ थे। कोलाहल सुनते ही समाधि टूट गयी और उन्होंने आँखें खोलकर देखा। हे राजन्! इन्द्रकी मायासे सगर के राजकुमार मोहित हो गये थे। इस कारण उन्होंने महात्मा कपिलका अपमान किया। फल यह मिला कि जितने राजकुमार थे, सभी अपने-अपने शरीरकी अग्निसे जलकर राखके ढेर हो गये। केशिनी रानीके गर्भसे सगरको असमंजसनामक पुत्र हुआ था। असमंजसके पुत्र अंशुमान सुशील थे। वे अपने पितामह सगरके शुभचिन्तक थे। लड़कपनमें असमंजस उधमी थे। पहले जन्ममें वे योगी थे। सङ्गदोषसे भ्रष्ट हो गये थे। इसीसे उनको पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त याद था। असमंजस ऐसे-ऐसे ऊधम मचाने लगे कि प्रजा घबड़ा उठी। वे खेलते हुए लड़कोंको पकड़कर सरयू नदीमें बोर देते थे। पिताने बार-बार समझाया किन्तु असमंजसका स्वभाव नहीं बदला। सगरने ऊबकर असमंजसको देशसे निकाल दिया। जाते समय असमंजसने मृत बालकोंको अपने योगबलसे जिला दिया। इसके बाद देशसे निकल गये। अयोध्याके रहनेवाले लोग मृत पुत्रोंको जीते-जागते घर आते देख बहुत ही विस्मित हुए और यह हाल सुनकर राजा सगर भी पछताने लगे। साठ हजार पुत्रोंके नष्ट होनेपर महाराज सगरने घोड़ेका पता लगानेके लिए असमंजसके पुत्र अंशुमानको भेजा। अंशुमान भी अपने पिताके भाइयोंके बनाये

हुए मार्गसे कपिलजीके पास पहुँचे और मुनिके पास ही यज्ञका घोड़ा भी देखा। वहाँपर बैठे हुए महामुनि कपिलभगवानको देखकर अंशुमान सिर झुकाकर हाथ जोड़ एकाग्र मनसे स्तुति करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! अंशुमानने कपिलजीकी स्तुति की और उनके प्रभावका वर्णन किया। तब अनुग्रह प्रकट करते हुए भगवान कपिलजीने कहा—पुत्र! यह तुम्हारे पितामहके यज्ञका घोड़ा खड़ा है, इसे तुम ले जाओ और ये तुम्हारे साठ हजार चाचा जले हुए पड़े हैं। गङ्गाजलके बिना इनको सद्गति न मिलेगी। यह सुनकर अंशुमानने कपिल मुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। अंशुमान इस प्रकार कपिलदेवको प्रसन्न करके घोड़ा लेकर यज्ञमंडपमें आये। राजा सगरने यज्ञपशु पाकर यज्ञ पूरा किया। फिर समयानुसार वैराग्य होनेपर सब राज-काज अंशुमानको सौंपकर महामुनि और्वके उपदेशानुसार बन्धनमुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त हुए।

नवम अध्याय

राजा भगीरथका तप करके पृथ्वीपर गङ्गाको लाना और सौदास राजाकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! अंशुमानने अपने पुत्रको राज्यभार देकर गङ्गाको पृथ्वीपर लानेकी कामनासे बहुत दिनों तक तप किया। किन्तु उनकी कामना पूरी नहीं हुई बीचमें ही शरीर छूट गया। अंशुमानके पुत्र दिलीप भी उन्हींकी भाँति गङ्गाजीको न ला सके। बीचमें ही कालके गालमें समा गये। दिलीपके पुत्र

भगीरथने गङ्गाजीको लानेकी इच्छासे बड़ा कठोर तप किया। तब गङ्गाजीने प्रकट होकर भगीरथसे कहा—पुत्र! मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देने आयी हूँ। भगीरथने नम्रतापूर्वक अपनी अभिलाषा प्रकट की। तब गङ्गादेवीने कहा—हे राजन्! मैं पृथ्वीपर गिरूँगी तो मेरा वेग कौन रोकेगा? पृथ्वीपर पापी लोग अपने पातक मुझमें आकर धोवेंगे। इसका उपाय सोचिये। भगीरथजीने कहा—माता! ब्रह्मनिष्ठ साधुगण आपकी उस अपवित्रताको हरण करेंगे। क्योंकि पापनाशन हरि उनमें वास करते हैं और भगवान शङ्कर आपके वेगको धारण करेंगे। गङ्गाजीसे ये वचन कहकर राजा भगीरथ तपस्या करके महादेवजीको प्रसन्न करनेका यत्न करने लगे। थोड़े ही समयमें आशुतोष शिव सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने सावधान होकर गङ्गाजीको सिरपर धारण किया। राजा भगीरथ गङ्गाजीको ले चले। भगीरथजी वायुतुल्य वेगवाले रथपर जा रहे थे और उनके पीछे अनेक देशोंको पवित्र करती हुई गङ्गाजी चलीं। कपिलमुनिके शापसे जो सगरपुत्रगण जल गये थे, उनके भस्मको गङ्गाजीने जाकर वहा दिया। गङ्गाजलका स्पर्श होते ही वे लोग स्वर्गको चले गये। हे राजन्! भगीरथको श्रुतनामक पुत्र हुआ। श्रुतके पुत्र नाभ हुए और नाभके सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपके अयुतायु और उनके पुत्र ऋतुपर्ण हुए। ऋतुपर्णसे राजा नलकी बड़ी मित्रता थी। ऋतुपर्णने नलसे अश्वविद्या सीखी और नलको पाँसा खेलनेकी विद्या बतायी। ऋतुपर्णके पुत्र सर्वकाम और सर्वकामके सुदास हुए। सुदासके पुत्र सौदास हुए। इनकी ही स्त्रीका नाम दम-

यन्ती था। इनको कल्माषपाद और मित्रसह भी कहते हैं। वशिष्ठमुनिके शाप और अपने कर्मदोषसे इनको राक्षस होना पड़ा। अपने ही कर्मोंके दोषसे ये अपने वीर्यसे पुत्र उत्पन्न नहीं कर सके। राजा परीक्षितने कहा—भगवन्! राजा सौदासको क्यों शाप दिया गया? उस कथाको मैं सुनना चाहता हूँ। कृपापूर्वक सुनाइये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! राजा सौदास एक दिन शिकार खेलने गये। वहाँ दो राक्षस मृगरूपमें घूम रहे थे। राजाने एकको मार डाला किन्तु दूसरा भागकर बच गया। इसके बाद वही याचकके वेषसे राजाके गृहमें छिपकर रहने लगा और अपने भाईका बदला लेनेका अवसर देखता रहा। एक दिन राजाके घरमें वशिष्ठजी भोजन करने गये। उस पापीने मनुष्यका मांस पकाकर परोस दिया। अपने सामने अभक्ष्य नरमांस देखकर वशिष्ठजीको बड़ा ही क्रोध हुआ। उन्होंने राजाको शाप दिया कि—अरे! तूने यह राक्षसोंका भोजन मेरे सामने रखा है, इसलिए तू नरमांसाहारी राक्षस हो जा। किन्तु जब वशिष्ठजीको मालूम हो गया कि दुष्ट राक्षसने यह कार्य किया है तो उन्होंने राजासे कहा—हे राजन्! केवल बारह वर्षतक तुमको मेरा शाप भोगना पड़ेगा। राजा निर्दोष थे। गुरुके शापसे उनको क्रोध आ गया और उन्होंने गुरुको शाप देनेके लिए हाथमें जल लिया, किन्तु रानी दमयन्तीने हाथ पकड़कर राजाको शाप देनेसे रोका। तब राजाने उस जलको अपने ही पैरोंपर छोड़ दिया। जलके पड़ते ही दोनों पैर झुलसकर काले पड़ गये। इसीसे राजा सौदासका कल्माषपाद नाम पड़ा। हे

राजन् ! राजा सौदास राक्षस होकर वनोंमें विचरने लगे। एक स्थानपर वनवासी द्विजदम्पती विहार कर रहे थे। राजाको भूख लगी थी। उन्होंने ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मणीकी कामेच्छा पूरी नहीं हुई थी। उसने राजासे विनयपूर्वक कहा—आप राक्षस नहीं हैं। आप रानी दमयन्तीके पति राजा सौदास हैं। आप मेरे पतिको मत मारिये। मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई है। मैं पुत्र चाहती हूँ। ब्राह्मणीके विलापपर कुछ भी ध्यान न देकर शापमोहित राजा सौदास उस ब्राह्मणको खा गये। ब्राह्मणीने शोक करते हुए राजाको शाप दिया कि—रे पापात्मा ! मेरे पतिको रति करते समय तूने भक्षण कर लिया है। इसलिए तू भी जब अपनी रानीके साथ गर्भाधानके लिए रति करने जायगा तो उसी समय तुरत मर जायगा। हे राजन् ! पतिपरायणा वह ब्राह्मणी इस प्रकार राजाको शाप दे और अग्नि प्रज्वलितकर उसी अग्निमें पतिकी हड्डियोंके साथ जलकर पतिकी गतिको प्राप्त हुई। इधर बारह वर्ष बीतनेपर राजा सौदासका शापमोचन हुआ। राजा अपने घर आये। एक दिन रानीके पास रति करने गये तो ब्राह्मणीके शापने याद दिलाकर रोका। उस समयसे राजा स्त्री-सम्भोग न कर सके। इस कारण राजा सौदास निःसन्तान रह गये। कुछ दिनोंके बाद राजाकी आज्ञासे वशिष्ठजीने रानी दमयन्तीमें गर्भाधान किया। रानी सात वर्षतक गर्भधारण किये रहीं, प्रसव नहीं हुआ। तब वशिष्ठजीने आकर अश्म अर्थात् पत्थर द्वारा गर्भमें प्रहार किया। तब पुत्र उत्पन्न हुआ। इसीसे इस गर्भ द्वारा उत्पन्न पुत्रका नाम अश्मक पड़ा। अश्मकके पुत्र मूलक

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

हुए। परशुरामके कोपसे इनकी रक्षा स्त्रियोंने की थी। इसलिए उनका नाम नारीकवच भी पड़ा था। क्षत्रियहीन पृथ्वीपर क्षत्रियोंका मूल होनेके कारण इनका नाम मूलक पड़ा। मूलकके पुत्र दशरथ हुए और दशरथके ऐडबिड हुए। ऐडबिडके राजा विश्वसह उत्पन्न हुए। विश्वसहके पुत्र चक्रवर्ती खट्वांग हुए। युद्धमें उनको जीतना बहुत कठिन काम था। उन्होंने देवताओंके निवेदनसे दानवोंका संहार किया तो देवताओंने प्रसन्न होकर वर देना चाहा। राजाने उनसे कहा कि पहले यह तो बताओ कि मेरी परमायु कितनी बाकी है। देवताओंने जब बताया कि देवताओंके एक मुहूर्त (दो घड़ी) आयु शेष है तब वे विमानपर चढ़कर अपने पुरमें गये और परमेश्वरमें मन लगाकर रहने लगे। वर लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी।

दशम अध्याय

श्रीरामका जन्म और रावणवध करके अयोध्यामें आगमन

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! राजा खट्वाङ्गके पुत्र दीर्घबाहु हुए। उनके पुत्र रघु हुए। रघुके अज नामक पुत्र हुए। अजके पुत्र महाराज दशरथ हुए। साक्षात् भगवान ब्रह्ममय हरिने देवताओंकी प्रार्थनासे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—इन चार नामोंसे चार अंशोंमें विभक्त होकर राजा दशरथके यहाँ जन्म लिया। मैं वही रामचरित्र संक्षेपमें कह रहा हूँ, सुनो। हे राजन्! रामने लक्ष्मणके साथ महर्षि विश्वामित्रके यज्ञमें जाकर अनेक राक्षसोंका वध किया। बादको राजा जनकके घर जाकर श्रीरामने

तीन सौ वाहकों द्वारा लाये गये. शिवजीके महान् धनुषको बायें हाथमें लेकर अनायास ही तोड़ डाला और सीतासे विवाह किया। मार्गमें उन्होंने उन परशुरामका दर्प चूर्ण कर दिया, जिन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय बना दिया था। रामजीने दण्डकारण्यमें पापबुद्धिसे आयी रावणकी बहिन सूर्पणखा राक्षसीके नाक-कान काटकर विरूप कर दिया और खर-दूषणादिकी अध्यक्षतामें युद्धार्थ आये हुए चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया। शूर्पणखाके मुखसे सीताके रूपकी प्रशंसा सुनकर रावणके हृदयमें कामाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने सीता-हरणके कुविचारसे मारीच राक्षसको रामचन्द्रके आश्रममें भेजा। मारीच अद्भुत मृगका रूप धारण करके रामके आश्रममें आया और उनको भुलावा देकर आश्रमसे दूर ले गया। रामजी मृग-रूपी मारीच राक्षसको मारकर जब आश्रममें लौटे तो वहाँ सीताजी नहीं थीं। यह देखकर दीनभावसे भाई लक्ष्मणके साथ बन-बनमें घूमने लगे। इधर-उधर घूमते-घूमते श्रीरामचन्द्रने देखा कि उनके लिए रावणसे संग्राम करके मरे हुए जटायुका अन्तिम संस्कार नहीं हुआ है। अतएव उसके शवको जलाकर विधिवत् संस्कार किया। कबन्धको मारकर सुग्रीव आदि बानरोंसे मित्रता करके उन्होंने बालीको मारा। फिर बानरोंकी सेनाके साथ लंकापुरीपर चढ़ाई करनेके लिए रामचन्द्रजी समुद्रतटपर पहुँचे। सेतुबन्धन हो जानेपर विभीषणकी सलाहके अनुसार सुग्रीव, नील, हनुमान आदि सेनापतियोंके साथ श्रीरामचन्द्रने लंकापुरीमें प्रवेश किया। सीताका पता लगानेके लिए जब हनुमान आये थे तब

उन्होंने पहले ही उस लंकापुरीको भस्म कर दिया था। वानर-सेनाने लंकाको चारों ओरसे घेर लिया और अनेक स्थानोंको तोड़-फोड़कर लूट लिया। युद्धमें कुम्भ, निकुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त और अतिकाय आदि मारे गये। राक्षसराज रावण अपनी सेनाका विनाश होते देखकर पुष्पक विमानपर चढ़कर रामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके लिए आया। रामचन्द्रजी इन्द्रके सारथि मातलिके लाये हुए प्रभायुक्त दिव्य रथपर आरूढ़ होकर युद्धक्षेत्रमें शोभित थे। श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी अत्यधिक भर्त्सना की और फिर तीक्ष्ण बाण चलाकर उसे मार डाला। रावणके मरते ही राक्षसोंके दलमें महा हाहाकार मच गया। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इसके बाद बिभीषणने रामचन्द्रजीकी अनुमति लेकर जातिवालोंके विधिवत् मृतकसंस्कार किये। इसके बाद सीताका उद्धार करके स्वजनोंके साथ रामचन्द्रने अयोध्याकी यात्रा की। पुरीको आते हुए रामचन्द्रजीने राहमें सुना कि भाई भरत अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें रहते हैं और सिरपर जटा रखाये बल्कल वस्त्र धारण किये केवल पृथ्वीपर शयन करते हैं तथा उनकी पादुका रखकर राज्य संचालन करते हैं। रामचन्द्रके आनेका सन्देश सुनकर भरतजी उनको लिवाकर लानेके लिए पादुका सिरपर रखकर पुरवासी, अमात्य और पुरोहितोंके साथ नन्दिग्रामसे चले। भ्राता द्वारा अभिनन्दित होकर महा समारोहसे रामचन्द्रजीने पुरीमें प्रवेश किया। अन्तःपुरमें जाकर रामने जननी और गुरुजनोंकी पूजा की। तदनन्तर वशिष्ठमुनिने रामचन्द्रकी जटा उतरवाकर उनका राज्याभिषेक

किया । राजसिंहासनपर बैठकर रामचन्द्रजी पुत्रवत् प्रजापालन करने लगे और प्रजागण उनको पिताकी भाँति सम्मान दिखाने लगे । रामचन्द्रजीके राजा होनेपर त्रेतायुगमें भी सत्ययुगके समान समय हो गया । भगवान रामचन्द्रके राज्यमें आधि-व्याधि, बुढ़ापा, शोक, दुःख, भय, ग्लानि अथवा क्लान्ति किसी प्रकारका कष्ट नहीं रहा ।

एकादश अध्याय

श्रीरामचन्द्रका यज्ञानुष्ठान

शुकदेवजी बोले—महाराज ! भगवान रामचन्द्रने आचार्यों-की बतायी हुई विधिसे यागयज्ञों द्वारा अपना ही पूजन किया । यज्ञके अन्तमें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणामें दी । इन दिशाओंके मध्यमें जो पृथ्वी शेष रही, उसे निःस्पृह रामचन्द्रने आचार्यको दे दिया । सर्वस्वदान कर देनेसे श्रीराम-चन्द्र और जानकीके पास केवल पहिननेके वस्त्र और आभूषण रह गये । ऐसी उदारता देखकर ब्राह्मणगण बहुत ही सन्तुष्ट हुए और दी हुई सम्पूर्ण पृथ्वी फिर रामचन्द्रजीको लौटाकर स्तुति करने लगे । तदनन्तर समस्त प्रजाजनोंका मनोभाव मेरे प्रति कैसा है, यह जाननेके लिए रामचन्द्रजी छिपकर रात्रिमें नगरभ्रमण करने निकले । घूमते-घूमते एक स्थानपर उन्होंने सुना कि एक मनुष्य अपनी स्त्रीसे कह रहा है कि तू रात्रिका

परपुरुषके घर रही। तू दुष्टा और व्यभिचारिणी है। मैं तेरा भरणपोषण न करूँगा। रामचन्द्रजी तो स्त्रैण हैं। इसलिए उन्होंने सीताको ग्रहण कर लिया। मैं राम नहीं हूँ, मैं तुझे त्याग दूँगा। यह वचन सुनकर रामचन्द्रजी घर लौट आये और लोगोंकी निन्दासे कुलमें कलंक न लग जाय, इस भयसे उन्होंने सीताजीको त्याग दिया। पतिपरायणा सीता उस समय गर्भवती थीं। वाल्मीकि मुनिके आश्रममें छोड़ी जानेपर सीताजी वहीं रहने लगीं। समयपर सीताजीके गर्भसे दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम कुश और लव रखा गया। महर्षि वाल्मीकिजीने स्वयं जातकर्म आदि संस्कार किये। हे राजन्! इधर अयोध्यामें लक्ष्मणजीके अङ्गद और चित्रकेतु नामक दो पुत्र हुए। भरतके भी दो पुत्र हुए जिनके नाम तक्ष और पुष्कल पड़े। शत्रुघ्नके सुबाहु और श्रुतसेन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। भरतजीने दिग्विजयकी यात्रा की और कोटि-कोटि गन्धर्वोंको मारकर उन सबका धन लाकर रामचंद्रकी सेवामें अर्पण कर दिया। शत्रुघ्नने भी मधुके पुत्र लवणनामक राक्षसको मारकर मधुवनमें मथुरापुरी बसायी। जनकनन्दिनी अपने दोनों पुत्रोंको वाल्मीकिजीके हाथमें सौंपकर अपने पति श्रीरामचन्द्रके चरणोंका स्मरण करते-करते भूविवरमें प्रवेश कर गयीं। इस घटनासे उत्पन्न शोकको अपनी बुद्धिके बलसे रोकनेके लिए रामचंद्रने बहुत चेष्टा की। तथापि प्रियाके प्रशंसनीय गुणोंके स्मरणसे स्वयं ईश्वर होकर भी सम्पूर्णरूपसे शोक त्याग नहीं सके। इसके बाद प्रभु रामचंद्रने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक

अखण्डित अग्निहोत्र किया। तदनन्तर भगवान परम धामको चले गये।

द्वादश अध्याय

कुश और इक्ष्वाकुवंशका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! श्रीरामके पुत्र कुशके पुत्रका नाम अतिथि हुआ। अतिथिके पुत्र निषध हुए। इस वंशमें कई पीढ़ियोंके बाद तक्षकका जन्म हुआ। तक्षकके पुत्र बृहद्बल हुए। महाभारतके युद्धमें तुम्हारे पिता अभिमन्युके हाथों बृहद्बल मारे गये। बृहद्बलके पुत्रका नाम बृहद्रण है। उनके पुत्र आगे वत्सवृद्ध होंगे। इस तरह कई पीढ़ियोंके बाद बृहद्बलके वंशमें सुमित्र होंगे। हे राजन्! कलियुगमें सुमित्रसे इक्ष्वाकुवंशका अन्त हो जायगा।

त्रयोदश अध्याय

निमिवंशका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इक्ष्वाकुके पुत्र निमि हुए। उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ करके महर्षि वसिष्ठको ऋत्यिक कर्ममें वरण किया। उन्होंने कहा—इन्द्रदेव पहले ही मुझे अपने यज्ञमें वरण कर चुके हैं। जबतक उनका यज्ञ समाप्त नहीं होता तबतक प्रतीक्षा कीजिये। यह सुनकर राजा निमि चुप रह गये और वसिष्ठजी भी इन्द्रके यहाँ गये। जितेन्द्रिय निमिने इस जीवनकी कोई स्थिरता नहीं है, यह समझकर गुरु वसिष्ठके आनेके पहले

ही अन्य ऋत्विज द्वारा यज्ञ आरम्भ कर दिया। तदनन्तर इन्द्रका यज्ञ समाप्त करके महर्षि वशिष्ठ निमिके घर गये। शिष्यका अन्यायपूर्ण व्यवहार देखकर क्रोधावेशमें उन्होंने शाप दे दिया कि निमिका शरीर शीघ्र ही छूट जाय। कुलगुरुका यह अधर्माचरण देखकर राजा निमिने भी प्रतिशाप दिया कि आपने लोभके वश होकर धर्मकी ओर ध्यान नहीं दिया, अतएव आपका भी शरीर छूट जाय। इतना कहते ही अध्यात्म ज्ञानी निमिका शरीर छूट गया। उसी समय वसिष्ठजी भी मर गये। किन्तु कुछ दिनोंके बाद मित्रावरुणके वीर्य तथा उर्वशी अप्सराके गर्भसे वसिष्ठजीने जन्म लिया। यज्ञ करते-करते उर्वशीको देखकर मित्रावरुणका वीर्य स्खलित हुआ था। वही वीर्य कलसमें रखा गया। उसीसे वसिष्ठजीका जन्म हुआ। इधर यज्ञ करते-करते निमिका शरीर छूटा तो मुनियोंने गन्धवस्तुओंमें निमिका शरीर रखकर उस यज्ञको समाप्त किया। उन लोगोंने उस यज्ञमें आये हुए देवताओंसे कहा कि आप लोग यदि सन्तुष्ट और समर्थ हैं तो यह निमिका शरीर सजीव हो उठे। देवताओंने तथास्तु कहा। किन्तु निमिका जीवात्मा बोल उठा—अब कभी मैं देहबन्धन नहीं चाहता। यह सुनकर देवताओंने कहा—हे विदेह! अच्छा तो तुम अपनी इच्छाके अनुसार बिना देहके सब देहधारियोंके नेत्रोंमें वास करो। पलकोंके खुलने और मूँदनेसे तबसे निमि दिखाई पड़ने लगे। परन्तु इसके बाद महर्षियोंने देखा कि राजाके बिना अराजकता फैल जायगी। अतएव राजवंश चलानेकी कामनासे सबने निमिके शरीरको

काठ द्वारा मथा। तब निमिके मृत शरीरसे एक कुमार उत्पन्न हुआ। उसके इस प्रकार उत्पन्न होनेसे उसका नाम 'जनक' पड़ा। पिताकी विदेह अवस्थामें उत्पन्न होनेके कारण वैदेह और मथनेसे उत्पन्न होनेके कारण उनको मिथिल भी कहते हैं। उन्होंने मिथिलापुरी बसायी। इस कारण उनको मिथिलाधिपति भी कहते हैं।

चतुर्दश अध्याय

सोमवंशका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! सहस्र सिरवाले परमपुरुष नारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माके पुत्र अत्रि हुए। अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय सोम (चन्द्रमा) का जन्म हुआ। भगवान ब्रह्माने सोमको सब ब्राह्मण, औषध और तारागणका राजा बनाया। सोमने त्रिभुवनको जीतकर राजसूय नामक यज्ञ किया। बलगर्वित चन्द्रने उस यज्ञमें आयी हुई त्रिभुवनसुन्दरी गुरुपत्नी ताराको बलपूर्वक घरमें रख लिया। देवगुरु बृहस्पतिने अनेक बार अपनी स्त्री लौटा देनेके लिए चन्द्रमासे निवेदन किया। किन्तु चन्द्रमाने उनकी बात नहीं मानी। इसलिए देवताओं और दानवोंमें बड़ा भारी संग्राम हुआ। बृहस्पति और शुक्रमें शत्रुता चली आती थी, इस कारण शुक्रने अपने शिष्य दैत्योंके साथ चन्द्रमाका पक्ष लिया। इधर भगवान् शंकरने भूतगणसहित अपने गुरुपुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया। इन्द्र भी देवताओंके साथ गुरुकी ओरसे युद्धमें सम्मिलित हुए। इस प्रकार

ताराके लिए घोर युद्ध हुआ जिसमें अनेकानेक देवताओं और दैत्योंका विनाश हुआ। हे राजन्! कुछ दिन युद्ध होनेके बाद बृहस्पतिके पिता अङ्गिराने ब्रह्माजीसे जाकर यह सब वृत्तान्त कहा। ब्रह्माजीने आकर चन्द्रमाको बहुत डाँटा। तब सोमने ताराको लौटा दिया। बृहस्पतिने अपनी स्त्रीको गर्भवती देखकर उससे कहा—अरी असति! तूने मेरे क्षेत्रमें अन्य पुरुषका बीज धारण किया है। शीघ्र उसे त्यागकर—त्यागकर। हे असति! तू स्त्री जाति है और मैं भी सन्तानार्थी हूँ। इस कारण तुझको शाप देकर भस्म न करूँगा। पतिकी यह बात सुनकर तारा अतिलज्जित हुई और उसने उसी क्षण गर्भसे सुवर्णसदृश कान्तिवाला एक बालक उत्पन्न किया। हे राजन्! परमसुन्दर उस पुत्रको देखकर बृहस्पति और सोम दोनोंको लोभ हुआ और दोनोंने ही उसको लेना चाहा। यह बालक मेरा है, तुम्हारा नहीं है—यह कहकर दोनों उस बालकके लिए विवाद करने लगे। तब ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा कि यह बालक किसका है? किंतु ताराने लज्जाके कारण कुछ उत्तर नहीं दिया। तब लोकलज्जासे कुपित उस कुमारने स्वयं मातासे कहा—ओ असत् आचरण करनेवाली नारी! वृथा लज्जा करनेसे क्या लाभ है? उत्तर क्यों नहीं देती? शीघ्र मुझसे अपना दोष बतला। तदनन्तर ब्रह्माजीने एकांतमें ले जाकर सान्त्वनाके साथ तारासे पूछा। तब धीरेसे ताराने कहा कि यह पुत्र चंद्रमाका है। उसी समय उस कुमारको चंद्रमा ले गये। उस बालककी बुद्धि गम्भीर देखकर उसका नाम बुध रखा। हे राजन्! बुधके वीर्य और इलाके

गर्भसे सुप्रसिद्ध राजा पुरूरवाका जन्म हुआ। एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदके मुखसे पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, सुशीलता, धन और पराक्रमका वृत्तान्त सुनकर उर्वशी मोहित हो गयी और कामबाणसे पीड़ित होकर स्वयं पुरूरवाके पास आयी। मित्रावरुणके शापसे उर्वशी मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुई थी। उसे देखकर पुरूरवा भी मुग्ध हो गये। पुलकित होकर पुरूरवाने कहा—हे सुन्दरि! बैठो। मैं तुम्हारा क्या सम्मान करूँ? तुम मेरे साथ चिरकाल तक सुखसे विहार करो। उर्वशीने कहा—हे सुन्दर! जो पुरुष सुरूप और प्रशंसनीय होता है उसीपर स्त्रियोंकी स्वाभाविक रति होती है। किन्तु हे वीर! मैं केवल नवीन घृत ही आहार करूँगी और रतिकालके सिवा कभी तुमको नग्न न देखूँगी। हे राजन्! ये दोनों भेड़ें अपने पास धरोहररूपमें रखो। तदनन्तर पुरूरवाने उर्वशीकी सभी बातें मान लीं। फिर वे चैत्ररथ आदि देववनोंमें उर्वशीके साथ विहार करने लगे और उर्वशी भी भली-भाँति उनके मनको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करने लगी। इधर इन्द्रने सभामें उर्वशीको नहीं देखा तो पता लगाकर उसे लानेके लिए गन्धर्वोंको भेजा। आधी रातको जब जगत्में घोर अन्धकार फैला हुआ था, तभी गन्धर्व लोग मनुष्यलोकमें गये और पुरूरवाके पास उर्वशीकी जो दो भेंड़ें धरोहरमें रखी हुई थीं, ,उन्हें छिपे तौरसे चुरा ले चले। उन दोनों भेड़ोंको उर्वशी पुत्रके समान प्यार करती थी। जब गन्धर्व उन्हें ले चले तब उन्होंने आर्तनाद किया। यह आर्तनाद सुनकर उर्वशी विलाप करती हुई और राजाको नपुंसक आदि कहकर तिरस्कृत करने लगी। उर्वशीके वचन पुरूरवाको बाणसे

लगे और हाथी जैसे अंकुशके प्रहारसे उत्तेजित हो उठता है वैसे ही उत्तेजित हो और हाथमें तलवार लिये राजाने चोरोंका पीछा किया। यह देखकर गन्धर्वोंने भेंड़ोंको वहीं छोड़ दिया। राजा भेंड़ लेकर लौटे। उसी समय बिजली चमक उठी। राजाको नग्न देखकर प्रतिज्ञा भंग होनेके कारण उर्वशी अपने लोकको चली गयी। अपनी प्रियाके बिना राजा बहुत उदास हुए। उनका चित्त उर्वशीमें ही आसक्त रहता था। राजा उन्मत्तकी भाँति उसकी खोजमें पृथ्वीमण्डलमें भ्रमण करने लगे। कुछ दिनोंके बाद सरस्वती नदीके तटपर पाँच सखियोंके साथ उर्वशीको देखकर उन्होंने कहा—अहो! प्रिये! ठहरो, ठहरो। मैं तुम्हारे बिना जी न सकूँगा। उर्वशीने कहा—तुम पुरुष हो। इन्द्रियोंके वशमें होकर प्राण मत दो। धैर्य धारण करो। हे राजन्! स्त्रियोंकी मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती। वे छल और स्वार्थमें डूबी रहती हैं। स्त्रियाँ अपना प्रिय सिद्ध करनेके लिए अधर्म करनेमें नहीं हिचकतीं और थोड़ी-सी बातके लिए भी विश्वस्त पति या भाई तककी हत्या कर डालती हैं। जो स्त्रियाँ कुलटा हैं वे मनमाना आचरण करती हैं। वे सदा नये पुरुषोंकी खोज करती रहती हैं। जो हो, तुम वर्ष भरमें केवल एक रात्रि मेरे साथ विहार कर सकोगे और मेरे गर्भसे तुम्हारे अन्यान्य पुत्र भी उत्पन्न होंगे। राजा पुरूरवा इसके बाद अपने घर चले गये। एक वर्ष बीतनेपर पुरूरवा फिर वहीं आकर उपस्थित हुए और उसे पुत्रवती देखकर बहुत प्रसन्न हुए। पुरूरवा रातभर वहाँ उर्वशीके साथ बिहार करते रहे। जाते समय राजाको

विरहातुर और उदास देखकर उर्वशीने कहा कि हे राजन् ! मेरे लिए उदास क्यों हो रहे हो ? गन्धर्वोंसे प्रार्थना करो। सेवासे सन्तुष्ट होकर गन्धर्वगण तुमको अवश्य ही मुझे दे डालेंगे। हे राजन् ! उर्वशीके कथनानुसार राजा गन्धर्वोंकी सेवा और स्तुति करने लगे। गन्धर्वोंने सन्तुष्ट होकर राजाको एक अग्निस्थाली दी। कामान्ध राजा उस अग्निस्थालीको ही उर्वशी जानकर उसके लिए वनमें भ्रमण करने लगे। बादको राजा जान गये कि वह उर्वशी नहीं है। तब उस अग्निस्थालीको वनमें रखकर पुरूरवा अपने पुरमें आये और प्रति रात्रिको सतत यही चिन्ता करने लगे कि किस प्रकार उर्वशी मिलेगी। तब त्रेतायुगके आरम्भकालमें स्वर्गलोककी प्राप्ति जिन कर्मोंसे होती है, उनका बोध करानेवाली वेदत्रयीका प्रादुर्भाव पुरुरवाके हृदयमें हुआ। राजा पुरूरवा अग्निस्थालीवाले स्थानको गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि जहाँ अग्निस्थाली रखी गयी थी, उस स्थानपर शमीवृक्षके गर्भमें एक पीपलका वृक्ष उत्पन्न हुआ है। उसमें अग्नि है—यह देखकर उर्वशीलोक पानेकी कामनासे पुरूरवाने उस अश्वत्थकी दो अरणी तैयार कीं। फिर मन्त्रानुसार नीचेकी अरणिको उर्वशीका रूप तथा ऊपरकी अरणिको अपना रूप एवं दोनों अरणियोंके मध्यमें स्थित काष्ठखण्डको पुत्ररूप मानकर अरणिमन्थन करने लगे। मन्थनसे जातवेदा अग्निकी उत्पत्ति हुई। फिर तीन रूपोंके प्राप्त होनेपर राजाने उस त्रिवृत अग्निको पुत्र कल्पित करके उसीके द्वारा उर्वशीलोककी कामनासे सर्ववेदमय सर्ववेदस्वरूप यज्ञपुरुष भगवानका यजन किया।

हे राजन्! पहले सत्ययुगमें सब प्रकारके शब्दोंका बीज प्रणव ही एकमात्र वेद था, नारायण ही एकमात्र देवता थे, अग्नि भी एक ही थे और मानववर्ण भी एक ही था। त्रेतायुगके आदिमें पुरूरवासे ही तीन वेद प्रकट हुए। यह राजा अग्निरूप पुत्र द्वारा गन्धर्वलोकको प्राप्त हुए।

पञ्चदश अध्याय

परशुराम द्वारा कार्तवीर्यवध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रथ, विजय और जय नामक छः पुत्र उत्पन्न हुए। श्रुतायुके वसुमान हुए। सत्यायुके पुत्र श्रुतञ्जय हुए। रथके एक हुए। जयके अमित और विजयके भीम हुए। भीमके पुत्र काञ्चन और उनके होत्रक हुए। होत्रकके जह्नु हुए, जिन्होंने गङ्गाजीको एक गण्डूष (चुल्लू) में रखकर पी लिया। राजर्षि जन्हुके पुत्र पूरु हुए। पूरुके बलाक और बलाकके अज, अजके कुश हुए। कुशके कुशाम्बु, मूर्तज, वसु और कुशनाभ नामक चार पुत्र हुए। कुशाम्बुके वीर्यसे राजर्षि गाधिका जन्म हुआ। गाधिको एक सत्यवती नामक कन्या भी हुई। द्विजवर ऋचीकने गाधिके निकट जाकर उनकी कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। गाधिने वृद्ध ऋषिको योग्य पात्र न समझकर कहा कि हे मुनिवर! जिनका रंग चन्द्रमाके तुल्य श्वेत और एक कान श्याम हो, ऐसे एक हजार घोड़े कन्याका शुल्क दीजिये। यह सुनकर ऋचीकजी वरुणके

पास गये और उनके यहाँसे उसी प्रकारके एक हजार घोड़े लाकर उनको दे दिये और सत्यवतीसे विवाह किया। कुछ दिनोंके बाद स्त्री और सास दोनोंने ऋचीकजीसे पुत्रकी प्रार्थना की। ऋचीकने अपनी स्त्रीके लिए ब्रह्ममन्त्रसे और सासके लिए क्षत्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित चरु (खीर) पकाया। उसे पकाकर ऋषि स्नान करनेके लिए गये। ऋचीककी सासने यह समझकर कि मेरे चरुसे कन्याका चरु श्रेष्ठ है, कन्यासे उसका चरु माँग लिया। सत्यवतीने भी माताको अपना चरु दे दिया। मुनि जब लौटकर आये तो सब जानकर स्त्रीसे बोले—तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। चरु बदल जानेसे तुम्हारा पुत्र घोर क्षत्रिय प्रकृतिका होगा और भाई श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण होगा। यह सुनकर सत्यवतीने डरकर पतिसे निवेदन किया कि ऐसा मत होने दीजिये। ऋचीकजीने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा। तुम्हारा पुत्र तो ऐसा न होगा, किन्तु तुम्हारा पौत्र ऐसा ही होगा। तदनन्तर सत्यवतीके गर्भसे जमदग्निका जन्म हुआ। सत्यवतीका शरीर छूटा तो वे लोकपावनी महापवित्र कौशिनीनामक नदी हो गयीं। हे राजन्! जमदग्निने रेणुकी कन्या रेणुकाके साथ विवाह किया। जमदग्नि द्वारा रेणुकाके गर्भसे वसुमान आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे। उन्होंने हैहयवंशका विनाश किया और उनको पण्डितजन विष्णुभगवानका अंशावतार कहते हैं। उन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे रहित कर दिया। राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! क्षत्रियोंने परशुरामजीका ऐसा कौन अपराध किया था, जिससे परशुरामजीके हाथों क्षत्रिय

जातिका बारम्बार संहार हुआ ? शुकदेवजीने कहा—हैहयवंशीय क्षत्रियोंके अधिपति कार्तवीर्य अर्जुनने सेवा और आराधना द्वारा नारायणके अंशावतार भगवान दत्तात्रेयको प्रसन्न किया। उनकी कृपासे उनको हजार भुजाएँ प्राप्त हुईं। फलतः वे शत्रुओंके लिए दुर्धर्ष हो गये। उनकी गति पवनके समान थी—कहीं भी रुकती नहीं थी। एक समय वैजयन्ती माला धारण करके कार्तवीर्य अर्जुन रूपवती रमणियोंके साथ नर्मदाके जलमें क्रीड़ा करने लगे। जलकेलि करते-करते मदमत्त सहस्रबाहु अर्जुनने अपनी हजार बाहुओंसे नदीका प्रवाह रोक दिया। उसी समय राक्षसराज रावणने दिग्विजयके लिए यात्रा करके माहिष्मतीपुरीके पास नर्मदा नदीके किनारे डेरा डाल दिया था और वहाँपर वह शिवजीकी पूजा कर रहा था। नदीका प्रवाह रुककर पीछेकी ओर लौट गया और उस जलसे डेरेके साथ ही पूजनसामग्री भी वह गयी। रावणने क्रोधावेशमें अर्जुनका यह आचरण न सह सकनेके कारण उसपर आक्रमण कर दिया। अर्जुनने स्त्रियोंके सामने ही अपराधी रावणको लीलापूर्वक वानरकी भाँति पकड़कर बहुत दिनोंतक अपनी पुरीमें बन्दी बनाकर रखा, किन्तु फिर दया करके छोड़ दिया। एक दिन कार्तवीर्य अर्जुन शिकार करनेके लिए वनमें घूमते-घूमते जमदग्निऋषिके आश्रममें आये। जमदग्निजीने राजाको आदरपूर्वक ठहराया और अपनी कामधेनुकी सहायतासे प्राप्त विविध सामग्रियों द्वारा उनका पूजन और अतिथिसत्कार किया। तदनन्तर अर्जुनको कामधेनुका लोभ हुआ और जब माँगनेपर भी वह नहीं मिली तो जबर्दस्ती बछड़ेके साथ

उस कामधेनुको छीनकर अपनी नगरीको चले। अर्जुनके चले जानेपर जमदग्नितनय परशुरामजी आश्रममें आये। अर्जुनके इस अत्याचारका समाचार सुनकर उनका कोप बढ़ गया और परशु आदि युद्धास्त्र ले और अभेद्यकवच पहिनकर उन्होंने अर्जुनका पीछा किया और उसकी सारी सेनाओंका संहार कर डाला। परशुरामजीने कठोर धारवाले कुठारसे सहस्रबाहुकी सहस्रभुजाओंको काट डाला और उसके गिरिशिखर सदृश मस्तकको भी छिन्न कर दिया। हे राजन्! अर्जुनके मरते ही उनके दस हजार पुत्र भयग्रस्त हो प्राण लेकर भाग गये। वत्ससहित कामधेनुको लेकर परशुरामजी आश्रममें आये। जमदग्निने परशुरामका कार्य सुनकर खेद करते हुए कहा—हे महाबाहो! तुमने यह घोर पाप कर डाला। हम ब्राह्मण क्षमागुणसे ही जगत्पूज्य बने हैं। हे पुत्र! उस क्षत्रिय राजाका वध ब्रह्महत्यासे भी गुरुतर पाप है। अतएव तुम भगवानमें मन लगाकर तीर्थयात्रा करके इस पापका प्रायश्चित्त करो।

षोडश अध्याय

परशुराम द्वारा बार-बार क्षत्रियोंका वध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! पिताके आदेशसे परशुरामजी तीर्थयात्राको निकले और एक वर्षमें तीर्थभ्रमण करके अपने आश्रमको लौट आये। एक समय जमदग्नि ऋषिकी पत्नी जल लानेके लिए गंगातटपर गयीं तो उन्होंने वहाँ देखा कि पद्ममालाधारी चित्ररथ नामक गन्धर्वराज अप्सराओंके साथ जल-

केलि कर रहा है। रेणुका पूजाके लिए गंगाजल लाने गयी थीं, किन्तु गन्धर्वराजपर कुछ आसक्त होकर वहीं खड़ी रहीं और हवनका समय बीत रहा है, इसका उनको कुछ भी ध्यान नहीं रहा। जब रेणुकाको ज्ञात हुआ कि अग्निहोत्रका समय बीत गया तब शापके भयसे काँपती हुई आश्रमको गयीं और जलपूर्ण कलस पतिके सामने रखकर हाथ जोड़कर खड़ी रहीं। इधर समाधि द्वारा पत्नीके मानसिक व्यभिचारका वृत्तान्त जानकर मुनि क्रोधसे काँपने लगे। उन्होंने पुत्रोंसे कहा—पुत्रों! इस पापिनीको मार डालो। किन्तु किसी पुत्रको माताको मारनेका साहस नहीं हुआ। मुनिने कनिष्ठ पुत्र परशुरामको आदेश दिया कि भाइयोंके साथ माताका सिर काट डालो। परशुरामजीने पिताकी आज्ञा मानकर सबके सिर काट डाले। परशुरामके कार्यसे पिताने प्रसन्न होकर वर देना चाहा तो परशुरामने कहा—यही वर दीजिये कि मेरे मरे हुए भाई और माता फिर जी उठें और उनको यह स्मरण न रहे कि हमको परशुरामने मारा था। महर्षि जमदग्निके तथास्तु कहते ही माता और भ्रातागण कुशलपूर्वक सजीव होकर उठ खड़े हुए। परशुरामजी पिताकी तपस्याका प्रभाव जानते थे। इसी कारण उन्होंने उन सबका वध किया था। हे राजन्! इसके बाद कार्तवीर्य अर्जुनके पुत्रगण अपनी हार और अपने पिताका बदला लेनेकी इच्छासे एक क्षण भी सुखसे नहीं रहते थे। एक समय परशुरामजी भाइयोंके साथ वनको गये तो अवसर पाकर अर्जुनके वे पुत्रगण बदला लेनेके विचारसे मुनिके आश्रममें गये। जमदग्निजी उस समय अग्निहोत्र-

शालामें बैठकर श्रीहरिके ध्यानमें लीन थे। परशुरामके पिताको उस अवस्थामें देखकर उन पापियोंने उनका सिर काट डाला। रेणुका दुःख और शोकसे आकुल होकर छाती पीटने लगी और ऊँचे स्वरसे हे राम! हे राम! हे पुत्र! हे पुत्र! कहकर पुकारने लगीं। माताका आर्तनाद सुनते ही परशुरामजी भाइयोंके साथ आये और पिताको मृत देखकर पीड़ाके आवेगसे विमोहित हो पड़े। वे हा तात! हा साधो! कहकर विलाप करने लगे। तभी उन्होंने क्षत्रियवंशका नाश करनेका निश्चय किया। परशुरामजी उन ब्रह्महत्या करनेवाले अधम क्षत्रियोंकी माहिष्मतीपुरीको गये और वहाँ अर्जुनके पुत्रोंके मस्तक काटकर एक पर्वतसा बना दिया। क्षत्रियकुलके अन्यायी होनेपर पितृवधको निमित्त बना करके परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीमण्डलको क्षत्रियविहीन कर दिया। इसी प्रकार मारे गये क्षत्रियोंके रुधिरसे परशुरामने स्यमन्तपञ्चक तीर्थमें नौ रुधिर कुण्ड बना दिये। परशुरामने मृत पिताकी देहमें उनका कटा हुआ सिर जोड़ और उसको कुशासनपर बिठाकर अनेक यज्ञोंसे सर्वदेवमय परमात्माका पूजन किया। अन्तमें होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा, उद्गाताको उत्तर दिशा, अन्यान्य ऋत्विक्गणको अवान्तर दिशा, कश्यपऋषिको बीचकी पृथ्वी एवं उपद्रष्टाको आर्यावर्त देश दक्षिणामें देकर उसके उपरान्त अपरापर सदस्योंको भी यथायोग्य भूमि और धन दक्षिणामें दिया। तदनन्तर महानदी सरस्वतीमें स्नान करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परशुरामजी मेघमुक्त सूर्यके समान विराजमान हुए। उधर महर्षि जमदग्नि

चेतनामय शरीर पाकर सप्तर्षिमण्डलमें सातवें ऋषि हुए। हे राजन्! भगवान परशुराम भी आनेवाले मन्वन्तरमें वेदके प्रवर्तक अर्थात् सप्तर्षियोंमें एक ऋषि होंगे। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! गाधितनय महातेजस्वी विश्वामित्रने तपके प्रभावसे क्षत्रियत्व छोड़कर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। विश्वामित्रके एक सौ पुत्र हुए। वे सभी मधुच्छन्दस नामसे प्रसिद्ध हुए। महातपस्वी विश्वामित्रने भृगुवंशीय अजीगर्त ऋषिके पुत्र शुनःशेफको देवरात नाम देकर अपना पुत्र बनाया और अन्यान्य पुत्रोंसे कहा कि तुम सब इनको अपना बड़ा भाई मानो। हे महाराज! हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहितके हाथ यज्ञमें बलि देनेके लिए बेचे गये पुरुषपशु शुनःशेफने विश्वामित्रके बताये दो मंत्रोंसे हरिश्चन्द्रके यज्ञमें प्रजापति आदि देवताओंकी स्तुति की, जिससे उनके प्राण बच गये। वे भृगुवंशमें उत्पन्न होनेपर भी देवगण द्वारा रात अर्थात् प्रदत्त होनेके कारण देवरात कहलाने लगे और गाधिवंशमें सम्मिलित हुए। हे राजन्! जो मधुच्छंदस नामक विश्वामित्रके पचास ज्येष्ठ पुत्र थे, उन्होंने शुनःशेफको ज्येष्ठ मानना स्वीकार नहीं किया। इससे विश्वामित्रने कुपित होकर शाप दिया कि तुम लोग दुर्जन हो अतएव पतित होकर म्लेच्छ हो जाओ। तदनन्तर मझले पुत्र मधुच्छंदसने अपने पचास छोटे भाइयोंके साथ पिताके पास जाकर कहा कि आप जैसा कहते हैं, वह हमें स्वीकार है। उन सबने शुनःशेफको बड़ा भाई बनाकर कहा—हम सब तुम्हारे छोटे भाई हैं। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर उन पुत्रोंसे कहा कि हे पुत्रो! तुम लोगोंने मेरा मान रखकर

मुझे यथार्थ पुत्रवान् बनाया है, इसलिए तुम लोग भी ऐसे ही सुशील पुत्रोंके पिता होओगे। हे कुशिकगण! यह देवरात तुम्हारे कौशिक गोत्रमें ही गिने जायँगे, क्योंकि इनको मैंने अपना पुत्र बनाया है। इस प्रकार विश्वामित्रके पुत्रोंसे कौशिक-गोत्रके कई भेद हो गये।

सप्तदश अध्याय

धन्वन्तरिकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पुरूरवाके वंशमें कई पीढ़ियोंके बाद दीर्घतमा हुए। दीर्घतमाके पुत्र धन्वन्तरिजीने आयुर्वेदका आविष्कार किया। उनका स्मरण करते ही लोगोंके सब रोग दूर हो जाते हैं। धन्वन्तरिको यज्ञमें भाग मिलता है। हे राजन्! अनेनाके पुत्र शुद्ध हुए। उनके शुचि हुए। शुचिके धर्मप्रवर्तक त्रिककुप और उनके रजि हुए। रजिके महाबलशाली एक सौ पुत्र हुए। एक समय राजा रजिने देवताओंकी प्रार्थनासे दानवोंको मारकर इन्द्रको स्वर्गपुरीका राज्य फेर दिया। महेन्द्रने प्रह्लाद आदि शत्रुओंके भयसे रजिके चरणोंपर गिरकर स्वर्गपुरीके साथ आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु रजिकी मृत्यु होनेपर देवराज इन्द्रने जब रजिके पुत्रोंसे स्वर्ग माँगा, तब उन्होंने स्वर्ग लौटाना स्वीकार नहीं किया। वे लोग स्वयं स्वर्गके स्वामी बनकर यज्ञ भागतक लेने लगे। बादको देवगुरु बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धि भ्रष्ट करनेके लिए अभिचारकी विधिसे हवन

किया, इससे वे कुमार्गगामी हो गये। इन्द्रने तब सहजहीमें उनका विनाश कर दिया।

अष्टादश अध्याय

ययातिके वंशका वर्णन

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! राजा नहुषके यति-ययाति आदि छः पुत्र थे। बड़े पुत्रने राज्यभार स्वीकार नहीं किया। जब नहुषने इन्द्राणीके प्रति धृष्टता प्रकट की और अगस्त्य आदि ब्राह्मणोंके शापसे अजगर होकर स्वर्गसे भ्रष्ट हो गये, तब ययाति ही राजा हुए। ययातिने चारों छोटे भाइयोंको चारों दिशाओंका राज्य दिया और आप शुक्राचार्य और वृषपर्वाकी कन्याओंके साथ विवाह करके समग्र पृथ्वीमण्डलका शासन करने लगे। राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! शुक्राचार्य ब्रह्मर्षि और ययाति क्षत्रिय थे। तब ब्राह्मणी और क्षत्रियका दूषित प्रतिलोम विवाह कैसे सर्वसम्मत हुआ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! एक समय दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा गुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीके साथ पुष्पवाटिकामें विचर रही थी। वहाँ पद्मपराग पूरित जलाशय देखकर वे कमलनयनी स्त्रियाँ अपने-अपने वस्त्र किनारे उतारकर जल-केलि करने लगीं। इसी समय अकस्मात् पार्वतीजीके साथ देव-देव शंकर वहाँ जा पहुँचे। उनको देखते ही सब कन्याएँ अत्यन्त लज्जित होकर जल्दीसे बस्त्र पहिननेके लिए किनारे निकल आयीं। व्यग्रताके कारण अनजानमें अपने समझकर शर्मिष्ठाने गुरुपुत्रीके कपड़े पहिन

लिये। यह देखकर देवयानीने कुपित होकर बहुत तिरस्कार किया। गुरुपुत्रीने तिरस्कार किया तो शर्मिष्ठाको भी क्रोध आ गया और उसने अनेक कठोर वचनोंसे उसकी भर्त्सना की और नग्न अवस्थामें ही उस गुरुपुत्रीको कूपमें ढकेल दिया। इसके बाद शर्मिष्ठा अपने घर चली गयी। उधर राजा ययाति शिकार करते हुए दैवयोगसे प्यासे होकर उस कूपके पास गये, जिसमें देवयानी पड़ी हुई थी। कूपमें देवयानीको देखकर राजाको दया आयी। उन्होंने अपना दुपट्टा उसे पहिननेको दिया और हाथ पकड़कर बाहर निकाल लिया। कूपसे बाहर निकलते ही देवयानीने राजासे कहा—हे महाराज! आपने मेरा हाथ पकड़ा है। इसलिए मैं आपकी भार्या हो चुकी। अतएव प्रार्थना है कि जिस हाथको आपने पकड़ा है, उसे दूसरा कोई न पकड़े। हे महाबाहो! विधाताकी लेखनी टाली नहीं जा सकती। पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्रको, जा मृतसञ्जीवनी विद्या सीखनेके लिए मेरे पिताके पास आये थे, मैंने पति बनाना चाहा तो उसने गुरुपुत्री समझकर मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इसलिए मैंने उसे शाप दिया कि तुमने जो विद्या मेरे पितासे पढ़ी है वह सब तुम भूल जाओगे। तब उसने भी शाप दे दिया कि तुम्हारा विवाह भी ब्राह्मणके साथ न होगा। अतएव मेरा पति ब्राह्मण नहीं हो सकता। यह सुनकर राजा ययातिने देवयानीका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इसके बाद राजा ययाति अपने पुरको चले गये और देवयानी रोती हुई पिताके पास गयी और शर्मिष्ठाने जितने कटु वचनोंसे भर्त्सना की थी, वह सब उसने आद्योपान्त

कह सुनाया। सो सुनकर भगवान शुक्राचार्य बहुत ही दुःखित हुए और पुरोहिती वृत्तिकी निन्दा तथा उञ्छवृत्तिकी प्रशंसा करते हुए कन्याके साथ वृषपर्वाके नगरसे निकल पड़े। यह वृत्तान्त जब वृषपर्वाको विदित हुआ तो वे शुक्राचार्यके पैरोंपर जा गिरे। क्षणकालके बाद भगवान शुक्रका क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने शिष्यको सम्बोधित करते हुए कहा—मुझे नहीं, मेरी कन्याको प्रसन्न करो। यह जो कुछ कहे, उसे मानकर इसकी अभिलाषा पूरी करो। मैं इसको छोड़ नहीं सकता। जब वृषपर्वाने स्वीकार कर लिया, तब देवयानीने कहा कि विवाहके उपरान्त मैं जहाँ जाऊँ, वहाँ तुम्हारी कन्या शर्मिष्ठा भी अपनी सखियोंके साथ चले और मेरी दासी होकर रहे। वृषपर्वाने सोचा कि आचार्यके चले जानेपर हमारी जातिपर घोर संकट आ जायगा, इस कारण उन्होंने देवयानीको सखियोंके साथ अपनी कन्या समर्पित कर दी। शुक्राचार्यने शर्मिष्ठाके साथ देवयानीका कन्यादान करते समय ययातिसे कहा—शर्मिष्ठा कभी तुम्हारी शय्यापर पत्नीरूपसे शयन न करे—सर्वदा दासी होकर रहे। हे राजन्! देवयानीके पतिके सहवाससे कई परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न किये। यह देखकर शर्मिष्ठाने भी ऋतुकालमें एकान्तमें सखीपति ययातिके पास जाकर पुत्र उत्पन्न करनेके लिए प्रार्थना की। राजाने उसकी प्रार्थना इस लिए स्वीकार कर ली कि ऋतुकालकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे अधर्म होता है। ययातिने देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पूरु नामके तीन पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्!

जब देवयानीको यह विदित हो गया कि मेरे पतिके वीर्यसे ही शर्मिष्ठा पुत्रवती हुई है तो वह कुपित होकर अपने पिता शुक्राचार्यके घर चली गयी। राजा ययाति अतिशय कामी थे। प्रियाको कुपित देखकर अनुनय-विनय करते हुए उसके पीछे-पीछे शुक्राचार्यके घरतक गये, किंतु पैरोंपर गिरकर भी वे प्रियाको प्रसन्न न कर सके। कन्याके मुखसे राजाके दुराचारका वृत्तान्त सुनकर शुक्रजीने क्रोध करके शाप देते हुए कहा—अरे स्त्रीकामुक! तू मिथ्या आचरण करता है। मनुष्यको कुरूप बनानेवाली वृद्धावस्थाके आक्रमणसे तू अभी बूढ़ा हो जा। यह सुनकर ययाति बहुत घबड़ा गये और दुःखपूर्वक बोले—हे ब्रह्मन्! आपकी कन्याके साथ विहार करके मैं अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ। तब शुक्राचार्यने शांत होकर कहा—यदि तुम चाहो तो किसीकी युवावस्था अपनी वृद्धावस्थाके बदले में ले लो और इच्छानुसार कामोपभोग करो। हे राजन्! यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु आदि पुत्रोंने भी वृद्धावस्था ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। कनिष्ठ पुत्र पूरुने पिताकी आज्ञा मान ली और अपनी युवावस्था पिताको देकर उनकी वृद्धावस्था ले ली। यद्यपि एक हजार वर्षतक निरन्तर विषयभोग करते रहे तथापि उनके मनकी तृष्णा नहीं मिटी।

ऊनविंश अध्याय

राजा ययातिका वैराग्योदय

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इस प्रकार स्त्रीके वश

होकर विषयभोग करते-करते ययातिको इस बातका ज्ञान हो गया कि स्त्रैण होनेसे मेरा सर्वनाश हो रहा है। तब उन्होंने अपने ही चरित्रका रूपक रचकर प्रियासे यह इतिहास कहा—हे भृगुकी पुत्री! मैं एक इतिहास तुमसे कहता हूँ, सुनो। इसमें मेरे ही समान एक कामी पुरुषके आचरणका वर्णन है। एक बकरा बनमें अपनी अभीष्ट वस्तु खोजता हुआ घूम रहा था। घूमते-घूमते उसने निजकर्म दोषसे कूपमें पड़ी हुई एक बकरी देखी। वह बकरा बड़ा कामी था। उसने बकरीको बाहर निकालनेकी इच्छासे सींगोंसे मिट्टी खोदकर गढ़ेसे बाहर निकालनेका मार्ग बना दिया। बाहर निकलकर बकरीने बकरेपर अपनी अभिलाषा प्रकट की। बकरीने जब उस बकरेको पति बना लिया तब अन्यान्य बकरियाँ भी उसी बकरेको वीर्यवान और रति-निपुण समझकर उसपर आसक्त हो गयीं। वह अकेला बकरा अपनी और अन्य बकरियोंकी आसक्ति बढ़ाता हुआ कामासक्त होकर उनके साथ बिहार करने लगा। किन्तु कूपसे निकली हुई बकरीने जब बकरेको अन्य बकरियोंके साथ बिहार और प्रीति करते हुए देखा तो उसे यह असह्य हो गया। वह असन्तुष्ट होकर बकरेको छोड़कर अपने पालनेवाले स्वामीके निकट चली गयी। बकरा अतिशय स्त्रैण था। वह व्याकुल होकर अपनी स्त्री बकरीको मनानेके लिए इड़विड़ शब्द अर्थात् अपनी बोलीसे अनुनय करता हुआ उसके पीछे-पीछे गया, किन्तु उसको प्रसन्न करके राहसे लौटा नहीं सका। उस बकरीके मालिक ब्राह्मणने क्रोधित होकर बकरेके लटकते हुए दोनों अण्डकोश काट डाला।

किन्तु फिर शान्त होकर उपाय जाननेवाले उसी ब्राह्मणने प्रयोजन सिद्धिके लिए उन कटे हुए अण्डकोषोंको फिर जोड़ दिया। फिर रति शक्तियुक्त होकर बकरेने उस कूपमें मिली हुई बकरीके साथ विषय भोगमें बहुत काल बिताया। किन्तु विषय भोगसे अब भी उसको तृप्ति नहीं होती। हे भद्रे! उस बकरेकी भाँति मैं भी तुम्हारे प्रणयमें आबद्ध होकर दीन अवस्थाको प्राप्त हूँ। तुम्हारी मायामें मोहित हो जानेके कारण मुझे आत्मज्ञान नहीं रहा। पृथ्वीमें जितने अन्न भोजनके पदार्थ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं। उन सबसे भी कामासक्त पुरुषके चित्तको सन्तोष या तृप्ति नहीं हो सकती। भोग करनेसे विषयोंकी कामना शान्त नहीं होती, वरन् घी छोड़नेसे आग जैसे धधक उठती है वैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। अतएव यह अनिष्टकारिणी तृष्णा त्यागकर मैं अब परब्रह्ममें मन लगाऊँगा और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व धर्मोंसे रहित और निरभिमान होकर मृगगणके साथ वनमें विचरण करूँगा। तदनन्तर राजा ययातिने अपनी पत्नीसे इस प्रकार कहकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उसकी जवानी लौटा दी और विषय भोगकी स्पृहासे शून्य होकर अपना बुढ़ापा उससे लौटा लिया। उन्होंने द्रुह्युको पूर्व दिशाका, यदुको दक्षिण दिशाका, तुर्वसुको पश्चिम दिशाका और अनुको उत्तर दिशाका अधीश्वर बनाया। फिर उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डलके शासनका भार अपने प्रियतम छोटे पुत्र पूरुको दिया। राजा ययाति इस प्रकार बड़े पुत्रोंको छोटे पुत्र पूरुके अधीन राजा बनाकर आप तप करनेके लिए वनको चले गये। प्रसिद्ध राजा ययातिने परब्रह्मकी उपासनामें रहकर भाग-

वतीगति अर्थात् निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें सायुज्य मुक्ति पायी। देवधानीने संसारको स्वप्नसदृश मिथ्या जानकर सबका संग छोड़कर कृष्णमें मन लगाया और इस उपाधिरूप शरीरको छोड़ दिया।

विंश अध्याय

शकुन्तलाकी कथा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! अब पूरुके वंशका वर्णन करता हूँ सुनिये। इस पूरुवंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। अनेक राजर्षि और ब्रह्मर्षि पूरुके वंशमें उत्पन्न हुए। इस वंशमें कई पीढ़ियोंके बाद रन्तिभारका जन्म हुआ। रन्तिभारके सुमति ध्रुव और अप्रतिरथ ये तीन पुत्र हुए। अप्रतिरथके पुत्र कवि और कण्वके मेधातिथि हुए। मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। रन्तिभारके ज्येष्ठ पुत्र सुमति थे। सुमतिके पुत्र रैभ्य हुए। रैभ्यके पुत्र दुष्यन्त हुए। यह राजा दुष्यन्त एक समय शिकार करनेके लिए वनमें प्रवेशकर कण्व ऋषिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक परमासुन्दरी रमणी देखी। उसे देखकर राजा मोहित हो गये। कामपीड़ित राजाने हँसते-हँसते मधुर वचनोंसे उस रमणीसे पूछा—हे कमलनयनी! तुम कौन हो? तुम किसकी कन्या हो? तुम निर्जन स्थानमें बैठकर क्या कर रही हो? पूरुवंशमें उत्पन्न राजाओंका मन कभी कुकर्मकी ओर नहीं झुकता। मेरा मन तुममें अनुरक्त हो गया है। अतएव तुम ब्राह्मण कन्या नहीं कोई क्षत्रिय कन्या हो। शकुन्तला अर्थात् उस कन्याने कहा—हे महाराज! मैं विश्वामित्रकी कन्या हूँ। मेरी माता मेनका अप्सरा है। उत्पन्न

होते ही मेनका मुझे इसी वनमें छोड़कर स्वर्गको चली गई। अतएव सचमुच ही मैं क्षत्रिय कन्या हूँ। इस विषयका अधिक वृत्तान्त महर्षि कण्वजी जानते हैं। हे वीर! मैं आपका क्या सत्कार करूँ? हे कमललोचन! यह आसन लीजिए। यह नीवार तण्डुल भोजन कीजिये। इच्छा हो तो कुछ देर तक आप यहाँ ठहर सकते हैं। दुष्यन्तने कहा—हे सुन्दरि! तुम कुशिक वंशमें उत्पन्न हुई हो। तुम्हारा यह आचरण योग्य ही है। क्योंकि राजकन्याएं अपने योग्य वरको पाकर स्वयं वरण कर लेती हैं। दुष्यन्तकी बात शकुन्तलाने स्वीकार करली और राजाने गान्धर्वविधिके अनुसार उसके साथ विवाह कर लिया। फिर अमोघवीर्य राजा शकुन्तलामें गर्भाधान करके दूसरे दिन अपने पुरको लौट गये। इसके बाद यथासमय शकुन्तलाने एक वीर पुत्र प्रसव किया। महर्षि कण्वने वनमें ही उसके सब जातकर्म आदि संस्कार किये। हे राजन्! शकुन्तलाका वह पुत्र बाल अवस्थामें ही सहजमें सिंहोंको पकड़कर उनके साथ खेलता था। कुछ दिनोंके बाद शकुन्तला पुत्रको लेकर पतिके पास गयी। पहले तो राजा दुष्यन्तने उसे ग्रहण नहीं किया। बादको आकाशवाणी हुई कि—हे दुष्यन्त! माता तो धौंकनीके समान आधारमात्र है। पुत्र तो पिताका ही होता है, क्योंकि वेदमें ऐसा लिखा है कि अपना ही आत्मा पुत्ररूपसे जन्म लेता है। इसलिए अपने पुत्रको अंगीकार करके उसका पालन करो। शकुन्तलाका भी अपमान न करना। हे राजन्! जो कोई वीर्याधान करता है उसीका वह पुत्र उद्धार करता है। शकुन्तलाका कथन सत्य है। हे राजन्! आकाशवाणी सुनकर राजा दुष्यन्तने

पुत्र सहित शकुन्तलाको स्वीकार किया। दुष्यन्तका अन्त होनेपर उनके वीर कुमार महायशस्वी भरतजी सम्राट हुए। महाराज भरतने भृगुको अपना पुरोहित बनाया और गंगा तटपर क्रमशः पचपन अश्वमेध यज्ञ किये और अठहत्तर अश्वमेध यज्ञके घोड़े बाँध दिये तथा उन यज्ञोंके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणामें मनमाना धन दिया। भरतने अश्वमेध यज्ञके उपलक्ष्यमें दिग्विजय करते समय किरात, हूण, यवन, पौण्ड्र, कङ्क, खश, शक आदि जातियोंके अनार्य राजाओंका विनाश किया। भरतकी विदर्भदेशीय तीन पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक रानीको जब एक पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसे देखकर भरतने कहा यह कुमार मेरे अनुरूप नहीं है। उस समयसे उनकी रानियोंके जितने कुमार उत्पन्न हुए सबको इस आशंकासे कि यह पुत्र भी मेरे अनुरूप नहीं है यह कहकर और हमें व्यभिचारिणी समझकर राजा कदाचित हमें त्याग दें—उन रानियोंने उनको मार डाला। इस प्रकार वंशका विनाश होते देखकर अपने अनुरूप पुत्र होनेके लिए महाराज भरतने मरुत्सोम नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें मरुत् नामक देवगणने प्रसन्न होकर भरद्वाज नामक पुत्र उनको दिया। हे राजन्! अब भरद्वाजका जन्म वृत्तान्त सुनो। एक समय देवगुरु वृहस्पतिजी कामान्ध होकर अपने भाईकी गर्भवती स्त्रीसे मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए। किन्तु गर्भस्थित बालकने उन्हें ऐसा करनेसे रोका। तब इस निवारणसे क्रोधित होकर वृहस्पतिने उस गर्भस्थ बालकको शाप दिया और बलपूर्वक वीर्य-त्यागकर दिया। वृहस्पतिके भाई उतथ्यकी स्त्री ममताने इस भयसे कि व्यभिचारिणी कहकर पति मेरा त्यागकर

सकते हैं बृहस्पतिके वीर्यसे उत्पन्न कुमारको छोड़ देनेकी इच्छाकी। उस समय देवताओंने ममतासे कहा—हे मूढ़े ! इस बालकका जन्म एकके क्षेत्रमें दूसरेके वीर्यसे हुआ है। अतएव यह तुम्हारे पतिका भी पुत्र है। इससे भयकी कोई शंका नहीं हैं। इसका पालन करो। ममताने वृहस्पतिसे कहा—तुम भी इसका पालन करो। हम दोनोंके अन्यायसे इसका जन्म हुआ है। मैं अकेली इसको क्यों पालूँगी ? इस प्रकारकी उक्तियोंसे वृहस्पति और ममता दोनों झगड़ते हुए बालकको छोड़कर चले गये। इस कारण उस बालकका नाम भरद्वाज पड़ा है। हे राजन् ! देवताओंके ऐसा कहनेपर भी ममताने उस बालकको छोड़ दिया। वृहस्पतिके भाई उतथ्यने उस व्यभिचारजनित बालकको वितथ अर्थात् व्यर्थ जानकर वहीं छोड़ दिया। मरुद्गणने उस कुमारका पालन किया और जिस समय भरत राजाका वंश वितथ अर्थात् व्यर्थ हो रहा था तब उनको दे दिया।

एकविंश अध्याय

राजा रन्तिदेवकी कथा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! भरद्वाजका दूसरा नाम 'वितथ' था। ब्राह्मण होनेपर भी भरद्वाज भरतके दत्तक पुत्र हुए। वितथके पुत्र मन्यु हुए। मन्युके बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्गनामक पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। नरके पुत्र संकृति हुए और संकृतिके गुरु और रन्तिदेव नामक दो पुत्र हुए। राजा

रन्तिदेवकी महिमा पृथ्वी और स्वर्ग—दोनों लोकोंमें सर्वदा गायी जाती है। जो कुछ आय होती थी वह सब वे बाँट देते थे। स्वयं भूखे रहनेपर भी वे अपना धन अन्नपीड़ितोंको दे देते थे। राजा रन्तिदेवने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी और धनहीन होकर परिवार सहित भूखके मारे शिथिल हो गये। अड़तालीस दिनतक भोजन मिलनेकी बात तो दूर रही राजाको जलतक भी पीनेको नहीं मिला। अन्नके अभावसे परिवार कष्टमें पड़ गया। भूख प्याससे शिथिल राजाका शरीर काँपने लगा। उनचासवें दिन राजा भोजन करने जा ही रहे थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। राजाने अन्न ब्राह्मणको बाँट दिया। भोजन करके वह ब्राह्मण चला गया। उसके बाद बचा हुआ अन्न परिवारको बाँटकर राजा भोजन करने जा ही रहे थे कि उसी समय एक शूद्र आकर उनका अतिथि हुआ। रन्तिदेवने भगवान हरिका स्मरण करते हुए बचे हुए अन्नको भी बाँट दिया। भोजन करके वह शूद्र अतिथि चला गया तब बहुतसे कुत्ते साथमें लिये एक और व्यक्ति अतिथि होकर उपस्थित हुआ और बोला—राजन्! कुत्तोंके साथ मैं भूखा हूँ। भोजन दीजिये। राजाने उसका भी सम्मान किया और बचा हुआ अन्न कुत्तों सहित उस अतिथिको देकर प्रणाम किया। इसके बाद एक मनुष्यकी प्यास बुझने भर जल बच गया था। राजा उसी जलको पीना ही चाहते थे कि अकस्मात् एक चाण्डाल वहाँ आ गया। उसने दीन स्वरसे राजासे कहा—हे महाराज! मैं बहुत ही प्यासा हूँ। मुझे थोड़ा सा जल दीजिये। स्वाभाविक दयालु राजा रन्तिदेवने स्वयं प्याससे

व्याकुल रहते हुए भी उस चाण्डालको वह जल दे दिया। राजा रन्तिदेवने सङ्ग और स्पृहा त्यागकर अपना मन केवल भगवान वासुदेवमें लगा दिया। उन्होंने अपना चित्त ईश्वरमें लगा दिया। इस कारण गुणमयी माया उनके पाससे स्वप्नकी भाँति अन्तर्हित हो गयी। उनके परिवारके सभी लोग उनके सङ्गके प्रभावसे नारायण परायण होकर योगियोंकी गतिको प्राप्त हुए। हे राजन्! अब गर्गवंशका विवरण सुनो। गर्गके पुत्र शिवि हुए। उनके पुत्र गार्ग्य हुए। गार्ग्यजी क्षत्रिय कुलमें जन्म पाकर भी कर्म करके ब्राह्मण हो गये। अब महावीर्यके वंशका वर्णन करता हूँ सुनो। उनके पुत्र दुरतिक्षय हुए। उनके त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों अपने कर्मोंके प्रभावसे ब्राह्मण हो गये। अब मन्युके ज्येष्ठ पुत्रके वंशका विवरण सुनो। बृहत्क्षत्रके पुत्र हस्ती हुए। उन्होंने हस्तिनापुर बसाया। हस्तीके अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़नामक तीन पुत्र हुए। अजमीढ़के वंशमें प्रियमेधा आदि ब्राह्मणोंका जन्म हुआ। अजमीढ़का बृहदिषुनामक एक क्षत्रिय पुत्र भी हुआ। बृहदिषुके पुत्र बृहद्धनु हुए। उनके बृहत्काय हुए। बृहत्कायके जयद्रथ और जयद्रथके विषद हुए। विषदके पुत्र श्येनजित् थे। श्येनजित्के रुचिराश्व, दृढ़हनु, काश्य और वत्सनामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। रुचिराश्वके पुत्र पार और पारके पुत्र पृथुसेन हुए। पारका नीपनामक एक और भी पुत्र था। नीपके एक सौ पुत्र हुए। महात्मा नीपने ही मेरी (शुकदेवकी) कन्या कृत्वीके गर्भमें महायोगी ब्रह्मदत्तको उत्पन्न किया। योगीश्वर ब्रह्मदत्तने अपनी भार्या सरस्वती देवीके गर्भसे विष्वक्सेन-

को उत्पन्न किया। विष्वक्सेनने योगी जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रका प्रणयन किया। विष्वक्सेनके पुत्र उदक्सेन और उनके पुत्र भल्लाद हुए। द्विमीढ़के पुत्र यवीनर थे। यवीनरके कृतिमान हुए। उनके पुत्र सत्यधृति थे। सत्यधृतिके दृढ़नेमि हुए। उनके पुत्र सुपार्श्व थे। सुपार्श्वके सुमति हुए। उनके पुत्र सन्नतिमान हुए। सन्नतिमानके पुत्र कृती थे। कृतीने हिरण्यनाभसे योगशिक्षा पाकर प्राच्यसामकी छः संहिताओंको विभाजित करके अपने शिष्योंको पढ़ाया। कृतीके नीप, नीपके पुत्र उग्रायुध थे। उनके पुत्र क्षेम्य हुए। क्षेम्यके पुत्र सुवीर थे। सुवीरके रिपुंजय हुए। रिपुंजयके बहुरथ हुए। पुरुमीढ़ निःसन्तान थे। अजमीढ़की भार्याका नाम नलिनी था। उसके गर्भसे नील नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीलके पुत्र शान्ति हुए। उनके पुत्र सुशान्ति थे। सुशान्तिके पुत्र पुरुज हुए। पुरुजके पुत्र अर्क थे और अर्कके भर्म्याश्व हुए। भर्म्याश्वके मुद्गल, यवीनर, बृहदश्व, काम्पिल और सञ्जयनामक पाँच पुत्र हुए। ये पाञ्चालनामसे विख्यात हुए। मुद्गलसे मौद्गल्यगोत्रीय ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति हुई। मुद्गलके और भी दो यमज संतान उत्पन्न हुए। पुत्रका नाम दिवोदास और पुत्रीका नाम अहल्या हुआ। अहल्याके गर्भ और गौतम ऋषिके वीर्यसे महात्मा शतानन्दका जन्म हुआ। शतानन्दके पुत्र सत्यधृति हुए। वे धनुर्वेदके बड़े भारी पण्डित थे। सत्यधृतिके पुत्र शरद्वान हुए। उर्वशीको देखकर शरद्वानका वीर्य शरस्तम्बमें गिर पड़ा। उससे यमज सन्तान हुए। राजा शन्तनु शिकार करते हुए अचानक उधरसे आ निकले और वहाँसे उन दोनोंको उठा ले गये। बालकका

नाम कृप (कृपाचार्य) और बालिकाका नाम कृपी हुआ। कृपीका विवाह महारथी द्रोणाचार्यके साथ हुआ।

द्वाविंश अध्याय

जरासन्ध, युधिष्ठिर और दुर्योधन आदिका विवरण

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! दिवोदासके पुत्र मित्रायु हुए और उनके पुत्र च्यवन थे। च्यवनके पुत्र सुदास थे। सुदासके पुत्र सहदेव हुए और सहदेवके सोमक हुए। सोमकके सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ेका नाम जन्तु था और सबसे छोटे पुत्रका नाम पृषत् हुआ। पृषत्के राजा द्रुपद उत्पन्न हुए। द्रुपदकी ही कन्या द्रौपदी हुई। उनके और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए। ये सभी राजे पाञ्चालवंशीय थे। हे राजन्! अजमीढ़का वंशान्तर सुनो। अजमीढ़का ऋक्षनामक एक पुत्र और था। ऋक्षके पुत्र संवरण हुए। संवरणका विवाह सूर्यकी कन्या तपतीके साथ हुआ और उसके गर्भसे कुरुक्षेत्राधिपति कुरु उत्पन्न हुए। कुरुके परीक्षित, सुधनु, जन्हु और निषध नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सुधनुके पुत्र सुहोत्र हुए। उनके पुत्र च्यवन थे और उनके पुत्र कृती हुए। कृतीके पुत्र उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि हुए। ये लोग ही चेदिदेशके राजा हुए। बृहद्रथके पुत्र कुशाग्र हुए। उनके पुत्र ऋषभ हुए। ऋषभके पुत्र सत्यहित थे। सत्यहितके पुत्र जन्हु हुए। हे राजन्! बृहद्रथकी दूसरी रानीको एक मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके शरीरके बीचसे अलग-अलग दो खण्ड थे। रानीने उस मृत पुत्रको महलके

बाहर फेंकवा दिया। जरानामक राक्षसीने उधरसे जाते समय उसे देखा। उसने लीलापूर्वक उन दोनों खण्डोंको जोड़ दिया और कहा कि 'जीवित हो जीवित हो।' वह बालक जी उठा और उसका नाम जरासन्ध पड़ा। जरासन्ध पुत्र सहदेव हुए। सहदेवके पुत्र सोमापि हुए। सोमापिके पुत्र श्रुतश्रवा थे। हे राजन्! परीक्षित निःसन्तान थे। जन्हुके पुत्र सुरथ हुए। उनके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथके सार्वभौम और सार्वभौमके जयसेन हुए। जयसेनके पुत्र राधिक हुए और उनके अयुतायु और उनके अक्रोधन हुए। अक्रोधनके देवातिथि उनके ऋष्य, ऋष्यके दिलीप और उनके प्रतीप हुए। प्रतीपके देवापि, शन्तनु और वाल्हीक नामक तीन पुत्र हुए। उनके सबसे बड़े देवापि पिताका राज्य छोड़कर वनको चले गये। फिर मझले पुत्र शन्तनु राजा हुए। पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिषु था। शन्तनुजी जिस वृद्धके शरीरमें हाथ लगा देते थे वह जवान हो जाता था और उसे परमशान्ति मिलती थी। इसी कर्मसे उनका नाम शन्तनु पड़ा। ज्येष्ठके रहते मध्यमके राजा होनेसे शन्तनुके राज्यमें एक समय बारह वर्षतक वर्षा नहीं हुई। राजाने ब्राह्मणोंसे पूछा तो उन लोगोंने कहा कि पुर राष्ट्रकी भलाईके लिए आप शीघ्र बड़े भाईको लाकर उनके हाथमें शीघ्र राज्यशासन दे दीजिये। राजाने वनमें जाकर बड़े भाईसे राजा होनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु इससे पहले ही शन्तनुके मंत्रीने कुछ ब्राह्मणोंको देवापिके पास भेज दिया था। उन ब्राह्मणोंने स्वार्थसिद्धिके लिए पाखण्डमतकी शिक्षा देवापिको दी। देवापि भी उनके वाक्योंसे मोहित होकर वेदमार्गसे भ्रष्ट हो

गये और वेदकी निन्दा करने लगे। वेदकी निन्दा करनेके कारण पतित हो जानेसे देवापि राज्यपदके अधिकारी नहीं रहे। अतएव उनके बाद शन्तनुका राज्य करनेमें कोई दोष नहीं रहा। फिर तो शन्तनुके राज्यमें वर्षा होने लगी। उसी समयसे योगी देवापि योगावलम्बन करके कलापग्राममें अवस्थित हैं। कलियुगमें जब चन्द्रवंशका विनाश होने लगेगा तब सत्ययुगके प्रारम्भकालमें वे विवाह करके चन्द्रवंशका नाश न होने देंगे। वाह्लीकके पुत्र सोमदत्त हुए। उनके भूरि, भूरिश्रवा और शलनामक तीन पुत्र हुए। शन्तनुने गङ्गादेवीके गर्भसे आत्मज्ञानी भीष्मको उत्पन्न किया। भीष्मजी सब धर्मोंके ज्ञाता, श्रेष्ठ, महाभागवत, विद्वान और वीरजनोंमें अग्रणी थे। शन्तनुने कैवर्तकन्या सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। चित्राङ्गदनामक गन्धर्वने चित्राङ्गदको युद्धमें मार डाला। शन्तनुसे विवाह होनेके पहले ही कुमारी दशामें सत्यवतीके गर्भसे पराशर ऋषिके वीर्यसे भगवान हरिके अंशावतार महर्षि वेदव्यासजी उत्पन्न हुए। उन्होंने ही वेदके विभाग किये। मैं उनका पुत्र हूँ और मैंने उनसे यह भागवतशास्त्र पढ़ा है। हे राजन्! उपर्युक्त विचित्रवीर्यने काशिराजकी अम्बा और अम्बालिकानामक दो कन्याओंसे विवाह किया। इन दोनों कन्याओंको भीष्मजी बलपूर्वक स्वयंवरसे हर लाये थे। दोनों स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण कुछ ही कालमें विचित्रवीर्यको दुस्साध्य यक्ष्मारोग हो गया जिससे वे अकालमें ही कालके गालमें चले गये। विचित्रवीर्यके सहोदर भाई भगवान वेदव्यासने माताके नियोगसे

विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। धृतराष्ट्रकी पत्नी गान्धारी थीं। गान्धारीके गर्भसे दुर्योधन आदि एकसौ पुत्र और दुःशला नाम्नी कन्या हुई। हे राजन्! पाण्डुने वनमें शिकारके लिए जाकर मैथुनमें आसक्त एक मृगका वध किया था इसलिए उन्हें शाप मिला था जिससे वे मैथुनव्यापारसे वञ्चित रहे। पाण्डुकी स्त्री कुन्तीके गर्भसे धर्म, इन्द्र और वायुके अंशसे युधिष्ठिर, अर्जुन और भीमनामक तीन पुत्र हुए। पाण्डुकी दूसरी रानी माद्री थीं। उनके गर्भ और अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल और सहदेवनामक परमप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं पाँचों पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदी हुईं। युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवोंके द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम ये हैं—युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसे श्रतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ। युधिष्ठिरकी एक अन्य भार्या पौरवीके गर्भसे देवक उत्पन्न हुए। भीमने हिडिम्बा राक्षसीके गर्भसे घटोत्कचका उत्पन्न किया। उनकी एक और स्त्री कालीके गर्भसे सर्वगतका जन्म हुआ। सहदेवकी भार्या विजयाके गर्भसे सुहोत्र हुए और नकुलकी भार्या करेणुमतीके गर्भसे नरमित्र उत्पन्न हुए। हे राजन्! अर्जुनके वीर्य और नागराज कन्या उलुपीके गर्भसे इरावाननामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अर्जुनने मणिपुरके राजाकी कन्याके गर्भसे बभ्रुवाहनको उत्पन्न किया और उनकी अन्य स्त्री सुभद्राके गर्भसे तुम्हारे पिता अभिमन्यु उत्पन्न हुए। बभ्रुवाहनके नानाने अर्जुनको अपनी कन्या इस शर्तपर दी थी कि जो पुत्र होगा उसे मैं

ले लूँगा। इस कारण बभ्रुवाहन अपने नानाके ही वंशमें रहे। हे राजन्! अभिमन्युके वीर्य और उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ। अश्वत्थामा द्वारा प्रेरित ब्रह्मास्त्रके तेजसे कुरुवंशका विनाश हो रहा था और गर्भमें तुम्हारा प्रायः प्राणान्त हो चुका था। उस समय कृष्णचंद्रके ही प्रभावसे तुम्हारी प्राणरक्षा हुई। हे तात! इस समय तुम्हारे जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेननामक चार पुत्र हैं। तक्षकके विषसे तुम्हारी मृत्यु होनेका समाचार सुनकर जनमेजय क्रोधित होकर सर्पयज्ञका अनुष्ठान करके यज्ञकुण्डमें अनेक सर्प हवन करेंगे। फिर जनमेजय दिग्विजय करके अन्यान्य अनेक महायज्ञ करेंगे। हे राजन्! जनमेजयके पुत्र शतानीक होंगे। वे याज्ञवल्क्य योगेश्वरसे वेदपाठ करके कृपाचार्यसे अस्त्रज्ञान प्राप्त करेंगे। शतानीकके पत्र सहस्त्रानीक होंगे। उनके अश्वमेधज और अश्वमेधजके असीमकृष्ण होंगे। उनके पुत्र नेमिचक्र होंगे उनके राजत्वकालमें जब हस्तिनापुर यमुनामें डूब जायगा तब वे कौशाम्बी नगरमें जाकर सुखसे वास करेंगे। नेमिचक्रके बाद कई पीढ़ियोंके बीतनेपर यह राजवंश कलियुगमें क्षेमक राजातक चलेगा।

त्रयोविंश अध्याय

यदुवंशका विवरण

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! अनुके सभानर, चक्षु और परोक्षनामक तीन पुत्र हुए। सभानरके कालनर, उनके सृंजय, उनके जनमेजय उनके महाशील उनके महामना उनके उशीनर

तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए। उशीनरके शिवि, वन, शमि और दक्ष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। शिविके वृषदर्भ, सुवीर, मद्र और कैकय नामक चार पुत्र हुए। तितिक्षुके पुत्र रुशद्रथ हुए। उनके हेम, उनके सुतपा और उनके बलि उत्पन्न हुए। बलिके क्षेत्रमें दीर्घतमा ऋषिके वीर्यसे अंग, वंग, कलिंग, सुम्भ, पुंड्र, अंध्र नामक अनेक राजाओंकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने पूर्व भारतमें अपने अपने नामसे छः राज्य स्थापित किये। अंगके पुत्र खलभान हुए। उनके पुत्र दिविरथ हुए। दिविरथके धर्मरथ और धर्मरथके चित्ररथ हुए। चित्ररथ निःसन्तान थे। चित्ररथका दूसरा नाम रोमपाद था। रोमपाद और कोशलेश दशरथमें सखाभाव था। दशरथने सखाको पुत्रहीन देखकर अपनी शान्ता नाम्नी कन्या दे डाली। हरिणीतनय ऋष्यशृंग मुनिने उस शान्तासे विवाह किया। ऋष्यशृङ्ग मुनि सांसारिक बातोंसे बिल्कुल अपरिचित थे। एक समय रोमपाद राजाके राज्यमें कुछ कालतक इन्द्रने जल नहीं बरसाया तब राजाकी आज्ञासे वेश्याएं तपोवनमें जाकर गीत, वाद्य, नाच आदि कौतुकोंसे और अपने विभ्रम, विलास, आलिंगन और वार्तालाप आदिसे शृङ्गको मोहितकर अपने साथ राज्यमें ले आयीं। ऋष्यशृङ्गके आते ही जलकी वर्षा हुई। तदनन्तर ऋष्यशृङ्गजीने राजा रोमपादको निःसन्तान देखकर उनसे इन्द्रयाग कराकर पुत्र प्रदान किया। महाराज दशरथने भी इन्हींकी सहायतासे यज्ञ कराके राम-लक्ष्मण आदि चार पुत्र पाये। रोमपादके पुत्र चतुरंग हुए। चतुरंगके पृथुलाक्ष हुए। पृथुलाक्षके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बृहद्रथके

पुत्र बृहन्मना थे। उनके जयद्रथ और उनके विजय हुए। हे राजन्! अब ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ सुनो। इस पवित्र वंशमें भगवान परमात्मा मनुष्य रूपसे अवतीर्ण हुए हैं। यह विवरण सुननेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, अनल और रिपुनामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। सहस्रजित्के पुत्र शतजित् हुए। उनके महाहय, वेणुहय और हैहयनामक तीन पुत्र हुए। हैहयके पुत्र धर्म हुए। उनके नेत्र और नेत्रके कुन्ति हुए। कुन्तिके सोहञ्जि उनके महिषगन और उनके भद्रसेन हुए। भद्रसेनके दुर्मद और धनक नामक दो पुत्र हुए। धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नामक चार पुत्र हुए। कृतवीर्यके पुत्र सप्तद्वीपपति सहस्रबाहु अर्जुन हुए। इन्होंने भगवानके अंशावतार परमहंस दत्तात्रेयजीसे योगविद्या पायी थी। इन्होंने पचासी हजार वर्ष पर्यन्त निरन्तर छहों इन्द्रियोंके विषयसुखका उपभोग किया। इनकी स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक थी। अर्जुनके एक सहस्र पुत्र हुए। उनमेंसे पाँचके अतिरिक्त अन्य सभी परशुरामसे संग्राम करके मर गये। जो बच गये उनके नाम जयध्वज, धूरसेन, वृषभ, मधु और अर्जित हैं। जयध्वजके पुत्र तालजङ्घ हुए। तालजङ्घके एक सौ पुत्र हुए। उनमें वीतिहोत्र सबसे बड़े थे। हे राजन्! मधुके पुत्र वृष्णि थे। मधुके एक सौ पुत्रोंमें वृष्णि ज्येष्ठ थे। यदु, मधु और वृष्णिके नामसे इस वंश कुलमें श्रेष्ठ थे। यदुके पुत्र क्रोष्टाके पुत्र वृजिनवान हुए। उनके स्वाहित, उनके विशुद्ध उनके चित्ररथ उनके महायोगी शशबिंदु हुए। महाराज शशबिंदु अपराजित राजचक्रवर्ती थे। उनकी दस हजार

रानियाँ थीं। प्रत्येक पत्नीमें एक-एक लाख संतान उत्पन्न होनेसे उनके सब सौ करोड़ संतान हुए। उन सब पुत्रोंमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्ति, पुण्ययशा प्रभृति छः प्रधान पुत्र थे। पृथुश्रवाके पुत्र धर्म हुए। उनके पुत्र उशना थे। उशनाने सौ अश्वमेध यज्ञ किये। उशनाके पुत्र रुचक थे। उनके पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघनामक पाँच पुत्र हुए। ज्यामघ पुत्रहीन थे। तथापि उन्होंने अपनी भार्या शैब्याके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। एक समय राजा ज्यामघ इंद्रालयसे भोज्यानाम्नी एक कन्या हरकर ला रहे थे। उस कन्याको पतिके रथपर देखकर शैब्याने कुपित होकर पतिसे पूछा—यह कौन है? किसको रथपर बिठाकर लाये हो? ज्यामघने भयभीत होकर स्त्रीसे कहा—यह तुम्हारे पुत्रकी स्त्री होगी। शैब्याने विस्मित होकर कहा—मैं तो वन्ध्या हूं। मेरी कोई सौत भी नहीं है। तब यह कैसे मेरी पुत्रवधू होगी? ज्यामघने कहा—हे रानी! तुम जो पुत्र उत्पन्न करोगी यह उसकी स्त्री होगी। हे राजन्! विश्वदेवा और पितृगण राजाके इस वाक्यसे आनंदित हुए थे। तदनन्तर शैब्याको गर्भ रहा और ठीक समयपर उनको एक पुत्र हुआ। उसका नाम विदर्भ पड़ा। विदर्भके साथ उसी भोज्याका विवाह हुआ।

चतुर्विंश अध्याय

विदर्भके पुत्रोंके वंशका वर्णन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! विदर्भके वीर्य और भोज्याके गर्भसे कुश, क्रथ और रोमपाद नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

रोमपादके पुत्र बभ्रु थे। उनके पुत्र कृति हुए। कृतिके उशिक हुए। उनके चेदि और उनसे चैद्य आदि राजाओंकी उत्पत्ति हुई। हे राजन्! कथके पुत्र कुन्ति थे। उनके वृष्णि हुए। उनके पुत्र निर्वृति थे। उनके दशार्ह और उनके व्योम हुए। व्योमके जीमूत और उनके विकृति हुए। विकृतिके भीमरथ उनके नवरथ और उनके दशरथ हुए। उनके पुत्र शकुनि हुए और उनके करम्भि हुए। उनके पुत्र देवरात, उनके देवक्षत्र, उनके मधु और उनके कुरुवश हुए। उनके अनु, उनके पुरुहोत्र और उनके आयु हुए। आयुके पुत्र सात्वत हुए। सात्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए। भजमानकी दो स्त्रियाँ थीं। उनकी पहली स्त्रीसे निम्लोचि, किंकण और धृष्टि नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए और दूसरी स्त्रीसे शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित् ये तीन पुत्र हुए। हे राजन्! देवावृधके पुत्र बभ्रु हुए। सात्वतके पुत्र महाभोज अत्यन्त धर्मात्मा थे। उनके वंशमें भोजवंशीय यादव हुए। सात्वततनय वृष्णिके सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र थे। युधाजित्के शिनि और अनमित्र हुए। अनमित्रके पुत्र निघ्न हुए। निघ्नके सत्राजित् और प्रसेन हुए। हे राजन्! अनमित्रका शिनीनामक एक और पुत्र था। उसके पुत्र सत्यक हुए। सत्यकके पुत्र युयुधान (सात्यकि) हुए। उनके पुत्र जय और जयके कुणि हुए। उनके युगन्धर हुए। अनमित्रका वृष्णिनामक एक और पुत्र था। उसके पुत्र श्वफल्क हुए। उनके गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरजी और अन्य बारह पुत्र उत्पन्न हुए तथा सुचारा नामकी एक कन्या भी हुई। अक्रूरके

देववान और उपदेवनामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुतसे पुत्र हुए। ये सभी वृष्णिवंशीय थे। अन्धकके कुक्कुर, भजमान, शुचि, कम्बल और बर्हिष ये चार पुत्र हुए। कुक्कुरके पुत्र वह्नि हुए। वह्निके विलोमा, उनके कपोतरोमा और उनके अणु हुए। अणु और तुम्बुरु गन्धर्वमें मित्रता थी। अणुके पुत्र अन्धक थे। उनके पुत्र दुन्दुभि हुए। उनके अविद्य और उनके पुनर्वसु हुए। उनके आहुकनामक पुत्र और आहुकी नाम्नी कन्या हुई। आहुकके देवक और उग्रसेननामक दो पुत्र हुए। देवकके देववान, उपदेव, सुदेव और देववर्धन हुए। इन चारों पुत्रोंकी सात बहिनें भी थीं जिनके नाम ये हैं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सातोंका बिवाह वसुदेवसे हुआ था। हे राजन्! उग्रसेनके कंस सुनाम, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि और तुष्टिमान नामक नौ पुत्र और कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू, राष्ट्रपालिका नामक पाँच कन्याएँ हुईं। इनका विवाह वसुदेवके भाई देवभाग आदिके साथ हुआ। हे राजन्! चित्ररथके पुत्र विदूरथ और उनके पुत्र शूर हुए। शूरके पुत्र भजमान और उनके शिनि हुए। शिनिके भोज और भोजके हृदीक हुए। हृदीकके देवबाहु, शतधनु और कृतवर्मानामक तीन पुत्र हुए। देवमीढ़के पुत्र शूर हुए। शूरकी पत्नी मारिषाके गर्भसे वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृकनामक दस पुत्र हुए। हे राजन्! वसुदेवके जन्मके समय स्वर्गमें देवताओंने प्रसन्न होकर दुन्दुभी और ढोल बजाये थे। इसी कारण श्रीहरिके प्रादुर्भावके आधार जो वसुदेवजी थे,

उनका नाम आनकदुन्दुभी पड़ा। वसुदेव आदिकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नाम्नी पाँच बहिनें भी थीं। शूरने अपने सखा राजा कुन्तिको पुत्रहीन देखकर अपनी पुत्री पृथा उनको दे डाली। अतएव पृथाका दूसरा नाम कुन्ती भी है। किसी समय पृथाने दुर्वासा ऋषिकी परिचर्या द्वारा उनको प्रसन्न करके उनसे देवहूति विद्या प्राप्त की, जिससे हरएक देवताको अपने पास बुलाया जा सकता था। तदनन्तर पृथा अर्थात् कुन्तीने उस विद्याकी परीक्षाके लिए पवित्रतापूर्वक सूर्यदेवका आवाहन किया। उसी समय सूर्यदेवको उपस्थित देखकर कुन्तीको आश्चर्य हुआ। उन्होंने सूर्यदेवसे कहा कि आप जाइये। मैंने तो केवल परीक्षाके लिए इस विद्याका प्रयोग किया था। सूर्यदेवने कहा—मैं तुममें गर्भाधान करूँगा, किन्तु तुम्हारी योनि दूषित न होगी अर्थात् तुम कन्या ही बनी रहोगी। गर्भाधान करके सूर्यदेव चले गये। उसी क्षण सूर्यके समान तेजस्वी एक बालक कुन्तीके कानसे उत्पन्न हुआ। कुन्तीने लोकापवादके भयसे उस पुत्रको नदीकी धारामें छोड़ दिया। तदनन्तर तुम्हारे प्रपितामह महाराज पाण्डुसे कुन्तीका विवाह हुआ। हे राजन्! श्रुतदेवाका विवाह करूषवंशीय वृद्धशर्मासे हुआ। केकयवंशीय राजा धृष्टकेतुके साथ श्रुतकीर्तिका विवाह हुआ। उनके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। राजाधिदेवीका विवाह जयसेनके साथ हुआ। उनके बिन्द और अनुबिन्दनामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवासे विवाह किया। उनके पुत्र शिशुपाल हुए। अब वसुदेवके भाइयोंका वंश सुनिये। देवभागकी पत्नी कंसाके गर्भसे चित्रकेतु और

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

बृहद्बलनामके दो पुत्र हुए । देवश्रवाकी पत्नी केसवतीके गर्भसे सुवीर और इषुमाननामक दो पुत्र हुए । कङ्ककी पत्नी कङ्काके गर्भसे बक सत्यजित् और पुरजित् ये तीन पुत्र हुए । संजयकी भार्या राष्ट्रपालीके गर्भसे वृष और दुर्मर्षण आदि पुत्र हुए । श्यामककी भार्या शूरभूमिके गर्भसे हरिकेश और हिरण्याक्षनामक दो दो पुत्र हुए । वत्सककी पत्नी मिश्रकेशी अप्सरा थी । उसके गर्भसे वृकादि पुत्र उत्पन्न हुए । वृककी स्त्री दुर्वाक्षी थी । उसके गर्भसे तक्ष और पुष्करमाल आदि पुत्र उत्पन्न हुए । शमीककी भार्या सुदामिनी थी । उसके गर्भसे सुमित्र अर्जुनपाल आदि पुत्र उत्पन्न हुए । आनककी स्त्री कर्णिकाके गर्भसे ऋतधामा और जय उत्पन्न हुए । हे राजन् ! वसुदेवकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला, देवकी आदि अनेक स्त्रियाँ थीं । उनमें रोहिणीके गर्भसे बलदेव, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत आदि पुत्र हुए । पौरवीके गर्भसे सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूत आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुए । मदिराके गर्भसे नन्द, उपनन्द, कृतक और शूर आदि पुत्र हुए । भद्राके गर्भसे केशीनामक प्रतापी पुत्र हुआ । रोचनाके गर्भसे हस्त, हेमांगद आदि पुत्र हुए । इलाके गर्भसे उरुवल्क आदि पुत्र हुए । धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ उत्पन्न हुए । शान्तिदेवाके गर्भसे श्रुत, प्रतिश्रुत आदि और उपदेवाके गर्भसे राजन्य, कल्प, वर्ष आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए । श्रीदेवाके गर्भसे वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र हुए और देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र हुए । वसुदेवने सहदेवाके गर्भसे प्रवर, श्रुतमुख्य आदि आठ श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न किये । वसुदेव द्वारा देवकीके

गर्भसे कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सन्तर्दन, भद्र, शेषावतार सङ्कर्षण और आठवें पुत्ररूपमें साक्षात् स्वयं हरि उत्पन्न हुए। देवकीके सुभद्रा नाम्नी एक कन्या भी उत्पन्न हुई, जो तुम्हारी पितामही थीं। हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र पहले अपने चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए। तदनन्तर मनुष्यरूप होकर पिताके बन्दीगृहसे व्रजको गये। वहाँ शत्रु दानवोंका संहार करके व्रजवासियोंका प्रयोजन सिद्ध किया और उसके बाद बहुतसे विवाह करके एक-एक स्त्रीसे सौ-सौ पुत्र उत्पन्न किये और लोकसमाजमें वेदमार्गका प्रचार और विस्तार करते हुए अनेकानेक यज्ञोंसे अपना ही पूजन किया। फिर पृथ्वीका भार उतार और उद्धवको परमतत्त्वका उपदेश देकर कृष्णरूप श्रीनारायण अपने परम धामको चले गये।

नवमस्कन्ध समाप्त

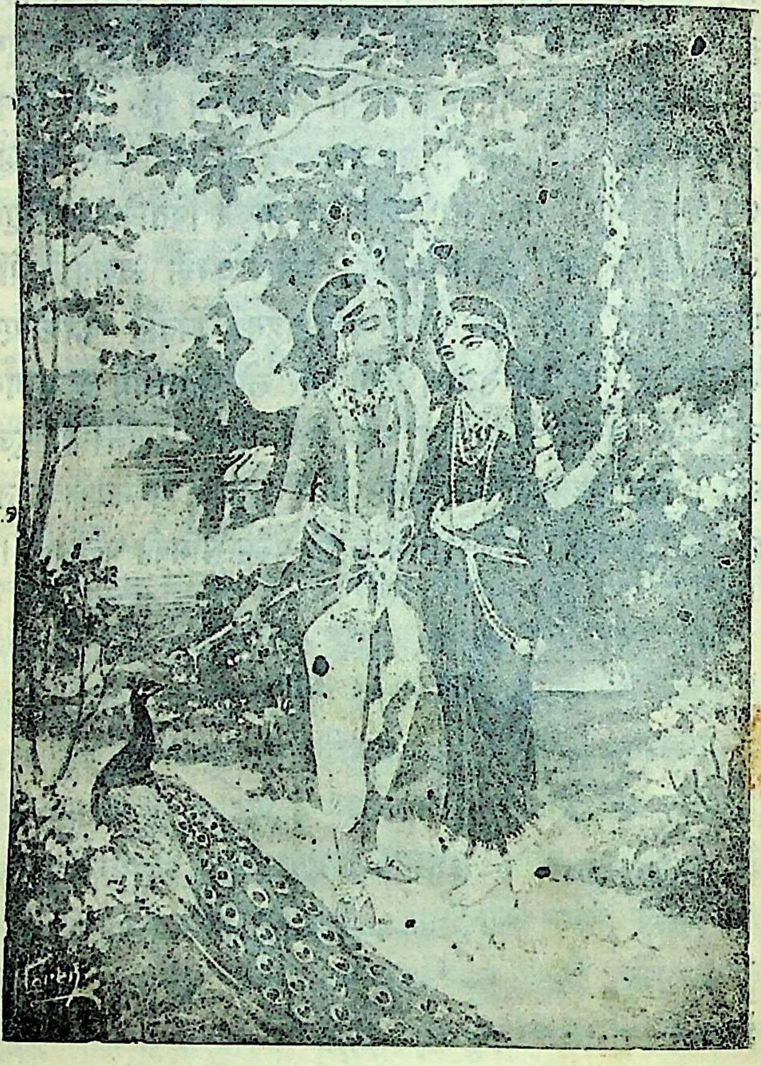

मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनकी झाईं परे, स्याम हरितदुति होय॥

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

दशम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

कंस द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध

महाराज परीक्षितने शुकदेवजीसे कहा—हे ब्रह्मन् ! अब आप भगवान् श्रीकृष्णकी कथा विस्तारपूर्वक सुनाइये । भगवानने यदुवंशमें अवतार लेकर जितने अद्भुत कर्म किये हों, वह सब विस्तारके साथ वर्णन कीजिये । मोक्ष चाहनेवालोंके लिए हरिगुणगान ही एकमात्र उपाय है । क्योंकि वह भवरूप व्याधिकी औषधि है और विषयासक्त लोगोंके लिए भी परमप्रिय है । क्योंकि मन और कानोंके लिए यह रमणीय विषय है । जड़ व्यक्तिके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष हरिकथा सुननेसे विरक्त हो सकता है ? शुकदेवजीने राजाके ये वचन सुनकर कलिकलुषनाशक श्रीकृष्णचरित-

का वर्णन करना आरम्भ किया। उन्होंने राजा परीक्षितसे कहा—हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ परीक्षित! तुमने यह बहुत ही अच्छा विचार किया कि कृष्णचन्द्रकी कथामें दृढ़ताके साथ चित्त लगाया। वासुदेव-सम्बन्धी प्रश्न—पूछनेवाले, उत्तर देनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंको गङ्गाजलके समान पवित्र कर देता है। हे राजन्! अब वासुदेवकी पवित्र कथा सुनिये। असंख्य दानवोंका राजकुलोंमें जन्म हुआ। वे राजा लोग मनमाना अधर्म और अत्याचार करने लगे। उनके अन्यायके भारसे पृथ्वी बहुत पीड़ित हुई और दुःखसे छूटनेके लिए दीन स्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। पृथ्वीने ब्रह्माजीसे अपने कष्टका वृत्तान्त सुनाया। ब्रह्माजी वह सुनकर शिवजी और अन्य देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागरके किनारे गये। वहाँ जाकर एकाग्र मनसे वे मङ्गलरूप परमपुरुषकी आराधना करने लगे। कुछ क्षणके बाद उनको आकाशवाणी सुनाई पड़ी। वाणीने देवताओंसे कहा—हे देवगण! भगवानने जो कुछ कहा है, वह मुझसे सुनो और शीघ्र ही उसके अनुसार कार्य करो। भगवानने कहा है कि मैं पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए वसुदेवके घर देवकीके गर्भसे जन्म लूँगा। देवता लोग पहले अपने-अपने अंशसे यदुवंशमें जाकर जन्म ग्रहण कर लें और देवताओंकी स्त्रियाँ भी भगवानकी सेवाके लिए पृथ्वीपर जाकर जन्म ले लें। शेषजी भी श्रीहरिका प्रिय करनेके लिए पहले ही अवतार लेंगे और भगवती विष्णुमाया भी देवकीका गर्भ-परिवर्तन और देवकार्य सिद्ध करनेके लिए यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होंगी। शुकदेवजीने कहा—देवताओंको इस प्रकार

आज्ञा दे और विविध आश्वासन-वाक्योंसे धरणीको सान्त्वना देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। हे राजन्! पूर्वकालमें यदुपति शूरसेनने मथुरापुरीमें रहकर शूरसेन देश और मथुरा-प्रदेशका शासन किया। इसी कारण तबसे मथुरापुरी ही यदुवंशी राजाओंकी राजधानी हो गयी। भगवान हरि नित्य वहाँ विद्यमान रहते हैं। एक समय शूरवंशी वसुदेवजो मथुरापुरीमें विवाह करके अपने घर जानेके लिए नवविवाहिता देवकीको साथ लेकर रथ-पर सवार हुए। उग्रसेनका पुत्र कंस अपनी बहिन देवकीको प्यार करता था। इसलिए उसकी प्रसन्नताके लिए स्वयं सारथी बनकर रथ हाँकने लगा। देवकीके पिता महाराज देवक अपनी कन्या देवकीको इतना अधिक प्यार करते थे। अतः बिदाईके समय अपनी कन्याको दहेजमें बहुतसे हाथी, घोड़े, रथ, अनेक प्रकारके अलंकार और दास-दासियाँ आदि दिये। वरवधूके विदा होते समय दुन्दुभि, शंख, तूर्य, मृदङ्ग आदि मङ्गलकारी बाजे बजने लगे। कंस रथ हाँक रहा था। उसी समय मार्गमें कंसके लिए आकाश-वाणी हुई कि अरे कंस! जिसका रथ तू हाँक रहा है, उसी देवकी-के आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक तुझको मारेगा। यह सुनते ही कंस बहिनके प्रति अपना स्नेह भूल गया और मारनेके लिए देवकीके केश पकड़कर अपना खड्ग निकाल लिया। महाभाग वसुदेवने निर्लज्ज और निष्ठुर कंसको सान्त्वना देते हुए कहा—हे वीर! तुम भोजवंशके भूषणस्वरूप हो। बड़े-बड़े वीर लोग तुम्हारी बड़ाई करते हैं। इस विवाहोत्सवके समय तुम क्यों अपनी बहिनका वध करना चाहते हो? तुम मृत्युके भयसे इसके प्राण

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

लेना चाहते हो ? याद रखो, मृत्युकी कोई औषधि नहीं है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु होती ही है। आज हो अथवा सौ वर्षोंके बाद हो, प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होगी। इसके लिए पाप करना अनुचित है। यदि कहो कि मर जानेपर फिर जन्म नहीं होता तो भी इस तरह पाप करके शरीररक्षा करना उचित नहीं है। किन्तु जन्म अवश्य होता है। मनुष्यमात्र जैसा कर्म करते हैं, उसीके अनुसार जन्म लेते हैं। यह जीव मनके द्वारा पहले दूसरा शरीर ग्रहण कर लेता है, तब पहला शरीर छोड़ता है। हे वीर ! जैसे जाग्रत अवस्थाके संस्कारोंके कारण पुरुष स्वप्न देखता है वैसे ही जीव भी कर्मवश स्मृतिरहित दूसरा शरीर पाकर पूर्व शरीर त्याग करता है। इस प्रकार विविध युक्तियोंसे समझाकर वसुदेवने कहा—हे वीर ! देखो, यह तुम्हारी छोटी बहन बालिका है, दीन है, कातर है। यह भयसे काठकी पुतलीकी भाँति अचेत हो रही है। इस कल्याणरूपिणीको मारना तुम्हारे लिए योग्य काम नहीं है। हे राजन् ! कंस निठुर और राक्षस स्वभावका मनुष्य था। वसुदेवके समझानेसे भी उसका विचार नहीं बदला। वसुदेवजीने अंतमें देवकीकी प्राणरक्षाके लिए कर्तव्य स्थिर किया और कंससे कहा—हे सौम्य ! इसके पुत्रोंसे ही तुमको भय है न। सो इसके सभी पुत्र मैं तुमको दूँगा। वसुदेवने सोचा कि इस समय आयी हुई मृत्यु तो इस प्रतिज्ञासे टल जायगी। फिर देववाणी भी तो झूठी नहीं हो सकती। हे राजन् ! वसुदेवके समझानेसे कंस रुक गया और बहिनके वधसे निवृत्त हो गया। वसुदेव भी प्रसन्न होकर हँसी-खुशी अपने घरको चले गये। इसके बाद समय पाकर देवकीके गर्भसे

एक-एक करके आठ-पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। सत्यपालनके लिए सत्यवादी वसुदेवने अपने कीर्तिमान नामक प्रथम पुत्रको ले जाकर कंसके हाथमें दे दिया। वसुदेवकी ऐसी साधुता और सत्यमें निष्ठा देखकर कंसने सन्तुष्ट होकर हँसते हुए कहा—आप इस पुत्रको ले जाइये। इससे मुझे कोई भय नहीं है। आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानसे मुझे भय है। उसका जन्म होते ही मेरे पास ले आना। वसुदेव पुत्रको लेकर घर लौट गये। किंतु कंसके इस वाक्यपर उनको विश्वास नहीं हुआ। क्योंकि वे जानते थे कि कंस दुष्ट है और उसका मन उसके वंशमें नहीं है। इसी समय नारदने कंसके पास आकर भगवानके अवतारकी कथा बतायी और कहा कि नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ, सभी वृष्णिवंशी यादव और उनके सुहृद्गण सब देवतुल्य तुम्हारे शत्रु हैं। नारदके चले जानेपर कंस समझ गया कि यादवगण देवता हैं, मेरे शत्रु हैं और मुझे मारनेके लिए विष्णु देवकीके गर्भसे उत्पन्न होंगे। इसलिए उसने उसी समय लोहेकी जंजीर और बेड़ियोंसे वसुदेव और देवकीके हाथ-पैर बँधवाकर अपने घरमें बन्दीकर रखा तथा विष्णुके आविर्भावके भयसे देवकीके गर्भसे उत्पन्न पुत्रोंका वध करने लगा। हे राजन्! इस पृथ्वीपर देखा जाता है कि प्रायः सभी लोभी और शरीरसुखको ही सर्वस्व माननेवाले क्रूर राजे अपनी भोगवासना चरितार्थ करनेके लिए माता-पिता भ्राता तथा बन्धुओंका भी वध कर डालते हैं। पूर्व जन्ममें कंस कालनेमि नामक असुर था। उसको विष्णुने मारा था। इस जन्ममें भी यह बात उसे याद थी। इस कारण वह यादवोंसे विरोध

करने लगा। यदु, भोज और अन्धक आदि यादवोंके अधिपति अपने पिता महाराज उग्रसेनको बन्दी करके महाबली कंस शूरसेन देशका मनमाना और निष्कण्टक राज्य भोग करने लगा।

द्वितीय अध्याय

देवकीके गर्भसे भगवान श्रीहरिका जन्म

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! बलदर्पित कंस मगधवासी जरासन्ध आदिकी सहायता पाकर प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाण, भौम और अन्यान्य राजवेषधारी असुरोंके साथ मिलकर यादवोंका नाश करने लगा। उसके दारुण अत्याचारसे पीड़ित होकर यादवगण कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोशल आदि राज्योंमें भाग गये। केवल थोड़ेसे लोग उसकी सेवाके लिए मथुरामें रह गये। इसके बाद क्रमशः कंसने जब देवकीके छः बालक मार डाले, तब विष्णुके अंश अनन्तजी देवकीके सातवें गर्भमें आये। हे महाराज! विश्वात्मा भगवान्‌ने यदुवंशियोंके भयका कारण जानकर योगमायाको आज्ञा दी कि हे देवि! तुम व्रजको जाओ। वहाँ नन्दके गोकुलमें अन्यान्य स्त्रियोंके साथ वसुदेवकी स्त्री रोहिणी रहती हैं। अनन्तनामक मेरा अंश इस समय देवकीके गर्भमें है। तुम उस गर्भको खींचकर रोहिणीके उदरमें स्थापित करो। बादको मैं पूर्णरूपसे देवकीके गर्भ द्वारा जन्म लूँगा और तुम भी उसी समय नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण करोगी। तब सभी मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे। वे लोग

दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका नाम रखकर तुम्हारी मूर्तियोंकी स्थापना करेंगे। हे देवि! गर्भके संकर्षणसे जिस सन्तानका जन्म होगा, उसका नाम संकर्षण पड़ेगा। इसके अतिरिक्त सब लोगोंका मनोरञ्जन करनेके कारण राम और महाबली होनेसे उसका बलभद्र नाम भी होगा। हे राजन्! भगवानकी आज्ञासे मायाने पृथ्वीपर आकर वैसा ही किया। एक दिन कंसने देवकीको तेजसे परिपूर्ण देखकर कहा—निश्चय जान पड़ता है कि मेरे प्राणोंका शत्रु विष्णु इसके गर्भमें आ गया है। अब मैं क्या करूँ? देवकीको मारनेसे स्त्रीवध, भगिनीवध और गर्भिणीवधका पातक लगेगा, जिससे यश श्री और आयुका क्षय होता है। जगत्में निन्दा होती है और मरनेपर नरकमें जाना पड़ता है। इस प्रकार सोचकर कंस, श्रीहरिके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा। दिन-रात बैठते-उठते खाते-पीते घूमते और सोते समय वह जगत्को विष्णुमय देखने लगा। हे राजन्! उसी समय नारदादि मुनियों और अनुचरोंके साथ ब्रह्मा और शिवजी देवकीके पास आये और सब कामना पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी स्तुति करने लगे और देवकीको समझा-बुझाकर उन्होंने अभयदान दिया।

तृतीय अध्याय

श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसके बाद रोहिणी नक्षत्रका उदय हुआ। सब दिशाएँ निर्मल हुईं। आकाश स्वच्छ हो गया।

पृथ्वीमण्डलके बीच सभी स्थानोंमें मङ्गलमय सगुन देख पड़ने लगे। नदियोंका जल निर्मल हो गया। सरोवर कमलोंसे सुशोभित हो गये। बागोंके वृक्षोंपर पक्षीगण मधुरस्वरसे गाने लगे और फूलोंसे उनकी शोभा बढ़ गयी। कंस आदिके अतिरिक्त बाक़ी सब साधुजनोंके मन आप ही आप प्रसन्न हो उठे। भगवानका जन्मसमय उपस्थित होनेपर स्वर्गमें देवगण दुन्दुभी बजाने लगे।

आनन्दै आनन्द बढ़्यो अति।

देवनि दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
विद्याधर किन्नर कलोल मन, उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचतिं सब सुर-नारि रसिक अति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जयजयकार करत मानत रति।
सिव विरंचि इन्द्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति॥

किन्नर और गन्धर्वगण गान करने लगे। सिद्ध और चारणगण परमात्माकी स्तुति करने लगे तथा विद्याधरी और अप्सराएँ आनन्दसे नाचने लगीं। मुनि और देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। उस समय सागरके साथ मेघ भी मन्द-मन्द गर्जने लगे। उसी घोर अन्धकारमय रात्रिमें भादोंकी अष्टमी तिथिको श्रीहरिने जन्म लिया और देवकीके गर्भसे भगवानका आविर्भाव हो गया। हे राजन्! भगवानका जन्म होनेपर वसुदेवने देखा कि वह बालक बहुत ही अद्भुत है। नेत्र कमलपत्रकी भाँति हैं। चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, शोभित हैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न विराजमान है। गलेमें कौस्तुभमणिकी कान्ति है। जलभरे बादलके समान श्यामशरीरमें पीताम्बर शोभायमान है। सिरपर अपूर्व

मुकुट है और कङ्कण आदि अलंकारोंसे शरीरकी शोभा बढ़ रही है। वसुदेवके आनन्दकी सीमा नहीं रही। इसलिए उन्होंने मन ही मन ब्राह्मणोंको दस हजार गऊ देनेका सङ्कल्प किया। क्योंकि बन्दी अवस्थामें प्रत्यक्ष दान असम्भव था। तदनन्तर वसुदेवजी सिर झुका और हाथ जोड़कर शुद्धबुद्धिसे उस परमपुरुषकी स्तुति करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! तदनन्तर देवकी भी बालकमें महापुरुष हरिके सब लक्षण देखकर बहुत ही विस्मित हुईं और कंसके भयसे बालरूप कृष्णकी स्तुति करने लगीं।

देवकी मन मन चकित भई।
देखहु आइ पुत्र मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई।
सिरपर मुकुट, पीत उपरैना, भृगुपद उर, भुज चारि धरे।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यो यहि बेष करे।
छोरे निगड़, सोवाए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्यौ।
तुरत मोहिं गोकुल पहुँचावहु, यह कहिकै सिसुबेष धर्यौ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिं, हरषवंत नँदभवन गए।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आन सूर मधुपुरी गए॥

यह सुनकर भगवान् अपने अवतारका कारण बताने लगे। भगवानने कहा—हे सति! पूर्वजन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरके समय तुम्हारा नाम पृश्नि था और ये निष्पाप वसुदेवजी सुतपा नामक प्रजापति थे। ब्रह्माजीने तुम दोनोंको प्रजासृष्टि करनेकी आज्ञा दी। उसीके अनुसार इन्द्रियोंको वशमें करके तुम दोनों घोर तप करने लगे। तुम लोग केवल वायु या सूखे पत्तेका आहार करते थे। इस प्रकार दिव्य बारह हजार वर्ष बीत गये। मैं तुम लोगों-

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

पर सन्तुष्ट होकर इसी चतुर्भुज मूर्तिसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। मैंने वर माँगनेके लिए कहा तो तुमने मेरे ही समान गुणशील-सम्पन्न पुत्र माँगा। मेरी मायासे मोहित रहनेके कारण तुम लोग मुझसे मुक्ति नहीं माँग सके। मैंने वही वर दे दिया। तब मैं पृश्निगर्भनामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ। हे सति! फिर दूसरे जन्ममें तुम दोनों जब कश्यप और अदिति हुए तो मैंने उपेन्द्र नामसे तुम्हारे यहाँ जन्म लिया। बौना होनेके कारण मेरा नाम वामन पड़ा। तुम लोगोंका यह तीसरा जन्म है और इसमें भी मैं उसी रूपसे तुम्हारे भवनमें पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ। पुत्रभावसे या ब्रह्मभावसे सदा मेरा ध्यान और मुझपर स्नेह करनेके कारण तुम लोगोंको उत्तम गति प्राप्त होगी। हे राजन्! इतना कहकर भगवान चुप हो गये और अपनी मायाके बलसे उसी समय माता-पिताके सम्मुख साधारण बालक बन गये। तदनन्तर वसुदेवजी भगवानकी आज्ञाके अनुसार बालरूप हरिको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेका उद्योग करने लगे। उधर उसी समय जन्मरहित योगमाया नन्दरानीके गर्भसे गोकुलमें उत्पन्न हुई। हे राजन्! उस समय उन्हीं योगमायाके प्रभावसे द्वारपाल और पुरवासीगणकी सब इन्द्रियाँ अचेत हो गयीं और वे सब घोर निद्राके वश हो गये। बन्दीगृहके द्वार और किवाड़ लोहेकी जंजीरोंसे बन्द और ताले लगे रहनेपर भी वे सहसा आप-ही-आप खुल गये। घोर अन्धकार छाया हुआ था और जोरोंकी वर्षा हो रही थी तथा बादल गरज रहे थे। वसुदेवजीको जलसे बचानेके लिए शेषजी कृष्णचन्द्रपर अपने हजारों फनोंकी छाया करके चले।

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको पार जानेके लिए समुद्रने मार्ग दे दिया था, उसी प्रकार यमुनाने भी रास्ता दे दिया। वसुदेवजी नन्दजीके व्रजमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवानकी मायासे गोप-गोपियाँ सब अचेत होकर सो रही हैं। वसुदेवने कृष्णचन्द्रको यशोदाके पलंगपर सुला दिया और उनकी कन्याको लेकर अपने बन्दीगृह लौट गये। वसुदेवने उस कन्याको देवकीकी सेजपर लिटा दिया और अपने पैरोंमें फिर पहलेकी भाँति बेड़ियाँ डाल लीं। हे राजन् ! नन्दरानी यशोदा यह कुछ भी नहीं जान सकीं।

चतुर्थ अध्याय

असुरोंकी कुमन्त्रणा

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! इसके बाद बालकके रोनेका शब्द सुनकर द्वारपालगण जागे और कंसके पास गये। उनके खसे देवकीके आठवें गर्भसे सन्तान उत्पन्न होनेका समाचार सुना तो कंस घबड़ाकर विह्वलभावसे दौड़ता हुआ देवकीके सूतिकागृहमें जा पहुँचा। कंसको देखकर देवकीने दुखी होकर सकरुण वचनोंसे कहा—हे भाई ! यह तुम्हारी भानजी है। इसका वध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुमने मेरे अग्नितुल्य कई तेजस्वी पुत्र मार डाले हैं, अब यह कन्या मुझे दे दो। मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। पुत्रोंके मारे जानेसे मेरे शरीरमें केवल हड्डियाँ ही शेष रह गयी हैं। इस प्रकार देवकीने बहुत कुछ प्रार्थना की, किन्तु दुष्ट कंसके

मनमें दया नहीं आयी। उसने देवकीके हाथसे कन्या छीन ली और उसके दोनों पैर पकड़कर शिलाके ऊपर पटक दिया, किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूटकर शीघ्रतासे आकाशको चली गयी। वह विष्णुकी अनुजा देवी योगमाया आकाशमें अष्टभुजा मूर्तिसे विराजमान हुई। कंसने देखा कि वह देवी दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और आभूषण धारण किये है और हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल, खड्ग चक्र और गदा लिये है। सिद्ध चारण गन्धर्व अप्सरा किन्नर और नाग आदि अनेकानेक उपहार हाथमें लिये उनकी स्तुति कर रहे हैं। हे राजन्! देवीने आकाशसे कंसको सम्बोधित करते हुए कहा—अरे मूर्ख! मेरा वध करनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरा पूर्वशत्रु कहीं और ही जन्म ले चुका है। अतएव तू व्यर्थ अन्यान्य निर्दोष बालकोंका वध न कर। कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया अन्तर्हित हो गयीं और वाराणसी आदि अनेक स्थानोंमें प्रसिद्ध होकर अवस्थित हुईं। हे राजन्! देवीके वचन सुनकर कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उसने देवकी और वसुदेवको बन्धनसे मुक्त करके विनीतभावसे कहा—तुम लोग हमारे आत्मीय हो। मैंने इतना पाप किया कि तुम्हारे बहुतसे पुत्र मार डाले। क्या ही आश्चर्य है! क्योंकि आज मैंने जाना कि देवता लोग भी झूठ बोलते हैं। उनकी बातोंपर विश्वास करके ही मैंने अपनी बहिनके पुत्रोंको मार डाला है। तुम दोनों पुत्रोंके लिए शोक करना छोड़ दो। कर्मानुसार उनको फल मिला है। इस तरह और भी बहुतसे विनीत वचन कहकर आँसू बहाते बहाते वह देवकीके पैरोंपर गिर पड़ा। हे राजन्! यह सुनकर देवकीने कोप दूर कर दिया और

वसुदेवजीने भी कंससे कहा—हे महाभाग! देहधारियोंके विषयमें जो कुछ तत्त्वज्ञान तुमने कहा, वह सब यथार्थ है। भ्रमसे ही लोग 'मैंने मारा और मैं मारा गया' ऐसा मानते हैं। वसुदेवके ये वचन सुनकर कंस प्रसन्न हुआ और अपने घर चला गया। रात्रि बीतनेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और जो कुछ देवीने कहा था, सो कह सुनाया। कंसके वाक्य सुनकर दानवोंने देवताओंपर कुपित होकर कहा—हे भोजेन्द्र! यदि ऐसी बात है तो ग्राम, पुर, व्रज आदिमें दस दिन और इससे कम अवस्थाके बच्चोंको मार डालना चाहिये। देवता लोग आपका क्या बिगाड़ सकते हैं? वे लोग तो कायर हैं। विष्णु और शिवजी भी क्या कर लेंगे। यह ठीक है कि शत्रुओंका दमन करना चाहिये, उनकी उपेक्षा ठीक नहीं है। देवताओंकी जड़ विष्णु ही हैं। विष्णुका वास वहीं है, जहाँ सनातन धर्म है और वेद, ब्राह्मण, गो, तप और दक्षिणा युक्त यज्ञ ही सनातनधर्मके मूल हैं। इस कारण जैसे बनेगा वैसे ही वेदवाणी, तपस्वी, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों और हव्य देनेवाली गायोंका वध करना ही होगा। हे महाराज! गो, ब्राह्मण, वेद, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और विविध यज्ञ ही विष्णुके रूप हैं। विष्णु ही सब देवताओंके अध्यक्ष हैं और सबके आदि कारण हैं। अतएव ऋषियोंकी हिंसा ही विष्णुवधका उपाय है। इसके बाद मन्दमति कंसने मन्त्रियोंकी मन्त्रणाको ठीक समझकर असुरोंको साधुजनोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। उसने उनको इस कामकेलिए चारों ओर भेजा। अतएव वे दानव साधु लोगोंसे द्वेष करने लगे। हे परीक्षित! साधुजनोंसे द्वेष करना ही विनाश-

का कारण है। इससे आयु, श्री, यश, धर्म, स्वर्गादिलोक, मङ्गल और सब प्रकारके श्रेय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

पञ्चम अध्याय

नन्द और वसुदेवकी मथुरामें भेंट

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! पुत्रका जन्म होनेपर उदारचित्त नन्द आनन्दित होकर स्नान करके पवित्र हुए और उसी क्षण उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वस्त्ययनपाठ, पुत्रका यथाविधि जातक-संस्कार और देव-पितृ-पूजन कराकर ब्राह्मणोंको बीस लाख भलीभाँति अलंकृत धेनुएँ और अनेक रत्न तथा सुवर्णमण्डित वस्त्रोंसे ढँके हुए सात तिलपर्वत दिये। इसके बाद ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन और सूत-मागध-बन्दीजन वंशकी विरुदावली गाने लगे, गायक लोग गान करने और भेरी-दुन्दुभी आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। हे परीक्षित! व्रजमण्डलमें द्वार-द्वारपर विचित्र ध्वजा, पताका, माला और रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे सजावट करके शोभा बढ़ायी गयी। मूल्यवान वस्त्र-आभूषण आदि पहिनकर अनेक भेटकी वस्तुएँ हाथमें लिये गोपलोग नन्दके भवनमें आने लगे। यह सुनकर कि यशोदाको पुत्र हुआ है, सब गोपियाँ परम आनन्दित हुईं और वस्त्र-अलंकार आदिसे विभूषित होकर अनेक प्रकारकी भेटकी सामग्रियाँ लिये शीघ्रतापूर्वक नन्दके भवनको गयीं। नन्दभवनमें पहुँचकर वे गोपियाँ कृष्णचन्द्रको चिरंजीव कहकर आशीर्वाद देतीं और आनन्द प्रकट करती थीं।

हौं इक नई बात सुनि आई ।
महरि जसोदा ढोटा जायो, घर घर होति बधाई ।
द्वारैं भीर गोप-गोपिनकी, महिमा बरनि न जाई ।
अति आनंद होत गोकुलमें, रतनभूमि सब छाई ।
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस कीच मचाई ।
सूरदास स्वामी सुखसागर, सुंदर स्याम कन्हाई ।

हे राजन् ! नन्दने उन सभीको भली-भाँति सन्तुष्ट करके उनका यथोचित सत्कार किया । महाभागा रोहिणीने भी विष्णुकी आराधना करके अपने पुत्रकी मंगल-कामनासे दिव्य वस्त्र, माला और कण्ठके आभूषणोंसे विभूषित होकर यथाशक्ति दान दिया । यह देखकर नन्द और अन्यान्य गोपगण अत्यन्त आनन्दित हुए। हे राजन् ! इसके बाद नन्दजी कुछ गोपोंको गोकुलकी रक्षा और देख-रेखका भार देकर कंसको वार्षिक कर देनेके लिए मथुरापुरी गये । वसुदेवने जब सुना कि हितकारी मित्र नन्दजी आये हैं और राजा कंसको वार्षिक कर दे चुके हैं, तब उनके डेरेपर मिलनेके लिए गये । नन्दजी अपने परम प्रिय मित्रको देखकर जिस तरह प्राण पाकर मृत शरीर उठ खड़ा हो, उसी तरह सहसा आसनसे उठ खड़े हुए और हाथ फैलाकर उनको गलेसे लगा लिया । वसुदेवजीने आनन्दित होकर कहा—भाई ! तुम वृद्ध हो गये थे और अब तक तुम पुत्र-कन्याहीन थे । यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि इस समय तुमको पुत्र प्राप्त हुआ । नन्दजीने ये बातें सुनकर वसुदेवको सात्वना देते हुए कहा—हे मित्र ! दुःख है कि तुम्हारी स्त्री देवकीके गर्भसे उत्पन्न कई पुत्र दुष्ट कंसने मार डाले । एक कन्या

अन्तमें हुई वह भी स्वर्गको चली गयी। सबके लिए पुत्र आदिका सुख मिलना भाग्यपर निर्भर है। इसके लिए चिन्ता करना छोड़ दो। वसुदेवजीने कहा—मित्र ! तुम राजा कंसको वार्षिक कर दे चुके और हमसे भी भेंट हो गयी। अब तुम्हारा यहाँ बहुत दिन ठहरना अच्छा नहीं है। क्योंकि गोकुलमें अनेक उत्पात हो रहे हैं। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्। वसुदेवकी बात सुनकर उसी समय छकड़े जुतवाकर नन्द आदि गोप उनपर सवार हुए और वसुदेवसे बिदा होकर गोकुलकी ओर चले।

षष्ठ अध्याय

पूतनावध

शुकदेवजी बोले—नन्दजी मार्गमें जाते हुए इस बातपर विचार करने लगे कि महात्मा वसुदेवके वचन कभी मिथ्या नहीं होते। व्रजमें किसी तरहका उत्पात हुआ होगा, इस आशंकासे भयभीत होकर वे हृदयसे हरिके शरणागत हुए। वास्तवमें उसी समय कंसकी भेजी हुई घोर स्वभाववाली पूतना राक्षसी पुर-ग्राम-व्रज आदिमें सुन्दरी युवतीका रूप धारण करके गोकुलके भीतर घुसी। उस दिन उसने परम सुन्दर रूप धारण किया और नन्दके घरमें घुसकर इधर-उधर घूमने लगी। वह कोई भद्र महिला जान पड़ती थी। अतएव यशोदा-रोहिणी चुपचाप खड़ी देखती रहीं, वे कुछ भी कह न सकीं। गोपियोंने भी उसे लक्ष्मी समझकर पुरमें प्रवेश करनेसे नहीं रोका था। उस राक्षसीने शय्यापर कृष्णचन्द्रको देखा। वह यह न जान सकी कि यह बालक दुष्टोंके

लिए ही बालरूप है और भस्ममें छिपी अग्निके समान अपने असीम तेजको छिपाये हुए है। अतएव कृष्णको देखकर वह भयभीत नहीं हुई। चराचर जगत्के स्वामी भगवान समझ गये कि यह बालग्रह पूतना है। इसलिए उसे मारनेकी इच्छासे उन्होंने दोनों आँखें बन्द कर लीं। पूतनाने कृष्णचन्द्रको गोदमें उठा लिया और विषसे भरा स्तन उनके मुखमें दे दिया। भगवान हरिने कुपित होकर उस स्तनको भलीभाँति दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और दूधके साथ उसके प्राण भी खींचने लगे। सब मर्मस्थलोंमें घोर वेदना होनेसे वह राक्षसी 'बस-बस, छोड़ दे, छोड़ दे' कहकर चिल्लाने लगी। उसके शरीरसे पसीना निकलने लगा और आँखें बाहर निकल आयीं। इससे वह अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और यातनासे हाथ-पैर पटकती हुई रोने लगी।

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई।
अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई॥
मुख चूमति अरु नैन निहारति, राखति कंठ लगाई।
भाग बड़े तुम्हरे नन्दरानी, जिहिंके कुँवर कन्हाई।
कर गहि छीर पियावति अपनौ, जानत केसव राई।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई॥
गइ मुरछाइ, परी धरनीपर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई॥

हे राजन्! उसकी रुलाईके भयंकर शब्दसे सभी डर गये। अतिशय वेदनाके कारण वह मर गयी। अन्त समयमें उसका कपटवेष दूर हुआ और राक्षसी रूप प्रकट हो गया। हे राजन्!

मरकर गिरते समय भी उसके लम्बे-चौड़े शरीरने छः कोसतकके वृक्ष आदिको चकनाचूर कर डाला। उसका शरीर अत्यन्त भयानक था। दाँत हलके समान लम्बे-चौड़े थे। नासिकाके छिद्र पहाड़ोंकी कन्दराके समान लगते थे, दोनों कुच छोटे पर्वत जैसे थे और लाल वर्णवाले बाल इधर-उधर बिखरे हुए थे। नेत्र अन्धकूपके तुल्य गम्भीर थे। दोनों जघनप्रदेश ऊँचे नदीतटके समान होनेके कारण अत्यन्त भयानक थे। भुजा, ऊरु और चरण बँधे हुए सेतुके तुल्य दिखाई पड़ते थे और उदर सूखे हुए सरोवरके समान गहरा था। पहले उसके चीत्कारसे लोगोंके हृदय थर्रा उठे थे और अब उसका भयङ्कर रूप देखकर वे लोग बहुत ही भयभीत हुए। इसके बाद बालकको उस राक्षसीके वक्षःस्थलपर निर्भयतापूर्वक खेलते देखकर गोपियोंने जल्दीसे जाकर बच्चेको उठा लिया। तदनन्तर यशोदा आदिने गोपुच्छ घुमाकर और अन्य विधियोंसे बालकके सब अंगोंकी रक्षा की तथा देवताओंकी मनौती मानी। तत्पश्चात् यशोदाने पुत्रको गोदमें लेकर दूध पिलाया और फिर शय्यापर सुला दिया। उसी समय नन्द आदि गोपगण मथुरासे व्रजको लौट रहे थे। मार्गमें पूतनाका घोर शरीर देखकर वे लोग अवाक् रह गये। वे परस्पर कहने लगे—क्या ही आश्चर्य है! परमज्ञानी वसुदेवजीने जैसा बताया था, उसीके लक्षण देख पड़ते हैं। हे राजन्! इधर व्रजके गोपोंने पूतनाका शरीर कुल्हाड़ियोंसे अनेक टुकड़ोंमें काट डाला और दूर ले जाकर लकड़ियोंसे उसको जला दिया। जलते समय उसके शरीरसे जो धुँआ निकला, उसमें अगुरुकी-सी गन्ध थी। क्योंकि कृष्णभगवान्-

ने उसका स्तनपान किया था, इसलिए पापिनी पूतनाके सब पाप नष्ट हो गये थे। हे राजन्! भगवान देवकीनन्दनने जिन गोपियोंका स्तनपान किया था, उन्हें भी अन्तिम समयमें अवश्य सद्गति मिली होगी। हे कुरुप्रवीर! जो मनुष्य श्रीकृष्णका यह अद्भुत बालचरित श्रद्धापूर्वक पढ़ेंगे या सुनेंगे, उनके मनमें कृष्ण-भगवानपर अटल भक्ति उत्पन्न होगी।

सप्तम अध्याय

शकट-भंजन और तृणावर्तवध

राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे कहा—हे प्रभो! कृष्णचन्द्रने मनुष्यलोकमें आकर मनुष्योंकी भाँति बाल्यावस्थामें और भी जो कुछ अद्भुत लीलाएँ की हों, उनको भी कृपापूर्वक सुनाइये। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! एकदिन बालकके जन्म-दिवसके उपलक्ष्यमें नन्दके यहाँ महोत्सवमय अभिषेक कृत्य हुआ। व्रजकी सब गोपियाँ उसमें आयीं। उनके साथ मिलकर नन्दरानी यशोदाने बालकका अभिषेक कराया, गाना-बजाना हुआ और ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन मन्त्र पढ़े। पुत्रका स्नान आदि जब हो चुका और ब्राह्मणोंका स्वस्त्ययन पाठ समाप्त हुआ तो कृष्णचन्द्रको निद्रित देखकर यशोदाने उनको एक शकटके नीचे सुला दिया। यशोदाका मन उत्सवमें लगा था और वे आये हुए व्रजवासियोंके आदर-सत्कारमें व्यस्त थीं। इधर कृष्णचन्द्र रो रहे थे, पर व्यस्त रहनेके कारण उन्होंने उनका रोना नहीं सुन पाया। कृष्णचन्द्रने रोते-रोते दोनों पैर ऊपर उछाले। उनके नवपल्लवसम कोमल छोटे-छोटे पैरोंके प्रहारसे वह शकट

उलट गया। उसमें धरे हुए दही-दूध आदिसे भरे काँसे आदिके विविध बर्तन गिर-गिरकर चूर-चूर हो गये और छकड़ेके पहिये, धुरा और जुआ आदि सभी टूट-फूट गये। गाड़ीका इस तरह उलटना देखकर यशोदा आदि व्रजनारियाँ बहुत ही आश्चर्यमें पड़ गयीं और कहने लगीं—यह कैसे उलट पड़ा? जो बालक वहाँ खेल रहे थे, उन्होंने कहा—इन्हीं कृष्णने रोते-रोते पैर उछालकर छकड़ा गिरा दिया है। हे राजन्! किसीको इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। यशोदा बालकको गोदमें उठाकर स्तनपान कराने लगीं और उन्होंने बालकके मंगलके लिए ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन मन्त्र-पाठ द्वारा शान्तिकार्य कराया गया। स्वस्त्ययन पाठ और हवन समाप्त होनेपर पुत्रके अभ्युदयकी कामनासे ब्राह्मणोंको सुस्वादु भोजन कराया गया और दान दिया गया। हे महाराज! एक दिन यशोदा पुत्रको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं। उनको कृष्णजी बहुत भारी जान पड़े, जिससे वे गोदमें लिये नहीं रह सकीं। अतः पुत्रको गोदसे उतारकर उन्होंने पृथ्वीपर बैठा दिया। इसपर उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ, पर अपने घरेलू काम-काजमें लग गयीं। इसी समय कंसका भेजा हुआ तृणावर्तनामक असुर आँधी-बवंडरके रूपसे व्रजमण्डलमें आया और कृष्णचन्द्रको उठा ले गया। धूलिसे व्रजमण्डल छा गया और असुरके घोर शब्दकी प्रतिध्वनि होने लगी। यशोदाने पुत्रको नहीं देखा तो वे पृथ्वीपर गिरकर अत्यन्त दीन स्वरसे विलाप करने लगीं। उनके रोनेका शब्द सुनकर अन्य गोपियाँ वहाँ आयीं और सब वृत्तान्त जानकर वे भी रोने लगीं। उधर कृष्णजीने अपना भार इतना

अधिक बढ़ा दिया कि असुर व्याकुल हो उठा। तब कृष्णजीने दोनों हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया। उस दैत्यने अपनेको छुड़ानेकी बहुत कुछ चेष्टा की, किन्तु अपनेको मुक्त न कर सका। उसकी आँखें बाहर निकल पड़ीं और प्राणहीन होकर वह आकाशसे ब्रजमें गिर पड़ा। हे राजन्! वह त्रिपुरके समान आकाशसे शिलाके ऊपर गिरा, जिससे उसके सब अंग चूर-चूर हो गये। कृष्णजी उसकी छातीपर थे। गोपियोंने दौड़कर कृष्णजीको उठा लिया और यशोदाजीको दे दिया। इस प्रकार मृत्युके मुखसे बालकका बचना देखकर सभी आश्चर्यमें पड़ गये। गोप-गोपियोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। वे लोग परस्पर कहने लगे—क्या ही आश्चर्य है! कैसी अद्भुत बात है! इस बालकने इतने बड़े दानवको मार डाला। हमने पूर्वजन्ममें कौन तप किया था या कैसे पुण्यकार्य किये थे, जिससे हमें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। हे राजन्! इसके बाद एक दिन नन्दरानी यशोदा बालकको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं। उसी समय कृष्णने जम्हाई ली। जम्हाते हुए कृष्णके मुखमें यशोदाने देखा—आकाश, ज्योतिर्मण्डल, दसों दिशाएँ, सूर्य-चन्द्र, अग्नि, वायु, सातों महासागर, पर्वत नदियाँ आदि और चराचर प्राणी उसमें विद्यमान हैं। यह देखकर उनका हृदय भयसे काँप उठा और धड़कने लगा। उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये और अवाक् होकर ईश्वरका स्मरण करने लगीं।

अष्टम अध्याय

श्रीकृष्णकी बाललीला

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! वसुदेवने यदुकुलके पुरोहित महातपस्वी गर्गमुनिको एक दिन नन्दजीके व्रजको भेजा। उन्हें देखकर नन्दजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उठकर मुनिको प्रणाम करके यथोचित रीतिसे उनका पूजन और आदर-सत्कार किया। तदनन्तर नन्दजीने कहा—भगवन् ! आप ज्योतिषियों और ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं। अतएव इन मेरे बालकोंके नामकरण आदि संस्कार आप ही कीजिये। गर्गजीने नन्दजीके वचन सुनकर कहा—मैं तो यादवोंका आचार्य हूँ। यदि मैं संस्कार करूँगा तो कंस शंकित होकर तुम्हारे पुत्रोंको मार डालेगा, ऐसी आशंका है। यह बात भी निश्चित है कि देवकीका आठवाँ गर्भ बालक ही हो सकता है—कन्या नहीं। यदि कंस तुम्हारे बालकोंका वध कर डालेगा तो यह महाशोकका कारण होगा। नन्दजीने कहा—यह कार्य इसी गोव्रजमें गुप्त रीतिसे किया जायगा तो कोई भी न जान सकेगा। इस कारण इस कार्यको आप सम्पन्न कीजिये। शुकदेवजीने कहा—गर्गजीको तो इसी कामके लिए वसुदेवने भेजा ही था। अतः नन्दजीके अनुरोधसे अपने पूर्व इच्छानुसार उन्होंने गुप्तरीतिसे नामकरण-संस्कार पूरा कर दिया। उन्होंने कहा—यह रोहिणीका पुत्र अपने गुणोंसे सुहृद्जनोंको रमावेगा, इस कारण इसका नाम राम होगा। बलकी अधिकतासे लोग इसे बलभद्र भी कहेंगे और ये परस्पर शिक्षा देकर यादवोंमें मेल करावेंगे, इस कारण इनका एक नाम संकर्षण भी पड़ेगा। इस दूसरे

बालकके गत तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त और पीत ये तीन वर्णके अवतार हो चुके हैं। इस युगमें यह कृष्णवर्णका अवतार हुआ है। अतएव इसका नाम कृष्ण होगा। तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी वसुदेवके यहाँ भी उत्पन्न हो चुका है। इस कारण विद्वान लोग इस बालकको वासुदेव भी कहेंगे। इसके अतिरिक्त इस पुत्रके गुण-कर्मके अनुरूप बहुतसे रूप और नाम हैं। उनको मैं ही जानता हूँ—अन्य साधारण लोग नहीं जानते। यह बालक तुम्हारा कल्याण करेगा। हे नन्द! तुम्हारे बालकके अनेक गुण हैं। यह आनन्द-वर्द्धक, विपदुद्धारक और असुर-विनाशक होगा। तुम यत्नपूर्वक इसका लालन-पालन करो। इसपर विपत्तिकी कोई आशंका नहीं है। इस प्रकार आज्ञा देकर गर्गमुनि अपने घर चले गये। कुछ दिन बीतनेपर कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई गोकुलमें घुटनोंके बल इधर-उधर घूमकर खेलने लगे।

खेलत नंद-आँगन गोविंद।
निरखि-निरखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर इंदु ॥
कटि किंकिनी चंद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कण्ठ केहरि नख, बिच बिच बज्र प्रवाल ॥
कर पहुँची, पायनि मैं नूपुर, तन राजत पटपीत।
घुटुरनि चलत, अजिरमहँ बिहरत, मुख मण्डित नवनीत ॥
सूर विचित्र चरित्र स्याम के, रसना कहत न आवैं।
बालदसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावैं ॥

उनके पैरोंमें नूपुरके झुन-झुन शब्द होते थे। वे गोबर और कींचसे भरे गोव्रजमें बार-बार चलते थे। चलनेमें कमर और पैरके

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

आभूषण बजते थे। वे कभी अपने शरीरमें धूलि लगा लेते थे। स्नेहकी अधिकतासे दोनों माताओंके स्तनोंसे दूध निकलने लगता था। वे पुत्रोंको गोदमें उठाकर गलेसे लगा लेतीं और उनको दूध पिलाती थीं। उस समय माताएँ अपार आनन्द पाती थीं। कुछ दिन और बीतनेपर कृष्ण और बलभद्र दोनों भाई गोकुलमें खड़े होकर चलने लगे। तब भगवान कृष्णचन्द्रजी अपनी अवस्थाके ग्वाल-बालों और बलदेवके साथ ब्रजनारियोंको आनन्दित करते हुए क्रीड़ा करने लगे। गोपियाँ यशोदाके पास आकर कहने लगीं—कान्हा बड़ी ढिठाई करता है। कभी हमारे घरोंमें घुसकर असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है। चातुरीके ढंगोंसे चुराकर मीठा, दही, दूध और मक्खन स्वयं खाता और बानरोंमें बाँट देता है। छिपाकर रखनेसे भी इससे इन वस्तुओंको बचाना कठिन है। यदि कुछ नहीं मिलता तो खीझकर सोते हुए बच्चोंको चुटकी काट तथा रुलाकर चला जाता है। कुछ कहनेसे उलटे हम लोगोंको ही डाँटता और लीपे-पोते हुए घरोंमें मल-मूत्र कर जाता है। इस प्रकार हमारे यहाँ यह चोरी और दंगा करता है, किन्तु इस समय तुम्हारे पास कैसा सीधा और साधु बनकर बैठा हुआ है। एक दिन बलभद्र आदि ग्वालबालोंने यशोदामाताके पास आकर कहा—आज कृष्णने मिट्टी खायी है। माताने कृष्णको डाँटते हुए कहा—बता तूने मिट्टी क्यों खायी ? कृष्णने कहा—मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये लोग झूठ बोलते हैं। यदि विश्वास न हो तो मेरा मुँह देख लो। यशोदाने कहा—यदि तू सच कहता है तो मुख फैला। यह सुनकर बालरूपधारी ईश्वरने अपना मुख

फैला दिया। उसमें सभी जीव, आकाश, दसों दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, वायु, अग्नि, चन्द्र, तारागण, देवगण आदि सभी दिखाई पड़े। यह देखकर यशोदाजीको बड़ी भारी शंका हुई। वे कहने लगीं—यह हरिकी माया है ? या मेरी बुद्धिको ही मोह हो गया है। अथवा इस मेरे पुत्रका ही प्रताप है ? जिसकी मायासे मेरी मति घिरी हुई है, मैं उसी ईश्वरकी शरणमें हूँ। हे राजन्! इस प्रकार यशोदाको तत्त्वज्ञानसे युक्त देखकर ईश्वर कृष्णचन्द्रने फिर अपनी प्रबल माया फैला दी। तब तुरन्त यशोदाका वह आत्मज्ञान नष्ट हो गया और पुत्रस्नेह हृदयमें उमड़ आया। उन्होंने पुत्रको गोदमें उठा लिया और पहलेको भाँति दुलारने लगीं। वेद, उपनिषद, सांख्य, योगशास्त्र और भक्तगण जिनका माहात्म्य गाते हैं, उनको यशोदाने मायासे विमोहित होनेके कारण अपना पुत्र माना। राजा परीक्षितने शुकदेवजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्! नन्द गोपने कौन ऐसा सुकृत किया था और महाभागा यशोदाने ही कौन ऐसा महाफलदायी पुण्यकर्म किया था कि जिससे हरिभगवानने उनका दूध पिया ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! द्रोणनामक वसु देवताने ब्रह्माकी आज्ञासे अपनी स्त्रीके साथ पृथ्वीपर अवतार लिया। ब्रह्माका आदेश पाकर द्रोणने उनसे कहा—हम पृथ्वीमें जन्म तो लेंगे, किन्तु आप कृपा करके यह वर दीजिये कि देवदेव विश्वनायक हरिमें हमारी अचल भक्ति हो, जिसके अवलम्बसे लोग सहजमें ही दुर्गतिसे छूट जाते हैं। ब्रह्माने कहा—ऐसा ही होगा। यही महायशस्वी द्रोणवसु पृथ्वीपर नन्दगोप हुए और उनकी स्त्री धरा यशोदा हुईं।

इसी कारण दोनों स्त्री-पुरुषोंकी पुत्ररूपसे उत्पन्न हरिमें अत्यन्त भक्ति हुई। अन्यान्य गोपी और गोप भी श्रीहरिसे प्रेम करते थे। भगवान कृष्ण ब्रह्माका वाक्य सत्य करनेके लिए बलदेवजीके साथ ब्रजमें रहकर अपनी लीलाओंसे ब्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे।

नवम अध्याय

श्रीकृष्णका ऊखलमें बाँधा जाना

शुकदेवजी बोले—एक दिन घरकी सभी दासियाँ दूसरे कामोंमें लगी हुई थीं। इस कारण नन्दरानी यशोदा आप ही दही मथने लगीं। अभी मैंने कृष्णकी जो जो बाल लीलाएँ कही हैं, उनको याद करके दही मथते समय यशोदाजी गाने लगीं। हे राजन्! दही मथते समय उनके दोनों स्तन हिलते जाते थे और उन स्तनोंसे पुत्रस्नेहके कारण दूध निकल रहा था। उस समय दूध पीनेकी इच्छासे कृष्णचन्द्र आये और मथानी पकड़कर उन्होंने माताको दही मथनेसे रोका।

जब मोहन कर गही मथानी।
परसत कर दधि, माट, नेति, चित उदधि, सैल, बासुकि भय मानी॥
कबहुँक तीनि पैग भुव मापत, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।
कबहुँक सुरमुनि ध्यान न पावत कबहुँ खेलावति नंदकी रानी॥
कबहुँक अमरखीर नहिं भावत कबहुँक दधि माखन रुचि मानी।
सूरदास प्रभुको यह लीला, परति न महिमा सेष बखानी॥

यशोदाने पुत्रको गोदमें ले लिया और उनके मुखमें स्तन देकर दूध पिलाने लगीं।

आनँद सौं दधि मथति जसोदा, घमकि मथनिया घूमैं।
निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैं॥
चारु चखौड़ापर कुंचित कच, छबि मुक्ता ताहू मैं।
मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत प्यावन-हित झूमैं॥
बोलत स्याम तोतरी बतियाँ, हँसि हँसि दतियाँ दूमैं।
सूरदास वारी छबि ऊपर, जननि कमल मुख चूमै॥

इतनेमें चूल्हेपर चढ़ा हुआ दूध उफनाने लगा। इस अवस्थामें यशोदा कृष्णको छोड़कर जल्दीसे दूध उतारनेके लिए चली गयीं। कृष्णचन्द्र उस समय तृप्त नहीं हुए थे। इस कारण क्रोधमें आकर उन्होंने दहीका मटका फोड़ डाला और एकान्तमें जाकर मक्खन खाने लगे। यशोदाजी दूध उतारकर आयीं तो दहीका भांडा फूटा देखकर समझ गयीं कि कृष्णका ही यह काम है। वहाँ कृष्णको न देखकर वे हँसने लगीं। तब यशोदाने घरमें जाकर देखा कि कृष्णजी ओखली उलटकर उसपर चढ़े हुए हैं और छींकेपरका मक्खन मनमाने तौरसे खा रहे हैं, वानरोंको भी लुटा रहे हैं तथा चोरी करनेके कारण चारों ओर चकित दृष्टिसे देखते जाते हैं। यह देखकर यशोदाजी दबे-पैरों पीछेसे पुत्रके पास गयीं। माताको छड़ी लिये अपने पास आते देख ऊखलसे उतरकर नन्दनन्दन भाग चले। हे राजन्! योगियोंका मन तपके द्वारा तदाकार होकर भी जिनको नहीं पाता उन्हीं श्यामसुन्दर कृष्णको पकड़नेकी इच्छासे यशोदाजी पीछे-पीछे दौड़ीं। थोड़ी ही दूर जाकर यशोदाने कृष्णको पकड़ लिया। यशोदाने देखा कि अपराध करनेके कारण भयभीत होकर कृष्णजी रो रहे हैं।

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

यशोदाने कृष्णके दोनों हाथ पकड़ लिये और छड़ी दिखाकर धमकाती-डराती हुई डाटने लगीं। फिर पुत्रको अधिक डरा हुआ देखकर वे छड़ी फेंककर उन्हें बाँधनेको उद्यत हुईं। भगवानको पुत्र मानकर यशोदाजी रस्सीसे ऊखलमें बाँधने लगीं। यशोदाजी अपने अपराधी बालकको जिस रस्सीसे बाँध रहीं थीं, वह गाँठ देनेमें दो अंगुल छोटी पड़ गयी।

जसुमति रिस करि करि रजु करषै।
सुत हित क्रोध देखि माता कै, मनहीं मन हरि हरषै॥
उफनत छीर जननि करि व्याकुल इहि विधि भुजा छुड़ायौ।
भाजन फोरि दही सब डारयौ, माखनकीच मचायौ॥
लै आई जेंवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनिसौं, पुनि-पुनि और मंगायौ॥
नारद-साप भये जमलार्जुन, तिनकौं अबजु उधारौं।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित, जनम-जनम तनु धारौं॥

दूसरी रस्सी जोड़ी गयी तो वह भी दो अंगुल छोटी पड़ी। इसी प्रकार और भी रस्सियाँ जोड़ी गयीं, पर किसी प्रकार कृष्णजी न बाँधे जा सके। यह देखकर यशोदाको बड़ा विस्मय हुआ। अधिक श्रमके कारण यशोदाका शरीर पसीनेसे तर हो गया। माताको थकी देखकर कृष्णचन्द्र को दया आयी और वे आप ही बँध गये। कृष्णको ओखलीमें बाँधकर यशोदाजी घरके कामकाजमें लग गयीं। इधर कृष्णकी दृष्टि नन्दभवनके द्वारपर अवस्थित बहुत पुराने यमलार्जुन वृक्षोंपर पड़ी। ये दोनों वृक्ष पूर्व जन्ममें कुबेरके पुत्र थे। नारदके शापसे वृक्ष हो गये थे।

दशम अध्याय

यमलार्जुन वृक्षोंका भञ्जन

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! भगवद्भक्त तथा शान्त-स्वभाव देवर्षि नारदको कैसे क्रोध हुआ और किस कारण उन्होंने कुबेरके पुत्रोंको शाप दिया ? शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! कुबेरके दोनों पुत्र रुद्रके अनुचर थे। इस कारण उनको बड़ा अहंकार हो गया था। वे मदिरा पीकर मतवाले हो पर्वतके रमणीय उपवन और मन्दाकिनीके तटपर घूमा करते थे। मदिराके मदसे सदा उनकी आँखें लाल रहती थीं। एक समय ऐसी ही दशामें वे दोनों स्त्रियोंको साथ लेकर उद्यानमें विचर रहे थे। इसके बाद जलकेलि करनेकी इच्छासे वे सुरधुनी (गंगा) के जलमें घुस पड़े और गजराज जैसे हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करे, वैसे ही सुरसुन्दरियोंके साथ जल-विहार करने लगे। उसी समय इच्छानुसार घूमते हुए देवर्षि नारदजी वहाँ जा पहुँचे। उनकी दशा देखकर नारदजी जान गये कि ये दोनों मतवाले हो रहे हैं। क्योंकि वे दोनों जलमें नंगे खड़े थे और स्त्रियोंने बाहर निकलकर अपने-अपने कपड़े पहिन लिये थे। उन दोनोंको नंगे देखकर नारदजीने कहा—अहो ! ऐश्वर्यके मदसे स्त्री-संग, द्यूत-क्रीड़ा और मदिरापानकी ही अधिकता होती है। ये लोकपाल कुबेरके पुत्र हैं, किन्तु अज्ञानमें इतना निमग्न हो रहे हैं कि इनको अपने नग्न होनेका भी ज्ञान नहीं है। इसलिए मैं शाप देता हूँ कि ये स्थावर योनिको प्राप्त हों। ये इसीके योग्य हैं। किन्तु मेरे अनुग्रह और प्रसादसे जड़योनिमें भी इनकी स्मरणशक्ति नष्ट न होगी अर्थात् इस जन्मकी याद

बनी रहेगी। एकसौ दिव्य वर्ष बीतनेपर ये हरिभगवानके दर्शन पावेंगे और हरिभक्ति प्राप्त करके फिर इसी स्वर्गलोकमें आ जायँगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! इतना कहकर देवर्षि नारदजी नारायण भगवानके आश्रमको चले गये और नारदके शापसे नलकूबर और मणिग्रीव नामक दोनों कुबेरपुत्र यमलार्जुन वृक्ष हो गये। हे राजन्! भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीका वचन सत्य करनेके लिए भगवान कृष्णचन्द्रजी धीरे-धीरे यमलार्जुन वृक्षोंके पास पहुँचे। भगवान ऊखलमें बँधे हुए थे। वे उन दोनों वृक्षोंके बीचसे होकर दूसरी ओर निकले। ऊखल बीचमें अड़ गया। तब बालरूप भगवानने ऊखल-सहित रस्सीको बलपूर्वक अपनी ओर खींचा। तब श्रीहरिके पराक्रमसे दोनों महाप्राचीन वृक्ष जड़से उखड़कर महाप्रचण्ड शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े।

मथत यशोदा दही मथानी।
तबहिं कान्ह ऐसी मति ठानी॥
भक्त वछल हरि अन्तर्यामी।
सुत कुबेर के ये दोउ नामी॥
यह अवतार कह्यो इन तारण।
इनको दुख अब करौं निवारण॥
जो जेहि ढँग तिहि ढँग सब लायो।
यमलार्जुन पै प्रभु तब आयो॥
वृक्ष बीच ऊखल लै अटक्यो।
आगे निकसि नेह गहि झटक्यो॥
अररात दोउ वृक्ष गिरे घर।
अति आघात भयो व्रज ऊपर॥

भए चकित सब व्रज के वासी।
यहि अंतर दोउ कुँअर प्रकासी॥

हे राजन्! दोनों वृक्षोंके गिर पड़नेपर उनसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकल पड़े। उनकी विमल कान्तिसे दशों दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। उन दोनोंने सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी कृष्णचन्द्रको सिर झुकाकर प्रणाम किया। तदनन्तर वे दोनों भगवानकी स्तुति करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! रस्सीसे ओखलीमें बँधे हुए गोकुलेश्वर कृष्णभगवान इस प्रकार स्तुति करनेवाले वृक्षोंपर प्रसन्न हुए और हँसते हुए उनसे कहने लगे—मुझे पहलेसे ही विदित था कि तुम दोनों जब ऐश्वर्यमदसे अन्धे हो रहे थे तो देवर्षि नारदने अनुग्रह करते हुए तुम लोगोंको शाप दिया था, जिससे तुम्हें वृक्ष होना पड़ा। अब तुम लोग अपने घर जाओ। तुम्हारा मन सदा मुझमें लगा रहेगा। तुम्हारी भक्ति मुझमें हुई है। इसलिए तुम लोगोंको फिर संसारबन्धनमें पड़नेकी सम्भावना नहीं है। हे राजन्! भगवानके कहनेपर दोनों यक्षोंने ऊखलमें बँधे कृष्णकी परिक्रमा की, बार-बार उनको प्रणाम किया तथा उनसे विदा होकर उत्तर दिशाको चले गये।

एकादश अध्याय

वत्सासुर और वकासुरका वध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेसे नन्द आदि सभी गोप वज्र गिरनेकी आशंकासे वहाँ आ उपस्थित हुए। कृष्णचन्द्र ओखलीमें बँधे सामने ही खड़े थे। सब लोग

कहने लगे—बड़ी आश्चर्यपूर्ण घटना है ! किसने वृक्ष गिरा दिये ? वहाँ जो गोपबालक खेल रहे थे, उन्होंने कहा कि इसी कान्हाने ओखलीके बीचसे जोर लगाया, जिससे ये वृक्ष गिर पड़े। इन वृक्षोंके नीचेसे दो दिव्य पुरुष भी निकले थे। बालकोंके मुखसे यह बात सुनकर लोग सन्देह करने लगे कि क्या ऐसा सम्भव हो सकता है ? नन्दने अपने पुत्रको देखा कि रस्सीसे बँधा ऊखल घसीटता हुआ आ रहा है। यह देखकर नन्दजीने हँसते हुए कृष्णको ओखलीके बन्धनसे छुड़ा दिया। इसी प्रकार कृष्णजी बाललीलाएँ करने लगे। अपनी यथार्थ महिमा जाननेवालोंको यह दिखानेके लिए कि मैं अपने भक्तोंके वशमें हूँ—श्रीकृष्णचन्द्रजी अनेक प्रकारकी बाललीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे। हे महाराज ! एक दिन एक फल बेचनेवाली नन्दके द्वारपर आकर कहने लगी कि फल ले लो, फल। यह आवाज सुनकर सब फल देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान हाथोंमें अन्न लेकर फल लेनेके लिए उसके पास गये। राहमें हरिके हाथोंसे अन्न गिरता गया। उस फल बेचनेवालीने भगवानके दोनों हाथ फलोंसे पूर्ण कर दिये और उसके बदलेमें उसी समय उसकी टोकरी रत्नोंसे पूर्ण हो गयी। यमलार्जुन उखाड़नेके बाद एक दिन कृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे खेल रहे थे। उसी समय रोहिणीजी उनको घर आनेके लिए पुकारने लगीं। किन्तु खेलनेमें तत्पर दोनों पुत्र जब उनका पुकारना सुनकर भी न आये, तब पुत्रवत्सला रोहिणीने यशोदाको उन्हें लानेके लिए भेजा। यशोदाजी स्वयं उन्हें बुलानेके लिए चलीं। पुत्रस्नेहसे उनके स्तनोंमें दूध भर आया। दूरसे यशोदाजी

पुकारने लगीं—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! कमलनयन पुत्र ! आओ, दूध पियो । बहुत खेल चुके । अब भूख लगी होगी । खेलते-खेलते थक गये हो । हे बलदाऊ ! अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शीघ्र आओ । व्रजपति नन्दजी भोजनके लिए बैठे तुम्हारे आनेकी राह देख रहे हैं । तुम्हारे अंगोंमें धूलि भर गयी है । आओ, स्नान करो । आज तुम्हारे जन्मनक्षत्रका दिन है । स्नान आदिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो । इसके बाद यशोदाजी कृष्णका हाथ पकड़कर बलदाऊके साथ घर ले गयीं । हे राजन् ! व्रजमें नित्य नये-नये उत्पात होते देखकर नन्द आदि बूढ़े गोप लोग एकत्र हुए और विचार करने लगे कि गोकुलके हितके लिए अब क्या करना चाहिये । फिर वृद्ध गोप उपनन्दने कहा कि यदि गोकुलका हित करना है तो हम लोगोंको यहाँसे हट जाना चाहिये । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वृन्दावन नामक पवित्र वन है । वह हरे तृणोंसे पूर्ण है । वहाँ हमारे पशु सुख-पूर्वक चरेंगे । वहाँ जाकर आश्रय लेना ही ठीक होगा । यह सुनकर सब गोप एकमत होकर उपनन्दकी प्रशंसा करते हुए गोकुल छोड़कर वृन्दावन चले गये । हे राजन् ! बलदाऊ और कृष्ण दोनों भाई वृन्दावन और यमुनानदीका रमणीय तट देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए । वे लोग व्रजभूमिके निकट ही ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते हुए भाँति-भाँतिके खेल खेलने लगे । एक दिन कृष्ण और बलदेवजी अपनी अवस्थाके बालकोंके साथ यमुनाके किनारे बछड़े चरा रहे थे । उसी समय उनको मारनेके विचारसे एक दैत्य आया । वह बछड़ेके रूपसे बछड़ोंके झुण्डमें आकर मिल

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

गया। भगवानने बलदेवको उसे इशारेसे दिखा दिया और फिर अनजानकी भाँति वे धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। पीछेसे जाकर भगवानने पूँछके सहित उसके दोनों पिछले पैर पकड़ लिये और कई बार अकाशमें घुमाकर एक कैथेके वृक्षपर दे मारा, जिससे उसके प्राण निकल गये। हे राजन्! वह वत्सासुर था।

चले बछरू चरावन ग्वाल।
वृन्दावन सब छाड़ि कै लै गये जहँ घनताल॥

× × ×

तहाँ छलकरि दनुज धायो धरे बछरा भेषि।
फिरत ढूँढ़त-श्याम को अति प्रबल बल को देखि॥
सबै बछुरनि घेरि ल्याए बहुनि घेर्यो जाइ।
दाऊ कहि बालकनि हेर्यो वृषभ सुतन धराइ॥
कह्यो मन इहि अबहिं मारौं उठे बलहिं सँभारि।
टेरि लिये सब ग्वाल बालक गये आपु प्रचारि॥
आगे ह्वै इतको बिडार्यो पूँछ हाथ लगाइ।
पकरिकै भुजसों फिरायौ तालके तर आइ॥
असुर लै तरुसों पछार्यौ गिर्यौ तरु झहराइ।
तालसों तरु ताल लाग्यौ उठ्यौ बन घहराइ॥

उसके भारी शरीरके आघातसे कई कैथेके वृक्ष टूटकर गिर पड़े और वह भी गिर पड़ा। यह देखकर सभी ग्वालबाल विस्मित हो वाह-वाह-वाहकर कृष्णकी प्रशंसा करने लगे और देवता लोग प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। हे राजन्! एक दिन सब ग्वालबाल जलाशयके निकट जाकर अपने-अपने बछड़ोंको जल पिलाने लगे। उसी समय उन्होंने देखा कि वहाँपर एक बहुत बड़ा

जीव बैठा हुआ है। वह जीव बकासुरनामक असुर था, जो बगुलेका रूप धरकर आया था। उस तीक्ष्ण चोंचवाले असुरने सहसा आकर कृष्णचन्द्रको निगल लिया। हे राजन्! यह देखकर बलदेव आदि ग्वालबाल प्राणहीन इन्द्रियोंके समान अचेत हो गये। बकासुरके कण्ठमें जाकर कृष्णचन्द्रजी अग्निके समान होकर उसके तालूको जलाने लगे। तब घबड़ाकर असुरने बालकको उगल दिया और कृष्णको अक्षत शरीर देखकर चोंच उठाकर मारने दौड़ा। तब कृष्णने उसके चोंचको दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और देवताओंको प्रसन्न करते हुए सब बालकोंके सामने ही लीलापूर्वक तृणके समान बीचसे फाड़ डाला। यह देखकर देवता लोग परम आनन्दित हुए।

द्वादश अध्याय

अघासुरवध

शुकदेवजीने कहा—महाराज! एक दिन सब ग्वालबाल सुखपूर्वक वनमें विहार कर रहे थे। उसी समय 'अघ' नामक एक भयंकर असुर वहाँ आ उपस्थित हुआ। उन बालकोंका आनन्दपूर्वक खेलना उसको असह्य हो गया। वह बड़ा ही दुर्दान्त था। देवतालोग यद्यपि अमृत पीकर अमर हो गये थे तथापि अघासुरकी ओरसे अपने प्राणोंका खटका उनको बना ही रहता था और वे अघासुरके बिनाशकी प्रतीक्षा किया करते थे। वह अघासुर पूतना तथा बकासुरका छोटा भाई था। कंसने उसे भेजा था। वह दुष्ट दानव बालकोंको निगल लेनेकी इच्छासे अद्भुत अजगरके

रूपसे राहमें लेट गया। उसको देखकर बालकोंको भ्रम हुआ कि यह भी कोई वृन्दावनकी शोभा है। वे हँसी करते हुए उस यथार्थ अजगरके मुखको अजगरके मुखके साथ तुलना करके परस्पर तर्क-वितर्क करने लगे। इसके बाद वे लोग पीछे आते हुए कृष्णचन्द्रके मुखकी ओर देखकर हँसते हुए उस अजगरके मुखमें घुस गये। अघासुर पूर्ववत् मुख खोले पड़ा रहा। वह अपने भाई और बहिनका वध करनेवाले बैरी कृष्णको निगलना चाहता था। वह उनकी ही प्रतीक्षामें था। तदनन्तर कर्तव्य स्थिर करके सर्वज्ञ कृष्णचन्द्र आप भी उस सर्पके मुखमें जा घुसे। हे राजन्! बालकोंकी ओरसे यह दृश्य देखते हुए देवता लोग भयसे हाहाकार करने लगे और मायारूपधारी राक्षसगण जो अघासुर और कंसके मित्र थे, यह देखकर वे बहुत आनन्दित हुए। देवता लोगोंका आर्तनाद सुनकर भगवान् कृष्ण उस असुरके गलेमें अपना शरीर बढ़ाने लगे। तब असुरका कंठ रुँध गया। साँसका आना-जाना बन्द हो गया। उसके नेत्र बाहर निकल पड़े और वह व्याकुल होकर छटपटाने लगा। शीघ्र ही शरीरके भीतर रुका हुआ उसका प्राणवायु उसका ब्रह्माण्ड फोड़कर बाहर निकल गया। उस दुष्टके मर जानेपर कृष्णचन्द्रने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे मरे हुए बछड़ों और बालकोंको फिर जीवित कर दिया। इसके बाद उनको साथ लिये अघासुरके मुखसे वे बाहर निकल पड़े। उस समय देवगण स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वगण गाने लगे और विद्याधर लोग बाजे बजाने लगे। हे राजन्! अघासुरने जो अजगररूप धारण किया था, उसके उस शरीरका

चमड़ा वृन्दावनमें पड़ा-पड़ा सूख गया। वह बिल-सा बना रहा। बहुत दिनोंतक ग्वाल-बाल उस बिलरूपी शरीरमें घुसकर खेला करते थे।

त्रयोदश अध्याय

ब्रह्माका मोह और उसका नाश

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! पूर्वोक्त प्रकारसे मृत्युरूपी अघासुरके मुखसे बछड़ों और बालकोंकी रक्षा करके कृष्ण उनको यमुनाके किनारे ले आये। तदनन्तर उन्होंने उनसे कहा—साथियों! यह यमुनातट बहुत ही रमणीक है। यहाँ हमारे खेलनेकी बहुत सामग्री है। अनेक पक्षी यहाँ आते हैं और मधुर शब्द करते हैं। आओ, हम सब बैठकर यहीं भोजन करें। दिन बहुत चढ़ गया है। हम लोगोंको भूख भी खूब लगी है। बछड़ोंको छोड़ दो। वे पास ही पानी पीकर धीरे-धीरे घास चरें। यह सुनकर ग्वालबालोंने बछड़ोंको छोड़ दिया और सब लोग भगवानके साथ भोजन करने लगे। सभी बालक अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न रुचि दिखाते हुए हँसते-हँसते भोजन कर रहे थे कि इसी अवसरपर सब बछड़े हरे-हरे तृणके लोभसे दूर तक चले गये और वनके भीतर धीरे-धीरे घुस पड़े। बछड़ोंके दूर चले जानेपर बालकोंको भय हुआ। तब कृष्णजीने कहा—तुम लोग भोजन करो, मैं बछड़ोंको लौटा लाता हूँ। यह कहकर हाथमें भोजनका कौर लिये ही कृष्णचन्द्र अपने बछड़ोंकी खोजमें पर्वत-कन्दरा, कुञ्ज और अन्यान्य अगम्य स्थानोंमें भ्रमण करने लगे। हे राजन्!

ब्रह्मा पहलेसे ही आकाशमें खड़े-खड़े अघासुर मोक्षसे लेकर अब तककी सभी लीलाएँ देखकर बहुत ही विस्मित थे। इस समय मोहवश मायाबालकरूपधारी हरिकी महिमा देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजी पहले तो बछड़ोंको हर ले गये और फिर हरिके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी उठा ले गये और उनको अपने लोकमें अचेत अवस्थामें रख आये ।

अति रमणीक कदंब छाँह रुचि परम सुहाई ।
राजत मोहन मध्य अवलि बालक छबि पाई ॥
प्रेम मगन ह्वै परस्पर भोजन करत गुपाल ।
ल्यावहु गोसुत घेरि कै प्रभु पठए द्वै ग्वाल ॥
वन उपवन सब ढूँढ़ि सखा हरि पै फिरि आये ।
बछरा भए अदृष्ट कहूँ खोजत नहिं पाए ॥
सबै सखा बैठे रहौ मैं देखौं धौं जाइ ।
बच्छ हरन जिय जानि प्रभु आपु गए बहिराइ ॥
जब गोविंद गए दूरि बालकन हर्‍यौ विधाता ।
ले हैं तुरत मँगाइ आपु ह्वैहैं जगत्राता ॥
ब्रह्मलोक ब्रह्मा गयो बालक बच्छा संग ।
प्रभुको लीला को गम नहीं कियो गर्व अति अंग ॥

इधर कृष्णचन्द्रने बछड़ोंका पता न लगनेपर उसी पुलिनपर फिर लौटकर देखा कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। सर्वज्ञ हरि तुरन्त ही समझ गये कि यह काम ब्रह्माका ही है। तब उन ग्वाल-बालों और बछड़ोंकी माताओंको सन्तुष्ट रखने और ब्रह्माको छकानेके लिए विश्वकी रचना करनेवाले ईश्वर आप ही उतने बछड़े और ग्वालबाल बन गये। जिस बछड़े और जिस बालकका

जैसा रूप था, जैसा पहनावा था भगवानने उसके लिए वैसा ही रूप धारण किया और इस भाँति आप ही सर्वरूप होकर व्रजमें प्रवेश किया। सब बालक अपने-अपने घर गये और बछड़े भी अपने-अपने स्थानोंमें बाँधे गये। इस प्रकार वत्सपाल श्रीकृष्णचंद्र स्वयं वत्स और वत्सपालरूप होकर आप ही अपना पालन करते हुए वनमें और गोष्ठमें क्रीड़ा करने लगे। हे राजन्! एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच या छः दिन शेष थे। इसी समय एकदिन श्रीकृष्णचंद्रजी बलदाऊके साथ बछड़े चरानेके लिए वनको गये। उस समय बहुत दूर गोवर्धन पर्वतके शिखरपर सब गायें चर रही थीं। उन गायोंने वहाँसे देखा कि व्रजके निकट ही उनके बछड़े चर रहे हैं। बछड़ोंको देखते ही गायें मोहसे विह्वल हो गयीं और हुंकार भरती हुई दौड़ पड़ीं। चरानेवाले गोपोंने रोकनेकी बहुत चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुआ। यद्यपि उनके और छोटे बच्चे भी थे, तो भी वे दौड़कर अपने बड़े बछड़ोंके पास आयीं और स्नेहसे उनके अंग चाटती हुई गोवर्धनके नीचे आकर दूध पिलाने लगीं। गोपोंने भी अपने-अपने बालकोंको गोदमें उठा लिया और उनके मस्तक सूँघकर बहुत ही प्रसन्न हुए। वे बड़े-बड़े गोप पुत्रोंको गलेसे लगाकर अपना स्नेह दिखाने लगे। बलदेवने देखा कि जिन्होंने दूध पीना छोड़ दिया है, उन सन्तानोंपर गायों और गोपोंका इतना अधिक अनुराग है। यह देखकर वे विचारने लगे कि यह कैसा आश्चर्यपूर्ण व्यवहार है। पहले कृष्णचंद्रपर व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व स्नेह बढ़ता जाता था, वैसा ही अब अपने-अपने पुत्रोंपर क्यों बढ़ रहा है ? इस

प्रकार विचारकर बलदेवने अपने ज्ञाननेत्र खोलकर देखा तो जान गये कि सभी बछड़े और उनकी रक्षा करनेवाले बालक कृष्णरूप हैं। तब बलदेवने कृष्णचंद्रसे कहा कि भाई कृष्ण ! कृपाकर बताओ कि तुमने इतने भिन्न-भिन्न रूप क्यों धारण किये ? इस प्रकार पूछनेपर भगवानने संक्षेपमें ब्रह्माजीका सब वृत्तान्त बता दिया। हे राजन् ! इसी प्रकार उन मायारचित वत्सों और वत्सपालोंके साथ कृष्णचंद्रको क्रीड़ा करते करते एक वर्ष बीत गया। किन्तु वह समय ब्रह्माकी आयुकी एक त्रुटि मात्र था। ब्रह्माने एक त्रुटि बीतनेपर फिर आकर देखा कि कृष्णभगवान पहलेकी भाँति अपने साथी ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए बछड़े चरा रहे हैं। यह देखकर ब्रह्मा बहुत ही चकराये। वे अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगे कि जितने गोकुलके बालक और बछड़े हैं, उन सबको मैं मायाकी निद्रामें अचेत कर आया हूँ। तब उनके अतिरिक्त ये सब बालक और बछड़े कहाँके हैं। बार बार तर्क-वितर्क करके भी ब्रह्माजी ठीक-ठीक नहीं जान सके कि वास्तवमें कौन बालक और बछड़े मिथ्या हैं और कौन यथार्थ हैं। इस प्रकार विश्वम्भरको मोहित करनेवाले मोहशून्य विष्णुको मोहित करनेके लिए आये हुए ब्रह्माजी अपनी मायामें आप ही मोहित हो गये। हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्माजी चकराये हुए थे कि उनको एक और भी अद्भुत घटना भी दिखाई पड़ी। ब्रह्माने देखा कि उनके देखते-देखते सब बछड़े और उनके रक्षक ग्वालबाल कृष्णरूप हो गये। सभीका रंग जलसे पूर्ण मेघके तुल्य श्याम हो गया। सभी पीताम्बर पहने चतुर्भुज, शंख चक्र गदा और कमल भुजाओंमें लिये किरीट कुंडल

वनमाला आदि आभूषणोंसे आभूषित हैं। सबके अंगोंमें श्रीवत्स, अङ्गद, नवरत्न, कङ्कण, नूपुर, कटक, करधनी, अंगूठी आदि गहने शोभायमान हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणतक सब चराचर जगत्‌के जीव मूर्तिमान होकर नृत्य-गीत आदिसे सबकी अलग-अलग उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार देखकर विस्मयमें मग्न होनेके कारण ब्रह्माजीको अपने शरीरकी सुधि नहीं रही और वे पृथ्वीपर लुढ़क गये। उन सब ब्रह्ममूर्तियोंके तेजसे ब्रह्माकी ग्यारहों इंद्रियाँ निस्तब्ध हो गयीं और वे विस्मयसे अवाक् हो गये। फिर ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे उतर पड़े और पृथ्वीपर कनकदण्डके समान गिरकर चारों मुकुटोंके अग्रभागसे ईश्वरके चरणोंको सुशोभित करते हुए प्रमाण करके आनन्दके आसुओंसे प्रभुके पैरोंको धोने लगे। फिर धीरे-धीरे उठकर खड़े हुए और भक्तिपूर्वक कृष्णचंद्रकी ओर निहारकर सिर झुकाये विनीतभावसे स्तुति करने लगे।

बिनवैं चतुरानन कहि भोरैं।
तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू कर अस्तुति कर जोरैं॥
अपराधी मतिहीन नाथ हौं चूक परी निज धोरैं।
हम कृत दोषु छमौ करुणामय ज्यौं भूपर सत ओरैं॥
युगयुग बिरध इहै चलि आयो सत्य कहतु अब होरैं।
सूरदास प्रभु पछिले लेखें अब न बनै मुख मोरैं॥

चतुर्दश अध्याय

ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति

ब्रह्माजीने कहा—हे गोपनन्दन! आपके चरण बड़े ही सुक-

मार हैं। आपने यह शरीर भक्तोंकी अभिलाषा और भावनाके अनुसार ग्रहण किया है। यद्यपि सुलभ होनेके लिए आपने यह शरीर प्रकट किया है, किन्तु यह पञ्चतत्त्वमय नहीं, वरन् अचिन्त्य और शुद्ध सत्त्वमय है। अतएव वश किये हुए मनके द्वारा भी कोई इसका माहात्म्य नहीं जान सकता। जब इस सगुणरूपकी महिमा मन और बुद्धिसे परे है, तब आपके साक्षात् आत्म-सुखानुभव स्वरूपकी महिमा कौन जान सकता है? हे भगवन्! केवल भक्तिसे ही प्राणी आपको जान सकता है। जो लोग कल्याणकारिणी आपकी भक्ति छोड़कर केवल ज्ञानके लिए क्लेश सहते हैं, उनके हाथ वह क्लेश ही लगता है और कुछ नहीं। हे सर्वव्यापक! क्या सगुण और क्या निर्गुण, दोनों रूपोंसे आपको जानना बहुत कठिन है। हे राजन्! इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने कहा—हे भगवन्! क्षमा कीजिये। मिथ्या गर्वसे मेरे नेत्र अंधे हो रहे थे। मुझे अपना किंकर जानकर क्षमा और अनुग्रह कीजिये। हे कृष्ण! लोग जबतक पूर्णरूपसे आपके जन नहीं होते, तभीतक उनको राग आदिका खटका रहता है और घर कारागार बना रहता है। हे कृष्ण! अनुग्रहपूर्वक मेरा अपराध क्षमाकीजिये। इस प्रकार सब जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी भगवान्की स्तुति और तीन बार प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करके अपने लोकको चले गये। तदनन्तर भगवान कृष्णचंद्रजी आत्मयोनि ब्रह्माको अनुमति देकर बछड़ोंको यमुनातटपर ले आये। भगवानके साथी बालक भी पहलेसे ही वहाँ ब्रह्माके द्वारा पहुँचा दिये गये थे। उनसे आकर भगवान मिले। यद्यपि प्राणेश्वर कृष्णके वियोगमें एक वर्षका समय बीत

गया था, तथापि उन बालकोंको कृष्णकी मायासे मोहित रहनेके कारण उतना समय आधे क्षणके समान जान पड़ा। तदनन्तर बालकोंने व्रजमें आकर कहा—आज कृष्णने एक महासर्पको मारकर हमारे प्राणोंकी रक्षा की है।

पञ्चदश अध्याय

धेनुकासुरवध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्रजीकी अवस्था पाँचवें वर्षके बाद छठें वर्षमें पहुँची तो वे लोग पशुपाल बननेके योग्य हो गये। एक दिन कृष्णने वंशी बजाते-बजाते ग्वालबालों, बछड़ों और बलरामके साथ वृन्दावनमें प्रवेश किया। इस प्रकार भगवान बड़े भाईके साथ हास्य-विनोद करते हुए पशुओंको चराने लगे। एक दिन भगवान वनमें खेल रहे थे कि उसी समय उनके सखा गोपाल श्रीदामा और सुबल-स्तोक आदि अन्यान्य बालकगण भगवानके निकट आकर प्रेमपूर्वक कहने लगे—हे महाबाहो बलभद्रजी! हे दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रजी! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा तालवन है। वहाँ बहुत ही स्वादिष्ट अनेक तालफल गिरते हैं और बहुतसे तो टूटकर गिरे पड़े हैं। किन्तु दुष्ट धेनुकासुरके भयके कारण उनको कोई नहीं पा सकता। वह गर्दभरूपी असुर स्वयं बड़ा पराक्रमी है। उसके साथ और भी गर्दभरूप असुर रहते हैं। वहाँ जो भी जाता है, उसे वे खा जाते हैं। हमने उन सुगन्धित फलोंको आजतक नहीं खाया। देखो, चारों ओर उन्हींकी महक फैली हुई है। हमारे मनको उसने लुभा लिया है।

हम उन फलोंको खाना चाहते हैं। मित्रोंकी प्रार्थना सुनकर कृष्णचन्द्र और बलदेवजी ग्वाल-बालोंके साथ उस तालवनकी ओर चले। बलदेवजीने वनमें घुसकर हाथीके समान बड़े ही वेगसे तालके वृक्षोंको हिलाया जिससे असंख्य पके हुए फल पृथ्वीपर टपक पड़े। फलोंके गिरनेका शब्द सुनकर वह असुर गधेका रूप धारण करके पर्वतोंके साथ पृथ्वीको हिलाता हुआ प्रभुकी ओर जोरसे दौड़ा। वह बली असुर झपटकर बलदेवके पास आया। उस दुष्टने पिछले दोनों पैरसे बलदेवकी छातीपर मारा और ऊँचे स्वरसे गर्दभनाद करके हट गया। फिर उस गधेने कुपित हो सामने आकर बलदेवपर पिछली दुलत्ती चलायी। इस बार बलभद्रने एक हाथसे उसके दोनों पैरोंके मोजे पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमाकर एक बड़े भारी तालवृक्षपर दे मारा। गर्दभका शरीर गिर पड़ा। उसके टक्करसे कई वृक्ष टूट गये। असुरको मरा देखकर बलदेवने उसे एक तरफ फेंक दिया। बलरामका यह अद्भुत कर्म देखकर देवता लोग बाजे बजाने, फूल बरसाने और स्तुति करने लगे। तबसे वह तालवन निर्भय स्थान हो गया। लोग बेखटके वहाँ जाकर तालके फल खाने लगे और पशुगण घास चरने लगे। हे राजन्! वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र एक दिन बलरामको साथ लिये बिना ही ग्वालबालोंके साथ गाय चरानेके लिए कालिन्दीके तटपर चले गये। वहाँ धूपकी तपनसे गायों और गोपोंको बहुत प्यास लगी। निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होंने नागके विषसे दूषित कालीदहका जल पी लिया। उस विषयुक्त जलका स्पर्श होते ही गायोंके साथ सभी गोप मरकर किनारे ही

गिर पड़े और योगेश्वर कृष्णने अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उनको उसी समय जिला दिया।

षोडश अध्याय

कालीयदमन

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! भगवानने काले सर्पके विषसे दूषित यमुनाजलको शुद्ध कर देनेका विचार किया और नागको वहाँसे निकाल दिया। यह सुनकर महाराज परीक्षितने पूछा—हे भगवन्! उस अगाध जलके भीतर भगवानने कैसे सर्पके दर्पका दमन किया, इसका वृत्तान्त मुझे सुनाइये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कालिन्दीके भीतर एक भारी कुण्ड था। उसीमें वह कालिया नाग रहता था। विषकी अधिकता और प्रचण्डतासे कुण्डका जल खौल-खौलकर ऊपर उछलता रहता था, जिससे उसके ऊपरसे आकाशमें चलनेवाले पक्षी भी मरकर गिर पड़ते थे। विषाक्त जलकण मिले हुए वायुके स्पर्शसे ही नदीके किनारे जानेपर सभी चर और अचर जीव मर जाते थे। भगवान किनारेके एक ऊँचे कदम्बवृक्षपर चढ़ गये और ताल ठोंककर उस विषाक्त जलमें कूद पड़े। उनके कूदनेके वेगसे कुण्डके जलमें अद्भुत हलचल मच गयी। महागजके समान विक्रमशाली कृष्णचन्द्र उसी कुण्डके जलमें क्रीड़ा करने लगे। तब क्रोधान्ध सर्पने कृष्णका शरीर अपने शरीरसे लपेटकर जकड़ लिया और मर्मस्थलोंमें काटने लगा।

उरग लियो हरिको लपटाई।
गर्व वचन कहि कहि मुख भाषत मोको नहिं जानत अहिराई॥

लियो लपेटि चरण ते शिख लौं अति यहि मोसों करी ढिठाई ।
चाँपी पूँछ लुकावत अपनी युवतिनको नहिं सकत दिखाई ।।
प्रभु अन्तर्यामी सब जानत अब डारों यह सकुच मिटाई ।
सूरदास प्रभु तनु विस्तार्‍यौ काली विकल भयो तब जाई ।।

गोपगण तो बहुत ही दुःखित हुए । वे लोग घबड़ाकर कातर हो पड़े और दुःख पश्चात्ताप तथा भयसे संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी-तलपर गिर पड़े । भगवानने देखा कि सब व्रजवासी अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं । तब क्षणभर सर्पके बन्धनमें रहकर तत्क्षण उससे अलग हो गये । भगवानने अपना शरीर इतना बढ़ा दिया कि सर्प व्याकुल हो उठा और उन्हें अपने बन्धनमें न रख सका । तब उसने कृष्णको छोड़ दिया और अत्यन्त क्रोधसे अपने सब भयंकर फण उठाकर फुफकारें छोड़ता हुआ चोट करनेकी इच्छासे श्रीहरिकी ओर निहारने लगा । उस समय साँसके साथ उसकी नाकसे विष निकल रहा था । इधर कृष्ण भी गरुड़के समान निर्भयभावसे उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे । उधर सर्प भी चोट करनेका अवसर देखता हुआ साथ-साथ घूमने लगा । इस प्रकार चक्कर लगानेसे सर्पकी शक्ति क्षीण हो गयी और शिथिल हो जानेके कारण कन्धे ऊँचे हो गये । तब कृष्णचन्द्र उसका फण-मण्डल नवा तथा उचककर ऊपर चढ़ गये और नृत्य करने लगे । हे राजन् ! भगवानको सर्पके सिरपर नृत्य करते देखकर गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और अप्सराओंके झुण्ड प्रसन्नतापूर्वक मृदङ्ग पणव आनक आदि बाजे बजाकर गाने लगे और फूलोंकी वर्षा करते हुए सहसा श्रीहरिके निकट आ उपस्थित हुए । कालिय-

नागके एक सौ सिर थे। वह जिस सिरको उठाता था, उसीको दुष्टदमनकारी कृष्णचन्द्र अपने चरणोंकी चोटसे दबाकर नीचा कर देते थे। जिससे उस नागकी शक्ति और आयु क्षीण हो गयी। उसको चक्कर आने लगा। मुखों और नासिकाओंसे घोर विषके साथ रुधिर बहने लगा और वह एकदम अचेत हो गया। तदनन्तर वह नाग मनमें चराचरके गुरु पुराणपुरुष नारायणका स्मरण करता हुआ उनके शरणागत हुआ। नागको दुर्दशामें देखकर उसकी स्त्री नागिनियाँ उन आदिपुरुषके निकट आयीं। उन लोगोंने अपने बालकोंको आगे करके चरणोंमें गिरकर जगदीश्वरको प्रणाम किया और अपने अपराधी पतिको छुड़ानेके लिए हरिका आश्रय लिया। वे सब मिलकर भगवानकी स्तुति करने लगीं। उन लोगोंने कहा—हे शान्तरूप ! यह नाग मूढ़ है। आपके रूपको नहीं जानता। इसको क्षमा करना ही योग्य है। हम इसकी स्त्रियाँ हैं। इसके मरनेसे हमारी अत्यन्त दुर्दशा होगी। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! नागनारियोंकी स्तुति सुनकर भगवानने सर्पको छोड़ दिया। तब कालियानागको कुछ-कुछ चेत हुआ। प्राणलाभके बाद अतिकष्टसे साँस लेता हुआ वह नाग हाथ जोड़कर श्रीहरिसे इस प्रकार कातर वचन कहने लगा—हे नाथ ! जन्मसे ही हमारा स्वभाव दुष्ट होता है, क्योंकि हम तमोगुणी होनेके कारण बड़े ही क्रोधी होते हैं। कोई अपने स्वभावको सहजमें कदापि नहीं छोड़ सकता। तब हम आपकी दुस्त्यज मायाको कैसे छोड़ सकते हैं ! आप ही चाहें तो अपनी मायासे मुक्त कर सकते हैं। अनुग्रह अथवा दण्ड, इनमें जो हमारे लिए भला समझिये वही कीजिये। शुक-

देवजीने कहा—हे राजन् ! भगवान यह सुनकर कहने लगे—ओ सर्प ! अब तू यहाँ नहीं रहने पावेगा। अपने परिवार पुत्र और स्त्रियोंके साथ लेकर तू सागरको चला जा। अब विलम्ब न कर। तेरे यहाँ रहनेसे गऊ-ब्राह्मण आदि नदीका जल पीने नहीं आ सकते। मेरी इस नागदमनलीलाको सबेरे और सन्ध्याके समय जो स्मरण या कीर्तन करेगा, उसको तुम्हारी जातिसे भय नहीं होगा। तू इस दहको छोड़कर रमणकद्वीपको चला जा। मेरा वाहन गरुड़ अब तेरा कुछ अनिष्ट न कर सकेगा। अब तेरे माथेपर मेरे चरणोंके चिह्न बन गये हैं। इसलिए गरुड़से तुझको कोई भय नहीं है। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्णने यह कहकर उसे छोड़ दिया। तब नाग और नागिनियोंने विविध उपकरणोंसे उनका पूजन किया। कालियाने गरुड़ध्वज जगन्नाथको पूजापूर्वक प्रसन्न किया और अन्तमें आज्ञा लेकर आनन्दसे प्रदक्षिणा और प्रणाम किया। तदनन्तर वह स्त्री-पुत्र और बन्धुवर्गको लेकर समुद्रके मध्यमें बने हुए रमणकद्वीपको चला गया। तबसे कालिन्दीका जल विषविहीन होकर अमृत तुल्य स्वादिष्ट हो गया।

सप्तदश अध्याय

दावानलसे व्रजवासियोंको बचाना

महाराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! कालिया नागने नागोंके रहनेका स्थान रमणकद्वीपको क्यों छोड़ दिया था ? इसका वृत्तान्त मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज !

पहले गरुड़के द्वारा अपना संहार होते देखकर सर्पोंने निश्चय किया था कि बारी-बारीसे प्रति महीने एक-एक घरसे एक सर्प गरुड़के लिए किसी वृक्षके पास निर्दिष्ट स्थानपर रख दिया जाय। उसीके अनुसार अपने-अपने परिवारकी रक्षाके लिए सब नाग पर्व-पर्वपर अपने हिस्सेका एक-एक भाग देने लगे। किन्तु विषवीर्यके घमण्डसे चूर कालिया नागने गरुड़को अपनेसे हीन समझकर अपना हिस्सा नहीं दिया। इतना ही नहीं, वरन् औरोंकी दी हुई बलि भी आप हीं खा गया। यह सुनकर भगवानके प्रिय पार्षद गरुड़को महाक्रोध हुआ और वे कालियाको मारनेके लिए उद्यत हुए। गरुड़को महावेगसे अपनी ओर आते देखकर वह उनके सामने गया और जीभ तथा दाँतसे उनको काटने लगा। तब भीषण विक्रमशाली गरुड़ने स्वर्णसदृश प्रभावाले वामपक्षसे सर्पको आहत किया। गरुड़के पंखकी चोटसे कालिया अत्यन्त विह्वल होकर कालिन्दीके दहमें भागकर चला आया। उस दहमें गरुड़ नहीं जा सकते थे। इसका कारण है कि एक समय गरुड़जीने वहाँ जाकर सौभरिऋषिके रोकनेपर भी भूख लगनेके कारण एक भारी मछलीको खा लिया था। उसके मरनेसे अन्य छोटी मछलियोंको व्याकुल देखकर मुनिको दया आयी। तब उन्होंने वहाँके जीवोंके कल्याणके लिए उस स्थानको निर्भय बनाते हुए क्रोधसे कहा—आजसे यहाँ प्रवेश करके यदि गरुड़ किसी मछली या जीवको खायगा तो उसी समय उसके प्राण निकल जायँगे। हे राजन्! कालियानाग इसी भयसे वहाँ जाकर रहा और इस समय कृष्णचन्द्रने उसको वहाँसे निकाल दिया। इधर श्रीकृष्ण-

चन्द्रजी दिव्य माला, गन्ध, दिव्य वस्त्र, महामणि और सुवर्णके आभूषणोंसे आभूषित होकर उस कुण्डसे बाहर निकले। उनको देखकर गोपगण परम आनन्दित हुए। सबने लपक-लपककर उनको गलेसे लगाया। यशोदा, रोहिणी, नन्द आदि सभी परम प्रसन्न हुए। सभी भूख-प्यास और थकावटसे शिथिल हो रहे थे। इसलिए उस रातको वहीं कालिन्दीके किनारे गाँवोंमें सब साथ रहे। सहसा आधी रातको रेंड़के वनसे आप-ही-आप दावानल प्रकट हुआ। चारों ओरसे व्रजवासियोंको घेरती हुई वह आग बढ़ने लगी। व्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े हुए और श्रीकृष्णके शरणागत हुए।

व्रजके लोग उठे अकुलाइ।
ज्वाला देखि अकास बराबरि दसहुँ दिसा कहुँ पारु न पाइ॥
झरहरात बनपात गिरत तरु धरणी तरकि तड़ाकि सुनाइ।
जल बरषत गिरिवर तर बाँचे अब कैसे गिरि होत सहाइ॥
लटकि जात जरि जरि द्रुम बेली चटकत बाँस कास कुस ताल।
उचटत फर अंगार गगन लौं सूर निरखि व्रजजन बेहाल॥

अपने जनोंको व्याकुल होते देखकर अनन्त शक्तिशाली कृष्णचन्द्र उस तीव्र अग्निको पी गये।

अष्टादश अध्याय

प्रलम्बासुरवध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! एक दिन भगवान कृष्णने बलदेव और गोपगणको साथ लेकर पशु चरानेके लिए वृन्दावनमें प्रवेश

किया। वनमें पहुँचकर कृष्णचन्द्र और गोपगण अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगे। अनेक लौकिक तथा प्राचीन खेल खेलते हुए श्रीकृष्णचन्द्र साथियों सहित वनके बीच नदी, पर्वत, कन्दरा, कुंज सरोवर और बागोंमें विचर रहे थे। उसी समय प्रलम्ब नामक असुर कृष्ण-बलरामको हर ले जानेके लिए गोपरूपसे वनमें आया। सबके अन्तर्यामी हरि सब जान गये। उन्होंने उसको मारनेके विचारसे अपने दलमें प्रसन्नतापूर्वक मिल जाने दिया। तब खेलनेमें निपुण कृष्णने सबको पास बुलाकर कहा—मित्रो! आओ, हम सब अवस्था और बलके अनुसार दो दल बनाकर परस्पर क्रीड़ा करें। कृष्णका कहना मानकर उन गोपोंमेंसे कुछने बलरामको और कुछने श्रीकृष्णको अपना नायक बनाया। इसमें एक दलवाले दूसरे दलवालोंकी पीठपर चढ़ाकर किसी निर्दिष्ट स्थान तक ले जाते थे। उसमें जीतनेवाले चढ़ते थे और हारनेवाले लादते थे। इस प्रकार खेलते हुए गोपगण कृष्णको आगे किये भाण्डीरक नामक वटके निकट गये। जब बलदेवके दलवाले श्रीदामा आदि गोपगण खेलमें जीत गये, तब श्रीकृष्णके पक्षवाले गोप उनको अपनी पीठपर लादकर निर्दिष्ट स्थानपर ले चले। हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्ब असुरने बलदेवजीको लादा। कृष्णको अपनेसे अधिक और अपनेको बहुत देर तक बलदेवका बोझा सँभालनेमें असमर्थ जानकर वह दैत्य कृष्णकी दृष्टि बचाकर वेगसे बलदेवको ले चला और निर्दिष्ट स्थानसे आगे निकल गया। उस दैत्यका शरीर जलसे भरे मेघके समान काला था और उसके सब अंगोंमें सुवर्णके आभूषण चमक

रहे थे। उस दैत्यने बनावटी मनुष्यरूप छोड़कर जब अपना असली शरीर प्रकट किया, तब उसके इस अद्भुत रूपको देखकर पहले तो बलदेवजी कुछ विस्मित और भयभीत हो गये। किन्तु उसी क्षण बलभद्रने कुपित होकर दृढ़ मुष्टिसे उस दैत्यके सिरपर प्रहार किया। हे महाराज! मुष्टि लगते ही उसका सिर फट गया, मुखसे रुधिर गिरने लगा और स्मृतिशक्ति नष्ट हो गयी। वह मरते समय इन्द्रके वज्र द्वारा आहत पर्वतकी भाँति एक बार भैरव रव करके गिर पड़ा। प्रलम्बासुरके मारे जानेसे गोप लोग बहुत प्रसन्न हुए। हे राजन्! प्रलम्बासुरके मरनेसे देवताओंको परम आनंद हुआ और वे लोग बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए बार-बार उनकी प्रशंसा करने लगे।

ऊनविंश अध्याय

पशुओं और गोपोंकी दावानलसे रक्षा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक दिन सब गोप खेलमें आसक्त हो रहे थे। इसी अवसरपर उनके पशु इच्छानुसार विचरते हुए घासके लोभसे दूर निकलकर अगम्य तृणपूर्ण स्थानको चले गये। अकस्मात् वहाँ निकट ही दावानल प्रकट हुआ। उस दावानलके तापसे तपे और प्यासे पशुगण चीत्कार करते हुए भागे और अन्तको मूँजके वनमें घुस गये। इधर कृष्ण-बलदेव आदि गोपगण पशुओंको न देखकर पछताते हुए उनकी खोज करने लगे। फिर खुरोंके चिह्नोंसे उनके जानेकी राह पहचानते हुए आगे चले। अन्तमें उन्होंने मूँजके वनमें अपने गोधनको देखा।

वहाँपर वे चिल्ला रहे थे। गोपगण पशुओंको पाकर वहाँसे लौटे। तब भगवान कृष्णने नाम ले लेकर उनको बुलाया। इसी अवसरपर वनवासियोंको नष्ट करनेवाला दावानल फिर भड़का और प्रचण्ड-वायुकी सहायतासे अपनी घोर लपटोंसे आस-पासके स्थावर और जंगम जीवोंको भस्म करता हुआ इच्छानुसार फैलने लगा। सब लोग अत्यन्त डर गये और डरकर बलदेव और कृष्णके शरणागत हुए। भगवानने उनसे कहा—तुम लोग डरना नहीं, आँखें बन्द कर लो। उनकी आज्ञाके अनुसार जब सभीने अपनी आँखें बन्द कर लीं, तब योगेश्वर भगवान कृष्णचन्द्रने अग्निको पी लिया। इस प्रकार अग्निको शान्त करके भगवानने अपने जनोंकी रक्षा की। तदनन्तर गोपोंने आँखें खोलकर देखा तो अपनेको भाण्डीरवनके निकट पाया। श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको देखकर गोपोंने जाना कि कृष्ण कोई देवता हैं।

विंश अध्याय

वर्षा और शरदृऋतुमें भगवानकी केलि

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! गोपोंने व्रजमें आकर गोपियोंको बताया कि इस प्रकार कृष्णने दावानलसे सबको बचा लिया और बलदेवने प्रलम्बासुरको मारा। गोपियाँ और वृद्ध गोपगणोंको यह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। वे लोग परस्पर कहने लगे—कृष्ण और बलदेव मनुष्य नहीं हैं, कोई श्रेष्ठ देवता हैं जो लीला करनेके लिए व्रजमें प्रकट हुए हैं। हे महाराज! कुछ दिनोंके बाद वर्षा ऋतुका आविर्भाव हुआ।

पृथ्वी वर्षाका जल पाकर हरी-भरी हो गयी। जिनका चित्त भगवानमें लगा रहता है वे अनेक संकटोंमें भी जैसे व्यथित नहीं होते, वैसे ही पर्वत-समूह वर्षाके बड़ी-बड़ी बूँदोंकी चोट खाकर भी विचलित नहीं हुए। जिस प्रकार कलियुगमें पाखण्डियोंके तर्कोंसे वेद-मार्ग नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। वैसे ही इन्द्रके बरसनेपर जलके वेगसे सेतु टूट गये। वर्षाऋतुमें वन, उपवन और निकुञ्ज नव-सम्पत्तिसे सुशोभित हो उठे और जहाँ-तहाँ खजूर और जामुनके वृक्ष पके हुए फलोंसे लद गये। तब श्रीकृष्णजी बलदेव और गोपालोंको साथ लेकर क्रीड़ा करनेके लिए वृन्दावनमें गये। हरे-भरे तृण पाकर पशु परम सुखी हुए। अपने पशुओंको सुखी और मस्त देखकर भगवान बहुत प्रसन्न हुए। क्रीड़ा-कौतुकमें आसक्त श्रीकृष्ण-बलदेवने व्रजमें विहार करते हुए वर्षा ऋतुको बिता दिया। वर्षा बीतनेपर शरद्‌ऋतुका आविर्भाव हुआ। आकाशमें मेघोंका नाम भी नहीं रहा। जल विमल हो गया। स्वच्छ वायु बहने लगा। राजा-वणिक आदि सभी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने काममें लग गये।

—।-।—

एकविंश अध्याय

गोपीगीत

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! शरद्‌ऋतुके आनेसे वनके जलाशयोंका जल निर्मल हो गया और कमलमय सरोवरोंके संसर्गसे सुगन्धित समीर बहने लगा। ऐसे ही समय गोपों और गायोंको लेकर भगवान विहार करनेके लिए वृन्दावनमें गये।

उस वनमें प्रवेश करके मधुसूदन मधुर वंशी बजाने लगे। कृष्णकी बाँसुरीका शब्द सुनकर गोपियोंके मनपर कामदेवने अपना अधिकार कर लिया। उनमेंसे कुछ गोपियाँ कृष्णके गुणोंका वर्णन करने लगीं। मनोहर मुरलीकी ध्वनि सुनकर सब व्रजबालाएँ अपने प्यारे कृष्णका वर्णन करती हुई अपना मन बहलाने लगीं। इस प्रकार आपसमें वृन्दावनविहारी हरिकी की हुई लीलाओंका वर्णन करते-करते गोपियाँ धीरे-धीरे तन्मय हो गयीं। उनको अपनी कुछ भी सुधि-बुधि नहीं रही।

द्वाविंश अध्याय

चीरहरणलीला

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! अगहनमें नन्दके व्रजमें रहनेवाली गोपकुमारियोंने हविष्यान्न भोजन करके कात्यायनी देवीका व्रत आरम्भ किया। सब कुमारियाँ सबेरे यमुनाजलमें स्नान करके जलके निकट देवीकी बालूकी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, माला, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, धूप-दीप, पान आदि सामग्रीसे पूजन करतीं और हाथ जोड़कर प्रार्थना करती थीं कि—हे कात्यायनी! हे अधीश्वरी! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप नन्दनन्दनको हमारा पति बनायें। हे राजन्! इस प्रकार व्रजकुमारियोंने कृष्णमें चित्त लगाकर कृष्ण ही हमारे पति हों, इस उद्देश्यसे एक महीनेतक व्रत करके भद्रकालीका पूजन किया। वे नित्य प्रातःकाल उठकर एक-एकका नाम ले लेकर जगाती और एक-एकके गलेमें हाथ डाले हुए झुण्ड बाँधकर यमुनामें स्नान करनेके लिए जातीं

तथा मार्गमें ऊँचे स्वरसे कृष्णकी लीलाएँ गाती थीं। एक दिन सब ब्रजबालाएँ यमुनाके किनारे आयीं और अन्य दिनोंको भाँति किनारेपर सब कपड़े उतारकर जलके भीतर स्नान करनेके लिए घुसीं। उन्होंने जलके भीतर कृष्णकी गुणावली गाते हुए भली-भाँति प्रसन्न चित्तसे जल-विहार किया। भगवान कृष्णचन्द्र उनका उद्देश्य जान गये और उन्हें उनका कर्मफल देनेके लिए अपने साथी गोपोंके साथ उसी स्थानपर पहुँचे और उनके सब वस्त्र लेकर पासके ही एक कदम्बपर चढ़ गये।

आपु कदम चढ़ि देखत श्याम।
बसन आभरण सब हरि लीन्हे बिना बसन जल भीतर बाम ॥
मूँदत नयन ध्यान धरि हरिको अन्तर्यामी लीन्हों जान।
बार-बार सविता सो माँगैं हम पावैं पति सुन्दर श्याम ॥
जलते निकसि आइ तट देख्यो भूषन चीर तहाँ कछु नाहिं।
इत उत हेरि चकित भईं सुन्दरि सकुचि गईं फिरि जलहा माँहि ॥
नाभि प्रयंत नीरमें ठाढ़ो थरथर अंग कँपति सुकुमारि।
को लै गयो बसन आभूषन सूरश्याम उर प्रीति विचारि ॥

फिर कृष्णचन्द्र बालकोंके साथ हास्य-परिहास करते हुए बोले—हे ललनाओं! तुम यहाँपर आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। मैं तुम लोगोंसे सत्य कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता। क्योंकि तुम व्रतके कारण निर्बल और शिथिल हो रही हो। भगवानको इस प्रकार हँसी करते देखकर गोपियाँ प्रेमरससे विह्वल हो गयीं और लज्जित होकर सबने एक दूसरीकी ओर देखा। उनके मुखपर हँसी झलकने लगी और वे सब अपनी-अपनी जगहपर खड़ी रहीं—

बाहर नहीं निकली। वे गले भर पानीमें खड़ी-खड़ी काँप रही थीं। उन्होंने विनय युक्त वचनोंसे कहा—हे कृष्ण! तुम अनीति मत करो। हम जाड़ेसे काँप रही हैं। हमारे वस्त्र हमको दे दो। अन्य गोपियाँ बोलीं—हे श्यामसुन्दर! हम तुम्हारी दासियाँ हैं। हम सदा तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगी। कृपाकर हमारे वस्त्र दे दो। कुछ अधिक अवस्थाकी गोपियोंने कहा—यदि तुम हमारे वस्त्र न दोगे तो हम अभी राजासे जाकर कहेंगी। भगवानने कहा—हे सुन्दरियों! यदि तुम लोग दासी हो तो मेरा कहना मानो और यहाँ आकर अपने वस्त्र ले जाओ। राजासे कहनेसे क्या होगा? वे मेरा क्या कर सकते हैं? तदनन्तर जब गोपियोंने देखा कि इस तरह वस्त्र न मिलेंगे, तब वे असह्य शीतसे हारकर हाथोंसे गुप्ताङ्ग छिपाये हुए यमुनाजलसे बाहर निकलीं। उनका शुद्ध भाव देखकर भगवान प्रसन्न हुए। फिर सब वस्त्र अपने कन्धेपर रखकर प्रेमपूर्वक मुसकुराते हुए बोले—व्रतके बाद तुमने निपट नंगी होकर जलके भीतर जाकर स्नान किया सो यह काम अनुचित हुआ। क्योंकि इससे जलके देवता वरुण और अन्य देवताओंका निरादर हुआ है। अब इस पापको दूर करनेके लिए माथेपर अंजलि बाँध और झुककर प्रणाम करो और फिर अपने-अपने वस्त्र लेकर पहनो। इस प्रकार भगवानने दोषारोप किया तो कुमारियोंने समझा कि सचमुच ही व्रतभंग हो गया है। अतएव उन्होंने उसी प्रकार भगवानको प्रणाम किया। तब कृष्णने प्रसन्न होकर कहा—हे साध्वी सुन्दरियों! मैं तुम्हारा संकल्प जानता हूँ। मुझको ही प्रसन्न करनेके लिए तुम लोगोंने यह व्रत किया है।

इसलिए मैं तुम लोगोंकी कामना पूरी करूँगा। तुम्हारा व्रत सिद्ध हो गया। तुम लोग आगामी शरदृतुकी रमणीय रात्रिमें मेरे साथ रमण करोगी। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार भगवानके कहनेसे उन कुमारियोंने अपनेको कृतार्थ माना। वे कृष्णके चरणोंका ध्यान करती हुई बड़े कष्टसे व्रजको लौट गयीं। तदनन्तर देवकीनन्दन कृष्णचन्द्रजी बड़े भाई और गोपोंके साथ पशु चराते हुए वृन्दावनसे दूर चले गये। फलोंके भारसे झुके वृक्षोंको देखते हुए और उनकी बड़ाई करते-करते भगवान यमुनाके किनारे पहुँचे। यमुनाके आस-पास गायें चराते हुए गोपोंको भूख लगी, तब वे बलदेव और कृष्णजीके पास आकर इस प्रकार कहने लगे।

त्रयोविंश अध्याय

गोपोंका ब्राह्मणोंके यज्ञमें जाकर खानेके लिए अन्न माँगना

गोपालोंने कहा—हे महाबलशाली बलभद्र! हे दुष्टदमन कृष्णचन्द्र! हमको बड़ी भूख लगी है। हम कष्टमें हैं। कृपा करके यह भूखकी ज्वाला शान्त कीजिये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! गोपालोंकी यह प्रार्थना सुनकर कृष्णचन्द्रने अपनी परमभक्त ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंपर अनुग्रह करते हुए कहा—यहाँ वेदपाठी ब्राह्मण लोग स्वर्गकी कामनासे आङ्गिरसनामक यज्ञ कर रहे हैं। तुम यज्ञमण्डपमें जाकर मेरे बड़े भाईका नाम लेकर उनसे अन्न माँगो। इसमें लज्जा करनेका कोई कारण नहीं है। भगवानकी आज्ञा पाकर उन गोपोंने यज्ञमण्डपमें जाकर ब्राह्मणोंको प्रणाम

किया और उनसे भोजनके लिए अन्न माँगा। किन्तु वे लोग अभिमानसे मत्त हो रहे थे। इसलिए उन लोगोंने गोपोंके निवेदनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया—चुप रहे। तब विवश होकर सब गोप लौट आये और उन्होंने सब वृत्तान्त कृष्ण और बलभद्रसे कहा। सो सुनकर भगवानने विफलतामें निराश न होनेका उपदेश देते हुए उनसे कहा—तुम लोग उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके पास जाकर अन्न माँगो। उनको बता दो कि मैं अपने भाईके साथ यहाँ निकट ही आया हूँ। वे मेरा नाम सुनकर तुम लोगोंको अवश्य अन्न देंगी। उनके मनमें मेरे प्रति भक्ति है। उनका मन मुझमें ही लगा रहता है। भगवान्‌के कहनेसे गोप लोग यज्ञशालामें पहुँचे और उन्होंने अलंकार पहिनकर यज्ञशालामें बैठी हुई ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे कहा—यहाँसे थोड़ी ही दूरपर कृष्ण और बलभद्र पशु चरा रहे हैं। उनको और हमको भूख लगी है। इसलिए हमें भोजनके लिए अन्न दे दो। यह सुनकर उनको भगवान्‌के दर्शनकी लालसा बढ़ी। पति, पिता, भाई और बन्धुओंके रोकनेपर भी वे सब न रुकीं और जिस प्रकार नदियाँ वेगसे सागरकी ओर दौड़ जाती हैं, उसी प्रकार थालोंमें चार प्रकारके भोजन लेकर परमप्रिय कृष्णसे मिलनेके लिए चलीं। भगवानके पास पहुँचनेपर उनका सब ताप मिट गया। उनको देखकर कृष्णने मुसकुराकर कहा—यदि तुम मुझे देखने आयी हो तो अब यज्ञशालाको लौट जाओ। यद्यपि अब तुमको यज्ञादिकी आवश्यकता नहीं है, तथापि तुम्हारे पति ब्राह्मण लोग तुम्हारे साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा करेंगे। अन्न-व्यंजनादि कृष्णको देकर द्विज-

पत्नियोंने कहा—हे विभो! आपको ऐसे निठुर वचन कहना उचित नहीं है। हम सब अपने बन्धुओंको छोड़कर दासी होनेके लिए आपके चरणकमलोंकी शरणमें आयी हैं। अब हमारे माता-पिता, भाई, पुत्र, बन्धु और सुहृद्‌जण भी हमें अंगीकार न करेंगे। हे भगवन्! हमारी आपके सिवा और गति नहीं है। इसीसे हम आपके चरणोंकी शरणमें आयी हैं। अब हमें स्वीकार कीजिये। भगवानने कहा—तुम घर जाओ। तुम्हारे पति, भाई, पुत्र आदि कोई भी तुमपर दोषारोप न करेंगे, वरन् सभी बड़े प्रेमसे तुम्हारा आदर करेंगे। तुम मुझमें मन लगाओ—शीघ्र ही मुझको पाओगी। यदि कहो कि हमको आपके अङ्ग-सङ्गकी इच्छा है, उसके बिना हम कैसे लौट जायँ? तो मैं कहता हूँ कि अङ्गसङ्गसे ही मनुष्यों-में प्रीति या अनुराग नहीं होता। इसलिए अपने घरपर रहकर ही मुझमें मन लगाओ। मेरे नामश्रवण, गुणकीर्तन और ध्यान करने-से जैसा मुझमें दृढ़ प्रेम होगा, वैसा पास रहनेसे कभी नहीं हो सकता। इसलिए तुम लोग अपने घर लौट जाओ। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! भगवानके इस प्रकार कहनेपर वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ फिर यज्ञशालाको चली गयीं। ब्राह्मणोंने भी उनसे कुछ नहीं कहा, वरन् सादर स्वीकार करके उनके साथ यज्ञ पूर्ण किया। एक स्त्रीको उसके पतिने पकड़ रखा था। इसलिए वह कृष्णदर्शन-को न जा सकी। तब उसने हरिके रूपका ध्यान करके कर्मोंके अनुगामी शरीरको छोड़ दिया और सबसे पहिले हरिसे जा मिली। इधर प्रभु भगवान कृष्णचन्द्रने स्त्रियोंका लाया चार प्रकार-का स्वादिष्ट अन्न गोपोंको खिलाया और आप भी भोजन किया।

उधर वे ब्राह्मण लोग अपनी स्त्रियोंकी भगवानमें अपूर्व भक्ति देखकर अपना तिरस्कार करते हुए पछताने और भगवानसे क्षमा माँगते हुए उनकी स्तुति करने लगे, किन्तु कंसके डरसे स्वयं उनके दर्शनको नहीं जा सके।

चतुर्विंश अध्याय

इन्द्रयज्ञ-भंग

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इधर भगवानने व्रजमें देखा कि गोप लोग इन्द्रयज्ञ करनेका उद्योग कर रहे हैं। भगवान तो सबके अन्तर्यामी और सबके मनकी बात जाननेवाले सर्वज्ञ थे तथापि विनयपूर्वक नम्र होकर उन्होंने नन्द आदि वृद्ध गोपोंसे पूछा—पिताजी! बताइए तो सही, आप लोग यह कैसी सामग्री एकत्र कर रहे हैं? यह यज्ञ कौन करेगा? किस देवताके लिए यह यज्ञ किया जायगा? और इस यज्ञका फल क्या होगा? मैं सुननेके लिए उत्सुक हो रहा हूँ—मुझे समझाकर बताइये। नन्दने कहा—पुत्र! भगवान इन्द्र वर्षा करनेवाले देवता हैं। मेघ उनकी प्रिय मूर्ति हैं। वे मेघ प्राणियोंको प्रसन्न करनेवाला जलरूप जीवन देते हैं। उन मेघोंके स्वामी इन्द्र जो वर्षा करते हैं, उस वर्षाके जलसे उत्पन्न पदार्थों द्वारा हम लोग यह यज्ञ करके उनका पूजन करते हैं। यह रीति बहुत दिनोंसे चली आ रही है। जो कोई धर्मको छोड़ता है, उसका मंगल कभी नहीं होता। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! नन्द आदि गोपोंकी बातें सुनकर कृष्णने इन्द्रका दर्प चूर्ण करनेकी इच्छा करके कहा—हे पिताजी! सब

प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जनमते-मरते और कर्मानुसार ही सुख दुःख भय और मंगल पाते रहते हैं। जीवोंको जब अपने कर्मोंका ही अनुसरण करना पड़ता है तब उनको इन्द्रसे क्या प्रयोजन है ? कर्म ही सबका ईश्वर और गुरु है। कर्म ही केवल पूजनीय है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको चाहिये कि वे क्रमशः वेदाध्ययन, पृथ्वीपालन, कृषि-वाणिज्य और द्विजोंकी सेवासे अपनी-अपनी जीविका चलावें। हम लोग गऊ पालनेवाले हैं, यही हमारी जीविका है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन्हीं तीनों गुणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति, रक्षा और संहार होता है। यह चराचर जगत्‌रूपी ब्रह्माण्ड रजोगुणकी प्रेरणासे परस्पर उत्पन्न होता है। ये मेघ भी रजोगुणकी प्रेरणासे सर्वत्र जलकी वर्षा करते हैं। जलसे अन्न उपजता है और उसी अन्नसे सबका पालन होता है। इसमें महेन्द्र क्या कर सकते हैं ? हे तात ! हम वनवासी हैं। हमारे पुर, जनपद, गाँव या घर कुछ भी नहीं है। इसलिए इस यज्ञमें गऊ, ब्राह्मण और गोवर्धन गिरिका ही पूजन करना उचित है। आप लोगोंने इन्द्रयज्ञके लिए जो सामग्री एकत्र की है, उससे गिरिराजका पूजन कीजिये।

तात गोवर्धन पूजहु जाइ।
मधु मेवा पकवान मिठाई व्यंजन बहुत बनाइ ॥
यहि पर्वत तृण ललित मनोहर सदा चरैं सुख गाय।
कान्ह कहो सोइ कीजिये जैसे मघवा जाइ रिसाय ॥
भरि भरि सकट चले गिरि सन्मुख अपने अपने चाय।
सूरदास प्रभु अपवस भोगी धरि स्वरूप हरि राय ॥

वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा होम कराकर अग्निको तृप्त करो और

ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके अन्न खिला और गोदान तथा दक्षिणाएँ देकर प्रसन्न करो। श्वपच, चाण्डाल और पतित व्यक्तियोंको भी यथायोग्य अन्न देकर तृप्त और सन्तुष्ट करो। गौओंको हरी-हरी घास और उत्तम अन्न खिलाओ, फिर गिरिराजको भोग लगाओ। भोजन कराके गिरिराजको उत्तम वस्त्र आभूषण धारण कराओ, सुगन्धित चन्दन लगाओ और गऊ, ब्राह्मण तथा अग्निकी प्रदक्षिणा करो। हे पिताजी, मेरी सम्मति तो यही है। यदि रुचे तो इसीके अनुसार सब काम कीजिये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! कालरूप भगवानने इन्द्रका मद मिटानेकी इच्छासे जो कुछ कहा, उसे नन्द आदि गोपोंने मान लिया। भगवानके कथनानुसार उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। गिरिराजकी पूजा होने लगी। श्रीकृष्णजी भी गोपोंको विश्वास दिलानेके लिए गिरिराजके ऊपर दूसरे विशाल रूपसे प्रकट हुए और 'मैं ही गिरिराज हूँ' कहकर सब सामग्री दोनों हाथोंसे खाने लगे। उस समय कृष्णचन्द्रने व्रजवासियोंके साथ स्वयं अपने दूसरे शरीरको प्रणाम किया और गोपोंसे कहा—अहो! देखो गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर दया दिखायी है। वनमें रहनेवाले जो प्राणी इनका निरादर करते हैं, इनके कोपसे उनका विनाश होता है। हम सब अपने और सम्पूर्ण व्रजके कल्याणके लिए इनको प्रणाम करें। हे राजन्! कृष्णकी प्रेरणाके अनुसार इस प्रकार यथाविधि गऊ, ब्राह्मण और पर्वतका पूजन करके सब गोप कृष्णचन्द्रके साथ व्रजको लौट गये।

पञ्चविंश अध्याय

गोवर्धन-धारण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! अपने यज्ञकी सामग्रीसे गिरिराजकी पूजा होना जानकर इन्द्रने नन्द आदि गोपोंपर कोप किया। उन्होंने नन्दके व्रजका नाश करनेके लिए महापराक्रमी उनचास मरुद्गण सहित ऐरावत गजराजपर चढ़कर अत्याचार आरम्भ किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर मेघ बड़े वेगसे व्रजमें जाकर घोर वर्षा करने लगे।

प्रथमहिं देउ गिरिहिं बहाइ।
वज्रघातते करौ चूरन देउ धरणि मिलाइ।
मेरी इन महिमा न जानी प्रगट देउ दिखाइ।
जल बरसि व्रज धोइ डारो लोग देउ बहाइ।
खात खेलत रहे नीके करि उपाधि बनाइ।
बरष दिवस मोहिं देत पूजा दई सोउ मिटाइ।
रिस सहित सुरराज लीन्हें प्रबल मेघ बुलाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि पुनि परौ व्रजपर धाइ॥

बार बार बिजलियाँ चमकने लगीं और उनकी कड़क हृदय दहलाने लगी। देखते ही देखते पृथ्वी जलराशिसे परिपूर्ण हो गयी। उस समय कहीं भी ऊँचा-नीचा नहीं जान पड़ता था। क्योंकि पृथ्वी जलमय हो रही थी। प्रचण्ड आँधी और वर्षाके कारण पशुगण काँपने लगे।

दिवस एक प्रभंजन का हुआ।
अति प्रकोप, घटा नभ में घिरी।

बहु भयावह गाढ़ मसी समा।
सकल लोक-प्रकंपित-कारिणी॥
अशनिपात-समान दिगन्त में।
तब महारव था बहु व्यापता।
कर विदारण वायु प्रवाह का।
दमकती नभ में जब-दामिनी॥
मथित चालित ताड़ित हो महा।
अति प्रचण्ड प्रभंजन वेग से।
जलद थे दल के दल आ रहे।
घुमड़ते घिरते ब्रज घेरते॥

× × ×

सदन थे सब खण्डित हो रहे।
परम संकट में जन प्राण था।
सबल बिज्जु-प्रकोप-प्रमाद से।
बहु विचूर्णित पर्वत-शृंग थे॥

तब शीतसे पीड़ित गोप और गोपियाँ श्रीकृष्णकी शरणमें आयीं। हे राजन्! भगवानने कहा—हमने इन्द्रका यज्ञ नहीं किया था। इसीलिए वह रुष्ट होकर आज प्रचण्ड आँधीके झोंके, शिलाओंकी बौछार और बिना ऋतुकी वर्षासे ब्रजको नष्ट करनेपर तुले हुए हैं। मैं अभी योगबलसे इसका प्रतीकार करता हूँ।

तड़ित-सी कछनी कटि में कसे।
सुविलसे नव-नीरद-कान्ति का॥
नवल बालक एक इसी घड़ी।
जन समागम मध्य दिखा पड़ा॥

तब भगवान कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्धन पर्वतको ऐसे ऊपर उठा लिया मानो किसी बालकने खेलते-खेलते धरतीका फूल उखाड़कर ले लिया हो। तब ब्रजवासी लोग गोधन, भृत्य, पुरोहित आदिके साथ सुखसे उस गिरिगर्तमें आ गये। सबने अपनी-अपनी सामग्री भी छकड़ोंमें भरकर वहीं रख दी। भगवानको न तो भूख थी, न प्यास थी, न किसी प्रकारकी व्यथा थी, न सुखकी इच्छा थी, न विश्रामकी अपेक्षा थी। इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्र सात दिन तक बराबर गोवर्धन पर्वतको उसी हाथपर उठाये रहे। एक पग भी इधर-उधर नहीं हटे। सब ब्रजवासी अचरज भरी दृष्टिसे कृष्णकी ही ओर एकटक निहारते रहे। इन्द्रका संकल्प भ्रष्ट हो गया। तब उन्होंने अभिमान छोड़कर अपने मेघोंको वर्षा करनेसे रोक दिया। उसी समय आकाश मेघ-रहित हो गया। प्रचण्ड आँधी और वर्षा रुक गयी और सूर्यदेव निकल आये। यह देखकर गिरिधारीने कहा—हे गोपगण! अब कुछ भय नहीं है। आँधी और वर्षाका चिह्न भी नहीं रहा। तुम अपनी-अपनी धन-सम्पत्ति और स्त्री-बच्चोंको लेकर बाहर निकलो। तब सब गोप लोग अपने-अपने गोधनको आगे करके छकड़ोंपर सामग्री लादकर गिरिगर्तसे बाहर निकले। भगवानने गिरिराजको पहलेकी ही भाँति लीलापूर्वक उसी स्थानपर स्थापित कर दिया। तब प्रेमसे पूर्ण सब ब्रजवासी कृष्णके निकट आये। सबने यथोचित रीतिसे उनका सत्कार किया। गोपियोंने भी आनन्दसे स्नेहपूर्वक दही अक्षत और जलके छींटोंसे कृष्णकी पूजा की और मांगलिक आशीर्वाद दिये। स्नेहसे विह्वल नन्द, यशोदा, रोहिणी और महा-

बलशाली बलभद्रने कृष्णको गलेसे लगा लिया और शुभ आशीर्वाद दिये। स्वर्गमें देवता, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारण लोग स्तुति करते हुए भगवानपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्वर्गमें देवगण शंख और दुन्दुभी आदि बाजे बजाने लगे। गन्धर्वगण हरि गुणगान करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। हे राजन्! तब अपने अनुरक्त भक्तगणसे घिरे हुए बलभद्र सहित श्रीकृष्ण व्रजमें गये। गोपियाँ भी श्रीकृष्णका गुण गाती हुई परम आनन्दसे उनके साथ ही साथ गयीं।

षड्विंश अध्याय

श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका वर्णन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! गोप लोग कृष्णका पराक्रम नहीं जानते थे। अतएव इस प्रकार कृष्णके अनेक अद्भुत चरित्र देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ और वे लोग नन्दजीके पास जाकर कहने लगे—इस बालकके सभी कर्म बड़े अद्भुत हैं। हम ग्रामीण गोपोंके यहाँ इसका जन्म कैसे हो सकता है? उनकी बातें सुनकर नन्दजी कहने लगे—हे गोपगण! इस बालकके सम्बन्धमें गर्गाचार्यजी मुझसे जो कुछ कह गये हैं, वह तुमसे कहता हूँ—सुनो। यह बालक प्रतियुगमें शरीर धारण करता है। इसके शुक्ल रक्त और पीत ये तीन वर्ण क्रमशः हो चुके हैं। इस समय कृष्णवर्णसे इसका अवतार हुआ है। इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्म लिया था, इस कारण इसको विद्वान् लोग वासुदेव भी कहते हैं। तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुसार

बहुतसे नाम और रूप हैं। उनको मैं जानता हूँ—और लोग नहीं जानते। इससे तुम लोगोंका कल्याण होगा और सब विपत्तियोंसे तुम्हारा छुटकारा होगा। हे व्रजराज! पहले जिस समय दस्युजन साधुओंको सताते थे, कोई राजा या रक्षा करनेवाला नहीं था, उस समय भी इसने सबकी रक्षा की थी। इसीके अनुग्रहसे प्रजाने समृद्ध होकर दस्युगणका दमन किया। जो भाग्यशाली लोग इससे प्रेम करते हैं, वे शत्रुओंसे परास्त नहीं होते। हे नन्द! इस कारण तुम्हारा यह बालक नारायणके समान है। हे गोपगण! मुझसे इस प्रकार कहकर गर्गजी अपने आश्रमको चले गये। तभीसे मैं कृष्णको नारायणका अंश मानता हूँ। हे राजन्! नन्दके मुखसे गर्गजीके वाक्य सुनकर सब व्रजवासी प्रसन्न हुए। उनका सब सन्देह और विस्मय जाता रहा और वे श्रीकृष्णकी आराधना करने लगे।

सप्तविंश अध्याय

श्रीकृष्णका अभिषेक-महोत्सव

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इन्द्रकी प्रचण्ड वर्षासे जब भगवानने व्रजमण्डलको बचा लिया, तब गोलोकसे आयी हुई सुरभीको लेकर इन्द्रदेव एकान्तमें कृष्णके पास आये। इन्द्र अपने व्यवहारसे लज्जित थे। उनका सब घमण्ड चूर हो चुका था। कृष्णके पास पहुँचते ही उन्होंने अपना किरीट-मुकुट कृष्णके चरणोंपर रख दिया। तदनन्तर देवराज हाथ जोड़कर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! देवराजकी

स्तुति सुनकर कृष्णने हँसते हुए कहा—हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यके मदसे अत्यन्त मत्त हो गये थे। तुम मेरा स्मरण करने लगो, इसीलिए मैंने अनुग्रह करते हुए तुम्हारा यज्ञ भंग कर दिया था। ऐश्वर्य और श्रीके मदसे जो अन्धा हो जाता है, वह मुझको नहीं देख पाता। ऐसे मदान्धोंपर जब मैं अनुग्रह करना चाहता हूँ, तब उनकी सम्पत्ति पहले ही हर लेता हूँ। ऐसा करनेपर उनके ज्ञान-नेत्र खुल जाते हैं। अब तुम अपने लोकको जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करते हुए अभिमान छोड़कर अपना कार्य करो। इसके बाद सुरभीने गोपरूपी कृष्ण ईश्वरको प्रणाम किया और कहा—हे कृष्ण ! इन्द्रके क्रोधसे हमारा जो संहार हो रहा था, उससे हमारी रक्षा करके आपने हमें सनाथ कर दिया। अतएव हे जगन्नाथ ! आप ही हमारे इन्द्र होइये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे हम आपको इन्द्र बनाकर आपका अभिषेक करेंगी। इस प्रकार कहकर सुरभीने अपने दूधसे पहले कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया। तदनन्तर देवमाता अदिति आदिकी आज्ञासे इन्द्रने भी देवगणके साथ ऐरावतके लाये हुए आकाशगंगाके पवित्र जलसे कृष्णका अभिषेक किया। इसके बाद कृष्णका गोविन्द नाम रखा। तब महाउत्सव होने लगा। देवता लोग भगवानकी स्तुति करते हुए उनपर फूल बरसाने लगे। इस प्रकार गौओं और गोकुलके स्वामी गोविन्दका अभिषेक करके उनकी आज्ञा पाकर देवर्षियोंके साथ पुरन्दर इन्द्र अपने स्वर्गलोकको चले गये।

अष्टाविंश अध्याय

वरुणलोकसे नन्दको छुड़ा लाना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! एक दिन गोपराज इन्द्रने एकादशीके दिन उपवास किया, जनार्दनकी पूजा की और द्वादशीके दिन बहुत ही थोड़ी द्वादशी होनेके कारण अरुणोदयके पहले ही आसुरी बेलाका ख्याल न करके स्नानके लिए यमुनाजलमें प्रवेश किया। उस समय उनको जलमें देखकर वरुणका एक किंकर नन्दको पकड़कर अपने प्रभुके पास ले गया। इधर साथी गोप लोग नन्दका जलसे बाहर न निकलते देखकर हे कृष्ण ! हे बलभद्र ! कहकर ऊँचे स्वरसे चिल्लाने लगे। 'पिताको वरुण ले गये हैं' यह सुनकर कृष्णने सबको आश्वासन देकर अभयदान दिया और उसी क्षण वरुणजीके पास गये। वरुणने प्रसन्नतापूर्वक महासमारोहसे उनका पूजन किया। तदनन्तर वे भगवानकी स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे गोविन्द ! मेरा अपराध क्षमा कीजिये। आपके पिता यहाँ हैं, इनको ले जाइये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! कृष्णचन्द्र अपने पिताको साथ लेकर वरुण लोकसे ब्रजमें आये। गोपराज नन्दने जब ब्रजमें आकर गोपोंसे सब वृत्तान्त कहा तो सुनकर सभी आश्चर्यमें पड़ गये। वे लोग जान गये कि कृष्णचन्द्र ईश्वर हैं। यह जानकर वे लोग मन ही मन इसलिए उत्सुक हुए कि भगवान कभी हमको भी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे। तदनन्तर भगवान उन सभी गोपोंको वैकुण्ठलोकमें ले गये। पहले उन्होंने उनको अपना निर्गुण ब्रह्मरूप दिखाया। तब नन्द आदि गोपोंने ब्रह्महदमें जाकर

स्नान किया। वे उसीमें मग्न हो रहे थे कि कृष्णने उनको उससे बाहर निकाला। फिर सगुण ब्रह्मका लोक उन गोपोंको भगवानने दिखाया। गोपोंने देखा कि वहाँ कृष्णचन्द्र विराजमान हैं और वेद उनकी स्तुति कर रहे हैं। गोपोंको यह देखकर परम आनन्द प्राप्त हुआ और वे लोग बहुत विस्मित हुए।

ऊनत्रिंश अध्याय

रासविहारके आरम्भमें श्रीकृष्णका अन्तर्धान

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जब शरद् ऋतुकी मनोहर रात्रियाँ आ गयीं, तब भगवानने योगमायाका अवलम्बन करके विहार करनेकी इच्छा की। आकाशमें चन्द्रमाका प्रकाश खिल उठा। उसकी कोमल किरणोंसे सारा वृन्दावन रंजित हो गया। यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रजी बाँसुरी बजाकर व्रजबालाओंके मन हरनेवाले मधुर गीत गाने लगे। व्रजनारियोंका चित्त तो पहलेसे ही श्रीकृष्णमें लगा हुआ था। इस कारण वह कामोद्दीपक गान सुनकर विहारकी वासनासे वे झपटती हुई कृष्णजीके पास जाने लगीं।

मुरली सुनत भई सब बौरी।
मानहुँ परं सिर मांझ ठगोरी॥
जो जैसे सो तैसे दौरी।
तनु व्याकुल सब भई किसोरी॥
कोउ धरणी कोउ गगन निहारै।
कोउ कर कर ले वासन डारै॥
कोउ मन ही मन बुद्धि विचारै।
कोउ बालक नहिं गोद सँभारै॥

घरघर तरुनी सब बिललानी ।
मन मन कहति कौन यह बानी ॥
× × ×
मुरली स्याम अनूप बजाई ।
विधि मर्यादा सबनि भुलाई ॥
× × ×
सूरदास प्रभु कुञ्ज बिहारी ॥
सरदरास रस-रीति बिचारी ॥

जो जिस काममें लगी थी, वह उस कामको छोड़कर तुरत कृष्णके पास चली । पति, बन्धु, पिता आदि किसीके मना करनेपर भी उन्होंने नहीं माना । कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर ही रह गयीं, बाहर न निकल सकीं । इस अवस्थामें आँखें बन्द करके उन्होंने कृष्णमें अपना चित्त लगा दिया और परम सुखका अनुभव किया । यद्यपि उन्होंने उपपतिबुद्धिसे कृष्णमें मन लगाया था, तथापि उक्त रीतिसे सुख-दुःख भोग और कर्मबन्धनसे मुक्त होकर वे गुणमय शरीर छोड़नेपर कृष्णमें लीन हो गयीं । राजा परीक्षितने पूछा—हे मुने ! गोपियाँ तो कृष्णको अपना कान्त मानती थीं, कृष्णमें उनको ब्रह्मभाव नहीं था, तब उनको कैसे संसारबन्धनसे मुक्ति मिल गयी ? शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि श्रीहरिसे शत्रुता करके भी शिशुपालको मुक्ति मिली । तब कृष्णकी प्रिया गोपियोंकी मुक्तिमें क्या विचित्रता है ? किसी भी कारणसे ही हो, भगवानमें आसक्ति होनेसे मुक्ति मिलती है । भगवान कृष्णके विषयमें तुमको ऐसा सन्देह न करना चाहिये । कृष्णके किसी कार्यपर आश्चर्य मत

करना। वे तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। कृष्ण भगवानने जब देखा कि व्रजनारियाँ अपने पास आकर खड़ी हैं, तब वाक्-चातुरीसे मोहित करते हुए श्रीहरिने कहा—गोपियो! तुम लोग किस कामसे मेरे पास आयी हो? व्रजमें तो सब कुशल है? इस समय तुम्हारे आनेका कारण क्या है? देखो, यह रात्रि बड़ी ही घोर है। भयंकर जीव वनमें विचर रहे हैं। इसलिए तुम लोग व्रजको लौट जाओ। तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है। तुम्हारे माता-पिता, भाई, पति आदि स्वजन तुमको न देखकर इधर-उधर खोज रहे होंगे। इस प्रकार गोविन्दके अप्रिय वचन सुनकर गोपियोंको बड़ा विषाद हुआ। वे चुपचाप जैसीकी तैसी खड़ी रह गयीं। आँसुओंके बूँद उनके कुचोंपर गिरने लगे। वे कहने लगीं—हम सब कुछ छोड़कर सेवा करनेकी अभिलाषासे आपके चरण-कमलकी शरणमें आयी हैं। हमारे हृदयमें मदनानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं। अपनी अधर-सुधाकी धारासे सींचकर आप हमारे तापको शीतल कीजिये। हे राजन्! जब व्रजबालाएँ किसी तरह घर जानेको प्रस्तुत नहीं हुईं, तब श्रीकृष्णजी दयापूर्वक हँसे और उनकी इच्छाके अनुसार विहार करने लगे। यमुनाके तटपर पूर्ण चाँदनी खिली हुई थी। उसी मनोहर यमुनातटपर जाकर बाहु फैलाना, लिपटाना, गले लगाना, कर, अलक, जंघा, नीबी और स्तनोंको छूना, हँसी-मसखरी, नखच्छद देना, क्रीड़ाकटाक्ष और मन्द मुसकानसे कामोद्दीपन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके साथ रमण करने लगे। जिनका चित्त कहीं भी आसक्त नहीं होता,

उन भगवान कृष्णचन्द्रसे सम्मान पाकर गोपियोंके मनमें मानका उदय हुआ। उनके सौभाग्यमद और अभिमान देखकर उसे मिटा देने और उनपर कृपा करनेके लिए कृष्णचन्द्र वहीं अन्तर्हित हो गये।

त्रिंश अध्याय

विरहके सन्तापसे गोपियोंका श्रीकृष्णकी खोजमें इधर-उधर घूमना

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! जब अकस्मात् कृष्णचन्द्र छिप गये तो जिस तरह हथिनियाँ झुण्डके स्वामी गजराजको न देखकर व्याकुल होती हैं, उसी तरह व्याकुल होकर गोपियाँ उनकी खोजमें इधर-उधर घूमने लगीं। गोपियोंके चित्त भगवानमें तन्मय हो रहे थे। वे भगवानकी गति, अनुराग, चंचल दृष्टि आदि सदा स्मरण करने लगीं। वे परस्पर मिलकर कृष्णचन्द्रकी गति आदि क्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं। तदनन्तर सब मिलकर ऊँचे स्वरोंसे प्रियके गुणगान करती हुई उनकी खोजमें वन-वन घूमने लगीं। जो भगवान आकाशकी भाँति प्राणियोंके भीतर और बाहर उपस्थित थे, उन्हीं परम पुरुषका पता वे वनस्पतियोंसे इस प्रकार पूछने लगीं—हे पीपल! हे पाकड़! हे गूलर! अपने प्रेम-पूर्ण कटाक्षों द्वारा हमारा चित्त हरकर नन्द-नन्दन चले गये हैं—तुमने क्या उनको देखा है? हे वृक्षवृन्द! जिनकी मन्द मुसकान मानिनी महिलाओंके मानका मर्दन करनेवाली है, वे ही बलभद्रके भाई कृष्णचन्द्र क्या इधरसे गये हैं? क्या तुमने इधरसे कृष्णको जाते देखा है? कृपा करके कृष्णका पता बताओ। उनके

बिना हमारा चित्त शून्य हो रहा है। तदनन्तर जबतक चाँदनी वनमें फैली रही, तब तक गोपियोंने घूम-घूमकर कृष्णका पता लगाया। जब अन्धकार हो गया तब सब लौट पड़ीं। कोई भी गोपी लौटकर अपने घर नहीं गयी। परस्पर श्रीकृष्णकी ही बातचीत और लीलाओंका अनुकरण करते-करते वे तन्मय हो गयी थीं। किसीको घरका ध्यान भी नहीं था। सब मिलकर यमुनाके किनारे लौट गयीं। वहाँ वे सब मिलकर एक स्थानपर जा बैठीं और हरिगुणगान करती हुई गोपियाँ कृष्णके दर्शनकी चाहसे यमुना-तटपर श्रीकृष्णकी प्रार्थना करने लगीं।

एकत्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! गोपियाँ कृष्णविरहमें अत्यन्त कातर थीं। वे भगवानका स्मरण करती हुई कहने लगीं—हे कान्त! हम कातर होकर आपको खोज रही हैं। हमारे प्राण आप ही में बसते हैं। अतएव आप दर्शन दीजिये। आप केवल यशोदा अथवा गोपियोंको ही आनन्द देनेवाले नहीं हैं, किन्तु सभीके प्रिय तथा अन्तर्यामी परमात्मा हैं। विश्वकी रक्षाके लिए जब ब्रह्माने प्रार्थना की, तब आप यदुवंशमें प्रकट हुए। हम आपकी दासियाँ हैं। हमारी कामना पूरी करिये। हे यदुकुलतिलक! जो लोग संसारके भयसे आपके चरणोंकी शरण लेते हैं, उनकी अभिलाषाएँ आप पूरी करते हैं। हे प्रिय! तुम्हीं हमारे जीवन सर्वस्व हो। कहीं चोट न लग जाय, इस भयसे हम जिन चरण

कमलोंको अपने कठोर स्तनोंपर धीरेसे धरती हैं, उन्हीं सुकोमल चरणोंसे आप वनमें घूम रहे हैं ! छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर उनमें गड़कर व्यथा पहुँचाते होंगे। यह चिन्ता हमारे चित्तको व्याकुल-कर रही है।

द्वात्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको समझाना

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! गोपियाँ श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे तन्मय होकर ऊँचे स्वरसे गाती हुई प्रणाम करने और अन्तमें अधीर होकर ऊँचे स्वरसे रोने लगीं। उनकी इस दशापर दया करके साक्षात् मन्मथके भी मनको. मथनेवाले नन्द-नन्दन उनके आगे ही प्रकट हो गये। भगवानके श्याम शरीरपर पीताम्बर और मालाकी अपूर्व शोभा थी। उनका मुखकमल मन्द मुसकानसे महामनोहर देख पड़ता था। प्यारे कृष्णको सामने देखकर गोपियोंके नेत्रकमल आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठे। जिस प्रकार प्राण लौट आनेपर मृतक शरीर उठ खड़े हों, उसी प्रकार सब गोपियाँ उठ खड़ी हुई। किसी गोपीने आनन्दसे कृष्णका कमलसम कोमल हाथ अपने हाथमें ले लिया। किसीने चन्दनचर्चित भगवानकी भुजा अपने कन्धेपर रख ली। किसी गोपीने कृष्णका जूठा पान अंजलिमें ले लिया। किसी विरहाग्निमें तपी हुई गोपीने हृदय शीतल करनेकी कामनासे कृष्णका चरण-कमल अपनी छातीपर रख लिया। एक कामिनी भौंहें तानकर कुटिल कटाक्ष करने लगी। कोई कृष्णका मुख-कमल टकटकी

लगाकर निहारने लगी। जिस प्रकार मुमुक्षु लोग ईश्वरको पाकर संसारके तापोंसे छूट जाते हैं, उसी प्रकार केशवदर्शनका परमानन्द पाकर गोपियोंका विरहताप मिट गया। हे राजन्! शोकशून्य गोपियोंके बीचमें भगवान अच्युतकी ऐसी शोभा हुई, जैसी शोभाके साथ परम-पुरुष परमात्मा अपनी सत्त्वादि शक्तियोंमें शोभायमान होता है। तब मदनमोहन भगवान उन सब गोपियोंके साथ सुखदायक यमुनातटपर जाकर विहार करने लगे। शरद्-ऋतुकी शान्त किरणोंसे वहाँ रात्रिका अन्धकार नहीं था। उन्होंने कृष्णके बैठनेके लिए अपने-अपने दुपट्टोंसे एक सुन्दर आसन बनाया। योगीश्वरोंके हृदयमें जिनका आसन रहता है, वही भगवान श्रीकृष्ण गोपियोंकी सभामें उनकी रुचिसे रचे हुए आसनपर विराजमान हुए। तदनन्तर मनोहर लीला-विलासमय कटाक्षोंसे परिपूर्ण बंक भौंहसे कुछ-कुछ कोप प्रकट करती हुई अपनी गोदमें रखे हुए कामोद्दीपक प्रियतमके हाथों और पैरोंको धीरे-धीरे दबाकर सम्मान-सूचना देती हुई गोपियोंने भगवान कृष्णसे कहा—हे कृष्ण! कुछ लोग भजनेवालोंको भजते हैं और कुछ लोग न भजनेवालोंको भी भजते हैं। इनके सिवा कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो भजनेवाले और न भजनेवाले दोनोंको नहीं भजते। इसका कारण क्या है? यह विषय कृपाकर हमें समझाइये। भगवानने कहा—सखियों! तुम लोग ठीक कहती हो। जो लोग अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकी इच्छा रखते हैं, वे ही भजनेकी अपेक्षा करते हैं अर्थात् भजनेवालोंको भजते हैं। किन्तु यह सच्ची मित्रता नहीं है। इसमें धर्म नहीं स्वार्थ है। ऐसी मित्रता

स्वार्थके बिना नहीं होती। किन्तु जो लोग न भजनेवालोंको भी भजते हैं, वे पिता-माताके समान दो भाँतिके प्राणी हैं। एक दयावान और दूसरा स्नेहशील। इनमें दयावानोंको शुद्ध धर्म और स्नेहशीलोंको सौहृद सुख मिलता है। जो लोग भजनेवालोंको भी नहीं भजते, तब न भजनेवालोंकी क्या बात है ? उन लोगोंके चार भेद हैं। एक तो आत्माराम होते हैं, जिनको परमहंस कहते हैं। पूर्णकाम होनेके कारण देखकर भी उनको विषय-भोग करनेकी इच्छा नहीं होती। तीसरे कृतघ्न होते हैं और चौथे गुरुद्रोही कहलाते हैं। हे सखियो ! मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारोंमें नहीं हूँ। बल्कि मैं महादयालु और परम सुहृद् हूँ। मैं उनको नहीं भजता, इसलिए वे निरन्तर मेरा ही ध्यान किया करते हैं। जिस प्रकार कोई निर्धन पुरुष धन गवाँ देता है तो उसका मन सर्वदा उसी धनमें लगा रहता है, उसी प्रकार तुमने मेरे लिए धर्मका ध्यान न करके सब स्वजनोंको छोड़कर मेरा ही भजन किया। तुम्हारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए ही मैं छिप गया था। यथार्थमें मैं छिपकर तुम लोगोंको ही भज रहा था। इसलिए मेरे ऊपर कोप करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुम लोगोंने दृढ़तर गृह-शृंखला तोड़ डाली और मुझसे आकर मिलीं। मैं इसका बदला नहीं चुका सकता। प्रत्युपकार करके भी मैं उद्धार नहीं पा सकता। मुझे आशा है कि तुम लोग अपनी सुशीलता और उदारतासे ही मुझे ऋणमुक्त करोगी।

त्रयस्त्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णकी रासलीला

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! भगवानके मनोहर वाक्य सुनकर कोमल चित्तवाली गोपियोंने विरहजनित सन्ताप छोड़ दिया। श्रीहरिके अङ्ग-सङ्गसे गोपियोंकी अभिलाषा पूरी हो गयी और विरहताप मिट गया। इसके बाद गोविन्दने रासक्रीड़ा आरम्भ कर दी। गोपियाँ परस्पर हाथसे हाथ मिला और मण्डल बाँधकर खड़ी हो गयीं। गोपियोंके मण्डलमें योगेश्वर कृष्ण बहुत ही शोभित हुए। क्योंकि हर दो गोपियोंके बीच एक-एक कृष्णकी मूर्ति थी। इस प्रकार गलबाहीं डालकर कृष्णचन्द्रने रास-उत्सवका आरम्भ किया। हरिकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे प्रत्येक गोपी यही समझती थी कि मेरे ही पास प्यारे कृष्ण हैं। इतने ही में रास-क्रीड़ा देखनेके लिए देवता लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंके साथ आकाशमें आ पहुँचे। वे लोग नगाड़े बजाकर फूलोंकी वर्षा करने और गन्धर्वगण अपनी स्त्रियोंके साथ उनका निर्मल यश गाने लगे। नृत्यमें निरत नारियोंके नूपुरोंका शब्द होने लगा। गोपियोंकी सुकुमार कमर नाचते समय लोचसे लचक-लचक जाती थी। उनके वस्त्र नाचते समय उड़ जाते थे, जिससे हिलते हुए कमनीय कुच खुल पड़ते थे। वे भाँति-भाँतिके राग अलापती हुई गाती थीं। जिस प्रकार कोई बालक अपने ही प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, उसी प्रकार भगवान लक्ष्मीपति स्नेहपूर्ण कटाक्ष, उदार विलास और मन्द मुसकानसे मन हरते हुए व्रजबालाओंके साथ रमण करने लगे। अत्यन्त विहार करके जब गोपियाँ थक

गयीं और जब उनके मुख-कमलोंमें पसीना आ गया, तब करुणा-निधान भगवानने स्वयं उनके पसीनेको निज कर-कमलोंसे पोंछ दिया। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने स्वयं आत्माराम होकर भी गजराज-के समान लीलापूर्वक व्रजबालाओंके साथ जल-विहार किया। हे महाराज! भगवानका यह पर-नारी-गमनरूप विरुद्ध आचरण दोषयुक्त नहीं है। तेजस्वी लोग अकार्य करके भी उसी प्रकार दूषित नहीं होते, जिस प्रकार अग्नि दूषित नहीं होता। शिवजीने कालकूट पी लिया, किन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ा। ईश्वरोंके सब आचरण अनुकरणीय नहीं होते। हे महाराज! इस प्रकार विहार करते-करते जब वह रात्रि बीत गयी और ब्राह्म मुहूर्त आ पहुँचा, तब इच्छा न रहनेपर भी कृष्णकी प्यारी गोपियाँ अपने-अपने घर चली गयीं। हे राजन्! जो लोग व्रजबालाओंके साथ की गयी इस रासलीलाकी कथाको श्रद्धापूर्वक पढ़ते या सुनते हैं, वे धीर-जन शीघ्र ही भगवानकी श्रेष्ठ भक्ति पाते और कामरूपी मानसिक रोगसे मुक्त हो जाते हैं।

चतुस्त्रिंश अध्याय

सुदर्शनमोचन और शंखचूड़वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय देवयात्राके अवसरपर सब गोप बैलगाड़ियोंपर चढ़कर अम्बिकावनको गये। वहाँ उन लोगोंने सरस्वती नदीमें स्नान करके विविध उपकरणोंसे देवदेव पशुपति और भगवती अम्बिका देवीका पूजन किया। देव हमपर प्रसन्न हों—इस कामनासे उन लोगोंने ब्राह्मणोंको

गऊ, वस्त्र, सुवर्ण और अनेक मधुर अन्न दिये। फिर व्रतके कारण केवल जलपान करके वे लोग उस रातको वहीं सरस्वतीके किनारे सो गये। रातके समय वनमें एक बहुत भूखा बड़ा भारी अजगर वहाँ आया। उस समय नन्दजी सोये पड़े थे। उस सर्पने उनका पैर पकड़ लिया। भयभीत नन्दने चिल्लाकर कहा—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह महासर्प मुझको लील रहा है। इस संकटसे मुझको बचाओ। हे राजन्! नन्दकी चिल्लाहट सुनकर सब गोप सहसा उठ बैठे। उन्होंने नन्दको सर्पग्रस्त देखकर जलती हुई लकड़ियोंसे सर्पको दागना आरम्भ किया। जलती हुई लकड़ियोंसे दागे जानेपर भी उसने नन्दको नहीं छोड़ा। तब भगवान कृष्णने आकर उस सर्पको पैरसे छू दिया। श्रीमन्नारायणके चरणस्पर्शसे उसके सब अशुभ नष्ट हो गये और वह तुरन्त सर्पयोनिसे छूटकर परमसुन्दर विद्याधर हो गया। उसने कृष्णचन्द्रके चरणोंपर गिरकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर नम्रताके साथ खड़ा हो गया। तब भगवानने उससे पूछा कि तुम कौन हो? किस कर्मसे विवश होकर तुमको यह निन्दनीय सर्प-शरीर प्राप्त हुआ था—यह वृत्तान्त खोलकर मुझे बताओ? सर्पने कहा—हे भगवन्! मैं एक विद्याधर हूँ। मेरा नाम सुदर्शन है। मैं विमानपर बैठकर इच्छानुसार घूमा करता था। मुझको अपने रूपका बड़ा घमण्ड था। एक दिन घूमते समय राहमें अङ्गिरावंशके कुरूप मुनियोंको देखकर मैं हँस पड़ा। इससे कुपित होकर उन्होंने शाप दे दिया। इसी दोषसे मुझे यह निन्दनीय योनि मिली थी। हे भगवन्! अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अपने लोकको

जाऊँ। हे राजन् ! कृष्णकी परिक्रमा और प्रणाम करके और उनसे जानेकी आज्ञा लेकर सुदर्शन अपने लोकको चला गया और कृष्णकी कृपासे नन्दजी भी छूट गये। तदनन्तर सभी व्रजवासी श्रीकृष्णका गुणगान करते-करते व्रजको गये।

शंखचूड़वध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! एक दिन अद्भुत पराक्रमवाले श्रीकृष्ण और बलभद्र वनमें रात्रिके समय व्रजबालाओंके साथ विहार करने लगे। रात्रिका पहला पहर था। पूर्ण चन्द्रमा आकाशमें प्रकाशमान था। दोनों भाई एक साथ ही मधुर राग अलापने लगे। वह परम मनोहर गीत सुनकर गोपियोंको अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। इसी अवसरपर उधरसे कुबेरजीका किंकर शंखचूड़ नामक विद्याधर वहाँ आ गया। वह कृष्ण-बलदेवके सामनेसे ही गोपियोंको लेकर उत्तर दिशाको भाग चला। गोपियाँ हे कृष्ण ! हे बलभद्र ! कहकर चिल्लाने लगीं। अपनी प्रियाओंकी यह दशा देखकर दोनों भाई उस दुष्ट विद्याधरको पीछे झपटे। वे लोग शालके वृक्ष उखाड़कर उस विद्याधरको मारनेके लिए दौड़े। कालके समान दोनों भाइयोंको आते देखकर वह मूढ़ बहुत घबड़ाया और स्त्रियोंको वहीं छोड़ प्राण लेकर भागा। भगवान कृष्णने तब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसके सिरकी चूड़ामणि वे लेना चाहते थे। सो थोड़ी ही दूर जाकर कृष्णने उस दुरात्माको पकड़ लिया और घूँसेके प्रहारसे उसका सिर फोड़ दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। भगवानने उसके सिरका चूड़ामणि ले लिया। हे राजन् ! इस प्रकार शंखचूड़को मार

और प्रभावशाली मणि लेकर कृष्णचन्द्र लौटे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक गोपियोंके आगे ही वह चूड़ामणि बड़े भाई बलभद्रको दे दिया।

पञ्चत्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णविरहमें गोपियोंका सन्ताप

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! गोपियोंकी रात्रि तो कृष्णके साथ विहार करनेमें सुखसे बीतती थी, किन्तु दिनके समय जब प्यारे कृष्ण गौएँ चरानेके लिए वनको चले जाते, तब उन्हींमें गोपियोंका मन लगा रहता था और विभिन्न प्रकारसे कृष्णकी लीलाएँ गा गाकर बड़े कष्टसे उतना समय व्यतीत करती थीं। गोपियाँ परस्पर कहतीं-सखियों! जब कृष्ण अपनी मधुर वंशी बजाते हैं, तब वंशीकी मनोहर ध्वनि सुनकर अपने पतियोंके साथ विमानोंपर बैठी हुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ परम विस्मयको प्राप्त होतीं और हृदयमें काम-बाण लगनेसे लज्जा करती हुई मोहित हो जाती हैं। उनको इतनी भी सुधि नहीं रहती कि कमरसे खिसककर गिरनेवाले अपने वस्त्रको सँभाल लें। हे सुन्दरियों! एक और विचित्र बात यह है कि आर्तबन्धु कृष्ण जब वंशी बजाते हैं, तब झुंडके झुंड व्रजवासी गऊ, मृग, बैल आदि पशु आँखें बन्द करके चित्रलिखितसे खड़े रह जाते हैं। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कृष्ण ही जिनके जीवन सर्वस्व हैं और उन्हींमें जिनके मन आसक्त हो रहे हैं, वे महाभाग्यशालिनी गोपियाँ उन्हीं प्रियतमके चरित्र गाती और चर्चा करती हुई दिन बिताती थीं।

षट्त्रिंश अध्याय

अरिष्टासुरका वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! एक दिन अरिष्टनामक असुर बैलका रूप धारण करके खुरप्रहारसे पृथ्वीको खोदता और कँपाता हुआ व्रजमें आया। हे राजन् ! उसकी भयंकरताका मैं कितना वर्णन करूँ ? वह दोनों नेत्र फैलाकर भयंकररूपसे गर्जता था। उसके कठोर शब्द सुनकर गौएँ और गोपियाँ बहुत डरीं, जिससे अकालमें ही उनके गर्भ गिर पड़े और बह गये। उसको व्रजमें आते देखकर गोपी और गोप बहुत डरे। सब पशु व्रज छोड़कर इधर-उधर भागे। बादको गोकुलवासी लोग हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! इस वृषभासुरसे हमारी रक्षा करो, यह कहते हुए गोविन्दकी शरणमें आये। हे राजन् ! श्रीकृष्णने सबको आश्वासन दिया और वृषभासुरको ललकारकर कहा कि अरे दुष्ट ! तू इन गोपों और पशुओंको व्यर्थ क्यों डरा रहा है। यह कहकर भगवानने ताल ठोंककर अपनी भुजा असुरके आगे फैला दी। इससे कुपित होकर वह असुर कृष्णकी ओर बढ़ा। जैसे गजराज लड़ाईमें किसी दूसरे गजको पीछे हटा दे, वैसे ही कृष्णचन्द्रने सींग पकड़कर उस असुरको अट्ठारह पग पीछे ठेल दिया। पीछे हटकर वह फिर सँभल गया। वह लम्बी साँस छोड़ता हुआ कोपाकुल होकर फिर कृष्णपर झपटा। भगवानने फिर उसके सींग पकड़ लिये और पैरोंके आघातसे उसको पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर जिस प्रकार कोई गीले वस्त्रको निचोड़े, उसी प्रकार उसके शरीरको

मरोड़ डाला, उसके सींग उखाड़ लिये और सींगोंके प्रहारसे उसे मार डाला। हे राजन्! अरिष्टासुरके मारे जानेपर देवता लोग फूल बरसाने और श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्णने उस असुरका वध करके बलदेवके साथ गोकुलमें प्रवेश किया। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मार डाला, तब एक दिन देवर्षि नारदजीने कंसके यहाँ जाकर उससे कहा—देवकीके गर्भसे कन्याका जन्म नहीं हुआ था। वह कन्या यशोदाकी थी। कृष्ण देवकीके अष्टम पुत्र हैं। बलभद्र रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुम्हारे भयसे अपने मित्र नन्दके यहाँ उनको धरोहरके रूपमें रख छोड़ा है। उन्हीं दोनोंने तुम्हारे अनुचरोंको मारा है। यह वृत्तान्त सुनते ही कोपके कारण कंसकी सब इन्द्रियाँ विचलित हो उठीं। उसने वसुदेवको मारनेके एक तीक्ष्ण तलवार उठा ली। किन्तु नारदजीके समझानेसे मान गया। नारदजीने उसको बताया कि वसुदेवसे कुछ हानिका भय नहीं है। वसुदेवके दोनों पुत्र ही काल हैं। इस कारण कंसने वसुदेवको नहीं मारा, किन्तु देवकी और वसुदेव दोनोंको लोहेकी जंजीरोंमें बाँधकर बन्दीगृहमें डाल दिया। हे राजन्! देवर्षि नारदके चले जानेपर कंसने केशीनामक असुरको बुलाकर कहा कि तुम व्रजमें जाकर कृष्ण और बलभद्रको मार डालो। तदनन्तर कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि मल्लों, महावत तथा मंत्रियोंको बुलाकर कहा—हे चाणूर, मुष्टिक आदि वीरवरो! सुनो, वसुदेवके पुत्र कृष्ण-बलदेव ब्रजमें हैं। नारदजीने मुझसे कहा है कि उन्हींके हाथोंसे मेरी मृत्यु होगी। मैं उनको यहाँ बुलाऊँगा। तुम दाँव-

पेंचसे उनको मार डालना। मल्लयुद्धकी तैयारी करो। भाँति-भाँतिके मंच और अखाड़े बनाओ और सजाओ। चतुर्दशीके दिन धनुषयज्ञ आरम्भ किया जाय। हे महावत! तुम भी उस दिन रंगभूमिमें कुवलयापीड़ हाथीके ऊपर रहना और मौका पाकर उन दोनों मेरे शत्रुओंको मार डालना। देखना, हाथीसे वे बचकर न जाने पावें। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! कंसने महावत और मल्लोंको इस प्रकार आज्ञा देकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको अपने पास बुलाया और हाथमें हाथ लेकर कहा—हे अक्रूरजी! तुम मेरे मित्र हो। यादवोंमें तुमसे बढ़कर मेरा हितू कोई नहीं है। मेरा एक काम करो। तुम यहाँसे नन्दके घर चले जाओ। वहाँ वसुदेवके दो पुत्र रहते हैं। उनको बहुत शीघ्र रथपर ले आओ। विलम्ब मत करो। नन्द आदि गोप भेंट लेकर अवश्य आवेंगे। मैं उन दोनों बालकोंको यहाँ आनेपर कालतुल्य हाथीसे मरवा डालूँगा। हाथीसे बच भी गये तो मेरे फुर्तीले मल्ल उनको जीवित न छोड़ेंगे। उनके मर जानेपर शोकाकुल वसुदेव आदि उनके बन्धुओं और अन्यान्य भोज-वृष्णिदाशार्हवंशज उनके मित्रोंको मैं सहजमें ही मार डालूँगा। फिर अपने बूढ़े पिता उग्रसेन और चाचा देवकको तथा अपने अन्य शत्रुओंको भी मार डालूँगा। अक्रूरने कहा—मित्र! तुमने जो विचार किया, वह बहुत ही अच्छा है। अपना अमंगल मिटाना मनुष्यका कर्तव्य है। किन्तु उसका सिद्ध होना या न सिद्ध होना अपने अधीन नहीं है। फल देनेवाला दैव ही है। जो हो, मैं आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा। हे राजन्! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर

कंसने मंत्रियोंको विदा किया और अपने भवनमें चला गया। अक्रूर भी अपने घर चले गये।

सप्तत्रिंश अध्याय

केशी और व्योमासुरका वध

शुकदेवने कहा—हे महाराज! इधर कंसके भेजनेसे केशी नामक असुर घोड़ेका रूप धारण करके दौड़ता हुआ व्रजमें आया। उसका भयंकर शब्द सुनकर सम्पूर्ण विश्व भयसे व्याकुल हो उठा। उस समय भगवानने उसके सामने जाकर ललकारा। कृष्णको देखकर वह सिंहके समान गर्ज उठा। तदनन्तर वह असुर झपटा और उसने पीछेकी दुलत्ती कृष्णचन्द्रपर चलायी। किन्तु भगवान लीलापूर्वक उसके प्रहारको बचा गये। उस दैत्यने फिर दुलत्ती चलायी। तब प्रभुने उसके पिछले दोनों पैर पकड़ लिये। गरुड़ जिस प्रकार साँपको झिटक देता है, उसी प्रकार घुमाकर भगवानने उसे चार सौ हाथकी दूरीपर फेंक दिया और आप वहीं खड़े रहे। उस दैत्यको जब चेत हुआ, तब फिर मुँह फैलाकर क्रोधपूर्वक वेगसे श्रीहरिकी ओर चला। भगवानने भी हँसते हुए अपना हाथ उस दैत्यके मुखमें घुसेड़ दिया। हे राजन्! भगवानकी भुजाका स्पर्श होते ही उसके सब दाँत गिर पड़े। इसके बाद महात्मा कृष्णचन्द्रका बाहु उसके शरीरमें जाकर जलोदर रोगके समान क्रमशः बढ़ने लगा। हे महाराज! इसके बाद कृष्णके बाहुसे उस दैत्यकी साँस रुक गयी। तब ऊबकर वह गिर पड़ा और पैर पटकने लगा, आँखें निकल पड़ीं, पसीना

बहने लगा और मलके साथ ही प्राण भी निकल गये। तब भगवानने उसके उस मृत शरीरसे अपना हाथ खींच लिया। भगवानको कुछ विस्मय नहीं हुआ। उन्होंने सहजमें ही शत्रुको मार डाला। देवता लोग प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! देवर्षि नारदने श्रीकृष्णके पास आकर एकान्तमें कहा——हे कृष्ण! आप वासुदेव हैं। आप सबके ईश्वर अर्थात् परमेश्वर हैं। आप स्वतंत्र, सत्यसंकल्प और जगदीश्वर हैं। आपने पहले मायाके द्वारा तीन गुणोंकी सृष्टि की थी। उन्हीं गुणोंसे आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं। आप दैत्य-दानवों और राक्षसोंके विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिए पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सौभाग्यकी बात है कि आपने लीलापूर्वक केशी दैत्यको मार डाला। मैं शीघ्र ही देखूँगा कि परसों आप चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लों तथा कुबलया पीड़ हाथी और कंसको भी मारियेगा। मैं आपके अन्यान्य चरित्र भी देखूँगा। आप यदु, वृष्णि और सात्वतवंशके यादवोंमें धुरन्धर हैं। बादको शंखासुर, कालयवन, मुरदानव, नरकासुर आदिका मारना, पारिजातहरण, इन्द्रकी हार, वीर कन्याओंसे विवाह करना, द्वारकामें राजा नृगको शापसे छुड़ाना, सत्यभामा और जाम्बवती सहित स्यमन्तक मणि पाना, महाकालपुरसे ब्राह्मणको उसका मृत पुत्र ला देना, पौण्ड्रक राजाका वध, काशीपुरीका जलना और महायज्ञमें दन्तवक्र और शिशुपालका वध इत्यादि आपके चरित्र देखूँगा। और भी जो चरित्र आप द्वारकामें रहकर करेंगे, उनको भी मैं देखूँगा। उन

पवित्र चरित्रोंको कविगण पृथ्वीपर गावेंगे। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! एक दिन सब गोप लोग पर्वतशिखरोंपर पशु चराते हुए खेलने लगे। उस समय मयासुरका पुत्र महामायावी व्योमासुर गोपरूप धारण करके बालकोंमें मिल गया। खेलमें कुछ चोर, कुछ भेंड़ और कुछ चरवाहे बने। जो बालक चोर बने थे, वे पशु बने हुए बालकोंको चुराकर ले गये। वह व्योमासुर पशु बने हुए बहुतसे बालकोंको ले गया। वह जिन बालकोंको ले जाता, उनको एक पर्वतकन्दरामें डाल देता और शिलासे उसका द्वार बन्दकर आता था। इस प्रकार वहाँ केवल चार-पाँच बालक रह गये और सबको वह असुर ले गया। कृष्णचन्द्र जान गये कि यह काम उसी गोपरूपधारी असुरका है। जब वह फिर बालकोंको ले चला, तब भगवानने उसको पकड़कर दबा लिया। वह दैत्य व्याकुल होकर छटपटाने लगा। तब अच्युतने दोनों हाथोंसे पकड़कर उस दैत्यको पृथ्वीपर गिरा दिया। तदनन्तर कन्दरासे बालकोंका उद्धार करके कृष्णचन्द्र व्रजको चले गये।

अष्टत्रिंश अध्याय

अक्रूरकी व्रजयात्रा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! इधर महामति अक्रूरजी उस रातको मथुरामें रहे और प्रातःकाल रथपर चढ़कर नन्दजीके गोकुलको चले। मार्गमें उनके हृदयमें भगवानकी परमभक्तिका उदय हुआ। कृष्णदर्शनकी लालसासे वे परमानन्दका अनुभव कर रहे थे। वे विचारने लगे कि कृष्णदर्शन मिलना और उसके

फलस्वरूप संसारके पार पहुँच जाना मेरे लिए असंभव नहीं है। क्योंकि व्रजमें जाकर मैं कृष्णके चरणारविन्दोंको प्रणाम करूँगा। जो स्वरचित वर्णाश्रमधर्मके पालक हैं, जिनका सम्पूर्ण मंगलमय यश देवता लोग गाते हैं, वही ईश्वर यादव कुलमें उत्पन्न हुए हैं। अक्रूरजी मार्गभर इसी प्रकार कृष्णकी चिन्तामें मग्न रहे। जब उनका रथ गोकुलमें पहुँचा, तब सूर्यदेव भी अस्ताचलको चले गये थे। भूमिपर भगवानके चरणचिह्न पहचानकर अक्रूरजी उमंगसे झपटकर रथसे उतर पड़े और अहो! यह प्रभुके चरणोंकी धूल है, कहकर लोटने लगे। प्रेमके प्रभावसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंमें आनन्दके आँसू आ गये। हे महाराज! जब अक्रूरने पीताम्बर तथा नीलाम्बर पहने कृष्ण-बलदेव दोनों भाइयोंको देखा तो शीघ्र रथसे उतर पड़े। उन्होंने उनके चरणोंमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया। हरिदर्शन-जनित परमानन्दसे उत्पन्न आँसूसे उनके नेत्र भर आये, शरीर पुलकित हो उठा और उत्कण्ठासे गला रुँध गया। थोड़ी देरतक वे अपना परिचय भी न दे सके। हे राजन्! किन्तु प्रणतवत्सल भगवानने अक्रूरका अभिप्राय जान लिया और प्रसन्नतापूर्वक चक्रांकित बाहुओंसे उनको खींचकर गलेसे लगा लिया। तदनन्तर अक्रूरजीका हाथ पकड़कर बलभद्रजी भाईके साथ उनको घर ले गये। घर ले जाकर बलदेवजीने स्वागत-सत्कारके बाद श्रेष्ठ आसन दिया, विधिपूर्वक पहले पैर धोकर मधुपर्क दिया। तदनन्तर बलभद्रने श्रद्धापूर्वक अक्रूरको भोजन कराया। इस प्रकार सत्कार हो जानेपर नन्दजीने अक्रूरसे पूछा—हे अक्रूरजी! निर्दय और क्रूर कंसके जीवित रहते तुम

लोगोंको हर घड़ी प्राणोंका खटका लगा रहता होगा। तुम्हारे दिन कैसे बीत रहे हैं ? हे राजन् ! इस प्रकार अक्रूरसे नन्दने कुशल-प्रश्न पूछा। कृष्ण-बलदेवके आदर-सत्कारसे अक्रूरकी थकावट दूर हो गयी।

ऊनचत्वारिंश अध्याय

अक्रूरके साथ श्रीकृष्णकी मथुरायात्रा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! सायन्तन भोजनके उपरान्त देवकीनन्दन कृष्णचन्द्र अक्रूरके पास आकर बैठे। उन्होंने अक्रूरसे पूछा—कंसका व्यवहार कैसा है और अब वह क्या करना चाहता है ? कृष्णकी बात सुनकर अक्रूरने कंसका पूरा हाल और व्यवहार बताया। अक्रूरने कहा—कंसने यादवोंसे घोर विरोध आरम्भ किया है। वह वसुदेवको मारनेको उद्यत था। नारदजी उसको बता गये हैं कि आप वसुदेवके पुत्र हैं। तदनन्तर उन्होंने दूत बनकर आने और कंसकी दुरभिसन्धिका वृत्तान्त कह दिया। सो सुनकर कृष्ण और बलदेवजी हँसे और अपने पिताको कंसकी आज्ञा सुना दी। नन्दने भी उसी समय यह घोषणा करवा दी कि सब गोरस और भाँति-भाँतिकी भेंटें लेकर अपने-अपने छकड़े सुसज्जित करो। सबेरे राजा कंसके यहाँ होनेवाले धनुष-यज्ञमें गोरस और भेंट देनेके लिए चलना होगा।

सुन पड़ी धुनि एक इसी घड़ी।
अति अनर्थकरी इस ग्राम में॥
विपुल वादित वाद्य-विशेष से।
निकलती अविराम ध्वनी वही॥

मनुज एक विघोषक वाद्य की ।
प्रथम था करता बहु ताड़ना ॥
फिर मुकुन्द प्रवास प्रसंग यों ।
कथन था करता स्वर तार से ॥
अमित विक्रम कंस नरेश ने ।
धनुषयज्ञ विलोकन के लिए ॥
कल समादर से व्रजभूप को ।
कुँवर संग निमंत्रित है किया ॥
यह निमंत्रण लेकर आज ही ।
सुत श्वफल्क समागत हैं हुए ॥
कल प्रभात हुए मथुरापुरी ।
गमन भी अवधारित हो चुका ॥
इस सुविस्तृत - गोकुल ग्राम में ।
निवसते जितने वर गोप हैं ॥
सकल को उपढौकन आदि ले ।
उचित है चलना मथुरापुरी ॥
इसलिए यह भूप निदेश है ।
सकल गोप समाहित हो सुनो ॥
सब प्रबन्ध हुआ निशि में रहे ।
कल प्रभात हुए न विलम्ब हो ॥

हे राजन् ! यह घोर घोषणा सुनकर गोपियाँ बहुत व्यथित हुईं कि कृष्ण-बलदेव दोनोंको ले जानेके लिए व्रजमें अक्रूर आये हैं। व्यथा और शोकसे उनके मुख-कमल मुरझा गये। वे बहुत ही दुःखित और भयभीत हुईं और एकत्र होकर विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं—हे विधाता ! तुम बड़े

निठुर हो। तुम देह-धारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बाँधकर फिर वियोग करा देते हो। लड़कोंके खेलके समान तुम्हारे काम मूर्खतापूर्ण हैं। एक गोपीने कहा—इस करुणाहीन व्यक्तिका अक्रूर नाम न होना चाहिये। यह बड़ा ही क्रूर है, क्योंकि यह प्यारे कृष्णको यहाँसे ले जानेको उद्यत है। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! गोपियाँ विरहकी चिन्तासे अत्यन्त कातर हो लोकलाजको छोड़कर ऊँचे स्वरसे गोविन्द! दामोदर! माधव! कहकर विलाप करने लगीं। गोपियाँ विलाप कर ही रही थीं इतनेमें प्रातःकाल हो गया। अक्रूरने भी सन्ध्यावन्दन करके रथ जोत दिया। नन्द आदि गोप भी उनके साथ ही उपहार और गोरससे भरे असंख्य कलश छकड़ोंपर लादकर चले। दुःखित गोपियाँ उस स्थानपर गयीं और प्रियतम कृष्णकी प्रेमपूर्ण चितवनसे कुछ आश्वस्त होकर सन्देशकी प्रत्याशामें खड़ी रहीं। उनको दुःखित देखकर कृष्णने सन्देश दिया—दुःखित मत होना, मैं शीघ्र ही आऊँगा।

लोगों को यों परम दुख से देख उन्मत्त होते,।
नीचे आये उतर रथ के नन्द औ यों प्रबोधा॥
क्यों होते हो विकल इतना यान क्यों रोकते हो।
मैं ले दोनों हृदय-धन को दो दिनों में फिरूँगा॥

× × ×

टापों का नाद जब तक था कान में स्थान पाता।
देखी जाती जब तक रही यान ऊँची पताका॥
थोड़ी-सी भी जबतक रही व्योम में धूलि छाती।
यों ही बातें विविध कहते लोग ऊबे खड़े थे॥

श्रीकृष्णके प्रेमपूर्ण वाक्योंसे गोपियोंको कुछ धैर्य हुआ। कृष्णके ओझल हो जानेपर वे अपने-अपने घरोंको लौटीं और प्रियतमके पवित्र चरित्र गा-गाकर विरहके दिन बिताने लगीं। कृष्णभगवान भी वायु-सदृश वेगवाले रथसे पापनाशिनी यमुनाके किनारे पहुँच गये। वहाँ दोनों भाइयोंने स्नान किया और निर्मल जल पीकर रथमें जा बैठे। फिर उनसे आज्ञा लेकर अक्रूर यमुनाके किनारे आये और विधिवत् स्नान किया। अक्रूरजी जलमें घुसकर सनातन ब्रह्मका जप करने लगे। जप करते-करते उन्होंने कृष्ण-बलदेव दोनों भाइयोंको वहाँ देखा। यह देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये और सोचने लगे—वे लोग तो रथपर बैठे हैं, यहाँ कैसे आये? यदि यहाँ हैं तो रथपर न होंगे। यह विचारकर अक्रूरने जलसे बाहर सिर निकाला। रथपर देखा तो दोनों भाई पहलेकी भाँति बैठे हुए हैं। अक्रूरजीने फिर जलमें गोता लगाया। फिर उन्होंने जलके भीतर देखा कि अनन्तदेव विराजमान हैं, सिद्ध सर्प और असुरगण सिर झुकाये उनकी स्तुति कर रहे हैं। उन शेषजीकी गोदमें चतुर्भुज शान्तमूर्ति भगवान विराजमान हैं। ब्रह्मा-रुद्र आदि सुरेश्वर नारद-वसु आदि श्रेष्ठ भक्तजन भिन्न-भिन्न भावोंसे उनकी स्तुति कर रहे हैं। बहुत देरतक अक्रूरजी यह दृश्य देखते रहे। परमप्रीतिसे उनके शरीरमें रोमांच हो आया, नेत्रोंमें आँसू भर आये और भक्तिभावसे हृदय गद्‌गद हो गया। तदनन्तर श्रीकृष्णको परमेश्वर समझकर अक्रूरजी परम भक्तिपूर्वक भगवानकी स्तुति करने लगे।

चत्वारिंश अध्याय

अक्रूर द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरने कहा—हे कृष्ण ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप बालक नहीं, वरन् आदि पुरुष और जगत्के अन्तर्यामी हैं। आप सब कारणोंके कारण अव्यय नारायण हैं। आपकी नाभिमें उत्पन्न कमलसे संसारके सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा भी मायासे आवृत रहनेके कारण आपके निर्गुण रूपको नहीं जानते। योगी और साधुगण आपको अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवका साक्षी, उनका अन्तर्यामी और नियन्ता जानकर आप ही की आराधना करते हैं। कर्मोंसे निवृत्त शान्त ज्ञानी लोग ज्ञानयज्ञ द्वारा आपका पूजन करते हैं। आप सर्वदेवमय परमेश्वर हैं। हे प्रभो ! आपके चरणोंका दर्शन मिलना सुदुर्लभ है। आपकी कृपा न होनेसे साधु-सेवा अथवा आपमें मति नहीं होती। हे यदुनाथ ! आपको प्रणाम है। हे भगवन् ! विषय-वासनाओंसे मेरी बुद्धि दीन हो रही है। हे भगवन् ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे भगवन् ! विज्ञान आपका वैभव है। आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। आप काल-कर्म-स्वभाव आदिके नियन्ता हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो ! मुझ शरणागतको सनाथ कीजिये।

एकचत्वारिंश अध्याय

श्रीकृष्णका मथुरापुरीमें प्रवेश

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! कृष्णचन्द्रने अक्रूरको जलके

भीतर अपना अपूर्व रूप दिखाकर फिर इस तरह छिपा लिया, जिस तरह बाजीगर अपनी कला दिखाकर उसे अन्तर्हित कर देता है। अक्रूरजी भी जलमें भगवानको न देखकर बाहर निकले और शीघ्र सन्ध्या-वन्दनादि आवश्यक कृत्य करके रथपर आये। भगवानने अक्रूरसे पूछा—हे अक्रूर! तुमने पृथ्वीमें, आकाशमें या जलमें कुछ अद्भुत बात देखी है क्या? हमको तुम्हारे मुख-मण्डलपर कुछ आश्चर्यके चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। इसीसे ऐसा अनुमान हो रहा है। अक्रूरने कहा—हे भगवन्! मैंने सब देख लिया। पृथ्वी, आकाश और जलमें जो कुछ अद्भुत है, वह सब आपमें विराजमान है। आप विश्वरूप हैं। मैंने आपको विशेष-रूपसे प्रत्यक्ष देख लिया, तब कौन-सी अद्भुत वस्तु नहीं देखी। पृथ्वी, आकाश और जलकी सभी बातें आपमें हैं। आपके सिवा पृथ्वीमें और कौन वस्तु अद्भुत है? हे महाराज! यह कहकर अक्रूरने रथ हाँक दिया और सन्ध्या होते-होते कृष्ण-बलदेवको मथुराके निकट पहुँचा दिया। मार्गमें गाँवोंके लोग भगवानका अनूप रूप देखकर परम प्रसन्न हुए। नन्द आदि व्रजवासीगण पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे। नगरके उपवनमें पहुँचकर वे लोग कृष्ण-बलदेवके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान कृष्ण उन लोगोंसे मिले। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने अक्रूरका हाथ अपने हाथमें लेकर हँसते हुए कहा—हे तात! तुम रथ लेकर नगरमें जाओ और अपने घरमें विश्राम करो। हम यहीं कुछ कालतक ठहरेंगे और फिर पुरीकी शोभा देखेंगे। अक्रूरजीने कहा—हे प्रभो! आपको छोड़कर मैं अकेले पुरीमें न जा सकूँगा। हे

भक्तवत्सल ! मैं आपका भक्त हूँ। मुझको मत छोड़िये। बलदेव और सुहृद्गण गोपोंके साथ चलकर आप हमारे घरको सनाथ कीजिये। श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—हे अक्रूर ! मैं बलदेवके साथ अवश्य तुम्हारे घर आऊँगा और यदुवंशसे वैर करनेवाले कंसको मारकर सुहृद्जनोंको प्रसन्न करूँगा। भगवानके वचन सुनकर अक्रूरजीने वहाँसे कंसके पास जाकर कृष्ण-बलदेवके आनेका समाचार सुनाया और फिर अपने घर चले गये। तदनन्तर श्रीकृष्णजी बलदेवके साथ वयोवृद्ध तथा हमजोली गोपगणको लिये मथुरापुरी देखनेके लिए चले। परम शोभनीय पुरीकी शोभा निहारते हुए गोपोंके साथ उन्होंने राजमार्गसे पुरीमें प्रवेश किया। पुरनारियाँ कृष्ण-बलरामके आनेका समाचार पाते ही उनको देखनेके लिए उत्सुक होकर अपने-अपने मकानोंकी छतोंपर चढ़ गयीं। हे राजन् ! श्रीकृष्णने लक्ष्मीका मन हरनेवाले अपने मनोहर श्यामशरीरसे पुरनारियोंको नयनानन्द देकर उनके हृदय हर लिये। पुरनारियोंके सौभाग्यका उदय हुआ। कृष्णचन्द्रको देखकर उन्होंने अपने नेत्र कृतार्थ कर लिये। उनके नेत्रकमल प्रफुल्लित हो उठे। वे महलोंपर चढ़कर कृष्णपर फूल बरसाने लगीं। ब्राह्मणादि द्विजातियोंने भी ठौर-ठौरपर दही, अक्षत, जल, माला, चन्दन आदि सामग्रीसे दोनों भाइयोंका पूजन किया। पुरनारियाँ आपसमें कहने लगीं—अहो ! गोपियोंने पूर्वजन्ममें कौन महातप किया था, जो मनुष्यमात्रको आनन्द देनेवाली इन मनोहर मूर्तियोंको सदा देखती रहती हैं। जिधरसे कृष्ण जा रहे थे, उधरसे ही धोए हुए उत्तम वस्त्र लिये एक धोबी आ रहा था। कृष्णने कहा—हे

धोबी ! कुछ-अच्छे-अच्छे वस्त्र हमको दे दे। वह धोबी राजा कंसके कपड़े धोता था। अत्यन्त कुपित होकर उसने तिरस्कार करते हुए कहा—तुम गँवार चरवाहे पर्वत-वनमें विचरनेवाले हो। तुम क्या ऐसे ही कपड़े पहनते हो ? ये कपड़े राजा कंसके हैं। यदि जीवित रहना है तो यहाँसे तुरन्त भाग जाओ। इस प्रकार उस धोबीके तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर भगवानने कुपित होकर उसके मस्तकमें एक घूँसा मारकर धाराशायी कर दिया। यह देखकर उसके साथके दूसरे धोबी सब कपड़े राहमें ही छोड़कर भाग गये। तब अच्युतने वे वस्त्र ले लिये। कृष्ण और बलभद्रने उनमेंसे चुन-चुनकर कपड़े पहिने। फिर सब गोपोंने अपने इच्छानुसार वस्त्र ले लिये और बाकी कपड़े वहीं छोड़कर कृष्णचन्द्र आगे बढ़े। थोड़ी दूर आगे एक तन्तुवाय (कपड़ा सीनेवाला) मिला। उसने वस्त्रनिर्मित विविध आभूषणोंसे दोनों भाइयोंके वेषको सजा दिया। भगवानने प्रसन्न होकर उसको परलोकमें सारूप्य मुक्ति और इस लोकमें लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य तथा स्मरणशक्ति आदि अनेक दुर्लभ वर दिये। वह से दोनों भाई अपने भक्त सुदामा मालीके घर गये। वह दोनों भाइयोंको देखकर उठ खड़ा हुआ। उसने दण्डवत् प्रणाम और यथाविधि उनका पूजन किया। उसने कहा—आपके श्रीचरण आनेसे मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा कुल भी पवित्र हो गया। आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ। हे राजन् ! प्रसन्नचित्त सुदामाने इस प्रकार निवेदन करके दोनों भाइयोंकी इच्छाके अनुसार प्रशंसनीय फूलोंकी मालाएँ बनाकर उनको पहनायीं। दोनों भाई मालाओंसे विभू-

षित होकर परम प्रसन्न हुए। दोनों भाइयोंने उसको अभिलषित वर देनेकी इच्छा की और उसके इच्छानुसार वर देते हुए कहा—मुझमें तुम्हारी अचल भक्ति होगी, मेरे भक्तोंसे मित्रता रहेगी और सब प्राणियोंके लिए तुम्हारे हृदयमें दयाभाव रहेगा। इसके अतिरिक्त हे राजन् ! मालीने जो नहीं माँगा था वह प्रबल बल, दीर्घायु, वंश बढ़ानेवाली स्थिर लक्ष्मी, यश और कान्ति आदि अनेक वर भी उसको दिये। तदनन्तर बलदेवके साथ कृष्णचन्द्र वहाँसे आगे चले।

द्विचत्वारिंश अध्याय

कुब्जाका सीधा होना और बुरे स्वप्नसे कंसकी घबड़ाहट

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! तदनन्तर माधव राजमार्गसे चलने लगे। आगे चलनेपर उन्होंने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती जा रही है। किन्तु सुन्दरी होनेपर भी वह स्त्री कुबड़ी थी। श्रीकृष्णने हँसकर उससे पूछा—हे सुन्दरि ! तुम कौन हो ? यह अनुलेपन तुम किसके लिए ले जा रही हो ? हमसे ठीक-ठीक बताओ। बता दोगी तो तुम्हारा मङ्गल होगा। हम चाहते हैं कि यह उत्तम अनुलेपन तुम हमको दे दो। ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र तुम्हारा कल्याण होगा। कुब्जाने कहा—हे सुन्दरश्रेष्ठ ! मैं तीन जगहसे कुबड़ी हूँ। मैं कंसकी दासी हूँ। राजाके अङ्गों और मस्तकमें चन्दन आदि अनुलेपन लगाना ही मेरा काम है। मेरे प्रस्तुत किये हुए अङ्गलेपनपर उनकी परम प्रीति है। आप पुरुषरत्न हैं। आपके सिवा और कौन इस अनु-

लेपनके योग्य है ! बादको कृष्ण-बलदेवके रूप, सुकुमारता, मधुरता, रसिकता, हँसी, बातचीत, चितवन आदिसे चित्त मोहित होनेके कारण कुब्जाने दोनों भाइयोंको वह अनुलेपन दे दिया। पीत आदि वर्णवाले अङ्गरागोंसे अनुरंजित होकर दोनों भाई परम शोभायमान हुए। हे राजन् ! तदनन्तर प्रसन्न होकर अपने दर्शनका फल दिखानेके लिए भगवानने तीन जगह टेढ़ी और सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधा करना चहा। भगवानने अपने दोनों पैरोंसे कुब्जाके दोनों पैरोंको आगेसे दबाया और दो अँगुलियाँ उसकी ठोढ़ीमें लगाकर एक झटका दिया। अच्युतके झटकेसे उसका शरीर सीधा हो गया। तब वह कुब्जा शीघ्र ही एक बृहत् नितम्ब और पीन पयोधरोंसे सुशोभित परम सुन्दरी श्रेष्ठ स्त्री बन गयी। हे राजन् ! तब कुब्जा कामातुरा हो भगवानके दुपट्टेका छोर पकड़कर कहने लगी—हे वीर ! आओ, घर चलें। तुमको यहाँ छोड़कर मैं अकेले घर नहीं जा सकती। तुमने मेरा मन मोहित कर लिया है। हे पुरुषश्रेष्ठ ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये। उस स्त्रीके इस प्रकार प्रार्थनावाक्य सुनकर बलदेवके आगे ही अपने साथी गोपोंकी ओर निहारते हुए कृष्णचन्द्रने हँसकर कहा—हे सुन्दरी ! पहले कंसका वध और अपने कार्य पूरा करके मैं तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। इस प्रकार मधुरवचनोंसे उसको विदा करके श्रीकृष्णचन्द्र राजमार्गसे आगे चले। बाजारके वणिक् लोग भी दोनों भाइयोंपर मोहित हो गये। उन्होंने विविध उपहारोंसे भगवानका पूजन किया। जिन-जिन रमणियोंने दोनों भाइयोंको देखा, उन-उनके मन कामके वेगसे चञ्चल हो

गये। उनकी वेणियाँ शिथिल होकर खुल गयीं, वस्त्र और कंगन खिसक-खिसककर गिर पड़े। वे चित्रलिखित-सी होकर दोनों मूर्तियोंको निहारती रहीं। उनको अपने शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रही। तदनन्तर पुरवासियोंसे पूछते हुए भगवान धनुषयज्ञकी भूमि-की ओर चले। धनुषभवनमें पहुँचकर कृष्णने देखा कि वहाँ एक बड़ा भारी इन्द्रधनुष जैसा अद्भुत धनुष रखा हुआ है। बहुतसे सिपाही उसकी रक्षा कर रहे हैं। वे रक्षक रोकते ही रहे, किन्तु कृष्णचन्द्रने नहीं माना और उसको लीलापूर्वक उठाकर तोड़ डाला। हे राजन्! धनुष टूटनेका प्रचण्ड शब्द भूमण्डल, अन्तरिक्ष और दशों दिशाओंमें गूँज उठा। वह भयानक शब्द सुनकर कंसका हृदय भयसे काँप गया। धनुषरक्षक कंसके अनुचर 'पकड़ लो, मारो' कहकर दौड़े। उनको दुष्ट अभिप्रायसे आते देखकर कृष्ण-बलदेव भी कुपित हुए और टूटे हुए धनुषके दोनों टुकड़े लेकर उन्हींसे उनको मार डाला। तब कंसने और बहुत-सी सेना भेजी। उस सेनाका संहार करके दोनों भाई धनुषभवनसे बाहर निकले और प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर घूमकर पुरीका वैभव और शोभा निहारने लगे। इस प्रकार दोनों भाई गोपोंके साथ इच्छानुसार विचरते रहे। इतनेमें सूर्यदेव अस्त हो गये और दोनों भाई गोपोंके साथ अपने डेरेको लौट पड़े। इधर कंसने यह समाचार सुना तो भयसे घबड़ाने लगा। चिन्ताके कारण उसे रात भर नींद नहीं आयी। उसको सोते-जागते अनेक असगुन देख पड़े। रात बीत गयी। सबेरा हुआ तो कंसने उठकर मल्लक्रीड़ारूप महोत्सवका आरम्भ करनेके लिए कर्मचारियोंको आज्ञा दी। सेवक लोगोंने

रंगभूमिको भलीभाँति सजाया। विविध बाजे बजने लगे। दर्शकगण यथायोग्य मंचपर जाकर बैठ गये। उस समय नन्द आदिक गोप भी आ गये। वे लोग भी एक मंचपर जाकर बैठे।

त्रिचत्वारिंश अध्याय

कुवलयापीडवध और मल्लभूमिमें भगवानका प्रवेश

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! तदनन्तर कृष्ण-बलदेव दोनों भाई मल्लोंकी रंगभूमिको गये। रंगद्वारपर आकर कृष्णने देखा कि महावतकी प्रेरणासे कालरूप गजराज कुवलयापीड़ रंगभूमिमें प्रवेश करनेका मार्ग रोककर खड़ा है। तब दुपट्टेको कमरमें लपेटकर महावतको सम्बोधन करके कृष्णचन्द्रने कहा—अरे महावत ! रास्ता छोड़कर हट जा। हमको भीतर जाने दे। देर मत कर, नहीं तो इसी समय तुझको और इस हाथीको यमलोक पहुँचाता हूँ। भगवानने जब इस प्रकार डाँटकर कहा तो महावत बहुत कुपित हुआ। उसने अंकुशसे भयानक गजराजको क्रोधित करके कृष्णकी ओर बढ़ाया। गजराजने झपटकर कृष्णको सूँड़में लपेट लिया। किन्तु भगवान सूँड़के वेठनसे छूटकर अलग हो गये और एक घूँसा मारकर उसीके पैरोंमें छिप गये। इधर-उधर कृष्णको न देखकर कुवलयापीड़ क्रोधसे लाल हो गया। फिर भगवानको ढूँढ़कर उसने लपेटना चाहा। भगवान पीछेसे पूँछ पकड़कर उसको सौ हाथतक पीछे घसीट ले गये और उस मतवाले हाथीको दायें-बायें घुमाने लगे। फिर सामने आकर भगवानने हाथीको एक घूँसा मारा। जब हाथी एकबार फिर झपटकर

आया तो कृष्णने सूँड़ हाथसे पकड़कर झटक दिया, जिससे वह गिर पड़ा। गिरे हुए हाथीको पैरसे दबाकर भगवानने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और उन्हींके प्रहारसे कुवलयापीड़ और महावतको प्राणहीन कर दिया। हे राजन्! तदनन्तर गजदन्त लिये ही कृष्ण और बलदेवने अपने साथी गोपोंके साथ रंगभूमिमें प्रवेश किया। दर्शक लोग आपसमें विविध वार्तालाप कर रहे थे और नगाड़े बज रहे थे। इसी अवसरपर चाणूरने कृष्ण और बलभद्रसे कहा—हे नन्दनन्दन! हे बलभद्र! तुम लोग पराक्रमी समझे जाते हो। महाराज कंसने सुना है कि तुम लोग मल्लयुद्धमें बहुत निपुण हो। इसीसे मल्लयुद्ध देखनेके लिए महाराजने तुम लोगोंको यहाँ बुलाया है। इस कारण आओ, हम तुम दोनों राजाकी इच्छा पूरी करें। यह सुनकर कृष्णने आनन्द प्रकट करके कहा—हम लोग महाराज भोजपतिकी वनचर प्रजा है। अतएव इनको प्रसन्न करना हमारा कर्तव्य है। किन्तु हम बालक हैं। अतएव अपने समान बलवाले बालकोंसे लड़कर राजाको प्रसन्न करेंगे। ऐसा उचित मल्लयुद्ध होना चाहिये, जिससे सभाके दर्शक लोगोंको अधर्मभागी न होना पड़े। चाणूरने कहा—तुम और महाबली बलभद्र दोनों भाई बालक या किशोर नहीं हो। तुमने अभी सहस्र हाथियोंके समान बलशाली उस गजराजको लीलापूर्वक मार डाला है। इसलिए बलवानसे ही मल्लयुद्ध करना पड़ेगा। इसमें कुछ अधर्म न होगा। हे कृष्ण! आओ, तुम मुझसे लड़ो और बलभद्र मुष्टिकसे युद्ध करें।

चतुश्चत्वारिंश अध्याय

कंसवध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार निश्चय होनेपर भगवान कृष्णचन्द्र चाणूरसे और बलदेव मुष्टिकसे भिड़ गये। भाँति-भाँतिके दाव-पेंच करते हुए कृष्ण और चाणूर जैसे युद्ध करने लगे, वैसे ही बलदेव और मुष्टिक भी युद्धमें प्रवृत्त हुए। भगवानने चाणूरके दोनों हाथ पकड़कर कई बार ऊपर घुमाया और फिर पृथ्वीपर पटक दिया। इससे चाणूरका मृतशरीर इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। उधर मुष्टिकने बलभद्रके हृदयमें दो घूँसे मारे। बलभद्रजीने भी एक तमाचा तानकर मारा। तमाचा लगते ही मुष्टिकका शरीर काँपने लगा, मुँहसे रुधिर निकलने लगा और उसका मृतशरीर पृथ्वीपर गिर पड़ा। हे राजन् ! इसके बाद कूट नामक मल्ल सामने आया। बलभद्रने अवज्ञा-पूर्वक बाएँ हाथके घूँसेसे उसे प्राण-विहीन कर दिया। उधर उसी समय शल और तोशल नामक मल्लोंके सिर कृष्णके चरणों-की ठोकरसे फट गये और दोनोंके प्राण निकल गये। यह देखकर अन्य असुर प्राण लेकर भाग गये। जब कोई युद्ध करनेवाला न रहा, तब चरणोंमें रत्नजटित नूपुर धारण किये हुए प्रसन्नचित्त कृष्ण और बलदेव अपने साथी ग्वालबालोंको अखाड़ेमें घसीटकर मल्लक्रीड़ा और नृत्य आदि करने लगे। कृष्णको छोड़कर और सब दर्शक, साधु-जन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणगण कृष्ण-बलदेवके इस कर्मसे प्रसन्न होकर वाह-वाह करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! जब श्रेष्ठ मल्ल मारे गये और बचे हुए भाग गये, तब

कंसने नगाड़ोंका बजना बन्द कराकर कहा—अरे! इन दुष्ट वसुदेवके दोनों पुत्रोंको पुरसे शीघ्र निकालकर गोपोंका सर्वस्व लूट लो और दुर्मति नन्दको वन्दी बना लो। यही नहीं, परमदुष्ट वसुदेव और उग्रसेनको भी उसके अनुगामियोंके साथ इसी समय मार डालो। हे राजन्! कंसकी ऐसी बात सुनकर कृष्ण बहुत ही कुपित हुए और तेजीसे उचककर उस ऊँचे मंचपर पहुँच गये। तब कंस तलवार और ढाल लेकर आसनसे सहसा उठ खड़ा हुआ और चोट करनेके लिए बाएँ और दाएँ भाँति-भाँतिके पैंतरे बदलने लगे। किन्तु कृष्णचन्द्रने उसके किरीट-मुकुट गिराकर जैसे गरुड़जी कुपित होकर काले नागको पकड़ते हैं, वैसे ही कंसके केश पकड़ लिये और उतने ऊँचे मंचसे उसको नीचे रंगभूमिमें ढकेल दिया। उसके ऊपर स्वयं कृष्णचन्द्र भी कूद पड़े। कृष्णने कंसके हाथीके समान मृतशरीरको सबके सामने ही पृथ्वीपर घसीटा। हे राजन्! उस समय बहुतसे लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। हे राजन्! कंसका चित्त सदा कृष्णकी चिन्तामें ही उद्विग्न रहता था। वह खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, सब समय चक्रधारी नारायणको अपनी आँखोंके आगे ही देखता रहता था। अन्त समयमें भी साक्षात् कृष्णचन्द्रने उसको अपने हाथों मारा। इसलिए उसको वही दुर्लभ कृष्णरूप प्राप्त हुआ। हे महाराज! अङ्क और न्यग्रोध आदि कंसके आठ छोटे भाई थे। वे भी अत्यन्त कुपित होकर भाईका बदला चुकानेके लिए कृष्ण और बलदेवके सामने दौड़कर आये। किन्तु रोहिणीतनय बलभद्रने उन सबको जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है, वैसे ही मार

डाला । उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और ब्रह्मा-रुद्र आदि देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करने लगे । अप्सराएँ नृत्य करने लगीं । हे महाराज ! तब कंस और उसके भाइयोंकी स्त्रियाँ शोकाकुल होकर रोती और सिर तथा छाती पीटती हुई वहाँपर आयीं । वीरशय्यापर सोये हुए अपने पतियोंके शरीरोंसे लिपटकर शोकसे विह्वल स्त्रियाँ आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं । भगवानने कंसकी स्त्रियोंको समझा-बुझाकर आश्वस्त किया और फिर उन्हींके द्वारा मरे हुए पतियोंके अन्तिम संस्कार कराये। तब कृष्ण-बलदेवजी माता-पिताके पास गये और बन्धनसे मुक्त करके चरण छूकर दण्डवत् प्रणाम किया । हे राजन् ! उस समय वसुदेव-देवकीको ज्ञान हुआ । उन्होंने जाना कि हमारे दोनों पुत्र वास्तवमें जगदीश्वर हैं । अतएव उन्होंने उनको हृदयसे नहीं लगाया, किन्तु हाथ जोड़कर खड़े रहे ।

पञ्चचत्वारिंश अध्याय

कृष्ण-बलदेवका विद्याध्ययन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जान गये कि सांसारिक सुखका पूरा अनुभव होनेके पहले ही हमारे माता-पिता हमको ईश्वर समझ लिये हैं । इनको अभी हमारे प्रति ईश्वरभावकी आवश्यकता नहीं है । यह विचारकर भगवानने पिता-माताकी ज्ञानदृष्टिपर जगतभरको मोहित करनेवाली अपनी मायाकी पट्टी डाल दी । यादवश्रेष्ठ कृष्णने बड़े भाईके साथ

पिता-माताके पास जाकर नम्र-भावसे कहा—हे पिता! हे माता! हम आपके पुत्र हैं। निरन्तर प्रबल इच्छा रहनेपर भी आप हमारे लड़कपनकी, पौगण्ड अवस्थाकी और किशोर अवस्थाकी क्रीड़ाएँ नहीं देख सके। हम भी अभागे हैं। क्योंकि दैववश हम आपके निकट रहकर आपको सुखी नहीं बना सके। पिता-माताके प्यार-दुलारका आनन्द भोगना भी हमारे भाग्यमें नहीं बदा था। आप हम लोगोंको क्षमा करें। हे राजन्! मायामनुष्य विश्वरूप हरिके ये वाक्य सुनकर वसुदेव और देवकी मोहित हो गये। देवकी-वसुदेवने पुत्रोंको गोदमें लेकर गलेसे लगा लिया। परमानन्दसे उनके शरीर पुलकित हो उठे और आनन्दाश्रुसे कंठ रुँध गये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! इस प्रकार माता-पिताको आश्वासन देकर भगवान देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी बड़े भाईके साथ अपने नाना उग्रसेनके पास गये और उनको बन्धनसे मुक्तकर सम्पूर्ण यादवोंका राजा बनानेके उपरान्त कहने लगे—हे महाराज! हम आपकी प्रजा हैं। हमको आज्ञा दीजिये। हम उसका पालन करेंगे। राजा ययातिके शापके कारण हम यादव लोग राजाके आसनपर नहीं बैठ सकते। अतएव हमारी प्रार्थनासे आप निष्कण्टक राज्य कीजिये। यद्यपि आप भी यादव हैं, तथापि मेरी आज्ञासे आपको कोई दोष नहीं लग सकता। हे राजन्! विश्वकर्ता कृष्णचन्द्रके सजातीय और सम्बन्धी विविध वंशोंमें उत्पन्न यादवगण कंसके भयसे दूर देशोंमें भाग गये थे और दुःसह प्रवासका कष्ट भोग रहे थे। भगवानने उन लोगोंको मथुरामें बुलाया और उन लोगोंने फिर अपने-अपने घर बसाये। हे

राजन् ! तदनन्तर भगवान कृष्ण और बलभद्रजी नन्दजीके पास गये और कहने लगे—हे पिताजी ! आप लोगोंने स्नेहपूर्वक हमारा लालन-पालन किया है। जिनको पालनेमें असमर्थ बन्धु तज देते हैं और जो अपना भरण-पोषण आप नहीं कर सकते, उन बालकोंको अपने पुत्रके समान पालनेवाले ही उनके सच्चे माता-पिता होते हैं। हे पिता ! अब आप लोग व्रजको जाइये। हम कुछ दिन स्वजनोंको सुखी करके आप लोगोंको देखनेके लिए अवश्य आयेंगे। हे राजन् ! भगवान अच्युतने इस प्रकार व्रजवासियों और नन्दको समझाया और अनेक वस्त्र-आभूषण-पात्र आदि उपहार देकर सादर उनका पूजन किया। कृष्ण-बलरामके वाक्य सुनकर स्नेहसे विह्वल नन्दजीने दोनों भाइयोंको गलेसे लगा लिया। नन्दजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बड़े कष्टसे धीरज धारण करके गोपगण सहित नन्दजी विदा हुए और व्रजको चले। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! तदनन्तर वसुदेवने अपने पुरोहित गर्गाचार्य और अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाया और दोनों पुत्रोंका उनसे यथाविधि यज्ञोपवीत-संस्कार कराया। वसुदेवने उन ब्राह्मणोंको अलंकारोंसे भलीभाँति भूषित किया और उनको बछड़े समेत गायें देकर सन्तुष्ट किया। यज्ञोपवीतसंस्कार हो जानेपर द्विजपद पाकर कृष्ण-बलदेवने ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया। कृष्ण-बलदेव जगदीश्वर और सब विद्याओंके प्रकट करनेवाले सर्वज्ञ होकर भी मनुष्य-लीलाओंसे अपना स्वयंसिद्ध ज्ञान छिपाये हुए थे। लोकाचारके अनुसार गुरुकुलमें रहनेकी इच्छासे दोनों भाई अवन्तिपुरनिवासी काश्यपगोत्रीय सान्दीपनिनामक मुनिके

पास गये। वहाँ इन्द्रियदमनपूर्वक दोनों भाई पढ़ने लगे। वहाँ दोनों भाई ईश्वरके समान गुरुसेवामें तत्पर रहते थे। गुरुने साङ्गोपाङ्गवेद और उपनिषद उनको पढ़ाये। हे राजन्! बहुत ही थोड़े समयमें कृष्ण और बलरामने शिक्षा प्राप्त कर ली। पढ़ना समाप्त होनेपर अन्तमें उन्होंने गुरुसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिए प्रार्थना की। कृष्ण-बलदेवकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धि देखकर स्त्रीके परामर्शानुसार सान्दीपनि मुनिने गुरुदक्षिणामें अपना वही मरा हुआ पुत्र माँगा, जो पहले प्रभासक्षेत्रके बीच महासागरमें डूब गया था। 'तथास्तु' कहकर अनन्तपराक्रमशाली महारथी दोनों भाई रथपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये और समुद्रके किनारे जाकर क्षणभर ठहर गये। उनका आगमन जानकर समुद्र पुरुषरूपसे उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। भगवानने समुद्रसे कहा कि—तुम अपने महातरंगमें हमारे जिस गुरुपुत्रको बहा ले गये थे, उसे लाकर दे दो। समुद्रने कहा—हे देव! मैं उस बालकको नहीं हर ले गया था। मेरे जलमें एक शंखरूपधारी पञ्चजननामक महादैत्य रहता है—अवश्य वही उस बालकको ले गया होगा। यह सुनकर भगवान जलके भीतर गये और उस पञ्चजन दैत्यको मार डाला। परन्तु उस दैत्यके पेटमें भी बालक नहीं देख पड़ा। तब भगवान उस दैत्यके अङ्गका पांचजन्यनामक शंख लेकर रथपर आये और बड़े भाईके साथ यमराजकी संयमनी पुरीको गये। वहाँ जाकर भगवानने अपना शंख बजाया। शंखका प्रचण्ड शब्द सुनकर यमराज बाहर आये। यमराजने भगवानसे कहा—हे प्रभो! हम आपकी क्या सेवा करें? श्रीकृष्णने कहा—हमारे

गुरुपुत्रको अभी ला दो। 'जो आज्ञा' कहकर यमराज उसी समय गये और उनके गुरुपुत्रको उसी समय ले आये। कृष्ण-बलराम उस बालकको लेकर गुरुके निकट आये और गुरुको उनका पुत्र देकर कहने लगे कि और आप क्या चाहते हैं? गुरुने कहा—हे पुत्रों! तुम भलीभाँति मुझको गुरुदक्षिणा दे चुके। जो लोग तुम्हारे समान शक्तिमान शिष्यके गुरु हैं, उनकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रह सकती। हे दोनों वीरवरो! तुम लोग अब घर जाओ। हे राजन्! इस प्रकार गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई वायुवेगशाली रथपर चढ़कर अपने पुरको चले गये। बहुत दिनोंपर कृष्ण-बलदेवके दर्शन पाकर सब प्रजागण अतिशय आनन्दित हुए।

इति श्रीदशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध समाप्त।

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध

षट्चत्वारिंश अध्याय

उद्धवकी व्रजयात्रा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! एक समय कृष्णने अपने प्रिय सखा और परमभक्त उद्धवजीको बुलाकर कहा—हे सौम्य उद्धव ! तुम शीघ्र व्रज जाकर हमारे माता-पिताको प्रसन्न करो और मेरा संदेश सुनाकर व्रजांगनाओंकी वियोगव्यथाको शान्त करो ।

जी में बात अनेक बार यह थी मेरे उठी मैं चलूँ ।
प्यारी भावमयी सुभूमि व्रज में दो ही दिनों के लिए ॥
बीते मास कई परन्तु अब भी इच्छा न पूरी हुई ।
नाना कार्य - कलाप की जटिलता होती गयी बाधिका ॥

× × ×

देखो यद्यपि है अपार, व्रज के प्रस्थान की कामना ।
होता मैं तब भी निरस्त नित हूँ व्यापी द्विधा में पड़ा ॥

ऊधो दग्ध वियोग से व्रज - धरा है हो रही नित्यशः।
जाओ सिक्त करो उसे सदय हो आमूल ज्ञानाम्बु से ॥
मेरे ही तुम बंधु विज्ञवर हो आनन्द की मूर्त्ति हो।
क्यों मैं जा व्रज में सका न अब भी हो जानते भी इसे ॥
कैसी हैं अनुरागिणी हृदय से माता पिता गोपिका।
प्यारे है यह भी छिपी न तुम से, जाओ अतः प्रातः ही ॥
जैसे ही लघु वेदना हृदय की औ दूर होवे व्यथा।
पावें शान्ति समस्त लोग न जलें मेरे वियोगाग्नि में ॥
ऐसे ही वर - ज्ञान तात व्रज को देना बताना क्रिया।
माता का सविशेष तोष करना औ वृद्ध - गोपेश का ॥

× × ×

उद्धव ! बेगिही व्रज जाहु।
सुरति सँदेस सुनाय मेटो बल्लभनि को दाहु ॥
काम पावक तूलमय तन-बिरह साँस समीर।
भसम नाहिन होन पावत लोचनन के नीर ॥

× × ×

कहौं कहा बनाय तुमसों सखा साधु प्रवीन।
सूर सुमति बिचारिये क्यों जियैं जल बिनु मीन ॥

उनका मन मुझमें ही लगा रहता है। मैं उनका जीवनप्राण हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! यह सुनकर उद्धवजी बहुत प्रसन्न हुए और आदरसहित स्वामीका सन्देश लेकर रथपर चढ़कर नन्दके गोकुलको चले। सूर्य अस्त होनेके समय उद्धवजी नन्दके घर पहुँच गये। श्रीकृष्णके प्रिय सेवक उद्धवको देखकर नन्दजीके आनन्दकी सीमा नहीं रही। उन्होंने जल्दीसे उठकर उद्धवको

गलेसे लगा लिया और साक्षात् कृष्ण समझकर उनका पूजन किया। जब उद्धवजी सुस्वादु अन्न भोजनकर सुखपूर्वक बिछौनेपर बैठे और पैर दबाकर उनकी थकावट मिटा दी गयी, तब नन्दजीने पास आकर उनसे पूछा—हे महाभाग ! हमारे परममित्र वसुदेवजी बन्धनसे मुक्त होकर सुहृद्गण और पुत्रोंके साथ कुशलसे हैं ? हे उद्धव ! क्या कृष्णचन्द्र हमारी, सुहृद्गणकी, सखाजनोंकी, गोपोंकी, गौओंकी वृन्दावन या गोवर्धन पर्वतकी कभी याद करते हैं ? क्या स्वजनोंको देखनेके लिए एक बार गोविन्द यहाँ आवेंगे ? शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! नन्द-यशोदाका भगवानमें प्रगाढ़ अनुराग देखकर उद्धवजी परम प्रसन्न हुए और नन्दजीको विविध उपदेशोंसे समझाया। उन्होंने कहा—हे महाभाग नन्दजी ! और महाभागा यशोदाजी ! तुम खेद मत करो। शीघ्र ही तुम अपने निकट श्रीकृष्णचन्द्रको देखोगे। वे समदर्शी हैं। इस कारण उनकी दृष्टिमें उत्तम, अधम या सम कोई नहीं है। हे राजन् ! इस प्रकार कृष्णके प्रिय अनुचर उद्धव और नन्दमें बात-चीत होते-होते रात बीत गयी। कुछ देर बाद भगवान सूर्यका उदय होनेपर व्रजवासी लोग नन्दके द्वारपर सुवर्णमय रथ खड़ा देखकर परस्पर कहने लगे कि यह रथ किसका है ? गोपियाँ उस रथको देखकर कहने लगीं कि कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिए जो आकर कमललोचन कृष्णको मथुरा ले गया था, वही क्रूर अक्रूर क्या फिर आया ? अब वह क्यों आया है ? क्या अब हमारे कृष्णरूप प्राणसे रहित शरीरोंके मांससे अपने मरे हुए स्वामीका श्राद्ध करेगा ? हे राजन्! इस प्रकार गोपियाँ कह ही रहीं

थीं, इतनेमें उद्धवजी यमुनातटसे स्नान-सन्ध्या आदि आह्निक कर्म करके आ गये ।

सप्तचत्वारिंश अध्याय

उद्धव द्वारा गोपियोंको तत्त्व ज्ञानका उपदेश

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! श्रीकृष्णके अनुचर उद्धवकी मनोहरमूर्ति और वेष-भूषा देखकर गोपियाँ विनयावनत हो गयीं और सलज्ज हास्य, कटाक्ष और मधुर वचनोंसे उन्होंने उनका सत्कार किया । फिर एकान्तमें उद्धवजीको सुन्दर आसनपर बैठाकर गोपियोंने स्वागत और कुशलप्रश्नके उपरान्त कहा—हम जानती हैं कि तुम यदुपतिके सेवक हो । पिता-माताको प्रसन्न करनेके लिए ही तुम्हारे प्रभुने तुमको भेजा है । इसीसे तुम यहाँ आये हो । यह ठीक ही है । मुनि लोग भी बन्धुओंके स्नेहानुबन्धको नहीं छोड़ सकते । बन्धुओंके सिवा अन्य लोगोंसे जो मित्रता की जाती है, वह किसी न किसी प्रयोजनसे की जाती है । स्त्रियोंसे पुरुषोंकी मित्रता और भ्रमरोंका फूलोंपर अनुराग इस तरहकी स्वार्थ-पूर्ण मित्रताके उदाहरण हैं । जब मनुष्य निर्धन हो जाता है, तब वेश्या उसको छोड़ देती है—बात तक नहीं करती । रक्षा करनेमें असमर्थ राजाको प्रजागण छोड़ देते हैं । विद्या पढ़ लेनेपर शिष्य लोग अपने गुरुको छोड़ देते हैं । दक्षिणा पा जानेपर ऋत्विक् लोग यजमानको छोड़ देते हैं । फल न रहनेपर पक्षीगण वृक्षको छोड़ देते हैं । अतिथि लोग भोजन करनेके उपरान्त उस घरको छोड़कर अपनी राह लेते हैं । जब

वन जलने लगता है, तब मृगगण उसे छोड़कर भाग जाते हैं। यार लोग भोग करके अतृप्त और अनुरक्त स्त्रियोंको छोड़ देते हैं। इस प्रकार उद्धवके मिलनेपर वे गोपियाँ सम्पूर्ण लौकिक व्यवहार छोड़कर कृष्णके ध्यानमें मग्न हो गयीं। प्यारे कृष्णने लड़कपनमें और किशोर अवस्थामें जो-जो कर्म किये थे, उनको याद करके गोपियाँ गाने लगीं। कुछ गोपियाँ लोक-लाज छोड़कर रोती हुई उद्धवसे कृष्णकी चर्चा करने लगीं। एक गोपी किसी भौंरेको अपने निकट 'गुन-गुन' करते देखकर उसे कृष्णका भेजा हुआ दूत मानकर कहने लगी—हे धूर्तके बन्धु मधुकर! तुम हमारे चरण मत छुओ। कृष्णसे ही तुम्हारी बन्धुता ठीक है। क्योंकि जैसे तुम रस लेकर फूलोंको छोड़ देते हो, उसी तरह वे भी हमें छोड़ गये। भ्रमरको बार-बार निकट आकर गुंजन करते देख गोपियोंने अनेक प्रकारके अपने दुःख और वियोग-पूर्ण उद्गार प्रकट किये।

काहे रोकत मारग सूधो ?
सुनहु मधुप ! निर्गुन-कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो ?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघनजू धौं।
बेद-पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौं जुवतिन जोग कहूँ धौं ?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधो ॥

× × ×

निर्गुन कौन देसको बासी ?
मधुकर ! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी ॥
को है जनक, जननिको कहियत, कौन नारि, को दासी ?
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रसमें अभिलासी ॥

पावैगो पुनि कियो आपनो जोरे ! कहैगो गांसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ।ठग्योसो सूर सबै मति नासी ॥

× × ×

जा जा रे भौंरा ! दूर दूर ।
रंगरूप अरु एकहि मूरति, मेरो मन कियो चूर-चूर ॥
जौ लौं गरज निकट तौ लौं रहे, काज सरे पै रहे दूर ।
सूर स्याम अपनी गरजनको कलियन रस लै घूरघूर ॥

तदनन्तर महाज्ञानी परमभागवत उद्धवने गोपियोंकी सब बातें सुनकर उनको कृष्णतत्त्वका उपदेश दिया ।

ताहि भजहु किन सबै सयानी । खोजत जाहि महामुनि ज्ञानी ॥
जाके रूप रेख कछु नाहीं । नयन मूँदि चितवहु चित माहीं ।
हृदय कमलमें जोति बिराजै । अनहद्दनाद निरंतर बाजै ॥
इड़ा पिंगला सुखमना नारी । सून्य सहजमें बसैं मुरारी ॥
मात-पिता नहिं दारा भाई । जल-थल घट-घट रहे समाई ॥
यहि प्रकार भव दुस्तर तरिहौ । जोगपंथ क्रम-क्रम अनुसरिहौ ॥

उद्धव सबको यथोचित रीतिसे परितुष्ट करके विदा होकर रथपर सवार हुए और मथुरापुरीको लौट गये । मथुरामें पहुँचकर उद्धवजी कृष्णके पास गये और उनको प्रणाम किया। फिर व्रजवासियोंकी अनन्य भक्तिका वर्णन करते हुए उद्धवजीने नन्दके दिये हुए उपायन कृष्ण-बलदेव और राजा उग्रसेनको दिये ।

अष्टचत्वारिंश अध्याय

कुब्जाके साथ श्रीकृष्णका विहार और अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! तदनन्तर अन्तर्यामी भग-

वान कृष्ण कामपीड़िता कुब्जाकी प्रियकामनासे उसके घर गये। अच्युतको अपने घरमें आते देखकर कुब्जा शीघ्रताके साथ आसनसे उठ खड़ी हुई और सखियोंके साथ आगे बढ़कर प्रियतमको लिवा लायी। कुब्जाने यथाविधि आसन आदि देकर कृष्णचन्द्र और उद्धवका पूजन किया। हरिभक्त उद्धवजी केवल हाथसे आसनको छूकर पृथ्वीपर बैठ गये। भगवान कृष्ण महामूल्यवान पलंगपर विराजमान हुए। कुब्जा भी स्नान, लेपन, दूकूल, भूषण आदि सोलह सिंगारोंसे शरीरकी वेषभूषा बनाकर कृष्णके निकट आयी। कृष्णभगवानने उसके दोनों हाथ पकड़कर नवसङ्गमकी लाजसे कुछ शङ्कित सुन्दरी कुब्जाको पास बुलाकर पलंगपर लिटा लिया और अनुलेपन देनेके लेशमात्र पुण्यका फल देते हुए उसके साथ विहार करने लगे। उसने भगवानके चरणकमलोंको सूँघकर और कामाग्निसे तपे हुए कुचोंपर और वक्षःस्थलपर रखकर तथा आनन्दमूर्ति कान्त कृष्णको दोनों बाहुओंसे लिपटाकर चिरसंचित तापको शान्त किया। तदनन्तर कुब्जाने कृष्णसे कहा—हे नाथ! यहाँ कुछ दिन रहकर मेरे साथ विहार करो। हे कमलनयन! मुझसे आपका संग नहीं छोड़ा जाता। मान देनेवाले जगदीश्वर कृष्णचन्द्र उसको मुँहमाँगा वर देकर और अलंकार आदिके दानसे सम्मानितकर उद्धवके साथ अपने घरको चले गये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! इसके बाद प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरको प्रसन्न करने और उनको हस्तिनापुर भेजनेके लिए उद्धव और बलभद्रके साथ उनके घर गये। पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने बान्धवोंको दूरसे ही आते देखकर अक्रूरजी उठ खड़े हुए और

आगे आकर आनन्दसे अभिनन्दनपूर्वक उनको हृदयसे लगा लिया। कृष्ण-बलभद्रको अक्रूरने प्रणाम किया और उन्होंने भी लोकाचारके अनुसार अक्रूरको प्रणाम किया। फिर अक्रूरजीने सुन्दर आसन देकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया। अक्रूरने उनका पवित्र चरणोदक सिरपर धारण किया और पूजनसामग्री, दिव्य वस्त्र, सुगन्धित माला, उत्तम आभूषण आदिसे भलीभाँति सत्कार किया। फिर विविध स्तुति करते हुए अपनेको कृतार्थ मानकर अक्रूरजी बोले—हे जनार्दन! हमारा परम सौभाग्य है कि घर बैठे ही आपका दर्शन मिल गया। बड़े-बड़े योगेश्वर और देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जान पाते। वही आप आज हमारी आँखोंके आगे विराजमान हैं। हे जनार्दन! आपकी माया पुत्र, स्त्री, धन, स्वजन, गृह आदिके रूपोंमें प्राणियोंको मोहित करती है। कृपापूर्वक इस दुरन्त मायासे मुझको मुक्त कीजिये। भक्तकी पूजा और स्तुतिसे प्रसन्न कृष्णचन्द्रने अक्रूरसे कहा—हे तात! आप हमारे गुरु, पितृव्य और सब समय प्रशंसनीय हितैषी बन्धु हैं। हम आपके कृपापात्र सन्तान हैं। आपका कर्तव्य है कि आप हमारा पालन-पोषण और रक्षा करें। जिन मनुष्योंको मंगललाभकी इच्छा हो, उनको उचित है कि आप जैसे पूजनीय महाभाग साधुओंकी सेवा करें। आप जैसे साधुजन देवताओंसे भी बढ़कर हैं। क्योंकि देवता लोग अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर देखे जाते हैं। किन्तु साधुजन तो सदा परोपकारमें निरत रहते हैं। साधु लोग देवताओंसे भी बढ़कर हैं। साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और मन शुद्ध हो जाता है। हे तात! हमारे सब आत्मीय

स्वजनोंमें आप श्रेष्ठ हैं। अतएव आप पाण्डवोंके कल्याणार्थ और कुशल-क्षेम जाननेके लिए हस्तिनापुरको जाइये। मैंने सुना है कि बालक पाण्डवोंके पिता पाण्डुका देहान्त हो गया है, अतएव वे मातासहित अत्यन्त दुःखमें पड़कर पीड़ित हो रहे हैं। अब उनके चाचा राजा धृतराष्ट्रने उनको लाकर अपने पुरमें बसाया है। किन्तु मन्दबुद्धि अन्ध राजा धृतराष्ट्र अपने कुपुत्रोंके कहनेपर चलते हैं। भतीजोंके साथ उनका वर्ताव अच्छा न होता होगा। तुम जाकर देख आओ कि पाण्डव लोग सुखमें हैं या दुःखमें। तुम्हारे मुखसे वहाँका हाल जानकर मैं उचित उपाय करूँगा। हे राजन्! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर श्रीकृष्णजी बलभद्र और उद्धवके साथ अपने भवनको चले गये।

ऊनपञ्चाशत् अध्याय

अक्रूरका हस्तिनापुर जाना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! अक्रूरने हस्तिनापुर पहुँचकर देखा कि भीष्म, विदुर, कुन्ती, दुर्योधन, अश्वत्थामा तथा पाण्डव और अन्य मित्रगण सभी उपस्थित हैं। अक्रूरजीने यथोचित रीतिसे उन लोगोंसे भेंट की। तदनन्तर अक्रूरने उन लोगोंसे और उन लोगोंने अक्रूरसे परस्पर सब बन्धुओंकी कुशल पूछी। इसके बाद अक्रूरने दुर्बुद्धि राजा धृतराष्ट्रके आचरण जाननेके लिए कुछ दिन हस्तिापुरमें वास किया। अक्रूरने देखा कि राजा धृतराष्ट्रके सब पुत्र दुष्ट हैं और अपने दुष्ट मंत्री कर्ण आदिकी इच्छाके अनुसार सब कार्य करते हैं। कुन्ती और विदुरने पाण्डवोंके तेज,

शस्त्र चलानेकी निपुणता, बल, वीर्य, विनय आदि सद्गुण और उनपर प्रजागणके अनुरागका सम्पूर्ण वृत्तान्त अक्रूरको बताया। उन्होंने यह भी बताया कि दुष्ट धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डवोंके बल और गुणोंकी उन्नति नहीं देख सकते। पाण्डवोंको मारनेके लिए दुष्ट दुर्योधन आदिने विषदान आदि जो दुराचरण किये थे, उनका भी कुन्ती और विदुरने वर्णन किया। हे राजन्! अक्रूर कुन्तीके भाई थे। कुन्तीजीने भाईके पास आकर आँखोंमें आँसू भरकर कहा—भैया! भेड़ियोंके बीच हरिणीके समान मैं शत्रुओंके बीच निवास करती हुई शोकसे व्याकुल हो रही हूँ। क्या कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर मुझको और पितृहीन मेरे बालकोंको अपने मधुर वचनोंसे धैर्य देंगे? इसके बाद श्रीकृष्णका स्मरण करके वे अत्यन्त दुःखित भावसे रोने लगीं। दुःख और सुखको समान समझनेवाले अक्रूर और महायशस्वी विदुरने कुन्तीके पुत्रोंके जन्मदाता इन्द्र आदिकी कथा कहकर कुन्तीको समझाया और आश्वासन दिया। फिर चलते समय अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्रके पास गये और उनसे इस प्रकार कहने लगे—हे राजन्! आप यदि आत्मीय स्वजनोंको समदृष्टिसे देखते हुए धर्मसे पृथ्वीका पालन करेंगे और अपनी सच्चरित्रतासे प्रजागणको प्रसन्न रखेंगे तो आपका कल्याण होगा और जगत्में सुकीर्ति फैलेगी। यदि इसके विपरीत चलेंगे तो यहाँ निन्दा होगी और मरनेपर नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी। इस कारण आप अपने पुत्रोंको और पाण्डवोंको समदृष्टिसे देखिये। हे राजन्! यहाँ किसीके साथ किसीका चिरकालतक नहीं रहना है। स्त्री-पुत्र आदिकी बात

छोड़िये, अपना प्यारा शरीर भी साथ नहीं जाता। यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता और अकेला ही यहाँसे जाता है और अकेला ही अपने किये पाप-पुण्यका फल भी भोगता है। जन्म-मरण और सुख-दुःखमें किसीसे सहायता नहीं मिलती। अतएव हे राजन्! इस लोकको स्वप्न, माया अथवा मनोरथके समान अनित्य समझकर अपने-आप मनका दमन करो और शान्त तथा समदर्शी बनो। यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—हे अक्रूर! आपके ये वचन मङ्गलमय हैं। किन्तु मेरा हृदय पुत्रानुरागसे ऐसा विषम और चञ्चल हो रहा हैं कि उसमें तुम्हारे ये वचन नहीं ठहरते। जिन ईश्वरने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए यदुकुलमें अवतार लिया है, उन कृष्णचन्द्रके विधानको कौन पुरुष अन्यथा कर सकता है। जिसके मार्ग अचिन्त्य हैं, उस अपनी माया द्वारा जो विश्वकी रचना करके विश्वके भीतर प्रवेशपूर्वक कर्म और अकर्मोंका विभाग कर देते हैं, उन परमेश्वरको मेरा प्रणाम है। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! यदुवंशी अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्रका अभिप्राय समझ और सुहृद्गणसे आज्ञा लेकर मथुरापुरीको लौटे। अक्रूरजीने पुरीमें आकर कृष्ण और बलदेवसे धृतराष्ट्रका वृत्तान्त कह सुनाया।

पञ्चाशत् अध्याय

द्वारकामें दुर्गनिर्माण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! कंसकी अस्ति और प्राप्ति नामकी दो रानियाँ थीं। अपने पतिके मारे जानेपर वे अत्यन्त

दुःखसे आतुर होकर अपने पिता जरासंधके घर गयीं। उन दोनोंने मगधराजसे अपने विधवा होनेका कारण बताया। यह अप्रिय समाचार सुनकर राजा जरासंधको पहले शोक और पीछे अत्यन्त क्रोध हुआ। उसने पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेके लिए बड़ा उद्योग किया। जरासंधने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्रकर यादवोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया। यह भयंकर स्थिति देखकर कृष्णभगवान अनेक प्रकारके विचारमें मग्न हो रहे थे कि इसी अवसरपर आकाशसे सूर्यके समान किरण-माला-मण्डित दो रथ आप ही आप पृथ्वीपर उतरते दीख पड़े। रथमें दो सारथी बैठे हुए थे और विचित्र ध्वजा-पताका और दिव्य सनातन अस्त्र-शस्त्र उस रथकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन रथोंको देखकर कृष्णचन्द्रने संकर्षणभगवानसे कहा—हे आर्य! आप ही जिनकी रक्षा करनेवाले हैं, वे यादव आज विपत्तिमें हैं। आपके लिए ये रथ और अस्त्र-शस्त्र आ गये हैं। रथपर चढ़कर इस शत्रुसेनाका संहार कीजिये और आत्मीयोंको इस घोर विपत्तिसे उबारिये। हे ईश! साधुओंको सुखी करनेके लिए ही हमारा अवतार हुआ है। यह तेईस अक्षौहिणी सेनारूप पृथ्वीका भार नष्ट कीजिये। हे राजन्! इस प्रकार मन्त्रणा करके कृष्ण-बलभद्रने कवच धारण किया और अस्त्र-शस्त्रसे पूर्ण रथोंपर चढ़कर थोड़ी-सी सेना साथ लेकर पुरसे बाहर निकले। कृष्णने बाहर आकर अपना शंख बजाया। उस शंखनादने शत्रुसेनाके हृदय हिला दिये। मगधराज जरासंधने कृष्ण-बलरामको देखकर कहा—ओ पुरुषाधम कृष्ण! तू बालक है। तुझसे लड़ते मुझे लज्जा आती

है। इस कारण, यद्यपि तू मेरे बन्धुका घातक है तथापि मैं तुझसे नहीं लड़ूँगा। ओ बलभद्र! तेरी यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो तो धैर्य सहित युद्ध कर। तू या तो मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न अपना शरीर छोड़कर स्वर्गको जा अथवा मुझको मारकर जय प्राप्त कर। श्रीकृष्णभगवानने कहा—शूर लोग अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करते, किन्तु अपना पौरुष दिखलाते हैं। ओ मगधराज! तेरी मृत्यु अब निकट आ गयी है। इसलिए तेरे इस असत् प्रलापका हम बुरा नहीं मानते। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जिस प्रकार वायु मेघमालासे सूर्यको और धूलिसे अग्निको ढाँक लेता है, उसी प्रकार मगधराज जरासंधने सामने आकर अपनी प्रचण्ड सेनाके प्रवाहसे सैनिक, रथ, ध्वजा, अश्व और सारथी सहित कृष्ण-बलभद्रको आच्छन्न कर लिया। पुरनारियाँ नगरकी अटारी, महल और गोपुरोंपर चढ़कर युद्ध देख रही थीं। वे स्त्रियाँ कृष्ण-बलभद्रके रथोंको रणभूमिमें न देखकर शोक और सन्तापकी व्यथासे अचेत हो गयीं। अब भयंकर युद्ध होने लगा। महामनस्वी और अपरिमित तेजस्वी बलभद्रने मूसलसे मदमत्त शत्रुओंको मारकर घोड़े, हाथी और मनुष्योंके कटे हुए अंगोंसे निकले रक्तकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। हे राजन्! जरासंधकी सागर-सदृश दुर्गम और भयानक सेनाको क्षण भरमें कृष्ण-बलभद्रने विनष्ट कर डाला। यद्यपि जरासंधने अनेक राजाओंको मार डाला था, इसलिए उसको मार डालना ही उचित था, तथापि बलभद्रजीने जब उसे मारना चाहा तब कृष्णने उनको रोक दिया। क्योंकि कृष्णचन्द्रको जरासंधसे अभी और काम कराना था। मुक्त होनेपर जरासंध अत्यन्त लज्जित

हुआ। हे महाराज! हारनेपर भी मगधराजका उत्साह नहीं भंग हुआ। इसी प्रकार उसने तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना संग्रहकर सत्रह बार यादवोंसे युद्ध किया। किन्तु कृष्णभगवानने हर बार उसकी सब सेनाका संहार करके पहलेकी ही भाँति बारंबार उसे छोड़ दिया। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! जरासंध अठारहवीं बार यादवोंपर आक्रमण करने ही वाला था कि इसी बीचमें नारदकी प्रेरणासे युद्ध करनेके लिए आया हुआ कालयवन युद्ध-भूमिमें दिखाई पड़ा। उसने पृथ्वीमण्डलपर घूमकर भी कहीं अपनी समताका बली योद्धा नहीं पाया था। नारदके मुँहसे यादवों-को अपनी बराबरीका समझकर तीन करोड़ यवनोंके साथ उसने मथुराको घेर लिया। उसको देखकर कृष्णचन्द्रने विचार किया कि दोनों ओरसे यादवोंके लिए महाविपत्ति उपस्थित है। इस समय इस महाबली यवनने आकर हमको घेर लिया है। उधर जरासंध भी कल या परसों आकर पहुँच जायगा। इसलिए एक ऐसे दुर्गकी रचना होनी चाहिये, जहाँ कोई भी मनुष्य प्रवेश न कर सके। उसी दुर्गमें स्वजनोंको रखकर हम कालयवनका विनाश करावेंगे। इस प्रकार विचार करके भगवानने विश्वकर्मासे समुद्रके भीतर एक ही रातमें बारह योजनकी विचित्र द्वारका नगरी बनवायी। उस नगरीमें विश्वकर्माका विज्ञान और कारीगरी झलकती थी।

दिन द्वारावति देखन आवत।
नारदादि सनकादि महामुनि तेऽपि प्रीति उपजावत॥
विद्रुम फटिक पचो कंचन खचि मनिमय मन्दिर बने बनावत।

जितनेहू नरनारि उपर खग सबहिन को प्रतिबिम्ब दिखावत ॥
झलमल रंग विचित्र बहुत विधि अवलोकत आनन्द बढ़ावत ।
भूलि रहै अति चतुर चितै चित कौन सत्य कहु मर्म न पावत ॥
बन उपबन फलफूल सुभग सर सुक सारिका हंस पारावत ।
चातक मोर चकोर बदत पिक मनहुँ मदन चटसार पढ़ावत ॥
धाम धाम संगीत सरस गति बीणा बेणु मृदंग बजावत ।
अति आनंद प्रेम पुलकित तनु जहाँ तहाँ यदुपति जस गावत ॥
निसि दिन रहत विमान रूठ रुचि सुर वनितानि संग सब आवत ।
सूरस्याम क्रीड़त कौतूहल अमरन अपनो भवन न भावत ॥

हे राजन्! इन्द्रने भी हरिके पास कल्पवृक्ष और अपनी सुधर्मा सभा भेज दी। उस सभामें बैठनेवाले पुरुषोंको भूख-प्यास, शोक-मोह वृद्धता आदि पीड़ा नहीं पहुँचाते थे। भगवान श्रीकृष्णने अपने योगबलसे आत्मीय जनोंको उसी द्वारका नगरमें पहुँचा दिया। सबको द्वारकामें भेजकर कृष्णचन्द्रने मथुरामें आकर बलभद्रसे कहा—तुम यहीं रहकर प्रजाकी रक्षा करो। मैं यवनको मारकर अभी आता हूँ। तदनन्तर केवल कमलकी माला पहने कमल-नयन कृष्णचन्द्र पुरके द्वारसे बाहर निकले। उस समय भगवानके पास कोई शस्त्र नहीं था।

एकपञ्चाशत् अध्याय

कालयवनवध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कृष्णचन्द्र पुरद्वारसे बाहर निकलकर पूर्व दिशामें चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए। उनका

शान्त सुखमण्डल आनन्दसे परिपूर्ण था। श्रीकृष्ण भगवानको देखकर कालयवनने विचारा कि नारदने जो चिह्न बताये थे, वे सब इनमें दिखाई पड़ते हैं। अतएव यह अवश्य ही वासुदेव कृष्ण हैं। इस समय यह पैदल ही हैं। इनके पास कोई शस्त्र नहीं है। इस कारण मैं भी बिना कोई शस्त्र लिये पैदल ही इनसे युद्ध करूँगा। यह निश्चय करके कालयवन कृष्णको पकड़नेके लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ा। हे राजन्! कृष्ण आगे-आगे जाने लगे और कालयवन पीछे-पीछे दौड़ने लगा। अब पकड़ लिया—अब पकड़ लिया ऐसा समझकर कालयवन बार-बार हाथ लपकाता था। इस प्रकार वह बहुत दूर कृष्णके पीछे-पीछे चला गया। इस प्रकार उसको दौड़ाते हुए कृष्णचन्द्र एक पर्वतकी कंदरामें घुस गये। कालयवन भी कंदरामें घुसा, किन्तु कृष्णको न पा सका। उसने कन्दरामें जाकर देखा कि एक पुरुष सो रहा है। वह पुरुष कोई और था, कृष्णचन्द्र नहीं थे। किन्तु यवनने समझा कि यह कृष्ण ही छिपकर सो रहा है। अतएव उसने उस निद्रित पुरुषको कसकर लात मारी। वह पुरुष बहुत दिनोंसे सो रहा था। लातके प्रहारसे वह उठ बैठा। उसने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा। पास ही खड़े यवनपर जब उसकी दृष्टि पड़ी। उसी क्षण उसके शरीरसे आग उत्पन्न हो गयी। उस अग्निसे यवनराज भस्म हो गया। राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! जिसकी दृष्टि पड़ते ही यवनराज भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किसका पुत्र था? उसमें तेज और पराक्रम कितना था? उस कन्दरामें जाकर वह क्यों सोया था? शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! वे इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न महाराज

मान्धाताके पुत्र महाब्रह्मण्य और सत्यवादी राजा मुचकुन्द थे। एक समय जब प्रबल असुरोंने देवताओंको हरा दिया, तब असुरों से डटकर इन्द्र आदि देवताओंने अपनी रक्षा करनेके लिए मुचकुन्दसे आकर प्रार्थना की। राजाने जाकर बहुत कालतक स्वर्गलोककी और इन्द्र आदि देवताओंकी रक्षा की। तदनन्तर शिवके पुत्र कार्तिकेयको अपना रक्षक पाकर सब देवताओंने राजा मुचकुन्दसे कहा—हे राजन्! अब आप हमारी रक्षाके कष्टसे निवृत्त होइये। हे वीर! आप मनुष्यलोक और निष्कण्टक राज्य छोड़कर हमारी रक्षामें प्रवृत्त हुए और सब प्रकारके सांसारिक भोगोंसे वंचित रहे। आपके पुत्र, नारियाँ, जातिवाले, अमात्य, मन्त्री और समकालीन प्रजागण इस समय पृथ्वीपर नहीं हैं। उनको कालने नष्ट कर दिया। हे महाराज! आपका कल्याण हो, मुक्तिको छोड़कर और जो कुछ आपकी अभिलाषा हो, वह निःसंकोच होकर हमसे माँगिये। हे राजन्! मोक्ष देनेकी शक्ति हम लोगोंमें नहीं है। भगवान विष्णु ही मोक्षदाता हैं। हे राजन्! यह सुनकर जब राजाने देवताओंसे निद्रा माँगी तब देवताओंने कहा—जाओ, तुम जाकर शयन करो। तुमको जो कोई जगावेगा, वह तुम्हारी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा। इस प्रकार देवताओंके कहनेपर महायशस्वी मुचकुन्द उनको प्रणामकर कन्दरामें देवताओंकी दी हुई निद्रासे अचेत होकर सो गये। इस प्रकार कालयवनके भस्म हो जानेपर भगवान कृष्ण मुचकुन्दके सामने आये। हे राजन्! श्रीकृष्णका मनोहर रूप देखकर मुचकुन्दने पूछा—आप कौन हैं? इस घोर कंटकाकुल वनमें क्यों घूम रहे

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

हैं ? मेरी समझमें आप सब देवताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् विष्णु हैं। मैं इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध क्षत्रिय हूँ। मैं युवनाश्वका पोता और मान्धाताका पुत्र मुचकुन्द हूँ। मैं बहुत दिनतक देवलोकमें जागता रहा। इसलिए निद्रासे अचेत होकर इस निर्जन कन्दरामें इच्छानुसार सो रहा था। अभी किसीने आकर मुझे जगा दिया। वह जगानेवाला अपने ही पापसे भस्म हो गया। उसके बाद आपको मैं देख रहा हूँ। हे राजन् ! मुचकुन्दकी बात सुनकर श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा—हे राजन् ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। उनका अन्त नहीं है। यहाँतक कि मैं स्वयं उनकी गणना नहीं कर सकता। तदनन्तर मुचकुन्द भगवानके वचन सुनकर परम प्रसन्न हुए और अनेक प्रकारसे भगवानकी स्तुति करने लगे। मुचकुन्दकी स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर भगवानने कहा—हे महाराज ! आपकी बुद्धि निर्मल और उच्च श्रेणीकी है। मेरे जो एकान्त भक्त हैं, उनकी शुद्ध बुद्धि कभी विषयभोगके लिए विचलित नहीं होती। आप मुझमें मन लगाकर इच्छानुसार जहाँ चाहें पृथ्वीपर पर्यटन कीजिये। मुझपर आपकी ऐसी ही अटल भक्ति बनी रहेगी। हे राजन् ! क्षत्रिय-धर्मके अनुसार आपने मृगया आदिके अवसरोंपर अनेकानेक प्राणियोंका वध किया है। अब मेरा आश्रय ग्रहण करके एकाग्र मनसे तप करके उस पापको नष्ट कीजिये। इस शरीरके छूटनेपर आपका ब्राह्मण-कुलमें जन्म होगा और फिर आप मुझको प्राप्त कर सकेंगे।

द्विपञ्चाशत् अध्याय

श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीका दूत भेजना

शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! तदनन्तर मुचकुन्दजीने भगवानकी प्रदक्षिणा करके उनको प्रणाम किया और फिर वहाँसे चलकर कन्दराके बाहर आये और श्रीकृष्णमें चित्त लगाकर तपस्या करनेके लिए गन्धमादन पर्वतपर चले गये। वहाँपर बद्रिकाश्रमनामक भगवानका पवित्र धाम है। वहाँ भगवान नरनारायणका आश्रम है। राजा मुचकुन्द उसी आश्रममें गये। वहाँ वे तपके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करने लगे। इधर यवनके मरनेपर भगवान कृष्णचन्द्र फिर मथुरामें आये और बची हुई यवनसेनाका संहार किया। यवनोंको मार और उनकी सम्पत्ति लेकर भगवान द्वारकापुरीको जाने लगे। इसी अवसरपर तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लिये जरासन्ध फिर आ पहुँचा। हे महाराज ! भगवान कृष्ण और बलभद्रजी शत्रुसेनाका वेग देखकर मानवलीला करते हुए वहाँसे भागने लगे। उनको भागते देखकर महाबली जरासन्ध उनका पीछा करने लगा। हे राजन् ! बहुत दूर दौड़नेके कारण दोनों भाई थक गये और विश्राम करनेके लिए बहुत ऊँचे प्रवर्षणनामक पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतपर भगवान इन्द्र नित्य वर्षा करते हैं। इसीसे उसका नाम प्रवर्षण पड़ा है। जरासन्धने बहुत देरतक उनके उतरनेकी प्रतीक्षा की। फिर वह पर्वतमें ढूँढ़ने लगा, परन्तु पता नहीं लग सका। तब उसने पर्वतके चारों ओर लकड़ियाँ चुनवाकर आग लगा दी। जब पर्वत जलने लगा, तब कृष्ण-बलराम दोनों भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतसे

नीचे पृथ्वीपर कूद पड़े। अपने अनुचरोंके साथ जरासन्धने शत्रुको नहीं देख पाया। तबतक छिपकर कृष्ण-बलराम द्वारकापुरी पहुँच गये। वह द्वारकापुरी समुद्रके भीतर थी। चारों तरफसे खाईंकी भाँति समुद्र उस पुरीको घेरे हुए था। हे राजन्! जरासन्धने समझा कि कृष्ण-बलदेव दोनों भाई जल गये। अतएव वह अपने राज्य मगध देशको लौट गया। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! आनर्त देशके राजा श्रीमान् रैवतने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपनी कन्या रेवतीका विवाह बलभद्रके साथ कर दिया था। यह हम तुमसे पहले ही कह चुके हैं। अब कृष्णचन्द्रके विवाहोंकी कथा सुनो। भगवान गोविन्दने भी विदर्भनरेश भीष्मककी कन्या श्रीरुक्मिणीजीसे विवाह किया। जिस तरह गरुड़जी देवताओंको हटाकर अमृत ले आये थे, उसी तरह स्वयंवरमें सब लोगोंके आगे भगवान भी शाल्व आदि राजाओंका दर्प चूर्णकर रुक्मिणीको हर लाये। महाराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णने जिस प्रकार रुक्मिणीसे विवाह किया हो, उसका विवरण मुझे आप सुनाइये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! विदर्भदेशमें भीष्मक नामके एक नरेश थे। उनके पाँचपुत्र थे और एक सुमुखी कन्या थी। रुक्मी सब पुत्रोंमें बड़ा था और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली उसके छोटे भाई थे। सुशीला रुक्मिणी इनकी छोटी बहिन थी। रुक्मिणीने घरमें आनेवाले लोगोंके मुखसे कृष्णचन्द्रके रूप, वीर्य, गुण, शोभा और सम्पत्तिकी प्रशंसा सुनकर निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण ही मेरे योग्य पति हैं। श्रीकृष्णने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुणोंकी

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

खानि रुक्मिणीको अपने योग्य जानकर उनसे विवाह करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। हे राजन्! रुक्मिणीके पिता-माताकी भी इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह कृष्णसे हो। किन्तु रुक्मी कृष्णका द्रोही था। उसने नहीं माना और शिशुपालके साथ अपनी बहिनका विवाह करनेकी इच्छा की और सम्बन्ध भी पक्का कर लिया। रुक्मिणी इस समाचारसे बहुत ही दुःखित और उदास हुई। कुछ देरतक सोचकर उन्होंने एक पूर्ण विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मणको पत्र देकर श्रीकृष्णके पास भेजा।

द्विज पतियाँ दै कहियो श्यामहिं।
कुंदनपुर की कुँवरि रुक्मिणी जियति तुम्हारे नामहिं॥
पा लागौं तुम जाहु द्वारावति नँदनन्दनके धामहिं।
कंचन चीर पटम्बर देही कर कंकन जे नामहिं॥

× × ×

हौं प्रभु जनम जनमकी चेरी।
भीषन भवन रहत हौं मैं ज्यौं लुब्धक असुर सैन्य मिलि घेरी।
प्रातकाल शिशुपाल कालते यदुपति आवैं बेगि सबेरी॥
कछु बिपरीत बात नहिं आवै उपजी प्रीति ग्राहगज केरी।
सूरदास प्रभु कृष्ण प्रीति बिनु प्राण बिना तनु लागत पेरी॥

ब्राह्मणने द्वारकामें श्रीकृष्णके पास जाकर सब वृत्तान्त सुनाया। रुक्मिणीने जो पत्र एकान्तमें बैठ और स्वयं लिखकर दिया था, उसे श्रीकृष्णको दिखाया। भगवानकी अनुमतिसे वे उस पत्रको पढ़ने लगे। रुक्मिणीने लिखा था—हे अच्युत! हे त्रिभुवनसुन्दर! आपके रूप और गुणकी प्रशंसा सुनकर मेरा चित्त आपपर आसक्त हो गया है और लोकलज्जाका बन्धन भी उसको

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

नहीं रोक सकता । हे मुकुन्द ! कुल-शील, रूप, विद्या, अवस्था, द्रव्य, सम्पत्ति और प्रभावमें आप अतुलनीय हैं । कौन कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कामिनी आपको अपना पति बनानेकी अभिलाषा न करेगी ? हे विभो ! इसी कारण मैंने आपको अपना पति मनसे मान लिया है और आपके हाथमें आत्मसमर्पण कर दिया है । अतएव आप यहाँ आकर अवश्य मुझको अपनी धर्म-पत्नी बनाइये । हे कमलनयन ! तुम वीर हो । सियार क्या सिंह-के भागको हर ले जा सकता है ? मैं चाहती हूँ कि शिशुपाल मेरे शरीरपर हाथ भी न लगा सके । यदि मैंने पूर्त, इष्ट, दान, नियम, व्रत, देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके पूजन आदिसे भगवान् परमेश्वरकी कुछ भी आराधना की हो तो कृष्णभगवान आकर मेरा पाणिग्रहण करें । हे अजित ! परसों विवाहका दिन है । अतएव आप पहले ही गुप्तभावसे आ जाइये और अन्य समागत राजपुत्रोंको परास्त करके राक्षसी विधिके अनुसार मुझसे विवाह कीजिये । यदि आप कहें कि तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, तुम्हारे बन्धुओंकी हत्या किये बिना मैं कैसे तुम्हारे साथ विवाह कर सकता हूँ तो मैं आपको उसका एक उपाय बताती हूँ । हमारे कुलमें एक रीति सनातनसे चली आती है कि विवाहके पहले दिन कन्या कुलदेवी भवानीकी पूजा करनेके लिए बाहरके मन्दिरमें जाती है । उसी स्थानसे आप मुझे सरलतासे हर ले जा सकते हैं । उमापति शम्भुके समान महान् लोग अपने अन्तःकरणका अज्ञान मिटानेके लिए आपके जिस चरणरजसे स्नान करनेकी अभिलाषा करते रहते हैं, मैं यदि उसी प्रसादको न पा सकी, तो निश्चय है

कि विवाह ही न करूँगी और व्रतके द्वारा शरीरको दुर्बल बनाकर प्राण त्याग कर दूँगी। सौ जन्मोंमें भी तो आपकी कृपा प्राप्त होगी। ब्राह्मणने कहा—हे यदुनाथ! रुक्मिणीका गुप्त सन्देश मैं आपके पास लाया हूँ। इस विषयमें जो करना चाहिये, उसपर विचार कीजिये और शीघ्र ही उसे कार्यरूपमें परिणत कीजिये।

त्रिपञ्चाशत् अध्याय

रुक्मिणीहरण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! रुक्मिणीका संदेश सुनकर यदुनन्दन कृष्णचन्द्र प्रेमपूर्वक ब्राह्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर मन्द-मन्द मुसकाते हुए कहने लगे कि मुझे यह सब विदित है। मेरा भी मन रुक्मिणीमें लगा हुआ है। मुझे तो रातको नींद नहीं आती। मैंने निश्चय कर लिया है कि युद्धमें अधम क्षत्रियोंकी सेनाको मारकर उसके बीचसे राजकुमारीको ले आऊँगा। यह कह और रथ मँगाकर कृष्णचन्द्र रथपर पहले चढ़े और फिर ब्राह्मणको चढ़ा लिया तथा द्रुतगामी घोड़ोंकी गतिके अनुसार एक ही रात्रिमें आनर्तदेशसे विदर्भदेशमें पहुँच गये।

सुनत हरि रुक्मिनिको संदेस।
चढ़ि रथ चले विप्रको सँग लै कियो न गेह प्रवेस॥
बारंबार विप्रको पूँछत कुँअरि बचन सो सुनावत।
दीन बचन करुनानिधान सुनि नयन नीर भरि आवत॥
कह्यौ हलधरसों आवहु दल लै मैं पहुँचत हौं धाई।
सूर प्रभू कुंडिनपुर आए विप्र जु जाइ सुनाई॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इधर कुण्डिनपुरके राजा भीष्मक पुत्रस्नेहके वशवर्ती होकर शिशुपालके साथ कन्याका विवाह करनेके लिए तैयारी करने लगे। नगर भली-भाँति सुसज्जित किया गया। राजा भीष्मकने यथाविधि पितृगण और देवगणका पूजन किया। ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उनसे मंगलपाठ कराया। सुन्दर दाँतोंवाली कन्या रुक्मिणीने भली-भाँति स्नान किया। उनके विवाहसम्बन्धी सब मंगल-कृत्य किये गये। फिर रुक्मिणीजीको नवीन तथा विमल वस्त्र और महामूल्य उत्तम अलंकार पहनाये गये। इसी प्रकार चेदिदेशके नरेश दमघोषने भी मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा पुत्रके अभ्युदयके लिए सब समयोचित कृत्य कराये। तदनन्तर हाथियोंके झुण्ड, स्वर्णमालामण्डित रथ और अश्वसमूहसे सुशोभित सेना साथ लिये शिशुपालके पिता दमघोषने कुण्डिनपुरमें प्रवेश किया। राजा भीष्मकने आनन्दपूर्वक अगवानी करके सबको जनवासा देकर ठहराया और पूजन किया। दमघोषके साथ शाल्व, जरासंध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि अन्यान्य हजारों शिशुपालके मित्र और कृष्ण-बलरामसे द्वेष रखनेवाले राजा लोग सेना लेकर वहाँ आये। कृष्ण-बलरामसे द्वेष करनेवाले राजा लोग यह निश्चय करके वहाँ उपस्थित हुए कि कृष्णचन्द्र यदि बलराम आदि यादवोंको साथ लेकर आवें और रुक्मिणीको हर ले जाना चाहें तो हमलोग मिलकर उनसे युद्ध करेंगे। हे राजन्! जब बलदेवजीने सुना कि कृष्ण अकेले ही रुक्मिणीको हरनेके लिए गये हैं तो भाईके स्नेहवश हाथी-घोड़े और पैदलोंसे परिपूर्ण बहुत-सी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर शीघ्रताके साथ कुण्डिनपुरको गये।

इधर सर्वाङ्गसुन्दरी भीष्मककन्या रुक्मिणी श्रीहरिके आनेकी प्रतीक्षामें घबड़ा गयीं। सूर्योदय होनेमें देर नहीं थी, किन्तु तब तक ब्राह्मण लौटकर नहीं आये। यह देखकर रुक्मिणी चिन्तित हो गयीं। इस प्रकार वे प्रतीक्षा कर ही रही थीं कि वाम ऊरु, भुजा और नेत्र आदि अंग भावी शुभकी सूचना देते हुए फड़क उठे। उसी समय वे ही ब्राह्मणदेवता रुक्मिणीके पास अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए। ब्राह्मणने रुक्मिणीसे कहा कि कृष्णचन्द्र कुंडिनपुरमें आ गये हैं। यह सुनकर रुक्मिणीने आनन्दित होकर ब्राह्मणको प्रणाम करके बहुत-सा धन दिया। विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि मेरी कन्याका विवाहोत्सव देखनेके लिए कृष्ण-बलदेव आये हैं, तब उनको बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने आगे जाकर कृष्णका स्वागत और पूजन किया। उधर इसी अवसरपर सैनिकोंके बीचमें घिरी हुई कन्या रुक्मिणी पैदल ही अन्तःपुरसे भवानीके पादपद्मका दर्शनके लिए मन्दिरको चलीं। उस समय रुक्मिणी माता आदिके साथ मनमें मुकुन्द भगवानके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई जा रही थीं। उस समय मृदंग, शंख, पणव, तूर्य आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। हजारों वारांगनाएँ अनेक प्रकारके उपहार और भेंट लिये और भलीभाँति विभूषित ब्राह्मणियाँ हाथोंमें माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण आदि लिये राजपुत्रीके साथ चलीं। गाने और बाजे बजानेवाले लोग गाते-बजाते और सूत, मागध, बन्दीजन प्रशंसा करते हुए नववधूको चारों ओरसे घेरकर चले। देवीके भवनमें पहुँचकर राजपुत्रीने अपने हाथ-पैर धोये और आचमन करके पवित्र होकर अम्बिकाके निकट गयीं।

रुक्मिणी देवीमन्दिर आई ।
धूप दीप पूजा सामग्री अली संग सब लाई ॥
रखवारीको बहुत महाभट दीन्हे रुक्म पठाई ।
ले सब सावधान भए चहुँदिशि पंछी वहाँ न जाई ॥
कुँवरि पूजि गौरी बिनती करि वर देहु यादवराई ।
मैं पूजा कीन्हीं या कारण गौरी सुनि मुसुकाई ॥
पाइ प्रसाद अंबिका मंदिर रुक्मिणि बाहर आई ।
सुभट देखि सुन्दरता मोहे धरणि गिरे मुरझाई ॥
यहि अन्तर यादवपति आए रुक्मिणि रथ बैठाई ।
सूरप्रभू पहुँचे अपने घर तब सबहिन सुधि पाई ॥

विधि जाननेवाली वृद्धा ब्राह्मणियोंने रुक्मिणीसे शिवसहित शिवकी धर्मपत्नी भवानीको प्रणाम कराया । कुमारीने विधिपूर्वक शिव-शिवाका पूजन किया । तदनन्तर रुक्मिणीजीने रत्नजटित अंगूठीसे सुशोभित अपने हाथसे दासीका हाथ पकड़कर अम्बिकाके भवनसे बाहर निकलीं । उनकी सोलह वर्षकी युवावस्था जितेन्द्रियोंके भी चित्तको डिगा देनेवाली थी । नितम्बपर रत्नजटित सुवर्णकी करधनी पड़ी हुई थी । कृष्णचन्द्रके आनेकी राह देखती हुई रुक्मिणीजी चंचल कमलकोष तुल्य चरणोंको धीरे-धीरे उठाकर रखती जा रही थीं । उसी समय राजकुमारीको एक ओरसे आते हुए कृष्णचन्द्र भी दिखाई पड़े । राजकुमारी रथपर चढ़ना चाहती थीं, इतनेमें ही माधव कृष्णचन्द्र सामने आ गये और शत्रुओंके आगे ही गरुड़चिह्नयुक्त रथपर स्फूर्तिसे रुक्मिणीको चढ़ाकर चल पड़े । जिन क्षत्रियोंने पीछा भी करना चाहा, उनको कृष्णने वहीं ठंढा कर दिया । राजा लोग मुँह ताकते ही

रह गये। उस समय जरासंध आदि मानी राजे अपनी यह पराजय और अपने यशका क्षय होना नहीं सह सके। वे लोग आक्रोशपूर्वक कहने लगे कि हम लोगोंको धिक्कार है। गोपगण धनुर्धारियोंके आगे आकर कन्याके साथ हमारे यश हर ले गये।

चतुःपञ्चाशत अध्याय

श्रीकृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! सब राजाओंने कृष्णचन्द्रका पीछा किया और दोनों ओरसे भयंकर युद्ध होने लगा। यादवगण शत्रुसेनाका संहार करने लगे। तब जरासंध आदि राजे युद्धभूमिसे भागे। जरासंध आदिने शिशुपालको उत्साहशून्य और हतबुद्धि देखकर समझाते हुए कहा—हे पुरुषसिंह! तुम क्यों इतना उदास होते हो? यह उदासी छोड़ो। कोई प्रिय या अप्रिय विषय प्राणियोंको स्थायीरूपसे नहीं प्राप्त होता। कभी इच्छानुकूल प्रिय बात होती और कभी अपनी इच्छाके विरुद्ध अप्रिय बात भी हो जाती है। यह चक्र चलता ही रहता है। मित्रोंके इस प्रकार आश्वासन देनेपर शिशुपाल अनुचरोंके साथ अपने पुरको लौट गया और जो राजा लोग बच गये थे, वे भी अपने नगरोंको चले गये। श्रीकृष्णद्रोही बलवान् रुक्मी अपनी बहनके हर लेनेका समाचार पाकर उसे नहीं सह सका। वह सेना लेकर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे दौड़ा। उसने राजाओंके आगे प्रतिज्ञा की कि युद्धमें कृष्णको बिना मारे और रुक्मिणीको लौटाकर लाये बिना मैं कुंडिनपुरमें प्रवेश न करूँगा। ईश्वरकी महिमा और शक्तिको न

जाननेवाला कुबुद्धि वह रुक्मी रथ दौड़ाकर कृष्णके निकट पहुँचा और कोप करके 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहने लगा। फिर रुक्मीने धनुष चढ़ाकर तीन बाण मारे और कहा—ओ यदुकूलदूषण ! क्षणभर ठहर जा। मेरी बहिनको चुराकर लिये कहाँ भागा जा रहा है ? तू बड़ा मायावी है। आज मैं तेरा घमंड मिटा दूँगा। रुक्मीका वचन सुनकर कृष्णचन्द्र मुसकाये और उन्होंने रुक्मीका धनुष काटकर छः बाण उसके शरीरमें मारे। फिर कृष्णचन्द्रने आठ बाणोंसे उसके रथके चारों घोड़े मार डाले, दो बाणोंसे सारथीको मार डाला और तीन बाणोंसे ध्वजा काट डाली। रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर कृष्णचन्द्रको पाँच बाण मारे। कृष्णचन्द्रने दूसरा धनुष भी काट डाला। तब रुक्मीने अन्य धनुष लिया, कृष्णभगवानने उसे भी काट डाला। जो-जो शस्त्र रुक्मीने हाथमें लिया, उसको कृष्णचन्द्रने तुरन्त काट डाला। तब रुक्मी पृथ्वीपर कूद पड़ा और कृष्णकी ओर झपटा। कृष्णचन्द्रने उसके खड्ग और ढाल काट डाले। फिर कृष्णचन्द्रने रुक्मीको पकड़ लिया और तीक्ष्ण तलवार लेकर उसको मारनेके लिए उद्यत हुए। अपने भाईके वधका उद्योग देखकर सती रुक्मिणी भयसे विह्वल होकर पतिके पैरोंपर गिर पड़ीं और दीन वचन कहने लगीं—हे योगेश्वर ! आपकी शक्ति अप्रमेय है। मेरे भाईका वध करना आपको उचित नहीं है। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! जब रुक्मिणीने पैर पकड़कर प्रार्थनाकी तब दयासिन्धु कृष्णचन्द्र उसके वधसे निवृत्त हुए। किन्तु दुर्वचन कहनेवाले अपकारी रुक्मीको दुपट्टेसे रथके पीछे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी, मूछ और सिरके केश स्थान-स्थान-

पर थोड़े-थोड़े छोड़कर सब उड़ा दिये। बलदेवजीने दया करके रुक्मीको बन्धनसे मुक्त कर दिया। इसके बाद रुक्मिणीको सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा—हे साध्वी रुक्मिणी ! अपने भाईका रूप बिगाड़नेकी बात सोचकर तुम हम लोगोंपर रोष मत करना। कोई किसीको सुख-दुःख नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि सब लोग अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। तुम स्वस्थचित्त होकर धैर्य धारण करो। इस प्रकार रुक्मिणीको समझाकर भगवान कृष्ण उन्हें द्वारकापुरीमें ले गये और वहाँ उन्होंने राजकुमारीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उस समय यादवोंके घरोंमें महामहोत्सव होने लगे। हे राजन् ! चारों तरफ रुक्मिणीहरणकी कथा फैल गयी। सो सुनकर राजा लोग, राजकुमार और राजकुमारियाँ अत्यन्त विस्मित हुईं।

देखहिं दौरि द्वारकावासी ।
सुनत सकल पुर जीत रुक्मिणी लै आए यदुपति अविनाशी ।।
लेति बलाइ करत नेवछावरि बलि भुजदंड कनक अति जासो ।
नर-नारीके नैन निरखि करि चातक तृषित-चकोरी प्यासो ।।
कर आरती कलस लै धाईं चींन्हि न परति कुलवधू दासी ।
देस-देस भयो रहसि सूरप्रभु जरासंध सिसुपालकी हाँसी ।।

पञ्चपञ्चाशत अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरवध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! वासुदेव जिसके अधिष्ठाता हैं, उस चित्तमें उत्पन्न होनेके कारण वासुदेवके अंश कामदेव

पहले रुद्रके कोपानलमें जल गये थे। उन्होंने फिर देह पानेके लिए उन्हीं वासुदेवका आश्रय लिया। वही कामदेव श्रीकृष्णके वीर्य द्वारा रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न होकर 'प्रद्युम्न' नामसे विख्यात हुए। प्रद्युम्नजी किसी बातमें अपने पिता कृष्णसे कम नहीं थे। स्वेच्छाचारी शम्बर दैत्य प्रद्युम्नको अपना पूर्वशत्रु जानकर सूतिकागृहसे उठा ले गया और उनको सागरमें फेंककर अपने घर चला गया। हे राजन्! एक बलवान मत्स्यने बालक प्रद्युम्नको निगल लिया। वह मत्स्य और मत्स्योंके साथ मछली पकड़नेवालोंके जालमें फँस गया। धीवरोंने उस बड़े मत्स्यको राजाके योग्य समझकर भेंटमें देनेके लिए शम्बरके निकट पहुँचाया। शम्बरासुरके रसोइये उस मत्स्यको भोजनागारमें ले गये और शस्त्रसे उसका पेट फाड़ने लगे। तब उस मत्स्यके उदरसे एक बहुत ही सुन्दर बालक निकला। बालकको देखकर वे लोग आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने शम्बरकी पाचिका मायावतीको वह बालक सौंप दिया। इसी समय महर्षि नारदने जाकर मायावतीसे उस बालकके सम्बन्धमें जानने योग्य सब बातें कह सुनायीं। हे राजन्! वह मायावती कामदेवकी पतिव्रता पत्नी रति थी। शिवके कोपानलसे जले हुए पतिके फिर देहधारण करनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। शम्बरासुरने उसको अपने यहाँ रसोई करने और उसकी देख-रेख करनेके लिए रखा था। रतिने जब जाना कि वह बालक और कोई नहीं साक्षात् अपने पति कामदेव हैं, तब वह परम प्रेमसे उनका पालन-पोषण और रक्षा करने लगी। हे राजन्! थोड़े ही समयमें प्रद्युम्नजी जवान हुए।

प्रद्युम्नजीका रूप ऐसा सुन्दर था कि उसे देखनेवाली स्त्रियाँ अपना मन वशमें नहीं रख सकती थीं। मायावती सुरतिको उद्दीप्त करनेवाले सलज्जभावसे मन्द-मन्द मुसकाती हुई कुटिल कटाक्षपातसे कमलदल-सदृश विशाललोचनवाले स्वामीको रिझाती हुई प्रीतिपूर्वक उनके निकट रहने लगी। यह भाव देखकर प्रद्युम्नने उससे पूछा—हे माता! तुम्हारी बुद्धिमें यह विपरीत भाव कैसा देख पड़ता है? तुम मातृभाव छोड़कर पत्नीके भावसे मेरे पास रहती हो, इसका कारण क्या है? रतिने कहा—तुम श्रीकृष्णके पुत्र हो। तुम कामदेव हो। मैं तुम्हारी पत्नी रति हूँ। दुष्ट शम्बरासुर तुमको तुम्हारे घरसे उठा ले आया था और समुद्रमें फेंक दिया था। तदनन्तर समुद्रमें एक मत्स्य तुमको निगल गया। उसी मत्स्यके उदरसे तुम यहाँ निकले। अब तुम इस दुर्धर्ष, दुर्जय और मायावी अपने शत्रु शम्बरासुरको मोह आदि मायाओंसे नष्ट करो। तुम्हारे बिना तुम्हारी माता सर्वदा रोती रहती हैं। यह कहकर मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सब मायाओंको मिटानेवाली महामाया नामकी विद्या बतलायी। तब प्रद्युम्न शम्बरासुरके निकट गये और असह्य कटु वचन कहकर उसका तिरस्कार करते हुए युद्धके लिए आह्वान करने लगे। शम्बरासुर अत्यन्त कुपित हो गया। उसके नेत्र क्रोधके आवेशसे लाल हो गये। वह गदायुद्ध करने लगा। किन्तु असफल होकर आसुरी मायाका आश्रय लेकर अदृश्य हो गया और प्रद्युम्नपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। तब प्रद्युम्नजीने मायाओंको मिटानेवाली महाविद्याका प्रयोग किया। तदनन्तर उस दैत्यने यक्ष,

गन्धर्व, पिशाच और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाएँ प्रकट कीं। किन्तु प्रद्युम्नजीने उनको उसी क्षण नष्ट कर दिया। अन्तमें उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार लेकर शम्बरासुरका मस्तक धड़से अलग कर दिया। उस समय देवता लोग उनके ऊपर राशि-राशि फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे। हे राजन्! तदनन्तर प्रद्युम्नजी पत्नीको साथ लेकर आकाशमार्गसे द्वारका गये। दामिनीयुक्त श्याम मेघके समान प्रद्युम्नने पत्नीके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश किया। स्त्रियोंने समझा कि कृष्णचन्द्र आ रहे हैं। अतएव वे लज्जित होकर इधर-उधर छिप गयीं। क्रमशः कुछ विलक्षणता देखकर स्त्रियोंने जाना कि ये कृष्ण नहीं हैं—कोई और है। वे सब आश्चर्यके साथ उनको देखने लगीं। उस समय रुक्मिणीको अपने खोए हुए पुत्रका स्मरण हो आया। स्नेहके कारण रुक्मिणीके स्तनोंसे स्वतः दूधकी धारा बहने लगी। वे मनमें तर्क-वितर्क करने लगीं कि यह किसका पुत्र है? इसके साथ यह स्त्री कौन है? मेरा जो पुत्र सूतिकागृहसे खो गया था, वह जीता जागता होगा तो उसकी अवस्था भी इतनी ही होगी। उसी समय भगवान कृष्ण देवकी और वसुदेवके साथ वहाँ आ उपस्थित हुए। यद्यपि भगवान सब कुछ जानते थे तो भी चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें नारदजीने आकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। महाआश्चर्यमय वृत्तान्त सुनकर अन्तःपुरकी सब स्त्रियाँ प्रद्युम्नको पाकर परम प्रसन्न हुईं।

षट्पञ्चाशत् अध्याय

स्यमन्तकमणिहरण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! सत्राजित् नामक यादवने पहले कृष्णको अपराध लगाया, किन्तु वह अपराध क्षमा करानेके लिए स्यमन्तकमणिके साथ अपनी कन्या सत्यभामा उनको ब्याह दी। राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! सत्राजित्ने श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? उन्होंने दिव्य स्यमन्तक मणि कैसे और किससे पायी थी? उन्होंने हरिको अपनी कन्या किस लिए ब्याही? यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक हमसे कहिये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! सत्राजित् यादव सूर्यदेवके परमभक्त और सखा थे। सूर्यदेवने सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर उनको स्यमन्तक नामक दिव्य मणि दी। हे महाराज! एक दिन उस मणिको गलेमें पहिनकर सत्राजित् द्वारकापुरीमें आये।

हरिदर्शन सत्राजित आयो।
लोगन जान्यौ आवत आदित हरि सों जाय सुनायो॥
हरि बोले रवि होइ न सत्राजित मणि है ताके पास।
रवि प्रसन्न होइ दीन्हीं ताको यह ताको परकास॥
आइ गयो सोऊ तेहि अवसर तेहि हरि कह्यौ सुनाई।
यह मणि अति अनुपम है सो सुनि रहि न सक्यौ ललचाई॥
एक दिन ताते अनुज सो माँगी ले गयो अखेटक काजा।
ताको मारि सिंह मणि लै गयो सिंह हत्यौ रिछराजा॥
ऋच्छराज वह मणि तासों लै जाम्बवतीको दीन्हीं।
प्रसमनको जु विलंब भयो तब सत्राजित सुधि लीन्ही॥

जहाँ तहाँ को लोग पठायो काहू खोज न पायो।
सूरदास सत्राजित भ्रम सों चोरी हरिहि लगायो॥

उस मणिके तेजसे वे दूसरे सूर्य-से जान पड़ते थे। सत्राजित्ने अपने श्रीसम्पन्न भवनमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंसे मंगलाचरण कराकर देवालयमें मणिको रख दिया। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती थी। उसमें एक गुण यह भी था कि जहाँ रखकर उसकी पूजा की जाती थी, वहाँ दुर्भिक्ष तथा अकालमृत्यु आदिकी बाधा नहीं होती थी। हे राजन्! एक दिन श्रीकृष्णने वह मणि उग्रसेनके लिए माँगी, किन्तु धनलोलुप सत्राजित्ने देनेसे इनकार कर दिया। एक दिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महातेजस्वी मणिको पहिन और घोड़ेपर चढ़कर वनमें शिकार करनेके लिए गया। वहाँ एक सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मारकर मणि छीन ली। वह सिंह पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश कर रहा था। उसी समय जाम्बवान नामक ऋक्षराजका उससे सामना हो गया। जाम्बवानने मणि लेनेकी इच्छासे उस सिंहको मार डाला और अपनी गुहामें प्रवेश करके वह मणि अपनी कन्याको खेलनेके लिए दे दी। इधर सत्राजित् अपने भाईका पता न पाकर अत्यन्त विचलित हुए और सन्ताप करके कहने लगे—मेरा भाई गलेमें मणि पहनकर वनको गया था, अवश्य ही मणि लेनेके लिए कृष्णने उसका मरवा डाला होगा। हे राजन्! यह बात एक कानसे दूसरे कानमें पहुँची। भगवान् कृष्णने जब यह बात सुनी तो अपना कलंक मिटानेके लिए प्रसेनको ढूँढने चले। वनमें इधर-उधर खोज करनेपर सिंहसे मारे गये प्रसेन और उसके घोड़ेको तथा ऋक्षराज द्वारा

मारे गये उस सिंहको भी देखा। इसके बाद भगवान सब लोगोंको गुहाके बाहर ठहराकर अकेले ही उसके भीतर गये। वहाँ भगवानने देखा कि एक बालिका मणिको लिये खेल रही है। उस मणिको लेनेकी इच्छासे भगवान उसके समीप चले गये। हे राजन्! अपूर्व मनुष्य कृष्णको देखकर उस बालिकाकी धाय डरकर चिल्ला उठी। उसका चिल्लाना सुनकर जाम्बवान वहाँ दौड़कर आये और क्रोधान्ध होकर अपने इष्टदेव कृष्णचन्द्रसे युद्ध करने लगे। अट्ठाईस दिनों तक निरन्तर दिन-रात युद्ध होता रहा। अन्तमें कृष्णने कठोर घूसोंकी चोटसे जाम्बवानके सुदृढ़ अङ्गबन्धनोंको ढीला कर दिया। तब अत्यन्त विस्मित होकर जाम्बवानने भगवानसे कहा—मैं अब जान गया कि आप पुराण पुरुष परमेश्वर, सबके स्वामी और सर्वशक्तिमान कृष्णभगवान हैं। हे भगवन्! आपने ही रामावतारमें सेतुरचना करायी और समुद्रबन्धन करके उस पार जाकर लंकामें राक्षसराज रावणके सिर काट गिराये और अपने यशके प्रकाशसे लंकाको उज्ज्वल कर दिया। हे महाराज! तब देवकीनन्दन कमलनयन अच्युतने जाम्बवानके शरीरपर अपना मंगलमय हाथ फेरकर उनकी सब थकावट और शिथिलता दूर कर दी और परम कृपा-पूर्वक मेघके सदृश गम्भीर स्वरसे कहा—हे ऋक्षराज! मणिके लिए मैं तुम्हारे इस बिलमें आया हूँ। इस मणिसे मैं अपने ऊपरका मिथ्या कलंक मिटाऊँगा। भगवानके ये वचन सुनकर जाम्बवान बहुत प्रसन्न हुए और पूजाके निमित्त उपहारमें मणि सहित अपनी जाम्बवती नाम्नी कन्या कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दी। हे राजन्! इधर बिलके बाहर ठहरे

हुए लोगोंने श्रीकृष्णके कथनानुसार बारह दिन तक उनके निकलनेकी राह देखी। तेरहवें दिन दुःखित और निराश होकर सब लोग द्वारका लौट गये। वहाँ देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव, सुहृद्गण और अन्य सजातीय लोग यह समाचार सुनकर अत्यन्त शोकाकुल और दुःखित हुए। सब द्वारकावासी सत्राजित्को भला-बुरा कहते हुए श्रीकृष्णको पानेकी इच्छासे चन्द्रभागा नामकी महामाया दुर्गा देवीकी आराधना करने लगे। दुर्गा देवीने अमोघ आशीर्वाद दिया। तुरत ही उस आशीर्वादको सत्य सिद्ध करते हुए कृष्णचन्द्र पत्नी जाम्बवतीको साथ लिये द्वारकापुरीमें आ गये। उनको देखकर सब लोक अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्सव मनाने लगे। तदनन्तर भगवानने सभामें सब राजाओंके सामने सत्राजित्को बुलाया और मणिका पूरा हाल बताकर उनको मणि दे दी। सत्राजित्ने लज्जित होकर वह मणि ले ली और पश्चात्ताप करते हुए अपने घर चले गये। सत्राजित् बहुत ही घबराये और अपना अपराध मिटानेकी चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने अपनी कन्या सत्यभामाको स्यमन्तक मणिके साथ श्रीकृष्णको सौंप दिया। भगवानने विधिपूर्वक सत्राजित्की कन्या सत्यभामासे विवाह किया। भगवानने मणि लौटाकर सत्राजित्से कहा—मैं मणि न लूँगा। आप सूर्यके भक्त हैं। इसलिए यह सूर्यका प्रसाद आप ही के पास रहना चाहिये। हम केवल इसका फल लेंगे।

सप्तपञ्चाशत् अध्याय

स्यमन्तकोपाख्यान

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! भगवानको यद्यपि यह विदित था कि विदुरकी सहायतासे पाण्डवगण लाक्षाभवनसे सुखपूर्वक बाहर निकल गये—उसमें जले नहीं हैं। तथापि पाण्डव लोग माता कुन्तीके साथ मानो वास्तवमें जल गये, ऐसा समाचार सुनकर लोकोचित व्यवहार दिखाते हुए वे बलभद्रके साथ कुरुदेशको गये। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और गान्धारीसे मिलकर खेद प्रकट करने लगे। हे राजन् ! इधर कृष्णचन्द्रके हस्तिनापुर जानेसे सुअवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वासे कहा—देखो ! सत्राजित्ने पहले हम लोगोंको अपनी कन्या देनेका वचन दिया था, फिर वह कन्या कृष्णको दे दी। अब उससे वह श्रेष्ठ मणि क्यों नहीं ले लेते ? जहाँ सत्राजित्का भाई प्रसेन गया है, वहीं सत्राजित्को भी पहुँचा देना चाहिये। हमारी सम्मति तो यही है। तब शतधन्वाने अक्रूर और कृतवर्माके कहनेमें आकर लोभवश सत्राजित्के घर जाकर सोते ही में उनको मार डाला और फिर वह मणि लेकर चला गया। सत्यभामा अपने पिताको निहत देखकर विलाप करने लगीं। तदनन्तर उन्होंने मृत पिताका शरीर तेलसे भरी नावमें रख दिया और आप सन्ताप करती हुई हस्तिनापुरको गयीं। वहाँ जाकर उन्होंने श्रीकृष्णसे पिताकी हत्याका सब वृत्तान्त कह सुनाया। सो सुनकर शोकमग्न कृष्णचन्द्र भाई और स्त्रीके साथ द्वारका लौट आये और शतधन्वाको मारनेका उद्यत हुए। शतधन्वा यह जानकर डर गया और

कृतवर्माके पास जाकर सहायता माँगने लगा। कृतवर्माने सहायता देना अस्वीकार कर दिया। तब शतधन्वाने अक्रूरके पास जाकर उनसे सहायता माँगी। अक्रूरने भी कहा कि ईश्वरके अवतार श्रीकृष्णके अद्भुत कर्मोंको जानते हुए भी कौन उनके विरुद्ध काम करेगा? जब अक्रूरसे भी सहायता नहीं मिली, तब शतधन्वाने स्यमन्तक मणि अक्रूरजीको दे दी और आप सौ योजनतक चलनेवाले घोड़ेपर चढ़कर वहाँसे भागा। हे राजन्! कृष्णचन्द्र और बलभद्र भी गरुड़चिह्नयुक्त ध्वजावाले रथपर चढ़कर महावेगशाली घोड़ोंको दौड़ाते हुए शतधन्वाके पीछे चले। मिथिलापुरीमें पहुँचकर शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा। तब शतधन्वाने घोड़ेको वहीं छोड़ दिया और पैदल ही भागने लगा। किन्तु कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उसका पीछा किया। थोड़ी दूर चलनेपर कृष्णचन्द्रने उसे पकड़ लिया और तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर काट डाला। फिर वे उसके वस्त्रोंमें मणि खोजने लगे। जब मणि नहीं मिली तो बड़े भाईके पास आकर भगवानने कहा—मैंने व्यर्थ ही शतधन्वाको मारा। मणि उसके पास नहीं है। यह बात सुनकर बलदेवने कहा—अवश्य ही शतधन्वाने मणि किसी अन्य व्यक्तिके पास रख दी है। तुम उस व्यक्तिका पता लगानेके लिए नगरमें जाओ। मैं अपने प्रियतम भक्त विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ। यह कहकर बलदेव मिथिला चले गये। मिथिलानरेशने बलदेवका विधिपूर्वक पूजन किया। बलभद्रजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें सुखसे रहे। उक्त घटनाके कुछ दिन बाद धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिलापुरीमें गया और वहाँ उसने महात्मा

जनक द्वारा आदरसहित पूजित होकर बलभद्रसे गदायुद्ध सीखा। इधर कृष्णने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके वध और उसके पास मणि न मिलनेका वृत्तान्त अपनी प्रिया सत्यभामासे कहा और बन्धुजनोंको लेकर सत्राजित्का पारलौकिक कृत्य सम्पन्न किया। इधर अक्रूर और कृतवर्माने जब सुना कि शतधन्वा मारा गया, तब दोनों भयभीत होकर द्वारकासे भाग गये। जब अक्रूरजी द्वारका छोड़कर चले गये, तब द्वारकावासी लोग शारीरिक-मानसिक-भौतिक आदि पीड़ाओंसे व्यथित होने लगे। वृद्ध लोग आपसमें कहने लगे कि एक समय राज्यमें बहुत दिनोंतक वर्षा न होनेसे काशीराजने अपनी कन्या गान्दिनी अक्रूरके पिता श्वफल्कको ब्याह दी थी। तब काशीमें वर्षा हुई और सुकाल हुआ। अक्रूरजी उन्हीं श्वफल्कके पुत्र हैं। अतएव उनका भी प्रभाव अपने पिताके समान ही है। अक्रूरजी जहाँ रहते हैं, वहाँ इन्द्रदेव भलीभाँति जलकी वर्षा करते हैं और महामारी आदि उत्पात नहीं होते। यह सब सुनकर भगवानने विचारा कि इन उत्पातोंका कारण यहाँ अक्रूरका न रहना नहीं, वरन मणिका न रहना है। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने अक्रूरको द्वारकापुरीमें सादर बुलवाया। फिर भगवानने अक्रूरका यथाविधि सत्कार करके मनोहर और मधुर वार्तालाप करते हुए मन्द-मन्द मुसकुराकर कहा—हे दानपति अक्रूर! शतधन्वा तुमको मणि दे गया है और वह तुम्हारे पास है। सत्राजित् पुत्रहीन हैं। इसलिए उनकी कन्याका पुत्र ही मणिका यथार्थ उत्तराधिकारी है। किन्तु उस मणिको रखना दूसरोंके लिए कठिन काम है। अतएव वह तुम्हारे ही पास रहे तो ठीक

है। क्योंकि तुम सच्चरित्र हो। किन्तु मणिके न मिलनेकी बातपर हमारे बड़े भाई बलभद्रको भी कुछ अविश्वास-सा है। इसलिए तुम सब बन्धुओंके आगे एक बार वह मणि निकालकर दिखा दो। इस प्रकार प्रभुके प्रबोध देनेपर श्वफल्कपुत्र अक्रूरका भय जाता रहा। उन्होंने वस्त्रके भीतरसे सूर्यसदृश चमकदार वह मणि निकालकर कृष्णके करकमलमें दे दी। प्रभुने जाति-बान्धवोंको मणि दिखाकर अपने ऊपर लगा कलंक मिटा दिया। फिर अपने कथनानुसार भगवानने वह मणि अक्रूरको लौटा दी। जो व्यक्ति भगवान श्रीकृष्णका यह पापनाशक तथा मंगलजनक उपाख्यान पढ़ता, सुनता अथवा सुमिरता है, वह कलंक और पाप-पुंजसे मुक्त होकर शान्ति लाभ करता है।

अष्टपञ्चाशत् अध्याय

कालिन्दी, मित्रविन्दा आदिसे श्रीकृष्णका विवाह

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय श्रीमान् पुरुषोत्तम कृष्णचन्द्रजी सात्यकी आदि अपने आत्मीयोंको साथ लेकर पाण्डवोंको देखनेके लिए इन्द्रप्रस्थ गये। अर्जुन आदि पाण्डवगण मुक्तिदाता और सब जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको आते देखकर अपने-अपने आसनसे उठ खड़े हुए, जिस तरह कि प्राणोंके लौट आनेपर इन्द्रियाँ तुरन्त सचेष्ट होकर अपने-अपने कार्य करने लगती हैं। उन्होंने अच्युतको गले लगा लिया। भगवानके अङ्गस्पर्शसे पाण्डवोंके सब पाप नष्ट हो गये। पाण्डवगण भगवानके अनुरागपूर्ण एवं हास्ययुक्त मनोहर मुख

देखकर परम आनन्दित हुए। भगवान कृष्णने युधिष्ठिर और भीमके चरण छुए और अर्जुनको गलेसे लगा लिया तथा नकुल और सहदेवने भगवानके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान कृष्णचन्द्र एक परम सुन्दर आसनपर विराजमान हुए। तब नव-विवाहिता एवं अनिन्दिता द्रौपदीजीने लज्जापूर्वक धीरे-धीरे कृष्णचन्द्रके निकट आकर उनको प्रणाम किया। इसी प्रकार सात्यकी भी पाण्डवों द्वारा अभिनन्दित होकर आसनपर विराजे। अन्य लोग भी सम्मान पाकर आसनोंपर बैठे। तदनन्तर कुन्तीके पास जाकर भगवानने अभिवादन किया। उनके दोनों नेत्र स्नेहके कारण आँसुओंसे भर गये। कुन्तीने कृष्णको हृदयसे लगा लिया। फिर वे अपने बन्धु-बान्धवोंकी कुशल पूछने लगीं। भगवानने भी यथोचित उत्तर देकर अपनी बुआ कुन्तीसे उनकी और उनकी वधूकी कुशल पूछी। भगवान भक्तोंका क्लेश मिटाने ही के लिए पृथ्वीपर प्रकट होते हैं—यह विचारकर कुन्तीजी पहलेके अनेक कष्टोंका स्मरण करके कृष्णसे कहने लगीं—हे कृष्ण ! तुमने जब हमारा स्मरण करके हमें सुहृद् जानकर भाई अक्रूरको कुशल-समाचार जाननेके लिए भेजा था, तभीसे हम सकुशल हैं। भगवान कृष्णचन्द्र युधिष्ठिरके द्वारा पूजित और अभ्यर्थित होकर वर्षाऋतुके कई महीनेतक इन्द्रप्रस्थवासियोंके नयनोंको आनन्द देते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहे। एक दिन शत्रुदलदलन वीरवर अर्जुनने अपना गाण्डीव धनुष और अक्षयबाण-पूर्ण दोनों तर्कस लिये, अभेद्य कवच पहना और कपिके चिह्नसे सुशोभित ध्वजावाले रथपर भगवान श्रीकृष्णके साथ सवार होकर मृगया करनेकी

इच्छासे घोर वनमें गये। वहाँ अर्जुनने अनेकानेक पशुओंका वध किया। कृष्णचन्द्र और अर्जुन जब मृगया करते-करते थक गये और उनको प्यास लगी तो वे लोग जल पीनेकी इच्छासे यमुना-नदीके किनारे गये। वहाँ उन दोनों वीरोंने निर्मल जलमें हाथ-पैर धोकर जलपान किया। वहाँ उन लोगोंने एक परम सुन्दरी कन्या देखी। तब कृष्णचन्द्रके भेजनेसे अर्जुन उस कन्याके पास गये और बोले—हे सुन्दरि! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? किस विचारसे इस स्थानपर विचरती हो? हे कामिनी! जान पड़ता है कि अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है और तुम अपने लिए योग्य वरकी खोजमें हो। यह सुनकर कालिन्दी अर्थात् उस स्त्रीने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं सूर्यदेवकी कन्या हूँ और श्रेष्ठतम वरदानी विष्णुभगवान मेरे पति हों—इस कामनासे यहाँ कठोर तप कर रही हूँ। हे वीर! श्रीपतिके सिवा और किसीको मैं अपना पति बनाना नहीं चाहती। मेरा नाम कालिन्दी है। मेरे पिताने यमुनाके जलमें मेरे लिए एक भवन बनवा दिया है। जबतक अच्युत भगवान मुझको दर्शन न देंगे, तबतक मैं उसी सुरक्षित भवनमें रहकर तप करूँगी। भगवान वासुदेव पहलेसे यह वृतान्त जानते थे। अर्जुनके मुखसे सब हाल सुनकर उस कन्याके निकट गये और उसे रथपर बिठाकर युधिष्ठिरके पास ले गये। बादको अर्जुनके अनुरोधसे कृष्णचन्द्रने विश्वकर्मा द्वारा एक विचित्र नगर बनवा दिया। अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रीतिके लिए भगवान कृष्णचन्द्र और भी कुछ दिन उनके यहाँ रहे। इसी अवसरपर अर्जुनने अग्निको इन्द्रका खाण्डव वन जलानेकी आज्ञा दी। इन्द्रसे

और अर्जुनसे युद्ध हुआ। उस समय कृष्णचन्द्र अर्जुनकी सहायता करनेके लिए उनके सारथी बने। अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको विचित्र धनुष, श्वेतध्वजा युक्त रथ, दो अक्षय तर्कस और बड़े-बड़े अस्त्रधारियोंके भी प्रहारसे न टूटनेवाला दिव्य कवच दिया। खाण्डव वनमें उस समय मयासुर भी था। उसको अग्निके कहनेसे अर्जुनने छोड़ दिया। मयासुरसे इसी कारण अर्जुनकी मित्रता हो गयी। मयासुरने अपने मित्र अर्जुनको एक सुन्दर और विचित्र सभा बना दी। उसी सभामें प्रवेश करनेपर दुर्योधनको स्थलमें जलका और जलमें स्थलका भ्रम हो गया था। तदनन्तर वर्षाके अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर सात्यकी आदि यादवोंके साथ द्वारकापुरीको लौट आये। कृष्णचन्द्रने पुरीमें आकर मङ्गलमय समयमें कालिन्दीके साथ विवाह किया। विन्द और अनुविन्दनामक अवन्तीनरेश दोनों भाई दुर्योधनके वशवर्ती और आज्ञाकारी थे। उनकी बहिनका नाम मित्रविन्दा था। मित्रविन्दाने स्वयंवरके अवसरपर कृष्णचन्द्रके गलेमें जयमाल डालनेका विचार किया। किंतु कृष्णसे द्रोह करनेवाले दोनों भाइयोंने उसे ऐसा करनेसे रोका। कृष्णचन्द्र उसी समय सब राजाओंके सामने ही बलपूर्वक मित्रविन्दाको हरकर घर ले आये। हे राजन्! कोशलदेशके राजा नग्नजित् अत्यन्त धार्मिक थे। उनकी एक सत्यानाम्नी कन्या थी। पिताके नामानुसार उसका दूसरा नाम नाग्नजिती भी था। महादुष्ट सात बैलोंको एक ही रस्सीमें न नाथ सकनेके कारण राजा लोग उस कन्यासे विवाह नहीं कर सके थे। यह समाचार सुनकर कृष्णचन्द्र बड़ी सेना लेकर

कोशलदेशको गये। राजाने उत्तम आसन देकर भगवानका आदर किया। भगवानका पूजन करके वे अतिशय प्रसन्न हुए। तदनन्तर भगवानने राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार दुर्दान्त सात बैलोंको पकड़कर रस्सीमें नाथ लिया और नाग्नजितीसे विधिपूर्वक विवाह किया। फिर उसे लेकर भगवान द्वारका चले गये। इस विवाहके उपरांत कृष्णचन्द्रने अपनी बुआ श्रुतकीर्तिकी केकयदेशीय कन्या भद्रासे विवाह किया। भद्राके भाई सन्तर्दन आदिने स्वयं सादर बुलाकर कृष्णको अपनी बहिन ब्याह दी। इस विवाहके उपरान्त कृष्णचन्द्र अकेले जाकर मद्रदेशके राजाकी कन्या सुंदर लक्षणवाली सुलक्षणाको स्वयंवरसे हर लाये। हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णकी हजारों स्त्रियाँ हुईं। भूमिनन्दन नरकासुरको मारकर उसके अन्तःपुरसे भी वे अनेक परमसुन्दरी कन्याएँ हर लाये।

ऊनषष्टि अध्याय

भौमासुरवध और कन्याओंका हरण

महाराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! भौमासुरके घरपर इतनी अधिक कन्याएँ कैसे थीं और भगवानने उस असुरको क्यों और कैसे मारा? वह सब विष्णुभगवानके विक्रमका वृत्तान्त आप मुझे सुनाइये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! भौमासुरने इन्द्रकी माला, अदितिके कुण्डल और इन्द्रका छत्र बलपूर्वक छीन लिया और उनको देवेन्द्रपदसे स्थानच्युत कर दिया। तब इन्द्रने कृष्णचन्द्रके पास जाकर भौमासुरकी दुष्टताका सब वृत्तान्त कहा।

श्रीकृष्ण भगवान उसी समय अपनी भावी पत्नी सत्यभामाको साथ ले और गरुड़पर चढ़कर भौमासुरके प्राग्ज्योतिषनामक नगरको गये। वह नगर बड़ा दुर्गम था। वह चारों ओरसे सुरक्षित और घिरा हुआ था। किन्तु कृष्णने पहुँचते ही गदाके प्रहारसे पहाड़ोंके आवरणको तोड़ डाला। पुरकी चहारदीवारी भी तोड़ डाली। उस समय पाँच सिरवाले मुरदैत्यके कानमें पाञ्चजन्यकी प्रलयकालीन वज्रपातके समान घोर ध्वनिने प्रवेश किया। वह दैत्य जलके भीतर पड़ा सो रहा था। शंखध्वनि सुनकर वह उठ बैठा। वह दैत्य उग्ररूप धारण करके त्रिशूल हाथमें ले और पाँचों मुख फैलाकर कृष्णकी ओर वेगसे चला। उसने त्रिशूलसे गरुड़के ऊपर प्रहार करके पाँचों मुखोंसे भयानक शब्द किया। वह शब्द आकाशमण्डल, स्वर्गलोक और दसों दिशाओंमें भर गया। भगवानने त्रिशूलके कई खण्ड कर डाले और उस दैत्यके फैले हुए मुखमें कई तीक्ष्ण बाण मारे। तब कुपित होकर मुरदैत्यने कृष्णचन्द्र पर गदाका प्रहार किया। भगवानने अपने सुदर्शन चक्रसे उसके पाँचों सिर काट डाले। ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान और वरुणनामक मुरदैत्यके सातों पुत्र पिताके वधसे दुखी होकर भौमासुरकी आज्ञासे बदला लेनेके लिए उत्साह करके चले और पीठनामक असुरको सेनापति बनाकर युद्धभूमिमें आये। इन सभीको कृष्णने यमपुर भेज दिया। तब भौमासुर अत्यन्त कोपपूर्वक हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेके लिए निकला। श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उसका सिर काट डाला। यह देखकर दैत्य लोग हाहाकार करने लगे और देवता लोग प्रसन्नता प्रकट करते हुए

नारायणपर फूलोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे। भौमासुरके मरनेपर उसकी माता पृथ्वी वैजयन्ती माला और वरुणका छत्र कृष्णको देकर स्तुति करने लगी। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! भूमिने प्रणत होकर विनीत वचनोंसे स्तुति और प्रार्थना की, तब भगवान कृष्णचन्द्रने प्रसन्न मनसे भगदत्तको अभयदान देकर समृद्धिसम्पन्न भौमासुरके भवनमें प्रवेश किया। वीर भौमासुर अन्यान्य राजाओंकी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ बलपूर्वक हर लाया था। श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें जाकर उन सब कन्याओंको देखा। वे सब स्त्रियाँ नटवर कृष्णको अन्तःपुरमें देखते ही मोहित हो गयीं और मन ही मन उनको ईश्वरका भेजा हुआ अपना अभीष्ट पति मानकर विधातासे प्रार्थना करने लगीं। कृष्णचन्द्रने उन सब स्त्रियोंको पालकीपर बिठाकर द्वारकापुरी भेज दिया। तदनन्तर भगवान कृष्णचन्द्र अपनी प्रिया सत्यभामाके साथ उधर ही से इन्द्रलोकको गये। महेन्द्र और इन्द्राणीने उनका आदर-सत्कार और पूजन किया। भगवानने अदितिको उनके कुण्डल दिये और द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। लौटते समय सत्यभामाके अनुरोधसे भगवानने कल्पवृक्षको उखाड़कर गरुड़की पीठपर रख लिया। उस समय इन्द्र आदि देवता युद्ध करनेको उद्यत हुए। तब कृष्णचन्द्रने उनको परास्त किया और कल्पवृक्ष लेकर द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। कृष्णचन्द्रने कल्पवृक्ष लाकर सत्यभामाके नजरबागमें लगा दिया। उससे भगवानके उपवनकी और भी शोभा अधिक हो गयी। कल्पवृक्षकी सुगन्धिसे लुब्ध होकर स्वर्गलोकके भ्रमरगण कल्पवृक्षके

पीछे-पीछे स्वर्गलोकसे आकर द्वारकापुरीमें रहने लगे। तदनन्तर भगवान कृष्णचन्द्रने एक ही दिन एक ही मुहूर्तमें उन सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंसे भिन्न-भिन्न भवनोंमें उतने ही रूप धारण करके विवाह किया। इस प्रकार आनन्दसे परिपूर्ण होकर भगवान नित्य सबके साथ रमण करने लगे।

षष्टि अध्याय

श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका वार्तालाप

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! एक दिन श्रीकृष्ण रुक्मिणीके भवनमें शय्यापर सुखसे बैठे हुए थे और सखियोंके साथ रुक्मिणी पंखा डुलाती हुई अपने पतिकी सेवा कर रही थीं। रुक्मिणीका भवन अत्यन्त समृद्धिसम्पन्न था। उस समय रुक्मिणीजीकी ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक मन्द-मन्द मुसकाते हुए कृष्णचन्द्रने कहा—हे राजकुमारी! लोकपालोंके समान वैभवशाली, धनवान, समृद्ध और रूपवान राजा लोग तुमसे विवाह करना चाहते थे। मदनोन्मत्त शिशुपाल भी तुमसे ब्याह करनेके लिए दल-बल सहित आ चुका था। तुम्हारे भाई और पिताने भी तुम्हारा विवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था। तथापि सबका परित्याग करके तुमने किस कारण मुझको वरण किया? मैं तो राजा लोगोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसा हूँ। मैं राज्यपदका अधिकारी भी नहीं हूँ। समानके साथ ही मित्रता और विवाह होना चाहिये। तुम दूरदर्शिनी नहीं हो। इसीलिए तुमने मुझे अपना पति चुन लिया। अस्तु, अब भी तुम

अपने योग्य कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय ढूँढ़ लो। तुम निश्चय जानो कि हम उदासीन हैं। हमको स्त्री-पुत्र और धन आदिकी कामना नहीं है। क्योंकि हम देह और गेह दोनोंके विषयोंसे निर्लिप्त हैं। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! कृष्णचन्द्र बराबर रुक्मिणीके ही पास रहते थे। इसलिए उन्होंने समझा था कि कृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। उनका दर्प दूर करनेके लिए इतना कहकर भगवान चुप हो रहे। अपने प्यारे पतिके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन सुनकर देवी रुक्मिणी बहुत भयभीत हुईं। उनका हृदय धड़कने लगा। वे अपने चरणनखसे पृथ्वीको कुरेदती हुई मुख नीचा करके रोने लगीं। काजलसे मिले काले आँसुओंसे उनके पीन-पयोधर भींग गये। दारुण मानसिक वेदनासे उनका गला रुँध गया। वे कुछ भी नहीं कह सकीं। अत्यन्त दुःख, भय और शोकसे वे अचेत हो गयीं। हाथोंके कंकण शिथिल होकर खिसक गये और हाथका पंखा अलग गिर पड़ा। उनका चंचल शरीर चेतनाशून्य होकर आँधीके झटकेसे उखड़कर गिरनेवाले केलेके वृक्षकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा। बाल खुलकर बिखर गये। प्रियाका सुदृढ़ प्रेम देखकर दयानिधान भगवानको दया आ गयी। उसी समय उन्होंने पलंगसे उतरकर दोनों हाथोंसे रुक्मिणीको उठा लिया और दोनों करकमलोंसे उनके बिखरे हुए केश संवारकर आँसू पोंछे। हे राजन् ! इसके बाद भगवानने प्रियाके शोकाकुल नेत्रों और पीन पयोधरोंको वस्त्रसे पोंछकर समझाते हुए कहा कि मैंने तो तुमसे हँसी की थी। तब विदर्भनन्दिनीको धैर्य हुआ और उनके हृदयसे सब भय जाता रहा।

एकषष्टि अध्याय

रुक्मीका वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! श्रीकृष्णकी पूर्वोक्त रानियोंमें प्रत्येकने दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। वे सब पुत्र अपने पिता कृष्णके ही अनुरूप थे। हरएक रानीके घरमें सैकड़ों दासियाँ थीं। तथापि वे रानियाँ पतिकी सेवामें सदा नियुक्त रहती थीं। हे राजन् ! भोजकट नगरमें रहनेवाले रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीके साथ प्रद्युम्नका विवाह हुआ। प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धजी हुए। पूर्वोक्त आठ पटरानियों तथा अन्यान्य सोलह हजार एक सौ रानियोंके गर्भसे उत्पन्न पुत्रोंके भी करोड़ों पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! रुक्मीने अपने शत्रुके पुत्रको अपनी कन्या कैसे दी ? वह तो कृष्णका कट्टर शत्रु था। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णके प्रति शत्रुताका भाव रखता था, तथापि बहिनको प्रसन्न रखनेके लिए उसने भांजेको अपनी कन्या ब्याह दी। प्रद्युम्नजी साक्षात् कामदेवके अवतार थे। इस कारण स्वयंवरमें रुक्मवतीने मोहित होकर उन्हींके गलेमें जयमाला डाल दी। तब प्रद्युम्न अकेले ही युद्धमें एकत्र सब राजाओंको जीतकर रुक्मवतीको हर लाये। श्रीकृष्णकी पत्नियोंमेंसे प्रत्येकके एक-एक कन्या हुई थी। उनमेंसे रुक्मिणीकी चारुमती नाम्नी कन्याका विवाह कृतवर्माके महाबली पुत्रसे हुआ था। यद्यपि श्रीहरिसे रुक्मीकी सुदृढ़ शत्रुता थी और वह यह भी जानता था कि ऐसा विवाह धर्मसंगत नहीं है, तथापि स्नेहपाशमें बँधकर भगिनी-

का प्रिय करनेके लिए उसने अपने नाती अनिरुद्धको अपनी रोचना नाम्नी पोती ब्याह दी। हे राजन्! इन्हीं अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें रुक्मिणी, बलभद्र, केशव और प्रद्युम्न आदि भोजकट नगर गये। वहाँ जब विवाह हो गया, तब कलिंगनरेश आदि दुष्ट राजाओंने रुक्मीसे कहा—आज बलदेवको बुलाकर चौसर खेलो और उनको जीतो। बलदेव चौसर खेलनेमें विशेष चतुर नहीं हैं। अतएव परास्त होकर वे अपमानित होंगे। रुक्मी सहमत हो गया। बलदेवजी बुलाये गये और रुक्मी उनके साथ पासा खेलने बैठा। बलभद्रने क्रमशः सौका, सहस्रका और फिर दस सहस्रका दाँव लगाया। रुक्मी बराबर जीतता गया। जब दस हजारका दाँव भी रुक्मी जीत गया, तब कलिंग-नरेश ठहाका मारकर हँस पड़ा। उस अपमानसूचक हँसीसे बलदेवजी बहुत कुपित हुए। तदनन्तर रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाँव लगाया। उसे बलदेवने जीत लिया। किन्तु रुक्मीने छल करके कहा—मेरी जीत हुई है। बलदेवने कुछ समझकर टाल दिया। तब उन्होंने दस कोटि मोहरोंका दाँव लगाया। उसको भी बलदेवजीने जीता, किन्तु फिर रुक्मीने कहा—यह दाँव मैंने जीता है। पास जो लोग बैठे हैं, वे ही कह दें कि किसकी जीत हुई है। इसी समय आकाशवाणी हुई कि धर्मकी बात तो यह है कि जीत बलदेवकी ही हुई है—रुक्मी झूठ बोल रहा है। किन्तु कालवश रुक्मीने आकाशवाणीको भी नहीं माना। उसने ठठाकर हँसते हुए बलदेवसे कहा—तुम लोग गऊ चरानेवाले वनवासी अहीर चौसर खेलनेका हाल क्या जानो? इस तिरस्कारसे बलदेवजी

अत्यन्त कुपित हुए। वे सब सम्बन्ध और स्नेह भूल गये। कुपित बलभद्रने परिघ उठाकर रुक्मीका सिर फाड़ डाला। तब कलिंगराज डरकर भागा, किन्तु उसको बलदेवने पकड़ लिया और उसके सब दाँत तोड़ डाले। अन्य राजा लोग भी मार खाकर भाग चले। हे राजन्! अपने साले रुक्मीके मरनेका समाचार पाकर कृष्णने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा। क्योंकि भला कहनेसे रुक्मिणी और बुरा कहनेसे बलभद्रजी बुरा मानते। तदनन्तर विवाहकी शेष रीतियाँ पूरी हो जानेपर अनिरुद्धको नवविवाहिता स्त्रीके साथ रथपर बिठाकर सब लोग द्वारकापुरीको गये।

द्विषष्टि अध्याय

बाणासुरके घरमें अनिरुद्धका बन्धन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! राजा बलिके एक सौ पुत्रोंमें बाणासुर सबसे बड़ा था। वह शोणितपुरमें राज्य करता था। वह शिवजीको ताण्डव नृत्यके समय बाजा बजाकर प्रसन्न किया करता था। शंभुके प्रसादसे उसके सहस्र भुजाएँ हो गयी थीं। भगवान शंकरने उससे वर माँगनेके लिए कहा तो उसने यह वर माँगा कि आप सदैव पास रहकर मेरे पुरकी रक्षा कीजिये। हे ईश! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपके दिये हुए ये हजार हाथ मुझको बोझसे लगते हैं। क्योंकि मुझे आपके सिवा तीनों लोकोंमें कोई अपने समान पुरुष नहीं मिलता, जिससे मैं युद्ध कर सकूँ। मैं दिग्गजोंसे युद्ध करनेके लिए गया और राहमें पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ चला तो दिग्गज भयभीत होकर भाग गये।

बाणासुरके ये गर्व भरे वचन सुनकर भगवान शंकरको क्रोध आ गया। उन्होंने उसे एक झण्डी देकर कहा कि इसको ले जाकर तू अपने घरमें बाँध दे। जिस दिन आप ही आप यह झण्डी टूटकर गिर पड़ेगी, उस दिन हे मूढ़! मेरे ही समान योद्धा तुझसे युद्ध करने आवेगा। यह सुनकर मन्दमति बाणासुर बहुत प्रसन्न होकर अपने घर गया। बाणासुरकी ऊषानाम्नी एक कन्या थी। परमसुन्दरी ऊषाने कभी अनिरुद्धको देखा या सुना न था। एक दिन स्वप्नमें ऊषाने अनिरुद्धको देखा और विहारसुख प्राप्त किया। वह उनपर आसक्त हो गयी। स्वप्नमें ही फिर एकाएक अनिरुद्धको न देखकर प्रियतम! तुम कहाँ चले गये? यह कहकर जाग पड़ी।

उठि बैठी सिर नाइ कहहि तब, ऊषा अति सकुचानी।
उदितकि रात एक मन मेरो, स्वप्नहिं हरि मृदु बानी॥
मेघवरण तन दामिनि लौं तेहि, लसो मधुर मुसकानी।
सोच-सँकोच हिया करि दूरी, मिलेउँ गले लपटानी॥
प्यार भरे मुख चुम्बन चहतहिं, गई नींद मम टूटी।
मोहन मूरति ध्यान बसी सोइ, छबि रहि चित्त अटूटी॥

ऊषाकी सखियाँ वहाँ उपस्थित थीं। उनको देखकर ऊषा बहुत लज्जित हुई। बाणासुरका एक कूष्माण्डनामक मन्त्री था। उसकी कन्या चित्रलेखा ऊषाकी प्रिय सखी थी। उसने विस्मित होकर ऊषासे पूछा—हे सुन्दर भौंहवाली! तुम किसकी खोज करती हो? तुम्हारा मनोरथ क्या है? अभीतक तो तुम्हारा किसीके साथ विवाह भी नहीं हुआ है। ऊषाने कहा—हे सखी! मैंने स्वप्नमें एक परमसुन्दर पुरुष देखा है। उसका श्याम वर्ण था। भुजाएँ विशाल थीं। कमलके समान दोनों नेत्र थे। वह पीताम्बर

पहिने हुए थे। मैं उसी कान्तकी खोजमें हूँ। उसने मुझे अपनी अधर-सुधा पिलायी है। मेरी इच्छा पूर्ण भी नहीं हुई थी कि वह मुझे दुःखसागरमें डुबोकर न जाने कहाँ चला गया। चित्रलेखाने कहा—मैं तुम्हारा दुःख अभी दूर कर दूँगी।

चित चिन्ता सखि! तजहु बैन सुनि, अब चितचोर मिलाऊँ।
भुवन चारिदस तीनिहुँ लोका, तव हित सब ढिग जाऊँ॥
नाम कहहु तिन ठाँव रहे जहँ, जान कहहु मोहिं प्यारी।
नाँव-गाँव नहिं जानत हौं सखि! ऊषा कहि हिय हारी॥
सोच तजहु सखि लिखति चित्र मैं, निज चितचोर पिछानी॥
देखहु ध्यान सहित सजनी गहु, प्रीतम की प्रिय पानी॥

यह कहकर चित्रलेखाने उसी समय क्रमशः देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर और यक्षोंके चित्र लिखे। तदनन्तर मनुष्योंके चित्र खींचे। मनुष्योंमें कृष्णवंशी यादवोंका, यादवोंमें भी शूरसेन और फिर वसुदेवका चित्र लिखा। फिर कृष्ण-बलदेव और प्रद्युम्नके चित्र लिखे। प्रद्युम्नको देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी।

यदुकुल-वंश-चित्र तब खींची, सखी सरल कह बानी।
वह प्रीतम यहि वंश-रत्न नर, छबि लखि लो पहिचानी॥
वासुदेव-छवि निरखि सकुचि मन, ऊषा अतिहि लजानी।
इन सम रूप मिलत मम प्रीतम, कहि अस हिय हरषानी॥
काम चित्र लखि सहमि छिपी रहि, ऊषा ओट दुराई।
लखि अनिरुद्ध रुद्ध भइ बानी, सखी गले लपटाई॥

हे राजन्! तदनन्तर सखीने जब अनिरुद्धका चित्र बनाया, तब उनको देखकर ऊषाने लज्जासे सिर नीचा किये हुए मुसकुरा-

कर कहा कि यही वह मनुष्य है। चित्रलेखा योगविद्याके प्रभाव-से जान गयी कि यह कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। उसी समय चित्रलेखा योगबलसे आकाशमार्ग द्वारा द्वारका चली गयी। वहाँ पलंगपर अनिरुद्ध सो रहे थे। सो पलंग समेत उठाकर वह उनको शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्रियसे मिला दिया।

करि माया तिन पलंग सहित लइ, श्याम घटा महँ जाई।
सचिव-सुता-मन मोद भयउ अति, ऊषा ढिग पहुँचाई॥

कुछ दिनों बाद यह बात धीरे-धीरे अन्तःपुरके रक्षकोंको मालूम हुई तो उन लोगोंने राजासे यह बात बता दी। बाणासुर कन्याके दुराचारकी बात सुनकर व्यथित हुआ और अचानक कन्याके भवनमें जाकर उसने देखा कि अनिरुद्धजी बैठे हुए हैं। बहुतसे भटोंके साथ बाणासुरको भवनमें आते देखकर अनिरुद्धजी उठ खड़े हुए और युद्ध करते हुए उनका विनाश करने लगे। बाणासुरके सैनिक मार न सह सकनेके कारण उस घरसे बाहर निकलकर इधर-उधर भागने लगे। तब महाबली बलिके पुत्र बाणासुरने कुपित होकर अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया। अपने प्रियतमको बंदी होते देखकर ऊषा शोक और विषादसे विह्वल होकर आँसू बहाती हुई रोने लगी।

त्रिषष्टि अध्याय

श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! इधर अनिरुद्धको न देखकर

उनके बन्धु-बान्धवोंको बड़ा शोक हुआ। इसी प्रकार वर्षके चार महीने बीत गये और अनिरुद्धका पता नहीं लगा। एक दिन नारदजीने जाकर सब वृत्तान्त सुनाया कि अनिरुद्ध बाणासुरके यहाँ बन्दी हैं। यह सुनकर कृष्ण-बलदेव बारह अक्षौहिणी सेना लेकर शोणितपुर गये और उसे चारों ओरसे घेर लिया। यह देखकर बाणासुर कुपित हो और सेना लेकर युद्धके लिए निकल पड़ा। बाणासुरकी ओरसे भक्तवत्सल भगवान शंभु नन्दीपर सवार होकर अपने पार्षदों और पुत्रोंके साथ युद्ध करनेके लिए आये। हे राजन्! उस समय कृष्ण और शिवसे, प्रद्युम्न और शिवके पुत्र कार्तिकेयसे, कूष्माण्ड और कूपकर्ण बलभद्रजीसे, बाणासुरके पुत्र और साम्बसे और बाणासुर तथा सात्यकीसे महाघोर युद्ध हुआ। ब्रह्मादिक देवनायक, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि सब देव-उपदेवगण वह युद्ध देखनेके लिए विमानोंपर बैठ-बैठकर आये। तब कृष्णचन्द्रने शार्ङ्गधनुषसे तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके शंकरके भूत, प्रमथ, गुह्यक, ब्रह्मराक्षस आदि अनुचरोंको मार भगाया। शिवजीने अनेक दिव्य अस्त्र कृष्णचन्द्रपर चलाये और कृष्णचन्द्रने भी लीलापूर्वक अपने अस्त्रोंसे उन अस्त्रोंको विफल कर दिया। तदनन्तर कृष्णचन्द्रने शिवपर मोहन अस्त्र चलाया, जिससे मोहित होकर शिवजी जम्हाई लेने लगे। उस समय भगवान वासुदेव तलवार, गदा, बाण आदिसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे। प्रद्युम्नके बाणोंकी वर्षासे कार्तिकेयके शरीरसे रुधिर बहने लगा। पीड़ित मयूर उनको लेकर रणभूमिसे भाग गया। कूष्माण्ड और कूपकर्ण दोनों राक्षस बलभद्रके मूशल-

की चोटसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। तब उनकी सेना किसी रक्षकके बिना विकल होकर भागी। अपनी सेनाको भागते देखकर, रथपर सवार बाणासुर अत्यन्त कुपित हो गया। वह सात्यकीसे युद्ध करना छोड़कर कृष्णचन्द्रको ओर दौड़ा। रणदुर्मद बाणासुरने एक साथ पाँच सौ धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ खींचकर एक-एक धनुषपर दो-दो बाण चढ़ाये। किन्तु हरि भगवानने उसके सब धनुषोंको काट डाला और फिर उसके सारथी, घोड़े और रथको नष्ट करके शंख बजाया। पुत्रके प्राणोंपर संकट देखकर बाणासुरकी माता कोटरा बाल खोल और नंगी होकर निकल आयी और पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिए आकर कृष्णके आगे खड़ी हो गयी। भगवानने मुख फेर लिया। क्योंकि नंगी स्त्रीको देखना नीतिविरुद्ध बात है। इसी अवसरपर बाणासुर रथ और धनुष लेनेके लिए अपने पुरमें चला गया। इधर जब सब भूतगण भाग गये, तब शिवने तीन सिर और तीन पैरवाले ज्वरको छोड़ा। नारायणने उसको देखकर अपने ज्वरको छोड़ा। तब महेश्वर और विष्णुज्वर परस्पर युद्ध करने लगे। महाबली विष्णुके ज्वरसे पीड़ित होकर चिल्लाता हुआ शंकरका ज्वर भयभीत भावसे भगवान कृष्णकी स्तुति करने लगा। स्तुतिसे प्रसन्न होकर कृष्णने कहा—हे त्रिशिर ज्वर! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ। अब तुझको मेरे ज्वरसे कुछ भी भय नहीं है। आजसे जो व्यक्ति हम लोगोंके इस संवादको सुनेंगे, उनको तेरा भय नहीं रहेगा। इस प्रकार जब श्रीकृष्णने कहा, तब प्रणाम करके शिवका ज्वर चला गया। इधर बाणासुर भी दूसरे रथपर चढ़कर युद्ध करनेके लिए जनार्दनके सामने

आया। आते ही बाणासुर कुपित होकर हजारों हाथोंसे श्रीकृष्णचन्द्रपर अनेक शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। तब भगवानने तीक्ष्ण सुदर्शन चक्रसे बाणासुरकी भुजाओंको काटना आरम्भ किया। चक्रधर भगवानको बाणासुरकी भुजाएँ काटते देखकर भक्तोंपर दया करनेवाले शंकर समक्ष आकर भगवान कृष्णकी स्तुति करने लगे। शिवजीकी स्तुतिसे तुष्ट होकर श्रीकृष्णने कहा—हे शंकर! आपका कथन मैं स्वीकार करता हूँ। आपने इसको अभय-वर दिया सो उत्तम ही किया। मैं भी कहता हूँ कि यह अबसे अभय हो गया। मैं तो इसका वध पहले भी नहीं करता, क्योंकि यह बलिका पुत्र है। मैं प्रह्लादको वर दे चुका हूँ कि तुम्हारे किसी भी वंशजको नहीं मारूँगा। केवल इसका गर्व खर्व करनेके ही लिए मैंने इसकी भुजाएँ काट डालीं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिए इसकी सेनाओंका संहार किया है। इसकी चार भुजाएँ बची हैं वे सदा रहेंगी। बाणासुर अजर-अमर रहेगा। यह तुम्हारे पार्षदोंमें प्रधान माना जायगा। इसको किसीसे भय न होगा। इस प्रकार श्रीकृष्णसे अभय-वर पाकर बाणासुर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। फिर उसने भगवानको प्रणाम करके अनिरुद्धको वधू-समेत रथपर बिठाकर सेवामें उपस्थित किया। सुन्दर वस्त्र-अलंकारोंसे सुशोभित सपत्नीक अनिरुद्धको आगे करके शंकरसे जानेकी अनुमति लेकर कृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। एक अक्षौहिणी सेना भी बाणासुरने अपनी ओरसे साथ कर दी। भगवान कृष्णचन्द्रने सुसज्जित और सुशोभित द्वारका नगरीमें वर और वधू सहित प्रवेश किया। पुरवासी, बन्धुवर्ग और द्विजातियोंने आगे

बढ़कर अभ्यर्थना की और उस समय शंख, ढोल, नगाड़े आदि मांगलिक बाजे चारों ओर बजने लगे। जो लोग प्रातःकाल उठकर कृष्णके साथ शंकरके युद्ध और कृष्णकी विजयकथा पढ़ते या सुनते हैं, वे कभी नहीं हारते।

चतुःषष्टि अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा राजा नृगका शापमोचन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि सब यदुकुमार मिलकर खेलनेके लिए उपवनको गये। खेलते-खेलते उन लोगोंको प्यास लगी। जल खोजते हुए वे लोग एक कुएँके पास पहुँचे। वह कुआँ सूखा हुआ था। सबने झाँककर देखा कि उसमें एक बड़ा भारी गिरगिट पड़ा हुआ है। तब वे लोग कृपापूर्वक उस गिरगिटको ऊपर निकालनेकी चेष्टा करने लगे। किन्तु किसी तरह भी वे उसको ऊपर लानेमें समर्थ नहीं हुए। तब उन लोगोंने उत्सुकताके साथ कृष्णचन्द्रसे आकर सब वृत्तान्त कहा। भगवानने आकर उसको देखा और ज्यों ही उसके शरीरमें हाथ लगाया, त्योंही वह गिरगिटका शरीर छोड़कर एक सुन्दर पुरुष हो गया। वह अद्भुत अलंकार और मालाओंसे विभूषित सुवर्णवर्ण और देवरूप हो गया था।

अविगत गति जानी न परै।
राई ते पर्वत करि डारै राई मेरु करै॥
नृगराजा नित सहस गऊ दै करत हुत्यौ जलपान।
नृग ते गिरगिट कीन्हें ताको को करि सकै बखान॥

कूप माँहिं तेहि देखि बालकन हरि सों कह्यो सुनाई।
कृपानिधान जानि अपनो जन आए तहँ यदुराई॥
अंधकूप ते काढ़ि बहुरि तेहि दरसन दै निस्तारा।
सूरदास सब तजि हरि भजिये तब सब करै उधारा॥

हे राजन्! यह देखकर श्रीकृष्णने पूछा—हे महाभाग! सुन्दर रूपधारी तुम कौन हो? तुम तो कोई श्रेष्ठ देवता जान पड़ते हो। तुम इस अवस्थामें क्यों पहुँचे? इसका कारण मुझसे कहो। मैं सुनना चाहता हूँ। श्रीकृष्णके वचन सुनकर दिव्यरूपधारी राजा नृगने माधवके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—हे प्रभो! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजर्षियोंमें श्रेष्ठ नृगनामक राजा हूँ। दानी लोगोंकी गिनतीमें कदाचित् मेरा नाम भी आपने सुना होगा। पृथ्वीमें जितने रजःकण हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र हैं और वर्षामें जितनी बूँदें गिरती हैं, उतनी दुधार तरुणी सुशीला सुरूपा और बछड़ेवाली सुन्दर गौवें मैंने सदाचार-निरत ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दी हैं। हे नाथ! एक समय किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणकी एक गऊ मेरे दान करनेकी गौवोंके झुण्डमें आकर मिल गयी। मैंने बिना जाने वह गऊ दूसरे ब्राह्मणको दे डाली। वह ब्राह्मण उस गऊको लेकर अपने घर जा रहा था। राहमें गऊके पूर्वस्वामी ब्राह्मणने उसे देखकर कहा—यह गऊ तो मेरी है, तुझे कहाँसे मिली? दूसरे ब्राह्मणने कहा—तू झूठ कहता है, यह मेरी है, मुझे राजा नृगने दी है। इस प्रकार झगड़ते हुए दोनों ब्राह्मण मेरे पास आये। उन्होंने आकर मुझसे कहा—हे राजा! तुम देनेवाले हो या हरनेवाले? उनके वचन सुनकर मैं बहुत व्याकुल

हुआ। धर्मसंकट देखकर मैंने दोनों ब्राह्मणोंसे विनयपूर्वक कहा कि आप लोगोंमेंसे कोई एक लाख उत्तम गौवें लेकर यह गऊ मुझको दे दीजिये। मैं सेवक हूँ। मुझसे बिना जाने यह अपराध हो गया है। आप मुझपर अनुग्रह करें। किन्तु दोनों ही ने मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया और दोनों गऊ छोड़कर चले गये। इसके बाद मेरा मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यमदूत मुझको यमराजके पास ले गये। यमराजने मुझसे पूछा कि तुम पहले अपना पुण्य भोगोगे या पाप? मैंने कहा—हे देव! मैं पहले अपने पापकर्मका ही फल भोगना चाहता हूँ। यह सुनकर यमराजने कहा—अच्छा, तब गिरो। यमराजके यह कहते ही मैंने देखा कि मैं गिरगिट होकर नीचे गिर रहा हूँ। हे केशव! मैं ब्राह्मणोंका भक्त और आपका सेवक था। इसी कारण गिरगिटकी योनिमें भी मुझको पूर्वजन्मका वृत्तान्त नहीं भूला। इस प्रकार भगवानसे और भी विनययुक्त वचन कहकर राजा नृगने भगवानके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया, परिक्रमा की और भगवानसे आज्ञा लेकर सबके सामने श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्यलोकको गये। तब देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्णने राजाओंको शिक्षा देते हुए अपने बान्धवों और बन्धुओंसे कहा—अहो! ब्राह्मणका बहुत थोड़ा धन खाकर अग्निके समान तेजस्वी पुरुष भी उसको पचा नहीं सकते। मेरी समझमें ब्राह्मणका धन ही विष है। उससे उत्पन्न अग्निसे सम्पूर्ण वंश नष्ट हो जाता है। जो लोग ब्राह्मणकी सम्पत्तिपर दाँत लगाते हैं, वे मानो नरक जानेकी अभिलाषा करते हैं। जो दुष्ट राजा लोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति लेना

चाहते हैं वे अल्पायु, राज्यसे भ्रष्ट एवं पराजित होते और नित्य व्याकुल रहते हैं। अतएव यदि ब्राह्मण अपराध भी करे तो उसका अप्रिय या अनिष्ट न करना चाहिए। ब्राह्मण चाहे मारे या गालियाँ दे, तो भी तुम उससे द्रोह न करके प्रणाम ही करना। जैसे मैं सब समय ध्यान रखकर ब्राह्मणको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुम लोग भी नम्रतापूर्वक ब्राह्मणको प्रणाम किया करो। जो कोई ऐसा न करेगा, उसको मैं कठोर दण्ड दूँगा। ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिरता है। इसका प्रमाण तुमने प्रत्यक्ष देखा कि बिना जाने ब्राह्मणकी सम्पत्ति हरनेपर महादानी धर्मात्मा नृगको गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा। भगवान कृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने भवनमें चले गये।

पञ्चषष्टि अध्याय

बलरामका रासविलास और यमुनाका आकर्षण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक दिन बलराम अपने सुहृद्‌जनोंको देखनेके लिए रथपर चढ़कर नन्दके गोकुलको गये। गोकुलमें उनके पहुँचते ही चिरकालसे उत्कण्ठित गोप-गोपियोंने उनको हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर बलरामजीने पिता-माता आदिको प्रणाम किया और उन्होंने भी शुभ आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया। नन्द-यशोदाने कहा—हे जगदीश्वर! आप अपने अनुज सहित चिरकालतक हमारी रक्षा कीजिये। यह कहकर उन्होंने बलरामजीको गोदमें ले लिया और आनन्दाश्रु बहाने लगे। जो गोप अवस्थामें बड़े थे, उनको बलदेवने प्रणाम

किया। तदनन्तर बलदेवजी सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम करने लगे। तब गोपोंने आकर यदुकुलका कुशल-समाचार पूछा। बलरामने कुशल-समाचार बताकर उन लोगोंका समाचार पूछा। गोपियाँ बलरामको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और हँसती हुई पूछने लगीं—नागरी स्त्रियोंके प्राणस्वरूप श्रीकृष्ण सुखपूर्वक और कुशलसे तो हैं? क्या वे पिता-माता और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण करते हैं? हमने उनके लिए माता-पिता भ्राता पति और बहनों तकको छोड़ दिया, किन्तु यह जानकर भी वे सब मित्रता और प्रेम-बन्धन तोड़ और मुँह मोड़कर चले गये। इस प्रकार और भी बहुत सी बातें कहकर गोपियाँ श्रीकृष्णकी हँसी, बातचीत, सुन्दर चितवन, चाल-ढाल और प्रेमालिंगन आदिका स्मरण करके विलाप करने लगीं। तब अनेक प्रकारके अनुनय करनेमें चतुर भगवान बलभद्रने श्रीकृष्णके मनोहर सन्देश सुनाकर उन गोपियोंको समझाया। भगवान रोहिणीनन्दन रात्रिके समय गोपियोंके साथ बिहार करते हुए चैत्र और वैशाख दो महीनेतक वहाँ रहे। बलभद्रजीने उन गोपियोंके साथ पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्ज्वल और कुमुदगन्धसे मनोहर यमुनाके उपवनमें बिहार किया। एक दिन जब इसी प्रकार बलरामजी बिहार कर रहे थे, तब वरुणजीकी भेजी हुई वारुणी वृक्ष कोटरसे बहकर अपने सुवाससे समूचे वनको सुगन्धित करने लगी। वायुके द्वारा उस वारुणीकी सुगन्ध बलभद्रतक पहुँची। उस गंधको सूँघकर बलभद्रजीने स्त्रियोंके साथ जाकर वह वारुणी पी ली। अतएव मदसे उनके नेत्र लाल हो गये। तब उन्मत्त बलदेवजी वनमें विचरने लगे और स्त्रियाँ उनके पवित्र गुण गाने

लगीं। उस समय बलभद्रजीने जलविहार करनेकी इच्छासे यमुनाको अपने निकट बुलाया। किन्तु यमुना वहाँ नहीं आयीं। यह देखकर बलभद्रजी जान गये कि मुझे मतवाला जानकर यमुनाने मेरी आज्ञाका निरादर किया है। अतएव कोपपूर्वक उन्होंने हलसे यमुनाको अपनी ओर खींचते हुए कहा—ओ पापिनी! मैंने तुझको बुलाया, किन्तु तूने मेरा अनादर किया और यहाँ नहीं आयी। तूने अपने मनका काम किया है। अतएव मैं अपने हलसे खींचकर मुसलसे तेरे सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा। हे राजन्! जब इस प्रकार बलभद्रजीने डाँटा, तब भयभीत और चकित होकर यमुना उनके पैरोंपर गिरकर कहने लगी—हे राम! मैं आपका पराक्रम नहीं जानती थी। हे विश्वनाथ! आप अपने एक अंशसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। मैं शरणागत हूँ। मुझे आप छोड़ दीजिये।

षट्षष्टि अध्याय

मिथ्यावासुदेव और काशिराजका वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जब बलरामजी नन्दके व्रजको गये तो उनके जानेके बाद कुछ दिन बीतनेपर करूषदेशके अधिपति और अज्ञानसे अन्ध पौण्ड्रकने 'मैं ही वासुदेव हूँ'—ऐसा निश्चय करके भगवान श्रीकृष्णके निकट एक दूत भेजा। द्वारकामें जाकर दूत कृष्णकी सभामें उपस्थित हुआ और वहाँपर बैठे हुए कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णसे उस दूतने पौण्ड्रकका संदेश सुनाते हुए कहा—करूषराजने कहा है कि मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ और

कोई वासुदेव नहीं है। जीवोंपर दया करके मैंने अवतार लिया है। तुम मिथ्या वासुदेव हो। अतः अपना वासुदेव नाम छोड़ दो। हे यादव! तुमने मूढ़तावश जो मेरे चिह्न धारण किये हैं, उन सबको त्याग और शीघ्र मेरी शरणमें आकर क्षमा माँगो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! उग्रसेन आदि जो सभासद लोग वहाँ उपस्थित थे, वे अल्प-बुद्धि पौण्ड्रककी यह मिथ्या आत्मश्लाघा सुनकर ऊँचे स्वरसे हँसने लगे। भगवानने भी हँसकर दूतसे कहा—तू उससे कह देना कि अरे मूढ़! जिन लोगोंकी सहायता और शक्तिपर निर्भर करके तू इस प्रकार मिथ्या आत्मश्लाघा करता है, उनपर और तुझपर अपने सुदर्शन आदि चिह्न मैं स्वयं आकर अंकित करूँगा। जिस मुखसे तू अपनी झूठी बड़ाई करता है, उस मुखको छिपाकर जब समरभूमिमें शयन करेगा तब कङ्क, गृध्र और बक आदि पक्षी तुझको घेरकर बैठेंगे और कुत्ते तेरी लोथ घसीटेंगे। इस प्रकार श्रीकृष्णने जो संदेश कहा, ज्योंका त्यों दूतने लौटकर अपने स्वामी पौण्ड्रकको कह सुनाया। इधर श्रीकृष्णजी रथपर चढ़कर काशीको चले। उस समय महारथी पौण्ड्रक अपने पुरमें था। उसने भी इस प्रकार समर करनेके लिए श्रीकृष्णका उद्योग देखा तो दो अक्षौहिणी सेना लेकर शीघ्र पुरसे बाहर निकला। हे राजन्! उसके मित्र काशिराज भी तीन अक्षौहिणी सेना समेत समरभूमिमें खड़े हो गये। भगवानने देखा कि पौण्ड्रक मेरे ही समान शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स आदि चिह्न धारण किये हुए है। गलेमें कौस्तुभ और वनमाला है। पीताम्बर

उत्तरीय वस्त्र और अमूल्य चूड़ाभरण धारण किये अपने ही समान वेषयुक्त रङ्गभूमिगत नटके समान युद्धभूमिमें गरुड़की ध्वजावाले रथपर अवस्थित पौण्ड्रकको देखकर भगवान बहुत हँसे। कानोंमें मकराकृत कुण्डल धारण किये हुए शत्रुकी सेना श्रीहरिके ऊपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति आदि और बाणोंकी वर्षा करने लगी। तदनन्तर भगवानने इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतको भेदते हैं, वैसे ही बाणवर्षासे पौण्ड्रकके रथको चूर्ण करके सुदर्शन चक्रसे उसका सिर काट डाला। साथ ही एक बाणसे उसके सहायक काशिराजका भी सिर काटकर वायुसंचालित कमलपत्रके समान उसे काशीपुरीमें पहुँचा दिया। हे राजन्! पौण्ड्रक शत्रुतावश सब समय भगवानका ध्यान किया करता था। अतएव उसके सब कर्मबन्धन शिथिल हो गये थे। इसी कारण सर्वदा हरिका ध्यान करनेसे मरनेके उपरान्त वह तन्मय हो गया। इधर काशीपुरीमें राजद्वारपर कुण्डलमण्डित कटा हुआ सिर देखकर 'यह क्या है? किसका सिर है?' इस प्रकार कहते हुए सब पुरवासी लोग घबड़ाने लगे। तदनन्तर जब सबको ज्ञात हुआ कि यह काशिराजका सिर है तब रानियाँ, राजकुमार और बन्धु-बान्धवगण आदि विलाप करने लगे। तदनन्तर काशिराजका पुत्र सुदक्षिण जब पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया कर चुका, तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं जब अपने पिताको मारनेवालेको मारकर बदला ले लूँगा, तभी पिताके ऋणसे मुक्त होऊँगा। यह निश्चय करके वह अपने गुरुके साथ परम समाधि लगाकर महेश्वरकी आराधना करने लगा। भगवान शंकर उसकी आराधनासे मुग्ध हो गये और प्रकट होकर कहा

कि 'जो इच्छा हो वह वर माँग लो।' उसने यह वर माँगा कि जिसने मेरे पिताको मारा है, उसके वधका उपाय बताइये। शंकरजीने कहा—तुम ब्राह्मणोंके साथ यज्ञके देवता दक्षिणाग्निकी भली-भाँति उपासना करो। ऐसा करनेसे वह अग्नि प्रमथगणसे आवृत हो और हिंसाकार्यमें नियुक्त होकर तुम्हारे संकल्पको सिद्ध कर देगा। किन्तु स्मरण रखो कि जो कोई ब्राह्मणोंका भक्त होगा, उसपर उसका बल न काम देगा। यह सुनकर सुदक्षिणने श्रीकृष्णके ऊपर उक्त विधिके अनुसार अभिचार क्रियाका अनुष्ठान किया। तब कुण्डसे भयानक रूपधारी दक्षिणाग्नि मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। वह अपने तेजसे दसों दिशाओंको जलाता हुआ प्रमथगणको साथ लिये द्वारकाकी ओर दौड़ा। उसे देखकर द्वारकावासी लोग प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगे। भगवान उस समय सभामें बैठे हुए चौसर खेल रहे थे। भयसे आतुर पुरवासी भगवानके पास आकर दीनभावसे कहने लगे—हे त्रिलोकीके ईश्वर! इस अग्निसे हमारी रक्षा करिए। उनको भयभीत देखकर भगवानने हँसते हुए कहा—डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा। भगवान जान गये कि यह माहेश्वरी कृत्या है। अतएव उसका विनाश करनेके लिए उन्होंने अपने पास ही उपस्थित सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी। सुदर्शन चक्रके तेजसे पीड़ित वह कृत्या प्रतिहत होकर लौट पड़ी और उस कृत्यारूपी अग्निने वाराणसीपुरीमें आकर सुदक्षिणको ऋत्विजोंके साथ भस्म कर डाला। अपने किये अभिचारसे वह दुष्ट आप ही नष्ट हो गया। विष्णुके चक्र सुदर्शनने भी उस अग्निका पीछा नहीं

छोड़ा। उसके पीछे पुरीमें प्रवेश करके अट्टालिका, सभामण्डप, हाट-बाट और गोपुर आदिसे सुशोभित वाराणसी पुरीको भस्म कर दिया। तब वह लौटकर कृष्णके निकट आ गया।

सप्तषष्टि अध्याय

बलराम द्वारा द्विविद वानरका वध

महराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन् ! बलदेवने और भी जो अद्भुत कर्म किये हैं, उनका विवरण मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! सुग्रीवका मन्त्री और मैन्दका भाई वीर्यवान द्विविदनामक एक वानर भौमासुरका परम मित्र था। भौमासुरको जब कृष्णचन्द्रने मार डाला, तब मरे हुए मित्रका बदला चुकाने और राष्ट्रविप्लव करनेकी अभिलाषासे वह वानर गोकुलके नगर-ग्राम आदिमें आग लगाने लगा। कभी-कभी वह पर्वत उठाकर कुछ प्रदेशोंपर छोड़ देता, जिससे वे नष्ट हो जाते। इस प्रकार जहाँ कृष्णचन्द्र निवास करते थे, उस आनर्त प्रदेशके पुरोंको वह नष्ट करने लगा। कभी-कभी श्रेष्ठ ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वहाँके वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंक देता और मलमूत्र करके हवनकी अग्नि बुझाकर कुण्डोंको दूषित कर देता था। वह कभी स्त्री-पुरुषोंको पकड़कर ले जाता और उनको कन्दरामें डालकर पत्थरसे उसका दरवाजा बन्द कर देता था। इसी प्रकार अनेक प्रदेशोंको उजाड़ता और कुलनारियोंको दूषित करता हुआ वह वानर विचरने लगा। एक दिन सुललित संगीतका मधुर स्वर सुनकर वह वानर रैवतक पर्वतपर चढ़ गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि यदुपति

बढ़कर अभ्यर्थना की और उस समय शंख, ढोल, नगाड़े आदि मांगलिक बाजे चारों ओर बजने लगे। जो लोग प्रातःकाल उठकर कृष्णके साथ शंकरके युद्ध और कृष्णकी विजयकथा पढ़ते या सुनते हैं, वे कभी नहीं हारते।

चतुःषष्टि अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा राजा नृगका शापमोचन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि सब यदुकुमार मिलकर खेलनेके लिए उपवनको गये। खेलते-खेलते उन लोगोंको प्यास लगी। जल खोजते हुए वे लोग एक कुएँके पास पहुँचे। वह कुआँ सूखा हुआ था। सबने झाँककर देखा कि उसमें एक बड़ा भारी गिरगिट पड़ा हुआ है। तब वे लोग कृपापूर्वक उस गिरगिटको ऊपर निकालनेकी चेष्टा करने लगे। किन्तु किसी तरह भी वे उसको ऊपर लानेमें समर्थ नहीं हुए। तब उन लोगोंने उत्सुकताके साथ कृष्णचन्द्रसे आकर सब वृत्तान्त कहा। भगवानने आकर उसको देखा और ज्यों ही उसके शरीरमें हाथ लगाया, त्योंही वह गिरगिटका शरीर छोड़कर एक सुन्दर पुरुष हो गया। वह अद्भुत अलंकार और मालाओंसे विभूषित सुवर्णवर्ण और देवरूप हो गया था।

अविगत गति जानी न परै।
राई ते पर्वत करि डारै राई मेरु करै॥
नृगराजा नित सहस गऊ दै करत हुत्यौ जलपान।
नृग ते गिरगिट कीन्हें ताको को करि सकै बखान॥

कूप माँहिं तेहि देखि बालकन हरि सों कह्यो सुनाई ।
कृपानिधान जानि अपनो जन आए तहँ यदुराई ॥
अंधकूप ते काढ़ि बहुरि तेहि दरसन दै निस्तारा ।
सूरदास सब तजि हरि भजिये तब सब करै उधारा ॥

हे राजन् ! यह देखकर श्रीकृष्णने पूछा—हे महाभाग ! सुन्दर रूपधारी तुम कौन हो ? तुम तो कोई श्रेष्ठ देवता जान पड़ते हो । तुम इस अवस्थामें क्यों पहुँचे ? इसका कारण मुझसे कहो । मैं सुनना चाहता हूँ । श्रीकृष्णके वचन सुनकर दिव्यरूपधारी राजा नृगने माधवके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजर्षियोंमें श्रेष्ठ नृगनामक राजा हूँ । दानी लोगोंकी गिनतीमें कदाचित् मेरा नाम भी आपने सुना होगा । पृथ्वीमें जितने रजःकण हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र हैं और वर्षामें जितनी बूँदें गिरती हैं, उतनी दुधार तरुणी सुशीला सुरूपा और बछड़ेवाली सुन्दर गौवें मैंने सदाचार-निरत ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दी हैं । हे नाथ ! एक समय किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणकी एक गऊ मेरे दान करनेकी गौवोंके झुण्डमें आकर मिल गयी । मैंने बिना जाने वह गऊ दूसरे ब्राह्मणको दे डाली । वह ब्राह्मण उस गऊको लेकर अपने घर जा रहा था । राहमें गऊके पूर्व-स्वामी ब्राह्मणने उसे देखकर कहा—यह गऊ तो मेरी है, तुझे कहाँसे मिली ? दूसरे ब्राह्मणने कहा—तू झूठ कहता है, यह मेरी है, मुझे राजा नृगने दी है । इस प्रकार झगड़ते हुए दोनों ब्राह्मण मेरे पास आये । उन्होंने आकर मुझसे कहा—हे राजा ! तुम देनेवाले हो या हरनेवाले ? उनके वचन सुनकर मैं बहुत व्याकुल

हुआ। धर्मसंकट देखकर मैंने दोनों ब्राह्मणोंसे विनयपूर्वक कहा कि आप लोगोंमेंसे कोई एक लाख उत्तम गौवें लेकर यह गऊ मुझको दे दीजिये। मैं सेवक हूँ। मुझसे बिना जाने यह अपराध हो गया है। आप मुझपर अनुग्रह करें। किन्तु दोनों ही ने मेरी बातपर ध्यान नहीं दिया और दोनों गऊ छोड़कर चले गये। इसके बाद मेरा मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यमदूत मुझको यमराजके पास ले गये। यमराजने मुझसे पूछा कि तुम पहले अपना पुण्य भोगोगे या पाप? मैंने कहा—हे देव! मैं पहले अपने पापकर्मका ही फल भोगना चाहता हूँ। यह सुनकर यमराजने कहा—अच्छा, तब गिरो। यमराजके यह कहते ही मैंने देखा कि मैं गिरगिट होकर नीचे गिर रहा हूँ। हे केशव! मैं ब्राह्मणोंका भक्त और आपका सेवक था। इसी कारण गिरगिटकी योनिमें भी मुझको पूर्वजन्मका वृत्तान्त नहीं भूला। इस प्रकार भगवानसे और भी विनययुक्त वचन कहकर राजा नृगने भगवानके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया, परिक्रमा की और भगवानसे आज्ञा लेकर सबके सामने श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्यलोकको गये। तब देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्णने राजाओंको शिक्षा देते हुए अपने बान्धवों और बन्धुओंसे कहा—अहो! ब्राह्मणका बहुत थोड़ा धन खाकर अग्निके समान तेजस्वी पुरुष भी उसको पचा नहीं सकते। मेरी समझमें ब्राह्मणका धन ही विष है। उससे उत्पन्न अग्निसे सम्पूर्ण वंश नष्ट हो जाता है। जो लोग ब्राह्मणकी सम्पत्तिपर दाँत लगाते हैं, वे मानो नरक जानेकी अभिलाषा करते हैं। जो दुष्ट राजा लोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति लेना

चाहते हैं वे अल्पायु, राज्यसे भ्रष्ट एवं पराजित होते और नित्य व्याकुल रहते हैं। अतएव यदि ब्राह्मण अपराध भी करे तो उसका अप्रिय या अनिष्ट न करना चाहिए। ब्राह्मण चाहे मारे या गालियाँ दे, तो भी तुम उससे द्रोह न करके प्रणाम ही करना। जैसे मैं सब समय ध्यान रखकर ब्राह्मणको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुम लोग भी नम्रतापूर्वक ब्राह्मणको प्रणाम किया करो। जो कोई ऐसा न करेगा, उसको मैं कठोर दण्ड दूँगा। ब्राह्मणका धन हरनेवाला नरकमें गिरता है। इसका प्रमाण तुमने प्रत्यक्ष देखा कि बिना जाने ब्राह्मणकी सम्पत्ति हरनेपर महादानी धर्मात्मा नृगको गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा। भगवान कृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने भवनमें चले गये।

पञ्चषष्टि अध्याय

बलरामका रासविलास और यमुनाका आकर्षण

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक दिन बलराम अपने सुहृद्जनोंको देखनेके लिए रथपर चढ़कर नन्दके गोकुलको गये। गोकुलमें उनके पहुँचते ही चिरकालसे उत्कण्ठित गोप-गोपियोंने उनको हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर बलरामजीने पिता-माता आदिको प्रणाम किया और उन्होंने भी शुभ आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया। नन्द-यशोदाने कहा—हे जगदीश्वर! आप अपने अनुज सहित चिरकालतक हमारी रक्षा कीजिये। यह कहकर उन्होंने बलरामजीको गोदमें ले लिया और आनन्दाश्रु बहाने लगे। जो गोप अवस्थामें बड़े थे, उनको बलदेवने प्रणाम

किया। तदनन्तर बलदेवजी सुखपूर्वक आसनपर बैठकर विश्राम करने लगे। तब गोपोंने आकर यदुकुलका कुशल-समाचार पूछा। बलरामने कुशल-समाचार बताकर उन लोगोंका समाचार पूछा। गोपियाँ बलरामको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और हँसती हुई पूछने लगीं—नागरी स्त्रियोंके प्राणस्वरूप श्रीकृष्ण सुखपूर्वक और कुशलसे तो हैं? क्या वे पिता-माता और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण करते हैं? हमने उनके लिए माता-पिता भ्राता पति और बहनों तकको छोड़ दिया, किन्तु यह जानकर भी वे सब मित्रता और प्रेम-बन्धन तोड़ और मुँह मोड़कर चले गये। इस प्रकार और भी बहुत सी बातें कहकर गोपियाँ श्रीकृष्णकी हँसी, बातचीत, सुन्दर चितवन, चाल-ढाल और प्रेमालिंगन आदिका स्मरण करके विलाप करने लगीं। तब अनेक प्रकारके अनुनय करनेमें चतुर भगवान बलभद्रने श्रीकृष्णके मनोहर सन्देश सुनाकर उन गोपियोंको समझाया। भगवान रोहिणीनन्दन रात्रिके समय गोपियोंके साथ बिहार करते हुए चैत्र और वैशाख दो महीनेतक वहाँ रहे। बलभद्रजीने उन गोपियोंके साथ पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्ज्वल और कुमुदगन्धसे मनोहर यमुनाके उपवनमें बिहार किया। एक दिन जब इसी प्रकार बलरामजी बिहार कर रहे थे, तब वरुणजीकी भेजी हुई वारुणी वृक्ष कोटरसे बहकर अपने सुवाससे समूचे वनको सुगन्धित करने लगी। वायुके द्वारा उस वारुणीकी सुगन्ध बलभद्रतक पहुँची। उस गंधको सूँघकर बलभद्रजीने स्त्रियोंके साथ जाकर वह वारुणी पी ली। अतएव मदसे उनके नेत्र लाल हो गये। तब उन्मत्त बलदेवजी वनमें विचरने लगे और स्त्रियाँ उनके पवित्र गुण गाने

लगीं। उस समय बलभद्रजीने जलविहार करनेकी इच्छासे यमुनाको अपने निकट बुलाया। किन्तु यमुना वहाँ नहीं आयीं। यह देखकर बलभद्रजी जान गये कि मुझे मतवाला जानकर यमुनाने मेरी आज्ञाका निरादर किया है। अतएव कोपपूर्वक उन्होंने हलसे यमुनाको अपनी ओर खींचते हुए कहा—ओ पापिनी! मैंने तुझको बुलाया, किन्तु तूने मेरा अनादर किया और यहाँ नहीं आयी। तूने अपने मनका काम किया है। अतएव मैं अपने हलसे खींचकर मुसलसे तेरे सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा। हे राजन्! जब इस प्रकार बलभद्रजीने डाँटा, तब भयभीत और चकित होकर यमुना उनके पैरोंपर गिरकर कहने लगी—हे राम! मैं आपका पराक्रम नहीं जानती थी। हे विश्वनाथ! आप अपने एक अंशसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। मैं शरणागत हूँ। मुझे आप छोड़ दीजिये।

षट्षष्टि अध्याय

मिथ्यावासुदेव और काशिराजका वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जब बलरामजी नन्दके व्रजको गये तो उनके जानेके बाद कुछ दिन बीतनेपर करूषदेशके अधिपति और अज्ञानसे अन्ध पौण्ड्रकने 'मैं ही वासुदेव हूँ'—ऐसा निश्चय करके भगवान श्रीकृष्णके निकट एक दूत भेजा। द्वारकामें जाकर दूत कृष्णकी सभामें उपस्थित हुआ और वहाँपर बैठे हुए कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णसे उस दूतने पौण्ड्रकका संदेश सुनाते हुए कहा—करूषराजने कहा है कि मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ और

कोई वासुदेव नहीं है। जीवोंपर दया करके मैंने अवतार लिया है। तुम मिथ्या वासुदेव हो। अतः अपना वासुदेव नाम छोड़ दो। हे यादव! तुमने मूढ़तावश जो मेरे चिह्न धारण किये हैं, उन सबको त्याग और शीघ्र मेरी शरणमें आकर क्षमा माँगो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! उग्रसेन आदि जो सभासद लोग वहाँ उपस्थित थे, वे अल्प-बुद्धि पौण्ड्रककी यह मिथ्या आत्मश्लाघा सुनकर ऊँचे स्वरसे हँसने लगे। भगवानने भी हँसकर दूतसे कहा—तू उससे कह देना कि अरे मूढ़! जिन लोगोंकी सहायता और शक्तिपर निर्भर करके तू इस प्रकार मिथ्या आत्मश्लाघा करता है, उनपर और तुझपर अपने सुदर्शन आदि चिह्न मैं स्वयं आकर अंकित करूँगा। जिस मुखसे तू अपनी झूठी बड़ाई करता है, उस मुखको छिपाकर जब समरभूमिमें शयन करेगा तब कङ्क, गृध्र और बक आदि पक्षी तुझको घेरकर बैठेंगे और कुत्ते तेरी लोथ घसीटेंगे। इस प्रकार श्रीकृष्णने जो संदेश कहा, ज्योंका त्यों दूतने लौटकर अपने स्वामी पौण्ड्रकको कह सुनाया। इधर श्रीकृष्णजी रथपर चढ़कर काशीको चले। उस समय महारथी पौण्ड्रक अपने पुरमें था। उसने भी इस प्रकार समर करनेके लिए श्रीकृष्णका उद्योग देखा तो दो अक्षौहिणी सेना लेकर शीघ्र पुरसे बाहर निकला। हे राजन्! उसके मित्र काशिराज भी तीन अक्षौहिणी सेना समेत समरभूमिमें खड़े हो गये। भगवानने देखा कि पौण्ड्रक मेरे ही समान शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स आदि चिह्न धारण किये हुए है। गलेमें कौस्तुभ और वनमाला है। पीताम्बर

उत्तरीय वस्त्र और अमूल्य चूड़ाभरण धारण किये अपने ही समान वेषयुक्त रङ्गभूमिगत नटके समान युद्धभूमिमें गरुड़की ध्वजावाले रथपर अवस्थित पौण्ड्रकको देखकर भगवान बहुत हँसे। कानोंमें मकराकृत कुण्डल धारण किये हुए शत्रुकी सेना श्रीहरिके ऊपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति आदि और बाणोंकी वर्षा करने लगी। तदनन्तर भगवानने इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतको भेदते हों, वैसे ही बाणवर्षासे पौण्ड्रकके रथको चूर्ण करके सुदर्शन चक्रसे उसका सिर काट डाला। साथ ही एक बाणसे उसके सहायक काशिराजका भी सिर काटकर वायुसंचालित कमलपत्रके समान उसे काशीपुरीमें पहुँचा दिया। हे राजन्! पौण्ड्रक शत्रुतावश सब समय भगवानका ध्यान किया करता था। अतएव उसके सब कर्मबन्धन शिथिल हो गये थे। इसी कारण सर्वदा हरिका ध्यान करनेसे मरनेके उपरान्त वह तन्मय हो गया। इधर काशीपुरीमें राजद्वारपर कुण्डलमण्डित कटा हुआ सिर देखकर 'यह क्या है? किसका सिर है?' इस प्रकार कहते हुए सब पुरवासी लोग घबड़ाने लगे। तदनन्तर जब सबको ज्ञात हुआ कि यह काशिराजका सिर है तब रानियाँ, राजकुमार और बन्धु-बान्धवगण आदि विलाप करने लगे। तदनन्तर काशिराजका पुत्र सुदक्षिण जब पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया कर चुका, तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं जब अपने पिताको मारनेवालेको मारकर बदला ले लूँगा, तभी पिताके ऋणसे मुक्त होऊँगा। यह निश्चय करके वह अपने गुरुके साथ परम समाधि लगाकर महेश्वरकी आराधना करने लगा। भगवान शंकर उसकी आराधनासे मुग्ध हो गये और प्रकट होकर कहा

कि 'जो इच्छा हो वह वर माँग लो।' उसने यह वर माँगा कि जिसने मेरे पिताको मारा है, उसके वधका उपाय बताइये। शंकरजीने कहा—तुम ब्राह्मणोंके साथ यज्ञके देवता दक्षिणाग्निकी भली-भाँति उपासना करो। ऐसा करनेसे वह अग्नि प्रमथगणसे आवृत हो और हिंसाकार्यमें नियुक्त होकर तुम्हारे संकल्पको सिद्ध कर देगा। किन्तु स्मरण रखो कि जो कोई ब्राह्मणोंका भक्त होगा, उसपर उसका बल न काम देगा। यह सुनकर सुदक्षिणने श्रीकृष्णके ऊपर उक्त विधिके अनुसार अभिचार क्रियाका अनुष्ठान किया। तब कुण्डसे भयानक रूपधारी दक्षिणाग्नि मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। वह अपने तेजसे दसों दिशाओंको जलाता हुआ प्रमथगणको साथ लिये द्वारकाकी ओर दौड़ा। उसे देखकर द्वारकावासी लोग प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगे। भगवान उस समय सभामें बैठे हुए चौसर खेल रहे थे। भयसे आतुर पुरवासी भगवानके पास आकर दीनभावसे कहने लगे—हे त्रिलोकीके ईश्वर! इस अग्निसे हमारी रक्षा करिए। उनको भयभीत देखकर भगवानने हँसते हुए कहा—डरो मत, मैं तुमलोगोंकी रक्षा करूँगा। भगवान जान गये कि यह माहेश्वरी कृत्या है। अतएव उसका विनाश करनेके लिए उन्होंने अपने पास ही उपस्थित सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी। सुदर्शन चक्रके तेजसे पीड़ित वह कृत्या प्रतिहत होकर लौट पड़ी और उस कृत्यारूपी अग्निने वाराणसीपुरीमें आकर सुदक्षिणको ऋत्विजोंके साथ भस्म कर डाला। अपने किये अभिचारसे वह दुष्ट आप ही नष्ट हो गया। विष्णुके चक्र सुदर्शनने भी उस अग्निका पीछा नहीं

छोड़ा। उसके पीछे पुरीमें प्रवेश करके अट्टालिका, सभामण्डप, हाट-बाट और गोपुर आदिसे सुशोभित वाराणसी पुरीको भस्म कर दिया। तब वह लौटकर कृष्णके निकट आ गया।

सप्तषष्टि अध्याय

बलराम द्वारा द्विविद वानरका वध

महराज परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! बलदेवने और भी जो अद्भुत कर्म किये हैं, उनका विवरण मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! सुग्रीवका मन्त्री और मैन्दका भाई वीर्यवान द्विविदनामक एक बानर भौमासुरका परम मित्र था। भौमासुरको जब कृष्णचन्द्रने मार डाला, तब मरे हुए मित्रका बदला चुकाने और राष्ट्रविप्लव करनेकी अभिलाषासे वह बानर गोकुलके नगर-ग्राम आदिमें आग लगाने लगा। कभी-कभी वह पर्वत उठाकर कुछ प्रदेशोंपर छोड़ देता, जिससे वे नष्ट हो जाते। इस प्रकार जहाँ कृष्णचन्द्र निवास करते थे, उस आनर्त प्रदेशके पुरोंको वह नष्ट करने लगा। कभी-कभी श्रेष्ठ ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर वहाँके वृक्षोंको उखाड़-उखाड़कर फेंक देता और मलमूत्र करके हवनकी अग्नि बुझाकर कुण्डोंको दूषित कर देता था। वह कभी स्त्री-पुरुषोंको पकड़कर ले जाता और उनको कन्दरामें डालकर पत्थरसे उसका दरवाजा बन्द कर देता था। इसी प्रकार अनेक प्रदेशोंको उजाड़ता और कुलनारियोंको दूषित करता हुआ वह बानर विचरने लगा। एक दिन सुललित संगीतका मधुर स्वर सुनकर वह बानर रैवतक पर्वतपर चढ़ गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि यदुपति

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

बलभद्रजी विद्यमान हैं। वे सुन्दरी रमणियोंकी मण्डलीके बीचमें बैठकर मदिरा पान कर रहे हैं। उनके नेत्र मदके कारण विह्वल हो रहे हैं। बलभद्रको देखकर वह दुष्ट बानर एक वृक्षपर चढ़ गया और उसकी शाखाएँ वेगसे हिला और अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखा-दिखाकर शब्द करने लगा। इस प्रकार वह बारम्बार स्त्रियोंको चिढ़ाने लगा। उसने इतना उपद्रव मचाया कि मदिराके पात्रको पटककर फोड़ डाला। तब भगवान बलभद्र क्रोधसे विह्वल हो गये और उसे मारनेके लिए मुसल लेकर उठ खड़े हुए। उनके मुसलप्रहारसे उस बानरका सिर फट गया और रुधिरकी धारा बहने लगी। तब बानरने बलभद्रपर वृक्ष चलाया। भगवानने उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। बानरने उस वनके सब वृक्ष उखाड़कर बलदेवपर चलाये। किन्तु सबको बलदेवने विफल कर दिया। जब सब वृक्ष चुक गये, तब वह बानर अत्यन्त कुपित होकर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। किन्तु उन शिलाओंको भी बलदेवने चूर-चूर कर डाला। अन्तमें बलभद्रने दोनों हाथोंसे कंठ और बाहुके बीचमें उसे पकड़कर मसल दिया। वह बानर तुरन्त प्राणहीन होकर पृथ्वी परगिर पड़ा। आकाशसे देवता, सिद्ध और मुनीन्द्रगण फूल बरसा और जयजय कहकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे।

अष्टषष्टि अध्याय

बलदेव-विजय

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! दुर्योधनकी एक कन्याका नाम लक्ष्मणा था। उसका स्वयंवर रचा गया तो जाम्बवतीके

पुत्र साम्ब अकेले ही स्वयंवरमें गये और उस कन्याको हरकर द्वारका को चले। यह देखा तो सब कौरवगण कुपित होकर कहने लगे कि इस ढीठ बालकको पकड़कर बन्दी बना लेना चाहिये। यादव लोग हमारी ही कृपासे राज्य भोग कर रहे हैं। हमने ही उनको राज्य दिया है। कुरुवृद्ध भीष्म पितामहने भी इसका अनुमोदन किया। कर्ण सबके अगुआ बने। बालकका पीछा किया गया। साम्बने कर्ण आदि महारथियोंको घायल किया। अन्तमें कौरवोंने बड़े कष्टसे साम्बको रथहीन कर डाला और बाँध लिया। कुमार साम्बको कन्या सहित पकड़कर कौरव लोग अपने पुरको लौट गये। इधर नारदने जाकर यह सब वृत्तान्त द्वारकापुरीमें कहा। सो सुनकर वीर यादव अत्यन्त कुपित हुए और उग्रसेनकी आज्ञा पाकर वे कौरवोंसे युद्ध करनेको उद्यत हुए। किन्तु बलदेवजी नहीं चाहते थे कि कौरवों और यादवोंमें युद्ध हो। इसलिए उन्होंने यादवोंको समझा-बुझाकर शान्त किया और आप मेल करानेकी इच्छासे बड़े-बूढ़े और ब्राह्मणोंको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले। हस्तिनापुर पहुँचकर बलभद्रजी पुरके बाहर उपवनमें ठहरे और धृतराष्ट्रका अभिप्राय जाननेके लिए उद्धवजीको कौरवोंकी सभामें भेजा। उद्धवजीने सभामें जाकर यथोचित रीतिसे धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, बाह्लीक और दुर्योधन आदिको प्रणाम करके कहा कि बलभद्रजी आये हैं। सुनते ही सब लोग प्रसन्न होकर बलभद्रजीके पास गये। परस्पर कुशल-प्रश्नके उपरान्त जब सब सुखसे बैठे, तब बलभद्रजीने धीरभावसे कहा—हे प्रभु! उग्रसेनने जो आज्ञा आप लोगोंको दी है, वह चित्त लगाकर सुनो और शीघ्र

ही तदनुसार कार्य करो। उन्होंने कहा है कि तुम कई जनोंने अधर्मपूर्वक एक बालकको पकड़कर बन्दी बनाया है, यह बात अच्छी नहीं है। हम इसको इसलिए सह रहे हैं कि आपसमें मेल बना रहे, युद्ध न हो। अतएव इसी समय तुम लोग उस बालकको हमें दे दो। बलदेवके मुखसे ऐसे वचन सुनकर कौरवगण अत्यन्त कुपित हुए और कहने लगे—यह तो बहुत बड़े आश्चर्यकी बात है। कुन्तीके विवाह द्वारा इन यादवोंसे हमारा योनिसम्बन्धमात्र है। इसी सम्बन्धके कारण ये लोग हमारी बराबरी करने लगे हैं। हमारे ही अनुग्रहसे ये लोग राज्यसुख भोगते हैं और अब ये लोग हमको ही आज्ञा दे रहे हैं। इनसे अब राज-चिह्न छीन लेना चाहिये। इस प्रकार तिरस्कार करके कौरवगण नगरमें चले गये। कौरवोंका ऐसा दुर्व्यवहार देख और कटुवचन सुनकर बलदेवजी अत्यन्त कुपित हुए। तब बलदेवजी क्रोधके आवेशमें बारम्बार उच्च-स्वरसे हँसकर कहने लगे—अहो! मैं तो इनकी भलाईके लिए युद्ध करनेको उद्यत यादवोंको रोककर यहाँ मेलके लिए आया था, किन्तु ये लोग मतिमन्द हैं—दुष्ट हैं। ये तो मेरा ही तिरस्कार करके कटु वचन कहते हैं। तदनन्तर भगवान बलभद्र यह कहकर कि 'आज मैं पृथ्वीको कौरवोंसे शून्य कर दूँगा' उठ खड़े हुए और गंगामें गिरा देनेके लिए हस्तिनापुरको हलके अग्रभागसे गंगाकी ओर घसीटने लगे। हलके द्वारा खींचे गये नगरको नावके समान घूमकर गंगामें गिरते देखकर सब कौरवगण भयसे व्याकुल हो उठे और प्राण बचानेकी इच्छासे अपने कुटुम्ब-परिवार समेत लक्ष्मणा और साम्बको आगे करके बलभद्र-

की शरणमें गये। वे लोग बलदेवके सम्मुख जाकर अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! कौरवोंने जब नम्र वचनोंसे बलरामको प्रसन्न किया, तब उन्होंने कौरवोंको अभयदान दिया। तदनन्तर दुहितावत्सल दुर्योधनने दहेजमें बहुत-सी सामग्री दी। सब सामग्री और वधूके साथ बलदेव अपनी पुरीको लौटे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यादवोंकी सभामें सब वृत्तांत कह सुनाया। हे राजन्! हस्तिनापुर नगरका दक्षिण भाग गङ्गाकी ओर उन्नत है और अभीतक वह बलभद्रजीका विक्रम प्रकट कर रहा है।

ऊनसप्तति अध्याय

मायाकी विभूतिका वर्णन

शुकदेवजी बोले–हे महाराज! देवर्षि नारदने जब सुना कि भगवानने नरकासुरको मारकर अनेकानेक स्त्रियोंसे विवाह कर लिया है तो इस समाचारसे नारदजी आश्चर्यमें पड़ गये और इस विचित्र व्यापारको देखनेकी इच्छासे द्वारकापुरीमें आये। नारदने विश्वकर्मानिर्मित उस अति रम्य पुरीको देखा। तदनन्तर उन्होंने एक बड़े भारी महलमें प्रवेश किया। नारदने उस भवनमें यदुपति कृष्णको देखा कि वे बैठे हुए हैं और सुन्दर दासियोंसे घिरी हुई श्रीमती रुक्मिणी देवी चमर हाथमें लिये उनकी सेवा कर रही हैं। भगवान श्रीकृष्ण नारदजीको देखते ही पलंगसे उठ गये उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और उनको अपने आसनपर बिठलाया। उन्होंने नारदजीके चरणोंको भक्तिपूर्वक धोकर

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

उस जलको अपने सब अंगों और सिरपर डाल लिया। तब अनेक प्रिय वचनोंसे भगवानने सम्भाषण किया। नारदने कहा—हे भगवन् ! आपके चरण संसारकूपसे उद्धार करनेवाले हैं। इनके साक्षात् दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि आपके चरणोंमें मेरा ध्यान बराबर बना रहे। तदनन्तर उस महलसे निकलकर नारदजी दूसरे महलमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णभगवान अपनी प्रियाके साथ चौंसर खेल रहे हैं। वहाँ भी भगवानने उठकर मुनिको आसन दिया और पूछा—आप कब आये ? कोई आज्ञा कीजिये, उसका पालन करके मैं अपना जन्म सफल करूँ। नारदजी विस्मयसे कुछ न कह सके और चुपचाप उठकर तीसरे महलको गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान अपने पुत्रों और पौत्रोंको खेला रहे हैं। अन्य महलमें जाकर नारदने देखा कि भगवान स्नान करनेके लिए जा रहे हैं। इस प्रकार नारदने अनेक महलोंमें जाकर देखा और सर्वत्र भगवानको भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें पाया। इस प्रकार अनन्त वीर्य श्रीकृष्णको योगमायाका प्रभाव देखकर देवर्षि नारद आश्चर्यमें पड़ गये और कृष्णचन्द्रका स्मरण करते हुए वहाँसे उठकर चल दिये। हे राजन् ! भगवान सोलह हजार श्रेष्ठ कामिनियोंके भवनोंमें इसी प्रकार नित्य बिहार किया करते थे। विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारणरूप हरिने इस लोकमें जो असाधारण तथा अलौकिक कर्म किये हैं, उन कर्मोंकी कथाएँ जो लोग गाते, सुनते, पढ़ते या स्मरण करते हैं उनको मुक्तिदायक भगवानकी भक्ति मिलती है।

सप्तति अध्याय

श्रीकृष्णके पास जरासंधसे पीड़ित राजाओंके दूतका आना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय ऊषाकालमें जब मुर्गे बोल रहे थे उस समयतक श्रीहरि स्त्रियोंके गलेमें हाथ डाले हुए सो रहे थे। इस समय कृष्णचन्द्रकी वे स्त्रियाँ पतिवियोगके भयसे कातर होकर उन मुर्गोंको शाप देने लगीं। भ्रमरसमूह कल्पवृक्षकी सुगन्धि ले जानेवाले वायुके साथ मिलकर गान करने लगे और पक्षिगण जाग-जागकर बन्दीगणकी भाँति श्रीकृष्णको जगानेके लिए ऊँचे स्वरसे मधुर बोलियाँ बोलने लगे। पक्षियोंका शब्द अत्यन्त मनोहर होनेपर भी प्रियतमकी दोनों बाहुओंके भीतर पड़ी हुई रुक्मिणी आदि रानियोंको आलिंगन-वियोगकी घबराहटसे क्षणमात्रके लिए भी असह्य था। ब्राह्ममुहूर्तमें उठ हाथ मुँह धो और आचमन करके श्रीकृष्ण पवित्र और प्रसन्न होकर अपने ही रूपके ध्यानमें मग्न हुए। फिर वे निर्मल जलमें स्नान कर वस्त्र और उत्तरीय धारण करनेके पश्चात् सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म करके गायत्रीका जप करने लगे। सूर्योदय होनेपर उठकर श्रीहरिने सूर्यदेवको प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपने ही अंशस्वरूप देवता, ऋषि, पितर, बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणोंकी पूजा की। तदनन्तर भलीभाँति अलंकृत ब्राह्मणोंको पट्टवस्त्र, मृगचर्म और तिल सहित चौरासी हजार तेरह गौवें दानमें दीं। फिर भगवानने अन्य दान आदि करके पहले चन्दन-पान आदि देकर ब्राह्मणोंका सत्कार किया और फिर मित्र, आत्मीय और रानियोंसे मिलकर उनको सन्तुष्ट किया। इसी अवसरपर सारथी

सुग्रीव आदि श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त रथ लेकर आया और प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। तदनन्तर भगवान कृष्णचन्द्र सारथीका हाथ पकड़कर सात्यकी और उद्धवके साथ रथपर सवार हुए। इस प्रकार सब भवनोंसे भिन्न-भिन्न रूपधारी भगवान बाहर निकले और फिर एकरूप होकर सब यादवोंसे सुशोभित सुधर्मा सभामें जाकर विराजमान हुए। यदुश्रेष्ठ और विभु कृष्णचन्द्र उस पवित्र सभामें प्रवेश करके तारागणसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान अपने तेजसे उस स्थानको प्रकाशमय करते हुए पुरुषसिंह यादवोंके बीचमें शोभायमान हुए। सभामें नृत्य, गीत, हास्य, परिहास, स्तुतिपाठ आदि होने लगे। ऐसे ही समय उस स्थानपर द्वारपाल एक ब्राह्मणको सभामें ले आया। ब्राह्मणने आकर परमेश्वर भगवानको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और फिर जरासंधके सताये हुए राजाओंका संदेश सुनाने लगा। उसने कहा—हे महाराज! जब जरासंधने दिग्विजय किया था, उस समय जो राजे उसके आगे नत नहीं हुए, उनको पकड़कर मगधराजने अपने गिरिव्रज नामक दुर्भेद्य दुर्गमें बलपूर्वक कैदकर रखा है। उनकी संख्या बीस हजार है। उन राजाओंने कहा है—हे कृष्ण! हमलोग विपत्तिग्रस्त हैं और आपकी शरणमें आये हैं। आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि आप जरासंधसे हमारा उद्धार करके दीनजनोंका मंगल कीजिये। उस राजदूतके वचन पूर्ण भी नहीं हुए थे कि उसी समय परम तेजस्वी और जटाजूटधारी देवर्षि नारदजी सभामें आ उपस्थित हुए। भगवान कृष्णचन्द्रने मुनिको देखते ही सभ्य और अनुचरगण सहित उठकर आनन्द-

पूर्वक उनको प्रणाम किया और उनकी पूजा की। बादको नारदजी भी उन लोगोंका आदर करके भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप परब्रह्म हैं, किन्तु इस समय मनुष्यचरित्रका अनुकरण कर रहे हैं। अतएव मैं आपकी बुआके लड़के और भक्त पाण्डवोंके राज-काजका समाचार सुनाता हूँ। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिए श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करेंगे। आप इस सुकार्यका अनुमोदन कीजिये। उस श्रेष्ठ यज्ञमें बड़े-बड़े देवता और यशस्वी राजे लोग भी आपके दर्शनकी कामना करके आयेंगे। मैं अधिक और क्या कहूँ। हे ईश! तुम्हारे नाम और कर्म सुनकर महानीच चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं। तब जो लोग साक्षात् आपका दर्शन और स्पर्श करके धन्य हुए हैं, उनके लिए क्या कहना है। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! नारदके वाक्यमें जरासंधविजयकी बात गुप्तरूपसे रहनेपर भी सर्व-साधारण सभासद नहीं समझ सके। अतएव इसे स्पष्ट करनेके लिए भगवान ऐसा रुख दिखाकर बोले मानो वे यह निश्चय नहीं कर सके थे कि क्या करना चाहिये। भगवानने कहा—हे उद्धव! तुम हमारे प्रिय बन्धु और श्रेष्ठ मंत्री हो। तुम कर्तव्यका तत्त्व भलीभाँति समझते हो। तुम कर्तव्यके सम्बन्धमें जो बात कहोगे, मैं तदनुसार काम करूँगा। अतएव अब पहले क्या करना चाहिये, सो मुझे बताओ। सर्वज्ञ होकर भी श्रीकृष्णने कर्तव्य पूछा, तब उद्धवजी कहने लगे।

एकसप्तति अध्याय

श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! कृष्णके पूर्वोक्त वाक्य सुनकर और देवर्षि नारद, सभ्यगण और कृष्णका मनोभाव समझकर उद्धवने कहा—हे देव! आपकी बुआके लड़के राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, इसलिए आपको वहाँ जाना चाहिये। किन्तु शरणागत राजाओंकी रक्षा करना भी कर्तव्य है। मेरी समझमें देवर्षिकी इच्छाके अनुसार आप पहले इन्द्रप्रस्थ जाइये। क्योंकि राजा युधिष्ठिर सब दिशाओंको जीत लेंगे, तभी राजसूय यज्ञ पूर्ण होगा। उसी दिग्विजयमें जरासंध भी जीता जायगा। इससे दोनों काम बन जायँगे। ऐसा करनेसे हमारा महान् उद्देश्य भी सिद्ध हो जायगा और राजा लोग भी बन्धनसे छूटकर आपका यश फैलावेंगे। राजसूय यज्ञ भी पूर्ण होगा और शरणागतोंकी रक्षा भी हो जायगी। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! उद्धवकी न्यायसंगत और मंगलजनक बात सुनकर देवर्षि नारद, यादवगण और श्रीकृष्ण सभीने उसपर अपनी सहमति प्रकट की। तदनन्तर देवकीनन्दन भगवान श्रीकृष्ण पुत्र, पत्नी, सैन्य और स्वजनोंको साथ लेकर महासमारोहके साथ पुरीसे निकल पड़े। उस समय श्रीकृष्णने पूर्वोक्त राजदूतको सम्बोधित करके कहा—हे दूत! तुम राजाओंसे कहना कि भय मत करो। तुम लोगोंका कल्याण हो। मैं अवश्य जरासन्धको मारूँगा। इसमें सन्देह नहीं है। यह सुनकर दूत वहाँसे राजाओंके पास गया और जो कुछ श्रीकृष्णने कहा था, वह उनको कह सुनाया। राजा लोग भी अपने छूटनेके लिए

अत्यन्त उत्सुक होकर श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। श्रीहरि भगवान भी अनेक देशोंको पार करके इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये। मनुष्योंके लिए जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन्हीं श्रीकृष्णके आगमनका सुसमाचार पाकर युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए और उसी समय उपाध्याय और बन्धुवर्ग सहित कृष्णचन्द्रको आगेसे लेनेके लिए पुरीसे बाहर निकले। परम समादरके साथ यथाविधि भगवानकी अभ्यर्थना करके युधिष्ठिर परम प्रसन्न हुए। भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अच्युतसे मिलकर प्रसन्न हुए। श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बुआ कुन्ती और गुरुपत्नियोंको प्रणाम किया और कृष्णचन्द्रकी छोटी बहिन सुभद्रा और द्रौपदीने उनको प्रणाम किया। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर सेना, मंत्रीगण और रानियोंके साथ जनार्दन कृष्णचन्द्रको नित्य नवीन सुखभोगके द्वारा सन्तुष्ट करने लगे। राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिए श्रीकृष्णचन्द्र कई महीनेतक हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुनके साथ रथपर चढ़कर अनेक स्थानोंका निरीक्षण किया। उसी समय कृष्णचन्द्रने खाण्डवनामक इन्द्रका वन अर्जुनके द्वारा अग्निको जलानेके लिए दिलाकर प्रसन्न किया और मयासुरको अग्निमें जलनेसे बचाया। मयासुरने भी बदलेमें महाराज युधिष्ठिरको एक विचित्र और दिव्य सभा बना दी।

द्विसप्तति अध्याय

जरासन्धका वध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय राजा युधिष्ठिर

अनेक मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा बान्धवगणके साथ सभामें बैठे हुए थे। राजा युधिष्ठिर सबके आगे श्रीकृष्णसे कहने लगे—मैं सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ द्वारा आपकी पवित्र विभूति जो देवता लोग हैं, उनका पूजन करना चाहता हूँ। अतएव हे प्रभो! अब उस विचारको पूरा करना आपके हाथमें है। भगवानने कहा—हे राजन्! आपका विचार अत्यन्त उत्तम है। राजसूय यज्ञ करनेसे आपकी विमल कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जायगी। अतएव सब राजाओंको जीतकर और समग्र पृथ्वीमण्डलको अपने वशमें करके आप इस महायज्ञका अनुष्ठान आरम्भ कीजिये। इसी समय यज्ञके योग्य समग्र उत्तम सामग्री एकत्र करनेके लिए आज्ञा दीजिये। हे राजन्! आपके ये चारों भाई लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं। ये सब राजाओंको जीत लेंगे। हे राजन्! अजितेन्द्रिय लोगोंके लिए मैं अजेय हूँ। आप जितेन्द्रिय हैं। इस कारण आपने मुझको अपने वशमें कर लिया है। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! भगवानके मुखसे ऐसे मधुर वाक्य सुनकर प्रसन्नताके कारण युधिष्ठिरका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने विष्णुके तेजसे परिवर्धित अपने भाइयोंको इस प्रकार दिग्विजयके कार्यमें नियुक्त किया। सृंजयदेशके नरपतियोंके साथ सहदेवको दक्षिण दिशा जीतनेके लिए, मत्स्य देशके नरपतियों सहित नकुलको पश्चिम दिशा जीतनेके लिए, केकयदेशके नरेशों सहित अर्जुनको उत्तर दिशा जीतनेके लिए और मद्रदेशके नरपतियों सहित पराक्रमी भीमसेनको पूर्वदिशा जीतनेके लिए युधिष्ठिरने आज्ञा दी। हे राजन्! उक्त वीर पाण्डव चारों

दिशाओंको बलपूर्वक वशमें करके बहुत-सा धन लेकर महाराज युधिष्ठिरके निकट आ गये। एक जरासंधको छोड़कर सभी राजा लोग परास्त हो गये, यह सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत ही चिन्तित हुए। तब भगवानने उसी उपायका प्रस्ताव किया, जिसे उद्धवने यदुसभामें बताया था। तदनन्तर उसी प्रस्तावके अनुसार भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र ब्राह्मणके वेषमें जरासंधकी राजधानी गिरिव्रजको गये। अतिथिकी बेलामें ये तीनों ब्राह्मण-वेषधारी क्षत्रिय गृहस्थ जरासंधके घर पहुँचे और उन्होंने जरासंधसे कहा—हे राजन्! हम प्रार्थी अतिथि हैं। आपके पास बहुत दूरसे आये हैं। इसलिए जो कुछ हम माँगें, वह आप दीजिये—आपका कल्याण हो। इन तीनोंको ध्यानपूर्वक देखकर मगधराज जरासंध मनमें सोचने लगा कि ये लोग क्षत्रिय हैं। ब्राह्मणका वेष बनाकर आये हैं। किन्तु ये लोग ब्राह्मणवेषमें आये हैं, इसलिए मैं इनके माँगनेपर इनकार न करूँगा। जरासंधने तीनोंसे कहा कि—हे ब्राह्मणों! जो तुम्हारी इच्छा हो, वही माँगो। तुम यदि मेरा सिर भी माँगोगे तो मैं अपने हाथसे काटकर तुमको दे दूँगा। जरासंधके उदार वचन सुनकर कृष्णचन्द्रने कहा—हे राजेन्द्र! हम ब्राह्मण नहीं क्षत्रिय हैं। हम तुम्हारे पास युद्धयाचना करनेके लिए आये हैं। यह कुन्तीके पुत्र भीमसेन हैं, यह इनके भाई अर्जुन हैं और मैं इनके मामाका लड़का और तुम्हारा शत्रु कृष्ण हूँ। यह सुनकर मगधराज ऊँचे स्वरसे हँसने लगा और क्रुद्ध होकर बोला—तुम बहुत ही डरपोक हो। भयसे मथुरापुरीको छोड़कर तुम समुद्रकी शरणमें चले गये थे।

अतएव तुमसे मैं युद्ध न करूँगा ।—और अर्जुन अवस्थामें कनिष्ठ हैं। उनसे कैसे युद्ध करूँगा ? हाँ, भीमसेन समान बलवान हैं। इनसे युद्ध करूँगा। यह कहकर जरासंध भीमको एक बड़ी गदा दे और स्वयं एक गदा लेकर युद्ध करने लगा। हे राजन् ! तब परस्पर घोर युद्ध होने लगा। लड़ते-लड़ते दोनोंकी गदाएँ चूर हो गयीं। तब दोनों घूसोंसे परस्पर प्रहार करने लगा। सत्ताईस दिनोंतक यह लड़ाई होती रही। दिनको युद्ध होता था और रातको दोनों एक ही स्थानपर सोते थे। एक दिन भीमसेनने मामाके पुत्र कृष्णसे कहा कि मैं जरासंघको युद्धमें नहीं जीत सकता। भगवान कृष्ण जानते थे कि जरासंध मरा हुआ उत्पन्न हुआ था। उसके शरीरके दो टुकड़े अलग-अलग थे और उन टुकड़ोंको एकमें जोड़कर जरा राक्षसीने जीवित कर दिया था। सबेरे जब फिर युद्ध होने लगा, तब शत्रुके वधका उपाय विचारकर भीमसेनके सामने ही उनको दिखाते हुए कृष्णचन्द्रने हाथमें एक कुशाकी शाखाको लेकर उसको बीचसे चीर डाला। भगवानके इस संकेतको महाबली भीमसेन समझ गये। भीमसेनने उसी समय शत्रुको पृथ्वीपर पटक दिया और जिस प्रकार कोई गजराज किसी शाखाको सूँड़से पकड़कर फाड़ डाले, उसी प्रकार एक पैरसे एक पैर दबाकर दोनों हाथोंसे दूसरा पैर पकड़कर जरासंघके शरीरको बीचसे फाड़ डाला। जरासंघका शरीर गुदासे फटकर दो खण्ड हो गया। मगधराजकी मृत्यु देखकर पुरवासी लोगोंमें हाहाकार मच गया। तब अच्युत और अर्जुनने गलेसे लगाकर भीमसेनका सत्कार किया। तदनन्तर भगवानने जरा-

संधके पुत्र सहदेवको मगधराज्यके सिंहासनपर बिठाकर उसके यहाँ जो राजा लोग कैद थे, उनको कारागारसे मुक्त करने चले।

त्रिसप्तति अध्याय

राजाओंका कैदसे छूटना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जरासंधने बीस हजार आठ सौ राजाओंको युद्धमें जीतकर कैद कर रखा था। बहुत कालतक कैद रहनेके कारण उनके शरीर शिथिल हो गये थे, मुख सूखकर मलिन हो गये थे और कपड़े मैले हो गये थे। उन लोगोंने छुटकारा पाकर घनश्याम कृष्णचन्द्रको देखा। श्रीकृष्णका अनूप रूप देखकर राजाओंको परमानन्द प्राप्त हुआ। उनका कारावासजनित कष्ट दूर हो गया और सब पाप नष्ट हो गये। उन प्रेमसे परिपूर्ण नरपतियोंने भगवानके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर भगवानकी स्तुति की। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! शरणागतपालक दयालु भगवानने राजाओंके विनीत वचन सुनकर कहा कि हे नरपतियो! तुम्हारा संकल्प अत्यन्त उत्तम है। ऐश्वर्य-मदका बढ़ना ही मनुष्योंकी उन्मत्तताका कारण होता है। कार्तवीर्य, नहुष, वेन, रावण आदि ऐश्वर्यके मदसे अन्धे होकर ही अपने-अपने पदसे भ्रष्ट हुए थे। तुम लोग निश्चय कर लो कि देह आदि समस्त वस्तुओंका एक दिन अवश्य अन्त होगा। इस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर मेरा पूजन करते हुए धर्मपूर्वक प्रजापालन करो। केवल वंशवृद्धिके लिए

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री आदिका उपभोग करो और सुख-दुःख तथा शुभ-अशुभ जो कुछ प्राप्त हो, उसीमें सन्तुष्ट रहो। मुझमें मन लगाकर सांसारिक सुख भोग करो। इस प्रकार देहादि भोगकी सामग्री मिलने या न मिलनेमें समान भावसे अनासक्त रहकर सब प्रकारसे मुझमें ही मन लगाओ। ऐसा करोगे तो अन्त-समयमें मुझको प्राप्त होओगे। भगवानके वचन सुनकर प्रसन्न राजा लोग अपने-अपने देशको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिर जरासंध-वधका वृत्तान्त और केशवकी दयाका वर्णन सुनकर आनन्दके आँसू बहाने लगे। उनका कंठ आनन्दके उच्छ्वाससे रुँध गया और वे कुछ भी नहीं कह सके।

चतुःसप्तति अध्याय

शिशुपालवध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे अनुमोदित होकर यज्ञ करने योग्य समयमें यज्ञ करनेके योग्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंका वरण किया। द्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, नामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, भार्गव, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दस, वीरसेन, अकृतव्रण और अन्यान्य ऋषिगण आदि सभी व्रती एकत्र हुए। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, पुत्रोंके साथ धृतराष्ट्र, महामति विदुर और अन्यान्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निमंत्रित सब राजा लोग यज्ञ देखनेके

लिए आ उपस्थित हुए। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलसे शोधकर यज्ञभूमि प्रशस्त की और वेदविधिके अनुसार राजा युधिष्ठिरको यज्ञकी दीक्षा दी। निमन्त्रण पाकर इन्द्रादि लोकपालगण अपने गणोंके साथ शंकर, ब्रह्मा, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, सम्पूण महासर्प, मुनिगण, यक्षगण, राक्षसगण, पक्षीगण, किन्नरगण, चारणगण, रानियों और राजकुमारोंके साथ सब देशोंके राजा लोग वहाँ आये और युधिष्ठिरका यज्ञ देखकर विशेष विस्मित नहीं हुए और उन्होंने यज्ञको सुसम्पन्न माना। तेजस्वी ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरका यज्ञ कराया। यज्ञके उपरान्त सोमाभिषवके दिन राजा युधिष्ठिरने एकाग्र चित्त होकर महाभाग याजकों और सदस्योंकी विधिपूर्वक पूजा की। उस सभामें सबसे पहले पूजा पाने योग्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे। यह देखकर सदस्य लोग इस विषयपर विचार करने लगे कि पहले किसका पूजन किया जाय। जरासंधके पुत्र सहदेवने कहा कि आप लोग विचार क्या कर रहे हैं? यदुगणके अधिपति भगवान अच्युत कृष्णचन्द्र जी सर्वप्रथम पूजने योग्य हैं। देश, काल, पात्र तथा सम्पूर्ण देवता ये ही हैं। इनकी पूजा करनेसे सब सुसम्पन्न होगा। ये सब विश्वके आत्मा हैं। सम्पूर्ण यज्ञ इन्हींका स्वरूप है। अतएव सबसे पहले महात्मा कृष्णचन्द्रका पूजन उत्तम रीतिसे करो। सहदेवके ये वचन सुनकर सब साधुजन वाह-वाह करके बारंबार उनकी प्रशंसा करने लगे। राजा युधिष्ठिरने साधुओंके मुखसे साधुवाद सुन और सब सभासदोंके हृदयका भाव समझकर प्रेमानन्दसे विह्वल हो हृषीकेश कृष्णचन्द्रका अग्रपूजन

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

किया। श्रीहरिके चरणोंको धोकर भार्या, अनुज, अमात्य और सम्पूर्ण कुटुम्ब सहित राजाने परम श्रद्धा-भक्ति और आनन्दके साथ उस लोकपावन चरणोदकको अपने सिरपर डाला। इस प्रकार श्रीकृष्णका पूजन होते देखकर सभामें स्थित सब लोग प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे। उस समय कृष्णचन्द्रके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन होते देखकर दमघोषतनय शिशुपाल अत्यन्त कुपित हुआ। श्रीकृष्णका ऐसा सम्मान वह नहीं देख सका। क्रोधावेशमें वह आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ उठाकर भरी सभामें सुनाकर कृष्णचन्द्रको कठोर वचन कहने लगा। उसने कहा—महर्षियोंके आगे यह ग्वाला कैसे पूजने योग्य हो सकता है? देवताओंका भाग पुरोडाश कहीं अधम काक पा सकता है? यह कृष्ण वर्ण, आश्रम और कुलसे हीन है। यह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है। यह कैसे पूजनीय हो सकता है? इस प्रकार उसने और भी कटु वचन कहे। किन्तु जैसे शृगालके शब्दपर सिंह ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार कृष्णचन्द्रजी चुपचाप सब सुनते रहे और कुछ भी नहीं बोले। सभासदगण भगवानकी निन्दा नहीं सह सके और क्रोधपूर्वक शिशुपालको गालियाँ देते हुए हाथोंसे कान बन्द करके चले गये। जो व्यक्ति भगवान या भगवानके भक्तकी निन्दा बैठकर सुना करता है—वहाँसे उठकर चला नहीं जाता, उसका सब पुण्य नष्ट हो जाता और वह नरकगामी होता है। तदनन्तर चारों पाण्डव और मत्स्य, सृञ्जय केकय देशके राजा लोग कुपित हो तथा अस्त्र-शस्त्र लेकर शिशुपालको मारने दौड़े। उनको आक्रमण करने-

के लिए उद्यत देखकर शिशुपाल जरा भी नहीं घबड़ाया। उसने भी अपनी ढाल और तलवार उठा ली। तब अपनी ओरसे लड़नेके लिए उद्यत राजाओंको भगवानने रोक दिया और स्वयं कुपित होकर तीक्ष्ण सुदर्शनचक्रसे सबके देखते-देखते उसका सिर धड़से अलग कर दिया। शिशुपालके मरनेपर सभामें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उस समय शिशुपालके साथी सब नरपति अपने-अपने प्राण लेकर सभासे भाग गये। जैसे कोई तारा आकाशसे गिरकर मार्गमें लीन हो जाता है, वैसे ही शिशुपालके शरीरसे ज्योति निकलकर सबके आगे वासुदेवमें लीन हो गयी। तीन जन्मतक वैर-भावसे क्रोधपूर्वक दिन-रात कृष्णके ध्यानमें मग्न रहनेके कारण शिशुपालने श्रीहरिसे सारूप्य मुक्ति पायी। तदनन्तर योगेश्वरोंके भी ईश्वर कृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरका यज्ञ भलीभाँति पूर्ण कराकर बान्धवोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हुए कई महीनेतक हस्तिनापुरमें रहे। फिर भगवान राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न रहनेपर भी उनसे बिदा होकर मंत्रियों, अनुचरों और रानियोंके साथ द्वारकापुरीको गये। जो लोग शिशुपालवधकी यह कथा और राजसूय यज्ञका पवित्र उपाख्यान मन लगाकर पढ़ते या सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर सुखी होते हैं।

पञ्चसप्तति अध्याय

दुर्योधनका मानभङ्ग

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ देखने लिए जो सब देवता ऋषि और राजे आये थे, वे

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सब यज्ञका वैभव देखकर प्रसन्न हुए, किन्तु दुर्योधन ही केवल अप्रसन्न रहा। इसका कारण क्या है, मुझे बताइये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! अच्युतके भक्त राजा युधिष्ठिरका ऐश्वर्य देखकर और सबके मुँहसे राजसूय यज्ञकी प्रशंसा सुनकर दुर्योधनको बड़ा सन्ताप हुआ। जिस समय मयासुररचित अन्तःपुरकी सभामें दैत्येन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके सम्पूर्ण विभव सुशोभित थे और जहाँ अपने पतियोंके निकट उपस्थित द्रौपदी उनकी सेवा करती थीं, उसको देखकर राजा दुर्योधनका हृदय डाहकी अग्निसे जलने लगा। उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियाँ भी रहती थीं। उस मयासुरकी बनायी सभामें एक समय राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्र, बन्धुगण और भाइयोंके साथ सुन्दर सुवर्णके सिंहासनपर बैठे हुए थे। बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे। हे राजन्! ऐसे ही समय महाअभिमानी राजा दुर्योधनने माला, किरीट, मुकुट और खड्ग आदिसे सुशोभित होकर अपने भाइयोंके साथ सभामें प्रवेश किया। राहमें द्वारपाल आदिको डाँटता और झिड़कता हुआ दुर्योधन सभामें पहुँचा तो मयासुरकी मायामयी रचनासे ऐसा विमोहित हो गया कि जहाँ सूखा स्थल था, वहाँ तो जलके भ्रमसे उसने कपड़े समेट लिये और जलको स्थल समझकर चलने लगा तो उसीमें गिर पड़ा। दुर्योधनकी यह दशा देखकर युधिष्ठिरके रोकनेपर भी श्रीकृष्णका संकेत पाकर भीमसेन, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ और अन्यान्य उपस्थित राजा लोग ऊँचे स्वरसे हँसने लगे। दुर्योधन लज्जित हो गया और आन्तरिक क्रोधसे जल उठा। उसके बाद सिर झुकाये वह अपने भवनको

लौट गया। यह अनर्थ देखकर सब सज्जन हाहाकार करने लगे और युधिष्ठिर भी कुछ उदास हो गये। किन्तु भगवान कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा।

षट्सप्तति अध्याय

यादवोंके साथ राजा शाल्वका युद्ध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालका मित्र शाल्व जरासन्ध आदि राजाओंकी भाँति युद्धमें यादवोंसे हार गया था। उस समय शाल्वने अपने साथी सब राजाओंके सम्मुख प्रतिज्ञापूर्वक कहा था कि मैं अपने पौरुषसे यादववंशका विनाश करूँगा। तुम लोग देखोगे कि पृथ्वीपर एक भी यादव जीवित न रहेगा। मूढ़ राजा शाल्व इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वहाँसे चला गया और नित्य एक मुट्ठी राख एक बार फाँककर देवदेव प्रभु पशुपतिकी आराधना करने लगा। इस प्रकार घोर तप करते-करते एक वर्ष बीत गया। तब भगवान आशुतोष महादेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और शरणागत शाल्वसे बोले कि वर माँग। तब शाल्वने शंकरसे एक ऐसा विमान माँगा, जो यादवोंको डरानेवाला हो और जिसको देवगण भी न तोड़ सकें। भगवान शंकर उसकी इच्छाके अनुसार 'तथास्तु' कहकर अपने लोकको चले गये। परपुरंजय शिवकी आज्ञासे मयदानवने शाल्वको एक दुर्भेद्य लोहमय सौभनामक विमान बना दिया। उस अन्धकारमय दुष्प्राप्य एवं कामचारी विमानको पाकर यादवोंके किये वैरका स्मरण करता हुआ शाल्व बदला लेनेकी इच्छासे उसी क्षण

CC0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

द्वारकापुरीको गया। उसने जाकर चारों ओरसे द्वारकापुरीको घेर लिया। उसकी सेना पुरीके उपवन-उद्यान आदिको उजाड़ने लगी और गोपुर, द्वार, प्रासाद, अट्टालिका आदि तोड़ने लगी। यह देखकर प्रद्युम्नजीके साथ सात्यकी, चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर आदि महा धनुर्धारी यादवगण युद्ध करनेके लिए पुरसे बाहर निकले। तदनन्तर देवताओं और दानवोंमें अमृतके लिए जिस तरह घोर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार शाल्वकी सेना और यादवोंसे महा भयानक युद्ध होने लगा। प्रद्युम्नने सुतीक्ष्ण बाण मारकर शाल्वके सेनापतिको घायल कर डाला। महात्मा प्रद्युम्नके इस महा अद्भुत कार्यको देखकर शत्रु और मित्र उनकी प्रशंसा करने लगे। शाल्वका मयरचित मायामय विमान कभी बहुरूप और कभी एकरूप हो जाता था। यादवगण उसकी गतिको देख नहीं पाते थे। शाल्वके द्युमाननामक मंत्रीको पहले प्रद्युम्नने मूर्च्छित कर दिया था। मूर्छा छूटनेपर उसने प्रद्युम्नके निकट आकर उनके ऊपर वज्रलौहनिर्मित गदा चलाकर सिंहनाद किया। द्युमानकी गदाके प्रहारसे प्रद्युम्नका हृदय विदीर्ण हो गया और वे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। कृष्णके सारथी दारुकका पुत्र अरिंदम प्रद्युम्नका सारथी था। वह सारथी और रथीका धर्म भली भाँति जानता था। अतएव वह मूर्च्छित प्रद्युम्नको रणभूमिसे हटाकर अन्यत्र सुरक्षित स्थानमें ले गया। मुहूर्तभरमें सचेत हो जानेपर प्रद्युम्नजीने अपने रथको युद्धभूमिमें न देखकर सारथीसे कहा—अरे सारथी! तू मुझको युद्धभूमिसे हटाकर यहाँ ले आया। यह काम तो तूने अच्छा नहीं किया। छिः! छिः! मैं

मूर्च्छित अवस्थामें सारथीके कारण रणभूमिसे हट आया। धर्म-युद्धसे भागकर पिता कृष्णचन्द्र और चाचा बलभद्रको मैं कैसे मुख दिखाऊँगा? और उनसे क्या कहूँगा? मेरे भाइयोंकी स्त्रियाँ मुझपर हँसेंगी और मेरी कायरताका वर्णन करेंगी तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा। सारथीने कहा—हे विभो! सारथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए रथीकी रक्षा करे और रथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए सारथीकी रक्षा करे। इसी धर्मके अनुसार मैंने ऐसा किया है। आप शत्रुकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित हो गये थे। इसीसे मैं आपको युद्धभूमिसे हटा लाया।

सप्तसप्तति अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा शाल्ववध

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! तदनन्तर रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने समरभूमिमें जाकर द्युमानको युद्ध करते-करते रोक दिया और हँसते हुए एक नाराचसे उसका सिर धड़से अलग कर दिया। इधर गद, साम्ब, सात्यकी आदि वीर यादव सौभपति शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। यह उत्कट युद्ध सात दिन और सात राततक बराबर होता रहा। इस युद्धके समय राजा युधिष्ठिरके यज्ञोपलक्ष्यमें श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ चले गये। वहाँ जब उनको अत्यन्त भयानक और अशुभसूचक असगुन होने लगे, तब अन्तर्यामी कृष्णचन्द्र द्वारकापुरीको चले गये। भगवानने द्वारका पहुँचकर देखा कि वास्तवमें उनकी आशंका ठीक थी। भगवानने अपने सारथीसे कहा कि इस दुष्ट शाल्वके निकट शीघ्र मेरा रथ ले

चलो। उसने कृष्णचन्द्रको आते देखा तो महाभयानक शब्द करनेवाली शक्ति चलायी। भगवानने उसके सैकड़ों खण्ड कर डाले। तब भगवानने अपने असंख्य बाणोंसे सौभ विमानको छिन्न-भिन्न कर डाला। तब शाल्वने कई बाण ऐसे चलाये, जिनसे भगवानके हाथसे छूटकर शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा। यह देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे। तदनन्तर भगवानने क्रोधपूर्वक महाभयानक वेगवाली गदासे शाल्वपर प्रहार किया। उस प्रहारसे शाल्व काँप उठा और उसके मुखसे रुधिर बहने लगा। इसके बाद देखते ही देखते शाल्व अदृश्य हो गया। घड़ी भरके बाद एक पुरुषने आकर श्रीकृष्णसे कहा कि देवी देवकीने आपके पास मुझे भेजा है और कहा है कि शाल्व आपके पिता वासुदेवको बाँधकर ले गया। यह सुनकर मानवलीला करनेवाले श्रीकृष्ण साधारण मनुष्यके समान चिन्तामें पड़कर सोच ही रहे थे कि शाल्व सामने प्रकट हो गया। वह वसुदेवकी ही तरह आकृतिवाले एक मनुष्यको दिखाकर कहने लगा कि देख, यही तेरा पिता है। तेरे ही सामने मैं इसको मारता हूँ। यदि शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर। यह कहकर उसने खड्गसे उस वसुदेव-सदृश व्यक्तिका सिर काट डाला और उस सिरको लेकर अपने विमान पर चला गया। भगवान यह जान गये कि यह सब आसुरी मायाका प्रपंच है। तब शाल्वको मारनेके लिए भगवान उद्यत हुए। शत्रुने जो भी शस्त्र चलाये, उन्हें भगवानने बीचमें ही काट डाला और अनेक बाणोंसे उसे घायल करके गदाके प्रहारसे उसका सौभ विमान चूर्ण कर दिया। तब शाल्व टूटा विमान

छोड़कर पृथ्वीपर खड़ा हो गया और गदा उठाकर कृष्णचन्द्रकी ओर झपटा। तब भगवानने शाल्वके गदायुक्त बाहुको एक बाणसे काट डाला। इसके बाद भगवानने सुदर्शनचक्रसे उस महामायावीका सिर धड़से अलग कर दिया। यह देखकर शाल्वके साथी हाहाकार करने लगे और स्वर्गवासी देवगण कृष्णचन्द्रपर फूलोंकी वर्षा करने और नगाड़े बजाने लगे।

अष्टसप्तति अध्याय

बलदेवके हाथसे तीर्थयात्रामें सूतका वध

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकके मर जानेपर महाबली दुर्मति दन्तवक्र क्रोध करके अकेले ही बदला चुकानेके लिए पैदल ही श्रीकृष्णके पास गया। उसके चलनेके वेगसे पृथ्वी काँप रही थी। उसको अपनी ओर आते देखकर रथ कूदकर श्रीकृष्ण भगवान उसका मार्ग रोककर खड़े हो गये। तब दन्तवक्रने गदा तानकर मुकुन्दसे कहा—तुझे मारकर मैं अपने परलोकगत मित्रोंका ऋण चुकाऊँगा। यह कहकर उसने अपनी गदा भगवानके मस्तकपर चलायी। युद्धस्थलमें गदाकी चोट खाकर भी कृष्णचन्द्र तनिक भी विचलित नहीं हुए। कृष्णचन्द्रने अपनी कौमोदकी गदा शत्रुके वक्षःस्थलमें मारी। उस प्रचण्ड गदाकी चोटसे दन्तवक्रका हृदय फट गया और मुखसे रुधिर बहने लगा। उसका शरीर प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जिस तरह शिशुपालके शरीरसे निकली हुई ज्योति कृष्णके चरणोंमें लीन हो गयी थी, उसी तरह दन्तवक्रके

शरीरसे भी अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकलकर सबके सामने कृष्णचन्द्रमें लीन हो गयी। तब दन्तवक्रका भाई विदूरथ भाईके शोकसे पीड़ित होकर कृष्णको मारनेकी अभिलाषासे ढाल-तलवार लिये दौड़ता हुआ आया। तब श्रीकृष्णने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे विदूरथका भी सिर काट डाला। शुकदेवजी बोले—हे महाराज! एक समय बलभद्रजीने सुना कि कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर युद्ध होनेका उद्योग हो रहा है। यह जानकर बलभद्रजी तीर्थ-यात्राके बहाने प्रभास क्षेत्रको चले गये। दुर्योधन उनका शिष्य था और पाण्डव भी अपने बन्धु ही थे, अतएव उन्होंने किसी ओरसे युद्धमें सम्मिलित होना उचित नहीं समझा। बलभद्रजीने प्रभास क्षेत्रमें जाकर स्नान किया और देव, ऋषि, पितर तथा मनुष्योंको परितृप्त किया। वहाँसे वे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ विपरीत-वाहिनी सरस्वतीके तटपर गये। वहाँसे क्रमशः पृथूदक, बिन्दु-सरोवर, त्रितकूप, सुदर्शननद, विशाला नदी, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, पूर्ववाहिनी सरस्वती और गङ्गा-यमुनाके परवर्ती सब तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्य क्षेत्रमें पहुँचे। वहाँ ऋषिगण द्वादश वार्षिक यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। महायज्ञमें प्रवृत्त मुनियोंने बलभद्रजीको देखकर विधिपूर्वक उनको प्रणाम करके उचित रीतिसे पूजन किया। भलीभाँतिसे पूजित बलभद्रजीने मुनियोंके दिये आसनपर बैठकर देखा कि महर्षि वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासासनपर बैठे हुए हैं। रोमहर्षणका जन्म सूतजातिमें हुआ था। बलभद्रजीने देखा कि वे उनको देखकर न तो खड़े हुए और न प्रणाम किया और न हाथ ही जोड़े। ब्राह्मणोंसे भी ऊँचे आसनपर इस प्रकार ढिठाईके साथ

सूतको देखकर बलभद्रजीको अपार क्रोध हुआ। जिससे उन्होंने हाथमें स्थित कुशके अग्रभागसे सूतका वध कर डाला। यह देखकर मुनिगण हाहाकार करते हुए अत्यन्त खिन्न होकर संकर्षणदेवसे बोले—हे प्रभो! आपने यह अधर्म किया है। जबतक हमारे इस यज्ञका अनुष्ठान समाप्त न हो, तबतकके लिए हमने सूतको ब्रह्मासन एवं शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दी थी। आपने अनजानकी भाँति इनका वध करके ब्रह्मवधके समान पाप कर डाला। आप योगेश्वर हैं। वेद भी आपको अपने नियमके अनुसार चलनेको बाध्य नहीं कर सकते। तथापि अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिए आप स्वयं इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करें तो बहुत उत्तम होगा। भगवान बलभद्रने कहा—मैं इस हत्याका प्रायश्चित्त करूँगा। प्रायश्चित्तके जो कुछ नियम हों, उन्हें आप बतावें। वेदमें कहा है कि जीव आप ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवानामक सूत इसके आसनपर बैठकर आप लोगोंको पुराण आदि धर्मग्रन्थ सुनावेगा। अब आप लोग और क्या चाहते हैं, कहिये। ऋषियोंने कहा—हे देव! इल्वलका पुत्र बल्वलनामक एक घोर दानव प्रत्येक पर्वमें आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है। वह पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदि अशुद्ध पदार्थ बरसा कर यज्ञमें विघ्न डालता है। उसको आप मारिये। इस कार्यसे हमारा बड़ा उपकार होगा। तदनन्तर आप बारह महीनेतक काम-क्रोध आदिसे रहित होकर कष्ट सहते हुए भारतवर्षमें घूमकर तीर्थोंमें स्नान आदि कीजिये। यही आपके लिए ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त होगा।

ऊनाशीति अध्याय

बलदेवकी तीर्थयात्रा

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! तदनन्तर पर्वसमयमें धूलिसे भरी आँधी चलने लगी और चारों ओर दुर्गन्ध उठी। इसके उपरान्त यज्ञशालामें पीब, रुधिर, मांस आदि अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा होने लगी और थोड़े ही समयमें वही भयंकर बल्वल दानव त्रिशूल हाथमें लिये दिखायी पड़ा। उसको देखकर बलरामने अपने शत्रुदलदलन मूसलको और दैत्यदलदमन हलको याद किया। याद करते ही वे दोनों शस्त्र तुरन्त आ उपस्थित हुए। बलभद्रने क्रोध करके उस ब्राह्मणविरोधी तथा आकाशचारी दैत्यको हलसे अपने समीप खींचकर उसके सिरपर मूसल मारा। मूसलके प्रहारसे उसका मस्तक चूर्ण हो गया। वह मुखसे रुधिर उगलता हुआ आर्तनाद करके पर्वतके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर ऋषिगण प्रसन्न हुए और बलदेवकी स्तुति करते हुए आशीर्वाद देने लगे। तदनन्तर बलराम तीर्थयात्राको निकले। पहले कौशिकी नदीमें स्नान करके सरयूके उद्गमस्थानपर गये। फिर सरयूमें स्नान करके प्रयागराजमें पहुँचे। फिर पुलहऋषिके आश्रमको गये। फिर गोमती, गण्डकी, विपाशा और सोण नदीमें स्नान करते हुए गयाक्षेत्रमें पहुँचे। फिर वहाँसे गंगासागर गये। फिर महेन्द्राचलको गये। इस प्रकार समग्र भारतमें अनेकानेक तीर्थोंका पर्यटन करके बलदेवजी पापमुक्त हो और लौटकर प्रभासक्षेत्रमें आये। प्रभासक्षेत्रमें ब्राह्मणोंके मुखसे कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सब क्षत्रिय वीरोंके विनाशकी चर्चा सुनकर

भगवान बलभद्र जान गये कि पृथ्वीका भार उतर गया। उस समय भीमसेन और दुर्योधन दोनों वीर गदायुद्ध कर रहे थे। यदुनन्दन बलभद्र उनको युद्धसे रोकनेकी इच्छासे कुरुक्षेत्र गये। उनको देखकर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्जुन और श्रीकृष्णने प्रणाम किया। बलभद्रजीने भीमसेन और दुर्योधनको गदायुद्धमें लिप्त देखकर उनसे कहा—तुम दोनों बल और वीरतामें समान हो। इस युद्धमें किसी की हार-जीत न होगी। इसलिए तुम लोग इस निष्फल युद्धको बन्द कर दो। बलदेवके वचनपर किसीने भी ध्यान नहीं दिया। दोनोंमें पुरानी शत्रुता थी। अतएव वे लड़ते ही रहे। अदृष्ट बड़ा प्रबल होता है, यह समझकर बलदेवजी वहाँसे द्वारका चले गये। जो मनुष्य प्रातःकाल और सन्ध्याके समय बलरामके इन सब कार्योंका स्मरण करते हैं, उनपर विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं।

अशीति अध्याय

सुदामाचरित्र

महाराज परीक्षितने कहा—हे ब्रह्मन्! अनन्तवीर्यशाली मुकुन्दके और-और चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण कृष्णचन्द्रके लड़कपनके सखा थे। वे विषयोंसे विरक्त, शान्त और जितेन्द्रिय थे। वे ब्राह्मण गृहस्थ थे। जो कुछ आप हीसे मिल जाता था, उसीसे निर्वाह करते थे। वे स्वयं एक मलिन और फटे हुए वस्त्रका टुकड़ा पहने रहते थे और उनकी पतिव्रता स्त्री भी उनकी

ही तरह कपड़ा पहिनती थी। नित्य भोजन न मिलनेके कारण उनकी स्त्री भी उनके साथ असह्य कष्ट सहती थी। भूखसे सूखा मुँह लिये एक दिन उस पतिव्रताने डरसे काँपते-काँपते पतिके निकट जाकर कहा—हे प्राणनाथ! मैंने सुना है कि साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणहितकारी, शरणागतपालक तथा यादवश्रेष्ठ भगवान कृष्णचन्द्र आपके सखा हैं। हे महाभाग! आप उनके निकट जाइये। आप कुटुम्बी हैं और दरिद्रताके कारण कष्ट पा रहे हैं। आपकी दशा देखकर वे आपको अवश्य बहुत-सा धन देंगे। इस प्रकार स्त्रीके बारंबार प्रार्थना करनेपर सुदामाने भी सोचा कि वहाँ जानेसे और कुछ मिले या न मिले, परन्तु परम लाभ यही होगा कि श्रीकृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे। यह सोचकर विप्रवर सुदामाने कृष्णके निकट जानेका निश्चय कर लिया और फिर स्त्रीसे कहा कि—हे कल्याणी! यदि कुछ कृष्णचन्द्रको भेंट देने योग्य सामग्री घरमें हो तो लाओ, जिसको लेकर मैं प्रभुके निकट जाऊँ। घरमें तो कुछ भी नहीं था, अतएव सुदामाकी स्त्री पड़ाससे चार मुट्ठी चिउड़ा माँग कर ले आयी और उसे एक मैले और फटे कपड़ेके टुकड़ेमें बाँधकर कृष्णको भेंट देनेके लिए पतिको दिया।

यह सुनि कै तब ब्राह्मनी, गई परोसिन पास।
पाव सेर चिउड़ा लिये, आई सहित हुलास॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाँधि दुवरिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग बाली बूट॥

चिउड़ाकी पोटली लेकर विप्रवर द्वारकापुरी चले। कृष्ण-

भगवानके दर्शन मुझको किस प्रकार प्राप्त होंगे—राहमें यही सोचते हुए सुदामाजी द्वारकापुरीमें पहुँचे। सुदामा तीन रक्षक सैनिकोंकी चौकियों और ड्योढियोंका बेरोक-टोक लाँघकर भगवानके अन्तःपुरमें पहुँचे।

सीस पगा न झगा तन मैं प्रभु ! जानै को आहि बसै केहि गामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानहकी नहिं सामाँ।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यौ चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयालको धाम बतावत आपन नाम सुदामा॥

तदनन्तर जिनमें बिना आज्ञा वृष्णि और अन्धकवंशी यादव भी नहीं जा सकते, उन भगवान कृष्णचन्द्रकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके महलोंमेंसे एक महलमें सुदामाजीने प्रवेश किया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र उस महलमें प्रियाके पलंगपर लेटे हुए थे।

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि तें देखत ही दुख मेट्यौ।
सोच भयो सुरनायकको कल्पद्रुमके हिय माँझ खखेट्यौ॥
कंप कुबेर हिये सरसों परसे पग जात सुमेरु खसेट्यौ।
रंकते राउ भयौ तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भेट्यौ॥

विप्रवरको दूरसे ही आते देखकर भगवान उठ बैठे और प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ और दोनों हाथ फैलाकर सुदामाको हृदयसे लगा लिया। आनन्दके कारण भगवानके नेत्रकमलोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। तदनन्तर अच्युतने प्रियबन्धु सुदामाको आदर सहित ले जाकर अपने पलंगपर बैठाया और आप ही पूजनकी सामग्री ला और अपने हाथसे उनके चरण धोकर उस जलको, स्वयं त्रिलोकपावन होकर भी, अपने सिरपर धारण किया।

भेंटि भली विधि विप्र सों, कर गहि त्रिभुवन राय।
अन्तःपुरको लै गए, जहाँ न कोऊ जाय॥
मनिमंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय।
पानी धर्यौ परात मैं, पग धोवनको लाय॥

फिर प्रियमित्रके शरीरमें दिव्यगन्धयुक्त-चन्दन, अगुरु और कुंकुम लगाया और सुगन्धित धूप-दीप आदिसे पूजन करके दिव्य भोजन कराया। साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीदेवी रत्न-दण्डयुक्त व्यजन हाथमें लिये उस दरिद्र ब्राह्मणकी सेवा करने लगीं। यह देखकर अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोग अत्यन्त विस्मित होकर परस्पर कहने लगे कि अहो! इस भिक्षुकने कौन ऐसा पुण्य किया है, जिससे तीनों लोकोंके गुरु साक्षात् लक्ष्मीपति पलंगपर बैठी हुई लक्ष्मीको छोड़कर इसकी सेवा कर रहे हैं। तदनन्तर भगवान कृष्णचन्द्र ब्राह्मण सुदामाका हाथ हाथमें लेकर उस समयकी मनोहर बातें करने लगे, जिस समय दोनों गुरुके यहाँ रहकर एक साथ विद्याध्ययन करते थे। हे ब्रह्मन्! गुरुकुलमें हम लोग साथ ही थे। भला कभी उस समयकी बातोंका तुमको स्मरण होता है? गुरुकुलमें रहते समय विद्यार्थीजीवनमें जो अनेक घटनाएँ हुई थीं, उनको कदाचित् आप न भूले होंगे। भगवानके मधुर वचन सुनकर सुदामाने कहा—हे देवदेव! आप सत्यसंकल्प हैं। भाग्यवश गुरुकुलमें आपका साथ पाकर मैं कृतार्थ हुआ। हे नाथ! आपकी कृपासे मुझको कोई कामना नहीं है, सब सुसम्पन्न है।

एकाशीति अध्याय

सुदामाको ऐश्वर्यप्राप्ति

शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! विप्रवर सुदामासे इस प्रकार बातचीत करके अन्तर्यामी सर्वज्ञ हरिने मन्द-मन्द मुसकाकर फिर उनसे कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम घरसे मेरे लिए क्या भेंटकी सामग्री लाये हो ?

कछु भाभी हमकौ दियो, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहे कहाँ केहि हेत ॥
खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जोरन पट फटि छुटि परे, बिखरि गए तेहि ठौर ॥
एक मुट्ठी हरि भरि लई, लीन्हीं मुखमैं डारि।
चबत चबाउ करन लगे, चतुरारन त्रिपुरारि ॥

वे बोले—भक्तोंकी प्रेमपूर्वक लायी गयी अणुमात्र सामग्रीको मैं बहुत मानता हूँ। क्योंकि मैं प्रेमका भूखा हूँ। किन्तु अभक्तके द्वारा अर्पित बहुत-सी सामग्री भी मुझको सन्तुष्ट नहीं कर सकती। हे मित्र ! शुद्धचित्तसे भक्तिपूर्वक अर्पित पत्र-पुष्प, फल और जलको भी मैं ग्रहण करता हूँ और सन्तुष्ट हो जाता हूँ। हे राजन् ! श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर भी सुदामा लज्जाके मारे सिर झुकाये रहे, चिउड़ेकी पोटली न दे सके। तब भगवानने कुछ विचार करके कहा—यह क्या है ? फिर तुरत ही उन्होंने ब्राह्मणकी बगलमें दबी हुई पोटली पकड़कर खींच ली और फिर कहा—हे मित्र ! यही तो मेरे लिए अत्यन्त प्रिय वस्तु है और मुझे प्रसन्न करनेवाली उपयुक्त भेंट है। यह कहकर भगवानने एक

मुट्ठी चिउवा फाँककर दूसरी मुट्ठी भरकर उठायी। उसी समय रुक्मिणीने यदुनन्दनका हाथ पकड़कर कहा—हे विश्वरूप! बस कीजिये। आपकी इतनी ही प्रसन्नता मनुष्योंकी आत्यन्तिक श्रीवृद्धिके लिए पर्याप्त है। इसके बाद भोजन आदिके उपरान्त सुदामाने वह रात्रि अच्युतके ही मन्दिरमें सुखपूर्वक बितायी। वहाँ सुदामाजीको ऐसा सुख मिला कि वे अपनेको स्वर्गमें बैठा हुआ समझने लगे। प्रातःकाल होनेपर सुदामा अपने घरको लौटे। श्रीकृष्णजी कुछ दूरतक साथ गये और प्रिय मित्रको सम्मान तथा प्रिय वचनोंसे बिदा किया। श्रीकृष्णचन्द्रने प्रत्यक्ष कुछ भी धन नहीं दिया और सुदामाने भी उनसे नहीं माँगा। सुदामाने सोचा—भगवानने मुझे कुछ भी धन नहीं दिया। वे सोचते होंगे कि यह ब्राह्मण धन पाकर मुझको भूल जायगा। तदनन्तर सुदामा इस प्रकार सोचते हुए अपने घर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि जहाँ टूटी हुई झोपड़ी थी, उस स्थानपर बड़े-बड़े ऊँचे महल बने हुए हैं। महलोंके पास इधर-उधर विचित्र उद्यान और उपवन उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं! सुदामा आश्चर्यके मारे अवाक् रह गये। कहने लगे—यह क्या? यह किस महाधनवानका भवन है? इस प्रकार सुदामा सोच ही रहे थे कि उसी समय देवदेवियों-के समान प्रभासम्पन्न नर-नारियोंने आनन्दपूर्वक गाते-बजाते हुए वहाँ आकर आदरपूर्वक सुदामाजीका स्वागत किया और कहा—आप क्या सोच-विचार रहे हैं? यह भवन आप ही का है। पति-के आनेका समाचार पाकर सुदामाकी स्त्रीको अत्यन्त आनन्द हुआ। वह आनन्दित होकर पतिको लानेके लिए घरसे बाहर

निकलीं। पतिको देखकर उत्कंठाके कारण उसके दोनों नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उसने नेत्र बन्द करके मन ही मन प्रणाम करके पतिको हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर सुदामाने अलौकिक समृद्धिसम्पन्न भवनमें धर्मपत्नीके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश किया। अपने भवनमें इस प्रकार वैभववृद्धि देखकर सुदामा आप ही आप मनमें कहने लगे कि अवश्य ही यह महाऐश्वर्यशाली यदुपतिका प्रसाद है। उनके कृपाकटाक्षके बिना इस अतुल सम्पत्तिके मिलनेका और कोई कारण नहीं देख पड़ता। तदनन्तर सुदामा अनासक्तभावसे स्त्रीके साथ ईश्वरदत्त विषयोंका भोग करते हुए ईश्वरके भजनमें अपना मन लगाकर धीरे-धीरे विषयत्यागका अभ्यास करने लगे। इस प्रकार भगवानके सखा सुदामा ब्राह्मण भगवानके ध्यानसे अहंभाव मिटाकर थोड़े ही समयमें विशुद्ध धामको प्राप्त हुए।

द्व्यशीति अध्याय

श्रीकृष्णकी कुरुक्षेत्रयात्रा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! श्रीकृष्ण और बलभद्र सुखपूर्वक द्वारकापुरीमें रहकर प्रजाका पालन करने लगे। इसी अवसरपर एक समय पूर्ण सूर्यग्रहण आ पड़ा। हे राजन्! सब लोगोंको उस सूर्यग्रहणका वृत्तान्त पहले ही से विदित हो गया था। अतएव अनेकानेक मनुष्य अनेकानेक देशोंसे पुण्यसंचयके द्वारा कल्याणप्राप्तिकी कामनासे उस दुर्लभ तथा पवित्र पर्वमें स्नान-दान आदि सत्कर्म करनेके लिए कुरुक्षेत्रमें अवस्थित स्यमन्तपञ्चक

नामक तीर्थको गये। हे राजन्! वीरवर परशुरामजीने पृथ्वीको एक प्रकारसे क्षत्रियशून्य करके राजाओंके रुधिरप्रवाहसे जिन पाँच महासरोवरोंको भर दिया था, उन्हींका नाम स्यमन्तकपञ्चक पड़ा था। उस बड़ी भारी तीर्थयात्रामें प्रायः सब भारतवासी स्त्री-पुरुष कुरुक्षेत्रको गये। अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि यादव लोग भी अपने पापनाशकी कामनासे कुरुक्षेत्रको चले। गद, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि रक्षा करनेके लिए द्वारकामें ही रहे। महाभाग्यशाली यादवोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर सूर्यग्रहणके समय स्यमन्तपञ्चकमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको विधिवत् पूजनके उपरान्त वस्त्र, सुवर्णकी माला तथा अलंकृत गौवें दीं और उस दिन निर्जल और निराहार व्रत किया। सूर्यको ग्रहणसे मुक्त देखकर फिर यादवोंने स्यमन्तकपञ्चकमें विधिपूर्वक स्नान किया और 'श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारी अटल भक्ति हो' यह कामना करके सुन्दर तथा स्वादिष्ट अन्न खिलाकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया। फिर श्रीकृष्णको ही अपना इष्टदेव माननेवाले यादवोंने उनसे आज्ञा लेकर आप भी भोजन किया और सुशीतल छाँहवाले वृक्षोंके नीचे डेरा डाला। उस अवसरपर मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ आदि अनेक श्रीकृष्णके अनुगत नरेश आये थे। कृष्णके परम सुहृद नन्द आदि गोपगण और कृष्णको देखनेके लिए उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आयी थीं। ये सब लोग श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए और कृष्णचन्द्रने भी इनसे मिलकर प्रसन्नता प्रकट की। सब स्त्रियाँ परस्पर मिलकर आनन्दके आँसू बहाने लगीं। भाई, भौजाई, भतीजे, भगिनियाँ, भगिनियोंके पुत्र,

पिता, माता और कृष्णचन्द्रको देखकर उनसे वार्तालाप करके देवी कुन्ती परम प्रसन्न हुईं और उनका सब शोक शान्त हो गया। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! सब लोग वसुदेव और उग्रसेन आदि यादवोंके द्वारा पूजित होकर परम प्रसन्न हुए। समागत सब राजा लोग सपत्नीक श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन शरीरकी शोभा और वैभव देखकर बहुत विस्मित हुए। गोपगण सहित नन्दजी मिलनेके लिए वसुदेवके डेरेको गये। नन्दको देखकर उत्कंठित यादव लोग बहुत प्रसन्न हुए। वसुदेवजी नन्दजीको गलेसे लगाकर अत्यन्त आनन्द और प्रेमसे विह्वल हो गये। कृष्ण और बलभद्रजी पिता-माताके गले लग और प्रणाम करके मुखसे कुछ भी नहीं कह सके। प्रेमकी उमंगसे उनकी आँखोंमें आँसू भर आये और उन आँसुओंसे कंठावरोध हो गया। महाभागा यशोदाने पुत्रोंको गोदमें बिठा लिया और छातीसे लगाकर अपने हृदयको शीतल किया। यशोदाके सब शोक मिट गये। तदनंतर देवी रोहिणी और देवकीजी व्रजरानीसे मिलीं। हे राजन्! बहुत दिनोंके बाद गोपियोंको श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए थे। सो गोपियाँ बहुत दिनोंके बाद प्राप्त कृष्णचन्द्रको नेत्रमार्गसे हृदयमें बिठला और मनके द्वारा मिलकर प्रियतमके प्रेममें मग्न और गद्गद हो गयीं। ऐसी दशामें पड़ी गोपियोंसे एकान्तमें मिल और हृदयसे लगाकर कृष्णचन्द्रने कुशल पूछी और मन्द-मन्द मुसकुराकर मधुर स्वरसे कहा—हे सखियों! हम अपने बन्धु-बान्धवोंका कार्य सिद्ध करनेके लिए तुमको छोड़कर चले आये और हमको शत्रुओंके नाशकी चेष्टामें तत्पर रहनेके कारण बहुत समय बीत गया।

अतएव हम फिर तुमसे मिल नहीं सके। इस कारण तुम हमको अकृतज्ञ तो नहीं समझतीं ! निश्चय जानो कि वह अचिन्त्य एवं सर्वशक्तिमान भगवान ही सब प्राणियोंके परस्पर संयोग और वियोगका एक मात्र कारण है। मनुष्य अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर सकता। इस प्रकार भगवानने गोपियोंको बहुत-सी बातें बताकर आत्मज्ञानकी शिक्षा दी।

त्र्यशीति अध्याय

श्रीकृष्णकी रानियोंका द्रौपदीसे अपने विवाहका वृत्तान्त कहना

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! प्राणीमात्रके गुरु और गति भगवान कृष्णने उपदेश देकर गोपियोंपर अनुग्रह किया और फिर युधिष्ठिर आदि सब बन्धुओंसे मिलकर कुशल पूछी। इस प्रकार लोकनाथके कुशल पूछनेपर युधिष्ठिर आदि सब बन्धु-बान्धवगण भगवानकी स्तुति करने लगे। इधर ये लोग भगवानकी स्तुति कर रहे थे और उधर यादवोंकी और कौरवोंकी स्त्रियाँ मिलकर हरिचरित्रकी चर्चा करने लगीं। इन लोगोंमें जो वार्ता हुई, वह सुनो। द्रौपदीजीने कृष्णचन्द्रकी स्त्रियोंसे पूछा—हे रुक्मिणी, भद्रा, जाम्बवन्ती, सत्या, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, रोहिणी, लक्ष्मणा और अन्यान्य कृष्णचन्द्रकी पत्नियों ! स्वयं भगवान कृष्णने माया-मानव शरीरसे मनुष्योंका अनुकरण करते हुए जिस प्रकार तुम्हारे साथ विवाह किया हो, वह मुझसे कहो—मैं सुनना चाहती हूँ। रुक्मिणीने कहा—शिशुपालके साथ मेरा विवाह करनेकी बात पक्की हो गयी थी कि उसी समय दुर्जय

नरपतियोंको परास्त करके श्रीकृष्णचन्द्रजी मुझको हर लाये। सत्यभामाने कहा—भाई प्रसेनके मरनेसे मेरे पिताको बड़ा सन्ताप हुआ। श्रीकृष्ण मणिकी चोरीका अपना कलंक मिटानेके लिए जाम्बवाननामक ऋक्षराजको परास्त करके खोई हुई मणि ले आये। यह देखकर भयभीत और चिन्तित मेरे पिताने मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया। जाम्बवतीने कहा—श्रीकृष्णचन्द्रको न पहिचाननेके कारण पहले तो मेरे पिताने उनसे सत्ताइस दिनोंतक घोर युद्ध किया, पर पीछे जान गये कि यह मेरे स्वामी सीतापति हैं। तब चरणोंपर गिरकर पिताजीने मणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया। कालिन्दीने कहा—मैं श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श पानेकी कामनासे तपस्या कर रही थी कि उसी समय अपने सखा अर्जुनके साथ जाकर कृष्णने मुझसे विवाह किया। भद्राने कहा—मेरे स्वयंवरमें जाकर श्रीकृष्ण राजाओं और विघ्न डालनेको उद्यत मेरे भाइयोंको जीतकर उनके बीचमें मुझे ले आये। मेरी अभिलाषा है कि जन्म-जन्मान्तरमें भी मैं उनके चरणोंकी दासी होती रहूँ। सत्याने कहा—मेरे पिताने हृष्ट-पुष्ट सात बैलोंको नाथनेवालेसे मेरा विवाह करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार सब राजा लोग नाथनेमें असमर्थ हुए तो श्रीकृष्णने उन बैलोंको सहज ही बलपूर्वक नाथ दिया। इस प्रकार विरोधी राजाओंको युद्धमें हराकर श्रीकृष्ण मुझको ब्याह लाये। मित्रविन्दाने कहा—मेरे चित्तको श्रीकृष्णपर अनुरक्त जानकर पिताने आप ही मातुलपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर उनके साथ प्रीतिपूर्वक मेरा विवाह कर दिया। अन्यान्य

महिषियांने कहा—श्रीकृष्णने स्वजनोंके साथ भौमासुरको युद्धमें मारकर हम लोगोंसे विवाह किया था।

चतुरशीति अध्याय

वसुदेवका यज्ञ-महोत्सव

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! स्त्रियोंमें परस्पर बातचीत हो रही थी कि उसी समय भगवान कृष्ण और बलभद्रको देखनेके लिए द्वैपायन, वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, परशुराम और वसिष्ठ आदि महर्षि वहाँ आ उपस्थित हुए। राजा लोग, यादव लोग, पाण्डव, कौरव, स्वयं श्रीकृष्ण और बलरामजी उन ऋषियोंको आते देखकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम करके सबने उन ऋषियोंका यथायोग्य आदर और सत्कार किया। श्रीकृष्ण और बलभद्रने यथाविधि उनका पूजन किया। इसके उपरान्त जब सब ऋषिगण अपने-अपने आसनोंपर सुखसे बैठ गये तब धर्मरक्षक भगवानने उनसे कहा—आज हमारा जीवन सफल हो गया। साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और आत्मा शुद्ध हो जाता है। सच्चे तीर्थ और देवता साधु लोग ही हैं। ऋषियोंने कहा—अहो भगवन्! आपकी माया अचिन्त्य है। आप क्या करते हैं और क्या करना चाहते हैं, यह कोई भी नहीं समझ सकता। आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं। आपके जन्म-कर्म केवल अनुकरणमात्र हैं। अपने जनोंकी रक्षाके साथ दुष्टोंको दण्ड देनेके लिए ही आप सर्वदा समय-समयपर शुद्ध सत्त्वमूर्तिसे प्रकट हुआ करते हैं। आप

ही सनातन वर्णाश्रमधर्मको चलानेवाले परमपुरुष हैं। अतएव आप ही अपनी लीलाओंसे उस वर्णाश्रमधर्ममय वेदमार्गका पालन किया करते हैं। तदनन्तर स्तुति और प्रार्थनाके उपरान्त श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर सब ऋषि लोग अपने-अपने आश्रमको जानेके लिए उद्यत हुए। उनको जानेके लिए उद्यत देखकर वसुदेवजी उठकर उनके निकट गये और पैर पकड़कर कहने लगे—हे महात्मा ऋषिगण! श्रुतियोंमें कहा है कि वेदपाठी ब्राह्मणमें सब देवता रहते हैं। इस कारण आपलोग सर्वदेवमय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महर्षियो! आप लोग कृपा करके कोई ऐसा कर्म बताइये, जिसके करनेसे कर्मोंका क्षय हो। इस विषयको सुनने और जाननेके लिए मैं बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ। श्रीकृष्णको छोड़कर अपनेसे इस प्रकारका प्रश्न करते वसुदेवको देखकर मुनियोंको विस्मय हुआ। तदनन्तर उन मुनियोंने सब राजाओंके सामने ही वसुदेवसे कहा—हे महाभाग! कर्म क्षय करनेवाला यही एक साधुजनोंका बताया हुआ उत्तम कर्म है कि निष्काम होकर श्रद्धापूर्वक सब यज्ञोंके ईश्वर यज्ञपुरुष भगवान विष्णुकी विविध यज्ञोंसे आराधना करे। कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला यही एक सर्वोपरि उत्तम उपाय है। जन्मसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण देवता, ऋषि और पितृगणके ऋणी होते हैं। जो द्विजपति वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञके द्वारा इन तीनों ऋणोंको बिना चुकाये मोक्षकी चेष्टा करता है, वह पतित हो जाता है। हे महाभाग! आप पुत्र उत्पन्न करके पितरोंके ऋणसे और वेदाध्ययन या ब्रह्मचर्य

करके ऋषियोंके ऋणसे मुक्त हो चुके हैं। अब यज्ञके द्वारा देवताओंके ऋणसे मुक्त होकर गृहस्थाश्रमको छोड़िये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपने परम भक्तिसे जगदीश्वर हरिकी आराधना की है, जिसके कारण साक्षात् भगवान आपके पुत्र हुए हैं। तथापि लोकाचारके लिए आपको यज्ञ करना चाहिये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! मुनियोंके कहनेसे वसुदेवने यज्ञमें व्रती होनेके लिए उनसे प्रार्थना की। तब मुनियोंने वसुदेवका वरण स्वीकार किया और उसी उत्तम क्षेत्रमें धार्मिक वसुदेवको यज्ञकी दीक्षा देकर उत्तम सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञको आरम्भ कराया। उस यज्ञमण्डपमें अपने इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव और सपत्नीक पुत्र-पौत्रोंसे परिवृत कृष्णचन्द्र तथा बलभद्रजी शोभायमान हुए। यज्ञ विधिवत् सुसम्पन्न हुआ। यज्ञ समाप्त होनेपर सब लोग अपने-अपने देशको चले गये। किन्तु नन्दजी गोप-गोपियोंके साथ कुछ दिन वहीं टिके रहे। तदनन्तर वे लोग भी भगवानके पास मन छोड़कर व्रजको चले गये। बन्धु-बान्धवोंको विदा करनेके उपरान्त जब वर्षाऋतु आयी, तब यादव लोगोंके साथ भगवान कृष्ण भी द्वारका चले गये।

पञ्चाशीति अध्याय

श्रीकृष्ण और बलदेवकी कृपासे वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीको मरे हुए छः पुत्र मिलनेकी कथा

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय कृष्ण बलराम दोनों भाइयोंने पिता वसुदेवके निकट आकर उनके चरणोंमें

प्रणाम किया। वसुदेवजीने भी प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। इस प्रकार लोकाचार हो चुकनेपर वसुदेवने कृष्ण और बलरामसे कहा—हे ईश्वर! आप दोनों महानुभाव वास्तवमें मेरे पुत्र नहीं हैं, वरन् साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियन्ता परमेश्वर हैं। पृथ्वीके भारस्वरूप दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेके निमित्त आपने पृथ्वीपर अवतार लिया है। अब तक मैं आपको अपना पुत्र समझता रहा, किन्तु यह भाव तो मायाकृत मोहमात्र था। आपहीने प्रत्येक युगमें सूतिकागृहमें मुझसे कहा है कि मैं आजन्म ईश्वर होकर भी निजनिर्मित सनातनधर्मकी रक्षाके लिए तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! इस प्रकार पिताका तत्त्वज्ञानमय कथन सुनकर भगवान कृष्णने मधुरवाणीसे कहा—हे पिताजी! आपने जो कुछ कहा, वह युक्तिसंगत है यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मस्वरूप है और व्यापकरूपसे ब्रह्मका विचार करना जिज्ञासु व्यक्तिका कर्तव्य है। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवानके वचन सुनकर वसुदेवके चित्तसे भेद-भावना दूर हो गयी और उन्हें शान्ति मिली। यह वृत्तान्त सुनकर कि कृष्ण-बलरामने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका मरा हुआ पुत्र ला दिया, देवी देवकीको बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय कंसके हाथों मारे गये अपने बालकोंका स्मरण हो आनेसे देवकीको बड़ा दुःख था। सो उन्होंने व्याकुल होकर दीन वाणीमें श्रीकृष्ण-बलरामसे कहा—हे कृष्ण-बलराम! मैंने सुना है कि आपने अपने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका मरा हुआ पुत्र यमलोकसे ला दिया था। अतः मेरी भी यह इच्छा है कि जिन मेरे

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

पुत्रोंको कंसने मार डाला था, उनको आप योगबलसे लाकर मुझको दिखा दें। मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर कृष्ण-बलराम दोनों भाई योगमायाके बलसे उसी समय सुतललोकको गये। कृष्ण-बलरामको अपने लोकमें देखकर राजा बलिको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। झटपट अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ आसनसे उठकर राजा बलिने प्रणाम किया और प्रसन्नता-पूर्वक बैठनेके लिए सुन्दर आसन दिये। तदनन्तर उन्होंने भक्ति-पूर्वक विधिवत् उनका पूजन किया। पूजन करनेके उपरान्त राजा बलि प्रभुके चरणकमलोंको गोदमें रखकर दबाने लगे। फिर प्रणाम करके वे भगवानकी स्तुति करने लगे। भगवानने कहा—हे दैत्यराज! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ऊर्णाके गर्भसे मरीचि ऋषिके छः पुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीको अपनी कन्यापर अनुरक्त देखकर वे देवसदृश ऋषिपुत्र हँसे थे। इस पापसे वे उसी क्षण आसुरी योनिको प्राप्त हुए। उनको हिरण्यकशिपुके वीर्यसे जन्म लेना पड़ा। उस जन्मके बाद योगमायाके द्वारा लाये जाकर वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए और उनको दुष्ट कंसने मार डाला। देवी देवकी प्रबल पुत्रस्नेहके कारण उनके लिए सोच कर रही हैं और उनको देखना चाहती हैं। वे ही बालक तुम्हारे पास वर्तमान हैं। मैं माताका शोक दूर करनेके लिए उनका ले जाऊँगा। तदनन्तर वे शापसे मुक्त और विगतताप होकर फिर देवलोकको चले जायँगे। ये स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतङ्ग, क्षुद्रभुक् और घृणि नामक ऋषिकुमार मेरी कृपासे उत्तम गतिको प्राप्त होंगे। यह

कहकर राजा बलिके द्वारा भली-भाँति पूजित कृष्ण-बलराम उन बालकोंको लेकर द्वारकापुरीमें उपस्थित हुए। पुत्रोंको देखकर पुत्रस्नेहके कारण देवकीके स्तनसे आप ही आप दूध बहने लगा। देवकीने प्रेमपूर्वक पुत्रोंको हृदयसे लगा लिया और गोदमें लेकर बारंबार मस्तक सूंघने लगीं। भगवान विष्णुकी मायासे मोहित देवकीजी उन बालकोंको दूध भी पिलाने लगीं। तदनन्तर उन बालकोंके शुद्ध अन्तःकरणमें आत्मज्ञानका उदय हुआ और वे सबके सामने ही वसुदेव-देवकी और कृष्ण-बलरामको प्रणाम करके आकाशमार्गसे देवलोकको चले गये। हे राजन्! श्रीकृष्णके ऐसे-ऐसे अनेकानेक अद्भुत कार्य हैं, जिनका अन्त नहीं है। श्रीकृष्णके ये अद्भुत चरित्र सुनने और कहनेसे अन्त समयमें मंगलमय हरिधामकी प्राप्ति होती है।

षडशीति अध्याय

अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण और भगवानकी मिथिलायात्रा

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! मेरी पितामही सुभद्रा-देवी, जो कृष्ण-बलभद्रकी बहिन थीं, उनके साथ महातेजस्वी अर्जुनका विवाह किस तरह हुआ? यह कथा मैं सुनना चाहता हूँ। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! एक समय महापराक्रमी अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिए निकले। प्रभासक्षेत्रमें पहुँचकर अर्जुनने सुना कि बलभद्रजी मेरे मामाकी लड़की अर्थात् अपनी बहिनका विवाह दुर्योधनसे करेंगे, किन्तु कृष्ण आदिकी यह इच्छा नहीं है। यह सुनकर अर्जुनको इच्छा हुई कि सुभद्रासे मैं

विवाह करूँ। यह विचारकर त्रिदण्ड-धारणपूर्वक संन्यासीके वेषमें गुप्तरूपसे अर्जुन द्वारकापुरीको गये। स्वार्थसिद्धिके विचारसे अर्जुन चौमासे भर द्वारकापुरीमें रहे। पुरवासीजन और स्वयं बलभद्रजी भी नहीं पहचान सके कि यह अर्जुन हैं। अतएव उन्होंने त्रिदण्डी यती जानकर इनका बहुत ही सत्कार-पूजन किया। एक दिन बलभद्रजी निमंत्रण देकर भोजन करानेके लिए अर्जुनको अपने घर ले गये। बलभद्रजीने श्रद्धासे भिक्षा दी और अर्जुन भोजन करने लगे। वहाँपर सुभद्राको देखकर अर्जुनका चित्त चंचल हो उठा और प्रसन्नतासे उनके नेत्रकमल खिल उठे। स्त्रियोंके मनको हरनेवाले अर्जुनको देखकर सुभद्राका भी मन वशमें नहीं रहा। उसने अपना हृदय अर्जुनको दे दिया और टकटकी लगाकर उनकी मनोहर मूर्तिको निहारने लगी। उस दिनसे अर्जुनका चित्त कामदेवकी चोटसे अस्थिर रहने लगा। वे उस कन्याको ले भागनेका अवसर देखने लगे। इसी अवसरपर एक दिन सुभद्रा माता-पिता और श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर देवदर्शनके बहाने रथपर सवार होकर घरसे निकल पड़ीं। वे मार्गमें जा ही रही थीं कि महारथी अर्जुन उनको हर ले गये। यह वृत्तान्त सुनकर बलभद्रजी कुपित हुए। किन्तु कृष्णचन्द्रने उनके पैर पकड़ तथा अन्यान्य बन्धुओंने विनय और प्रार्थना करके उनको शान्त कर दिया। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! मिथिलानिवासी श्रुतदेवनामक ब्राह्मण श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। उस समय बहुलाश्व मिथिलानरेश थे। वे भी श्रुतदेवके समान परम भगवद्भक्त थे। उन दोनों भक्तोंपर कृपा करनेके

लिए भगवान कृष्णचन्द्र मिथिलापुरीको चले। नारद, वामदेव, अत्रि आदि ऋषिलोग भी भगवानके साथ गये। वहाँ पहुँचकर भक्तवत्सल भगवानने दोनों भक्तोंका आतिथ्य स्वीकार किया और दोनोंकी प्रसन्नताके लिए दो रूप धारण करके दोनोंके घर गये। मिथिलानरेशने भक्तिपूर्वक भगवानका पूजन किया और उनकी स्तुति की। उसी समय श्रुतदेवने भी भगवानके चरण धोकर अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने अनेक मधुर वचनोंसे भगवानकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान दोनों भक्तोंको मुक्तिका मार्ग बताकर द्वारकाको लौट गये।

सप्ताशीति अध्याय

नारद-नारायण-संवाद

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! जिसका प्रत्यक्षरूपसे निरूपण करना असम्भव है और जो निर्गुण तथा सत्-असत् दोनोंसे परे है, उस परब्रह्मके रूपका वर्णन सगुण श्रुतियाँ किस प्रकार करती हैं? शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! जो कोई तर्क-वितर्क न करके अन्दरसे मन लगाकर सनातन तथा सत्य श्रुतियोंको पढ़ता सुनता और भावार्थका मनन करता है, वह क्षेमस्वरूप परमपदको प्राप्त करता है। मैं इस विषयका एक इतिहास तुमको सुनाता हूँ, जिसे नारदजीके पूछनेपर स्वयं भगवान नारायणने कहा है। आप सुनिये। एक समय नारदजी अनेक लोकोंमें विचरते हुए सनातन ऋषि नारायणके दर्शनकी इच्छासे बदरिकाश्रमको गये। नारदजीने वहाँ पहुँचकर योगी ऋषियोंकी

मण्डलीमें बैठे हुए भगवान नारायणको प्रणाम किया और उनसे यही प्रश्न किया कि परब्रह्म किस तरह श्रुतिगोचर होते हैं? नारायणने कहा—हे नारद! पहले एक समय जनलोकमें वहाँके निवासी ब्रह्माके मानस पुत्र मुनियोंने ब्रह्मशास्त्रका आरम्भ किया। उस समय तुम मेरी ही अनिरुद्धनामक मूर्तिके दर्शनके निमित्त श्वेतद्वीपको गये थे। उस ब्रह्मसत्रमें श्रुतियोंके अनुसार विचार आरम्भ होनेपर यही प्रश्न उपस्थित हुआ था, जो तुम मुझसे आज पूछ रहे हो। ऋषियोंने एकको वक्ता बनाया। सनन्दननामक ऋषिने उत्तर देते हुए कहा—जिस प्रकार अनुगत बन्दीजन निद्रित चक्रवर्ती राजाको प्रातःकाल आकर उसके सुयशसे पूर्ण पराक्रमोंका वर्णन करते हुए जगाते हैं, उसी प्रकार प्रलय-समयमें निजरचित इस सम्पूर्ण विश्वको निज शक्तियोंके साथ अपनेमें लीन करके योगनिद्रा द्वारा निद्रित परमेश्वरको श्रुतियाँ जगाने लगीं। श्रुतियोंने कहा—हे अजित! हे अच्युत! जय हो, जय हो! स्थावर और जंगम जीवोंकी अविद्यारूपिणी माया दूर करो। आपका स्वरूप सब ऐश्वर्योंका आधार है और अविद्या भी जीवोंको मोहित करने हीके लिए गुण ग्रहण किये अवस्थित है। अतएव इस मायाको विनष्ट करना ही आपका आवश्यक कर्त्तव्य है। आप सबके अन्तर्यामी हैं। आप सब शक्तियोंके उद्बोधक हैं। वेदोंमें ही आपके मायामय सगुणरूप और अखण्ड चित् और निर्गुणरूपका प्रतिपादन है। अविकारी ब्रह्म जो आप हैं, उन्हींसे इन्द्र-अग्नि आदि सभीकी उत्पत्ति और लय होता है। वेदका प्रत्येक मंत्र और प्रत्येक पद आपका ही प्रतिपादन करता है। आप सबसे परे अखण्ड-

ज्ञानरूप हैं। ब्रह्मज्ञान ही आपका रूप है। आप मायासे दूर हैं। आपको मायासे चलाये गये इस संसारचक्रमें सभी जीव चक्कर खा रहे हैं। इसलिए विवेकीजन आप ही की भक्ति करते हैं। भक्ति मिलनेपर संसारका भय नहीं रहता। आप अनन्त हैं। अतएव ब्रह्मादिक लोकपाल भी आपका अन्त नहीं पाते। श्रीनारायणने कहा—हे नारद! इस प्रकार आत्मानुशासन और आत्माकी गतिको जानकर सिद्धावस्थाको प्राप्त ब्रह्माके सभी पुत्रोंने सनन्दनका पूजन किया। हे नारद! तुम श्रद्धापूर्वक सात्विक दृढ़ भक्तोंकी सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इस आत्मानुशासनपर ध्यान रखते हुए अकुतोभय होकर सर्वत्र विचरण करो। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! देवर्षि नारद गुरु नारायणसे इस प्रकार आदेश प्राप्त करके श्रद्धापूर्वक बोले—सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारपाशसे छुड़ानेके लिए अंशकला धारण करनेवाले साक्षात् परब्रह्म नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ।

अष्टाशीति अध्याय

शम्भुमोचन

राजा परीक्षितने पूछा—हे ब्रह्मन्! देखा जाता है कि जो लोग भोगाभिलाषाशून्य शम्भुको भजते हैं, वे ही भोगी और धनसम्पन्न होते हैं और जो भोगोंके भवनरूप साक्षात् लक्ष्मीपति विष्णुको भजते हैं, वे प्रायः अकिञ्चन हैं। इस प्रकार विरुद्ध फल मिलनेका कारण क्या है? इसमें मुझे बड़ा सन्देह है। आप मेरा यह सन्देह दूर कीजिये। शुकदेवजी बोले—हे

राजन् ! शिवजी निरन्तर शक्तियुक्त गुणमय और त्रिलिङ्ग अर्थात् वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे त्रिविध अहंकारके अधिष्ठाता हैं। उन्हींसे दस इन्द्रिय, पाँचतत्त्व और मन ये सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं। अतएव विकारोपाधियुक्त शिवको भजनेसे उपाधि-के अनुरूप विभूतियोंका रूप मिलता है और हरिभगवान साक्षात् निर्गुण अर्थात् प्रकृतिसे परे परमपुरुष हैं। वे समदर्शी और सबके अन्तर्यामी हैं। उनको भजनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है। हे राजन् ! अश्वमेध यज्ञ समाप्त होनेपर तुम्हारे पितामह युधिष्ठिरने भागवत धर्म सुनते समय अच्युत श्रीकृष्णसे यही प्रश्न किया था। कृष्णचन्द्रने उत्तर देते हुए कहा—हे युधिष्ठिर ! मैं जिसपर अनुग्रह करता हूँ, उसको क्रमशः निर्धन कर देता हूँ। दुःखपर दुःख पाते देखकर उसके स्वजन उसको आप ही छोड़ देते हैं। तदनन्तर बार-बार धन पानेकी चेष्टा विफल होनेसे वह विरक्त हो जाते और तब मेरे भक्तोंसे मित्रता करते हैं। उस समय मैं उनपर विशेष अनुग्रह करके उनके चित्तमें अपना अनुराग प्रकट करता हूँ। इस प्रकार मेरी भक्ति पाकर वह धीर व्यक्ति अमृत ब्रह्मको अपना ही स्वरूप जानकर संसारसे मुक्त हो जाता है। इसीसे लोग मुझे दुराराध्य समझकर छोड़ देते और कामभोग देनेवाले अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देव शाप और कृपाके अधीश्वर हैं। उनमें ब्रह्मा और शिव शाप भी देते हैं और अनुग्रह भी करते हैं। किन्तु शान्तरूप भगवान विष्णु वैसे नहीं हैं। वे भजने और न भजनेवाले दोनों प्रकारके प्राणियोंपर कृपा करते हैं। इस

प्रसंगमें मैं तुमको एक इतिहास सुनाता हूँ, सुनो। शकुनिनामक असुरका पुत्र दुर्मति वृकासुर तप करनेके लिए जा रहा था। रास्तेमें नारदजीसे भेंट हुई। उस असुरने प्रणाम करके नारदजीसे पूछा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंमें कौन देव आशुतोष हैं? नारदजीने कहा—शिवकी आराधनासे आशु अर्थात् शीघ्र सिद्धि-प्राप्त होती है। शंकरजीने शीघ्र प्रसन्न होकर रावण और बाणासुर-को वांछित वर दिया और अन्तमें आप ही सङ्कटमें पड़ गये। देवर्षि नारदके बतानेके अनुसार वृकासुरने केदार तीर्थमें जाकर अग्निमें अपने शरीरके मांसकी आहुति दे-देकर शिवकी आराधना करना आरम्भ किया। सात दिनतक इस प्रकार आराधना करनेपर भी जब शंकरजीका दर्शन नहीं मिला, तब वह दैत्य बहुत खिन्न होकर केदारतीर्थमें स्नान करनेके उपरान्त खड्ग लेकर आहुति देनेके लिए अपना सिर काटनेको उद्यत हो गया। उसी समय परम दयालु शंकरजी साक्षात् मूर्तिमान अग्निके समान प्रतिमासे प्रकट हुए और हाथ पकड़कर दैत्यको अपना सिर काटनेसे निवृत्त किया। शंकरजीके मंगलमय करकमलका स्पर्श पाते ही वृकासुर प्रफुल्लित हो उठा। इसके बाद शिवजीने उससे कहा—जो तेरी इच्छा हो, वह वर माँग ले। तेरी इच्छा पूर्ण करनेके ही लिए मैं प्रकट हुआ हूँ। मैं शरणागत मनुष्योंपर सदा सन्तुष्ट रहता हूँ। यह सुनकर उस असुरने यह वर माँगा कि मैं जिसके सिरपर अपना हाथ रख दूँ, वह उसी क्षण भस्म हो जाय। यह सुनकर कुछ उदास होकर शंकरजीने 'तथास्तु' कह दिया। तब वह असुर प्राप्त वरकी परीक्षाके लिए शम्भुके ही सिरपर हाथ रखनेको उद्यत

हो गया। यह देखकर शंकरजी बहुत घबड़ाये और अपनी भूलपर पश्चात्ताप करते हुए भयभीत होकर उत्तर दिशाकी ओर भागने लगे। फिर उत्तर दिशासे भागकर दक्षिणदिशा, स्वर्गलोक, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल आदिमें जहाँ-जहाँ शिवजी गये, वहाँ-वहाँ पीछे-पीछे वृकासुर भी दौड़ता हुआ पहुँचा। अन्यान्य देवता लोग कुछ भी उपाय न स्थिर कर सके, इसलिए चुपचाप देखते रहे। तब अन्यत्र रक्षा होते न देखकर भगवान शम्भु वैकुण्ठलोकमें पहुँचे। भक्त-वत्सल हरिने हरको इस प्रकार सङ्कटमें देखकर आश्वासन दिया और योगमायासे बौनेका रूप धारण करके उस दानवके सामने जा खड़े हुए। अग्निके समान तेजस्वी विप्रदेवके रूपमें हरिको देखकर दानवने प्रणाम किया। भगवानने कहा—हे दैत्यराज! तुम थके हुए मालूम पड़ते हो। क्षणभर यहाँ विश्राम करो। तुम किस कामके लिए दौड़ते जा रहे हो? यदि कहने योग्य हो तो मुझसे कहो। सम्भव है कि मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ। यह सुनकर ही उस असुरकी थकावट मिट गयी। उसने आदिसे अन्ततक सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब भगवानने कहा—यदि ऐसी बात है तो भाई! हम शिवकी बातका विश्वास नहीं करते। वे दक्ष-प्रजापतिके शापसे पिशाचवृत्तिको प्राप्त हो चुके हैं। यदि तुम उनको जगद्गुरु मानते हो और उनपर विश्वास रखते हो तो शीघ्र अपने ही मस्तकपर हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं कर लेते। यदि मेरे विश्वासके अनुसार शम्भुका कथन मिथ्या सिद्ध हो तो मिथ्या बोलनेवाले प्रतारक शम्भुको वह दण्ड देना, जिसे वे कभी भूल न सकें और फिर ऐसी झूठी बात कभी न कहें। भगवानके ऐसे

मधुर वचन सुनकर उस दानवकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। उसने अपने ही ऊपर अपना हाथ रख दिया। सिरपर हाथ रखते ही वज्राहत व्यक्तिके समान वह पापी असुर उसी क्षण प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देखकर देवता, गन्धर्व, ऋषिगण आदि जय-जय शब्द करते हुए श्रीहरिपर फूल बरसाने लगे। शंकरजी सङ्कटसे बच गये। सङ्कटमुक्त महादेवके पास आकर पुरुषोत्तम हरिने कहा—अहो! हे देवदेव महादेव! यह पापी असुर अपने ही पापसे नष्ट हो गया। महान लोगोंका अपराध करनेसे कैसे कोई सुख पा सकता है? आप विश्वनाथ और जगद्‌गुरु हैं। आपका अपराधी कैसे बच सकता था। जो मनुष्य साक्षात् परमात्मा हरिका यह शम्भुमोचन-चरित्र श्रद्धापूर्वक पढ़ता या सुनता है, वह भी शम्भुकी तरह शत्रुकृत सङ्कटसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होता है।

ऊननवति अध्याय

त्रिदेवपरीक्षा और ब्राह्मणपुत्रोंको पुनर्जीवनदान

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! एक समय सरस्वती नदीके किनारे यज्ञ करते-करते ऋषियोंकी मण्डलीमें यह तर्क उपस्थित हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों देवोंमें कौन महान् या श्रेष्ठ है। बादमें उन ऋषियोंने इस विषयकी परीक्षाके लिए ब्रह्माके पुत्र महर्षि भृगुको भेजा। पहले भृगुजी ब्रह्मलोक गये। ब्रह्माकी सभामें उपस्थित होकर उनकी परीक्षाके लिए भृगुने न तो उनको प्रणाम किया और न स्तुति ही की। यह देखकर कमलासन ब्रह्मा अपने तेजसे अतिशय प्रज्वलित होकर भृगुपर

कुपित हुए। किन्तु फिर ब्रह्माने पुत्रपर उपजे हुए क्रोधको जल द्वारा शान्तकी जानेवाली अग्निकी भाँति अपने आप ही शान्तकर दिया। यह देखकर भृगु वहाँसे चलकर कैलासपर्वतपर गये। उनके पहुँचते ही शंकर आनन्दित होकर उनको आलिंगन करनेके लिए उठे तो भृगुने उनका यह कहकर तिरस्कार किया कि मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता, तुम्हारा आचरण ठीक नहीं है। इससे अत्यन्त क्रोधसे लाल आँखें करके शिवने भृगुको मारनेके लिए त्रिशूल उठाया। यह दृश्य देखकर देवी पार्वतीने पतिके पैरोंपर गिरकर उन्हें विनयपूर्वक समझाकर शान्त किया। तदनन्तर भृगुमुनि वैकुण्ठलोकको गये। वहाँ उस समय विष्णुजी लक्ष्मीके साथ पलंगपर लेटे हुए थे। उनके समीप पहुँचकर भृगुने तुरन्त लक्ष्मीपतिकी छातीमें एक लात मारी। लक्ष्मीके साथ उसी क्षण भगवान पलंगसे उतर पड़े। भृगुको प्रणाम करके भगवान मधुरवाणीमें बोले—हे ब्रह्मन्! इस आसनपर क्षणभर बैठकर विश्राम कर लीजिये। आपके आगमनका समाचार मुझे मालूम नहीं हुआ। इसीसे यह अपराध हो गया। अतएव आप मुझे क्षमा कीजिए। आपके ये चरण अत्यन्त कोमल हैं। मेरे कठोर वक्षःस्थलपर पड़नेसे आपको कष्ट हुआ होगा। अपने पवित्र पादोदकसे मुझे और लोकपालोंको पवित्र बनाइये। आजसे मेरे सभी पातक नष्ट हो गये और आपका यह पदचिह्न विभूतिस्वरूप होकर मेरे वक्षःस्थलपर सदा शोभित रहेगा। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीविष्णुके गम्भीर वचन सुनकर भृगुमुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। अवाक् होकर वे फिर कुछ भी नहीं बोल सके।

तदनन्तर लौटकर महामुनि भृगु यज्ञस्थलको गये और ब्रह्मवादी ऋषियोंसे सब घटनाओंका वर्णन किया। सो सुनकर महर्षिगण शान्त और अभयकी साक्षात् मूर्ति विष्णुभगवानको सर्वोत्तम मानकर उनकी अत्यन्त श्रद्धा करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! द्वारकापुरीमें एक ब्राह्मण अपनी पत्नीके साथ रहता था। कुछ दिनोंके बाद ब्राह्मणपत्नीने एक पुत्र प्रसव किया, किन्तु पृथ्वीपर गिरते ही वह मर गया। तब वह ब्राह्मण मृत पुत्रका शरीर लेकर राजद्वारपर पहुँचा और वहाँ उसे रखकर रोने लगा और बोला—राजाके ही कर्मदोषसे मेरा यह बालक मर गया है। यह कहकर वह अपने घर चला गया। इसी प्रकार क्रमशः उस ब्राह्मणके आठ पुत्र मरे। वह पहलेकी ही भाँति उनको राजद्वारपर रखता गया। फिर नवम पुत्र उत्पन्न होकर मर गया तो उसे लेकर ब्राह्मण पुनः राजद्वारपर गया और पूर्वोक्त वाक्य कहकर विलाप करने लगा। उस समय वीर अर्जुन कृष्णचन्द्रके पास बैठे थे। ब्राह्मणका विलाप सुनकर वे बाहर आकर ब्राह्मणसे बोले—हे ब्राह्मण देवता! आप वृथा क्यों रो रहे हैं? ज्ञात होता है कि आपके नगरमें कोई भी क्षत्रिय वीर नहीं हैं, जो आपके इन बालकोंको मृत्युसे बचावे। ये ब्राह्मण यहाँपर यज्ञ कर रहे हैं। जहाँ ब्राह्मण लोग धन, पत्नी, पुत्र आदिके वियोगसे शोकाकुल होते हैं वहाँके क्षत्रिय वास्तवमें क्षत्रिय नहीं रह जाते। उनको क्षत्रियवेषधारी नट समझना चाहिये। मैं आपके पुत्रकी इस बार रक्षा करूँगा। यदि अपनी प्रतिज्ञाका पालन मैं न करूँ तो इस पापके प्रायश्चित्तके लिए अग्निमें जल मरूँगा।

यह सुनकर ब्राह्मणने कहा—भगवान सङ्कर्षण, भगवान वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जब मेरे पुत्रोंकी रक्षा नहीं कर सके तो तुम उन्हें कैसे बचा सकते हो ? तुम्हारी बातोंपर मैं विश्वास नहीं करता। अर्जुनने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अर्जुन हूँ और गाण्डीव धनुष धारण करता हूँ। मेरा अनादर इस प्रकार आप मत कीजिये। हे प्रभो ! मैं युद्धमें यमराजको भी जीतकर आपके बालकको ला दूँगा। अर्जुनके वचनोंसे आश्वस्त और प्रसन्न होकर ब्राह्मण अपने घर गया। कुछ दिनोंके बाद पुनः ब्राह्मणीका प्रसवकाल उपस्थित हुआ तो घबड़ाकर ब्राह्मण दौड़ता हुआ अर्जुनके पास आया और कहने लगा—हे पार्थ ! अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मेरी सन्तानकी रक्षा करो। वीर अर्जुन उसी क्षण ब्राह्मणके घर गये और गाण्डीव धनुष चढ़ाकर अपने दिव्य अस्त्रोंका स्मरण करके उसके सूतिकागृहकी रक्षा करने लगे। यथासमय बालक उत्पन्न हुआ, पर रोता ही हुआ वह आकाशमार्गमें जाकर अदृश्य हो गया। इस बार उसका मृत शरीर भी नहीं रहा। तब वह ब्राह्मण कृष्णके निकट जाकर अर्जुनकी बड़ी निन्दा करने लगा। ब्राह्मणसे तिरस्कृत होनेपर पराक्रमी अर्जुन उसी समय योगविद्याके बलसे यमराजके वासस्थान संयमनी पुरीको गये। वहाँ ब्राह्मणके पुत्रको न देखकर अर्जुन क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, वायु, वरुण आदि लोकपालोंके पुरों तथा अतल आदि सातों रसातल और स्वर्गके ऊपर महर्लोक आदि सातों लोकोंमें और अन्यान्य स्थानोंमें भी गये। परन्तु कहीं भी ब्राह्मणके पुत्रका पता नहीं चला। अन्तमें प्रतिज्ञाभंगसे

अपमानित होकर वे अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यत हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर अर्जुनको रोका और कहा—चलो, मैं तुम्हें ब्राह्मणके सब पुत्रोंको दिखाऊँगा। यह कहकर कृष्णचन्द्र अर्जुनके साथ दिव्य रथपर चढ़कर पश्चिम दिशाको चले। सात-सात पर्वतोंसे युक्त सात द्वीप और सात समुद्र लाँघकर लोकालोक पर्वतके उस पार अन्धकारपूर्ण मार्गमें पहुँचनेपर घोड़े इधर-उधर भटकने लगे। यह देखकर महायोगेश्वर भगवान श्रीकृष्णने सहस्र सूर्यके समान तेजधारी अपना सुदर्शनचक्र अन्धकारमें फेंक दिया। वह चक्र अन्धकार दूर करता हुआ आगे-आगे चला। घोर अन्धकार पार करके अर्जुनने देखा कि अगणित सूर्योंकी तरह अपार ज्योति चारों ओर फैली हुई है। उस तेजके सम्मुख अर्जुनकी दृष्टि नहीं ठहर सकी। तदनन्तर दोनों आकाशमार्गसे उतरकर समुद्रमें प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक परमप्रकाशसम्पन्न, अतिउत्तम और अद्भुत भवन बना हुआ है। उस भवनमें सहस्रों खम्भे चमकीली मणियोंसे सुशोभित हैं। भवनके भीतर भीमरूप श्वेतपर्वतके समान अद्भुत अनन्त शेषनाग विराजमान हैं। उनके मस्तकोंमें स्थित मणियोंकी प्रभासे उज्ज्वल सहस्र फण फैले हुए हैं और दो हजार भयानक नेत्र हैं। कण्ठ और जिह्वाओंका वर्ण नीला है। उन्होंने यह भी देखा कि शेषजीके शरीरकी शय्यापर सर्वव्यापक महानुभाव श्रेष्ठ पुरुषोंमें भी श्रेष्ठ साक्षात् नारायण भगवान सुखपूर्वक लेटे हुए हैं। उनके श्याम शरीरपर बिजलीके समान पीतपट शोभायमान है। उनका मुखमण्डल प्रसन्न है और नेत्र कमल-

दलके सदृश विशाल, अरुण और दर्शनीय हैं। सुनन्द-नन्द आदि पार्षदगण और मूर्तिमान चक्र आदि आयुध एवं सम्पूर्ण सिद्धियाँ परमेश्वरकी सेवामें उपस्थित हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखते ही सादर सिर झुकाकर उन अच्युतको प्रणाम किया। तब सर्वव्यापक प्रभुने कृष्ण और अर्जुनसे मन्द-मन्द मुसकुराकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए गम्भीर वाणीमें कहा—हे नर और नारायण! तुम्हें देखनेकी इच्छासे मैंने ही ब्राह्मणके बालकोंको यहाँ मँगा लिया है। तुम दोनों ही पृथ्वीके भारस्वरूप असुरोंका वध करनेके लिए मेरे ही अंशसे पृथ्वी तलपर अवतीर्ण हुए हो। अतएव राजवेषधारी असुरोंका संहार करके तुम लोग शीघ्र मेरे निकट आ जाओ। इस प्रकार भगवानकी आज्ञा पायी तो श्रीकृष्ण और अर्जुनने बहुत अच्छा कहकर उन्हें प्रणाम किया और वे लोग फिर ब्राह्मणके बालकोंको लेकर जिस रास्तेसे गये थे, उसी रास्तेसे द्वारकापुरीको लौटे। द्वारकामें आकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणको उसके सब बालक दे दिये। पुत्रोंको पाकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ। विष्णुभगवानके पूर्वोक्त परमधाम अथवा प्रभावको देखकर अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने समझ लिया कि पुरुषोंमें जो कुछ पौरुष है, वह सब कृष्णचन्द्रकी कृपामात्र है।

नवति अध्याय

कृष्णलीलाका पुनः संक्षिप्त वर्णन

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! परम सुशोभित द्वारकापुरीमें

साक्षात् लक्ष्मीपति कृष्णचन्द्र सुखपूर्वक रहते थे। वे सोलह हजार स्त्रियोंके एकमात्र वल्लभ सोलह हजार भवनोंमें अलग-अलग उतने ही रूप धारण करके रमण करते। कृष्णचन्द्र अपनी पत्नियोंके साथ विविध रीतियोंसे क्रीड़ा करते थे और क्रीड़ाके उपरान्त नट-नर्तकी गवैये आदि याचकोंको अलंकार-वस्त्र आदि देकर प्रसन्न करते थे। कृष्णकी चाल, बातचीत, हँसी, चितवन, क्रीड़ा, आलिंगन आदिसे स्त्रियाँ ऐसी मोहित हो रही थीं कि उनकी आँखोंमें, हृदयमें और मुखमें एकमात्र कृष्ण बस गये थे। वे सब भूलकर तन्मय हो गयी थीं और कभी-कभी पागलोंके समान मेघ आदि जड़ वस्तुओंसे प्रेमपूर्ण बातें कहने लगती थीं। कभी कुररीको देखकर कोई रानी कहने लगती—अरी कुररी! इस समय रातको कृष्णचन्द्र सो रहे हैं, तब तू क्यों विलाप करके उनके सोनेमें विघ्न कर रही है। तू भी क्यों नहीं सो रहती? क्या तुझे नींद नहीं आती? ओ सखी! क्या हमारे ही समान कमल-नयन कृष्णके हास्यपूर्ण एवं उदार लीला विलासयुक्त कटाक्षरूप बाणोंसे तेरा भी हृदय भलीभाँति बिंध गया है। कभी कोई रानी चक्रवाक पक्षीकी स्त्रीको अर्धरात्रिके समय भी जागती देखकर कहने लगती—क्या तू भी हमारे ही समान कृष्णकी दासी हो गयी है और श्रीअच्युतकी चरणसेवित मालाको अपनी वेणीमें रखनेके लिए रो रही है? शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्रपर ऐसा अनन्यभाव और ऐसी आसक्ति होनेके कारण पूर्वोक्त सभी स्त्रियाँ सहजमें ही उस सद्गतिको प्राप्त हुईं, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी दुर्लभ है। कृष्णचन्द्रकी सब

मिलाकर सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं। अमोघ रति कृष्णचन्द्रने अपनी सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। उस यदुकुलमें कभी कोई धनहीन, अल्पायु, अल्पवीर्य, अल्पसन्तान या ब्राह्मणविरोधी नहीं उत्पन्न हुआ। यदुवंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध यशस्वी पुरुषोंकी गिनती सौ हजार वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती। सुना जाता है कि यदुवंशीय बालकोंको शिक्षा देनेवाले केवल अध्यापक तीन करोड़ एक सौ अट्ठासी थे। तब महात्मा यादवोंकी गिनती कौन कर सकता है? राजा उग्रसेनकी सभामें सर्वदा अयुत लाख अच्युत महावीर यादवलोग उपस्थित रहते थे। श्रीकृष्णकी उत्कृष्ट चरितकथा सुनने तथा कीर्तन और मनन करनेसे मनुष्य उस अविनाशी परमधामको जाता है, जहाँ मृत्युकी भी गति नहीं रहती।

दशम स्कन्ध समाप्त

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

एकादश स्कन्ध

प्रथम अध्याय

ब्राह्मणशापकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! श्रीकृष्णने बलदेव आदि यादवोंके साथ मिलकर हिंसापर्यवसित महाकलहका सूत्रपात करके घोर संग्राममें राजवेषधारी दुष्ट दैत्योंका विनाश किया और पृथ्वीका भार उतारा। पृथ्वीके भारस्वरूप राजा लोग नष्ट हो गये तो कृष्णचन्द्रने विचार किया कि पृथ्वीका पूरा भार अभी नहीं उतरा है। यादव लोग धनसम्पन्न होकर परम उद्दण्ड हो रहे हैं। ये लोग स्वेच्छाचारी होकर संसारको पीड़ा पहुँचावेंगे। बाँसके झुण्डमें परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्निसे जैसे सब बाँस जड़-मूलसे भस्म हो जाते हैं, वैसे ही इस यदुकुलमें परस्पर कलह कराके मैं

उसी अग्निसे इन सबका संहार कराऊँगा और पृथ्वीपर शान्ति स्थापित करके अपने परम धाम चला जाऊँगा। इस प्रकार संकल्प करके सर्वव्यापक ईश्वरने विप्रशापके बहाने अपने कुलका संहार किया और अन्तमें वे अपने परमधामको चले गये। राजा परीक्षितने पूछा—हे द्विजश्रेष्ठ! विप्रशापकी वह कथा आप मुझे सुनाइये। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज! मन लगाकर सुनिये, मैं ब्रह्मशापकी कथा सुना रहा हूँ। भगवानके मनमें किसी बहानेसे यादववंशका विनाश करनेकी इच्छा हुई। उस समय उन्होंने अनेकानेक पुण्य कर्म किये। विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषिगण कृष्णचन्द्रसे बिदा होकर द्वारकाके समीप ही पिण्डारकनामक पवित्र तीर्थमें कुछ कालतक रहकर तप करनेके विचारसे गये। वहाँ यादवोंके अनेक ढीठ बालक खेल रहे थे। वे लोग जाम्बवतीके पुत्र साम्बको स्त्रियोंके कपड़े पहनाकर ऋषियोंके पास ले गये और बनावटी नम्रता दिखाते हुए ऋषियोंके चरण छूकर कहने लगे—हे विप्रगण! यह श्यामलोचना स्त्री गर्भवती है। इसका प्रसवकाल निकट है। लज्जाके मारे यह आप लोगोंसे कुछ पूछ नहीं सकती। इस कारण हम लोगोंके द्वारा यह पूछती है कि मेरे गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा या कन्या जन्म लेगी? आप लोग तो सर्वज्ञ हैं। कृपापूर्वक बतलाइये। हे राजन्! बालकोंको उपहास करते देखकर ऋषियोंको क्रोध आ गया और उन्होंने कुपित होकर कहा—अरे मन्दमति बालको! यह तो एक लोहेका मुसल जनेगी और उसीसे तुम्हारे कुलका विनाश होगा। यह घोर शाप सुनकर वे

बालक बहुत डर गये। उन्होंने साम्बका बनावटी पेट खोलकर देखा तो वास्तवमें एक लोहेका मुसल निकला। चिन्तासे विह्वल हो और मुसल लेकर बालक अपने घर गये। उन्होंने यादवोंकी सभामें ले जाकर वह मुसल रख दिया और राजा उग्रसेनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। न टलनेवाला विप्रशाप सुनकर द्वारकावासी बहुत आश्चर्यमें पड़े और भयभीत हुए। राजा उग्रसेनने सबकी सम्मतिसे उस मुसलको खूब महीन चूर्ण करके समुद्रके जलमें फेंकवा दिया। मुसलका एक छोटा-सा टुकड़ा चूर्ण नहीं हुआ तो उसे भी फेंकवा दिया। उस छोटेसे टुकड़ेको एक मछली निगल गयी और वह चूर्ण समुद्रकी तरंगोंसे बहकर किनारे लगा। उसी चूर्णसे समुद्रके किनारे बहुतसे मूँजके पौधे उत्पन्न हुए और टुकड़ा निगलनेवाली मछली मछुओंके जालमें पकड़ी गयी। मछलीका पेट फाड़नेसे वह टुकड़ा निकला और एक वधिकने उस लोहेके बाणके दो गांसी तैयार कीं। सर्वज्ञ कालरूप भगवान सब जानते थे और विप्रशापको मेटनेकी सामग्री रखते थे। किन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया। उन्होंने स्वयं उसका अनुमोदन ही किया।

द्वितीय अध्याय

वसुदेव और नारदका संवाद

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! नारद श्रीकृष्णके चरणदर्शनकी लालसासे प्रायः गोविन्दके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकामें ही रहा करते थे। हे राजन्! यह तो ठीक ही है। क्योंकि कौन इन्द्रियसम्पन्न अर्थात् देहधारी ऐसा होगा, जो श्रीहरिके अकुतोभय

चरणोंको न भजेगा ? एक दिन देवर्षि नारद वसुदेवके घर गये और पूजनके उपरान्त सुखपूर्वक आसनपर बैठे। तब वसुदेवजी प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन् ! जिस तरह माता-पिताका आगमन सन्तानके लिए सुख देनेवाला होता है अथवा भगवद्भक्त महात्माओंका आगमन दीन-दुःखी जनोंके लिए कल्याणकारी होता है, उसी तरह आपका आगमन सब देहधारियोंके लिए मंगलकारी है। देवताओंके कामोंसे प्राणियोंको सुख-दुःख दोनों मिलते हैं, किन्तु आप जैसे साधुओंके आचरणोंसे सर्वदा सुख ही मिलता है। देवता लोग शरीरको छायाके तुल्य कर्मानुसार फल देनेवाले हैं, परन्तु दीनोंपर दया करनेवाले साधु लोग निरपेक्ष भावसे सब लोगोंका कल्याण करते हैं, चाहे उनको कोई भजे या न भजे। हे ब्रह्मन् ! जिसको सुनकर मनुष्य सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर शान्ति पाता है, वही भागवत धर्म मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ। मैंने पूर्वजन्ममें मोक्षके लिए नहीं, वरन् पुत्र पानेके लिए अनन्त श्रीहरिकी आराधना की थी। मुझे ईश्वरकी मायाने मोहित कर लिया था। अब आप कृपापूर्वक ऐसी शिक्षा दीजिये, जिससे मैं इस अनेक प्रकारके दुःख और भयसे परिपूर्ण संसारसे सहजमें मुक्त हो सकूँ। शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! वसुदेवका प्रश्न सुनकर देवर्षि नारद हरिगुण स्मरण करके प्रसन्नतापूर्वक बोले—हे यादवश्रेष्ठ ! भागवत धर्मका श्रवण, पठन, चिन्तन, आदर और अनुमोदन करनेसे देवद्रोही और विश्वविरोधी प्राणी भी शीघ्र ही पवित्र हो जाते है। मैं तुमको एक प्राचीन और प्रसिद्ध इतिहास सुनाता हूँ। इस कथामें ऋषभदेवके पुत्र महा-

योगी ऋषियोंके साथ महात्मा राजा जनकका संवाद है। उसमें भागवत धर्मका पूर्णरूपसे निर्णय हुआ है। स्वायम्भुवके प्रियव्रत-नामक पुत्र हुए। प्रियव्रतके अग्नीध्र और अग्नीध्रके राजा नाभि हुए। नाभिके परम प्रसिद्ध ऋषभदेवजी उत्पन्न हुए। कहा जाता है कि मोक्षधर्मका उपदेश देनेके लिए साक्षात् वासुदेव हरिके अंशसे ऋषभदेवका अवतार हुआ था। परमहंस ऋषभदेवके सौ पुत्र हुए। वे सब ब्रह्मविद्याके पूर्ण ज्ञाता थे। उनमें सबसे बड़े भरतजी नारायणके परमभक्त थे। इस देशका नाम उनके ही नामानुसार भारतवर्ष पड़ा है। सब प्रकारके ऐश्वर्य भोगनेके उपरान्त वे सर्वत्यागी होकर श्रीहरिकी आराधनाके लिए तपोवनको चले गये और क्रमशः तीन जन्मतक ईश्वरभजन करके परमपदको प्राप्त हुए। ऋषभजीके सौ पुत्रोंमें नौ तो इस भारतवर्षके अन्तर्गत नव खण्डोंके राजा हुए और इक्यासी कर्मतन्त्रके प्रणेता आचार्य हो गये। शेष नौ पुत्र परमार्थका निरूपण करनेवाले आत्मविद्याके अभ्यासमें श्रम करनेवाले दिगम्बर तथा आत्मविद्याविचक्षण महाभाग मुनि अर्थात् परमहंस हुए। उनके नाम ये हैं—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड़, चमस और करभाजन। ये मुनिगण समग्र स्थूल और सूक्ष्म चराचर जगत्को अपनेसे अभिन्न जानकर ब्रह्ममय देखते हुए इच्छानुसार विचरण करने लगे। एक समय ये मुनि लोग राजा निमिके यज्ञस्थलमें जा पहुँचे। ऋषि लोग उनका यज्ञ करा रहे थे। इन तेजस्वी मुनियोंको देखते ही सब लोग उठ खड़े हुए। राजा जनकने इन मुनियोंको नारायण-परायण जानकर अत्यन्त आदरसे पूजन

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया और जब ये लोग सुखपूर्वक आसनपर बैठे तब राजाने इन लोगोंसे कहा—हे विप्रगण! भगवान जिस धर्मसे प्रसन्न होकर शरणागत व्यक्तिको आत्मसमर्पण कर देते हैं, वह भागवत धर्म आप मुझे सुनाइये। नारदजीने कहा—हे वसुदेव! वे महात्मा मुनिगण सदस्यों और ऋत्विक्गणके सामने पृथक्-पृथक् इस प्रकार कहने लगे। पहिले कविने कहा—मैं जानता हूँ कि इस संसारमें अच्युत श्रीहरिके चरण-कमलोंकी नित्य उपासना करना ही मंगलकारी है। इससे सांसारिक यंत्रणाका कोई भय नहीं रहता। भगवानने आत्मतत्त्व जाननेके लिए जो उपाय अपने मुखसे कहे हैं, वे ही भागवत धर्म हैं। इस भागवत धर्मके मार्गमें चलनेवालोंको चाहिये कि मन, वाणी, काया, सम्पूर्ण इन्द्रिय, बुद्धि और अहंकार द्वारा अनुगत स्वभावसे जो-जो कर्म करे, उन सभीको परमेश्वर नारायणको अर्पण करता रहे। भेदभावमयी मायासे ही भयकी उत्पत्ति होती है। इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि ईश्वरको ही गुरु और आत्मा मानकर दृढ़ और अनन्य भक्तिसे भजे। श्रीविष्णुके मंगलमय जन्म-कर्मोंकी कथा सुनते और संकीर्तन करते हुए स्वच्छन्दतासे घूमना चाहिये। जो लोग इस प्रकार अपने परमप्रिय श्रीहरिके गुणों और नामोंका कीर्तन करते हैं, उनका मन प्रेमके रसमें मग्न हो जाता है। वे आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, ज्योतिश्चक्र, चराचर प्राणी, दसों दिशा, वृक्ष आदि, नदियाँ, समुद्र, यहाँतक कि प्राणीमात्रको विराट पुरुषका शरीर मानकर प्रणाम करते हैं। वे श्रीहरिसे भिन्न कुछ भी नहीं देखते और इस तरह परम शान्ति पाते हैं। राजा जनकने कहा—हे ब्रह्मन्! अब

आप लोग कृपा करके यह बताइये कि किस मनुष्यको भागवत कहना चाहिये ? उसके लक्षण बताइये। उत्तरमें हरिनामक मुनिने कहा—जो कोई अपनेमें भगवानकी भावना रखकर सब प्राणियोंमें अपनेको और अपने भगवत्स्वरूप आत्मामें सब प्राणियोंको देखता है, वही उत्तम भागवत है। जो लोग भेदभाव रखते हैं, वे मध्यम हैं। जो लोग प्रतिमामें ही श्रद्धापूर्वक श्रीहरिकी पूजा-उपासना करते और भगवद्भक्त या अन्य किसी वस्तुमें हरिकी भावना और आराधना करते, वे साधारण हैं। जो लोग समग्र विश्वको विष्णुकी ही माया मानकर किसीसे द्वेष नहीं रखते, न कोई कामना ही करते, वे उत्तम भागवत हैं। जो लोग श्रीहरिके स्मरणमें मग्न रहकर संसारके जन्म-मरण, भूख-प्यास आदि भावों या धर्मोंसे मोहित नहीं होते, वे श्रेष्ठ भागवत हैं। जिनके चित्तमें कर्मबीजरूप कामना उत्पन्न नहीं होती और जिनके एकमात्र अवलम्बन वासुदेव ही हैं, वे ही श्रेष्ठ भागवत हैं। जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जातिसे जिनको अहंभाव नहीं होता, वे ही हरिको प्रिय हैं। जिनका हृदय कभी कृष्णनामका त्याग नहीं करता, वे ही श्रेष्ठ भागवत हैं।

तृतीय अध्याय

राजाके अन्य प्रश्नोंका मुनियों द्वारा उत्तर

राजा जनकने पूछा—हे ऋषिवरों ! परमपुरुष परमेश्वरकी माया मायावी लोगोंको भी मोहित करनेवाली है। उस मायाका हाल मैं जानना चाहता हूँ। कृपापूर्वक आप लोग स्पष्टरूपसे

मुझे बताइये। क्योंकि हम संसारतापसे अत्यन्त कष्टमें हैं। यह प्रश्न सुनकर अन्तरिक्षनामक मुनिने कहा—सर्वभूतमय तथा सर्वव्यापक आदि पुरुषने अपने ही अंशस्वरूप जीवोंके विषयभोग और उनकी मुक्तिके निमित्त इन महाभूतोंसे उत्कृष्ट और निकृष्ट प्राणियोंकी सृष्टि की है। इस प्रकार अपने ही द्वारा उत्पन्न किये गये पञ्चतत्त्वोंसे रचित सब प्राणियोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रवेश करके वह ईश्वर मनरूपसे एक और इन्द्रियसमूहरूपसे अपने दस विभाग करके सब विषयोंका भोग करता है। वह प्रभु अपने ही द्वारा परिचालित गुणोंके द्वारा सब विषयोंका भोग करते हुए निज सृष्ट शरीरको आत्मा मानकर उसीमें आसक्त होता है। देहधारी जीव सब इन्द्रियोंके द्वारा वासनाघटित कर्म करनेके कारण दुःखमय कर्मफल भोगता हुआ इस संसारमें एक योनिसे दूसरी योनिमें घूमता है। यह पुरुष अनेक अमंगलोंसे परिपूर्ण कर्मगतियोंको पाकर अवशभावसे प्रलयकाल पर्यन्त जन्म-मृत्युके दुःख भोगता रहता है। हे राजन्! जब उपादानरूप पञ्चतत्त्वोंके नाशका समय निकट आ जाता है, तब अनादि और अनन्त 'काल' स्थूल-सूक्ष्मरूप कार्यको अव्यक्तकी ओर खींचता है। जब प्रलयकाल उपस्थित होगा, तब सौ वर्षतक पृथ्वीपर भयानक अनावृष्टि होगी और प्रचण्ड सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे तीनों लोकोंको तपावेंगे। उस समय पातालतलमें अवस्थित अनन्त शेषनागके मुखसे आग निकलने लगेगी और प्रचण्ड आँधीसे वह ऊपरकी ओर बढ़कर चारों ओर फैलेगी। फिर संवर्तकनामक प्रलयकालके मेघ हाथीकी सूँड़के समान मोटी धाराओंसे सौ वर्ष तक निरन्तर जल बरसाते रहेंगे।

जिससे यह ब्रह्माण्डरूप स्थूल विराट शरीर जलमें लीन हो जायगा। तब वैराज पुरुष बिना ईंधनकी आगके समान सूक्ष्म कारण अव्यक्तमें लीन हो जायगा। पृथ्वीका गन्धगुण वायु हर लेगा। तब पृथ्वी जलरूप हो जायगी। वह जल रसगुणहीन होकर तेजरूप हो जायगा। तेज रूप गुणके अभावसे वायुमें और वायु भी स्पर्शगुणके अभावसे अपने कारण आकाशमें लीन हो जायगा। इन्द्रियोंके साथ बुद्धि राजस अहंकारमें और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंके साथ मन सात्त्विक अहंकारमें और त्रिविध अहंकार अपने गुणोंके साथ महत्तत्त्वमें लीन हो जायगा। महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रकृतिमें लीन हो जायगा। तब सारा विश्वप्रलयके गर्भमें विराजेगा। हे राजन्! मैंने आपके प्रश्नके अनुसार भगवानकी सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाली त्रिगुणमयी मायाका वर्णन कर दिया। अब कहो, और क्या सुनना चाहते हो? राजा जनकने कहा—हे महर्षिगण! अत्यन्त विकट ईश्वरकी इस मायासे किस प्रकार अनायास मुक्ति मिल सकती है। यह बात मुझे कृपापूर्वक बताइये। तब प्रबुद्धनामक मुनिने कहा—मनुष्य लोग स्त्री-पुरुषसम्बन्धके बन्धनमें पड़कर सुखके लिए कर्म करते हैं, किन्तु फल विपरीत होता है। जन, गृह, पुत्र, बन्धु और पशु आदि सभी अनित्य हैं। जिस पुरुषको अपने मंगलकी इच्छा हो, उसे चाहिये कि वेदके पारगामी परब्रह्ममें मग्न और शान्तशील गुरुकी शरण ले। गुरुको ही आत्मा और इष्टदेव समझकर निष्कपटभावसे सेवा करे और उनसे भागवत धर्म सीखे। सब विषयोंसे मनको हटाकर एकाग्र होना, साधुसंग, दरिद्रोंपर दया,

समान लोगोंके साथ मित्रता, श्रेष्ठ व्यक्तियोंका सम्मान, स्वधर्मका आचरण, क्षमा, मौनभाव, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शीतउष्ण और सुख-दुःख आदि सहन करना, ईश्वरस्वरूपका चिन्तन, मुक्ति, अभिमानशून्यता, पवित्र वस्त्र पहनना, सन्तोष, भगवत् शासनमें श्रद्धा, अन्य शास्त्रोंकी अनिन्दा, मन वाणी और कर्मोंका संयम, सत्य बोलना, शम-दमका अभ्यास करना, हरिगुणकीर्तन, श्रवण और ध्यान, हरिकी प्रसन्नताके लिए कर्म करना, योग, दान, तप जप, आत्माको प्रसन्न करनेवाला सदाचार और स्त्री-गृह-पुत्र शरीरको भी परमेश्वरको अर्पण कर देना आदिकी शिक्षा गुरुसे प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार पूर्वोक्त भागवत धर्मोंको सीखते हुए भक्तिपरायण होकर अनायास ही मनुष्य दुस्तर मायासे मुक्त हो सकता है। राजाने पूछा—आप लोग यह बताइये कि नारायणनामक परब्रह्म परमात्मामें किस उपायसे किस प्रकार निष्ठा होती है। उत्तरमें पिप्पलायनने कहा—हे नरेन्द्र! जो इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहारका कारण है किन्तु स्वयं कारणसे शून्य हैं, जो स्वप्न जागरण और सुषुप्तिसंज्ञक आन्तरिक दशाओंमें और समाधि आदि बाह्य दशाओंमें सत्‌रूपसे वर्तमान हैं। देह इन्द्रिय प्राण और मन आदि जिनसे सचेत होकर अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वे ही परमतत्त्व नारायण हैं। इस प्रकारके जो पद्मनाभ हैं, उनकी चरणसेवामें रहकर विषयोंकी वासना छोड़कर मनका मैल नष्ट कर चुकनेपर उस परब्रह्ममें निष्ठा होती है। राजाने कहा—जिससे विशुद्ध होकर पुरुष इस लोकमें शीघ्र ही सब कर्म छोड़कर निवृत्तिसे उत्पन्न परमज्ञान प्राप्त करता है, वह

'कर्मयोग' भी कृपापूर्वक कहिये। मैंने पहले अपने पिता इक्ष्वाकुसे ब्रह्माके पुत्र सर्वज्ञ सनकादिकोंसे यही विषय पूछा था, किन्तु उन्होंने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इसका भी कारण बतलाइये। तब आविर्होत्रनामक मुनिने कहा—कर्म, अकर्म और विकर्म ये सब वेदवाक्य हैं—पुरुषवाक्य नहीं हैं। वेद भी ईश्वरसम्भूत हैं। इसलिए विवेकी पुरुष उसके कर्मकाण्डमें मोहित होते हैं। वेदका तात्पर्य दुर्ज्ञेय है। क्योंकि उसमें सब परोक्षवाद है। जैसे बालकको अनेक प्रिय वाक्योंसे बहलाकर कडुई औषधि पिलायी जाती है, वैसे ही वेद भी बालक सदृश अज्ञानियोंको परोक्षवादसे स्वर्गादि फल दिखाकर कर्मोंसे मुक्तिके लिए यज्ञादि कर्म करनेका उपदेश करता है। पहलेसे ही कर्मत्याग नहीं हो सकता। जबतक जितेन्द्रिय होकर कर्मत्यागका अधिकारी न हो तबतक वेदविहित कर्म न छोड़ने चाहिये। जो अजितेन्द्रिय एवं अज्ञ व्यक्ति वेदविहित कर्म नहीं करता, वह बार-बार जन्म-मरणको प्राप्त होता है। मनुष्यको चाहिये कि निर्लिप्त होकर ईश्वरार्पणबुद्धिसे वर्णाश्रमानुसार वेदविहित कर्म करे। इसीसे नैष्कर्म्यसिद्धि मिलती है। जो व्यक्ति अपने हृदयके बन्धन काटनेकी इच्छा करे, उसे चाहिये कि वेदोक्त विधिके अनुसार तन्त्रोक्त विधिसे केशवकी पूजा करे। सेवासे गुरुका अनुग्रह प्राप्त करके उसकी बतायी हुई पूजाप्रणालीके अनुसार अपनी इच्छाके अनुरूप हरिमूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक महापुरुषकी पूजा करे। शरीर तथा मनको शुद्ध करके प्रतिमाके सामने बैठकर प्राणायाम और भूतशुद्धि आदिसे शरीरके भीतरी भागको शुद्ध करता हुआ

रक्षा करे। फिर प्रतिमामें श्रीहरिकी पूजा करे। पुष्प आदिको साफ करके पृथ्वीको बहार-झाड़ और जल छिड़ककर चित्त एकाग्र करके बैठे। फिर प्रतिमाको भी धोकर पूजन योग्य कर दे। तदनन्तर पाद्य-अर्घ्य आदिके पात्र यथास्थानपर रखकर अङ्गन्यास कर-न्यासके साथ मूलमन्त्र द्वारा केशवकी पूजा करे। पार्षदगणके साथ साङ्गोपाङ्ग हरिमूर्ति स्थापित करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, स्नान, वस्त्राभूषण, चन्दन आदि सुगन्ध, माला, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उन्हें चढ़ानेके मंत्र पढ़ता हुआ पूजन करे। इस प्रकार षोडशोपचारसे श्रीहरिकी पूजा करनेके बाद स्तुति, प्रदक्षिणा और प्रणाम करे। तब तन्मय होकर हरिमूर्तिका पूजन करके श्रद्धापूर्वक निर्माल्यको मस्तकसे लगावे और पूजित मूर्तिको यथास्थान रख दे। फिर विसर्जन करके पूजा समाप्त करे। इस प्रकार तन्त्रोक्त योगके अनुसार प्रतिमामें, अग्निमें, सूर्यमें, जल आदिमें अथवा अपने हृदयमें ही आत्मारूप ईश्वर हरिकी पूजा करनेसे कर्मबन्धनसे शीघ्र मुक्ति मिल जाती है।

चतुर्थ अध्याय

नारायणके अवतारोंका वर्णन

राजा जनकने पूछा—हे ऋषिगण! भगवान हरिने पृथ्वी-पर अवतार लेकर जिस-जिस जन्ममें जो-जो कर्म किये हैं, कर रहे हैं और करेंगे, वे सब कृपापूर्वक मुझसे कहिये। यह सुनकर द्रविड़नामक मुनिने कहा—हे राजन्! अखिलशक्ति सम्पन्न ईश्वरके अनन्त गुणोंकी गणना नहीं की जा सकती। अपने उत्पन्न किये

पञ्चतत्त्वोंसे इस ब्रह्माण्डरूप विराट शरीररूपी पुरकी रचना करके अपने अंश चेतनरूप जीवात्माके द्वारा उसमें प्रवेश करनेसे आदिदेव नारायणको पुरुष कहते हैं। यह त्रिभुवन-स्थान उनका विराट शरीर है। इस जगत्‌की सृष्टिके लिए जिनके रजोगुणसे पहले ब्रह्माजीने जन्म लिया, पालनके निमित्त सत्त्वगुणसे यज्ञफलदाता और जगत्‌के पालनकर्ता विष्णुका जन्म हुआ और सृष्टिका नाश करनेके हेतु जिनके तमोगुणसे रुद्रकी उत्पत्ति हुई, वे ही आदि पुरुष नारायण हैं। दक्ष प्रजापतिकी कन्या और धर्मकी पत्नी 'मूर्ति'के गर्भसे शान्तशील श्रेष्ठ ऋषि हरिके अंशावतार नर और नारायणने जन्म लिया। उन्होंने कर्मत्यागरूप धर्मका उपदेश और स्वयं आचरण भी किया। उनका उग्र तप देखकर इन्द्रको शंका हुई कि ये तपोबलसे मेरा पद लेना चाहते हैं। इस आशंकासे इन्द्रने उनके तपमें विघ्न डालनेके लिए अप्सरा-वसन्त आदि अनुचरोंके साथ कामदेवको भेजा। उनकी महिमा न समझनेके कारण कामदेव अपने अनुचरोंके साथ बदरिकाश्रमको गया और अप्सराओं, वसन्त और मन्दवायुकी सहायतासे कामिनी-कटाक्षरूप बाणोंसे उन्हें विचलित करनेकी चेष्टा करने लगा। गर्वरहित और शान्तमूर्ति आदिदेव नारायणने इन्द्रका अपराध समझकर भी कोप नहीं किया और शापके भयसे काँपनेवाले कामदेवसे हँसकर कहा—हे शक्तिशाली मदन! डरो मत। हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। इस आश्रमको शून्य करके मत जाओ। हे राजन्! नारायणने जब उन लोगोंको अभयदान दिया, तब वे उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर नारायणने

योगद्वारा निर्मित श्रेष्ठ सुन्दरी स्त्रियाँ उन्हें दिखायीं। लक्ष्मी-सदृश रूपवती रमणियोंको देखकर इन्द्रके सब अनुचर विस्मित और मुग्ध हो गये। तब नारायणने इन्द्रके अनुचरोंसे हँसकर कहा—इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी रमणीको चुनकर ले जाओ। वह स्वर्गलोकका आभूषण होगी। फिर नारायणकी इच्छाके अनुसार उन इन्द्रके अनुचरोंने अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको चुन लिया और प्रभुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये। इन्द्रकी सभामें पहुँचकर उन्होंने इन्द्रको सब वृत्तान्त सुनाया तो नारायणका प्रभाव समझकर इन्द्रको बड़ा विस्मय और भय हुआ। हे नरेन्द्र! इसके सिवा अच्युतने ही हंसरूपसे आत्मज्ञानका वर्णन किया। दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, हमारे पिता भगवान ऋषभदेव—ये सब निष्काम धर्मका प्रचार करनेवाले परमहंस भगवान विष्णुके ही अंशावतार हैं। जगत्के हितके लिए इन रूपोंसे भगवान प्रकट हुए हैं। मधुदैत्यको मारनेवाले श्रीहरिने हयग्रीव अवतार लेकर दानव द्वारा अपहृत वेदोंका उद्धार किया। प्रलयकालमें मत्स्य अवतार लेकर मनु, पृथ्वी और समग्र औषधियोंको विपत्तिसे बचाया। कच्छप-अवतारमें अमृतप्राप्तिके लिए समुद्र मथते समय नीचे धँसनेवाले मन्दराचलको पीठपर रखकर ऊपर उठाया। वाराह-अवतारमें रसातलसे पृथ्वीको ऊपर लाते समय दितिके पुत्र हिरण्याक्षका वध किया और ग्राहसे पीडित गजराजको बचाया। नृसिंह-अवतारमें गऊके खुरसे बने गढ़ेमें डूबनेवाले बालखिल्य ऋषियोंको भगवानने उबारा। वृत्रासुरके वधसे लगी हुई ब्रह्महत्याके कष्टसे इन्द्रका

उद्धार किया। असुरभवनसे देवनारियोंका उद्धार करके उन्होंने असुरेन्द्र हिरण्यकशिपुका वध किया। भगवानने सब मन्वन्तरोंमें विविध अवतार लेकर तीनों लोकोंकी रक्षा की है। वामन-अवतारमें बलिसे तीन पग भूमि माँगनेके बहाने तीनों लोकका राज्य लेकर इन्द्रको दिया और देवताओंको सुखी किया। हैहय-कुलको भस्म करनेके लिए परशुराम अवतार लेकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियशून्य कर दिया। रामावतारमें समुद्रपर सेतु बाँधा और लंकाके साथ सपरिवार रावणको नष्ट कर दिया। वे ही अजन्मा श्रीहरि इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिए यादव वंशमें उत्पन्न हुए हैं। भगवान कृष्ण वे सब अद्भुत कर्म करेंगे, जिन्हें देवगण भी नहीं कर सकते। आगे बुद्ध अवतार लेकर यज्ञके अधिकारसे रहित शूद्रप्राय लोगोंको अहिंसावादसे मोहित करेंगे। फिर कलियुगके अन्तमें निष्ठुर और कुकर्मी यवन नरपतियोंका नाश करेंगे। महायशस्वी विश्वनाथ श्रीहरिके ऐसे अनेक अवतार और चरित्र हैं। ये मुख्य अवतार और चरित्र कहे गये हैं।

पञ्चम अध्याय

भक्तिहीन लोगोंकी गति और पूजाविधिका वर्णन

राजा जनकने पूछा—हे ऋषिगण! जो लोग भगवान हरिके भजनसे विमुख हैं, उन लोगोंकी अन्तमें क्या गति होती है? सो मुझे बताइये। चमसनामक मुनिने कहा—हे नरवर! भगवान आदि पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्रवर्णकी उत्पत्ति हुई है। इन वर्णोंमें उत्पन्न कोई व्यक्ति

यदि आदि पुरुष ईश्वरको नहीं भजता अथवा अनादर करता है तो वह स्थानसे भ्रष्ट होकर दुर्गतिको प्राप्त होता है। उसका अधः-पतन अनिवार्य है। आत्माभिमानी मूर्ख लोग दोष न समझते हुए बलिके बहाने पशुहिंसा करते हैं। वे दुष्ट सम्पत्ति, रूप एवं बल आदिके मदसे अन्धे हो जाते और ईश्वर तथा उनके भक्तोंका अनादर करते हैं। वासुदेवसे विमुख इस प्रकारके लोग इच्छा न होनेपर भी कालसे विवश होकर अत्यन्त परिश्रमसे प्राप्त देह-गेह, पुत्र, परिवार, इष्ट-मित्र, सम्पत्ति आदि यहीं छोड़कर नरकगामी होते हैं। राजा जनकने पूछा—हे विप्रगण! अब आप कृपापूर्वक यह बतलाइये कि भक्तजन किस समय, किस आकार और किस वर्ण तथा किस नामसे एवं किस विधिसे भक्तवत्सल भगवानकी पूजा करते हैं! यह सुनकर करभाजन नामक मुनिने कहा—हे राजन्! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंमें भिन्न-भिन्न वर्ण, भिन्न-भिन्न नाम, भिन्न-भिन्न आकार और भिन्न-भिन्न विधियोंसे भगवान नारायणकी पूजा की जाती है। सत्ययुगमें शुक्ल वर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी और बल्कल-कृष्णाजिन उपवीत, अक्षमाला, दण्ड और कमण्डलुसे सुशोभित भगवान नारायणदेव अवतीर्ण हुए। उस समयके शान्तस्वभाव, वैररहित, सबसे मित्रता करनेवाले और समदर्शी मनुष्यगण तप शम दम आदिके द्वारा उनकी आराधना करते थे। वे लोग हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि नामोंसे उनको भजते और पूजते हैं। त्रेता युगमें रक्त वर्ण, चतुर्भुज, त्रिमेखलाधारी, सुवर्णसदृश चमकीले वर्णके केशोंसे सुशोभित, वेदत्रयीरूप

और स्रुक्-स्रुवा आदि चिह्नोंसे युक्त सर्वदेवमय हरि अवतार लेते हैं। तब ब्रह्मवादी मनुष्यगण त्रिवेदविहित कर्मके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हैं। विष्णु, यज्ञ, पृश्निपुत्र, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त, उरुगाय आदि नामोंसे भगवानको लोग पूजते हैं। द्वापर युगमें श्यामवर्ण, पीताम्बरभूषित, हाथोंमें शंख, पद्म और चक्रादि आयुध लिये, श्रीवत्सादि चिह्न धारण किये भगवान अवतार लेते हैं। उस समय धार्मिक ब्रह्मवादी मनुष्य श्रीहरिकी आराधना वेदोक्त और तंत्रोक्त विधियोंसे करते हैं। वे लोग वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ऋषि, विश्वेश्वर, विश्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वरूप और नामोंसे सम्बोधित करते हुए प्रणाम और स्तुति करते हैं। कलियुगमें भगवान कृष्ण वर्ण, कृष्ण कान्तियुक्त और अङ्ग-उपाङ्ग, अस्त्र-शस्त्र तथा पार्षदोंसे युक्त होकर अवतार लेते हैं। उस समय विवेकी लोग कीर्तनमय यज्ञोंसे कृष्णभगवानको भजते और पूजते हैं। वे लोग प्रणतपालक, ध्यान योग्य, शरण्य, वांछापूरक आदि नामोंसे भगवानको पुकारकर उनकी स्तुति करते और उनको प्रणाम करते हैं। हे राजन्! गुणग्राहक श्रेष्ठजन सब युगोंकी अपेक्षा कलियुगको ही आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। क्योंकि इसमें केवल कीर्तन और मननसे सहज हीमें सब पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं। यह सुविधा और युगोंमें नहीं है। हे महाराज! कलियुगमें किसी-किसी प्रदेशमें नारायणपरायण लोग जन्म लेंगे। अधिकतर द्रविड़देशमें बहुतसे भगवद्भक्तजन उत्पन्न होंगे। द्रविड़देशमें ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी और महापवित्र प्रतीची आदि नदियाँ बहती हैं।

हे नरेश ! जो लोग उनके पवित्र जलका स्पर्शमात्र करते हैं, उनका हृदय शुद्ध हो जाता और वे वासुदेवके दृढ़ भक्त हो जाते हैं। हे राजन् ! जो व्यक्ति भेदभाव छोड़कर मन वाणी और कायासे शरणागतपालक श्रीहरिके चरणोंकी शरणमें रहता है वह देव, ऋषि, पितृगण, कुटुम्ब या अन्यान्य मनुष्योंका ऋणी या किङ्कर कदापि नहीं रहता। अन्य विषयोंकी चिन्ता छोड़कर भगवानके चरण-कमलोंकी सेवा करनेवाला भक्त यदि भूलसे कभी निषिद्ध कर्म भी कर बैठता है तो परमेश्वर हरि उसके हृदयमें प्रकट होकर उसके सभी पापोंको मिटा देते हैं। नारदजीने वसुदेवजीसे कहा—इस प्रकार भागवत धर्म सुनकर उपाध्यायके साथ राजा जनक परम प्रसन्न हुए और उन्होंने जयन्तीनन्दन मुनियोंकी यथाविधि पूजा की। इसके बाद ऋषिगण सबके सामने ही अन्तर्हित हो गये। राजा जनक मुनियोंके कथनानुसार भागवत धर्मका पालन करते हुए उत्तम गतिको प्राप्त हुए। हे महाभाग वसुदेव ! तुम भी श्रद्धापूर्वक संसारका सङ्ग छोड़कर भागवत धर्मके परम मङ्गलमय मार्गसे चलोगे तो परमपद पाओगे। हे वसुदेव ! तुम अव्यय परमेश्वरको पुत्र ही मत समझ रखना। दुष्टोंका दमन करने और भूमिका भार हरण करनेके लिए इनका अवतार हुआ है। इस पवित्र इतिहासका अनुशीलन करने और इसे हृदयमें धारण करनेसे मनुष्य मोहरहित और पापमुक्त होकर मोक्षपद प्राप्त करता है।

षष्ठ अध्याय

उद्धव और भगवानकी वार्ता आरम्भ

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! एक समय ब्रह्माजी अपने पुत्रों और देवताओंको साथ लेकर द्वारकापुरीमें गये। भगवानका मनोरंजक और परम सुन्दर शरीर देखना ही उनकी यात्राका उद्देश्य था। पहले तो उन लोगोंने आकाशमें विमानोंपर बैठकर कृष्णचन्द्रकी छवि निहारते हुए फूलोंकी वर्षा की। तदनन्तर वे लोग ललित वाक्योंसे भगवानकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर देवमण्डली-मण्डित शंकर सहित भगवान ब्रह्माने प्रणाम करके हरि कृष्ण-चन्द्रसे कहा—हे सर्वव्यापक विभो ! पहले हम लोगोंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिए प्रार्थना की थी। इस समय हमारी प्रार्थनाके अनुसार आपके द्वारा सब काम पूरे हो चुके हैं। हे ईश्वर ! आपके चरित्रका श्रवण और कीर्तन करके कलियुगमें सब साधु मनुष्य अनायास ही अज्ञानसे मुक्त हो सकेंगे। हमारी समझमें अब तो कोई देवकार्य आपके लिए शेष नहीं रहा। अतएव यदि उचित समझें तो अब अपने परमधाम वैकुण्ठलोकको चलिये। श्रीभगवानने कहा—हे देवेश ! आपने जो कुछ कहा, वह ठीक है। मैं पहले ही ऐसा विचार कर चुका हूँ। मैं आपके सब काम कर चुका और पृथ्वीका भार भी उतार दिया। अब तो यदुकुलको नष्ट करना ही बाकी है। यदि मदोन्मत्त यादववंशका विनाश किये बिना मैं परमधामको चला जाऊँ तो अवश्य ही यह सागरकी भाँति उमड़कर लोकोंका नाश कर देगा। अब विप्रशापसे शीघ्र ही इस वंशका विनाश होनेवाला है। इसका अन्त हो जाने-

पर मैं शीघ्र ही वैकुण्ठ गमन करूँगा। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! भगवानका वचन सुनकर ब्रह्मा देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये। तदनन्तर द्वारकामें महाउपद्रव होने लगे। भगवानने अपने निकट आये हुए यदुकुलके बड़े-बूढ़े लोगोंसे कहा—नगरमें सर्वत्र घोर उपद्रव होते दिखाई पड़ रहे हैं। हमारे कुलको ब्राह्मणोंका दुरत्यय शाप भी हो चुका है। इसलिए यदि प्राणोंकी रक्षा करनी है तो हम लोगोंको यहाँ रहना उचित नहीं है। आओ, अब शीघ्र हम परम पवित्र प्रभास तीर्थको चलें। दक्षके शापसे होनेवाले क्षयरोगसे पीडित चन्द्रमाकी रोगपीड़ा जिसमें स्नान करनेसे तुरन्त नष्ट हो गयी थी, उसी महामहिमा-सम्पन्न प्रभासतीर्थमें जाकर हमलोग स्नान करेंगे, देव-पितृतर्पण करेंगे और अनेक गुणयुक्त सुस्वादु उत्तम अन्न ब्राह्मणोंको खिलावेंगे। इस प्रकार उत्तम पात्रको धन दान करनेसे महाफल मिलेगा और हमलोग पाप मुक्त हो जायँगे। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! श्रीकृष्णकी ये बातें सुनकर यादव लोग प्रभासतीर्थ जानेके लिए प्रस्तुत हो गये। भगवानके वचन सुनकर और सबको प्रभासतीर्थ जानेको उद्यत देखकर सदैव कृष्णके अनुगत सेवक उद्धवजी एकान्तमें प्रभु कृष्णके पास पहुँचे और उनके चरणोंमें सिर झुका और हाथ जोड़कर अनेक तरहसे स्तुति करने लगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवकीनन्दन कृष्णचन्द्र एकाग्र-चित्त और प्रिय उद्धवसे बातें करने लगे।

सप्तम अध्याय

यदु और अवधूतका संवाद

भगवानने कहा—हे उद्धव ! तुमने जो अनुमान किया है, वह सत्य है। आजके सातवें दिन यदुकुलको निर्मूल करके मैं अपने धामको चला जाऊँगा। हे साधो ! मेरे छोड़ते ही यह मनुष्यलोक मंगलहीन हो जायगा। उसी क्षण कलियुग आकर यहाँ अपना प्रभाव फैलावेगा। अतएव हे भद्र ! मेरे परमधाम गमनके उपरान्त तुम कलिदूषित पृथ्वीतलपर मत रहना। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! महाभगवद्भक्त उद्धवजीने भगवानसे यह आदेश पाकर तत्त्व जाननेकी कामनासे फिर प्रणाम करके कहा—हे नाथ ! आपने मोक्षके लिए संन्यासरूप कर्मत्यागका जो उपदेश दिया, वह दुष्कर है। जिससे मैं क्रमशः योगसाधन करता हुआ शनैः शनैः आपके उपदेशानुसार चल सकूँ, वही सुगम रीति मुझे बताइये। मैं आपकी शरणमें हूँ। श्रीभगवानने कहा—लोकतत्त्वका विचार करनेवाले विचारशील विवेकी मनुष्य आत्माको विषयवासनाओंसे निवृत्त करके उसका उद्धार करते हैं। पशु आदिके शरीरमें और विशेषकर मनुष्यशरीरमें हित और अहित जाननेके लिए जीवका गुरु आत्मा ही है। क्योंकि यह आत्मा ही प्रत्यक्ष और अनुमानसे मुक्तिफल पाता या भोगता है। सांख्ययोगमें निपुण धीर पुरुषगण सब शक्तियोंसे परिवर्धित पुरुषरूपसे मुझको भिन्न-भिन्न प्रकाश्य वस्तुओंमें देखते हैं। मनुष्यशरीर ही मुझे सबसे बढ़कर प्यारा है। मैं तुमको इस सम्बन्धमें एक पुरातन इतिहास सुनाता हूँ। इसमें महातेजस्वी

यदुका एक महात्मा अवधूतसे संवाद वर्णित है। धर्मके ज्ञाता राजा यदुने एक समय निर्भय विचरणशील सत्-असत्का विवेक रखनेवाले युवा अवधूतको देखकर उनसे पूछा—हे ब्रह्मन्! हे अवधूत! विद्वान होकर भी आप एक छोटे बालककी भाँति कर्मासक्तिसे शून्य होकर विचरते रहते हैं। इस प्रकारकी निर्मल बुद्धि आपको कहाँसे और कैसे मिली? मैं देखता हूँ कि सौभाग्यशाली होकर भी आप निष्कर्मा और निःस्पृह हैं। आप विषयतापसे और मुक्त शान्त हैं। आप स्त्री-पुत्रादिसे रहित अकेले हैं। इसीसे आप विषयभोगसे रहित हैं। इस परमानन्द-लाभका कारण क्या है? कृपापूर्वक मुझे यह विषय बताइये। ब्राह्मणने कहा—हे राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे आप ही शिक्षा लेकर अनेक गुरु किये हैं। जिनको मैंने गुरु माना है, उन्होंने मुझे प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया है। मैंने ही अपनी बुद्धिके अनुसार हेय और उपादेयकी शिक्षा ली है। जिनसे विवेक-बुद्धि पाकर मुक्त अवस्थाका सुख भोगता हुआ मैं इस प्रकार विचरता हूँ। उनका परिचय इस प्रकार है—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, सागर, पतङ्ग, मधुकर, गज, मधुहारी, हरिण, मीन, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, ऊर्णनाभ (मकड़ा) और पेशस्कृत अर्थात् तितली ये मेरे गुरु हैं। इन्हीं चौबीस गुरुओंके व्यवहार या आचरणोंसे मैंने अपने ग्राह्य और अग्राह्य विषय सीखे हैं। अवधूतने कहा—हे यदु! मैंने पृथ्वीसे क्षमा और स्थिरता सीखी है। विवेकी पुरुषको चाहिये कि सत्पथसे कभी भी विचलित न

हो। साधु व्यक्ति सर्वदा परोपकारकी चेष्टा करे। दूसरोंके लिए निर्जन वनमें रहे। पृथ्वीके अंश पर्वतों और वृक्षोंसे शिक्षा ले। पृथ्वीपर लोग थूकते हैं, मल-मूत्र त्याग करते हैं, वृक्षको काटते हैं, जलाते हैं, उखाड़ डालते हैं। किन्तु वह वृक्ष अपने पत्ते, गोंद, छाल, जड़, फूल, फल, लकड़ी, कोयला और राखतकसे लाभ पहुँचाता है। वायुसे जो शिक्षा मुझे मिली है, वह भी सुनो। जैसे प्राणवायु केवल आहारमात्रकी अपेक्षा रखकर रूप-रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा नहीं रखता। वैसे ही मुनिको चाहिये कि ज्ञान नष्ट न होने और वाणी तथा मन व्यग्र न होने देनेके लिए नियत आहारमात्र करे और उसीमें सन्तुष्ट रहे। इन्द्रियप्रीतिके लिए रूप आदि विषयोंमें आसक्त न हो। जिस प्रकार बाह्य वायु गन्ध आदि गुणों और शीत-उष्ण आदि धर्मोंसे युक्त होकर भी वास्तवमें निर्लिप्त ही रहता है, उसी प्रकार आत्मज्ञानी योगी अहंभावके कारण विविध शारीरिक धर्मोंसे युक्त होकर भी अपनेको शरीरके गुण-दोषसे अतीत समझे और पूर्वसंस्कारवश विषयभोग करता हुआ भी निर्लिप्त रहे। घट आदिके भीतर रहकर भी आकाश जिस तरह अखण्ड, निर्लिप्त और व्यापक है उसी प्रकार योगीको भी चाहिये कि देहके भीतर स्थित होकर भी अपनी आत्माको ब्रह्मरूप और इसी कारण अखण्ड तथा व्याप्त देखकर भी निर्लिप्त देखे। उसे समझना चाहिये कि जैसे बाह्य आकाश वायुसंचालित मेघ और रज आदिसे अलग रहता है, वैसे ही आत्मा कालकृत तेज तथा जल-अन्नमय शरीरोंसे अलग है। योगीको चाहिये जलके समान निर्मल, स्वाभाविक, स्निग्ध, मधुर और तीर्थ

CC0. In Public Domain, Digitizaqtion by eGangotri

तुल्य होकर दर्शन, स्पर्श और कीर्तनसे जगत्‌को पवित्र करता रहे। अग्निके समान तेजस्वी और दीप्तिशाली होकर आहारसे अधिक सञ्चय न करे और सर्वभक्षी होकर भी निर्मल रहे। अग्निके समान कभी प्रच्छन्न रहे और कभी व्यक्त होकर मंगलकी अभिलाषासे उपासना करनेवालोंके पातकोंको भस्म करता रहे। जो प्राप्त हो, वही भोजन करे। जिस तरह कालके प्रभावसे चन्द्रमाकी कलाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं, चन्द्रमण्डल नहीं घटता-बढ़ता, वैसे ही देहीको समझना चाहिये कि जन्मसे लेकर श्मशानमें जानेतककी सब अवस्थाएँ देहकी हैं, आत्माकी नहीं हैं। जिस प्रकार अग्निकी शिखाएँ ही नष्ट होती हैं, अग्निकी उत्पत्ति या नाश नहीं होता, उसी प्रकार कालकी गतिसे शरीर ही उपजते और नष्ट होते हैं आत्मा न तो नष्ट होती और न उत्पन्न ही होती है। सूर्य अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल खींचता है और समयानुसार जल बरसाता है। योगीको चाहिये कि उसके अनुकरणसे इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण करता हुआ समयपर समागत अर्थीजनको वे ही विषय देकर सन्तुष्ट करे, किन्तु सूर्यके समान निर्लिप्त रहे। कपोतसे मुझे जो शिक्षा मिली है, वह भी सुन लो। योगीको किसीके प्रति स्नेह न करना चाहिये और न किसीके प्रसंगमें आसक्त होना चाहिये। अत्यन्त स्नेह करने या आसक्त होनेपर दीनबुद्धि कपोतकी तरह सन्तप्त होना पड़ता है। एक वनवासी कपोत वृक्षपर घोसला बनाकर उसीमें अपनी स्त्रीके साथ रहता था। दोनोंका हृदय एक था। दोनों सर्वदा अंगसे अंग और दृष्टिसे दृष्टि मिलाकर रहते थे। दोनों एक साथ सोते, उठते-बैठते,

खाते-पीते, खेलते-घूमते, टहलते और बातचीत करते थे। कपोती जो जो कामना करती थी, उसे कपोत कष्ट उठाकर भी पूरा करता था। कुछ समय बीतनेपर कपोतीको गर्भ रहा और यथासमय उसने कई अंडे दिये। कुछ कालमें वे अंडे फूटकर छोटे-छोटे बच्चे बन गये। तब दोनों स्त्री-पुरुष परम आनन्दसे उनका पालन करने लगे। एक दिन आहार खोजनेके लिए कपोत-कपोती दोनों ही इधर-उधर वनमें चले गये। इसी बीच एक चिड़ीमार घूमता हुआ वहाँ आया और कबूतरके बच्चोंको इधर-इधर विचरते देखकर जाल डालकर बैठ गया। बच्चे जालमें फँस गये। तबतक कपोत-कपोती दोनों चारा लेकर आ गये। माता-पिताको देखकर बच्चे और भी चिल्लाने लगे। कबूतरी चिल्लाती हुई बच्चोंके पास गयी। वह भी आप ही उस जालमें जाकर फँस गयी। प्राणप्यारे पुत्र पकड़े गये और जीवन-संगिनी स्त्री भी फँस गयी, यह देखकर दुःखित कबूतर विलाप करने लगा। वह सामने अपने परिवारकी दुर्दशा देखकर भी नहीं चेता और आप भी जालमें फँस गया। क्रूर चिड़ीमार कबूतरके जोड़ेके साथ बच्चोंको अपने साथ ले गया। जो गृहस्थ अशान्त हृदय हैं और कुटुम्बके पालन-पोषणमें अत्यन्त आसक्त रहते हैं, उन्हें कपोतकी तरह कष्ट भोगना पड़ता है।

अष्टम अध्याय

पिङ्गला वेश्याका उपाख्यान

ब्राह्मणने कहा—हे राजन्! स्वर्ग और नरक दोनों स्थानों-

में प्राणियोंके इन्द्रियजनित सुख-दुःख समान हैं। इसलिए समझदार व्यक्तियोंको इनकी इच्छा न करनी चाहिये। खानेका पदार्थ सरस हो या नीरस हो, बहुत हो या थोड़ा हो, जो कुछ आप ही से मिल जाय, उसे अजगरकी भाँति उदासीन भावसे खा लेना चाहिये। यदि भोजन न मिले तो दैव ही देनेवाला है, ऐसा समझ और धैर्य धारण कर अजगरकी भाँति रहे। कोई उद्योग या चेष्टा न करे। मुनियोंको चाहिये कि मुखसे प्रसन्नता और हृदयमें समुद्रकी भाँति गम्भीरताका भाव धारण करे। जो लोग इन्द्रियोंके वशमें हैं, वे मायारूपिणी स्त्रीको देखकर मोहित होते हैं। स्त्री, स्वर्णालङ्कार और वस्त्रादि माया-कल्पित वस्तुओंमें उपभोगबुद्धिसे जिसका चित्त प्रलुब्ध होता है, वह मूर्ख पतंगकी भाँति नष्ट होकर कष्ट पाता है। मधुकरकी भाँति कई घरोंसे थोड़ा-थोड़ा अन्न लेकर खाना चाहिये। मधुकर जैसे सब फलोंसे सारांश मात्र ले लेता है, वैसे ही चतुर मनुष्यको चाहिये कि छोटे-बड़े सभी शास्त्रोंसे सारांश मात्र ले ले। मधुमक्षिकाकी भाँति कुछ भी संचय न करे जो कुछ भिक्षासे मिले, उसे सायंकाल या दूसरे दिनके लिए न रख छोड़े। हाथ और पेटको ही पात्र बनावे। भिक्षुकको पैरसे भी लकड़ीकी बनी स्त्रीको भी न छूना चाहिये। अन्यथा उसकी वही गति होगी, जो गति हथिनीके अंग-संगके लिए गढ़ेमें गिरनेवाले हाथीकी होती है। प्राज्ञ पुरुष भूलकर भी स्त्रीके निकट न गमन करे। क्योंकि वह उसकी साक्षात् मृत्यु है। जैसे मधुहारी (कंजड़ या मुसहर आदि) मक्षिकाओंके संचित मधुका पता लगाकर उसे हर ले जाता है और

आप खा जाता तथा उससे लेकर दूसरे लोग खा जाते हैं, वैसे ही कृपण लोगोंके दुःख-संचित एवं दान-भोग-विवर्जित धनको पता मिलनेपर और लोग उड़ा ले जाते हैं। इस तरह जो लोग धनका दान या भोग नहीं करते, उनका धन दूसरे ही लोग भोग करते हैं। मधुहारी संचय करनेवाली मक्षिकाओंके पहले ही मधु चखता है। उसी तरह यति भी गृहस्थोंके संचित धनको उनके पहले ही भोगता है। वनवासी यति कभी भी ग्राम्यगीत न सुने। व्याधके मधुर गीतसे मोहित होकर हरिण उसके जालमें पड़कर परवश हो जाता है। हरिणापुत्र ऋष्यशृङ्ग मुनि स्त्रियोंके ग्राम्यगीत तथा नृत्य देख-सुनकर उनके वशमें हो गये थे। जैसे मीन चंचल जिह्वाके वश होकर मांसके टुकड़ेमें दिये हुए लोहेके काँटेमें बिंधकर प्राण गँवा देता है। वैसे ही रसके स्वादसे मोहित मन्दमति मनुष्य जिह्वाके लोभसे मृत्युको प्राप्त करता है। इसलिए सबसे पहले जिह्वाको वशमें करना चाहिये। विदेह राजा जनकके नगरमें एक पिङ्गलानाम्नी वेश्या रहती थी। हे राजन्! उससे मुझे जो शिक्षा मिली है, वह भी सुनो। एक दिन वह वेश्या किसी पथिक कान्तको अपने शयनगृहमें ले जानेके लिए भली-भाँति सुन्दर शृंगार करके सायंकाल घरके बाहर द्वारपर खड़ी थी। वह धन-लोलुप वेश्या जिसको राहमें आते देखती, उसीको धन देकर रति करनेवाला नागरिक समझती थी। किन्तु जब वह पुरुष निकटसे होकर चला जाता था, तब वह सोचने लगती थी कि अहो! कोई धनी पुरुष मेरे पास आता ही होगा। वह इसी तरह सोचती हुई द्वारपर खड़ी रही। आधी रात बीत गयी, किन्तु कोई भी नहीं

आया। उनकी आशामें खड़ी रहनेसे उसका मुख सूखने लगा और उसके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उस वेश्याने कहा—पुरुषके सुदृढ़ आशापाशको काटनेवाला खड्ग एकमात्र वैराग्य ही है। जिसके हृदयमें वैराग्य नहीं उदय हुआ, उसके लिए देहबन्धन काटनेका कोई और उपाय ही नहीं है। अहो! मुझको कुछ भी विवेक नहीं है। मेरा चित्त तनिक भी मेरे वशमें नहीं है। मेरी बुद्धि अत्यन्त मन्द है। क्योंकि मैं तुच्छ और असमर्थ लोगोंको कान्त मानकर उनसे काम्य वस्तु पानेकी कामना करती हूँ। मैं लम्पट पुरुषोंसे रति और धन पानेकी इच्छा करती हूँ। यह शरीर मल-मूत्रसे पूर्ण है। कौन नासमझ इसे कान्त समझकर सेवेगी? इस विदेह नगरीमें मैं ही ऐसी मूढ़बुद्धि स्त्री हूँ, जो आत्मारूपसे हृदयमें स्थित आत्मप्रद अच्युतको छोड़कर और मनुष्योंसे काम्यकामना करती हूँ। अब आत्म-समर्पणसे श्रीहरिको मोल लेकर या उन्हींके हाथों बिककर लक्ष्मीके समान उनके साथ रमण करूँगी। अवश्य ही भगवान विष्णु मुझपर प्रसन्न हुए हैं, इसीलिए यह सुखदायक वैराग्य मेरे मनमें उदित हुआ है। ब्राह्मणने कहा—हे राजन्! पिङ्गला वेश्याने इस प्रकार निश्चय करके किसी नागरके आने और उनसे धन पानेकी दुराशा छोड़ दी। फिर वह परम शान्तिसे अपनी शय्यापर जाकर सुखसे सो गयी।

नवम अध्याय

अवधूत-संवादको समाप्ति

ब्राह्मणने कहा—हे राजन्! कुरर पक्षीसे मुझे जो शिक्षा

मिली है, वह सुनो। जो वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय हैं, उनमें आसक्ति या उनका संचय ही दुःख है। इस सत्यको समझनेवाला मनुष्य अत्यन्त सुख पाता है। मांसयुक्त कुरर पक्षीको अन्य निरामिष सबल पक्षी मांसके लिए मारते हैं। उस मांसको छोड़कर वह सुखसे रहता है। मेरे लिए मान-अपमान दोनों ही समान हैं। मैं बालककी भाँति सब चिन्ताओंसे मुक्त हूँ। भोले-भाले बालक निश्चिन्त और परमानन्दमें रहते हैं। बालकोंसे मुझे यही शिक्षा मिली है। मैंने कुमारीसे जो सीखा है, वह भी सुनो। एक कुमारी कन्याके वरणके लिए कुछ लोग उसके घर आये। उस समय उसके पिता-माता-बन्धु आदि सब कामपर गये थे। उसने आप ही आगत लोगोंकी अभ्यर्थना की। तदनन्तर अतिथियोंको भोजन बनाकर खिलानेके लिए वह कन्या एकान्तमें धान कूटने लगी। धान कूटते समय उसके हाथकी चूड़ियोंमें बड़ा शब्द होने लगा। तब दरिद्रतासूचक उस शब्दको लज्जाजनक जानकर उस कन्याने एक-एक करके सब चूड़ियाँ फोड़ डालीं। केवल दो-दो चूड़ियाँ उसने हाथोंमें छोड़ दीं। फिर भी धान कूटनेपर शब्द होता ही रहा। तब उस कन्याने एक-एक चूड़ी और फोड़कर एक ही रहने दी। तब शब्द होना बन्द हो गया। इससे यह मालूम हो गया कि बहुत लोगोंका एकत्र रहना या दोका भी साथ रहना कलह और अनिष्टका कारण है। इसलिए उस कुमारीकी चूड़ीके समान सबसे अलग अकेले ही रहना चाहिये। इस तरह खटपटकी सम्भावना नहीं रहती। बाण बनानेवालेसे मैंने चित्तको एकाग्र करनेकी शिक्षा ली है। आलस्य छोड़कर अभ्यासयोगसे स्थिर

होकर अपने लक्ष्यपर चित्त लगाना चाहिये। जैसे बाण बनानेवाला बाजे-गाजे और धूमधामके साथ पास हीसे जानेवाली राजाकी सवारी तक नहीं जान सकता। वैसे ही चित्तको एकाग्र कर लेनेपर अर्थात् परमात्मामें लगा देनेपर बाहर-भीतर किसी वस्तु या विषयका ज्ञान नहीं रहता। मुनिको चाहिये कि सर्पकी भाँति अकेले विचरण करे, रहनेका स्थान नियत न करे, सदा सावधान रहे और इच्छानुसार घूमता रहे। जैसे ऊर्णनाभ (मकड़ा) हृदयसे मुखके द्वारा जाल फैलाकर फिर उसे निगल जाता है, वैसे ही परमेश्वर इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। पेशस्कृत्से जो शिक्षा मैंने ली है, वह सुनो। देहधारी जीव जहाँ-जहाँ जिस-जिसमें स्नेह द्वेष या भयसे सम्पूर्णरूपसे मन लगाता है, वह अन्तमें उसीका रूप प्राप्त कर लेता है। पेशस्कृत एक कीड़ेको ले जाकर अपने स्थानपर बन्दी बनाकर रखता है और वह कीड़ा भयग्रस्त होकर सर्वदा उसीका ध्यान करता हुआ उसी शरीरसे पेशस्कृत हो जाता है। इसी प्रकार ईश्वरचिन्तन करनेवाले भक्तजन भी सारूप्य मोक्ष प्राप्त करते हैं। हे राजन्! इस प्रकार इन सब गुरुओंसे मुझे ऐसी शिक्षा मिली है। अब मैंने अपने शरीरसे जो कुछ सीखा है, वह भी सुन लो। जिस शरीरको भोगसुख पहुँचानेके लिए कष्टसे धन-सञ्चय करनेवाला यह पुरुष, स्त्री-पुत्र, अर्थ, पशु, भृत्य, गृह और आत्मीय लोगोंको एकत्र करता और उनके पालन-पोषणकी चिन्तामें लिप्त रहता है, वह अन्त समयमें देह छोड़ देता है। देह छूट जानेपर भी दुःखका अन्त नहीं होता। क्योंकि वृक्षके समान नष्ट होनेके पहले यह शरीर कर्मरूप बीजको बो जाता

है। जैसे अनेक सपत्नियाँ अपने एकमात्र स्वामीको अपनी-अपनी ओर घसीटकर शिथिल कर डालती हैं, ठीक वैसे ही पुरुषको रसना, तृष्णा, शिश्न, त्वचा, उदर, कान, नासिका, चञ्चल नेत्र और कर्मशक्ति आदि इन्द्रियाँ अपनी-अपनी ओर खींचती हैं। भगवानको मनुष्यशरीर अत्यन्त प्रिय है। मनुष्यशरीर सबसे श्रेष्ठ है। यद्यपि यह अनित्य है। तथापि दुर्लभ है। यह बहुत जन्मोंके बाद पुण्योदयसे मिलता है। यह पुरुषार्थका साधन है। क्षणभंगुर नरतनु पाकर उसके छूटनेके पहले ही शीघ्र मुक्ति मिलनेके लिए प्रयत्न करना चाहिये। विषयभोग तो सभी योनियोंमें मिलते हैं। उनके लिए इस अलभ्य शरीरको खो देना महामूर्खता है। इस प्रकार वैराग्यसम्पन्न मैं अहंकार और संग छोड़ तथा आत्मनिष्ठ होकर विज्ञानदीपकके प्रकाशमें सुखपूर्वक पृथ्वीपर पर्यटन करता हूँ।

दशम अध्याय

उद्धवका आत्मतत्त्वज्ञान

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! मेरे कथनानुसार अपने-अपने धर्ममें अवस्थित रहकर और मेरा आश्रय ग्रहण करके निष्काम चित्तसे अपने वर्ण-आश्रम और कुलके सदाचारका पालन करना चाहिये। पूर्णरूपसे मेरे आश्रित होकर निवृत्तिके लिए केवल नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये और प्रवृत्तिप्रवर्तक काम्य कर्म न करने चाहिये। मत्परायण मनुष्य अहिंसा आदि संयमोंका सादर सेवन करे और यथाशक्ति शौच आदि नियमों-

का भी पालन करे। अपने प्रयोजनको सर्वत्र समान देखता हुआ अर्थात् सर्वत्र समदर्शी और स्वजनोंमें ममताहीन होकर गुरुकी सेवा करनी चाहिये। धर्मके अनुष्ठानमें पद-पदपर विघ्न उपस्थित होते हैं। विघ्नोंसे बचनेवाले धार्मिक व्यक्तियोंको जिन स्थानोंमें जाना पड़ता है, उनका विवरण सुनो। यज्ञ करनेवाले कर्मकाण्डी लोग इस लोकमें यज्ञोंसे देवताओंका यजन करके स्वर्गलोकको जाते और वहाँ देवताओंके समान दिव्य सुख भोगते हैं। जबतक पुण्य समाप्त नहीं होता तभीतक वे इस प्रकार आनन्दपूर्वक स्वर्गमें सुखभोग करते हैं। पुण्य क्षीण हो जानेपर वे पुनः अधःपतित होते हैं। यदि जीव असत् व्यक्तियोंके सङ्गमें पड़कर अधर्मनिरत, अजितेन्द्रिय, अधर्म और प्राणिहिंसा करता हुआ प्रेत-भूत आदिका यजन करता है तो वह अवश्य विवश होकर नरक भोगता और उसके बाद जड़ योनियोंमें प्रवेश करता है। कर्मोंका उत्तरकाल दुःखदायक है। उद्धवने कहा—हे विभो! गुणोंसे सम्बन्ध रहनेपर भी देहधारी जीव देहके कर्म और उन कर्मोंके फल सुख-दुःख आदिसे मुक्त कैसे रहता है? यदि आकाशके समान अनावृत होनेके कारण उसका गुणोंसे सम्बन्ध नहीं है तो फिर वह गुणोंमें कैसे बँधता है? कृपाकर मेरा यह संशय दूर कीजिये। बद्ध और मुक्त व्यक्तियोंके व्यवहार और विहारका क्रम क्या है और उनके लक्षण क्या हैं?

एकादश अध्याय

बद्ध और मुक्तके लक्षण

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! मेरे उपाधिरूप सत्त्वादि गुणोंके कारण आत्माको बन्धन और मोक्षका फल मिलता है। वास्तवमें गुणके मायामूलक होनेके कारण मैं बन्धन और मोक्ष दोनोंसे अतीत हूँ। मैंने ऐसा ही निर्णय किया है। शोक-मोह, सुख-दुःख और देहकी उत्पत्ति आदि सब कार्य मायाके हैं। हे महामते! अविद्यासे अनादि बन्धन और विद्यासे मोक्ष प्राप्त होता है। हे उद्धव! विवेकीजन शयन, उपवेशन, पर्यटन, स्पर्श, भोजन आदि सब कर्म करते हुए भी विषयोंमें आसक्त नहीं होते। जिसके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिके सब आचरण संकल्पशून्य होते हैं, वह पूर्वसंस्कारवश शरीरमें स्थित होकर भी देहके धर्मोंसे मुक्त रहता है। शरीरको यदि हिंसक लोग कुछ पीड़ा पहुँचाते हैं तब जो दुःखित नहीं होता और यदि कोई व्यक्ति आदर-पूजा करता है तब भी सुखी नहीं होता, वही विकारशून्य व्यक्ति विवेकी कहलाता है। हे उद्धव! दूध देनेमें असमर्थ गऊ, असती स्त्री, पराधीन शरीर, असत् पुत्र, सुपात्रको न दिया गया धन, सुझसे शून्य वाक्यकी रक्षा करनेका प्रयासी पुरुष दुःखके उपरान्त दुःख ही पाता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता। तत्त्वविचारके द्वारा भेदभ्रमको मनसे निकालकर विशुद्ध चित्तको मुझ सर्वव्यापीमें लगावे और सर्वथा निवृत्त तथा निश्चेष्ट होकर रहे। यदि इस प्रकार मनको निश्चलकर मुझमें लगानेमें असमर्थ हो तो निरपेक्ष-भावसे मेरे उद्देश्यसे सब कर्म करे अर्थात् मेरी ही आराधनाके विचारसे

कर्म करे। हे उद्धव! जो मुझे सच्चिदानन्दरूप समझकर भजता है, वही साधु है। जो व्यक्ति एकाग्रचित्तसे मेरी आराधना करता है, वही मेरा भक्त है। हे उद्धव! साधुसंग और भक्तियोगके बिना संसारसे मुक्त होनेका दूसरा उपाय नहीं है। हे उद्धव! जो सब देहधारियोंपर कृपा करता है, सबसे सहानुभूति रखता है, हिंसा और द्रोहसे विमुख है, क्षमाशील है, सत्यव्रत है, काम-क्रोध आदि दोषोंसे शून्य है, समदर्शी है, सबके उपकारकी चेष्टा करता है, जिसका चित्त कामनाओंसे अभिभूत नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, कोमल हृदय है, उदासीन है, एकमात्र मेरा ही आश्रित है, वही श्रेष्ठ साधु है। हे यदुनन्दन! तुम श्रद्धापूर्वक इस परम गुप्त विषयको सुनना चाहते हो और मेरे एकान्त अनुगत, सुहृद और सखा हो। अतएव अत्यन्त गोप्य होनेपर भी यह विषय मैं तुमसे कहता हूँ।

द्वादश अध्याय

साधुसंगकी महिमा

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! याग, यज्ञ, दान, ध्यान, तपस्या, योगाभ्यास, तत्त्वविवेक, अहिंसादि सदाचार, धर्म, वेदाध्ययन, संन्यास, कुआँ-बावली आदि खुदवाना, दान-दक्षिणा, व्रत-उपवास, मन्त्रजप तथा तीर्थयात्रा आदि साधनोंसे मुझे कोई उतना वशीभूत नहीं कर सकता, जितना कि सर्वसंगनिवारक सत्संगके प्रभावसे। भिन्न-भिन्न युगोंमें दैत्य, राक्षस, पक्षी, मृग, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण आदि और सभी स्त्री-पुरुष केवल

सत्सङ्गके प्रभावसे मेरे परमपदको प्राप्त हुए हैं। देखो—सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, गज, जटायु, तुलाधार वैश्य, व्याध, कुब्जा, बाणासुर, मयासुर आदि अनेकजनोंमेंसे किसीने वेदाध्ययन, तीथपर्यटन, व्रतका आचरण अथवा तपस्या आदि कुछ भी नहीं किये। ये सभी केवल सत्सङ्गके प्रभावसे मेरे दुर्लभ पदको प्राप्त हुए। हे उद्धव! योग, ज्ञान, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्या, स्वाध्याय आदिके द्वारा यत्न करनेपर भी मैं दुर्लभ हूँ। केवल सत्सङ्ग ही ऐसा साधन है, जिससे मैं सुलभ हूँ। इस कारण हे उद्धव! तुम श्रुति, स्मृति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रोतव्य और श्रुत—यह सब छोड़कर सब शरीरधारियोंके आत्मारूप एकमात्र मुझको भक्तिपूर्वक अपना आश्रय अथवा अवलम्ब बनाओ। मेरी शरणमें आनेसे तुम निर्भय हो जाओगे।

त्रयोदश अध्याय

हंसरूपी भगवानका इतिहास

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये सब गुण बुद्धिके हैं, आत्माके नहीं। सत्त्वके द्वारा अन्य दो गुणोंको जीतकर सत्त्वकी वृत्तियोंको सत्त्व हीसे जीतना चाहिए। सत्त्वकी वृद्धिसे मनुष्यको मेरी भक्तिरूप धर्म प्राप्त होता है। सात्त्विक वस्तु सेवन करनेसे सत्त्व बढ़ता है और उससे मेरी भक्तिमें इच्छा होती है। फिर रजोगुण तथा तमोगुणकी वासनाएँ नष्ट होती हैं। इनके मिटनेसे इनसे होनेवाला अधर्म भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उद्धवने पूछा—हे कृष्ण! प्रायः सभी

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

जानते हैं कि सब सांसारिक विषय आपदाओंके आकर हैं, तथापि वे कुत्तों, गधों और बकरोंकी भाँति उनके ही भोगमें लगे रहते हैं। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! अविवेकी व्यक्तिके हृदयमें जो यह 'मैं' की अन्यथा बुद्धि उत्पन्न होती है, उसीके द्वारा सत्त्वप्रधान मन घोर रजोगुणमें लिप्त होता है। रजोयुक्त मनसे संकल्प-विकल्पकी उत्पत्ति होती है। फिर विषयचिन्तनसे प्रबल वासना जायमान होती है। तब विषयवासनासे विवश होकर अजितेन्द्रिय पुरुष जानकर भी दुःखदायक कर्मोंको करता है। रजोगुण-तमोगुणसे बुद्धिके विचलित होनेपर भी विवेकी लोग मन रोकते हुए उनमें आसक्त नहीं होते। मनको सब विषयोंसे हटाकर पूर्णरूपसे मुझमें लगानेको ही सनकादिकोंने योग कहा है। उद्धवने पूछा—हे केशव ! जिस समय और जिस रूपसे आपने सनकादिकोंको योगका उपदेश दिया था, वह जाननेकी मेरी इच्छा है। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! ब्रह्माके मानस पुत्र सनकादिकोंने एक दिन अपने पितासे योगका परमतत्त्व पूछा। पुत्रोंके इस प्रश्नका उत्तर स्वयम्भू ब्रह्मा नहीं दे सके। तब उन्होंने जाननेकी अभिलाषासे मेरा ध्यान किया और मैं हंसरूपसे उनके निकट उपस्थित हुआ। मुनियोंने उठकर मुझे प्रणाम करनेके उपरान्त पूछा—तुम कौन हो ? तब मैंने उनसे जो कहा, वह सुनो। मैंने कहा—हे विप्रगण ! यदि यह प्रश्न आत्मासे सम्बन्ध रखता है तो जब परमात्मारूप सत्पदार्थ एक ही है, तब यह प्रश्न ही व्यर्थ है। यदि यह प्रश्न पञ्चभूत समष्टि-शरीरके सम्बन्धमें है तो जब सब पञ्चतत्त्व वास्तवमें अभिन्न हैं, तब तुम्हारा यह प्रश्न कि तुम

कौन हो ? निरर्थक वाक्यविलासमात्र है। अहंकारकृत बन्धन आत्माके लिए जन्म-मरणरूप अनर्थकी जड़ है। यह समझकर मुझ परमात्मामें अवस्थित होकर अहंकारको छोड़ देना चाहिये। सब कार्योंको स्वप्नवत् मिथ्या समझना चाहिये। अनुमान और सदुक्तियोंसे तीक्ष्ण किये गये ज्ञानरूप खड्गसे सम्पूर्ण संशयोंके आश्रयरूप अहङ्कारको छिन्न करके तुम हृदयमें अवस्थित मुझ आत्माको भजो। दैवाधीन शरीर भी अपने कारणरूप प्रारब्ध अदृष्टकी स्थिति तक जीवित रहता है। जो समाधियोगमें अधिरूढ़ और परमार्थ वस्तुको जान गया रहता है, वह फिर स्वप्नतुल्य उस सप्रपञ्च शरीरमें आसक्त नहीं होता। हे विप्रगण ! मैंने सांख्य और योगका रहस्य तुमसे कह दिया। मैं साक्षात् विष्णु हूँ। तुमको धर्म बतानेके लिए ही यहाँ आया हूँ। हे उद्धव ! मेरे वचनोंसे सनकादिकोंका सब सन्देह दूर हो गया। उन्होंने अत्यन्त भक्तिसे मेरी पूजा और स्तुति की। उन श्रेष्ठ मुनियों द्वारा भलीभाँति पूजित होनेपर मैं अदृश्य होकर अपने धामको लौट गया।

चतुर्दश अध्याय

ध्यानयोगका वर्णन

उद्धवने पूछा—हे कृष्ण ! ब्रह्मवादी ऋषिगण मुक्तिके बहुतसे साधन बताते हैं। उनमेंसे सभी प्रधान-प्रधान हैं अथवा सभी एक-एक करके अपने ही ढंगके प्रधान हैं ? आप इस विषयका वर्णन कीजिये। आपने निष्काम भक्तियोगको उत्तम बताया है। भगवानने कहा—जिसमें मेरे वचन कहे गये हैं, वे

सब वेद-वाक्य काल-क्रमसे प्रलयकालमें लुप्त हो गये थे। फिर सृष्टिके आदिमें मैंने वे ही वेदवाक्य ब्रह्माके हृदयाकाशमें प्रकाशित किये। मुझमें भलीभाँति मन लगानेवाला विशुद्ध धर्म उस वेदमें वर्णित है। ब्रह्माने अपने बड़े पुत्र मनुको और मनुने अपने छोटे भाई भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु इन सात महर्षि प्रजापतियोंको उस वेदका उपदेश दिया। फिर इन महर्षियोंसे देवता-मनुष्य आदि सभीने वेदविद्या प्राप्त की। प्रकृतिके अनुसार वे वेदकी भिन्न-भिन्न व्याख्या करते हैं। हे उद्धव! मेरी मायासे मोहित बुद्धि लोग कामना और रुचिके अनुसार श्रेयके विषयमें मतभेद रखते हैं। कोई धर्मको, कोई यज्ञको, कोई इष्ट कामको, कोई सत्य-शम-दम आदिको, कोई दानको, कोई भोगको, कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, यम, नियम आदिको स्वार्थ अर्थात् परमार्थ कहते हैं। किन्तु इनके कर्मविरचित सब लोक अवश्य ही उत्पत्ति-विनाशशील, परिणाममें नीरस और शोकपूर्ण हैं। मुझमें आत्माको अर्पित करनेवाले लोगोंको सब विषयोंकी अपेक्षा छोड़ और मुझको प्राप्त करके जो सुख मिलता है, वह सुख विषयासक्त व्यक्तियोंको कहाँ मिल सकता है? अकिञ्चन, जितेन्द्रिय, शान्त, समदर्शी और मेरी प्राप्तिसे सन्तुष्टचित्त व्यक्तिके लिए दसों दिशाएँ सुखसे परिपूर्ण रहती हैं। जिसने आत्माको मुझमें अर्पित कर दिया है, वह मुझे छोड़कर इन्द्रपद, चक्रवर्तीका पद, पाताल आदि विवरोंका आधिपत्य, योगकी सिद्धियाँ अथवा मोक्ष कुछ भी नहीं चाहता। हे उद्धव! विज्ञान, वेदाध्ययन, तप और दान आदि साधनोंसे मुझे इतने शीघ्र

कोई नहीं प्राप्त कर सकता, जितना कि मुझमें दृढ़भक्ति रखकर साधु-पुरुष मुझे प्राप्त कर लेता है। रोमाञ्च हुए बिना, प्रेमसे हृदय गद्गद् हुए बिना और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाये बिना किसीको भक्तिका कैसे ज्ञान हो सकता है? भक्तिके बिना चित्तकी शुद्धि कैसे हो सकती है? मेरी भक्तिसे जिसकी वाणी और हृदय गद्गद् हो जाता है, जो बार-बार ऊँचे स्वरसे नाम लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, उच्च स्वरसे मेरा गुणगान करता है, वह मेरा पूर्ण भक्त त्रिलोक-पावन होता है। उद्धवने कहा—हे कमलनयन! मुमुक्षु-व्यक्तिको जिस प्रकार और जिस रूपसे आपका ध्यान करना चाहिये। वह आप कृपापूर्वक मुझे बताइये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! सम आसनपर सीधा होकर सुखपूर्वक बैठकर दोनों हाथोंको उत्तानभावसे तर-ऊपर रखना चाहिये। तदनन्तर दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें स्थापित करके जितेन्द्रिय होकर पूरक, कुम्भक और रेचक-क्रमसे प्राणवायुके मार्गको शुद्ध करना चाहिये। इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर विपरीत क्रमसे धीरे-धीरे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। अविच्छिन्न घण्टानादके सदृश श्रुत तथा हृदयमें अवस्थित मृणालसूत्र तुल्य ॐकारको प्राणवायुके द्वारा ऊपर ले जाकर वहाँ उसके मस्तकमें बिन्दु-स्थापन करना चाहिये अर्थात् उसे स्थिर करना चाहिये। इस प्रकार ॐकारयुक्त प्राणायामको त्रिकालमें दस-दस बार करके अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे योगी एक ही महीनेमें प्राणवायुको जीत सकता है। तदनन्तर योगीको चाहिये कि

अधोमुख, ऊर्ध्वनाल तथा अन्तःस्थ हृत्पद्मको ऊर्ध्वमुख, प्रफुल्लित अष्टदल और कर्णिकायुक्त रूपमें ध्यान करे। उस पद्मकी कर्णिकाओंमें उत्तरोत्तर सूर्य, चन्द्र और अग्निकी भावना करे। अग्निके मध्यमें मेरे रूपका ध्यान करे। प्रशान्त, विशाल और मनोहर चार भुजाओंसे सुशोभित मुझे विराजमान देखे। फिर सब अंगोंमें मन स्थापितकर मेरे सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिये। इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे मनके द्वारा खींचकर बुद्धिरूप सारथीकी सहायतासे उस मनको पूर्णरूपसे मुझमें लगावे। जब मेरे उक्त रूपमें भलीभाँति मन स्थित हो जाय, तब उससे भी हटाकर सबके कारणस्वरूप आकाशमें मनको लगाना चाहिये। उसके बाद उसे भी छोड़कर शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मुझको आश्रय बनाकर ध्याता और ध्येय—इस पार्थक्यको भी चित्तसे दूर कर देना चाहिये। इस प्रकार चित्त वशमें हो जानेपर जिस तरह ज्योतिमें ज्योतिको संयुक्त देखते हैं, उसी प्रकार अपनेमें मुझको और सर्वमय मुझमें अपनेको देखे। इस प्रकार सुदृढ़ ध्यान द्वारा मुझमें निविष्ट चित्त योगीका पदार्थज्ञान और क्रियाका भ्रम शीघ्र निवृत्त हो जाता है।

पञ्चदश अध्याय

अणिमादि अष्टसिद्धियोंका वर्णन

हे उद्धव! जितेन्द्रिय, जितप्राण, स्थिरचित्त और मुझमें धृतचित्त योगीके निकट सब सिद्धियाँ स्वयं आ उपस्थित होती हैं। उद्धवने पूछा—हे भगवन्! आप योगियोंके सिद्धिदाता हैं।

सो उन सिद्धियोंका वर्णन कीजिये। भगवानने कहा—हे साधो! योगपारंगत व्यक्तियोंने अठारह सिद्धियाँ कहीं हैं। उनमें आठ प्रधान हैं। उनका स्वभावतः मैं ही आश्रय हूँ। अवशिष्ट दस सिद्धियाँ सत्त्वगुणके उत्कर्षसे प्राप्त होती हैं। अणिमा, महिमा और लघिमा—ये तीन सिद्धियाँ देहसे सम्बन्ध रखती हैं। हे सौम्य! ये प्रधान आठ सिद्धियाँ मेरी स्वाभाविक सिद्धियाँ हैं—प्राप्तिनामक सिद्धिका सम्बन्ध सब प्राणियोंकी इन्द्रियों और उनके अधिष्ठाता देवताओंसे है। श्रुत और दृष्ट विषयोंमें भोगदर्शनकी सामर्थ्य प्राकाम्यसिद्धि है। शक्तियोंका इच्छानुसार प्रेरण ईशिता नामक सिद्धि है। विविध विषयभोगोंमें अनासक्ति ही वशिता नामक सिद्धि है। जिससे वाञ्छित विषयोंकी सीमा प्राप्त हो, वही कामावसायिता नामक सिद्धि है। इस शरीरमें भूख-प्यासका न होना, दूरकी बात सुनना और दूरकी घटना देखना, मनकी-सी द्रुतगति, इच्छानुसार रूप प्राप्त करना, दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाना, स्वेच्छामृत्यु, देवरूपसे अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करना, संकल्पसिद्धि, अप्रतिहत आज्ञा और गति—ये दस सामान्य सिद्धियाँ सत्त्वके उत्कर्षसे होती हैं। इसके अतिरिक्त त्रिकालज्ञता, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वधर्मोंसे अभिभूत न होना, पराये मनकी बात जान लेना और अग्नि, सूर्य, जल तथा विष आदिको बाँध देना और वशमें कर लेना, ये योगकी उद्देश्यजनित पाँच क्षुद्र सिद्धियाँ हैं। अब योगकी जिस धारणासे जो सिद्धि प्राप्त होती है, सो सुनो। भूतसूक्ष्मोपाधिक मुझमें तन्मात्रभूत सूक्ष्माकार मनकी धारणा करनेसे योगीको अणिमासिद्धि

प्राप्त होती है। महत्तत्त्वोपाधिक मुझमें महत्तत्त्वाकार मनकी धारणा करनेसे महिमा सिद्धि प्राप्त होती है। आकाशादि महाभूतस्वरूप मुझमें पृथक्-पृथक् मनकी धारणा करनेसे योगीको पृथक्-पृथक् उपासित भूतकी महिमा प्राप्त होती है। सब तत्त्वोंके परमाणुस्वरूप मुझमें चित्तकी धारणा करनेसे योगीको लघिमा सिद्धि मिलती है। वैकारिक अहंकाररूप मुझमें एकाग्र चित्तकी धारणासे प्राप्तिनामक सिद्धि मिलती है। अव्यक्तजन्मा तथा सूत्रस्वरूप मुझ महत्में जो व्यक्ति चित्त लगाता है, वह मेरी सर्वोत्कृष्ट प्राकाम्य सिद्धि पाता है। त्रिगुणात्मक मायाके नियन्ता कालमूर्ति मुझमें चित्त लगानेसे ईशिता सिद्धि मिलती है। भगवत् शब्दसे निरूपित नारायणनामक मुझ तुरीयमें जो मन लगाता है, वह योगी मेरे धर्मसे सम्पन्न होकर वशिता नामक सिद्धि पाता है। निर्गुण ब्रह्मरूप मुझमें विशुद्ध चित्त स्थापित करनेसे परमानन्दमयी कामावसायिता नामक सिद्धि मिलती है। इस सिद्धिके मिलनेसे सब कामनाओंका अन्त हो जाता है। सत्वमूर्ति धर्ममय श्वेतद्वीपनिवासी मुझमें चित्त स्थापित करनेसे मनुष्य क्षुधा-तृष्णा, शोक-मोह तथा जरा-मरणशून्य होकर शुद्धरूप हो जाता है। आकाशात्मा समष्टिरूप प्राणमय मुझमें मन द्वारा नादकी भावना करनेसे यह जीव विविध प्राणियोंके वाक्य सुनता है। चक्षुको सूर्यमें और सूर्यको चक्षुमें संलग्नकर उस उभय सम्बन्धके मध्यमें मन ही मन मेरा चिन्तन करनेसे मनुष्यको दूर होसे सब विश्व दिखाई पड़ता है। मनके द्वारा प्राणवायुके साथ शरीरको मुझमें स्थापित करनेपर उस धारणाके प्रभावसे जहाँ मन जाता है, वहाँ

शरीर भी उपस्थित होता है। सर्वरूप मुझमें मन लगानेसे मेरे योगबलरूप आश्रयके प्रभावसे योगी जिस रूपको चाहता है, वही रूप धारण कर सकता है। सब शरीरोंमें मुझ आत्मारूपका चिन्तन करनेसे योगीको परकायप्रवेश नामक सिद्धि प्राप्त होती है। उस अवस्थामें योगी अपना शरीर छोड़कर भ्रमरकी भाँति परकायामें प्रवेश कर सकता है। एड़ीसे गुह्य द्वारको दबाकर प्राणोपाधिक आत्माको क्रमशः हृदय, वक्षःस्थल, कंठ और मस्तकमें ले जा और ब्रह्मरन्ध्रसे निकालकर योगी ब्रह्ममें लीन हो सकता है। इस सिद्धिको स्वच्छन्द मृत्यु कहते हैं। इसी क्रमसे शरीर त्यागकर योगी परकायामें भी प्रवेश करता है। तपस्या मंत्र आदिसे जो सब सिद्धियाँ मिलती हैं, वे सभी मुझमें शुद्ध भक्ति रखनेसे मिल सकती हैं। मैं सब सिद्धियों और योग आदिका पति और उनका प्रभु हूँ।

षोडश अध्याय

भगवानकी महाविभूतिका वर्णन

उद्धवने पूछा—हे महाविभूतिसम्पन्न! स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल और दस दिशाओंमें आपकी विशेष शक्तिसे युक्त जो-जो विभूतियाँ हैं, उनका वर्णन करके मुझे सुनाइये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! हे प्रश्नवित् लोगोंमें श्रेष्ठ! कुरुक्षेत्रके बीच युद्धभूमिमें शत्रुता करनेवाले जातिभाइयोंसे युद्ध करते समय अर्जुनने भी मुझसे यही प्रश्न किया था। मैंने उनसे अपनी जिस विभूतिका वर्णन किया था, उसे तुम सुनो। हे उद्धव! मैं सब प्राणियोंका

आत्मा, सुहृद और ईश्वर हूँ। ये सब प्राणी मैं हूँ और इनकी सृष्टि, स्थिति और ध्वंसका कारण भी मैं ही हूँ। गमनशील व्यक्तियों और वस्तुओंमें मैं गति हूँ। वेदोंमें मैं हिरण्यगर्भ हूँ। मन्त्रोंमें मैं त्रिवृत् प्रणव हूँ। अक्षरोंमें मैं आकार हूँ। छन्दोंमें मैं गायत्री हूँ। सब देवताओंमें इन्द्र, वस्तुओंमें अग्निनामक वस्तु, आदित्योंमें विष्णुनामक आदित्य और रुद्रोंमें नीललोहित नामक रुद्र मैं ही हूँ। महर्षियोंमें भृगु, राजर्षियोंमें मनु, देवर्षियोंमें नारद और धेनुओंमें कामधेनु मैं ही हूँ। सिद्धेश्वरोंमें कपिलदेव, पक्षिवृन्दमें गरुड़, प्रजापतियोंमें दक्ष और पितृगणमें अर्यमा मैं ही हूँ। हे उद्धव! दैत्योंमें असुरपति प्रह्लाद, नक्षत्र और ओषधियोंमें सोम और यक्ष-राक्षसोंमें कुबेर मैं ही हूँ। मैं गजराजोंमें ऐरावत, जलवासियोंमें जल-जन्तुओंके प्रभु वरुण, प्रतापशाली और दीप्तिशाली वस्तुओंमें सूर्य और मनुष्योंमें राजा हूँ। घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, धातुओंमें सुवर्ण, दण्डधारी जनोंमें यम और सर्पोंमें वासुकि मैं ही हूँ। नागराजोंमें अनन्त, शृङ्गदंष्ट्राधारी पशुओंमें मृगराज, आश्रमोंमें संन्यास और वर्णोंमें ब्राह्मण मैं ही हूँ। तीर्थ और नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, आयुधोंमें धनुष और धनुषधारियोंमें त्रिपुरारि मैं ही हूँ। निवासस्थानोंमें सुमेरु, दुर्गम स्थानोंमें हिमालय, वनस्पतियोंमें अश्वत्थ और ओषधियोंमें यव मैं ही हूँ। हे साधो! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पञ्चतत्त्व मैं ही हूँ। अहंकार, महत्तत्त्व, जीव, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम और ब्रह्म सब मैं ही हूँ। जीव, ईश्वर, गुण, गुणी, सर्वव्यापक और सर्वरूप मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न कहीं भी कोई भाव नहीं है अर्थात् मैं ही सब कुछ हूँ।

कालक्रमसे कभी मैं पृथ्वीके परमाणुओंको गिन सकता हूँ, किन्तु अपनी अनन्त विभूतियोंको नहीं गिन सकता। मैं करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करनेवाला हूँ। जगत्की सभी वस्तुएँ मेरे अंश हैं। वाणी, मन, प्राणवायु और इन्द्रियोंको जीतकर आत्माको परमात्मामें लीन करो। ऐसा करनेसे फिर तुम्हें संसारमार्गमें नहीं भटकना पड़ेगा।

सप्तदश अध्याय

वर्णाश्रमधर्मका वर्णन

उद्धवने कहा—हे मधुसूदन देव! परमधर्मके वक्ता, कर्ता और रक्षक आप जब पृथ्वीतलको छोड़कर चले जायँगे, तब कौन नष्टप्राय धर्मका प्रचार करेगा? अतएव हे सर्वधर्मज्ञ! हे प्रभो! पूर्वसमयमें आपने हंसरूपसे ब्रह्माको जिस परमसुखरूप धर्मका उपदेश दिया था, वह परमधर्म कृपा करके मुझे भी बताइये। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! अपने अनन्य सेवकके इस प्रकार पूछनेपर भगवान श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्न होकर मनुष्योंके हितके लिए सनातनधर्म कहने लगे। भगवानने कहा—हे उद्धव! परम कल्याणकारी वर्णाश्रम धर्म मैं कहता हूँ, सुनो। पहले सत्ययुगमें ब्राह्मणादि चार वर्ण नहीं थे। केवल हंसनामक एक ही वर्ण था। उस समय लोग जन्मसे ही मेरी उपासनामें तत्पर रहते हुए कृतकृत्य हो जाते थे। इसीसे सत्ययुगको कृतयुग भी कहते हैं। तब ॐकार ही एकमात्र वेद था और सत्य-तप आदि चार चरणवाला वृषरूपधारी मैं ही धर्म था। उस समयके पाप-

शून्य मनुष्य लोग इन्द्रियोंको एकाग्र करके विशुद्धरूप मुझ हंसकी उपासना और ध्यान करते थे। त्रेतायुगके आरम्भमें मेरे हृदयसे प्राण द्वारा वेदत्रय आविर्भूत हुए। उस वेदत्रयीरूप विद्यासे तीन रूपवाला यज्ञपुरुष मैं प्रकट हुआ। मेरे विराटरूपके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। मेरी जंघाओंसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास, ये चार आश्रम प्रकट हुए। शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, भक्ति, दया, सत्य व्यवहार—ये ब्राह्मणके स्वभाव हैं। तेज, बल, धैर्य, शूरता, सहनशीलता, उदारता, उद्यम, दृढ़ता, ब्रह्मण्यता और ऐश्वर्य ये क्षत्रियके स्वभाव हैं। आस्तिकता, दानमें निष्ठा ब्राह्मणसेवा, धनोपार्जन ये सब वैश्यके स्वभाव हैं। गऊ, देवता और द्विजवर्णोंकी सेवा ये सब शूद्रके स्वभाव हैं। अशौच, झूठ बोलना, चोरी करना, नास्तिकता, अकारण कलह करना, काम, क्रोध, तृष्णा, लोभ ये चाण्डाल-श्वपच आदि अन्त्यज जातियोंके स्वभाव हैं। अहिंसा, सत्य, क्रोध न करना, काम-लोभके वश न होना, चोरी न करना, प्राणियोंकी हितचेष्टामें रहना, ये सभी वर्णोंके साधारण धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णके बालकोंको चाहिये कि गर्भाधान-जातकर्म आदि संस्कारोंके उपरान्त क्रमशः यज्ञोपवीत संस्कार नामक दूसरा जन्म होनेपर जितेन्द्रिय और नम्र होकर गुरुकुलमें वास करें। वहाँ गुरुसे वेदाध्ययन करें और मननपूर्वक वेदका अर्थ विचारें। ऐसे विद्यार्थी ब्रह्मचारीको चाहिये कि मौञ्जी, मेखला, कृष्णाजिन, दण्ड, रुद्राक्षकी माला,

ब्रह्मसूत्र और कमण्डलु धारण करे। जटा धारण किये रहे। रंगीन आसनपर न बैठे। वस्त्र न धुलावे। कुश धारण करे। स्नान, भोजन, हवन, जप और मलमूत्र त्यागके समय मौन रहे। नख न काटे। बाल न बनावे। भूलकर भी वीर्यपात न करे। यदि स्वप्नावस्थामें कभी आप ही आप वीर्यपात हो जाय तो जलमें स्नान करके प्राणायामपूर्वक गायत्रीका जप करे। यदि महर्लोक, जनलोक, तपोलोक अथवा जहाँ सब वेद मूर्तिमान् होकर रहते हैं, उस ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा हो तो बृहत् व्रत अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करना चाहिये। विद्या पढ़ चुकनेपर यदि सकामभावसे गृहस्थाश्रममें जानेकी इच्छा हो तो गुरुको दक्षिणा देकर ब्रह्मचर्य समाप्त करे। फिर अपने घर जाकर विवाहोपरान्त सन्तानोत्पादन करे। यदि निष्काम हो तो वानप्रस्थ होकर वनमें चला जाय। यज्ञ करना, दान देना और पढ़ना ये तीनों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिए आवश्यक और साधारण धर्म हैं। दान लेना, पढ़ाना और यज्ञ कराना ये तीन धर्म (वृत्तियाँ) केवल ब्राह्मणके लिए विहित हैं। किन्तु दान लेनेसे तप, तेज और यश क्षीण होता है और पढ़ाने तथा यज्ञ करानेमें दीनता प्रकट होती है। इसलिए ब्राह्मणको चाहिये कि जहाँ तक हो सके दान लेनेकी वृत्ति न स्वीकार करे। केवल पढ़ाने और यज्ञ करानेकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह करे। यदि सम्भव हो तो इन दोनोंको भी छोड़कर शिलोञ्छवृत्ति अर्थात् खेतोंसे अन्न बीनकर जीवन यापन करे। तपस्या परलोकमें सुख देती है। आसक्तिशून्यभावसे गृहस्थाश्रममें रहकर भी शान्ति मिलती है। मत्परायण

व्यक्तिको मैं सदा विपत्तियोंसे बचाता हूँ। ज्ञानी व्यक्ति आप ही अपनी रक्षा कर सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य नीच-सेवा और निन्दनीय कर्म न करें। भक्तिमान् व्यक्ति मेरी पूजा करते हुए गृहमें रहें या वनमें, कहीं भी सद्गति पा सकते हैं। स्त्रैण, कृपण और मूढ़ व्यक्ति दुःख पाते और गृहासक्त रहकर अन्तमें मृत्युके बाद तामसी एवं नीच योनिमें जन्म लेते हैं।

अष्टादश अध्याय

संन्यासधर्म-निरूपण

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! वनमें जानेकी इच्छा होनेपर पत्नीको समर्थ पुत्रोंके हाथ सौंप अथवा अपने ही साथ रखकर आयुके तीसरे भागमें वनमें जाकर वास करे। वहाँ विशुद्ध कन्दमूल और फल खाकर जीवन धारण करे। वस्त्रके स्थानपर बल्कल पहने। सिरके बाल, दाढ़ी-मूछ, शरीरके रोम और नख न कटावे। मैल न छुड़ावे। दन्तधावन न करे। तीनों काल जलमें घुसकर स्नान करे और पृथ्वी पर सोवे। ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्नि तापे। वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें रहे और जाड़ेमें गलेतक पानीमें बैठे। इस प्रकार घोर तप करना चाहिये। इस तरह तपमें मग्न रहकर निष्कामभावसे भक्तिपूर्वक मुझे भजनेसे मुनि यहीं मुक्त हो जाता है। भली भाँति विरक्त हो उठनेपर वानप्रस्थको चाहिये कि आहवनीय अग्नियोंको अपनेमें लीनकर संन्यास ग्रहण करे। संन्यासीको केवल एक लंगोटी पहनना चाहिये। आपत्कालके अतिरिक्त सर्वदा केवल दण्ड-कमण्डलु धारण करना चाहिये।

छानकर जल पीना चाहिये। संन्यासी चारों वर्णोंमें भिक्षा कर सकता है। पतित लोगोंके यहाँ भिक्षा करना निषिद्ध है। संन्यासीको एक स्थानपर न रहना चाहिये। सङ्गहीन, जितेन्द्रिय और समदर्शी होकर अकेले इच्छानुसार पृथ्वीपर पर्यटन करते रहना चाहिये। निर्भय और निर्जन स्थानमें रहकर मेरी विशुद्ध भक्तिसे निर्मल हो जाना चाहिये। हृदयमें मुझे अपनेसे अभिन्न देखे और विचारे। मेरी भक्ति द्वारा मनके साथ छः इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतकर इच्छानुसार विचरना चाहिये। सब क्षुद्र कामनाओंसे विरक्त होकर आत्मचिन्तनमें परमानन्दका अनुभव करना चाहिये। जिसने काम-क्रोध रूप छः शत्रुओंके दलको नहीं जीता और प्रचण्ड इन्द्रियरूप घोड़े जिसके बुद्धिरूप सारथीको इधर-उधर घसीटते फिरते हैं, जिसके हृदयमें ज्ञान-विज्ञानका लेश नहीं है, वह धर्मघातक है। शान्ति और अहिंसा संन्यासीका मुख्य धर्म है। ईश्वर-चिन्तन और तप वानप्रस्थीका मुख्य धर्म है। प्राणियोंका पालन और पूजन गृहस्थका मुख्य धर्म है और गुरुकी सेवा करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है। अनन्यभावसे इस प्रकार अपने धर्मके द्वारा जो कोई मुझे भजता है और सर्वत्र तथा सबमें मुझे देखता है, वह शीघ्र ही मेरी विशेष भक्तिरूपा मुक्तिशक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ हो जाता है। तब वह भक्त सुदृढ़ भक्तिसे मुझ वैकुण्ठवासी ब्रह्ममें मिल जाता है। वर्णाश्रमाचारी लोगोंका यही धर्म है, यही आचार और यही लक्षण है। मेरी भक्तिके साथ इनके पालनसे परम मुक्ति मिलती है।

ऊनविंश अध्याय

श्रेयभेद-वर्णन

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! मैं ही ज्ञानीका अभिमत और अपेक्षित स्वार्थ, उस स्वार्थका हेतु, स्वर्ग-अपवर्ग अर्थात् मुक्ति हूँ। मेरे अतिरिक्त उसको और कुछ भी प्रिय नहीं है। ज्ञानी लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। क्योंकि वे ज्ञानके द्वारा मुझे अपने हृदयमें रखते हैं। उद्धवने कहा—हे विश्वमूर्ति ! वैराग्य-विज्ञानसम्पन्न सनातन विशुद्ध ज्ञान मुझे स्पष्टरूपसे बताइये। ब्रह्मादि महत् लोग जिसे खोजते हैं, वह भक्तियोग भी कृपापूर्वक कहिये और मेरा उद्धार कीजिये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! राजा युधिष्ठिरने भी पहले श्रेष्ठ धार्मिक भीष्मपितामहसे हम सब लोगोंके सामने यही पूछा था। कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध निवृत्त होनेपर बन्धु-विनाशसे व्याकुल युधिष्ठिरने शरशय्याशायी भीष्मके निकट इसी प्रकार मोक्षसाधक धर्मोंको पूछा था। ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा और भक्तिसे परिवर्धित मोक्षधर्म जैसा कि हम लोगोंने सुना था, तुमसे कहता हूँ। जिससे सब प्राणियोंमें अट्ठाईसों तत्त्व प्रत्यक्ष अनुगत जान पड़ें और इन तत्त्वोंमें एक आत्मतत्त्वका अनुभव किया जाय, वही मुझ सत्-ब्रह्मका निश्चित ज्ञान है। जिससे एकके अनुगत अनेक भावोंको न देखकर केवल उसी एक परमकारण ब्रह्मको देखते हैं, वही विज्ञान है। प्रलय होनेपर जो कुछ अवशिष्ट रह जाता है, वही सत् पदार्थ है। मेरी मुक्तिदायिनी सुधा समान मधुर कथा सुननेमें श्रद्धा, मेरी कीर्तिका कीर्तन, मेरी पूजामें पूर्ण निष्ठा, प्रशंसा

मेरे स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति, आदर सहित मेरी सेवा, मेरे भक्तोंकी पूजा, सब प्राणियोंमें मुझे देखना, सर्वतोभावसे मुझमें चित्त लगाना, सब कामनाओंको मुझमें छोड़ देना, यज्ञ दान होम जप तप और व्रत करना—ये ही धर्मकर्म मेरी प्रेमरूपिणी भक्तिके साधन हैं। हे उद्धव! आत्मसमर्पणपूर्वक उक्त धर्मों द्वारा मेरी आराधना करनेसे मेरी प्रेमरूपिणी भक्ति प्राप्त होती है। जब इस प्रकार शान्त और सत्त्वपूर्ण चित्त आत्माको अर्पित होता है, तब स्वयं धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जिससे मेरी भक्ति हो, वही धर्म है। सबमें एकमात्र आत्माको देखना ही ज्ञान है। विषयोंका संग छोड़ देना वैराग्य है और अणिमा आदि सिद्धियोंको ऐश्वर्य समझना चाहिये। उद्धवने कहा—हे कृष्ण! शम दम यम नियम आदि मुझे समझाकर बताइये। दान, तप और शूरता किसे कहते हैं। सत्य और ऋत भी बताइये। त्याग क्या है? इष्ट अर्थात् प्रशंसनीय उत्तम धन कौन है? यज्ञ और दक्षिणा किसे कहते हैं? पुरुषका बल क्या है? भग अर्थात् श्रेष्ठ ऐश्वर्य क्या है? परम ह्री और श्री क्या है? सुख और दुःख क्या है? पण्डित और मूर्ख कौन है? मार्ग क्या है? कुमार्ग क्या है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है? बन्धु कौन है? गृह क्या है? आढ्य अर्थात् सम्पन्न कौन है? कृपण अर्थात् शोचनीय कौन है? ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र या समर्थ कौन है? श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, असङ्ग, लज्जा, असञ्चय, आस्तिक्य, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और भय ये बारह यम हैं। शौच (भीतर-बाहरकी शुद्धि) जप-तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, मेरी

पूजा, तीर्थपर्यटन, परोपकार, सन्तोष और आचार्य-गुरुकी सेवा—ये बारह नियम हैं। इनका पालन करनेसे मनुष्योंको वाञ्छित फल प्राप्त होते हैं। केवल शान्ति नहीं, वरन् मुझमें बुद्धिकी निष्ठा ही शम है। चोर आदि दुष्टोंका दमन नहीं, वरन् इन्द्रियोंका संयम ही दम है। भार आदि सहना नहीं, वरन् प्राप्त दुःख सहना ही तितिक्षा है। जिह्वा और उपस्थ इन्द्रियको वशमें रखना ही धैर्य है। प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचाना ही परमदान है। भोग-कामनाका त्याग ही परम तप है। स्वभाव और वासनाको रोकना ही शूरता है। सत् ब्रह्मकी आलोचना या समदृष्टि ही सत्य है। प्रिय और मीठी वाणीको ही ऋत कहते हैं। कर्मोंमें आसक्त न होना ही शौच है। कर्मोंका त्याग अर्थात् संन्यास ही त्याग है। धर्म ही प्रशंसनीय धन है। मेरी आराधनाके उद्देश्यसे यज्ञ करना ही यज्ञ है। साक्षात् मैं परमेश्वर ही यज्ञपुरुष हूँ। दुर्दमनीय मनका दमन करनेवाला प्राणायाम ही परम बल है। मेरा छः प्रकारका अलौकिक ऐश्वर्य ही भाग्य है। मेरी भक्ति मिलना ही परमलाभ है। मेरी मायाको समझना अर्थात् आत्मज्ञान ही विद्या है। न करने योग्य कामोंमें हेय बुद्धि होना ही लज्जा है। निरपेक्षता आदि गुण ही श्री अर्थात् शोभा है। सुख-दुःखका अतिक्रम ही सुख है। विषयभोगकी वासना दुःख है। बन्धन और मोक्ष दोनोंको जाननेवाला ही पण्डित है। देह-गेहादिमें अहंबुद्धि रखनेवाला ही मूर्ख है। निवृत्तिमार्ग ही श्रेष्ठ मार्ग है। चित्तको व्यस्त करनेवाला प्रवृत्तिमाग ही कुमार्ग है। सत्त्वगुणका उदय होना ही स्वर्ग है। तमोगुणकी वृद्धि नरक है। गुरु ही बन्धु है।

मनुष्यशरीर गृह है। गुणाढ्य ही आढ्य है। असन्तुष्ट ही दरिद्र है। अजितेन्द्रिय ही कृपण अर्थात् शोचनीय है। विषयोंमें निर्लिप्त या अनासक्त पुरुष ही ईश्वर या स्वतंत्र है। मायाके विकारोंमें आसक्त पुरुष ही परतन्त्र है। हे उद्धव! तुम्हारे सब प्रश्नोंका निरूपण मैंने भली-भाँति कर दिया। गुण और दोषके लक्षण और अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं है। इतनेमें ही समझ लेना कि गुण-दोष देखना ही दोष है और गुण-दोषदृष्टि त्याग करना ही गुण है।

विंश अध्याय

भक्तियोग, ज्ञानयोग और क्रियायोग

उद्धवने कहा—हे भगवन्! वेद आपकी आज्ञा है। वह वेद भी विधि और निषेधका बोधक है और करने योग्य तथा न करने योग्य कर्मोंके गुण-दोष बताता है। वर्णों और आश्रमोंका भेद, प्रतिलोम-अनुलोम जातियाँ यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक भी गुण-दोषकी अपेक्षा करते हैं। गुण-दोषकी भेददृष्टिके बिना विधि-निषेधरूप आपका वाक्य वेद कैसे सम्भव हो सकता है? गुणका ग्रहण और दोषका त्याग किये बिना मुक्ति भी कैसे सम्भव हो सकती है? आपकी आज्ञा वेदसे ही गुण-दोष दिखानेवाली भेद-दृष्टि प्राप्त होती और आप ही भेददृष्टिको दोष बताकर उसका निराकरण कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें मुझे भ्रम हो रहा है। कृपापूर्वक मेरा यह भ्रम दूरकर दीजिये। श्रीभगवानने कहा—मैंने मनुष्योंके मोक्षसाधनके तीन उपाय ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग बताये

हैं। कर्मोंके फलको दुःखरूप जानकर कर्मत्याग करनेवाले निष्काम जनोंके लिए ज्ञानयोग सिद्धिदायक है और कर्मके फलोंको सुखरूप समझनेवाले सकाम लोगोंके लिए कर्मयोग सिद्धिदायक है। अकस्मात् भाग्योदय हो जानेसे जिसे मेरी कथा आदिमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और जो फलोंमें न अत्यन्त आसक्त हैं और न अत्यन्त विरक्त हैं, उनके लिए भक्तियोग सिद्धिदायक है। जबतक कर्मफलके प्रति विरक्ति न हो अथवा जबतक मेरी कथा कहने-सुननेमें श्रद्धा न उत्पन्न हो, तबतक कर्म अवश्य करना चाहिये। सब कर्मोंसे विरक्त होकर भक्तियोगसे निरन्तर भजनेवालेके हृदयमें मैं विराजमान होता हूँ और क्रमशः उसके हृदयकी सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। जो कामनाशून्य और निरपेक्ष है, उसीको मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है। हे उद्धव ! जो लोग मेरे बताये इन मार्गोंपर चलते हैं, वे कालमायादिसे रहित क्षेममय मेरा परमपद प्राप्त करते हैं।

एकविंश अध्याय

सकाम व्यक्तियोंके लिए द्रव्य आदिके गुण-दोषोंका वर्णन

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! जो लोग इन तीनों मार्गोंको छोड़कर चंचल चित्तसे क्षुद्र विषयोंका सेवन करते हैं, वे बार-बार अनेक योनियोंमें जन्म लेते रहते हैं। ज्ञान और भक्तिके अनधिकारी कर्मासक्त लोगोंके लिए मैंने ही मनु आदि विभिन्न रूपोंसे योग्य-अयोग्यका संशय दूर करनेके लिए धर्म, व्यवहार तथा जीवनरक्षाके निमित्त वस्तुओंकी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष और

शुभ-अशुभकी कल्पना की है। कर्मोंको संकुचित करनेके लिए मैंने देश-काल आदि भावों और वस्तुओंमें गुण-दोषका विधान किया है। स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म और मेरा स्मरण करनेसे शरीरके साथ आत्मा भी पवित्र होती है। इस प्रकार शुद्ध होकर द्विजवर्णोंको विहित कर्म करना चाहिये। जबतक ज्ञान या भक्ति न उत्पन्न हो तबतक गुण-दोषकी बुद्धि आवश्यक है। जब क्रमशः ज्ञान या भक्तिका अधिकारी हो जाय तब गुण-दोष-बुद्धि और कर्म दोनोंको ही छोड़ देना चाहिये। किन्तु वेदके निगूढ़ भावको न समझकर जो लोग वेदको प्रवृत्ति-परक मानते हैं, वे विषयोंमें गुणविवेचना करनेसे उनमें आसक्त हो जाते हैं। विषयमें आसक्ति होनेसे उसे पानेकी इच्छा प्रबल होती है। विषयलाभका लोभ प्रबल हो जानेसे मनुष्योंमें परस्पर कलह होता है। कलहसे क्रोध उत्पन्न होता और क्रोध होनेपर विवेक नष्ट हो जाता है। अविवेकके आवरणसे पुरुषकी चेतना अर्थात् कार्य-अकार्यकी स्मरणशक्ति आच्छन्न हो जाती है। कामना ही अनर्थकी जड़ है। कामाभिलाषी व्यक्ति मुझे देख नहीं सकते। जो विषयसुखमें लिप्त रहकर आत्मा और परमात्माको जाननेका यत्न नहीं करता, वह विमूढ़ व्यक्ति वृक्षोंके तुल्य जड़ जीव है और साँस लेते रहनेपर भी धौंकनीकी तरह मृततुल्य रहता है। जो लोग वेदका निगूढ़ तात्पर्य न समझकर उसे प्रवृत्तिपरक मानते हैं, वे भ्रान्त हैं। वेदके यथार्थ भावको जाननेवाले वेदान्ती लोग, फल-श्रुतिसे मोहित नहीं होते। कर्मवादी और शारीरिक सुखको ही परमार्थ मानकर मोहान्धकारमें पड़े लोग हृदयमें ही स्थित

विश्वोत्पादक मुझ अन्तर्यामी परमात्माको नहीं जानते। वे विषयी पुरुष मेरा गूढ़ मत न समझकर व्यर्थ ही पशुओंकी हिंसा करते हैं। वे ही पशु उनके मरनेपर दूसरे जन्ममें उनको मारते हैं। वेदवाक्यका यथार्थ अर्थ न समझकर और कर्मोंको हेय न जानकर हिंसामें रत रहनेवाले खल लोग इन्द्रियसुखकी इच्छासे पशुबलिके द्वारा देवताओं, पितृगण और भूतपतियोंका यजन करते हैं। वे परलोकमें अनेक प्रकारके सुखोंकी कल्पना करके कामासक्त होकर कर्म करते हुए दोनों लोकोंको नष्ट कर देते हैं।

द्वाविंश अध्याय

तत्त्वके सम्बन्धमें विभिन्न मतोंका विरोधभञ्जन

उद्धवने कहा—हे प्रभो! ऋषि लोग जिस अभिप्रायसे तत्त्वोंकी भिन्न-भिन्न संख्या बताते हैं, वह आप मुझे बताइये। श्रीभगवानने कहा—हे साधो! ब्राह्मणोंने जो तत्त्वसंख्या बतायी है, वह ठीक ही है। क्योंकि सब तत्त्व सब तत्त्वोंके अन्तर्गत हैं। मायाका आश्रय लेकर विवाद करनेवालोंके लिए मेरी सत्त्व आदि शक्तियाँ दुरत्यय हैं। सब तत्त्व परस्पर अनुप्रविष्ट हैं। अतएव वक्ताके उद्देश्यानुसार कार्य-कारणभावसे तत्त्वोंकी अधिक और अल्पसंख्या दोनों ही ठीक हैं। अनादि अविद्यासे आवृत पुरुषको आप हीसे आत्मज्ञान होना असम्भव है। अतएव अन्य तत्त्वज्ञ व्यक्तिको अवश्य ही उसे ज्ञानोपदेश करना होगा। इस प्रकार आत्माको ज्ञान देनेवाले परमात्माको आत्मासे अलग मानकर छब्बीस तत्त्व कहना अयोग्य नहीं है। किन्तु इस विषयमें पुरुष और

ईश्वरमें अणुमात्र भी विलक्षणता नहीं है। क्योंकि दोनों ही चिद्रूप हैं। ज्ञान प्रकृतिका ही गुण है और गुणोंकी समता ही प्रकृति है। सृष्टि, स्थिति, प्रलयके कारणस्वरूप रज, सत्त्व और तम—ये तीनों प्रकृतिके ही गुण हैं—आत्माके नहीं हैं। इस संसारमें ज्ञान ही सतोगुण है, कर्म ही रजोगुण है और अज्ञान ही तमोगुण है। गुणोंका क्षोभ ही काल है और स्वभाव ही महत्तत्त्व है। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश—ये मुख्य नौ तत्त्व मैंने कहे हैं। कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका और रसना—ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। वाक्, हस्त, उपस्थ, पायु और पाद—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। मन उभयात्मक है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। गति, उक्ति, मैथुन, मल-त्याग और शिल्प—ये कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं। ऋषियोंने कई प्रकारसे तत्त्वोंकी जो संख्या कही है, वह युक्तियुक्त होनेके कारण सभी न्याय्य हैं। उद्धवने कहा—हे श्रीकृष्ण! प्रकृति और पुरुषका भेद मुझे समझाकर बताइये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! प्रकृति और पुरुषमें बड़ाभारी भेद है। यह सृष्टि गुण-क्षोभकृत होनेके कारण विकारसम्पन्न है। मेरी अनेकरूपिणी गुणमयी माया गुणोंके द्वारा विविध भेदभाव उपजाती है। विविध विकारसम्पन्न होनेपर भी स्थूलरूपसे यह कारणसृष्टि तीन प्रकारकी है—अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव। चक्षु अध्यात्म है, रूप अधिभूत है और चक्षुगोलकमें प्रविष्ट सूर्यका अंश अधिदैव है। ये तीनों परस्पर सापेक्षभावसे प्रकाशित होते हैं, किन्तु

आकाशमें जो सूर्यदेव हैं, वे निरपेक्षभावसे स्वयं प्रकाशित हैं। अतएव इन अध्यात्म आदिका कारण एकमात्र आत्मा अभिन्न होनेपर भी सबसे भिन्न है। वह अपने स्वयंसिद्ध प्रकाशसे प्रकाशकोंका भी प्रकाशक है। उद्धवने कहा—हे प्रभो! जिनका मन आपसे विमुख है, वे अपने कर्मोंसे जिस प्रकार उत्तम और अधम शरीर ग्रहण और परित्याग करते हैं, यह विषय कृपापूर्वक मुझसे कहिये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! मनुष्योंका कर्ममय मन पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके साथ इस लोकसे अन्य लोकमें और वहाँसे फिर अन्य लोकमें जाता रहता है। अहंकारके कारण आत्मा भी उसका अनुसरण करता है। कर्मानुसार प्राप्त देवादि देहोंमें अत्यन्त अभिनिवेशसे मन अपने पूर्व देहको भूल जाता है। हर्ष-शोकादिके कारण जीव पूर्वदेहकी स्मृति भूल जाता है। देहकी भाँति जीव नष्ट नहीं होता। देहकी भाँति आत्मा उत्पन्न नहीं होता। जीवका जन्म और मरण क्रमशः मनोरथ और स्वप्नके समान है। आत्मा ही बाहरी और आन्तरिक भेदका हेतु है। आत्मा अजर-अमर है। अपने कर्मोंसे यह जन्मता या मरता नहीं है, किन्तु भ्रान्तिवश अपने जन्म-मरणका आरोप करता है। गर्भमें प्रवेश, गर्भमें वृद्धि, जन्म, बाल्य, कौमार, यौवन, मध्यवयस, जरा और मृत्यु—ये नौ अवस्थाएँ शरीरकी हैं। किन्तु प्राकृतिक अविवेकके कारण शरीरकी इन मनोरथमयी उच्च-नीच अवस्थाओंको गुणसंग द्वारा जीव स्वयं स्वीकार करता है। ईश्वरकी कृपासे विवेक प्राप्त करके कहीं कभी कोई पुरुष इसे त्याग भी देता है। विवेकविहीन पुरुष आत्माको

वास्तवमें प्रकृतिसे भिन्न न विचारनेके कारण देहाभिमानमें मोहित होकर आवागमनरूप संसारको प्राप्त होता है। अविवेकसे मूढ़ जीव सतोगुणके संसर्गसे ऋषि और देव, रजोगुणके संसर्गसे नर और असुर तथा तमोगुणके संसर्गसे भूत और पशु-पक्षी आदि योनियोंमें कर्मानुसार भ्रमण करता रहता है। इस कारण हे उद्धव! भ्रान्त इन्द्रियों द्वारा विषयभोग न करो। असाधुजन तिरस्कार या अपमान करें तो भी मोक्ष चाहनेवालोंको विचलित न होना चाहिये। उद्धवने कहा—हे भगवन्! आपका यह उपदेश समझमें नहीं आता। आपके धर्ममें निरत शान्तचित्त साधुओंके अतिरिक्त असज्जनकृत अपने अपमानको विवेकीजन भी नहीं सह सकते। क्योंकि मानवप्रकृति बड़ी ही प्रबल होती है।

त्रयोविंश अध्याय

तिरस्कार सहनेका उपाय

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! दुर्जनोंकी दुरुक्तियोंसे विचलित न होनेवाले साधु इस संसारमें बहुत ही कम हैं। इस विषयमें एक महापवित्र और प्राचीन इतिहास मैं सुनाता हूँ। एकाग्र मनसे सुनो। मालवदेशमें एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था। वाणिज्य वृत्तिसे उसने बहुत धन एकत्र किया। वह बहुत ही क्रोधी, कामी और लोभीके सिवा बड़ा कृपण भी था। स्वजातियों और अतिथियोंका आदर तो दूर रहा, कभी सीधे बातचीत भी नहीं करता था। अपने शरीरको भी सामयिक भोगसे वह वञ्चित

रखता था। अतएव धर्मशून्य उस ब्राह्मणपर देवताओंने भी क्रोध किया। उसका धन धीरे-धीरे नष्ट होने लगा। सब धन नष्ट हो जानेपर धर्मकामविवर्जित और स्वजनोंसे उपेक्षित तथा अपमानित उस ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। पश्चात्ताप करते-करते एकाएक उसके चित्तमें महावैराग्य उत्पन्न हुआ। वैराग्य हो जानेपर वह ब्राह्मण आप ही आप कहने लगा—अहो! धन कितना कष्टदायक है। मैं वृथा ही इतने दिनों तक आत्माको कष्ट पहुँचाता रहा। धर्मभोगशून्य शरीर भी मेरा वृथा हो गया। कदर्य कृपणोंको कभी धनसे सुख नहीं मिलता। धनकी रक्षा और बढ़ानेकी चिन्तामें पड़े रहनेसे उसके शरीरको क्लेश पहुँचता और मरनेपर नरकमें गिरना पड़ता है। प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि धनलाभके लोभसे या स्नेह, क्रोध, मत्सर, काममय आदिके वश होकर कभी धर्म न छोड़े। जबतक धन रहता है तभी तक माता-पिता, स्त्री, पुत्र, स्वजन और आत्मीय सुहृद्गण सभी साथ देते हैं। जब धन नहीं रहता, तब सभी साथ छोड़ देते हैं। अंत समय धन काम नहीं आता। उसे और ही लोग ले जाते हैं। धनसञ्चयमें और बढ़ानेमें बड़ा प्रयास करना पड़ता है। उसकी रखवाली करनेको भी चिन्ता बनी रहती है। नाशका डर अलग लगा रहता है। चोरी हिंसा झूठ दम्भ काम क्रोध घमण्ड मद फूट वैर अविश्वास और दुर्व्यसन इन सभी अनर्थोंकी जड़ धन ही है। इसलिए अपनी भलाई चाहनेवालेको अर्थसे दूर ही रहना चाहिये। धनके कारण भाई स्त्री पिता-माता बन्धु-बान्धव आदि आत्मीय अलग छूट जाते और एक दमड़ी कौड़ीके कारण अत्यन्त प्रिय मित्र भी

शत्रु हो जाते हैं। देवताओंका प्रार्थित मनुष्यशरीर पाकर उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मणवर्णमें जन्म लेकर जो मनुष्य प्रमादवश उसे वृथा ही नष्टकर देते हैं, उनकी दुर्गति होती है। यह मनुष्यशरीर स्वर्ग और मोक्षका द्वार है। मेरी आयु व्यर्थ ही धन जमा करनेकी चिन्तामें बीत गयी। अब तो मैं वृद्ध हो चुका। इस अवस्थामें शक्ति और धनसे हीन मैं क्या साध सकता हूँ ! अवश्य ही सर्वदेवमय भगवान हरि मुझपर प्रसन्न हुए हैं। उन्हींके अनुरागसे मेरी यह दशा हुई है और मुझे संसारसागरको पार करनेवाली नौकाके समान वैराग्य प्राप्त हुआ है। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! उस मालवदेशीय ब्राह्मणने मनमें ऐसा निश्चय करके अहङ्कारादि हृदयकी ग्रन्थियोंको खोलकर ईश्वरमें मन लगा दिया और शान्त भिक्षुक मुनि होकर मन, इन्द्रिय और प्राणवायुको जीतकर इस पृथ्वीपर विचरने लगा। अब वह अनासक्त भिक्षुक अलक्षितभावसे भिक्षाके लिए नगरोंमें जाता था। उस समय देखनेमें मलिन तथा वृद्ध उस भिक्षुकको बहुतसे मदान्ध दुष्ट लोग अनेककटु वचन कहते हुए पीड़ा पहुँचाने लगे। कोई कमण्डलु, कोई भोजनपात्र, कोई कथरी और कोई कपड़ा लेकर भाग जाते थे। कोई अन्नपर मूत देता और कोई मस्तकपर थूक देता था। इतने उपद्रवपर भी जब साधु कुछ न बोलता तो वे लोग उसे और सताने लगते और मारते भी थे। कुवाक्य कहकर लोग डाँटते और रस्सीसे बाँध देते थे। किन्तु वह विरक्त ब्राह्मण अपने दैहिक, दैविक, भौतिक, त्रिविध दुःखको दैव द्वारा प्राप्त और अवश्यभोक्तव्य समझकर चुपचाप सहता हुआ किसीको कुछ नहीं कहता था। वह

सात्त्विक विप्र धैर्यधारणपूर्वक अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ। दुष्टों द्वारा सताये जानेपर वह भिक्षुक कहने लगा—ये लोग देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म या काल कोई भी मेरे सुख अथवा दुःखके कारण नहीं हैं। सुख या दुःखका कारण एकमात्र मन ही माना गया है। प्रबल मनसे ही गुणवृत्तियोंकी सृष्टि होती और उन वृत्तियोंसे सात्त्विकादि त्रिविध कर्मोंका उदय होता है। दान, स्वधर्म, नियम, यम, वेदाध्ययन, सम्पूर्ण सत् कर्म और सत्यव्रत आदिका अन्तिम फल मनका दमन ही है। मनको वशमें करके उसका एकाग्र करना ही परमयोग है। यह दुर्जय शत्रु मर्मभेदी है। इसका वेग असह्य है। केवल मनके द्वारा परिकल्पित इस शरीरपर अहम्भाव स्थापित कर 'मैं हूँ, मेरा है'—इस प्रकारकी भेदभावनासे मोहित मनुष्यगण भ्रममें पड़कर अपार संसारमें भ्रमते हैं। आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है—यदि है तो मिथ्या है। जब सर्वत्र आत्मा एक ही है तब किस प्रकार किसीपर कोप किया जाय? इसलिए सुख-दुःख भ्रान्तिमात्र हैं। आत्मा तो शरीरसे भिन्न है। वह सुख-दुःखका हेतु नहीं है। मैं पूर्वतम महर्षियों द्वारा आश्रित परमात्मनिष्ठाका आश्रय लेकर मुकुन्द-चरणसेवा द्वारा घोर संसारसागरको पार करूँगा। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! असाधुजनोंके पीड़न और तिरस्कारसे वह ज्ञानी भिक्षुक अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ और संन्यस्त होकर यही गाथा गाता हुआ पृथ्वीपर विचरता रहा। हे उद्धव! पुरुषका सुख या दुःख देनेवाला अन्य कोई नहीं है। मित्र, शत्रु, उदासीन और समग्र संसारकी कल्पना अवास्तविक और मनका

भ्रममात्र है। अतएव मुझमें आसक्त बुद्धिसे युक्तिपूर्वक अपने मनको वशमें करो। यही योगमात्रका सार संग्रह है। जो ब्रह्मनिष्ठामय व्यक्ति इस भिक्षुगीतको एकाग्रचित्त होकर श्रद्धासहित सुनता सुनाता और मनन करता है, वह सुख-दुःख आदि द्वन्द्वधर्मोंसे कभी भी अभिभूत नहीं होता।

चतुर्विंश अध्याय

सांख्ययोग

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! कपिलदेव आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा विवेचित सांख्ययोग अब मैं तुमसे कहता हूँ—सुनो। सांख्ययोग जान लेनेसे पुरुषका भेदभावजनित सुख-दुःख आदि भ्रम दूर हो जाता है। पहले प्रलयकालमें यह सब दिखाई देनेवाला विश्वप्रपञ्च विकल्पशून्य एकमात्र अद्वितीय और परब्रह्ममात्र था। तदनन्तर युगारम्भमें भी, जिस समय सभी लोग विवेकनिपुण थे, भेदभावकी स्फूर्ति न होनेके कारण उसी प्रकार ब्रह्ममात्र था। उसके बाद वह वाणी और मनसे अतीत एकमात्र अभिन्न सत्यरूप ब्रह्म माया और प्रकाशके रूपसे दो हुआ। उन दो अंशोंमें एक प्रकृति है। वह उभयात्मिका है। दूसरा अंश पुरुष है। वह ज्ञान अर्थात् चेतन है। उसके बाद ईश्वरकी मायासे सत्त्व रज और तम ये तीन गुण उत्पन्न हुए। उन गुणोंसे क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई। उससे क्रियाशक्तियुक्त ज्ञानशक्ति प्रकट हुई। उसके विकृत होनेपर उससे अहंकार उत्पन्न हुआ। वह अहंकार ही भ्रम उत्पादन करता है। अहंकार तीन

प्रकारका है—वैकारिक तैजस और तामस। वह अहंकार तन्मात्रा इन्द्रिय और मनका कारण है। तन्मात्रजनक तामस अहंकारसे पञ्चतत्त्व अर्थात् पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश उत्पन्न हुए। तैजस अहंकारसे इन्द्रियोंका आविर्भाव हुआ। वैकारिक अहंकारसे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता ग्यारह देवताओंकी सृष्टि हुई। मेरा आदेश पाकर इन कारणोंने परस्पर मिलकर मेरा वासस्थान उत्तम अण्ड उत्पन्न किया। मैं जलस्थित उस अण्डमें रहने लगा। मेरी नाभिसे विश्वनामक कमल उत्पन्न हुआ। उस कमलसे स्वयम्भू ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माजीने तपस्या करके मेरे अनुग्रहसे रजोगुण द्वारा लोकपाल सहित भूः भुवः स्वः ये तीन लोक और अतलादि सात तथा महर्लोक आदि सात—ये चौदह भुवन रचे। स्वर्गलोक देवताओंके रहनेके लिए है। भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) भूत आदि उपदेवताओंके रहनेका स्थान है। भूर्लोक मनुष्यों आदिका वासस्थान है। इन तीनोंसे ऊपरके सात लोकोंमें सिद्धजन रहते और नीचेके सात पातालोंमें असुर नाग आदि रहते हैं। त्रिगुणात्मक कर्मोंके अनुसार तीन लोकोंमें जीवकी गति होती है। सृष्टि स्थिति और प्रलय ईश्वराधीन हैं। हे उद्धव! इस विश्वरूप कार्यका उपादान प्रकृति, अधिष्ठाता परम पुरुष और अभिव्यक्त करनेवाला काल—ये तीनों मेरे ही अंश हैं। मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ। मुझ कालरूपसे व्याप्त ब्रह्माण्ड विविध सृष्टियों और लयोंकी लीलाभूमि है। प्रलयकाल आनेपर यह समूचा ब्रह्माण्ड पञ्चतत्त्वरूप विभागके उपयुक्त होता है। उस समय शरीर अन्नमें, अन्न अंकुरमें, अंकुर भूमिमें, गन्ध जलमें, जल रसमें,

रस तेजमें, तेज रूपमें, रूप वायुमें, वायु स्पर्शमें, स्पर्श आकाशमें तथा आकाश शब्दमें लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ अपने प्रवर्तक देवताओंमें और वे देवता अपने नियन्ता राजस अहंकाररूप मनमें लीन हो जाते हैं। मन वैकारिक अहंकारमें लीन हो जाता है इत्यादि। संशयकी गाँठ खोलनेवाली यह सांख्यविधि मैंने तुमसे कही है।

पञ्चविंश अध्याय

सत्त्वादि गुणोंका वृत्तिनिरूपण

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! पृथक् पृथक् सत्त्वादि गुणोंमेंसे जिस गुणसे युक्त पुरुष जिस प्रकारका होता है, वह मैं तुमको बताता हूँ। तुम ध्यान देकर सुनो। शम दम सहनशीलता विवेक स्वधर्मपालनरूप तप सत्य दया पूर्वापरका विचार सन्तोष दान वैराग्य आस्तिकता अनुचित काम करनेमें लज्जा सरलता विनय आत्मरति आदि सभी सत्त्वगुणकी वृत्तियाँ हैं। अभिलाषा चेष्टा दर्प असन्तोष गर्व धन आदिके लिए देवताओं आदिसे प्रार्थना भेदबुद्धि विषयभोग पदयुक्त युद्धादिमें उत्साह अपनी बड़ाई चाहना उपहास प्रभाव प्रकाश बलपूर्वक उद्यम करना—ये सब रजोगुणकी वृत्तियाँ हैं। क्रोध लोभ झूठ हिंसा याचना दम्भ श्रम कलह शोक मोह विषाद आलस्य आशा भय जड़ता—ये सब तमोगुणकी वृत्तियाँ हैं। तीनों गुणोंके मेलकी मिश्रित वृत्ति सुनो। मैं हूँ—मेरा है—इस प्रकारकी अहंबुद्धिमें तीनों गुणोंका मेल या सन्निपात है। अहंबुद्धिपूर्वक मन द्रव्य और इन्द्रियोंके

सब व्यवहार सन्निपातकी वृत्तियाँ हैं। धर्म अर्थ और काममें निरत रहना सन्निपातका कार्य है। श्रद्धा आसक्ति और धन—ये इस सन्निपातके त्रिगुणात्मक फल हैं। सकाम धर्ममें निष्ठा, गृहाश्रममें आसक्ति, नित्य नैमित्तिकधर्ममें लगा रहना—ये गुण-संसृष्टिके कार्य हैं। शम आदि गुणोंसे युक्त पुरुषको सात्त्विक, काम आदि व्यसनोंसे युक्त पुरुषको राजस और क्रोध आदि दोषोंसे युक्त पुरुषको तामस समझना चाहिये। निरपेक्ष भावसे कर्म करता हुआ अपने कर्मोंसे भक्तिके साथ मेरी अर्चना करनेवाले लोग सत्त्वप्रकृतिके होते हैं। सकाम भावसे मेरा भजन-पूजन करनेवाले राजसी प्रकृतिके होते हैं। हिंसाकी वासनासे मेरा भजन-पूजन करना तामसी प्रकृतिवालोंका लक्षण है। सत्त्व, रज, तम—ये गुण जीवके हैं, मेरे नहीं हैं। प्रकाशक स्वच्छ और शान्त सत्त्वगुण जब रजोगुण और तमोगुणको जीत लेता , तब पुरुष सुख धर्म और ज्ञान आदिसे युक्त होता है। जब आसक्ति, भेद और प्रवृत्तिका प्रकाशक रजोगुण अन्य दो गुणोंको दबाता है, तब जीव कर्ममें प्रवृत्त होता तथा यश और धन पाकर दुःख भोगता है। जब विवेक मिटानेवाला आवरणमय एवं आलस्यमय तमोगुण बढ़ता है, तब शोक मोह निद्रा हिंसा और आशामें ही मनुष्य मग्न रहता है। सत्त्वके द्वारा क्रमशः ब्रह्मलोक पर्यन्त उच्च गति मिलती है। रजोगुणसे मनुष्य-शरीर मिलता है। तमोगुणसे स्थावर पर्यन्त अधोगति होती है। सत्त्वगुणसे स्वर्गलोक, रजोगुणसे नरलोक और तमोगुणसे नरक मिलता है। जीवन्मुक्त निर्गुण जन ही मुझको पाते हैं। मेरी प्रसन्नताके लिए किया गया कर्म सात्त्विक, फलकामनासे

किया गया राजस और हिंसाके लिए किया गया कर्म तामस होता है। देहादिको असत् और आत्माको सत् जानना सात्त्विक ज्ञान है। मैं हूँ—मेरा है—-यह भाव राजस ज्ञान है और साधारण सांसारिक ज्ञान तामस ज्ञान है। मुझमें अपनेको देखना निर्गुण ज्ञान है। वनमें बसना सात्त्विक है। ग्राममें रहना राजस है और जहाँ जुआ आदि कुकर्म होते हों, उस स्थानमें रहना तामस है। मेरे निकेतनमें रहना निर्गुण है। अनासक्त कर्ता सात्त्विक है। अनुरागवश मूढ़ कर्ता राजस है और अनुसन्धानशून्य कर्ता तामस है। केवल मेरा ही आश्रय लेनेवाला निरहंकार कर्ता निर्गुण है। आध्यात्मिक श्रद्धा सात्त्विकी, कर्मकी श्रद्धा राजसी और अधर्मकी श्रद्धा तामसी है। मेरी सेवाकी श्रद्धा निर्गुण है। पवित्र पथ्य और अनायास प्राप्त आहार सात्त्विक है। इन्द्रिय-तृप्तिकर आहार राजस है। पीड़ाकारी अशुद्ध आहार तामस है। आत्माका सुख सात्त्विक है। विषयसुख राजस है। मोह-दैन्यसे मिला सुख तामस है और मुझसे प्राप्त सुख निर्गुण है। हे उद्धव! गुणकर्मके वशमें रहनेवालेको त्रिविध संसारका बन्धन प्राप्त होता है। चिन्ताजनित गुणोंको जीतनेवाला और भक्ति-पूर्वक मेरी निष्ठा प्राप्त करनेवाला मेरे भावको अर्थात् मोक्षको प्राप्त करता है। अतः विचक्षण लोग गुणसङ्ग त्यागकर मुझे भजते हैं। गुणोंसे मुक्त जीव अपनी उपाधि अर्थात् लिङ्गशरीर छोड़कर मुझे प्राप्त करता है। वह फिर संसारमें नहीं आता।

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

षड्विंश अध्याय

ऐलगीत-वर्णन

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! यह जीव मेरा स्वरूप जाननेके साधनरूप नरशरीर पाकर भक्तिरूप मेरा धर्म अवलम्बन करके आत्मामें अवस्थित परमानन्द आत्मस्वरूप मुझको प्राप्त करता है। ज्ञाननिष्ठासे गुणमय जीवोपाधिसे मुक्त होकर पुरुष अवस्तु स्वरूपमें दिखाई पड़नेवाले मायामात्र गुणोंमें रहकर भी गुणवस्तुओंके साथ संयुक्त नहीं होता। शिश्न और उदरतृप्तिकारक असत् पदार्थोंसे बचना चाहिये। इनमेंसे एकके भी फेरमें पड़नेसे घोर अन्धकारमें गिरना पड़ता है। विपुलकीर्ति पुरूरवा उर्वशीके विरहमें व्याकुल हुए थे और उसको पुनः प्राप्त करनेके लिए शोकसे अभिभूत हो गये थे। ऐसे शोकके अवसरपर वैराग्य प्राप्त करके उन्होंने यह गाथा सुनायी थी। उर्वशी उनको छोड़कर जाने लगी तो राजा कातर और नंगे होकर उसके पीछे-पीछे दौड़े। इस प्रकार काम सेवामें मग्न रहकर वर्षों तक उनको तृप्ति नहीं हुई। वे दिन-रातका भेद भूल गये थे। उर्वशीने उनकी चेतना हर ली थी। पुरूरवाने कहा था—अहो! मैं कैसे गोदमें पड़ा रहा। उर्वशीके कंठालिंगनमें मेरी आयुका कितना भाग बीत गया, इसका तो मुझे पता ही नहीं रहा। क्या ही आश्चर्य है! इसने मुझे इतना वञ्चित किया कि वर्षोंके कितने ही दिन बीत गये, किन्तु मैं कुछ भी नहीं जान सका। अहो! मैं किस भ्रममें पड़ा रहा। चक्रवर्ती नरेश होकर भी मैं रमणियोंका क्रीड़ामृग बना

रहा और गमनोन्मुखी रमणीके पीछे-पीछे दौड़ा गया। जो मनुष्य गधेकी भाँति स्त्रीका पीछा करता है, उसका प्रभाव तेज और बल कहाँ रह सकता है ? स्त्रियोंने जिसका मन हर लिया है, उसकी विद्या तपस्या शास्त्रज्ञान आदि सभी व्यर्थ हैं। इसमें उर्वशीका कौनसा अपराध कहा जाय ? रज्जुमें मुझे ही सर्पका भ्रम हुआ। मैं अजितेन्द्रिय हूँ। अपवित्र देहमें आसक्त होनेवाले मनुष्य और विष्ठा-मूत्र आदिमें रहनेवाले कृमियोंमें क्या अन्तर है ? यह समझकर विवेकी व्यक्ति स्त्रियों और स्त्रैण व्यक्तियोंपर आसक्ति नहीं रखते। इन्द्रियसंयमसे मन स्थिर और शान्त होता है। भगवानने कहा—वे नरदेवशिरोमणि ऐसा इस प्रकार कहते हुए उर्वशीलोक छोड़कर अपनेमें आत्मरूपसे अवस्थित मुझको जानकर मुक्त हो गये। उनका सब मोह ज्ञानके द्वारा नष्ट हो गया। इसलिए कुसङ्ग त्यागकर सज्जनोंका सङ्ग करना ही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है। निरपेक्षभावसे मुझमें चित्त लगानेवाले प्रशान्त समदर्शी ममताशून्य अहंकाररहित निर्द्वन्द्व और अकिञ्चन जन ही यथार्थ साधु हैं। उन साधुओंमें सदा मेरी कथाओंकी चर्चा होती रहती है। उन कथाओंको सुननेसे सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो लोग उन कथाओंको श्रद्धापूर्वक कहते सुनते और गाते तथा अनुमोदन करते हैं, उन्हें मेरी अनन्य भक्ति प्राप्त होती है। जलमें डूबनेवालोंके लिए नौका जैसे परम आश्रय है, वैसे ही भवसागर पार करनेके लिए ब्रह्मज्ञ साधुगण एकमात्र अवलम्ब हैं। साधुगण ही यथार्थ देवता और बान्धव हैं। वे ही आत्मा और मेरे रूप हैं। हे उद्धव ! तदनन्तर महाराज

पुरूरवा उर्वशीलोक छोड़कर इस पृथ्वीमें विचरते रहे और अन्तमें मुझको प्राप्त हुए।

सप्तविंश अध्याय

कर्म-योगवर्णन

उद्धवने कहा—हे कृष्ण ! भक्तजन जिस प्रकार आपकी आराधना करते हैं, वह कर्मयोग आप कृपापूर्वक मुझसे कहिये। महर्षियोंने इस क्रियायोगको बारम्बार मुक्तिका साधन बताया है। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! कर्मकाण्ड असीम और अपार है। इसका अन्त नहीं है। अतएव संक्षेपमें इसका वर्णन करता हूँ। मेरी पूजा तीन प्रकारकी होती है—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र। इन तीनों विधियोंमेंसे जिस विधिमें जिसकी रुचि होती है, वह उसी विधिसे मेरी पूजा करता है। द्विजवर्णोंको चाहिये कि निष्कपट और शुद्ध चित्तसे प्रतिमामें, पृथ्वीमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें और ब्राह्मणमें अपने परम गुरु मुझको पूजें और भजें। प्रातः दन्तधावनके उपरान्त अङ्गशुद्धिके लिए पहले स्नान करना चाहिये। मेरी प्रतिमा आठ प्रकारकी कही गयी है—शिलाकी, काठकी, धातुकी, चन्दनादि लेपकी, चित्रमय, बालूकी, मणिकी और मनोमय। प्रतिमा चल और अचल दो प्रकारकी होती है। स्थिर प्रतिमामें पूजा करनी हो तो आवाहन और विसर्जन करनेकी आवश्यकता नहीं है। अस्थिर प्रतिमामें चाहे करे और चाहे न करे। किन्तु बालुकामयी प्रतिमामें आवाहन तथा विसर्जन अवश्य कर्तव्य है। पूजा, ध्यान, जप, निवेदन

आदि विधिपूर्वक करना आवश्यक है। भक्तका श्रद्धापूर्वक दिया हुआ थोड़ा-सा जल भी मुझे प्रसन्न कर सकता है। भक्तिके बिना अर्पित अपार अमूल्य सामग्री भी मुझे प्रसन्न नहीं कर सकती। हे उद्धव! जब जिस प्रतिमा आदिमें श्रद्धा हो तब उसीमें मेरी पूजा करे। क्योंकि सब प्राणियोंमें और आत्मामें सर्वव्यापक सर्वात्मा मैं अवस्थित हूँ। पुरुष इस प्रकार वैदिक और तान्त्रिक कर्मयोगके मार्गोंसे पूजाकर मुझसे योग और मोक्ष दोनों प्रकारकी अभीष्ट सिद्धि पाता है। पूजकको चाहिये कि शक्ति हो तो दृढ़ मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिमाकी स्थापना करे। नित्य पूजा-यात्रा और उत्सव बराबर होते रहनेके लिए फूलका बगीचा और क्षेत्र, हाट, ग्राम आदि देनेसे मेरे समान ऐश्वर्य मिलता है। मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेसे चक्रवर्ती राज्य, मन्दिर बनवानेसे इन्द्रपद, पूजा करनेसे ब्रह्मलोक और उक्त तीनों काम करनेसे मेरी समता प्राप्त होती है। निष्काम भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे ही मैं मिलता हूँ। इस प्रकार पूजा करनेवालोंको भक्तियोग प्राप्त होता है।

अष्टाविंश अध्याय

परमार्थ-निर्णय

श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! साधुओंको चाहिये कि प्रकृति और पुरुष दोनोंसे विश्वको एकात्मक देखता हुआ किसीके भले-बुरे स्वभाव या कर्मकी प्रशंसा अथवा निन्दा न करे। निन्दा करनेवाला असत् द्वैतके अभिनिवेश द्वारा शीघ्र ही ज्ञान-

निष्ठारूप स्वार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। द्वैत मिथ्या है। मेरी ज्ञान-विज्ञान-निष्ठाको भली भाँति समझनेवाला प्रवीण पुरुष न किसीकी स्तुति करता और न किसीकी निन्दा ही करता है। वह सूर्यके समान सर्वत्र समभावसे तृप्त होकर विचरण करता है। उद्धवने कहा—हे ईश्वर! जब यह दृश्यमान संसार चेतन तथा साक्षीस्वरूप आत्माका नहीं है और अचेतन दृश्यरूप देहका भी नहीं है तो यह संसार किसका है? कृपापूर्वक यह मुझे बताइये। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव! जबतक शरीर इन्द्रिय और प्राणोंसे आत्माका सम्बन्ध रहता है, तबतक यह संसार वास्तवमें असत् होनेपर भी अविवेकीको सत्य-सा प्रतीत होता है। जिस प्रकार निद्रित व्यक्तिको स्वप्नमें अनेक अनर्थ दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु जागनेपर वह स्वप्न फिर मोह नहीं उत्पन्न कर सकता। शोक हर्ष भय क्रोध लोभ मोह स्पृहा जन्म और मरण आदि भय सांसारिक भाव देहाभिमानजनित हैं, शुद्ध आत्माके नहीं हैं। यह संसार अमूलक है। इस विश्वके आदिमें जो प्रकाशक वस्तु थी, वही अन्तमें भी रहेगी और मध्यमें भी केवल वही वर्तमान है—वेद, स्वधर्म, प्रत्यक्ष, उपदेश और तर्कके द्वारा जो विवेक उत्पन्न होता है, उसीको ज्ञान कहते हैं। जो कार्य और प्रकाश पहले नहीं था, अन्तमें भी न रहेगा। वह मध्यमें भी नहीं है। उसका केवल नाममात्र है। ब्रह्म स्वतःसिद्ध और स्वप्रकाश है। अतएव ब्रह्म ही इन्द्रियतन्मात्रा, मन और पञ्चतत्त्व आदि अनेक रूपोंसे प्रकाशमान है। हे उद्धव! ब्रह्मदर्शनसे पुरुषका भ्रमान्धकार नष्ट हो जाता है। आत्मा ज्योतिःस्वरूप, अज,

अप्रमेय, समग्र और अनुभूतिस्वरूप है। अतएव यह अनुभूतिरूप एक अद्वितीय और अनिर्वचनीय है। इसीके द्वारा परिचालित होकर वाक्य और प्राण अपना-अपना कार्य करते हैं। जो योगी मेरी शरणमें आकर इस प्रकार योग करता है, वह विघ्नोंसे भ्रष्ट नहीं होता और निःस्पृह होनेसे प्राप्त परमानन्दमें मग्न रहता है।

ऊनत्रिंश अध्याय

उद्धवका बदरिकाश्रम-गमन

उद्धवने कहा—हे अच्युत! जिसका चित्त वशमें नहीं है, उसके लिए मेरी समझमें यह योगाचरण अत्यन्त दुष्कर है। अतएव जिस उपायसे पुरुष अनायास ही सिद्धि प्राप्त कर सके, वह उपाय कृपापूर्वक मुझे बताइये। श्रीकृष्णचन्द्र मनोहर वाणीसे बोले—हे उद्धव! जिन आचरणोंसे मनुष्य दुर्जय मृत्युको जीत लेता है, उन अपने मंगलमय धर्मोंको मैं तुमसे कहता हूँ। बुद्धि और मन मुझमें समर्पित कर देनेसे मेरे ही धर्ममें आत्मा और मनकी आसक्ति हो जायगी। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरा स्मरण करते हुए मेरे ही उद्देश्यसे सब कर्म करना चाहिये। मेरे भक्त साधुजन जहाँ-जहाँ रहते हों, उन पवित्र स्थानोंमें रहकर जो मेरे अनन्य भक्त हों, उन्हींके आचरणोंका अनुकरण करे। पृथक् सत्रके द्वारा या प्रचलित पर्व-यात्रा आदिमें महान उत्सव कराना चाहिये। निर्मलचित्त होकर सर्वत्र व्याप्त मुझको सब प्राणियोंमें और अपने-आपमें अवस्थित देखना चाहिये। इस प्रकार केवल ज्ञानका आश्रय लेकर जो व्यक्ति सब प्राणियोंको मेरा रूप मान-

कर आदरके साथ पूजता है, ब्राह्मण चाण्डाल तथा ब्राह्मणको दान देनेवाले और ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले, सूर्य और एक सामान्य चिनगारी, अक्रूर और क्रूर—इन सभीको समान दृष्टिसे देखता है, वही पूर्ण पण्डित है। जबतक सब प्राणियोंमें मेरी भावना नहीं उत्पन्न होती, तबतक मन-वचन और शरीरके व्यवहारोंसे मेरी उपासना करनी चाहिये। सर्वत्र आत्मारूप ईश्वरको देखनेसे उत्पन्न विद्याके प्रभावसे उसके लिए सब ब्रह्ममय हो जाता है। इस प्रकार सर्वत्र ब्रह्मको देखनेके कारण सब प्रकारके संशयोंसे मुक्त होकर निश्चेष्ट हो जाना चाहिये। सब प्राणियोंमें मुझे देखकर मन वाणी और कायाके कर्मोंसे मेरी आराधना करना ही मुझे प्राप्त करनेका श्रेष्ठ और सहज उपाय है। असत् और नश्वर मानव शरीर द्वारा इसी जन्ममें मुझे प्राप्त कर लेना ही बुद्धिमानोंकी बुद्धि और चतुरोंकी चतुरता है। हे उद्धव! संक्षेपमें यह समग्र ब्रह्मवादका संग्रह मैंने तुमसे कह दिया। यह देवताओंके लिए भी दुर्गम है। जो लोग यह ज्ञान मेरे भक्तोंको भली भाँति समझाते हैं, उनको मैं आत्मसमर्पण कर देता हूँ। दाम्भिक नास्तिक वञ्चक सुननेकी इच्छा न रखनेवाले मेरी भक्तिसे विमुख दुष्ट और घमण्डीको कभी इस ज्ञानका उपदेश न करना। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवानके उपदेश सुनकर उद्धवके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहने लगा। प्रीतिके कारण कण्ठ रुँध गया। उन्होंने स्तुति करनेके लिए हाथ जोड़े, किन्तु कुछ भी वे कह नहीं सके। तदनन्तर चञ्चल चित्तको धैर्यसे रोककर उद्धवने भगवानके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम

किया और कहा—हे अज ! हे सनातन ! मेरे हृदयमें जो मोहमय अन्धकार छा गया था, वह अब नष्ट हो गया। हे महायोगेश्वर ! आपको नमस्कार है। मुझ शरणागतको वह शिक्षा दीजिये कि जिससे आपके चरणोंमें अचला भक्ति उत्पन्न हो। श्रीभगवानने कहा—हे उद्धव ! मेरी आज्ञासे तुम बदरिकाश्रम चले जाओ। उस स्थानमें मेरे चरणकमलसे उत्पन्न अलकनन्दा गङ्गाके जलमें स्नानकर और गङ्गातटकी पवित्र शोभा देखकर तुम पवित्र हो जाओगे। तुम्हारे हृदयके सब मल नष्ट हो जायँगे। वहाँ तुम बल्कल पहिनकर रहना। वनके फल-मूल खाकर जीवन धारण करना। सुखकी स्पृहा मत रखना। शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वधर्म सहन करना। सुशील जितेन्द्रिय तथा शान्त होकर एकाग्रबुद्धिसे ज्ञान-विज्ञानका अनुशीलन करना। मुझसे जो कुछ शिक्षा मिली है, उसपर एकान्तमें बैठकर विचार करना। इस प्रकार मेरे धर्ममें निरत रहनेपर तुम त्रिगुणमयी प्रवृत्तिरूपिणी गतिको लाँघकर परमगतिस्वरूप मुझको सहजमें पा लोगे। शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! भगवानका अन्तिम उपदेश पाकर उद्धवने उनकी प्रदक्षिणा की। चलनेके समय प्रेमपूर्ण हृदयसे प्रभुके चरणोंमें सिर रखकर वे उन्हें आँसुओंसे भिगोने लगे। अपने प्रभुके वियोगसे उद्धवजी अत्यन्त कातर हो गये और उनको छोड़कर जानेमें अत्यन्त कष्टका अनुभव करने लगे। फिर स्वामीकी दी हुई चरणपादुका मस्तकपर धारण करके बार-बार प्रणाम करनेके बाद वे वहाँसे बदरिकाश्रमको चल पड़े। महाभागवत उद्धव भगवानको अपने हृदयमन्दिरमें स्थापितकर उनकी आज्ञाके

अनुसार बदरिकाश्रमको गये। वे वहाँ दुष्कर तप करके श्रीहरिके पदको प्राप्त हुए।

त्रिंश अध्याय

यदुवंशका विनाश

महाराज परीक्षितने पूछा—हे भगवन्! महाभागवत उद्धव जब वनमें चले गये तो भूतभावन भगवानने द्वारकापुरीमें क्या किया, यह कथा मुझे सुनाइये। शुकदेवजीने कहा—आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीमें महा उपद्रव होते देखकर श्रीकृष्णने यादवोंसे कहा—हे यादवगण! देखो, द्वारकामें यमकेतुरूप ये अनेकानेक उत्पात होने लगे हैं। अब हमको यहाँ एक मुहूर्त भी न ठहरना चाहिये। स्त्रियों बालकों और बूढ़ोंको शङ्खोद्धार नामक क्षेत्रमें भेजकर हम लोग प्रभासक्षेत्रको चलें। वहाँ पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी है। उसी सरस्वतीमें स्नानकर हम पवित्र होंगे और उपवास करके पुष्प-चन्दनादि सामग्रीसे देवताओंकी पूजा और साथ ही दान आदि मंगलजनक कार्य करेंगे। इसी उपायसे हमारा मंगल होगा। मधुसूदनकी यह बात सुनकर सब बड़े-बूढ़ोंने उसका अनुमोदन किया और उसी समय नौका द्वारा समुद्र पार करके सब लोगोंने प्रभासतीर्थके लिए प्रस्थान किया। भगवानकी आज्ञासे वहाँ पहुँचकर यादवोंने भक्तिपूर्वक मङ्गल कृत्य किये। तदनन्तर श्रीकृष्णकी मायासे बुद्धिभ्रष्ट हो जानेपर वे लोग मदिरा पीकर उन्मत्त हो गये। फिर कर्तव्य-ज्ञानसे च्युत होकर वे लोग परस्पर झगड़ा करने लगे।

इसके बाद कलह और बढ़ा और उन लोगोंमें लड़ाई होने लगी। अनेकानेक शस्त्र धारण करके वे लोग महायुद्ध करने लगे। भावीवश परस्पर कुपित प्रद्युम्न और साम्ब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध और सात्यकी, सुभद्र और संग्रामजित्, दारुण और गद तथा सुमित्र और सुरथ द्वंद्व युद्ध करने लगे। और लोग भी मुकुन्दकी मायासे मोहित और मदिराके मदसे ज्ञानशून्य होकर परस्पर लड़ने लगे। विद्रोही पुत्रगण अपने बापोंसे, भाई लोग भाइयोंसे, भागिनेय मातुलोंसे, भतीजे पितृव्योंसे, नाती मातामहोंसे, मित्र मित्रोंसे और सुहृद सुहृदोंसे लड़ते हुए एक दूसरेका वध करने लगे। क्रमशः सब बाण समाप्त हो गये और अन्यान्य अस्त्र-शस्त्र भी टूट गये। तब उन्हीं मुसलचूर्णसे उत्पन्न एरकाओंको समुद्रतटसे उखाड़-उखाड़कर वे लोग परस्पर युद्ध करने लगे। जब श्रीकृष्ण उनको रोकने गये तो वे लोग उन पर भी प्रहार करने लगे। महामोहित यादवगण बलदेवजीको भी शत्रु मानकर उनपर भी प्रहार करनेको चल पड़े। तब कृष्ण-बलभद्र भी अत्यन्त क्रोधित हो गये और उन्हीं एरका-मुष्टिरूप लौहदण्डोंको उठाकर उनसे सबका वध करते हुए युद्धभूमिमें विचरने लगे। बाँसका वन जिस प्रकार परस्परकी रगड़से उत्पन्न अग्निसे जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार स्पर्धाजनित क्रोधसे कृष्णमायामोहित ब्रह्मशापग्रस्त यादववंशका विनाश हो गया। इस प्रकार अपने कुलका पूर्ण नाश होनेपर भगवानने समझ लिया कि अब पृथ्वीका भार उतर गया। तदनन्तर बलदेवने समुद्रके किनारे जाकर योगधारणके द्वारा आत्माको आत्मामें लीन करके मनुष्य-

शरीर त्याग दिया। बलदेवकी परमगति देखकर देवकीनन्दन भगवान कृष्णचन्द्रने भी मौन होकर पीपलकी जड़में पृथ्वीपर अवस्थित होकर चतुर्भुज रूप धारणपूर्वक धूमरहित अग्निके समान प्रज्वलित अपनी प्रभा द्वारा दिशाओंका अन्धकार दूर कर दिया। श्रीवत्सचिह्नशोभित घनश्याम तप्तकाञ्चन-कान्ति-सम्पन्न रेशमी युगल पीटपटधारी श्रीहरिका नील अलकावलीसे सुशोभित मुखारबिन्द मन्दमुसकानसे महामनोहर हो रहा था। दोनों विशाल नयन कमलतुल्य अभिराम थे। कानोंमें कान्तिशाली मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा छा रही थी। मुसलसे बचे हुए लौहखण्डको मछलीके पेटसे पाकर जरानामक व्याधने उसीकी गाँसी बनाकर एक बाण प्रस्तुत किया था। उस व्याधने उस समय दूरसे भगवानके मृगाकार चरणको मृग समझकर उसी बाणका लक्ष्य बनाया। किन्तु निकट आकर जब उसने चतुर्भुज महापुरुषको देखा, तब अपने किये अपराधके भयसे वह असुरारि भगवानके चरणोंपर गिर पड़ा और बोला—हे मधुसूदन! मैं महापापी हूँ। मैंने अनजानमें यह अपराध किया है। आप मुझे क्षमा कीजिये। आप साक्षात् विष्णु हैं। मैंने महान् अपराध किया है। मुझे आप शीघ्र मार डालिये। जिससे फिर अपराध करनेका अवसर मुझे न मिले। श्रीभगवानने कहा—हे व्याध! तुम डरो मत। उठो। यह काम मेरी ही इच्छासे हुआ है। तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है। मेरी आज्ञासे तुम स्वर्गलोकको चले जाओ। श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर वह व्याध तीन बार उनकी प्रदक्षिणा और उनको प्रणाम करके विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको

चला गया। उसी समय श्रीकृष्णका सारथी दारुक उनको खोजता हुआ उनके सामने जाकर उपस्थित हुआ। देखते ही प्रेमसे उसका हृदय भर आया और नेत्रोंमें आँसू छलछला आये। दारुक उसी समय रथसे कूदकर स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—हे प्रभो! आपके चरणारविन्द न देख पानेके कारण मुझे कुछ भी नहीं दीखता। चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार जान पड़ता है। जैसे सूर्यास्त होनेपर अँधेरी रातमें दिशाओंका ज्ञान नहीं रहता, उसी तरह मुझे नहीं जान पड़ता कि मैं कहाँ हूँ और किस दिशाको जा रहा हूँ। मेरे चित्तको चैन नहीं है। हे महाराज! दारुक इस प्रकार कह रहा था कि उसी समय वह गरुड़-चिह्नित रथ देखते-देखते अश्व-ध्वजा आदिके साथ आकाशमें जाकर अदृश्य हो गया। रथके साथ ही दिव्य शस्त्र भी चले गये। यह दृश्य देखकर सारथीको बड़ा विस्मय हुआ। तब भगवानने सारथीसे कहा—हे दारुक! तुम द्वारकामें जाकर यदुवंशका परस्पर युद्धमें विनाश, सङ्कर्षणकी परमगति और मेरी यह दशा आदि वृत्तान्त बन्धुओंसे कहो। उनसे यह भी कहना कि 'तुम लोग अपने बन्धुओंके साथ द्वारकापुरीमें मत रहना। क्योंकि मेरी त्यागी हुई यदुपुरी समुद्रमें डूब जायगी। अपने-अपने परिवार और मेरे माता-पिताको लेकर सब लोग अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थको चले जायँ।' हे सारथी! तुम मेरे धर्मका अवलम्बन करके ज्ञाननिष्ठ और निरपेक्षभावसे यह विश्वप्रपञ्च मेरी मायाकी रचना समझो। इससे अन्तमें तुमको मुक्ति मिलेगी। भगवानका यह वचन सुनकर बार-बार उनकी

प्रदक्षिणा करके और उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करनेके उपरान्त उदासमानसे दारुक द्वारकापुरीको चला गया ।

एकत्रिंश अध्याय

श्रीकृष्णभगवानका परमधाम-गमन

शुकदेवजीने कहा—हे महाराज ! तदनन्तर ब्रह्मा, भवानी सहित भगवान शंकर, देवता लोग, मुनिगण, प्रजापति, पितृगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरायें और द्विजगण आदि सब प्राणी भगवानकी गति देखनेके लिए अत्यन्त उत्सुक होकर श्रीकृष्णके जन्म-कर्मसम्बन्धी गुणगान करते हुए आकाशमें छा गये । उनके असंख्य विमानोंसे आकाशमण्डल भर गया । वे लोग भगवानपर परमभक्तिपूर्वक फूल बरसाने लगे । तब प्रभु भगवानने एक बार ब्रह्मा-इन्द्र आदि अपनी विभूतियोंको देख तथा आत्माको आत्मामें लगाकर अपने नेत्रकमल बन्द कर लिये । भगवानने योगधारण द्वारा उत्पन्न अग्निसे अपनी त्रिभुवनमोहिनी मूर्तिको भस्म नहीं किया । वे सशरीर अपने धामको चले गये । उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और फूलोंकी वर्षा होने लगी । हे राजन् ! श्रीहरिके साथ ही सत्य, धर्म, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी आदि भी पृथ्वी छोड़कर चली गयीं । श्रीकृष्णको अपने धाममें प्रवेश करते समय ब्रह्मा आदि देवोंमेंसे किसीने देखा और किसीने नहीं देखा । आकाशमें बिजलीकी गति जैसे मनुष्योंको नहीं दिखाई

पड़ती, उसी तरह श्रीकृष्णकी गति भी देवताओंको नहीं दिखाई पड़ी। उस समय ब्रह्मा-रुद्र आदि सभी देवता श्रीहरिकी योग-गति देखकर विस्मितभावसे प्रशंसा करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। हे महाराज! इधर कृष्णवियोगसे विह्वल सारथी दारुक द्वारकापुरीमें जाकर वसुदेव और उग्रसेनके चरणोंपर गिर पड़ा और नेत्रोंके जलसे उनके चरणोंको भिगोते हुए यदुवंशके विनाशका वृत्तान्त कहा। इस शोकसमाचारको सुनकर सब लोग असह्य दुःखसे मूर्च्छित हो गये। जिस स्थानपर सब सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव मरे पड़े थे, वहाँ कृष्णवियोगसे विह्वल सब लोग छाती-पीटते और हाहाकार करते हुए पहुँचे। शोकाकुल वसुदेव, उग्रसेन, देवकी और रोहिणी कृष्ण और बलदेवको न देखकर उनके विरहसे कातर हो उठे और उसी समय उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। सब स्त्रियाँ पतियोंके शरीर लेकर सती हो गयीं। बलदेवकी स्त्रियाँ भी स्वामीका शरीर लेकर चितापर चढ़ गयीं। वसुदेव और प्रद्युम्न आदिकी भी स्त्रियाँ पतियोंके शरीर लेकर भस्म हो गयीं। श्रीकृष्णकी रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ भी कृष्णमें मन लगाकर चितामें जल गयीं। अपने परमप्रिय सखा कृष्णके विरहसे व्याकुल अर्जुनने श्रीकृष्णका चरित्र गान करते हुए अपने चित्तको शान्त किया। तदनन्तर अर्जुनने सब निहत बन्धुओंका अन्तिम संस्कार किया। जो लोग बच गये थे, उनको साथ लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ गये और वज्रको वहाँका राजा बनाया। हे राजन्! तुम्हारे पितामहोंने अर्जुनके मुखसे सुहृद्वध और श्रीकृष्णकी परमगतिका

वृत्तान्त सुन और तुमको वंशधर नियत करके महाप्रस्थान किया। जो लोग श्रीकृष्णके इन जन्म-कर्मोंकी कथाएँ श्रद्धापूर्वक कहते-सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

एकादश स्कन्ध समाप्त

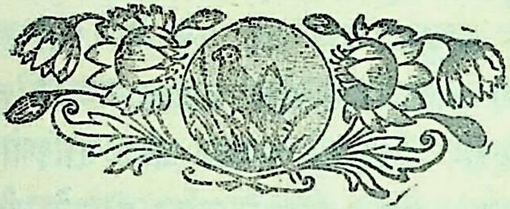

* श्रीहरिः *

भाषा भागवत

अर्थात्

सरल सुखसागर

द्वादश स्कन्ध

प्रथम अध्याय

भविष्यके राजवंशका वर्णन

राजा परीक्षितने पूछा—यदुवंशभूषण कृष्णचन्द्र जब अपने परमधामको चले गये तब पृथ्वीपर किस राजवंशने राज्य किया? भविष्यमें कौन राजे होंगे। शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! बृहद्रथ वंशमें पुरंजयनामक राजा जन्म लेंगे। पुरंजयका मंत्री शुनक स्वामीको मारकर अपने प्रद्योतनामक पुत्रको राजा बनायेगा। प्रद्योतके पुत्रका नाम पालक होगा। पालकके विशाखयूप, उनके राजक और राजकके नन्दिवर्धननामके पुत्र होंगे। ये प्रद्योतवंशीय पाँच नरपति एक सौ अड़तीस वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे। इनके बाद शिशुनागनामक राजा होंगे। शिशुनागके काकवर्ण, उनके क्षेमधर्मा, उनके क्षेत्रज्ञ और उनके विधि-

CC0. In Public Domain. Digitizaqtion by eGangotri

सारनामक पुत्र होंगे। विधिसारके पुत्रका नाम अजातशत्रु होगा। उनके पुत्र दर्भक, दर्भकके अजय, अजयके नन्दिवर्धन और उनके महानन्दिनामक पुत्र होंगे। ये दस नरपति तीन सौ साठ वर्षतक पृथ्वीका पालन करेंगे। हे राजन्! महानन्दिकी एक शूद्रा दासीके गर्भसे नन्दनामक महाबली पुत्र उत्पन्न होगा। उसका दूसरा नाम महापद्म भी होगा। उसके समयसे फिर शूद्र तुल्य अनाचारी और अधर्मी राजा पृथ्वीके शासक होंगे। महापद्म दूसरे परशुरामकी भाँति पृथ्वीका पालन करते हुए पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य करेंगे। राजा नन्दके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे। चाणक्य नामका एक ब्राह्मण अपने ऊपर विश्वास करनेवाले विख्यात राजा नन्दको उनके आठ पुत्रों सहित विनष्ट करके मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्तको राजा बनावेगा। इस प्रकार कलियुगमें नन्दवंशका अन्त होनेपर मौर्यवंशके राजा पृथ्वीके शासक होंगे। चन्द्रगुप्तके पुत्र वारिसार, उनके अशोकवर्धन, उनके सुयशा, उनके संगत, उनके शालिशूक, उनके सोमशर्मा, उनके शतधन्वा, उनके बृहद्रथ और उनके दशरथनामक पुत्र होंगे। ये मौर्यवंशीय दस नरपति कलियुगमें एक सौ सैंतीस वर्षतक राज्य करेंगे। तदनन्तर बृहद्रथका सेनापति पुष्यमित्र अपने प्रभुको मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। यह शुङ्गवंशका पहला राजा होगा। शुङ्गवंशमें कुल दस नरपति होंगे, जो एक सौ बारह वर्षतक राज्य करेंगे। शुङ्गवंशीय अन्तिम राजा देवभूति अत्यन्त कामी राजा होगा। उसको मारकर उसका मंत्री कण्व स्वयं राजा बन बैठेगा। कण्ववंशके चार नरपति तीन सौ पैंता-

लीस वर्षतक कलियुगमें राज्य करेंगे। कण्व वंशके अन्तिम राजा सुशर्माको मारकर बलिनामक उसका भृत्य कुछ काल तक स्वयं राज्य करेगा। इस शूद्रवंशमें फिर उसका भाई कृष्ण राजा होगा। इस प्रकार ये तीस राजे चार सौ छप्पन वर्ष तक राज्य करेंगे। तदनन्तर सात आभीरवंशीय, दस गर्दभीवंशीय और सोलह कंकवंशीय नरेश होंगे। उसके बाद आठ यवन, चौदह तुरुष्क, दस गुरुण्ड और ग्यारह मौन जातिके नरपति होंगे। इन मौनजातीय नरपतियोंको छोड़कर आदिके नरेश एक हजार निन्नानबे वर्षतक पृथ्वीका पालन करेंगे। इस वंशके बाद किलकिला नगरीमें भूतनन्दि आदि नरपति एक सौ छः वर्षतक राज्य करेंगे। इन राजाओंके बाह्लीकसंज्ञक तेरह पुत्र होंगे। बाह्लीक वंशमें उत्पन्न राजा लोग आंध्रदेशमें और कोशल देशमें भी राज्य करेंगे। उन्हींमेंसे कुछ वैदूर नरेश और कुछ नैषध नरेश भी होंगे। फिर मगधदेशमें विश्वस्फूर्जिनामका राजा बड़ा प्रतापी और प्रसिद्ध होगा। वह नीच नरपति पुलिंद, यदु और मद्रदेशके ब्राह्मणादि उच्च वर्णोंको आचारभ्रष्ट करके म्लेच्छतुल्य बना देगा। क्षत्रियोंको निकालकर वह पद्मावतीपुरीमें बहुतसे शूद्र प्रजा बसायेगा। द्विजवर्ण उसके राज्यमें बहुत ही कम रहने पावेंगे। हरिद्वारसे प्रयागतक वह राज्य करेगा। तदनन्तर क्रमशः वेदाचारविहीन शूद्र, व्रात्य और म्लेच्छ लोग सिन्धुतट, चन्द्रभागा नगरी, कौन्ती नगरी और काश्मीर देश आदि पवित्र स्थानोंमें राज्य करेंगे। ये सभी म्लेच्छ तुल्य राजा लोग एक ही समयमें राज्यशासन करेंगे। ये सब अधर्मी, झूठ बोलनेवाले, बहुत ही क्रोधी,

परायी स्त्री और परधन हरनेवाले निर्लज्ज होंगे। ये लोग अल्पायु होंगे और थोड़े-थोड़े समय राज्य करेंगे। ये अपनी प्रजाको लूटते खाते हुए हर तरहसे सतावेंगे। इनके प्रजागण भी चरित्र और स्वभावमें इन्हींके तुल्य होकर क्रमशः क्षीण होते-होते नष्ट हो जायँगे।

द्वितीय अध्याय

कलियुगकी कथा

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! उसके बाद प्रबल कालके प्रभावसे दिनपर दिन सत्य, धर्म, दया, पवित्रता, क्षमा, बल और आयु आदि क्षीण होने लगेंगे। कलियुगमें धन होनेसे ही मनुष्य कुलीन, आचारवान और गुणी कहावेंगे। बल ही धर्म और न्यायकी व्यवस्थाका मूल कारण माना जायगा। विवाह-सम्बन्धमें अपनी अभिरुचि ही यथेष्ट समझी जायगी। कुल और गोत्रका विचार उठ जायगा। क्रय-विक्रय आदि व्यवहारोंमें केवल ठगी ही रह जायगी। रतिकौशलसे ही पुरुष-स्त्रीकी श्रेष्ठता समझी जायगी। केवल जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिह्न माना जायगा। ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंके आचार कुछ भी न रहेंगे। दण्ड कमण्डलु मृगचर्म आदि केवल दिखानेके लिए होंगे। धन न खरचनेवाले अदालतोंमें हारते रहेंगे। बहुत बोलनेवाला ही पण्डित माना जायगा। जो निर्धन होगा वही असाधु समझा जायगा और पाखंडी ही साधु समझे जायँगे। केवल स्वीकार ही विवाह समझा जायगा। स्नानमात्रसे शुचिता मानी जायगी। दूरका

जलाशय ही तीर्थ कहावेगा। बाल रखना ही सुन्दरताका साधन समझा जायगा। अपना पेट भर लेना ही बड़ा भारी पुरुषार्थ माना जायगा। जो ढिठाईसे बहुत बोलेगा उसकी बात सत्य समझी जायगी। परिवारका भरण-पोषण ही चतुरता मानी जायगी। यश और प्रशंसाकी आशासे ही लोग धर्माचरण करेंगे। इसी प्रकारके दूषित लोगोंसे पृथ्वी भर जायगी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो प्रबल होगा, वही राजा बन बैठेगा। लोभी ठग और लुटेरोंके तुल्य राजा लोग प्रजाका धन और स्त्रियाँ छीन लेंगे। तब प्रजागण पर्वतोंपर या वनोंमें जाकर बसेंगे। प्रजागण साग, मूल, फल, मांस, गुठली आदि खाकर जीवन-धारण करेंगे। बार-बार अनावृष्टिके कारण अकाल पड़ेंगे। राजे कर लेनेमें कड़ाई करेंगे। इन आपत्तियोंसे बहुत लोग मरेंगे। इसके अतिरिक्त परस्परके झगड़े भूख-प्यास और अनेकानेक रोगों तथा चिन्तासे पीड़ित होकर भी बहुतसे लोग मरेंगे। कलियुगमें मनुष्य बीस या तीस वर्षतक ही जीवित रहेंगे। सभी देहधारियोंके शरीर क्षीण हो जायँगे। वर्णाश्रमधर्म नष्ट हो जायगा। वेदविहित मार्ग मिट जायगा। धर्मके नामसे पाखण्डका प्रचार बढ़ेगा। राजा लोग लुटेरे हो जायँगे। लोग चोरी और हत्या करेंगे। सभी वर्ण शूद्रतुल्य हो जायँगे। गौवें बकरियोंके समान हो जायँगी। औषधियाँ गुणहीन हो जायँगी। बिजलीके समान मेघ हो जायँगे। सब घर धर्मशून्य हो जायँगे। यह अवस्था कलियुगके अन्तमें होगी। उस समय धर्मकी रक्षाके लिए सत्त्वमय भगवान्‌का अंशावतार होगा। साधुओंकी रक्षा और

सनातनधर्मके उद्धारके लिए सर्वव्यापक ईश्वर कल्कि नामसे सम्भलग्राममें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घरमें जन्म लेंगे। अतुलित प्रभासम्पन्न विश्वपति कल्किभगवान् शीघ्रगामी घोड़ेपर चढ़कर पृथ्वीमण्डलमें घूमेंगे और दुष्ट राजाओंका संहार करेंगे। भगवानके प्रकट होनेपर सत्ययुगका आविर्भाव होगा और प्रजागणके सात्त्विकस्वभावसम्पन्न सन्तान उत्पन्न होंगी। जब चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्य नक्षत्रयुक्त कर्कराशिमें आ जायँगे तब सत्ययुगका आविर्भाव होगा। हे राजन्! क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चारों युग आते-जाते हैं और प्रत्येक युगमें युग-धर्मानुसार प्राणियोंके धर्म होते हैं। हे महाराज! जिन-जिन नरपतियोंने पराक्रमपूर्वक दूसरोंसे छीनकर भूमिका भोग किया, वे सभी बली राजे कालके गालमें समा गये। अब तो उनकी केवल कथाएँ ही शेष रह गयी हैं।

तृतीय अध्याय

युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेके उपायोंका वर्णन।

शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! यह पृथ्वी राजाओंको भूमि जीतनेके लिए उद्योग करनेमें तत्पर देखकर हँसती हुई कहती है—अहो! ये यमराजके खिलौने नरपति मुझको जीतनेकी अभिलाषा करते हैं! ये जलफेन तुल्य अस्थिर शरीरको स्थायी समझते हैं। इनकी यह कामना व्यर्थ है। ये लोग ऐसी आशाएँ करते हैं कि हम पहले काम-क्रोध आदि शत्रुओंको जीतकर राजमंत्रियोंको अपने वशमें कर लेंगे। इसके बाद पुरवासी

अमात्यजन आदिसे युक्त सेनाको वशमें करके शत्रुओंको जीतेंगे। इस प्रकार इस ससागरा पृथ्वीको जीतेंगे। किन्तु ये लोग अपने निकट उपस्थित मृत्युको नहीं देखते। 'यह पृथ्वी मेरी है—तेरी नहीं है' यह कहकर मनुष्य एक दूसरेको मारते और मरते हैं। बहुतसे नरपति हो गये, जो मुझे अपनी ही समझते रहे। किन्तु कालने सबके मनोरथ विफल कर दिये। वे सभी मर गये। उनकी कथाएँ ही शेष रह गयी हैं। शुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! इन बातोंसे यह सिद्ध होता है कि सभी विषय असार हैं और कृष्णचन्द्रकी विशुद्ध भक्ति ही यथार्थ परमार्थ है। राजाने पूछा—हे मुनिवर ! कलियुगमें सदा बढ़नेवाले दोषसमूह भक्तिके मार्गमें बाधक हैं। अतः इनसे बचनेका उपाय कृपा-पूर्वक बताइये। इसके अतिरिक्त युग, युगधर्म, प्रलय, कल्प तथा ईश्वरके रूप, कालका परिमाण और महापुरुष विष्णुकी गति मुझको सुनाइये। शुकदेवजी बोले—हे महाराज ! सत्ययुगके लोग सत्यवादी, दयालु, तपस्वी, दाता, सन्तोषी और शान्त प्रकृति होते हैं। वे किसीको कष्ट नहीं देते। त्रेतायुगमें धीरे-धीरे धर्मका चौथाई भाग क्षीण हो जाता है। द्वापरमें धर्माचरण आधा घट जाता है। कलियुगमें धर्मकी चौथाई ही शेष रह जाती है। धीरे-धीरे अधर्म बढ़ता जाता है और अन्तमें धर्मका कुछ भी नहीं रहता। पुरुषोंमें सत्त्व रज और तम ये तीनों गुण देखे जाते हैं। जब मन बुद्धि और इन्द्रियोंमें सत्त्वगुणकी अधिकता और रुचि होती है, तब सत्ययुगका उदय होता है। उस समय ज्ञान और तपस्यामें लोगोंकी रुचि रहती है। जब रजोगुणकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है, तब त्रेतायुगका

समय होता है। उस समय लोगोंकी रुचि सकाम कर्मोंमें होती है। रजोगुणमिश्रित तमोगुणकी प्रवृत्ति बढ़नेपर द्वापर युग आता है। उस समय लोभ असन्तोष अभिमान दम्भ तथा मत्सरका प्रचार होता और सकाम कर्मोंकी रुचि बढ़ जाती है। जब तमोगुणकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है, तब कलियुग आता है। उस समय छल झूठ आलस्य निद्रा हिंसा दुःख शोक मोह भय और अधर्मकी रुचि बढ़ती है। कलियुगके लोग अदूरदर्शी, अभागे, बहुत भोजन करनेवाले और कामी होंगे। स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी और असती होंगी। नगरे में लुटेरे और ठग भरे रहेंगे। वेद पाखण्डसे दूषित हो जायँगे। राजा प्रजाका धन लूट खायँगे। ब्राह्मण अपना आचरण छोड़ देंगे। ब्रह्मचारी व्रतशून्य होंगे। तपस्वी ग्राम और नगरमें रहेंगे। संन्यासी लोग धन जमा करेंगे। स्त्रियाँ बहुत भोजन करेंगी। उनके बहुत सन्तानें होंगी। वे सदैव कटु वचन बोलेंगी। वे छलसे परिपूर्ण और निर्लज्जा होंगी। वे बड़े-बड़े साहसके काम करेंगी। व्यापारी ठग होंगे। उच्च कुलके लोग निन्दित जीविका ग्रहण करेंगे। धनहीन किन्तु उत्तम प्रभुको सेवक छोड़ देंगे और विपत्तिग्रस्त पुराने सेवकोंको प्रभु भी छोड़ देंगे। दूध न देनेवाली बूढ़ी गायोंको लोग छोड़ देंगे। कलियुगमें लोग स्त्रियोंकी सेवा करेंगे। पिता-भाई आदि स्वजनोंको छोड़कर लोग साली और सालोंकी स्त्रियोंसे परामर्श लेंगे। तापस वेषमें शूद्र उच्च जातियोंसे सेवा करावेंगे। अधार्मिक धर्मका उपदेश करेंगे। हे राजन्! कलियुगमें सदा ही अनावृष्टि और अतिवृष्टि आदिसे दुर्भिक्ष पड़ेंगे। अन्न वस्त्र शय्या आदिसे रहित प्रजागण पिशाचके

समान दिखाई पड़ेंगे। थोड़ेसे धनके लिए मित्रता छोड़कर लोग झगड़ा करेंगे। वे स्वजनोंको भी मार डालेंगे। अपने प्राण भी कभी-कभी खो देंगे। लोग केवल अपना पेट पालने और स्त्रीभोग करनेमें तत्पर रहेंगे। बूढ़े माता-पिता तथा धर्मपत्नीका भरण-पोषण न करेंगे। हे राजन्! कलियुगमें लोग जगत्के परमगुरु भगवान अच्युतकी पूजासे विमुख हो जायँगे। हे राजन्! जिस समय पुरुषोत्तम भगवान मनुष्यके चित्तमें विराजते हैं, उस समय सब कलिकलुष दूर हो जाते हैं। भगवानका पूजन-चिन्तन करनेसे दस हजार जन्मोंके पातक क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। भगवानके ध्यानसे अन्तःकरण जितना शुद्ध होता है, उतना देवताओंकी उपासना, तपस्या और तीर्थ-यात्रा आदिसे नहीं होता। अतएव हे राजन्! तन-मन-वचनसे एकाग्र होकर केशवका ध्यान धरो। श्रीहरिमें मन लगानेसे परमगति मिलती है। कलियुगमें दोष बहुत हैं। किन्तु एक बड़ा गुण यह है कि केवल श्रीकृष्ण नामके कीर्तनसे ही मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन हो जाता है। हे राजन्! सत्ययुगमें विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ द्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें उपासना करनेसे जो गति होती है, वही गति कलियुगमें केवल नाम कीर्तनसे मिलती है।

चतुर्थ अध्याय

परमार्थनिर्णय

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! अब कल्प और प्रलयका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। चार सहस्र युगोंका ब्रह्माका एक दिन

होता है। ब्रह्माके उसी एक दिनको कल्प कहते हैं। एक कल्पमें क्रमशः चौदह मनु शासन करते हैं। कल्पके उपरान्त उतनी ही बड़ी ब्रह्माकी रात्रि होती है। उसीमें तीनों लोकोंका लय अर्थात् नाश हो जाता है। इसको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रलयमें भगवान् नारायण तीनों लोकोंको अपनी स्वयम्भू ब्रह्मा-नामक मूर्तिमें लीन करके शेषशय्यापर शयन करते हैं। यह प्राकृतिक प्रलय कहलाता है। जब प्राकृतिक प्रलय होनेवाला होता है, तब पृथ्वीपर सौ वर्षतक वर्षा नहीं होती। वर्षाके अभावमें अन्न भी नहीं उत्पन्न होता। उस समय सामयिक उपद्रवोंसे पीड़ित मनुष्य भूखसे व्याकुल होकर एक दूसरेको खा जाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे पृथ्वीके सब लोगोंका क्षय हो जाता है। प्रलयकालका सूर्य अपनी घोर किरणोंसे समुद्रके, प्राणियोंके, शरीरके और पृथ्वीके रसको सोख लेता है। इसके उपरान्त संकर्षणदेवके मुँहसे निकली हुई आग वायुके वेगसे बढ़कर प्राणियोंसे शून्य पृथ्वीके विवरोंको जला देती है। फिर सौसे भी कुछ अधिक वर्षके समयतक प्रलयकालकी घोर आँधी चलती है। तब आकाश धूलिसे भर जाता है। इसके बाद सौ वर्षतक बराबर वर्षा होती रहती है। तब समस्त ब्रह्माण्ड प्रलयकालके महासागरमें डूब जाता है। उस समय पृथ्वीका गन्धगुण जलमें लीन हो जाता है और पृथ्वी गन्धरहित होकर जलमें मिल जाती है। फिर जलका रसगुण तेजमें लीन हो जाता है और जल भी रसरहित होकर तेजमें मिल जाता है। तेजका रूपगुण वायुमें लीन हो जाता और तेज रूपरहित होकर

वायुमें मिल जाता है। फिर वायुका स्पर्शगुण आकाशमें लीन हो जाता है और स्पर्शरहित वायु भी आकाशमें मिल जाता है। आकाशका शब्दगुण तामस अहंकारमें लीन हो जाता और अपने गुणोंके साथ आकाश भी उसीमें लीन हो जाता है। तब सत्त्व, रज और तमोगुण भी लय हो जाते हैं। उस समय सूर्य आदि नहीं रह जाते। प्रकृति-पुरुषकी तत्त्वादि शक्तियोंका लय हो जानेको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। उस समय बुद्धि और इन्द्रिय आदि नहीं रहते। केवल ज्ञान ही शेष रह जाता है। इसीको आत्यन्तिक लय कहते हैं। इसमें सब प्रपञ्च लयको प्राप्त होते हैं। जब जीवात्माकी उपाधि अहंकार जिज्ञासा अर्थात् ब्रह्मज्ञानके अभ्याससे मिट जाता है, तब यह जीवात्मा अपने रूप ब्रह्मको देखता और जानता है। जब इस प्रकार विवेकरूप अस्त्रकी सहायतासे मायामय अहंकाररूप आत्माके बन्धनको काटकर आत्मज्ञान प्राप्त किया जाता है, तब वही मोक्ष अर्थात् आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है। कुछ सूक्ष्म बुद्धिवाले पण्डितोंका कहना है कि ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सब प्राणियोंकी नित्य सृष्टि और प्रलय होता रहता है। नित्य शारीरिक अवस्थाओंका बदलना ही नित्य प्रलय कहलाता है। हे राजन्! ईश्वरकी कालमूर्ति अनादि और अनन्त है। इस कालसे उत्पन्न अवस्थाएँ उसी प्रकार नहीं दिखलाई पड़तीं, जिस प्रकार असीम आकाशमें घूमनेवाले नक्षत्रों आदिकी अवस्थाएँ नहीं दिखलाई पड़तीं। हे महाराज! मैंने इन प्रलयोंका विवरण आपको सुना दिया। सब प्राणियोंके आश्रयस्वरूप नारायणकी ये लीलाएँ मैंने तुमको

संक्षेपमें बता दीं। हे राजन्! पहले अविनाशी नारायण ऋषिने यह भागवतपुराण-संहिता देवर्षि नारदको सुनायी थी। देवर्षि नारदने कृष्ण द्वैपायन व्याससे कही और वेदव्यासने मुझे बतायी। फिर इसी संहिताको नैमिषारण्यमें महायज्ञके बीच सूत अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषियोंको उनके पूछनेपर बतावेंगे।

पञ्चम अध्याय

संक्षेपमें परब्रह्मका उपदेश

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! जिनकी कृपासे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं, उन विश्वव्यापक भगवान हरिका स्वरूप मैं वर्णन करता हूँ। हे राजन्! मैं मरूँगा, इस अविवेकजनित भयको तुम छोड़ दो। शरीर पहले नहीं था, अब उत्पन्न हुआ है। अतएव यह नष्ट हो जायगा। इसके लिए सोच करना व्यर्थ है। जीवात्मा नहीं उत्पन्न होता। देहके मरनेपर जीव फिर ब्रह्ममें लीन हो जाता है। आत्माका देहादिक उपाधियोंसे सम्बन्ध माया-कृत है। मन ही आत्माके शरीर गुण और कर्मोंकी सृष्टि करता है और इस मनकी सृष्टि मायासे होती है। जब तेल तैलाधार बत्ती और अग्निका संयोग होता है, तब वह दीपक कहलाता है। इसी प्रकार देहादिके संयोगसे जीवका जन्म होता है। सत्त्व रज और तमोगुणसे शरीर उत्पन्न होता और नष्ट होता है। किन्तु ज्योतिःस्वरूप आत्माका जन्म नहीं होता। वह सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीरोंसे भिन्न है। वह आकाशके समान देह आदिका आधार तथा विकाररहित है। वह अनन्त और उपमाशून्य है।

जन्म-मरण—ये धर्म जीवात्माके नहीं देहके ही हैं। इस अनुभवसे युक्त शुद्ध बुद्धिके द्वारा आप ही अपनेमें स्थित आत्माका विचार करते हुए आप अपने चंचल मनको निश्चल करके श्रीहरिके चरणोंमें लगा दीजिये। ऐसा करनेसे ब्राह्मणके शापसे तक्षक आपको न जलायेगा। आप मृत्युको भी मारनेमें समर्थ हैं। मृत्युके सम्पूर्ण कारण भी आपको नहीं मार सकते। जो मैं हूँ, वही ब्रह्म है—इस विवेकदृष्टिसे अपनेको निराकार ब्रह्ममें लीनकर दो। तब देखोगे कि काटनेवाला विषधर तक्षक और पञ्चतत्त्वरचित शरीर सहित सम्पूर्ण विश्व भी तुमसे भिन्न नहीं है। हे वत्स! आपने आत्मासम्बन्धी कथा सुननेकी इच्छा प्रकट की थी, वह तो मैंने सुना दी। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?

षष्ठ अध्याय

राजा परीक्षितका देहत्याग

सूतजीने कहा—हे ऋषियों! श्रीशुकदेवजीसे यह भागवतपुराण सुनकर राजा परीक्षितने उनको प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—हे प्रभो! मैं कृतार्थ हो गया। आपके अनुग्रहसे करुणामय भगवान श्रीहरिकी कथा सुनकर अब मुझको तक्षक आदि मृत्युके कारणोंसे तनिक भी भय नहीं है। क्योंकि मैं आपके बताये हुए मार्गसे अभय और निर्वाणरूप ब्रह्मको पा गया। हे ब्रह्मन्! अब आज्ञा दीजिये कि मैं श्रीकृष्णमें मन लगाकर प्राण त्याग करूँ। आपने भगवानका परम मंगलमय परब्रह्म रूप मुझको दिखा दिया है। सूतजीने कहा—सबकी अनुमति प्राप्त करके शुकदेवजीने

वहाँसे प्रस्थान किया। उसके बाद राजा परीक्षित गंगा तटपर उत्तर दिशाको मुँह करके कुशासनपर बैठकर ब्रह्मके ध्यानमें लीन हो गये। उधर ऋषिकुमार शृंगीका भेजा हुआ विषधर तक्षक राजाको डँसने चला। रास्तेमें कश्यपनामक ब्राह्मणसे उसकी भेंट हुई। पूछनेसे मालूम हुआ कि वे विष चिकित्सक हैं और धन पानेकी आशासे राजा परीक्षितको पुनर्जीवित करनेके लिए जा रहे हैं। तक्षकने उनको बहुत-सा धन देकर बीच मार्गसे लौटा दिया। तब तक्षकने राजाके पास जाकर उनको डँस लिया। राजा परीक्षितका पञ्चतत्त्वमय शरीर विषकी आगसे उसी क्षण भस्म हो गया। यह दृश्य देखकर पृथ्वी, स्वर्ग और आकाशमें रहनेवाले सब लोग हाहाकार करने लगे। देवता लोग राजाको धन्यवाद देते हुए फूल बरसाने और नगाड़े बजाने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं और गन्धर्वगण गुण गाने लगे। तक्षकके काटनेसे पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जनमेजय दुःख और क्रोधसे अस्थिर हो उठे। उन्होंने हवन कुण्डमें सर्पोंकी आहुति देनेके लिए उसी समय ऋषियोंकी बतायी विधिके अनुसार सर्प यज्ञका अनुष्ठान किया। मन्त्रशक्तिसे विवश सर्प समूह आप ही आकर यज्ञके कुण्डमें गिरने और भस्म होने लगे। यह देखकर तक्षक बहुत घबड़ा गया और प्राण भयसे इन्द्रकी शरणमें गया। जनमेजयने जब देखा कि अनेकानेक सर्प आये और भस्म हो गये, किन्तु जिसके लिए यज्ञ रचा गया वह तक्षक नहीं आया। तब उन्होंने ऋषियोंसे इसका कारण पूछा। ब्राह्मणने कहा—वह दुष्ट प्राणकी रक्षाके लिए इन्द्रकी शरणमें गया है। स्वयं इन्द्र

उस शरणागतकी रक्षा कर रहे हैं। यही कारण है कि वह अबतक नहीं आया। तब राजाने कहा कि तक्षकके साथ इन्द्रको भी यज्ञकुण्डमें डालकर भस्म कर दीजिये। यह सुनकर ब्राह्मणोंने इन्द्र सहित तक्षकका यज्ञमें आह्वान किया। ब्राह्मणोंके वचनोंसे इन्द्रका सिंहासन तक्षकके साथ अपने स्थानसे चला और यह देखकर इन्द्र भी घबड़ाहटमें पड़ गये। इन्द्रकी यह दशा देखकर इन्द्रके गुरु बृहस्पतिने जनमेजयसे कहा—हे राजन्! तक्षक अमृत पीकर अमर हो चुका है। अतएव वह मर नहीं सकता और इन्द्र भी अजर-अमर हैं। अपने ही कर्मानुसार लोगोंको जीवन मरण आदि गतियाँ मिलती हैं। सब लोग अपने-अपने कर्मसे सुख या दुःख पाते हैं। कोई भी किसीको सुख या दुःख देनेवाला नहीं है। कर्मोंके अनुसार ही सर्प, अग्नि, जल आदिके बहाने मनुष्यकी मृत्यु होती है। अतएव आप इस हिंसाफलदायक यज्ञको समाप्त कीजिये। सूतजीने कहा—हे ऋषियों! बृहस्पतिके वचन मानकर राजा जनमेजयने उनकी पूजा की और सर्पयज्ञको समाप्त कर दिया। शौनकजीने पूछा—हे सौम्य! वेदोंके कितने विभाग किये गये, यह कथा मुझे सुनाइये! सूतजीने कहा—हे ब्रह्मन्! पहले समाधि अवस्थामें अवस्थित परमेष्ठी ब्रह्माके हृदयरूप आकाशमें एक शब्द प्रकट हुआ। वह शब्द एकाग्रचित्तसे कानमें अँगुली लगानेसे सुनाई पड़ता है। फिर उसी नादसे त्रिमात्रात्मक ओंकार प्रकट हुआ। ओंकारकी उत्पत्तिका स्थान अव्यक्त है। वह हृदयाकाशमें स्वयं प्रकाशमान और भगवान परब्रह्म परमात्माका बोधक है। यह सब उपनिषद

वेद और मंत्रोंका सनातन बीज है। हे भृगुश्रेष्ठ ! सर्वप्रथम ओंकारके अ-उ-म ये तीन वर्ण अभिव्यक्त हुए। फिर ब्रह्माने इन्हीं तीन वर्णोंसे सब अक्षरोंकी सृष्टि की। फिर चतुरानन विभु ब्रह्माने अपने चारों मुखोंसे व्याहृति और ओंकार सहित चार वेदोंको प्रकट किया और उन्हें वेदके उच्चारणमें निपुण अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियोंको पढ़ाया। उन धर्मप्रचारक महर्षियोंने अपने पुत्रोंको वे ही वेद पढ़ाये। इस प्रकार परम्परा क्रमसे पुत्रों और शिष्योंमें इसका प्रचार होता रहा। इसी प्रकार पठन-पाठनसे चारों युगोंमें वेद वर्तमान रहते हैं। ऋषियोंने जब देखा कि सब प्राणी क्रमशः अल्पायु, प्रतिभाहीन और मन्दबुद्धि होते जाते हैं, तब हृदयमें स्थित अच्युतकी आज्ञाके अनुसार वेदोंके कई विभाग कर दिये। हे ब्रह्मन् ! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें भी इन्द्र शिव ब्रह्मादिक लोकपालोंने सनातनधर्मकी रक्षाके लिए जब जाकर प्रार्थना की तब त्रिभुवनपति भगवानने अपने सत्त्वमय अंशसे सत्यवतीके गर्भमें स्थापित पराशर ऋषिके वीर्य द्वारा जन्म लिया और चार प्रकारसे वेदका विभाग करके वेदव्यासके नामसे विख्यात हुए। फिर उन्होंने चार वेदोंसे मन्त्रोंको चुनकर भिन्न-भिन्न वेदकी भिन्न-भिन्न चार संहिताएँ बनायीं। महामति व्यासदेवने चार शिष्योंको क्रमशः चार संहिताएँ पढ़ायीं। व्यासजीने पैलनामक शिष्यको ऋग्वेदकी बह्वृच संहिता, वैशम्पायन नामक शिष्यको यजुर्वेदकी निगद संहिता, जैमिनि नामक शिष्यको सामवेदकी छन्दोग संहिता और सुमन्तु नामक शिष्यको अथर्ववेदकी अङ्गिरसो संहिता पढ़ायी। फिर पैलऋषिने अपनी संहिताके दो भाग करके इन्द्रप्रमिति

और बाष्कल नामक दो शिष्योंको पढ़ायी। बाष्कलने अपनी संहिताके चार विभाग किये और बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र नामक शिष्योंको क्रमशः एक-एक विभागका अध्ययन कराया। आत्मज्ञानी इन्द्रप्रमितिने भी अपनी संहिता अपने पुत्र महामति पण्डित माण्डूकेय ऋषिको पढ़ायी। माण्डूकेयने अपनी संहिताके दो भाग किये और एक भाग अपने शिष्य देवमित्रको तथा दूसरा भाग अपने पुत्र शाकल्य ऋषिको पढ़ाया। शाकल्यने अपनी संहिताके पाँच विभाग किये और वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर नामक पुत्रोंको क्रमशः एक-एक भाग पढ़ाया। शाकल्य ऋषिके जातुकर्ण्य नामक एक शिष्य भी थे। उन्होंने निरुक्त सहित अपनी संहिताके चार विभाग किये और बलाक, पैल, जाबालि और विरजा नामक मुनियोंको क्रमशः एक-एक भाग पढ़ाया। पूर्वोक्त बाष्कल मुनिके पुत्रने उक्त सम्पूर्ण बह्वृच संहिताकी शाखाओंसे छाँटकर एक बालखिल्य नामक संहिता बनायी और बालापति, भज्य और काशार नामक शिष्योंको पढ़ायी। ऋग्वेदके इस शाखा, विभागको श्रद्धासे सुननेवाले सब प्रकारके महापापोंसे मुक्त हो जाते हैं। वैशम्पायन ऋषिके चरकनामक अध्वर्युपदधारी शिष्य हुए। उन्होंने गुरुके ब्रह्महत्यारूप पाप मिटानेके लिए कठिन व्रत किया। इसीसे उनका नाम चरक पड़ा। वैशम्पायनके एक और शिष्य याज्ञवल्क्य थे। उन्होंने गुरुसे कहा कि मैं सुकठिन व्रत करके आपका पाप नष्टकर दूँगा इस अल्पबुद्धि शिष्यसे आपका क्या हित होगा। यह सुनकर वैशम्पायनने कुपित होकर कहा—तुम अपने गुरु भाइयोंको तुच्छ

कहकर ब्राह्मणोंका अपमान करते हो। इसलिए तुम मेरे निकटसे चले जाओ। तुमने मुझसे जो कुछ पढ़ा हैं, वह शीघ्र मुझे लौटा दो। गुरुकी यह बात सुनकर देवरातके पुत्र याज्ञवल्क्य उसी समय पठित यजुर्वेदके मंत्रोंको वमन द्वारा उगलकर वहाँसे चले गये। वमनरूपसे पड़े हुए यजुर्वेदके अत्यन्त मनोहर मन्त्र देखकर अन्यान्य मुनियोंने लोलुपतावश तीतर पक्षीका रूप धारण करके उन्हें निगल लिया। वे ही मन्त्र यजुर्वेदकी अत्यन्त मनोहर तैत्तिरीय शाखाके नामसे प्रसिद्ध हैं। इसके उपरान्त गुरु वैशम्पायन भी जिनको नहीं जानते हों यजुर्वेदके उन अधिक मंत्रोंको पानेकी इच्छासे याज्ञवल्क्य ऋषि ईश्वररूप सूर्यदेवकी उपासना और स्तुति करने लगे। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान सूर्यने अश्वरूपसे याज्ञवल्क्य ऋषिको उनकी प्रार्थनाके अनुसार यजुर्वेदकी वैसी ही ऋचाएँ दीं। जिनको उस समय तक अन्य मुनिलोग यथावत् नहीं जानते थे। अश्वरूपी सूर्यके वाजसे उत्पन्न होनेके कारण यजुर्वेदकी वह शाखा वाजसनेयी नामसे प्रसिद्ध हुई। यजुर्वेदकी उन अपरिमित मन्त्रोंकी पन्द्रह शाखाएँ रचकर याज्ञवल्क्यने अपने कण्व, मध्यन्दिन आदि शिष्योंको उनका अध्ययन कराया। सामपाठी जैमिनि ऋषिने अपनी संहिताके दो भाग किये। उनमेंसे एक संहिता अपने पुत्र सुमन्तुको और दूसरी अपने पौत्र सुन्वानको पढ़ायी। जैमिनिके एक और शिष्य सुकर्माने सामवेद देख महावृक्षके एक सहस्र शाखाविभाग किये। कोशलदेशीय हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और एक अवन्ती नगरीका निवासी वेदपात्रोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण—इन तीन शिष्योंने सुकर्मासे

इन शाखाओंको पढ़ा। पौष्यञ्जि, आवन्त्य और हिरण्यनाभके उत्तरदेशीय पाँच सौ शिष्य हुए। उन्होंने क्रमशः पाँच सौ संहिताएँ उक्त तीनों ऋषियोंसे पढ़ीं। वे सामवेदके गानेमें निपुण पाँच सौ ब्राह्मण औदीच्य नामसे प्रसिद्ध हुए। इन औदीच्योंमें कुछ पूर्व दिशामें बसनेके कारण प्राच्य भी कहे जाते हैं। पौष्यञ्जिके लौगाक्षि, लाङ्गली, कुल्य, कुशीद और कुक्षि नामक पाँच शिष्य और भी थे। उनको पौष्यञ्जिने क्रमशः सामवेदकी शेष पाँच सौ संहिताएँ पढ़ायीं। हिरण्यनाभके कृतनाम नामक शिष्यने अपनी संहिताकी चौबीस संहिताएँ रचीं और अपने शिष्योंको पढ़ायीं। फिर जो कुछ बची रह गयीं, उनको आवन्त्यने अपने शिष्योंको पढ़ाया।

सप्तम अध्याय

पुराण-लक्षण वर्णन

सूतजीने कहा—अथर्व वेदके अधिकारी सुमन्तुने भी अपनी संहिता कबन्धनामक अपने शिष्यको पढ़ायी। कबन्धने उसे दो भागोंमें विभक्त करके पथ्य और वेददर्शनामक दो शिष्योंको पढ़ायी। शौक्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि—ये चार वेददर्शके शिष्य हुए। वेददर्शने अपनी संहिताके चार विभाग किये और क्रमशः एक-एक विभाग इन शिष्योंको पढ़ाया। पथ्यने भी तीन भाग करके अपनी संहिता अपने तीन शिष्यों—कुमुद, शुनक और जाजलिको पढ़ायी। आङ्गिरस शुनक ऋषिने संहिताके दो भाग किये और बभ्रु तथा सैंधवायनको उनकी

शिक्षा दी। सैन्धवायनके सावर्ण्य आदि कई शिष्य हुए। इनके सिवा नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, काश्यप और आङ्गिरस—ये सभी वेदके आचार्य माने जाते हैं। हे मुनिवर! अब पौराणिक आचार्योंका विवरण सुनिये। वेदव्यासजीने छः पुराण संहिताएँ बनाकर मेरे पिता रोमहर्षणको पढ़ायीं। फिर मेरे पिताने त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत—इन छः पौराणिकोंसे एक-एक संहिता पढ़ी और मैंने इन छहोंसे छहों संहिताएँ पढ़ीं। हे ब्रह्मन्! अब मैं पुराणोंके लक्षण और उनकी शाखाओंका वर्णन करता हूँ, सुनो। सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन जिसमें हो, उसे पुराण कहते हैं। कुछ लोगोंके मतानुसार दसों विषयोंका जिसमें पृथक्-पृथक् निरूपण रहे, वह महापुराण है और जिसमें पाँच विषय मुख्य रूपसे कहे गये हों और शेष पाँच विषयोंका वर्णन उन्हीं मुख्यरूपसे वर्णित पाँच विषयोंके अन्तर्गत हो, वह पुराण कहलाता है। प्रकृतिके गुणत्रय अहंकार और इन्द्रिय सृष्टिका नाम सर्ग या उत्पत्ति है। चराचरकी उत्पत्तिको विसर्ग या अवान्तर सृष्टि कहते हैं। मनुष्योंके जीवनोपायका नाम वृत्ति है। विशेष-विशेष अवतार लेकर वेदद्रोही दुष्टोंका दमन करनेके लिए भगवान जो लीला करते हैं, उसीका नाम रक्षा है। मनु, देवगण, मनुके पुत्र, इन्द्र, सप्तऋषि और श्रीहरिके अंशावतार जिस नियत समयमें अपने-अपने अधिकारके अनुसार अपना-अपना कार्य करते हैं, उसे मन्वन्तर कहते हैं। मनु आदि राजाओंके त्रैकालिक वंशको वंश

कहते हैं। उन राजाओंके और उनके वंशधरोंके चरित्रका नाम वंशानुचरित है। नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक इन चार प्रकारके प्रलयका नाम संस्था है। अज्ञानवश कर्म करनेवाला जीव इस विश्वकी सृष्टि आदिका कारण है, उसीको हेतु कहते हैं। समाधिकालके अधिष्ठानको अपाश्रय कहते हैं। पुराणतत्त्ववेत्ता पण्डितोंने उक्त लक्षणोंसे युक्त छोटे-बड़े पुराणोंकी संख्या अठारह बतायी है। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड—ये उन पुराणोंके नाम हैं। इन पुराणोंका पढ़ने-पढ़ाने या सुननेसे अवश्य ही ब्रह्मतेज बढ़ता है।

अष्टम अध्याय

मार्कण्डेय मुनि द्वारा नारायणस्तुति

शौनकजीने कहा—हे साधु सूत! मृकण्डु ऋषिके पुत्र मार्कण्डेयजी प्रलयकालमें भी किस प्रकार बने रहे? यह बात कैसे सम्भव हो सकती है। इसके सिवा मार्कण्डेयजी इस वर्तमान कल्पमें हमारे वंशमें उत्पन्न हुए हैं और उनका जन्म होनेके बाद अबतक तो कोई भी प्रलय नहीं हुआ है। तब वह कैसा प्रलय था जिसमें वे जीवित रह गये? यह भी कहा जाता है कि मार्कण्डेयजीने अकेले ही प्रलय-सागरमें बहते-बहते एक स्थानमें बर्गदके वृक्षपर एक पत्तेमें लेटे हुए एक अद्भुत रूप बालकको देखा था। मार्कण्डेयजीकी कौतूहलमयी कथा कहकर तुम हमारा

संशय दूर करो। सूतजीने कहा—हे शौनकजी! यह प्रश्न अच्छा है। क्योंकि इस कथामें हरिचर्चा भी है। मार्कण्डेयजीके जब गर्भाधानसे लेकर यज्ञोपवीततक सब संस्कार हो गये, तब वे गुरुकुलमें जाकर चारों वेद पढ़ने लगे। तप और स्वाध्याय पाठमें तत्पर रहकर मार्कण्डेयजी इन्द्रियदमनपूर्वक शान्तभावसे आजन्म ब्रह्मचारी बने रहनेका विचार करके कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने लगे। वे बहुत कम बोलते थे। प्रातःकाल और सायंकाल भिक्षा माँगकर लाते और गुरुके सामने रख देते थे। गुरु भोजनकी आज्ञा देते तो वे एक बार भोजन कर लेते और नहीं तो निराहार ही रह जाते थे। इस प्रकार तप और स्वाध्यायमें तत्पर रहकर हरिकी आराधना करते हुए मार्कण्डेयजीने हजारों-लाखों वर्ष बिता दिये। उन्होंने अत्यन्त दुर्जय मृत्युको भी जीत लिया। श्रीहरिमें चित्त लगाकर महायोगी मार्कण्डेयने छः मन्वन्तर बिता दिये। इस सातवें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मार्कण्डेयजीके महायोगका समाचार सुनकर इन्द्र बहुत डर गये और अनेक उपायोंसे उनके तपमें बाधा देने लगे। गन्धर्व, अप्सरा, वसन्त, मलय, वायु आदि अपने अनुचरोंको उन्होंने मुनिके पास भेजा। हिमालयकी ओर उत्तर दिशामें मार्कण्डेयका आश्रम था। आश्रमके निकट पुष्प-भद्रा नदी बहती थी और उसके तटपर चित्रा नामक शिला पड़ी थी। आश्रमका स्थान रमणीय था। मनोहर वृक्षों और लताओंसे परिपूर्ण इस स्थानमें पक्षियोंका कोलाहल मन मुग्ध कर रहा था। वसन्त ऋतुके आगमनसे वृक्ष फल-फूलोंसे भर गये। रात्रिमें पूर्ण-चन्द्र भी प्रकट

हुआ। गन्धर्वगण गाने-बजाने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। उस समय काम बाण चलानेको तैयार हो गया और वसन्त, मद, लोभ आदि मुनिका चित्त विचलित करनेकी चेष्टा करने लगे। परम सुन्दरी अप्सरायें मुनिके निकट गयीं। कामदेवने सोचा कि अब तो मुनिको जीत लिया। उसने अपना बाण चलाया। किन्तु उसका सब उद्यम व्यर्थ हो गया। मुनिके तेजसे वे सब जलने लगे और वहाँसे भाग चले। यह देखकर इन्द्र आश्चर्यमें पड़ गये। उस समय मुनिपर अनुग्रह करनेके लिए नरनारायणरूपी हरिभगवान प्रकट हुए। मार्कण्डेयजीने आँखें खोलकर साक्षात् भगवानके अंश नरनारायणको सामने उपस्थित देखा। उनके श्याम और गौर शरीर परम मनोहर थे। वे मृगचर्म और वल्कल पहने हुए थे। वे चतुर्भुज वेषमें थे। कन्धेमें नवगुणयुक्त यज्ञोपवीत शोभित थे। हाथोंमें कमण्डलु, वेणुनिर्मित सरल दण्ड, कमल और रुद्राक्षकी माला शोभित थी। सिरपर पिङ्गलवर्ण विद्युत्सदृश कान्तिशाली जटाजूट सुशोभित थे। शरीर बलिष्ठ तेजसम्पन्न और ऊँचा था। वे वेदकी ऋचाएँ पाठ कर रहे थे। इससे वे साक्षात् तपकी मूर्ति जान पड़ते थे। इस प्रकार उनको देखते ही मार्कण्डेयजी उठ खड़े हुए। उनको प्रणाम करके यथोचित सत्कार और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। जब पूज्यतम दोनों श्रेष्ठ ऋषि आसनोंपर बैठे, तब मुनि स्तुति करने लगे। मार्कण्डेयने कहा—हे विभो! मैं मन्दमति आपकी महिमाका वर्णन क्या करूँ? ब्रह्मा, शिव आदिके, सब देहधारियोंके और मेरे भी प्राणोंके प्रवर्तक आप ही हैं। आप तीनों लोकों के

पालन, ताप मिटाने और मोक्ष देनेके लिए ही इन दोनों रूपोंसे पृथ्वीपर प्रकट हुए हैं। आप चराचर जगत्के ईश्वर हैं। मैं आपके चरण कमलोंको भजता हूँ। आपकी मायाके सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयके कारण हैं। हे ईश ! प्रवीण पण्डितजन आपको शुद्ध सत्त्वमयी इस नारायणनामक मूर्तिको और आपके भक्तोंकी शुद्ध सत्त्वमयी इस नरनामक मूर्तिको ही भजते हैं। हे भगवन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

नवम अध्याय

मार्कण्डेयको भगवानकी माया दिखाई देना

सूतजीने कहा—हे शौनकजी ! मार्कण्डेयजी जब स्तुति कर चुके, तब नर-नारायणने प्रसन्न होकर उनसे कहा—हे मार्कण्डेय ! तुम सिद्ध हो गये। तुम्हारे व्रतको देखकर हम लोग प्रसन्न हैं। अतएव अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो। मार्कण्डेयने कहा—हे अच्युत ! आपके दर्शनसे ही मेरी सब कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। मैं अब कुछ नहीं चाहता। तथापि मैं आपकी अद्भुत माया देखना चाहता हूँ। भगवान ईश्वर नरनारायण भी 'तुम्हारी अभिलाषा पूरी होगी' कहकर मुसकुराते हुए बदरिकाश्रमको चले गये। मार्कण्डेय भी माया देखनेके समयकी प्रतीक्षामें अग्नि, सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश और अपनेमें सर्वत्र हरिकी भावना करके मानसिक पूजनसे प्रभुकी पूजा और आराधना करने लगे। हे भृगुश्रेष्ठ ! एक दिन सन्ध्याके समय पुष्प-

भद्रा नदीके किनारे बैठे हुए मार्कंण्डेयजी श्रीहरिकी उपासना कर रहे थे। उसी समय अकस्मात् प्रचण्ड वेगसे आँधी आ गयी वर्षा होने लगी और आकाश में बादल छा गये। बिजली चमकने लगी और घोर गर्जन होने लगे। समुद्र उमड़ता और पृथ्वीको डुबाता हुआ आता दिखाई पड़ा। उस समुद्र जलकी बड़ी-बड़ी लहरें आपसमें टकराने लगीं और गहरे तथा भयानक भँवर पड़ने लगे। अपने साथ ही चारों प्रकारके चराचर प्राणियोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण जगत् और आकाश मण्डलको ढकनेवाले अमितजल प्रचण्ड बिजली और प्रचण्ड आँधीसे शारीरिक और मानसिक क्लेशसे पीड़ित होते देखकर तथा पृथ्वीको प्रलय सागरमें डूबते देखकर ज्ञानी होनेपर भी मार्कंण्डेयमुनि व्याकुल और भयभीत हो गये। इस प्रकार मुनिके देखते ही देखते समूची पृथ्वी जलसे परिपूर्ण हो गयी। धीरे-धीरे पृथ्वी आकाश स्वर्ग तारागण दसों दिशाएँ अर्थात् त्रिभुवन उस जलमें डूब गये। केवल वे ही महामुनि बचे रह गये। मुनिकी जटाएँ फैल गयीं और वे जड़ तथा अन्धेके समान उस जलमें इधर-उधर बहने लगे। मुनिको भूख-प्याससे कष्ट होने लगा। उनको जल-जन्तु पीड़ित करने लगे। वे कभी ऊपर कभी नीचे घूमने लगे। आकाश दिशाओं और पृथ्वीका कुछ भी बोध उनको नहीं रहा। वे कभी शोक, कभी मोह, कभी भय, कभी दुःख और कभी सुखका अनुभव करते और कभी पीड़ासे मृत प्राय हो जाते थे। विष्णुकी मायासे आत्मा आच्छन्न होनेके कारण मार्कण्डेयजी इसी प्रकार दस हजार लाख वर्ष तक अर्थात् अपरिमित समय तक महासागरके जलमें बहते रहे। एक

समय उनको उसी दशामें एक छोटासा टापू दिखाई पड़ा। उस टापूपर फल-फूलसे भरा नवपल्लव परिपूर्ण एक छोटासा सा वह वृक्ष दिखाई पड़ा। उस वृक्षकी एक शाखामें एक पत्तेपर श्यामवर्ण परमसुन्दर एक बालकको देखकर मार्कण्डेयजी बहुत आश्चर्यमें पड़ गये। मार्कण्डेयजीने देखा कि उस बालकका मुख सुंदर है। ग्रीवा शंखके समान है। वक्षःस्थल विशाल है। नाक सुन्दर और ऊँची है। भौंहें कमान सी मनोहर हैं। बड़ी-बड़ी अलकें मुखमण्डलकी शोभाको बढ़ा रही हैं। चितवन मनोहर हैं। पीपलके पत्तेके समान चिकने उदरमें गम्भीर नाभि है। वह अद्भुत बालक सुंदर अंगुलियुक्त दोनों हाथोंसे कमलकोमल चरणके अंगूठेको मुखमें डालकर चूस रहा है। उस बालकको देखकर मुनिको बहुत आनन्द हुआ। उनकी सब थकावट तथा पीड़ा मिट गयी। उस बालकका अद्भुत भाव और रूप देखकर मुनिवर शंकित हुए। तथापि तुम कौन हो—ऐसा प्रश्न करनेकी इच्छासे उसकी ओर बढ़ते हुए चले गये। पास पहुँचते ही वे अकस्मात् बालककी साँसके साथ उड़कर उस बालकके उदरमें प्रवेश कर गये। उसमें जाकर मुनिने देखा कि प्रलयके पहले यह जगत् जिस तरह दिखाई पड़ता था, उसी अवस्थामें वह बालकके मुँहमें अवस्थित है। आश्चर्य पड़कर मुनि मोहित हो गये। वे समझ नहीं सके कि वास्तवमें यह क्या है? वहाँ पर्वत, आकाश, तारागण, सम्पूर्ण सागर, सातों द्वीप, सब दिशाएँ, देवगण, असुरगण, वन, देश, नदियाँ, नगर, आकर, जनसमूह, चारों वर्ण, आश्रम, पाँचों तत्त्व, पुरग्राम और अन्य सब पदाथ उनको

दिखाई पड़े। बालकके उदरमें सम्पूर्ण विश्व सत्य-सा भासित हुआ। हिमालय पर्वत, पुष्पभद्रा नदी, ऋषिश्रेष्ठ नारायणका दर्शनस्थान और अपना भी आश्रम उनको दिखाई पड़ा। इस प्रकार विश्वको देखते-देखते मुनि उस बालककी साँसके साथ फिर बाहर निकलकर उसी प्रलयसागरके जलमें गिर पड़े। उसी वृक्षके ऊँचे स्थानमें शाखामें पत्तियोंके बीच निर्मल मुसकानयुक्त मनोहर वही बालक फिर दिखाई पड़ा। उस बालक मुकुन्दको अपने चित्तमें धारण करके वे उसे आलिंगन करनेके लिए आगे बढ़े, किन्तु उसी क्षण योगेश्वरोंके अधीश्वर लीला वपुधारी अन्तर्यामी वह बालरूप साक्षात् नारायण उनके निकटसे अन्तर्हित हो गये। ऋषिका उद्यम उसी प्रकार विफल हो गया जिस प्रकार ईश्वर विमुख व्यक्तिकी सब चेष्टाएँ विफल हो जाती हैं।

* * *

दशम अध्याय

शिवका आगमन और मार्कण्डेयको वरदान

सूतजीने कहा—मार्कण्डेयजी इस प्रकार नारायणकी योगमायाका प्रभाव देखकर उनकी ही शरणमें अपनेको अर्पित करके कहने लगे—हे हरि! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ। मुझपर कृपा करिए। मैं मतिमन्द आपकी योगमायाका प्रभाव नहीं समझ सकता। सूतजी बोले—इस प्रकार अपना चित्त एकाग्र करके मार्कण्डेय फिर हरि भजन करने लगे। इसी समय एक दिन पार्वतीके साथ नन्दीपर सवार भगवान शंकरने आकाशमार्गसे विचरण करते हुए मार्कण्डेयजीको

समाधि अवस्थामें देखा। पार्वतीजीने भगवान शंकरसे कहा—हे भगवन् ! तुम सिद्धिदाता हो। इस ब्राह्मणकी तपस्या सिद्ध करो। अर्थात् वर दो। महादेवने कहा—हे पार्वती ! इन्होंने अव्यय पुरुष भगवानकी परमभक्ति प्राप्तकी है। अतएव इनको किसी फलकी यहाँ तक कि मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं है। तथापि हे भवानि ! तुम्हारे कहनेसे मैं इनसे बातें करूँगा। सबके लिए साधुसंगम परमलाभ है यह कहकर वे मुनिके निकट जा पहुँचे। किन्तु योगमें अधिष्ठित रहनेके कारण मुनिको शिवजीका आगमन नहीं विदित हुआ। यह देखकर भगवान शिवने छिद्रमें प्रवेश करनेवाले वायुकी भाँति उनके हृदयमें प्रवेश किया। बिजलीके समान प्रभावशाली जटाजूटसे शोभित, त्रिलोचन, दशभुज, बालसूर्य सदृश, व्याघ्रचर्म ओढ़े और हाथोंमें त्रिशूल, बाण, खड्ग, चर्म, अक्षमाला, डमरू, कपाल तथा परशु आदि लिये शिवरूपको एकाएक हृदयमें देखकर मुनिका ध्यान टूट गया और समाधि भंग हो गयी। आँखें खोलकर उन्होंने देखा कि महादेव उसी वेषमें सामने उपस्थित हैं। तब वे उठ खड़े हुए। प्रणाम करके आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, माला, धूप और दीपक इत्यादिसे उन्होंने शिवशिवाका पूजन किया। पूजाके उपरान्त मुनिने हाथ जोड़कर कहा—हे प्रभो ! मैं आपकी क्या सेवाकर सकता हूँ ? आप तो स्वयं जगत्को वांछितवर देकर सुखी करते हैं। आपको मेरा नमस्कार है। सूतजीने कहा—इस प्रकारकी स्तुतिसे परम सन्तुष्ट होकर भगवान महादेव हँसते हुए मार्कण्डेयजीसे बोले—हे मुनिवर ! जो इच्छा हो, वही वर मुझसे तुम

माँग लो। हम तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु, महादेव वरदानियोंमें श्रेष्ठ हैं। हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता। सदाचारी निष्काम और समदर्शी भक्तकी सब लोकपाल और मैं ब्रह्मा और साक्षात् ईश्वर स्वयं हरि भी उपासना वन्दना और पूजा करते हैं। ऐसे भक्तजन मुझमें ब्रह्मामें हरिमें अपनेमें और सम्पूर्ण जगत्में भेद-भाव नहीं रखते। अतएव इस योग्यताके कारण तुम हमारे पूज्य हो। सच्चे तीर्थ और देवता तो आप ही लोग हैं। क्योंकि आपके दर्शनमात्रसे मन पवित्र होता है। चित्तको एकाग्र करके तप तथा संयम द्वारा जो लोग मेरे ही रूपमें विद्यमान रहते हैं, मैं उन ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ। बड़े-बड़े पातकी भी आपके दर्शनसे पवित्र हो जाते हैं। श्रीसूतजीने कहा—महादेवके धर्म रहस्ययुक्त अमृतसदृश वाक्य सुनकर मार्कण्डेय मुनि आनन्दित हुए। विश्वकी मायामें चिरकालतक भ्रमनेसे मार्कण्डेयजीको जो कष्ट हुआ था, उसे शिवके अमृतमय वाक्योंने मिटा दिया। मार्कण्डेयजीने शंकरसे कहा—स्वयं जगदीश्वर होकर भी अपने अधीन-जनोंको प्रणाम करना, उनकी स्तुति करना यह आप ईश्वरोंका आचरण हम मनुष्योंके लिए अचिन्त्य है। हम इसे नहीं समझ सकते। मैं समझता हूँ कि मनुष्योंको समझाने और शिक्षा देनेके लिए ही देवता लोग मनुष्योंकी तरह आचरण—स्तुति आदि करते हैं। इन व्यवहारोंसे आपका प्रभाव कम नहीं होता। आप त्रिगुणात्मक, गुणोंके नियन्ता, एकमात्र अद्वितीय, गुरु, ब्रह्ममूर्ति भगवान हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे भगवन्! आपके दर्शनसे मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गयीं। अब मैं आपसे

और क्या वर माँगूँ। तथापि मैं आपसे एक यही वर माँगता हूँ कि मुझको अच्युत् भगवानमें भगवद्भक्तोंमें और आपमें अचलभक्ति प्राप्त हो। सूतजीने कहा—मार्कण्डेय ऋषिकी स्तुति और पूजासे सन्तुष्ट होकर पार्वतीकी इच्छाके अनुसार भगवान शंकरने कहा—हे महर्षि! तुम्हारी कामना सिद्ध हो। अच्युत् भगवानमें, भगवद्भक्तोंमें और मुझमें तुम्हारी अचलभक्ति हो। तुम बालब्रह्मचारी हो। अतएव तुम कल्पके अन्ततक जीवित रहोगे। तुम्हारे यश और पुण्यका कभी क्षय न होगा। तुमको तीनों कालका ज्ञान प्राप्त होगा। तुम अजर-अमर होओगे। तुम आत्मज्ञानी और पुराण रचनेवाले आचार्य होओगे। सूतजीने कहा—महादेव मार्कण्डेय ऋषिको इस प्रकार वर देकर भवानीसे मुनिके अद्भुत चरित्र बखानते हुए वहाँसे चले गये। मार्कण्डेय मुनिकी इस कथाको जो लोग सुनते और सुनाते हैं, वे कर्म-जनित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

एकादश अध्याय

अङ्ग-उपाङ्गयुक्त तत्त्वमय महापुरुषका वर्णन

शौनक ऋषिने कहा—हे सूत! भगवान चैतन्यघन और ज्योतिःस्वरूप हैं। किन्तु तान्त्रिक उपासक लोग उपासना करते समय उनके हाथ पैर आदि अङ्ग, गरुड़ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि शस्त्र और कौस्तुभ आदि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं। कृपापूर्वक मुझे आप बताइये कि किन-किन तत्त्वोंसे किस प्रकार

श्रीहरिके अङ्ग-उपाङ्ग आदिकी कल्पना की जाती है? कर्मकी निपुणतासे अमृतत्व प्राप्त होता है, अतएव कर्मयोग भी मैं जानना चाहता हूँ। उसका भी वर्णन कीजिये। सूतजी अपने गुरुदेवोंको प्रणाम करके विष्णुकी उन विभूतियोंका वर्णन करने लगे जिन्हें ब्रह्मा आदि आचार्योंने वेदों और तन्त्रोंमें कहा है। उन्होंने कहा—प्रकृति गुण महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा—इन नौ तत्त्वों और मनके साथ ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चतत्त्व—इन सोलह विकारोंसे वह विराट पुरुष निर्मित है। उसी चेतनायुक्त विराट मूर्तिमें यह त्रिभुवन दिखाई पड़ता है। विराट पुरुषके दोनों पैर पृथ्वी है। स्वर्गलोक मस्तक है। आकाश नाभि है। सूर्य नेत्र हैं। लोकपालगण भुजाएँ हैं। चन्द्रमा मन हैं। यमराज भौंहें हैं। लज्जा अधर है। लोभ ओष्ठ है। चाँदनी दाँत हैं। भ्रम हास्य है। वृक्षवृन्द रोमपुञ्ज हैं। मेघमण्डल केशसमूह हैं। यह भूर्लोकस्थित मनुष्य शरीर जैसे अपने परिमाणसे सात बित्ते भर लम्बा है वैसे ही वह विराट पुरुष भी अपने परिमाणसे सात ही बित्तेका है। यही उस विराट पुरुषका रूप है। विशुद्ध जीव चैतन्य उसका कौस्तुभमणि और उसकी व्याप्त होनेवाली प्रभा ही श्रीवत्स है। इन दोनों मुख्य आभूषणोंको भगवान हृदयमें धारण किये रहते हैं। त्रिगुणात्मिका माया ही विचित्र वनमाला है। वेद समूह ही पीताम्बर है। त्रिमात्रायुक्त प्रणव ही ब्रह्मसूत्र है। सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र ही उसके दोनों मकराकृति कुण्डल हैं। सर्वलोकवन्दित ब्रह्मपद ही किरीट-मुकुट हैं। प्रधान अनन्त (शेषदेव) आसन हैं। धर्म, ज्ञान आदि प्रवृत्तियोंसे

युक्त सतोगुण ही आसनके ऊपर बिस्तरके स्थानपर स्थित पद्म है। तेज उत्साह और बलसे युक्त प्राणतत्त्व ही उसकी जया है। जल तत्त्व शंख है। तेजका तत्त्व सुदर्शनचक्र है। शरीर स्थित अवकाशरूप आकाश तत्त्व ही असि अर्थात् तलवार है। अज्ञान ही ढाल है। साक्षात् काल ही शार्ङ्ग धनुष है। अनेक प्रकारके कर्म ही अक्षय तर्कस हैं। विविध वासनामयी इन्द्रियाँ ही बाण पुञ्ज है। क्रिया शक्ति युक्त मन रथ है। पञ्चतन्मात्राएँ उस रथका बाहर अभिव्यक्त रूप है। वर, अभय आदि उस इष्टदेव विराट पुरुषकी मुद्राएँ हैं। सूर्यमण्डल ही पूजाका स्थान है। आत्माका संस्कार ही दीक्षा अर्थात् परम पुरुषकी पूजाका अधिकार है। अपने पापोंका क्षय ही परम पुरुषकी पूजा है। भग शब्दके अर्थस्वरूप ऐश्वर्य आदि छः अलौकिक गुण ही भगवानके हाथमें स्थित लीलाकमल हैं। धर्म और यश ही दोनों चामर हैं। अकुतोभय वैकुण्ठधाम ही छत्र है। ऋक्, यजुः और साम—ये तीन वेद ही यज्ञस्वरूप पुरुष अर्थात् विष्णुका गरुड़नामक वाहन है। स्वस्वरूप और चित्स्वरूप आत्माकी कभी न नष्ट होनेवाली शक्ति ही शोभा-सम्पत्तिमयी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। पञ्चरात्र आदि तन्त्र शास्त्र ही भगवानके श्रेष्ठ पार्षद विष्वक्सेन हैं। अणिमा आदिक आठों गुण ही आठ नन्द आदि द्वारपाल हैं। हे ब्रह्मन्! वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चार इनकी मूर्तियाँ हैं। मूर्तिव्यूहमें इन्हीं मूर्तियोंकी पूजाकी जाती है। जाग्रत् स्वप्न और निद्रित अवस्थाओंमें मन संस्कार और ज्ञानसे इन नारायणकी पूजाकी जाती है। हे द्विजश्रेष्ठ! यही विराटरूप

भगवान विष्णु ज्ञानमय वेदका मूलकारण, सबके साक्षी और अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। यही अपनी माया द्वारा इस जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और संहार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन भिन्न-भिन्न नामोंको प्राप्त होते हैं। वे केवल भक्तजनोंको लभ्य हैं। हे कृष्ण! पृथ्वीका विघ्न दूर करनेके लिए तुमने राजाओंका वंश नष्ट किया है। हे गोविन्द! गोपरमणियाँ और नारदादि ऋषिगण तुम्हारा निश्चल यशगान करते हैं। तुम्हारा नाम सुननेसे मंगल होता है। अतएव तुम भक्तोंकी रक्षा करो। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर तुम्हारा नाम जपता है, वही व्यक्ति ब्रह्मको पहचान लेता है। शौनकजीने फिर पूछा—हे सूत जी! हरिभक्त राजा परीक्षितके पूछनेपर श्रीशुकदेवजीने जिसका वर्णन किया है उस सूर्य रूप नारायणकी प्रत्येक मासमें तपनेवाली सहचरगण सहित बारह मूर्तियोंके नाम और कामका विवरण हमें सुनाइये। सूतजीने कहा—सब देहधारियोंके आत्मा जो भगवान विष्णु हैं, उनकी अनादि मायासे निर्मित यह सूर्यमूर्ति लोकव्यवहारका चक्र चलाती हुई आकाशमण्डलमें विचरती रहती है। सम्पूर्ण जगत्के आत्मा और आदिकर्ता सूर्यरूप नारायण वास्तवमें एकरूप हैं तथापि यही सम्पूर्ण वेदोक्त क्रियाओंके मूल हैं। इसलिए ऋषियोंने भिन्न-भिन्न भावनाओंके अनुसार इनके उपाधिकृत अनेक नामों और रूपोंकी कल्पना कर ली है। देश, काल, क्रिया, कर्ता, करण, कार्य, आगम, द्रव्य और फल—ये सूर्यनारायणकी मायाकल्पित नौ उपाधियाँ हैं। कालरूप भगवान सूर्य चैत्र आदि बारहों महीनोंमें लोकयात्रा निर्वाहके लिए क्रमशः बारह मूर्तियोंमें प्रकाशमान होते

CC0. In Public Domain, Digitized by eGangotri

प्सरा = स्ववेश्या । [illegible] ॥ ऋषि = [illegible] पेटु = पार जाने वाला

गन्धर्व = देव [illegible] । ब्रह्मा की नाभि से उद्भव ॥

हैं। उनके साथ बारह-बारह अप्सरा आदि अनुचरगण भी रहते हैं। जैसे—चैत्र मासमें धातानामक सूर्यके साथ कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि नाग, रथकृत यक्ष, पुलस्त्य ऋषि और तुम्बुरु गन्धर्व रहता है। वैशाखमें अर्यमानामक सूर्यके साथ पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, नारद गन्धर्व, प्रहेति राक्षस और कच्छनीर नाग रहता है। ज्येष्ठमें मित्रनामक सूर्यके साथ अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, तक्षक ~~गन्धर्व~~ नाग, रथस्वन यक्ष और हाहानामक गन्धर्व रहता है। आषाढ़में वरुणनामक सूर्यके साथ, वशिष्ठ ऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, शुक्रनाग, चित्रस्वन राक्षस और हूहूनामक गन्धर्व रहता है। सावनमें इन्द्रनामक सूर्यके साथ विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अंगिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और वर्यनामक राक्षस रहता है। भादोंमें विवस्वाननामक सूर्यके साथ उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्रनामक राक्षस, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा, आसारण यक्ष और शंखपाल नाग रहता है। आश्विनमें त्वष्टानामक सूर्यके साथ जमदग्नि ऋषि, कम्बलाश्व नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शताजित् यक्ष और धृतराष्ट्रनामक गन्धर्व रहता है। कार्तिकमें विष्णुनामक सर्यके साथ अश्वतर नाग, रम्भानाम्नी अप्सरा, सूर्यवर्चस गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और मखापेतनामक राक्षस रहता है। अगहनमें अंशुनामक सूर्यके साथ कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युतक्षत्रु राक्षस और महाशंखनाग रहता है। पौषमें भगनामक सूर्यके साथ स्फूर्ज राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, अर्ण यक्ष, आयु ऋषि, विप्रचित्ति

है (दे० कोष)

अप्सरा और कर्कोटक नाग रहता है। माघमें पूषानामक सूर्यके साथ धनंजय नाग, वात राक्षस, सुषेण गन्धर्व, घृताची अप्सरा, गौतम ऋषि और सुरुचि यक्ष रहता है। फाल्गुनमें पर्जन्यनामक सूर्यके साथ क्रतु यक्ष, वर्चस राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, ऐरावत नाग और विश्व नामका गन्धर्व रहता है। इस प्रकार सूर्यनारायण गन्धर्व आदि अनुगतोंके साथ बारहों महीने त्रैलोक्यके चारों ओर विचरण करते हुए सब लोगोंको इहलोक और परलोकमें शुभ बुद्धि देते रहते हैं। जो लोग नित्य प्रातःकाल और सन्ध्यासमय भगवान विष्णुरूप आदित्यकी इन विभूतियोंका स्मरण या कीर्तन करते हैं, उनके पाप क्षीण होते रहते हैं। ऋषिगण ऋक्, यजुः और सामवेदके मन्त्रोंसे सूर्यकी स्तुति करते हैं। गन्धर्वगण गुणगान करते हैं। अप्सराएँ इनके सामने नृत्य करती हैं। नागगण इनके रथका दृढ़ बन्धन बनते हैं। यक्ष लोग रथयोजना करते हैं और बली राक्षसगण रथको पीछेसे ढकेलते हुए चलते हैं। अंगूठेकी एक पोरके समान शरीरवाले साठ हजार बालखिल्यनामक निष्पाप ऋषिगण सूर्यकी ओर मुख करके पिछले पैरोंसे आगे-आगे स्तुति करते हुए चलते हैं। अनादि अनन्त भगवान श्रीहरि ईश्वर इस प्रकार प्रति कल्पमें अंशविभाग करके उन मूर्तियोंमें सब लोकोंका पालन करते हैं।

* * *

द्वादश अध्याय

बारह स्कन्धोंकी कथाओंका संक्षिप्त विवरण

सूतजीने कहा—अब मैं श्रीकृष्ण भगवानको और परमपूज्य ब्राह्मणोंको प्रणाम करके संक्षेपमें सनातनधर्मका वर्णन करता हूँ। हे विप्रगण! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार लोगोंके सुनने योग्य यह अद्भुत सम्पूर्ण हरिचरित्र मैंने सुना दिया। इस कथामें साक्षात् नारायण हरिका स्वरूप बताया गया है और जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके मूलकारण और गूढ़ परब्रह्मका स्वरूप दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त ज्ञान, विज्ञान सम्पन्न ब्रह्मका उपाख्यान भी कहा गया है। इसमें भक्तियोग युक्त वैराग्यका भी भलीभाँति वर्णन है। परीक्षितका उपाख्यान, नारदका उपाख्यान, ब्राह्मणके शापसे परीक्षितका मरणाभिमुख होकर गङ्गातटपर अन्न-जल छोड़कर बैठना और ब्रह्मर्षि शुकदेवके साथ उनका संवाद—इन सभी विषयोंका वर्णन हुआ है। योगाभ्यास पूर्वक अर्चि आदि लोकोंकी ऊर्ध्वगति, ब्रह्मा नारद संवाद, अवतारोंका वर्णन और महत्तत्त्व आदिकी सृष्टि अर्थात् विराट् रूपका वर्णन पहले ही सुना चुका हूँ। फिर विदुर उद्धव संवाद, विदुर मैत्रेयजीका संवाद, पुराणसंहिता विषयक प्रश्नोत्तर, प्रलयकालमें महापुरुषकी स्थिति, प्राकृतिक सृष्टि, महत्तत्व आदिका सप्तविध सर्ग, वैकारिक सर्ग, स्थूल सूक्ष्म कालकी गतियाँ, भगवानके नाभि पद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, प्रलयसागरसे पृथ्वीका उद्धार करते समय वाराहकृत हिरण्याक्षका वध, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल

आदिकी सृष्टि, रुद्र सृष्टि, अर्ध नर-नारी सृष्टि, स्वायम्भुव मनुकी सृष्टि, शतरूपा रानीकी उत्पत्ति, कर्दम प्रजापति और धर्मकी सन्तानोंका विवरण, कपिल मुनिका अवतार और कपिल देवहूति संवाद वर्णित है। फिर ब्रह्मासे मरीचि आदि नव ब्रह्मर्षियोंके वंशका वर्णन, दक्षयज्ञ विनाश, ध्रुवचरित्र, पृथुचरित्र, राजा प्राचीनबर्हि नारद संवाद, प्रियव्रतका उपाख्यान, राजा नाभिकी कथा, ऋषभ चरित, राजा भरतका वृत्तान्त, द्वीप-समुद्र और पर्वत-नदीयुक्त पृथ्वी मण्डलका वर्णन, ज्योतिश्चक्र, पाताल और नरकोंका विवरण सुना चुका हूँ। फिर अजामिलोपाख्यान, प्रचेतागणसे दक्षका जन्म, दक्ष कन्याओंसे देवता, असुर, मनुष्य, पशु, कीट, पतङ्ग, पक्षी, मृग आदिकी सृष्टि, वृत्रासुरका जन्म और वध, क्षितिके दोनों पुत्रोंका निधन, महात्मा प्रह्लादका चरित्र, मन्वन्तर वर्णन, गजेन्द्र मोक्ष, भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें होनेवाले जगत्पति हरिके मत्स्य, कूर्म, हयग्रीव, नृसिंह और वामन आदि अवतारोंका वर्णन, अमृतके लिए देवासुर संग्राम— ये सब विषय कहे जा चुके हैं। फिर राजवंश विवरण, इक्ष्वाकु जन्म, उनके वंशमें महात्मा सुद्युम्नका जन्म, इलाका उपाख्यान, ताराका उपाख्यान, सूर्यवंशमें शशाद, नृग शर्याति, बुद्धिमान कुकुत्स्थ, खट्वाङ्ग, सौभरि, सगर और रामचन्द्र आदिके चरित्रों और वंशोंका विवरण, परशुराम द्वारा क्षत्रिय संहार, चन्द्रवंशमें पुरुरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्त पुत्र प्रतापी भरत, राजा निमि, शन्तनु और उनके पुत्र भीष्मदेवका उपाख्यान, ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुके वंशके विवरण वर्णित हो चुके हैं। फिर वसुदेवगृहमें

कृष्णका जन्म, गोकुल निवास, श्रीहरिकी बाल-लीलाएँ, पूतना-वध, शकटभंजन, तृणावर्त वध, बकासुर वत्सासुर वध, धेनुकासुरका वध, दावानलसे गोपोंकी रक्षा, कालियनागका दमन और नन्दमोक्ष—ये सब वर्णित हैं। व्रजबालाओंकी व्रतचर्या, यज्ञकारी ब्राह्मणोंका अपनी स्त्रियोंको हरि मिलनसे कृतार्थ देखकर अपनी भूलपर पछताना, गोवर्धन धारण, इन्द्रमान भंग, सुरभी सहित इन्द्रका आना, गोविन्दका अभिषेक, रासक्रीड़ा, शङ्खचूड़ वध, अरिष्टासुर और केशीका वध, अक्रूरका आगमन, राम-कृष्णकी यात्रा, व्रज-वनिताओंका विलाप, मथुरा दर्शन, धनुषभंग, गज, मुष्टिक, चाणूर, कंसादि वध, मृत गुरुपुत्र आनयन, मथुरावासियोंका प्रिय कार्य साधन, जरासन्ध सैन्यवध, यवनराजका वध, कुशस्थली प्रवेश, पारिजात हरण, रुक्मिणी हरण, बाणासुरके बाहुओंको काटना, भौमासुरको मारकर कन्याओंका पाणिग्रहण, चैद्य, पौण्ड्रक, शाल्व और दन्तवक्रका निधन, शम्बरवध, द्विविधवध, पीठमुर और पंचजननामक दैत्योंका वध, वाराणसी दहन, पाण्डवों द्वारा महाभारत रचाकर भूमिका भार उतारना—ये विषय वर्णित हैं। फिर विप्रशापके बहानेसे यादववंशका परस्पर विनाश, उद्धवका और वासुदेवका अद्भुत संवाद, योग मायाबलसे कृष्णचन्द्रका सशरीर परमधाम गमन आदि विषयोंका वर्णन किया गया है। फिर युगलक्षण, युगस्थिति, कलिकृत मनुष्योंका आन्तरिक विप्लव, चतुर्विध प्रलय, त्रिविध उत्पत्ति, बुद्धिमान राजा परीक्षितका देहान्त, वेदशाखा विभाग, मार्कण्डेयजीकी उत्तम कथा, महापुरुषका त्रिन्यास और

जगदात्मा सूर्यके द्वादश व्यूहोंका वर्णन किया गया है। हे द्विज श्रेष्ठगण! आप लोगोंके प्रश्नोंके अनुसार मैंने इन सब हरिके लीलामय अवतारोंके कर्मोंका कीर्तन किया है। गिरते पड़ते, पीड़ित अवस्थामें, भूखे-प्यासे और सब प्रकारके संकटोंमें शुद्ध चित्त होकर ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' कहकर जो व्यक्ति ईश्वरकी वन्दना करता है, वह उसी क्षण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति सुयशयुक्त हरिचरित्र सुनता है, श्रीहरिके नाम लेता है, उनके चरित्र पढ़ता है तो उसके चित्तमें प्रवेश करके भगवान उसके मोहान्धकारको दूर कर देते हैं। श्रीहरिके नामोच्चारणसे रोग, शोक और विघ्न नष्ट हो जाते हैं। साधुगण अमृतमय श्रीकृष्णके नामों और गुणोंका कीर्तन करते हैं। हे विप्रगण! मैंने तुम लोगोंको अमंगलविनाशक वासुदेव माहात्म्य सुना दिया। जो व्यक्ति इसे सुनता या कीर्तन करता है, उसका आत्मा पवित्र हो जाता है। एकादशी या द्वादशीको सुननेसे आयुवृद्धि होती है। उपवास करके पाठ या श्रवण करनेसे पाप क्षय होता है। इस संहिताका पाठ करनेसे सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। इसका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको चारों वेद पढ़नेका फल मिलता है। ब्राह्मणको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है, क्षत्रियको राज्यलाभ होता और इसके पाठसे वैश्योंको धनलाभ होता है। शूद्रोंको सब पातकोंसे मुक्ति मिलती है। अन्य शास्त्र पुराणोंमें प्रत्येक पदमें कलिकलुष नाशन सर्वेश्वर हरिके नामोंका कीर्तन नहीं है। किन्तु इस पुराण संहिताके प्रत्येक कथा प्रसंगमें विशेष रूपसे अशेष मूर्ति भगवानके सुयशपूर्ण नामोंका कीर्तन किया गया

है। अतएव यह संहिता सर्वश्रेष्ठ है। इन्द्र, ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवगण भी पूर्णरूपसे जिनकी स्तुति नहीं कर सकते, उन अज अनन्त अच्युत नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। समस्त पापनाशन श्रीमान् वेदव्यासजीके पुत्र परमहंस चूड़ामणि भगवान श्रीशुकदेवको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ।

त्रयोदश अध्याय

पुराणोंकी श्लोक संख्या

सूतजीने कहा—हे शौनकजी! ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, मरुद्गण आदि देवता लोग दिव्य वचनोंसे जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके जाननेवाले वेदमन्त्रोंसे जिसके गुण गाते हैं तथा योगीजन ध्यान लगाकर जिसको देखते हैं और सुरासुर जिसका अन्त नहीं पाते, उस परम इष्टदेवको प्रणाम है। पीठपर तेज गतिसे घूमनेवाले मन्दराचलकी शिलाओंकी रगड़ द्वारा प्राप्त सुखसे निद्रित कच्छपरूप भगवानकी निःश्वास वायु तुम लोगोंका कल्याण करे। अब मैं सब पुराणोंकी श्लोक संख्या, इस भागवतपुराणका विषय, पाठ करने करानेका प्रयोजन, दानविधि और दानका माहात्म्य आप लोगोंको सुनाता हूँ। ब्रह्म पुराणमें १० हजार श्लोक, पद्म पुराणमें ५५ हजार, विष्णु पुराणमें २३ हजार, शिव पुराणमें २४ हजार, श्रीमद्भागवत पुराणमें १८ हजार, नारद पुराणमें २५ हजार, मार्कण्डेय पुराणमें ९ हजार, अग्नि पुराणमें १५ हजार ४ सौ, भविष्य पुराणमें १४ हजार ५ सौ, ब्रह्मवैवर्त

पुराणमें १८ हजार, लिङ्ग पुराणमें ११ हजार, बाराह पुराणमें २४ हजार, स्कन्द पुराणमें ८१ हजार एक सौ एक, वामन पुराणमें १० हजार, कूर्म पुराणमें १७ हजार, मत्स्य पुराणमें १४ हजार, गरूड़ पुराणमें १९ हजार और ब्रह्माण्ड पुराणमें १२ हजार श्लोक हैं। इन सब पुराणोंकी श्लोकसंख्या कुल चार लाख है। उसमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंकी संख्या १८ हजार है। सर्वप्रथम भगवान नारायणने नाभिकमलमें अवस्थित भयभीत ब्रह्माको कृपापूर्वक इस भागवत संहिताका उपदेश किया था। इसमें सर्वत्र वैराग्य वर्णन पूर्वक हरिलीला कथामय अमृत प्रवाहित होता रहता है। यह देवताओंके लिए भी आनन्ददायक है। यह सब वेदान्तोंका सारांशस्वरूप अद्वितीय वस्तु है। भाद्रपदकी पूर्णिमाके दिन सुवर्णके सिंहासनपर रखकर जो व्यक्ति इस भागवत पुराणका दान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति इस अमृत रसको पीकर तृप्त हुआ है, उसकी प्रवृत्ति फिर अन्य विषयोंमें नहीं होती। जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें विष्णु और भगवद्भक्तोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सम्पूर्ण पुराणोंमें यह भागवत पुराण श्रेष्ठ है। सब पवित्र क्षेत्रोंमें जैसे श्रीकाशीधाम श्रेष्ठ है। वैसे ही सब पुराणोंमें यह श्रीमद्भागवत पुराण श्रेष्ठ है। यह निर्मल है। अतएव वैष्णवोंको परम प्रिय है। श्रद्धा-भक्तिके साथ इसको पढ़ने, सुनने या विचारनेसे मुक्ति मिलती है। भगवानने पूर्वकालमें इस ज्ञानप्रदीपको ब्रह्माके निकट प्रकट किया था। ब्रह्माने नारद ऋषिको इसे दिया। नारदने कृष्ण द्वैपायनको दिया।

इन्होंने शुकदेवजीको दिया। शुकदेवजीने इसे राजा परीक्षितको प्रदान किया। उस विशुद्ध निर्मल शोक रहित परम सत्य परमेश्वरका मैं ध्यान करता हूँ। जिन्होंने मोक्षाभिलाषी ब्रह्माको यह श्रेष्ठ पुराण बताया, उन सर्वसाक्षी भगवान वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने राजा परीक्षितको यह दिव्य संहिता सुनाकर भवबन्धनसे मुक्त किया, उन योगिराज श्रीशुकदेवजीको मैं प्रणाम करता हूँ।

इति द्वादश स्कन्ध

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

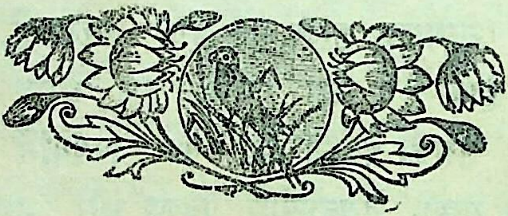

पण्डित-पुस्तकालय, काशीकी शुद्ध, सुन्दर और सस्ती संस्कृत एवं भाषाकी पुस्तकें—

पुराण

श्रीमद्भागवत 'सामयिकी' भाषा टीका (पत्राकार) सर्वोत्तम और विद्वज्जन समादृत तृतीय संस्करण	३२)
श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध 'सामयिकी' भाषा टीका	८)
श्रीगरुड़ पुराण 'वैष्णवी' भा० टी०	२)
श्रीदुर्गासप्तशती 'हैमवती' भा० टी०	१॥)
बृहत्स्तोत्ररत्नाकर बड़ा (स्तोत्र संख्या ३१२)	३)
श्रीसत्यनारायणव्रतकथा 'नारायणी' भा० टी०	।=)

आयुर्वेद

भैषज्यरत्नावली 'सचूर्णिका'	३)
माधवनिदान 'माधवी' भा० टी०	२॥)
रसेन्द्रसारसंग्रह 'रसायनी' भा० टी०	३)
भावप्रकाशनिघण्टु (सटिप्पण)	१॥)

धर्मशास्त्र

मनुस्मृति 'मन्वर्थदीपिका' भा० टी०	३)

वेद

श्रीशुक्लयजुर्वेदीयरुद्राष्टाध्यायी (रुद्री)	।≡)

ज्योतिष

राजसी कुंडली (नये ढंगके अनोखे जन्मपत्रफार्म)	६) सै०

दिव्य भाषाग्रन्थ

श्रीरामचरितमानस (रामायण) बड़ा अक्षर स्पेशल	४)
श्रीरामचरितमानस (रामायण) बड़ा अक्षर मध्यम	३)
भाषाभागवत अर्थात् सरल सुखसागर	६)
दृष्टान्तदीपक (दृष्टान्त संख्या ४३१)	२)

इन दामोंपर भी व्यापारियों और आप जैसे सुसम्मानित सज्जनोंको नियमानुसार कमीशन भी दिया जाता है।

१-१-१९४८

विनीत—
व्यवस्थापक